

काका कालेलकर ग्रंथावली

१

प्रवास (विदेश)

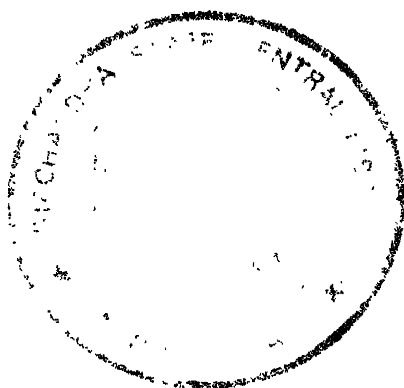


काका साहेब जापानमें गुरुजी निचिदात्सु फूजीईके साथ

काका कालेलकर ग्रंथावली

दूसरा खण्ड

प्रवास (विदेश)



प्रकाशक

गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा

नयी दिल्ली-११०००२

संपादक मण्डल

भारत सरकारके मानव संसाधन विकास मंत्रालयके आर्थिक सहयोगसे प्रकाशित

प्रकाशक : कुमारी कुसुम शाह,
मंत्री, गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा,
१, जवाहरलाल नेहरू मार्ग,
सन्निधि, राजघाट, नयी दिल्ली-११०००२

प्रतियां : ११००

मूल्य : ११ खण्डोंके १ सेटके : रु० १५४०/-

प्रकाशन पूर्व मूल्य : रु० ११००/-

आवरण चित्रांकन—तुलकीजी

मुद्रक : श्री रमेश चन्द्र अग्रवाल,
संजय प्रिंटर्स,
जी-१/११५६, मानसरोवर पार्क,
शाहदरा, दिल्ली-११००३२

सहज-साहित्यके प्रणेता

स्वनामधन्य काकासाहेब कालेलकर बहुमुखी प्रतिभाके धनी थे लेकिन उससे भी बढ़ कर वे सहज-साहित्यके प्रणेता थे। साधारणतया साहित्यकी चर्चा करते समय उसकी तीन-चार विधाएं ही हमारे सामने रहती हैं। कविता, कथा, नाटक और ललित निबन्ध। कुछ दिनोंसे हम जीवनी, आत्मकथा, यात्रावृत्त, रिपोर्ताज आदि को भी साहित्य मानने‌की उदारता दिखाने लगे हैं। परन्तु काकासाहेबका मत इस सम्बन्धमें कुछ और ही था। वे मानते थे कि साहित्यकार बननेकी दृष्टिसे वे कुछ नहीं लिखते। ख्यातनाम कविश्री उमाशंकर जोशीके शब्दोंमें कहें तो, "उनके मनमें साहित्यके दो सहज प्रकार—पत्र लेखन तथा वासरी—के बारेमें विशेष आस्था थी। पत्र अन्य मानव बन्धुके साथका अप्रत्यक्ष वार्तालाप है तो, वासरी अन्तरात्माके साथकी या अन्तर्यामीके साथकी प्रत्यक्ष बातचीत हो सकती है दोनों प्रकार काकासाहेबके हाथसे बहुत विकसित हुए। हजारों पत्र उन्होंने लिखे। वासरी भी अखंड न होते हुए भी काफी लिखी गयी।"

काकासाहेबका मूल्यांकन इसी दृष्टिसे हो सकता है। ऐसा नहीं कि उन्होंने आत्मकथा नही लिखी या ललित निबन्ध नही लिखे। समकालीन व्यक्तियोंके रेखाचित्र सरीखे रोचक और मार्मिक संस्मरण भी लिखे। उनके यात्रा-वृत्तोंको तो 'अद्भुत'की ही संज्ञा दी जा सकती है। नहीं लिखी तो आधुनिक कहानियां नही लिखी, नाटक नहीं लिखे, कविताओंका सृजन नही किया।

सन् १९३१मे श्री बलवन्त राय ठाकोरने दस श्रेष्ठ गुजराती गद्यकारोंकी सूचीमें काका कालेलकरका उल्लेख किया है। क्या यह बात आश्चर्यजनक नहीं है कि जिस व्यक्तिकी मातृभाषा मराठी हो वह गुजरातीका श्रेष्ठ गद्यकार माना जाये। भाषाविद् कहते हैं कि मनुष्य सपने केवल अपनी मातृभाषामें ही देखता है। उनके सपनोंकी भाषा भी मराठी बनी रही लेकिन इसके साथ-साथ उन्होंने गुजरातीमें भी सपने देखे। ऐसा कैसे हो सका ? इसलिए हो सका कि उन्होंने छोटे बच्चोंके साथ गहरी आत्मीयतासे भाषा-व्यवहार चलाया। वे गुजराती भाषाकी नसको पहचान गये थे। श्रद्धेय उमाशंकरजीने लिखा है, "बालकोंकी चेतनाका

शब्दों, वाक्यों और उक्तियोंके साथका लेन-देन अत्यन्त रसप्रद और प्रबोधक होता है। काकासाहेबकी गद्य-शैलीका एक मुख्य आकर्षण भाषाके साथ बालसहज वृत्तिसे चलाये हुए उनके सहज खेलमें नजर आता है। अनेक नये शब्द वे लीलासे बनाते हैं और पारिभाषिक पर्यायोंकी मानों उन्होंने टकसाल ही खोल रखी हो।'

शास्त्रोंमें लिखा है कि "ब्राह्मणः पाण्डित्यं निर्विद्य बाल्येन तिष्ठासेत।" विद्वानों को अपनी विद्वता भूलकर बालकके समान रहना चाहिये। इसका मूर्तरूप थे काकासाहेब। यह खूबी विरले व्यक्तियोंमें होती है। तभी तो मातृभाषा न होते हुए भी गुजराती भाषाके सौन्दर्यमें चार चाँद लगानेवाले और अपनी सारस्वत मोहिनीसे गुजरातके संस्कार-जीवन पर छा जानेवाले काकासाहेबको गांधीजीने 'सवाई गुजराती' का खिताब दिया।

ऐसा होने पर वे हिन्दीसे कैसे जुड़े? यद्यपि हिन्दीमें उन्हें गुजराती जैसी मान्यता नहीं मिली फिर भी अपने उत्तरकालमें विशेष रूपसे सबसे अधिक उन्होंने हिन्दीमें ही लिखा। प्रारम्भमें इस भाषाके प्रति उनका कोई विशेष लगाव नहीं था जब वे कॉलेजमें पढ़ते थे तब उनका एक साथी, लोकमान्य तिलकके सुप्रसिद्ध पत्र 'केसरी'का हिन्दी संस्करण मंगाता था। इसलिए मंगाता था क्योंकि उत्तर भारत में सर्वत्र हिन्दी चलती थी। ऐसी भाषाका कुछ ज्ञान अच्छा भी है और आवश्यक भी।

काकासाहेबको तब पहली बार हिन्दीकी उपयोगिताका पता चला। वे जानते थे कि महाराष्ट्रके अनेक सन्तोंने हिन्दीमें पद्य रचना की है। बड़ौदाके सयाजीराव गायकवाड़ने अपने राज्यमें गुजरातीको प्रजाकी भाषा माना और हिन्दीको सारे देशकी भाषा स्वीकार किया। उसे प्रोत्साहन दिया। यह सब उन्हें मालूम था। पर स्वयं उन्होंने इस भाषाके बारेमें कुछ नहीं सोचा था।

लेकिन एक दिन सोचना पड़ा। गांधीजी जब दक्षिण अफ्रीकासे लौटे और शान्तिनिकेतन गये तो वहां उनकी भेंट दत्त बाबूसे हुई। काकासाहेब तब इसी नामसे जाने जाते थे। उनको देखते ही गांधीजी पहचान गये कि यह मेरा आदमी है। उन्होंने शायद तब यह भी सोच लिया था कि इनसे क्या काम लेना है।

आगेकी बात काकासाहबके शब्दोंमें इस प्रकार है, १० अप्रैल, १९१७ के दिन चम्पारन जाते हुए रास्तेमें बड़ौदा स्टेशन पर पूज्य बापूजी मुझसे मिले और बोले, 'अभी-अभी मैंने आश्रम खोला है। इसलिए मुझसे सारा समय आश्रमको देना चाहिए था किन्तु सेवा-कार्यके लिए अन्य स्थानोंसे निमंत्रण आते हैं; उनको मना कैसे करूं? इसलिए मैं चम्पारन जा रहा हूं। आप अनुभवी हैं। शान्तिनिकेतनमें आश्रमवासियोंके साथ आप ठीक-ठीक मिलजुल गये हैं, इसलिए पूरे घरके ही हैं।

१. पूरा नाम है 'दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर'।

आप यदि आश्रम आकर रहेंगे तो मैं निश्चित रहूंगा । मैं मान गया और आश्रम का हो गया तथा सब कामोंमें रम लेने लगा ।"

संयोगसे इसी वर्ष भड़ौचमें गुजरात शिक्षा-परिषद्का दूसरा अधिवेशन हुआ । गांधीजी उसके अध्यक्ष चुने गये । उन्होंने काकासाहबसे कहा कि इस शिक्षण-परिषद् में आप जरूर उपस्थित रहिये और इसके लिए एक निबन्ध भी लिखिये, "हिन्दी ही इस देशकी राष्ट्रभाषा हो सकती है ।"

उन्होंने गांधीजीका यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और इस प्रकार एक और महाराष्ट्रीय, एक गुजरातीके कहने पर हिन्दीके प्रति समर्पित हो गया । काकासाहेबने लिखा है, 'उस समय मुझे कल्पना भी नहीं थी कि यह निबन्ध मेरे भाग्यमें महत्त्वका परिवर्तन करनेवाला है । यह लेख लिखा गया था सन् १९१७के आखिरके दिनोंमें ।'

उस समय उनकी आयु बत्तीस वर्षकी थी और देहावसानके समय वे छियानवे वर्षके थे । पूरे चौसठ वर्ष तक वे हिन्दीका अलख जगाते रहे और अपनी अनुपम अनुभवजन्य [illegible] राष्ट्रभाषाको समृद्ध करते रहे ।

काकासाहेबकी शैलीकी एक और विशेषता यह है कि उनका लगभग साराका सारा साहित्य दूसरोंके हाथोंसे लिखा गया है यानी उन्होंने जो कुछ लिखाया, बोलकर लिखाया है । इसलिए उसमें एक प्रकारकी सहज सम्प्रेषणीयता है। उनका अद्भुत यात्रावृत्त "हिमालयकी यात्रा" शब्दबद्ध होनेसे पहले अनेक बार बच्चोंको सुनाया गया था । 'स्मरण यात्रा'के प्रसंग भी जिन्होंने सबसे पहले सुने थे वे थे, पाठशालाके छोटे-छोटे विद्यार्थी । अगर काकासाहेब कहानी लिख पाते तो वे 'किस्सागोई'की शैलीमें ही लिखते । इस शैलीका अपना एक महत्त्व है ।

इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि काकासाहेब गहरे नहीं उतरते थे । बहुत गहरे उतरते थे परन्तु इस खूबीसे उतरते थे कि जटिलसे जटिल बात भी सहजबोधगम्य हो रहती थी और यह इसलिए होता था क्योंकि उन्होंने 'मनीषा' को ओढ़ा नहीं था उसे जिया था । उनके लिए विश्वास करनेका अर्थ ही विश्वास को जीना था । वह मात्र साहित्यके प्रणेता ही नहीं थे, 'जीवित साहित्य' भी थे। उनका सारा जीवन एक कर्मयोगीका जीवन था । गांधीजीकी हर प्रवृत्तिसे वे जुड़े थे । मात्र जुड़े ही नहीं, उनमें ओत-प्रोत भी हो गये थे । तभी तो वह खगोल विद्यामें गांधीजीकी रुचि जगा सके । प्रारम्भसे ही वे राष्ट्रीय शिक्षाके प्रति समर्पित रहे । महापण्डित राहुल सांकृत्यायनकी तरह वे मात्र घुमक्कड़-शास्त्रके पण्डित ही नहीं थे, उनकी यात्राएं मात्र प्रकृतिका रम्य चित्रण ही नहीं है बल्कि राहुलजीकी तरह ही वे भारतीय संस्कृतिकी खोजकी यात्राएं है । नदियोंके उद्गमकी खोज संस्कृतिके उद्गमकी खोज है । उन्होंने निश्चय किया था कि वे भारतके स्वतंत्र होने तक विदेश यात्रा नहीं करेंगे पर स्वतन्त्रता प्राप्त हो जानेके बाद अपनी

जीवन संध्यामें उन्होंने नाना देशोंकी इतनी यात्राएं कीं कि नवयुवक भी लजा जायें पर वे यात्राएं भारतीय संस्कृतिके सही स्वरूपको स्पष्ट करनेवाली यात्राएं थी। कितना प्यार, कितना आदर अर्जित किया भारतके लिए संस्कृतिके इस परिव्राजक आचार्यकी इन यात्राओंने !

श्री उमाशंकर जोशीके शब्दोंको फिर उधार ले कर कहें तो, "स्वराज्य मिलने तक काकासाहेबका प्रिय मंत्र था 'जीवन'। स्वराज्योत्तर कालमें उनका मंत्र रहा 'समन्वय'। समन्वय मंत्रकी दीक्षा उन्होंने विविधतासे समृद्ध बनी हुई अनोखी भारतीय संस्कृतिसे ग्रहण की थी। वे कहते थे कि भारत तो भिन्न-भिन्न वंश संस्कारको एक रूप, एक रस करनेके लिए प्रयोगशाला है। भारतमें समन्वयका प्रयोग सफल होने पर सारे जगतमें भी सफल होगा।"

स्वयं काकासाहेबने लिखा है, "जीवन व्यक्तिका हो, राष्ट्रका हो या समस्त मानव जातिका, संघर्ष टाल कर उत्कर्ष-सिद्धिपद समन्वय ही उसे समर्थ और कृतार्थ करेगा। संस्कृतिका पूर्वार्ध है संघर्ष और सहयोग। उत्तरार्ध है समन्वय।" और अन्ततः 'सर्वधर्म समभाव' भी उनके लिए 'सर्वधर्म ममभाव' बन गया था। उनके सारे कार्योंमें एक अनोखापन है। गहरी और दूर तक देखनेवाली दृष्टि, गाम्भीर्यके पीछे अटपटा चांचल्य, साधनाके साथ गुदगुदानेवाली विनोद वृत्ति। अनेक संस्मरणों और ललित निबंधोंमें ये विशेषताएं खूब उभरी हैं। "उनके समस्त जीवन और कृतित्व पर, युगीन दायित्वों और महान् चुनौतियों पर जब हम नजर डालते हैं और उनके आजीवन एकनिष्ट प्रयासका सिंहावलोकन करते हैं तो विदित होता है कि व्यक्तिकी अपनी साधनाका महत्त्व सिद्धांतकी सामूहिक अभिव्यक्तिके मुकाबले किसी प्रकार कम नहीं होता।"

राष्ट्रभाषा हिन्दीका प्रचार करनेकी उनकी अपनी अनोखी पद्धति थी। उसकी गन्ध उनके लेखोंमें सर्वत्र मिलती है। हिन्दी क्यों, अंग्रेजी क्यों नहीं इसका विवेचन करते हुए वे कहते हैं, "अंग्रेजी जाननेवाले अपनी एक अलग जाति बनाते हैं, दूसरी भाषाएं सीखते नहीं। अपनी जन्म भाषा तो बचपनमें ही सीखनी पड़ी, नहीं तो उसे भी नहीं सीखते।"

हिन्दीको स्वीकार करनेके दो प्रमुख कारण मानते थे। एक तो उसकी लिपि नागरी है जो संस्कृतकी लिपि होनेके कारण सर्वत्र भारतमें फैली हुई है। दूसरा कारण यह है कि सभी प्रान्तोंके सन्तोंने उसे अपनाया है। उन्होंने लिखा है, "चीन जापान, बर्मा, श्रीलंका, इंडोनेशिया आदि देशोंके साथ हमारा सम्पर्क आज अंग्रेजी के द्वारा बढ़ रहा है। इसमें सहूलियत चाहे जितनी हो, एशियाके लिए यह शाप रूप ही है। एशियाई संस्कृति जैसी चीज पर अंग्रेजीके कारण हमारा विश्वास ही नही बैठता।"

बहुत गहरे डूबे थे काकासाहेब। हिन्दीके माध्यमसे वे 'एकात्म' साधना

चाहते थे। समन्वयकी भाषा हिन्दी ही हो सकती है इसलिए वे जुड़े थे हिन्दीसे या उन्हींके शब्दोंमें कहें, 'इसीलिए हिन्दी उनसे चिपक गयी थी।'

हिन्दी जगतने उन्हें नही पहचाना। उनका उचित सम्मान तब वे कैसे करते! उन्होंने हिन्दीको नया शब्द भण्डार दिया। मुहावरे दिये, मौलिक उद्‌भावनाएं दीं। उनका विपुल साहित्य शिक्षा, संस्कृति, धर्म, राजनीति, भाषा, भूगोल, खगोल और इतिहास सभी मौलिक चिन्तनसे ओत-प्रोत है। उनकी एक और विशेषता है, किसी भी वस्तुको व्यापक संदर्भमे देखनेकी दृष्टि। यही समग्रता है। समग्रतामें ही किसीको उसके सही रूपमें समझा जा सकता है।

निबन्धोंके विषयकी कोई सीमा नही होती। किसी भी बौद्धिक विषयको रोचक भंगिमामें प्रस्तुत करने पर वह ललित निबन्ध बन जाता है। काकासाहेब तो इस रोचक भंगिमाके आचार्य हैं। हिन्दीके यशस्वी निबन्धकार श्री कुबेरनाथ रायने कहा है, 'ललित निबन्धकी भंगिमामें लेखक और पाठकोके बीच एक सहज आत्मीयता होनी चाहिये। वह फतवा दे सकता है पर एक बन्धुकी शैलीमे गम्भीर, उपदेशात्मक भंगिमा ललित निबंधमें वर्जित है। ललित निबन्धकारके लिए आवश्यक है कि उसका मानसिक और बौद्धिक क्षितिज विस्तृत हो। जितना ही वह विस्तृत होगा उतना ही वह सबल ललित निबंधकार होगा। तभी तो वह पाठकोके मानसिक क्षितिजका विस्तार कर सकेगा।''

और ललित निबन्ध ही क्यों, उनकी आत्मकथा, उनके संस्मरणात्मक रेखाचित्र और यात्रा-वृत्तान्त, उनकी टीकाएं और उनके पत्र किसी भी साहित्यके लिए गौरव-का विषय हो सकते है।

अपराजेय कथा-शिल्पी शरतचन्द्रकी तरह काकासाहेबका एक और रूप था जो अनौपचारिक और आत्मीय गोष्ठियोंमे प्रगट होता था। काश किसीने उन अंतरंग वार्तालापोंको सुरक्षित कर लिया होता। कोंकणी भाषाके सुपरिचित साहित्यकार भाई रवीन्द्र केलेकरने एक प्रयत्न अवश्य किया है। वह विवरण 'काकासाहेबके साथ विविध वार्तालाप' के नामसे काकासाहेबकी पत्रिका 'मंगल प्रभात'में प्रकाशित हो रहा है। शीघ्र ही वह पुस्तकाकारमें प्रकाशित होगा। इस-लिए वे साधुवादके अधिकारी हैं।

हमें बहुत खुशी है कि ऐसे सहज साहित्यके प्रणेता और संस्कृतिके परिव्राजक आचार्यकी वाणी ग्रंथावलीके रूपमें प्रकाशित हो रही है। श्री उमाशंकरजीके शब्दों मे इसमें, "भारतमें जन्म लेकर भारतकी सर्व प्रकारकी आत्मलक्ष्मी—निसर्गलक्ष्मी तथा अध्यात्म लक्ष्मी —को व्यक्तित्वके तार-तारमें अनुभव करनेवाले एक विरले भारत-पुत्रकी आन्तर-समृद्धि इस तरहसे कुछ सुरक्षित रहेगी। भारतके आधुनिक प्रबोधकाल तथा पुरुषार्थकालके कई संस्मरण, चिंतन, निरीक्षण भी सुरक्षित रहेगे।'

इसलिए हमें विश्वास करना चाहिये कि हिन्दीभाषी मनीषी और पाठक अपनी भूलका परिमार्जन करते हुए इस ग्रंथावलीका मुक्त मनसे स्वागत करेंगे। जीवन-समन्वयके मंत्र-दृष्टाके प्रति उनकी यही सच्ची श्रद्धांजलि होगा।

—विष्णु प्रभाकर

८१८ कुण्डेवालान,
अजमेरी गेट,
दिल्ली-११०००६
२-६-८७

संपादकीय

काकासाहेबके निर्वाणके बाद उनके अनुयायियोंने उनका साहित्य ग्रंथावलीके रूपमें प्रकाशित करनेका विचार किया। उनके निर्वाणके कुछ ही वर्षों बाद उनका जन्म-शताब्दी वर्ष मनाया गया तब यह विचार जोरोंसे उभरा। भारतकी भूतपूर्व प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी द्वारा रचित आचार्य काकासाहेब जन्म-शताब्दि राष्ट्रीय समितिकी सिफारिशसे भारत सरकारके मानव संसाधन विकास मंत्रालय ने एक लाख रुपयेकी उदार सहायता दी और ग्रंथावलीके कुछ सेट खरीदनेका वादा किया। अतः काका साहेबकी संस्था गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभाने काकासाहेबके करीब ७००० पृष्ठोंके हिन्दी साहित्यको ११ खंडोंमें प्रकाशित करनेका बीड़ा उठाया और १५४० रुपयोंके एक सेटको पेशगी ग्राहक बनाकर रु० ११०० में देने-की योजना बनाई। इसके अनुसार विदेश प्रवास वर्णनका यह दूसरा खंड प्रकाशित करते हुए हम प्रसन्नता अनुभव करते है। इसके पहले हम भारत प्रवास वर्णनका पहला खंड प्रकाशित कर चुके हैं। काकासाहेबने तो जीवन भर समाज, देश और दुनियाको अपने उदार हृदयसे बहुत कुछ दिया है लेकिन उनकी जैसी कद्र करनी चाहिए थी हमने नहीं की। उनकी स्मृति कायम रखनेके लिए हम जितना भी करें, कम ही है।

काकासाहेब जीवनभर लिखते रहे उनकी लेखनीने कभी आराम नहीं लिया। गांधीजीकी सूचनासे राष्ट्रभाषा हिन्दीके प्रचार-प्रसारका काम हाथमें लिया तबसे अंत तक अधिकतर हिन्दीमें ही लिखते रहे, उसमें प्रवास-वर्णन प्रकृति-चित्रण समाज-निरीक्षण, शिक्षण-मीमांसा, साहित्य-आस्वाद. धर्म-संस्कृति. चिंतन. पत्र, डायरी, स्मृति-चित्र, चरित्र-कीर्तन आदि बहुत कुछ आ जाता है।

अपने सार्वजनिक जीवनके प्रारंभमें उन्होंने हिमालयकी २५०० मीलकी पैदल यात्रा की। उसके बाद देश-सेवा करते हुए पूरे भारतकी और स्वतन्त्रताके बाद विदेश यात्राएं भी कीं। प्रस्तुत खंडमें हमने ब्रह्मदेशका प्रवास, हमारे उस पारके पड़ोसी(अफ्रीका), सूर्योदयका देश (जापान), यात्राका आनंद जिसमें जर्मनी, इंग्लैंड, अमेरिका, जमैका, त्रिनिदाद, स्विट्जरलैंड, माडागास्कर, रूस और शर्कराद्वीप

मॉरिशियसकी यात्राके मार्मिक वर्णन हैं, पुस्तकोंका समावेश किया है। इसके अलावा नाइजीरिया, आल्जेरिया, योरोपकी जनता, पूर्व और पश्चिमकी तुलना, अंग्रेजोंके दिनोंका तिब्बत, नेपाल आदि पर लिखे लेखोंका समावेश भी यात्राके आनंदमें कर दिया गया है।

रूसकी यात्राके वर्णनके साथ ही हमारी छः सौ पन्नोंकी मर्यादा भी आ गयी लेकिन सिर्फ शर्कराद्वीप मॉरिश्यसकी यात्राका वर्णन ही छूट जा रहा था। अतः हमने इसका भी इस ग्रंथसे समावेश कर दिया है। और ७१० पन्नोंका यह ग्रंथ पाठकोंके समक्ष पेश है।

काकासाहेबकी लेखन शैली सहज, प्रभावशाली और सरल है। वह संस्कृतमय होने पर भी आसान और बोधगम्य है। अतः आदरणीय श्री गंगाबाबू कहते हैं कि यदि यही शैली हिन्दुस्तानी है तो हमें राष्ट्रभाषा, राजभाषा या संपर्क भाषा हिन्दी के लिए वह मान्य है। काकासाहेब कठिनसे कठिन विषयको भी ऐसी सरल और प्रवाहित भाषामें रखते हैं कि आम आदमी भी उसे समझ लेता है। प्रवास वर्णनमें और प्रकृति-चित्रणमें काकासाहेबकी साहित्य-सृजनता पूर्ण रूपसे खिलती है और उनकी चिंतनशीलता व विद्वताका दर्शन कराती है। काकासाहेब प्रवास-वर्णन या प्रकृति-चित्रण करते हुए पाठकोंको भी साथ ले चलते हैं और मानों उनको भी उस स्थानका या कुदरतका हूबहू दर्शन कराते हैं, जैसे बीचके पहाड़को पार करके राही-को एक नया ही दृश्य दिखता है और जैसे वह नई दुनियामें ही प्रवेश करता है वैसे काकासाहेब सामान्य बात कहते-कहते गहन ज्ञान-सागरमें प्रवेश करवाते हुए पाठकको भाव-विभोर कर देते हैं, और वह बोल उठता है, अद्भुत, अद्भुत, अद्भुत!

एक बार इन प्रवास वर्णनोंको पढ़ना शुरू करें तो उन्हें छोड़नेका मन नहीं होता। पाठकोंको उनमें काव्यपाठन-सा आनन्द मिलता है। ऐसी सुन्दर रचना-निर्मितिका कारण यही है कि काकासाहेब विश्व दर्शनको देवदर्शनका ही एक प्रकार मानते थे। केवल कुतूहलकी दृष्टिसे, कलाकी रसिकतामें या वैज्ञानिक जिज्ञासासे ही प्रेरित हो कर नहीं बल्कि इन तीनोंको कृतार्थ करनेवाली भक्तिसे प्रेरित होकर उन्होंने भारतवर्षके और विश्वके अनेक देशोंके प्रवास किये हैं, यात्रा वर्णन लिखे हैं और यात्रानंदमें ही जीवनानन्द प्राप्त किया है।

विश्वके ऐतिहासिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और प्राकृतिक उद्यानोंके सुन्दर रंग-बिरंगी फूलोंका काकासाहेब द्वारा रचित यह गुलदस्ता हिन्दी जगत्के समक्ष रखते हुए धन्यता अनुभव करते हैं। आशा है कि हिन्दी जगत् उसे सहर्ष अपनाएगा।

अनुक्रमणिका

सहज—साहित्यके प्रणेता	iii
संपादकीय	ix

ब्रह्मदेशका प्रवास (१-४१)

[illegible] शुभयोग	३
विशेष विनती	४
१. समुद्रकी पीठ पर	५
२. रंगून	१२
३. श्वेडेगॉन पँगोडा	१५
४. सरोविहार	१९
५. लेटाफाया	२०
६. बौद्ध पहाड़ी	२३
७. राजप्रासाद	२५
८. सुवर्ण देशकी माता	२७
९. पकोकु	३१
१०. मिट्टीके तेलके कुएं	३३
११. येननजांव	३५
१२. प्रोम	३७
१३. मोमबत्तीका कारखाना	३९

हमारे उस पारके पड़ोसी (४३-२५३)

आगामी कलका महाद्वीप	४५
नया मिशन	४६
१. अफ्रीकाका महत्त्व	४९

२. तैयारी ५४
३. समुद्रके सहवासमें ५६
४. प्रवेशद्वार ६१
५. नैरोबी ७२
६. थीका ९०
७. नैरोबीका हमारा घर ९१
८. दो व्योमकाव्योंका समकोण ९३
९. टांगा ९५
१०. शान्तिधाम दारेस्सलाम ९६
११. प्रार्थना-प्रवचन १०८
१२. किटुंडा ११२
१३. दुनिया भरके लिए मूंगफली ११४
१४. जंगबारके विविध अनुभव ११९
१५. मोरोगोरो १३०
१६. डोडोमा १३२
१७. ङ्गोरों गोरो १३८
१८. दो पर्वतराज १४२
१९. ब्रह्मक्षत्री माहम १४६
२०. अभयारण्यमें प्रवेश १४७
२१. फिर नैरोबीमें १५५
२२. सरोवर पर व्योम-विहार १६१
२३. नौ पहाड़ियोंकी नगरी १६३
२४. अफ्रीकाके गांवोंमें १७६
२५. नीलोत्री १७९
२६. नील मैयाकी छायामें १८५
२७. (नंबर छूट गया है)
२८. भूमध्य-रेखा पार की १८९
२९. कवाले १९१
३०. नये मुल्कमें १९६
३१. टेम्बो, भोंगो और किनोकोका अभयारण्य १९९
३२. कीवूसरकी आधी प्रदक्षिणा २०४
३३. बच्चा शहर और प्रवाही कन्या २०७
३४. उसुम्बरा और उसके बाद २११
३५. कबालेमें कंपाला २१६

३६. मांग कर ली हुई मीठी कैद २२०
३७. उत्कट और समस्त २२४
३८. जूड़ा केसरीके देशमें २४०
३९. पैगम्बर साहबके देशमें २४९

सूर्योदयका देश (२५५-४३९)

स्व० जमनालालजीको २५७
समभावी अनुवादिका २५८
पचामृत २५९

पहली यात्रा—१९५४

१. जापान बुलाता है २६२
२. विश्व-शांतिकी खोजमें २६५
३. संस्कार धाम २७६
४. भीषण ज्वालामुखी और सौम्य दीपक २७९
५. बुद्ध-धातुकी स्थापना २८५
६. हिरोशिमाको श्रद्धांजलि २८९
७. पुनरागमनाय च २९३

दूसरी यात्रा—१९५७

१. तैयारी २९८
२. साथी ३०१
३. खिड़कीके बाहर ३०२
४. प्रस्थान ३०३
५. वातावरण और उदावरणके बीच ३०४
६. टोकियोमें-१ ३०७
७. टोकियोमें-२ ३०९
८. सप्पोरो जाते हुए ३१२
९. सप्पोरो ३१४
१०. 'खुश रहो' ३१८
११. आकन-कानन ३२१
१२. मात्स्यु और खुशारो ३२७
१३. उत्तर जापानके पहाड़ी प्रदेशमें ३३३
१४. हाकोदाते ३३६
१५. भव्यताका पीहर : निक्को ३३९

१६. नागाओकाकी जलचरी	३४९
१७. जापानी सत्याग्रह	३५३
१८. सीमीझुका सागर-दर्शन	३५६
१९. इंजीनियरिंगके पुरुषार्थका प्रतीक	३५९
२०. भाई मोचीझुकी यूई	३६५
२१. जापानकी प्रजाकी विशेषता	३६७
२२. तपोभूमिका वैभव	३७०
२३. कोफूका स्तूपोत्सव	३७२
२४. नागासाकीका श्राद्ध	३७८
२५. घातकताके सामने आस्तिकता	३८५
२६. धर्म-धानी कोबे	३८७
२७. फूजीयामाके दर्शन	३९१
२८. विराट सम्मेलन	३९५
२९. विश्वसम्मेलन और उसके पश्चात्	४०२
३०. विदा	४०८
३१. निप्पोन: वर्तमान और भावी	४१५
तीसरीसे छठी यात्रा (१९६२-१९७२)	
३२. सूर्योदयका देश, सर्वोदयकी दिशामें	४१९
३३. यामागा	४२३
३४. साकुराजीमाकी अध्यक्षता	४२५
३५. मैं शरमाया	४२८
३६. प्रकृति-निर्मित स्तूप	४३१
३७. सुदूर जापानसे-१	४३३
३८. सुदूर जापानसे-२	४३४

यात्राका आनंद (४४१-६१९)

दो शब्द	४४३
१. एशियामें भारतका स्थान	४४७
२. सांस्कृतिक उपनिवेशोंकी स्वतंत्र प्रतिभा	४५०
३. अफ्रीकाका आकर्षण	४५०
४. पश्चिम अफ्रीकासे	४५३
५. मेरी अफ्रीका-यात्रा	४५५
६. हिरोशिमाका संदेश	४५६

७. सुप्रभातम् ४६२
८. घाना देश क्या है ? ४६५
९. योरप-यात्राका मनन ४६६
१०. चीनका पत्र-१ ४६९
११. चीनका पत्र-२ ४७१
१२. भारत और जापानकी दोस्ती ४७४
१३. हवाई जहाजसे ४७६
१४. केचूरका प्रपात ४७९
१५ काहिरामें-१ ४८५
१६. काहिरामें-२ ४८९
१७. रोममें ४९४
१८. म्यूनिक-१ ४९७
१९. म्यूनिक-२ ५०१
२०. स्टुटगार्ट ५०६
२१. स्टुटगार्टसे फ्रंकफुर्ट ५१०
२२. बॉनमें-१ ५१४
२३. बॉनमें-२ ५१६
२४. ब्रुसेल्सकी प्रदर्शनी ५१९
२५. ब्रुसेल्ससे लंदन ५२२
२६. न्यूयार्क-१ ५२७
२७. न्यूयार्क-२ ५३०
२८. जमेका-१ ५३४
२९. जमैका-२ ५३८
३०. जमेका-३ ५४१
३१. त्रिनिदाद-१ ५४६
३२. त्रिनिदाद-२ ५४८
३३. त्रिनिदाद-३ ५५१
३४. दक्षिण त्रिनिदाद-१ ५५३
३५. दक्षिण त्रिनिदाद-२ ५५६
३६. जार्जटाउन ५५९
३७. अमेरिका क्या है ? ५६३
३८. अमेरिकाका वायुमंडल ५६६
३९. नायगराका प्रपात-१ ५६८
४०. नायगराका प्रपात-२ ५७२

४१. नाइजीरिया भी आज़ाद होगा ५७७
४२. योरोपकी जनता ५७६
४३. इण्टरलाकनमें ५८१
४४. पूर्व और पश्चिमकी तुलना ५८५
४५. यूरोपका शिकार-आल्जीरिया ५८६
४६. हिन्द महासागर और दक्षिण ध्रुव ५६१
४७. पुनश्च किलिमांजारो ५६५
४८. शर्करा द्वीप मॉरिशियस ५६७
४६. अंग्रेजोंके दिनोंका तिब्बत ५६६
५०. माडागास्कर देखकर ६०१
५१. माडागास्कर ६०६
५२. हमारे पड़ोसीका नवजीवन ६०७
५३. रशियाके पत्र ६०६
५४. जागतिक यात्राधाम-रूस ६११
५५. नेपाल ६१५

शर्कराद्वीप मॉरिशियस (६२१-७१०)

निवेदन ६२३
दूरके अपने ६२३
दूसरा दिन ६५१
तीसरा दिन ६५५
चौथा दिन ६६०
पाचवां दिन ६६४
छठा दिन ६७२
सातवां दिन ६७६
द्वीपराज माड़ागास्कर (माड़ागासे) ६६४

ब्रह्मदेशका प्रवास

अद्‌भुत शुभयोग

'ब्रह्मदेशके प्रवास' की तीसरी आवृत्ति प्रकाशित हो रही है इसका मुझे संतोष है। बंबई युनिवर्सिटीके गुजरातीके वाचनक्रममें उसे स्थान दिया तब नवजीवन प्रकाशन मंदिरने विद्यार्थियोंकी सहूलियतके लिए टिप्पणियां[१] दी हैं। वे टिप्पणियां मैंने आज ही देख ली हैं। मुझे वे संतोषकारक मालूम हुई हैं।

काश्मीरसे लेकर दार्जिलिंग तककी हिमालयकी यात्रा करनेके बाद हिन्दुस्तानके ईशान्य कोने इम्फाल-मणिपुरमें बैठकर 'हिमालयके प्रवास'की प्रस्तावना लिख सका था। उसी तरह 'ब्रह्मदेशके प्रवास'की ताजी प्रस्तावना पूर्व अफ्रीकाकी राजधानीके समान नैरोबीमें लिख रहा हूं। हमारे लोग और खासकर गुजराती—उनमें हिन्दू, मुसलमान और पारसी आ जाते हैं इतना ही नहीं किन्तु गुजरातीको अपनानेवाले मेरे जैसे अनेक महाराष्ट्री भी आ जाते हैं—एक सिरे पर ब्रह्मदेशसे लेकर दूसरे सिरे पूर्व तथा दक्षिण अफ्रीका तक फैले हुए हैं। इसलिए एक सिरेके ब्रह्मदेशके प्रवासकी प्रस्तावना दूसरे सिरे पूर्व अफ्रीकाकी गिरिनगरी में बैठकर लिख भेजनेमें विशेष आनंद होता है।

इस पुस्तककी पहली प्रस्तावनामें मैंने लिखा था कि "हिमालयकी यात्रामें विशिष्ट पवित्र भावनाओंकी उत्कटता थी। ब्रह्मदेशके प्रवासमें तो संस्कारलोलुप प्रवासीका कुतूहल ही केवल था।" आजकी अफ्रीकाकी यात्रामें विशिष्ट पवित्र भावना भी है तथा संस्कारलोलुप प्रवासीका कुतूहल भी है; तदुपरांत दूसरे अनेक संकल्प भी हैं। हिमालयके प्रवासमें नंदादेवी, नंदाकोटा, बदरी, केदार, कंचनजंगा धवलगिरि, हरमुख आदि शिखरोंके प्रति जो पवित्र भावना थी उसी पवित्र भावनाको लेकर यहांके पर्वतराज किलिमांजरो तथा मेरुऔर केनिया इत्यादि अन्य शिखरोंके विविध दर्शन किये हैं। जिस वात्सल्यकी अपेक्षा हिन्दकी लोकमाताओंसे रखकर मैंने उनके दर्शन किये, उसी अपेक्षासे ईजिप्त सूडानकी लोकमाताके एक उदयस्थान नीलोत्रीके दर्शनको आज उड़कर जानेवाला हूं। गांधीजीकी चिताभस्मका अंश वहां नीलके प्रवाहमें प्रवाहित किया गया था। ऐसे पवित्र क्षणमें यह प्रस्तावना लिख रहा हूं।

मेरे मनमें अफ्रीका खंड भारतभूमि जैसी ही पवित्र भूमि है। सबै भूमि गोपालकी यह बात तो है ही। तदुपरांत हमारे ऋषिश्रेष्ठ महात्मा गांधीने अपनी विश्वकल्याणकारी तपस्या इस भूमि पर ही शुरू की थी।

यहां तीन खंडके बालक विश्व-सहकार कर रहे हैं। 'ब्रह्मदेशके प्रवास'की

---

१. वे टिप्पणियां इस ग्रंथावलीमें नहीं दी हैं।

प्रस्तावनामें मैंने जो-जो लिखा है उन सब बातोंको मैं यहां हजारगुनी उत्कटतासे अनुभव कर रहा हूं। आज भारत स्वतंत्र हुआ है। ब्रह्मदेश भी अलग होकर स्वतंत्र हुआ है और अफ्रीकाका भविष्य अद्भुत तरहसे रचा जा रहा है। इन सब विराट परिवर्तनोंका साक्षी होकर यहां यात्रा कर रहा हूं। ब्रह्मदेशके प्रवासको निकलते समय महात्माजीके प्रथम दर्शन हुए थे। आज उनके सर्वोदयकारी संदेशको लेकर एशियाके, यूरोपके और अफ्रीकाके निवासियोंसे यहां बंधुभावसे मिलता हूं और उन तीनोंके बीच आत्मीयता विकसित होते देखना चाहता हूं। इतिहास-विधाताकी कैसी अद्भुत लीला है !

नैरोबी
२६-६-५०

काका कालेलकर

विशेष विनती

ब्रह्मदेशका प्रवास मैंने सन् १९१५ में किया। उसका बयान सन् १९२७ के मार्चमे लिखवाया और वह प्रकाशित हुआ सन् १९३१के अंतमें। उस प्रवासके संस्मरण लिखवाये तब वे भी सारे, उसके पहले किये हुए हिमालयके प्रवाससे भी स्मरणमें अधिक पुराने और धुंधले हो गये थे। हिमालयकी यात्रामें विशिष्ट पवित्र भावनाओंकी उत्कटता थी। ब्रह्मदेशके प्रवासमें तो संस्कारलोलुप प्रवासीका कुतूहल ही केवल था। विस्मृतिकी कराल दृष्टिमेंसे जितना बच गया इतना यहां दे दिया है। उसमे भी बारीकियोंमें कहीं-कहीं गड़बड़ हुई होगी। फिर भी कुल मिलाकर सारा वर्णन यथार्थ ही है ऐसी मेरी धारणा है। मुझे यात्राका सही बयान ही देना था, काल्पनिक नये वर्णन उत्पन्न नहीं करने थे।

ब्रह्मदेश गुजरातियोंके लिए पड़ोसके घर जैसा है। कई गुजरातियोंका हर साल वहां आना-जाना होता है। कई परिवार वहां स्थायी होकर बसे हैं। मेरा यह बयान पढ़कर ब्रह्मदेशका इतिहास, वहांकी लोकस्थिति तथा देश वर्णन देनेकी प्रेरणा किसीको हो और परिणामस्वरूप मेरा यह छोटा बयान विस्मृतिमें अलोप हो जाये तो मुझे आनंद होगा।

२

गुजरात, बंगाल, तमिलनाडु तथा आंध्र चारों प्रान्तके लोग ब्रह्मदेशमे जाते हैं। थोड़े महाराष्ट्री भी वहीं हैं। हिन्दू भी हैं और मुसलमान भी हैं। हम जहां जायें वहां केवल अपना छोटा स्वार्थ न देखें। उस-उस देशके बालकोंके साथ मिलना-जुलना हमें आना चाहिये। बर्मी प्रजाका स्वभाव गुलाबी है। ऐसे पड़ोसियोंको अपनानेमें सच पूछें तो स्वार्थत्याग नहीं किंतु हमारी अपनी उन्नति तथा आनंद है। ब्रह्मदेशमें गुजरातियोंका स्थान कुछ विशेष है। ब्रह्मदेश हिन्दुस्तानसे अलग हो जाये

या साथ रहे, गुजरातियोंके लिए वहां स्थान है ही। वहां जाकर बसे हुए गुजरातियों को समभावपूर्वक बौद्ध धर्मका अध्ययन करना चाहिये। समाज-सेवकोंको वहां जाकर हिन्दी तथा बर्मी—दोनों समाजोंकी समान भावसे सेवा करनी चाहिये। हिन्दूधर्म, बौद्धधर्म तथा इस्लाम, तीनोंका जिन्होंने समानभाव तथा समभावके साथ अध्ययन किया है ऐसे समाजशास्त्रियोंको चाहिये कि वे अर्थनीति, विवाहनीति, राजनीति इत्यादि दृष्टिसे वहांके सवालोंका अध्ययन करें तथा गुजरातके समक्ष जो उज्ज्वल भविष्य फैला हुआ है उसके योग्य हों ऐसी सलाह वहांके गुजरातियोंको दें। गुजरातसे बाहर बसे हुए गुजरातियोंके हाथमें केवल उनका अपना ही भाग्योदय नहीं है; गुजरातका तथा हिन्दुस्तानका भाग्योदय भी उनके हाथमें कुछ हद तक है। बड़ा पद मिलनेवाला होता है तब हृदयको भी विशाल करना ही पड़ता है। मात्र पेट बड़ा करनेसे चलनेवाला नहीं है।

हिन्दुस्तानके पहाड़ ऊपरसे नीचे भी हैं और पूर्वसे पश्चिम भी। सह्याद्रि, पूर्व-घाट अरवल्ली आदि खिरथर खड़े (ऊपरसे नीचे) हैं। हिमालय, शिवालिक, विंध्य, सतपुड़ा तथा महादेवके पहाड़ आडे हैं। पहाड़ोंकी रचनाका असर संस्कृति पर बहुत होता है। ब्रह्मदेशके सभी पहाड़ उत्तर-दक्षिण हैं। उनका असर वहांके जीवनक्रम पर कैसा पड़ा है उसका संशोधन करनेका तथा शास्त्रदृष्टिका विकास करनेका खास आग्रह मैं प्रवासियोंसे करता हूं। उदाहरणके तौर पर हिमालय आड़ा (पूर्व-पश्चिम) होनेसे उत्तरकी ठंडी हवाको रोकता है, उत्तरकी ओरसे वृक्ष-वनस्पतिके बीज आड़े पहाड़के कारण दक्षिणकी तरफ नहीं आते। ब्रह्मदेशके पहाड़ उत्तर-दक्षिण होनेसे उत्तरका पवन दक्षिण दिशामें दौड़ आता है और साथ-साथ वहांके वृक्ष-वनस्पतिके बीज भी ले आता है। फलस्वरूप उत्तरके जंगल दक्षिणकी यात्रा भी कर सकते हैं!

यही न्याय पशु और पक्षी तथा मनुष्य पर विशेष रूपसे लागू होता है।

चीनी संस्कृति हिन्दुस्तानमें फैल न पायी, जब कि ब्रह्मदेशमें वह नीचे उतरकर सिंगापुर तक पहुंच सकी।

काका कालेलकर

१. समुद्रकी पीठ पर

गिरधारी तो एकदम ऊब गया था शांतिनिकेतनमें छुट्टी शुरू हो जानेसे सब बच्चे अपने घर चले गये थे। 'कितने दिन तक हम अकेले यहां रहेंगे? दादाको न आना हो तो भले न आयें! चलिये न हम आज ही निकल पड़ें' ऐसा कहकर हर घंटे मुझे परेशान करता रहा। आखिर मुजफ्फरपुरसे जीवतराम (आचार्य कृपलानी)का पत्र आया कि 'मैं आपको सीधे कलकत्तेमें मिलूंगा।' हम निकले बोलपुरसे। कलकत्ते

में तीनों एकत्र हुए, किन्तु गिरधारी हमें कुछ भी देखने न दे। उसने तो जिद पकड़ी कि, आज ही रंगूनको निकलना है। लेकिन तीन दिनका समुद्रका सफर, कुछ तो तैयारी करनी ही चाहिये। बाजार जाकर हमने नीबू, अदरख, फल, रोटी-मक्खन इत्यादि खरीद लिये। तूतक (डेक) पर सहूलियत हो इस हेतु अपने लिए मैंने एक आराम कुर्सी (डेक चेयर) भी खरीद ली।

हुगलीके किनारे देश-देशांतरके जहाज लंगर डालकर पड़े थे। हजकी यात्रा करनेवाले कई गरीब एक बड़े अहातेमें जानवरोंके जैसे बंद किये गये थे, बेचारे वहीं पकाकर खाते, और वहीं सो जाते।

शाम चार बजेका समय हुआ होगा। हमारा स्टीमर चल पड़ा। धूप सौम्य थी। मंद-मंद पवन बह रहा था। पानी पर सूरजकी नाचती चमकसे पीलापन आने लगा था। लाल-लाल 'बोयों'को टालकर स्टीमर आगे चली। दोनों किनारों पर जहाज दिख रहे थे, छोटी-छोटी नावें दिखती थी। सेन्ट विलियमके किलेसे होकर हम आगे चले। कई गोदियोंमें छोटे-बड़े जहाज आकर रुक रहे थे। दोनों किनारोंकी जमीन पानीकी सतहसे ज्यादा ऊंची नहीं थी, अतः दोनों तरफ दूर-दूर तक दिखाई देता था। किन्तु मनको खुशी देनेवाला कोई दृश्य नहीं था। ऐसी बड़ी नदियां जहां समुद्रसे मिलने जाती हैं वहां किनारे काफी गंदे होते हैं। ज्वार-भाटेके कारण गीले कीचड़में उछलकूद करनेवाले केकड़ोंके सिवा कुछ भी नहीं दिखता था।

जैसे-जैसे आगे बढ़ते गये वैसे-वैसे नदी चौड़ी होने लगी। दूरके किनारों पर जब श्वेत रेत नजर आने लगी तब मुझे कुछ शान्ति मिली। सुंदरवनका प्रदेश छोड़कर हम डायमंड हार्बरके पास पहुंचे। हमारा जहाज अब तरंगोंके साथ डोलने लगा। कुछ देर तूतक (डेक) पर खड़े-खड़े हमने भारतका किनारा अदृश्य होते देखा। फिर चक्कर आने लगे। इसलिए कुछ खाकर हम सो गये। सोनेसे पहले प्रार्थनाके अंतमें गिरधारीने "आगुनेर परशमणि छोंआओ प्राणे" रवीन्द्रनाथका यह सुंदर भजन गाया। उसे सुनने कई यात्री एकत्र हो गए। और उस गीतके प्रभावके कारण हमारे बिस्तर बराबर फैलाने पर किसीने आपत्ति नहीं की।

सुबह सर्वप्रथम मैं जागा। उस समय अरुणोदय भी नहीं हुआ था। आकाशमें जैसे चंद्र चलता है उस तरह हमारा जहाज अकेला पानी चीरता चल रहा था। कैसी अद्भुत थी उस समयकी शांति! स्टीमरके पेटमें यंत्ररूपी हृदय यदि अपनी धड़कन न सुनाता तो बाहरकी शांति इतनी असरकारक न होती। चारों तरफ मानों लोहेका या सीसोंका ठंडा रस फैला दिया हो ऐसा ही वह समुद्र नजर आता था। मैं तूतकके कटहरेके पास जा खड़ा हुआ। स्टीमर जैसे डोलता वैसे पानी ऊपर आता और नीचे जाता। जहां देखें वहां तरंगें ही तरंगें, एक-दूसरेके साथ टकराने पर उनमेंसे फेन निकलता था। अंधेरेमें वह फेन चमकता, और उस चमककी टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें मिलकर विचित्र आकृतियां प्रगट करतीं। जहाजके डोलनेका असर

दिमाग पर होता है। उसमें भी यदि हम तरंगोंके अखंड और सनातन नृत्यकी लीला निहारते रहे तब तो उसका कैफ ही चढ़ता है।

आगे जाते तरंगें फूटती बंद हुईं। सागरका हृदय जगह-जगह ऊपर चढ़ता और नीचे उतरता। सामान्यतः तरंगें जब ऊपर चढ़कर फूटती हैं तब यह देखनेमें मजा आता है किन्तु उसमें इतना गांभीर्य नही रहता। ध्वनिकाव्यका रहस्य शब्दोंमें स्पष्ट करनेमें जैसे कम हो जाता है कुछ वैसा ही तरंगोंके फूटनेमे होता है। किन्तु जब तरंगें अंदर ही अंदर उछलकर समा जाती हैं तब उसका सूचन विविध, अनंत, अस्पष्ट रहता है। अंधेरा होते हुए भी जब हवा साफ होती है तब व्योम तथा सागरका मिलनवर्तुल ध्यान खीचे विना नही रहता। क्षितिज पर तरंगोंका तो सवाल ही नहीं उठता। समुद्रकी कालिमाकी तुलनामें अंधेरा आकाश भी उज्ज्वल दिखता है। वेदकालके ऋषियोंको जिस तरह जीवन-रहस्य दिखाई दिया होगा वैसा ही क्षितिज रातको नजर आता है। ऋषिओंको अनंतकालके आध्यात्मिक तत्व अनंत आकाशमें चमकनेवाले तारोंकी तरह स्पष्ट दिखाई देते है, जबकि पार्थिव जीवनका भविष्यकाल उनकी आर्ष दृष्टिके समक्ष भी सागरके वारिराशिके जैसा अज्ञान, अव्यक्त ही बना रहता है।

ध्यान व कल्पनाकी ऐसी क्रीड़ा चल रही थी इतनेमें

'आंधारेर गाये-गाये परश तव
सारां रात फोटाक तारा नव नव।'

यह शोभा कम होने लगी और अरुणोदयने पूर्व दिशा बता दी। उस मुर्ख काव्य को देखनेके लिए जीवतरामको जगाया। वे उठ पायें उसके पहले ही गिरधारी उठ गया और बोला, "मुझे बताइये, क्या है, मुझे बताइये।" उसको मैं क्या दिखाता ? वह कोई पक्षी या जहाज नहीं था कि उंगली बढ़ाकर दिखाऊं। मैंने उसे कहा, 'वह जो लाल आकाश है उसे देखते रहो, अभी कुछ ही देरमें वहां सूरज उगेगा।'

अब समुद्रने अपना रंग बदला। पूर्वकी ओर मानो लाल-जामुनी रंगका प्रपात चला आता था। और आश्चर्य तो यह कि पश्चिमकी ओर भी उसी रंगका प्रतिबिंब पड़ रहा था। मात्र पश्चिमके समुद्रने अधिक तो आकाशने ही उस रंगको अपना लिया था। पूर्वकी प्रसन्नता बढ़ने लगी। लाल रंगमें चमक आने लगी। कुमकुमका सिंदूर बना, और सिंदूरमेंसे सुवर्ण प्रगटने लगा। पश्चिम किनारेके समुद्रमें होने वाली सूर्यास्तकी शोभा हम अनेक बार देख पाते हैं, किन्तु सागरमंथनसेसे लक्ष्मी निकल रही हो ऐसी उदयमान उषाकी वर्धमान शोभा देखनेका आनंद कुछ और ही होता है। आकाश जैसे-जैसे हंसने लगा वैसे-वैसे समुद्रके मुख पर आनद व लज्जा की लाली भी बढ़ने लगी। मानों दो समसमान युवकोंके बीच विनोद चल रहा हो।

एक तरफ इस प्रभातका विकास देखनेको मन ललचाता था, तब दूसरी ओर जहाजके डोलनेसे सिरमे चक्कर आने लगे थे। एक घड़ीके लिए ये मौजें रुक

जायें और जहाज स्थिर हो जाये तो क्या ही अच्छा हो, ऐसा मनमें आया। लेकिन समुद्रकी लहरें और मनुष्यके मनोरथ कभी भी रुकते हैं क्या? ऊबकर आरामकुरसी पर लुढकनेका मैं सोच ही रहा था, इतनेमें बाल सूर्यका गुंबज पानीमें नहाकर बाहर निकला। उगते सूर्यके बिब पर एक विशिष्ट तरलता होती है; मानो सूर्य ठंडे पानीमेंसे कांपते-कांपते बाहर निकल रहा है। और पानीमें जो प्रकाश बिखरा हुआ है जान पड़ता है वह सूर्यका अंगराग ही धुला हुआ है। सूर्यका बिब पूरा-पूरा बाहर निकलते ही मैंने अपनी प्रार्थना कर ली :—

ध्येय: सदा सवितृ-मण्डल-मध्यवर्ती
नारायण: सरसिजासन-संनिविष्ट: ।
केयूरवान् मकर-कुण्डलवान् किरीटी
हारी हिरण्मय-वपुर् धृत-शंख-चक्र: ।।

जीवतरामको ऐसा गांभीर्य कभी सहन नहीं होता। वे एकदम बोल उठे : 'बस करो, कैसी वानर भाषा बोल रहे हो?' मैंने कहा, 'आपकी भूल है। यह आपकी भाषा नहीं, संस्कृत है।' विनोदमें भक्तिकी उत्कट भावना तहस-नहस हो गयी और जहाजमें प्रतिदिन जिस भयंकर कसौटीमेंसे गुजरना पड़ता है उसकी चिंता हम करने लगे। शौच जानेके लिए डेक परसे नीचे जाना पड़ता है। यूं भी नीचेकी मंजिलमें हमेशा बदबू रहती है; लेकिन सुबह तो वह मंजिल नरककी हरीफ बनी रहती है। हवा गंदी और खारी। जगह-जगह पर लोगोंने उल्टियां की हुई थीं। इन्जिनकी भापमेंसे छूटनेवाली एक किस्मकी गंध और खलासियोंकी रसोईमेंसे उसी समय शुरू हुई प्याज तथा मछलीकी बदबू, इन सबके मिश्रणमेंसे होकर शौचकूपमें प्रवेश करना उसमें तो समुद्रमें कूद पड़ना मुझे कम त्रासदायक लगता। हाथकी बात होती तो हमने तीन दिन शौच जाना ही टाला होता। लेकिन—जाकर आये तो सही, किन्तु हम तीनोंके चेहरे ऐसे हो गये थे कि एक-दूसरेकी ओर देखनेकी भी हिम्मत नही होती थी। कोई टोली लड़ाई करने निकले और बुरी तरह मार खाकर वापस आ जाये और जैसे अपने सर्वसाधारण अनुभवका उल्लेख तक कोई न करे, वैसे हमने उस दिव्य कसौटीका नाम भी न लिया।

मैंने गिरधारीसे कहा, 'चलो, कुछ खा लो'। वह बोला, 'मुझे भूख नही है', जीवतरामने भी खानेसे इन्कार कर दिया। मैंने कहा, 'भले लोग, धूप बढेगी तब चक्कर आने लगेंगे। फिर खानेकी आपकी क्या ताकत रहेगी? अभी जरा ठंडा समय है। आराममें खा लीजिये। धूपके पहले ही सब हजम हो जायेगा'। गिरधारीने पूछा, 'बिना व्यायाम किये वह यूं ही हजम हो जायेगा?' मैंने जवाब दिया, 'हम सबकी ओरसे यह जहाज व्यायाम कर रहा है। अत: तुम्हें कोई चिंता नहीं करनी है।' गिरधारी मेरी बात नही समझा। वह तो मेरी ओर देखता ही रहा। हम तीनोंने पेटभर खाया। तीनोंमें जीवतराम होशियार। उन्होंने सिर्फ रसभरे फल ही

खाये। मैंने अपनी रुचिके अनुसार खाकर ऊपरसे एक पूरा नींबू चूस लिया। बेचारे गिरधारीको उत्तम केलोंका स्वाद लगा। उसने केले ही पेटभर खा लिये। एकदो घंटोंके अंदर ही केले खानेके कारण वह ऐसा पछताया कि सारी यात्रामें उसने दुबारा केलेका नाम ही न लिया।

दोपहर हुई। मैं अपनी कमजोरी जानता था। बिस्तर बिछाकर मैंने हाथ पैर फैला दिये। हाथमें एक दूसरा नींबू रखा और आखें मूदकर सोता रहा। मद्रास तरफका कोई जहाज कलकत्ता जा रहा होगा। उसे दूरसे देखकर लोग कहने लगे, 'वह जहाज जा रहा है, देखो।' दोनों जहाजोंने भोओ··· करके एक-दूसरेको सलामी दी। लेकिन मैंने आंखें बंद रखकर कल्पना द्वारा ही वह दृश्य देख लिया। गिरधारीसे रहा न गया। चट्से वह उठ खड़ा हुआ। खड़े होते ही तुरंत उसके केलोंने पेटमें रहनेसे इनकार किया। वह घबराया, लेटे-लेटे ही मैंने उसको पानी दिया। लेटे ही लेटे अदरखका एक टुकड़ा दिया। कुछ शान्त होनेके बाद वह आकर मेरे बिस्तर पर लेट गया। किन्तु एक बार बिलोया हुआ पेट एकदम थोड़े ही शान्त होगा।

हम तूतक पर लेटे थे वहांसे एक बाजूकी केबिनमें दो देशी ख्रिस्ती बैठे थे। उनमेंसे एकको उल्टियां होने लगी। वह जोर-जोरसे उल्टी करता था। वैसे वैसे उसका मित्र उसकी मसखरी करने लगा 'वन हिगिन्स उल्टी करोइंग' आदि-आदि उसके उद्‌गार पहलेकी उल्टीसे भी ज्यादा जोरसे चल रहे थे। गिरधारी जरासा हंसने लगता और फिर पछताता।

जीवतरामको कुछ भी नहीं हुआ। वह जहाजमें चारों तरफ घूमते रहे, और सीधा मुह रखकर लोगोंकी मसखरी करते रहे। एक हिन्दी बोलनेवाला व्यापारी हमारे पास ही बैठा था। उसके साथ उसका कुत्ता था। जीवतराम उसे पूछने लगे, 'अजी आपके कुत्तेकी कुछ तारीफ सुनाइये। देखनेमें तो जरा भी खूब-सूरत नहीं है उसकी कुछ खूबी होनी चाहिये। कुछ सुनाइये तो सही।' वहांसे उठ कर और जगह गये वहां एक सिंधी व्यापारी मिला। पहले तो स्वयं सिंधी न होनेका दिखावा करके सिंधके बारेमें बातें पूछने लगे। वह आदमी खुला, तब जीवतरामने शुद्ध सिंधीमें बाते शुरू की। वह भाईबंद बोला 'आज जहाज कुछ ज्यादा ही डोल रहा है। थोड़ी शराब पी हो तो उल्टी होनेका डर नहीं रहेगा। मैं हमेशा यही इलाज करता हूं। आप लेंगे तो थोड़ी दूंगा।' जीवतरामने शराब लेनेसे तो इन्कार किया, लेकिन बोले 'मेरे साथ मेरा एक मित्र है, उससे आप पूछ लीजिये। वह लेगा शायद। बेचारा भाईबंद जीवतरामके साथ मेरे पास आया। मुझे देखते ही उसे यकीन हो गया कि इस ब्राह्मणसे पूछना उसका निरा अपमान होगा। बेचारा शरमा गया और दो-चार विनयकी बातें करके वापस चला गया। फिर जीवतरामने अपने पराक्रमकी सारी बातें मुझे बता दी।

इस तरह शाम हुई। शामको मेरी जानमें जान आयी। हमने फिर थोडा-सा खाया, किन्तु किसीको वह रास न आया। शामकी शोभा मैंने बैठे-बैठे ही निहारी। लोग कहने लगे कि 'अब हम कालेपानीमें आए हैं' 'अभी अंदमान दिखेगा।' किसीने कहा, 'ना, हमारा जहाज बहुत दूर है। वह टापू नहीं दिखेगा।'

संध्याकी शोभा कुछ अलग ही थी। सुबहके रंग और शामके रंग एकसे नहीं होते। उदय और अस्त एक-से हों ही कैसे? उदय है बाल्यकाल, जब कि अस्त तो विजयी वीरके निधन जैसा होता है। उषाके मुख पर मुग्ध हास्य होता है, जब कि संध्याकी मुखमुद्रा पर क्षणजीवी उल्लास और विलास होता है। समुद्रके रंग फिरसे पलटने लगे। सूर्यास्त हुआ और तारोंका पारिजात फूलने लगा!

जहाजके बिजलीके सौम्य दीये तो कबसे चमकने लगे थे। छुटपनसे ही मुझे ये दीपक बहुत ही अच्छे लगते हैं। इतने सौम्य कि आसपासका सब दिखता है, लेकिन ये दीये आंखोंको चकाचौंध नहीं कर देते। अंधेरेको मारकर अपना साम्राज्य चलानेकी महत्त्वाकांक्षा इनमें नहीं होती। अंधेरेके साथ मधुर समझौता करके, 'तुम भी रहो और हम भी रहें' ऐसा जीवनतत्त्व इन दीयोंने पसंद किया होता है। शहरके बिजलीके दीपक नये-नये अध्यापककी तरह अपना पूरा प्रकाश उंडेल देना चाहते हैं। जहाजके दीये योगियोंकी तरह आत्मन्येव च संतुष्टः होते हैं।

बिस्तर पर लेटे-लेटे हम इन दीपकोंकी बात करते थे, इतनेमें हमारी आगबोटने भोओं···की ध्वनि शुरू कर दी। मैंने माना कि उसको दूसरी भैंस दिखी है। इतनेमें दूरसे जवाबी ध्वनि सुनायी दी। मैं उठ बैठा। रातके समुद्रमें जहाज देखना मुझे बहुत अच्छा लगता है। बिजलीके दीयोंका एक हार, और ऊंचे मस्तूल पर दो बड़े लाल दीये भूतकी तरह जब अंधेरेमें दौड़ते हैं तब लगता है मानों हमने परियोंके देशमें प्रवेश किया है। जहाजका कोण जैसे-जैसे बदलता है वैसे-वैसे सामनेका दृश्य नयी-नयी तरहसे विकसित होता रहता है; और जहाज जब दूर जाकर अलोप होनेकी तैयारीमें होता है तब तो नींदके कारण चलनेवाली स्मृति-विस्मृतिके बीचकी आंखमिचौली जैसा ही वह दृश्य मालूम होता है।

आकाशके तारे देखते-देखते मैं सो गया। तीसरे दिन सुबह बारिश आने लगी। जहाजके एक खिस्ती कारकूनने आकर हम सबसे नीचे जानेको कहा। लोग इसका कारण जल्दीमें समझ न सके। उसने कहा, 'एक बड़ा बवंडर अग्नि-कोणमें इस तरफ आते दिखायी दिया है।' इसको साइक्लोन कहते है। साइक्लोन में जहाज फंस जाये तो बड़ी आफत ही हो जाती है। बहुतसे जहाज साइक्लोनमें डूब चुके हैं। उस कारकूनने कहा कि 'आप तूतक (डेक) पर बैठे रहेंगे तो शायद बवंडरमें उड़ जायेंगे' डरके मारे लोग एकके बाद एक नीचेकी मंजिलमें भर गये हैं। हमने नीचे जानेसे साफ इन्कार किया, उसने हमें समझानेका यत्न किया।

हमने कहा 'बवंडर आयेगा तो हम इन बड़े-बड़े रस्सोंको पकड़कर पड़े रहेंगे'।

"लेकिन आप वर्षासे भीग जायेंगे।"

"भीग जायेंगे तो सूख भी जायेंगे।"

हमारी ज़िद देखकर कारकून चला गया। बारिश आयी, अच्छी तरह आयी। बवंडरकी परिधि तीन-चार मीलकी होती है। सद्भाग्यसे बवंडर हमारे जहाज तक नही आया। धूमकेतुकी तरह बवंडरके चारों तरफ पूंछें होती हैं। ऐसी एक पूंछका सपाटा हमारे जहाजको कुछ लगा। हम अच्छी तरह भीग गये तब हम ऊपरवाली केबिनमें जाकर बैठे। वह पूछने आयेगा तब देख लेंगे, ऐसा विचार किया। कहते हैं कि भूतका नाम लेते ही वह हाजिर होता है। उस न्यायसे कार-कून हाजिर तो हुआ। मैंने सोचा कि हम कह दें, "केबिनका किराया देंगे फिर क्या तकरार है? लेकिन केबिनका किराया कितना होगा, यह कौन जानता था? मैं असमंजसमें पड़ा। ऐसे प्रसंग पर जीवतरामको जरूर कुछ सूझेगा। उन्होंने उस कारकूनसे हंसती आंखोंसे कहा, "अभी यदि तुम हमें हैरान नहीं करोगे तो हम तुम्हें खुश करेंगे। वह लोभी वहांसे गया। लेकिन दो-चार घंटोंमें हमारा दर्शन लेने आता रहा। साफ-साफ तो वो मांग नहीं सकता था और जीवतराम तो उसे मीठी-मीठी बातें सुनाकर भगा देते थे और जब स्पष्ट मांग करने पर वह आया तब जीवतराम बोले "अभी रंगून कहां आया है? इस केबिनका पूरा-पूरा लाभ हमें दोगे या नहीं?"

रंगूनका बन्दरगाह आया। जीवतराम कहने लगे, 'बन्दरगाह आते ही जहाजके सब अमलदारों तथा सब कारकूनोंको बहुत काम होता है। अतः वह कारकून हमें ही पकड़कर बैठा नहीं रह सकेगा'। मैंने कहा, 'लेकिन तुमने उसे देने-का कबूल किया है इसलिए कुछ देना ही पड़ेगा'। जीवतराम एकदम गंभीर होकर बोले, 'रिश्वत देनेका गलत काम मुझसे नहीं होगा।' मैं हंस पड़ा। उनसे कहा, 'तब, हे धर्मावतार आपने उसे आशा क्यों दिखाई?' जीवतराम बोले 'आदमी उसी के लायक है।' बन्दरगाह पर हमपर बराबर नजर रखकर वह हमारे पास आ गया। मुझे लगा कि अब झकझक शुरू होगी। इस कल्पनासे ही मैं बेचैन हो गया। जीवतरामको ऐसे प्रसंगोंमें दुगुना रस आता है। उन्होंने एक भले कुलीको देखकर हमारा सामान सबसे पहले बन्दरगाह पर भेज दिया। मैंने कहा, 'वह कुली सामान लेकर भाग जायेगा तो?' जीवतराम बोले, 'गरीब लोगोंकी इतनी हिम्मत नहीं होती। सामान जाये तो भले जाये लेकिन इसको तो मैं एक पाई भी नहीं दूंगा।'

हम डेककी ओर चले। वह गरम होकर बड़बड़ाने लगा। अब तकके 'Gentlemen' और मीठे जीवतराम एकदम बदल गये। उस आदमीके योग्य भाषामें जीवतरामने उसको छोटा-सा व्याख्यान सुनाया। जब वह रास्ता रोकने

आया तब जीवतराम बोले 'हट यहांसे, रिश्वतखाऊ कुत्ते !' उसको धक्का देकर जीवतराम हमारे पीछे-पीछे आ गये। उस कारकूनने हमारे देखते ही कलकत्तेसे रंगून तक इतने सारे लोगोंके पाससे पैसे निकलवाये थे कि जीवतरामका यह रुख मुझे अयोग्य नही लगा ! यद्यपि ऐसा करनेकी मेरी अपनी हिम्मत नहीं होती।

२. रंगून

रबरके रास्तोंका वर्णन पढ़कर हमें जितना आश्चर्य होता है उतना आश्चर्य रबरके रास्ते देखकर मुझे नही हुआ। बम्बईमें कोलतारके रास्ते जिसने देखे हैं उसको रबरके रास्तेका आश्चर्य नही होगा।

नयापन भले न लगे, लेकिन ऐसे रास्तोंका लाभ तो स्पष्ट है। रास्तों पर धूल नहीं उड़ेगी, कीचड़ नहीं होगा, और गाड़ीघोड़े कितने ही दौड़ते हों तो भी आवाजसे कान नहीं फूटेंगे। इतनी सहूलियतके खातिर शहरका मनुष्य चाहे सो देनेको तैयार हो जायेगा।

रंगूनमें रबड़के रास्ते हैं। इतना सुनकर हमें क्यों आनन्द होता होगा? हम कुछ रंगूनमें रहते नही हैं। हमारे भाग्यमें तो गलियोंकी कीचड़ रौंदनेका ही लिखा है। हमें आनन्द होता है। उसका कारण इतना ही है, कि मनुष्य जातिको रास्तेकी एक तरहकी बड़ी मुश्किल दूर करनेका मार्ग सूझा। शक्ति बढ़े, दृष्टि फैले, कुशलताका विकास हो तो उसका आनन्द सबको होगा। लेकिन रंगूनके रास्ते देख मुझे आनन्द नही हुआ। कोई उत्साह नहीं आया। मनमें प्रथम विचार यह आया कि बम्बई जैसे महानगरमें रबरके रास्ते क्यों नही हैं और रंगूनमें क्यों हैं? सामनेसे आनेवाली रिक्शाने उसका जवाब दिया। रंगूनमें रिक्शाका प्रचार बहुत है। रिक्शा ट्रायसिकलके जैसी लेकिन दो बड़े पहियोंवाली और एक ही आदमी बैठ सके ऐसी गाड़ी होती है, और उसे घोड़ा, बैल या खच्चरके बदले मनुष्य खीचता है। रिक्शा खीचनेवाले द्विपाद ज्यादातर आन्ध्र देशके तेलुगू होते हैं। ट्रामके घोड़ोंकी तरह उनके सिर पर भी एक अजीब-सी टोपी होती है। इन रिक्शेवालोंने अन्दर-अन्दर स्पर्धा करके किराया इतना कम कर दिया है कि देह धारणके लिए उनको दिनभर रिक्शा खींचते दौड़ना पड़ता है। दौड़ने-दौड़ते शक्तिपात न हो इसलिए वे खूब शराब पीते हैं। और सुना है कि इन लोगोंकी आयु ऐसे जीवनसे बहुत छोटी हो जाती है। ऐसी रिक्शा देखकर किसका मन प्रसन्न होगा? रिक्शाओंकी सहूलियतके हेतु ही रबरके रास्ते किये होने चाहिए ऐसा अनुमान मैंने बांधा।

गिरधारी बोला, "एक बार हम रिक्शामें बैठें।" मुझे भी विचार तो आया

था कि एक ही बार इस रिक्शाका अनुभव लेना चाहिए लेकिन मन कैसे मानता ? मैंने गिरधारीसे कहा, "यह रिक्शा मनुष्य जातिके लिए लज्जारूप है । हम आरामसे बैठें और मनुष्य जैसा मनुष्य हमें खीचकर दौड़े यह अच्छा है क्या ?" कई बार तो रिक्शामें दो लोग भी बैठते हैं ।

हमें डॉ० महेताके घर जाना था । उनका बंगला बहुत दूर न होनेसे हम पैदल चले । रास्तेमें विचार आया कि मनुष्य मनुष्यसे सेवा ले । यह अधिक शर्मनाक है कि पशुओंके जैसी सेवा लें यह अधिक शर्मनाक है ? जुल्म ही करना हो तो अपनों पर करना ज्यादा अच्छा नही है क्या ? किसी दिन तो हृदय जाग्रत होकर पिघलेगा । मनुष्य अन्याय सहन करता हो तो फरियाद कर सकता है, प्रतिकार कर सकता है । पशु बेचारोंको तो जुबान भी नही है । दूसरी तरफसे सोचे तो मनुष्योंको पशु बनानेमें भावनाका खून अधिक होता है ऐसा लगा । अपनोंके प्रति यदि आदमी इतना निर्दय तथा बेशर्म बने तो परायोंके प्रति कहांसे दया करनेवाला है ? दयाका विकास ही अपनोंसे शुरू होकर परायों तक पहुंचनेमें है, कुछ भी हो, लेकिन इस रिक्शेकी [illegible] मुझे बिल्कुल अच्छी नहीं लगी । छुटपनसे ही पालकी उठानेवाले कहारोंका पसीना देखकर उनको हदसे ज्यादा हांफते देख मुझे बहुत बुरा लगता था । रिक्शा तो उसकी अवधि है ऐसा ही लगा । गोकर्ण जाते एक मनुष्यके कंधे पर मैं बैठा था । उस वक्त तो मैं बालक था । और इस तरह बैठना मुझे बुरा नहीं लगता ।

हम डॉ० महेताके घर पहुंच गये । पहले एक बार उनको बम्बईमें मिले थे इसलिए परिचय करानेकी जरूरत नहीं थी । हमारा स्वागत करके वे बगीचेमें जमीन खोदने चल दिये । खुराक उगानेमें रोज अपना कुछ सहयोग होना चाहिये । यह तत्त्व उन्होंने अपनाया हुआ था । इसलिए बगीचेमें वे नियमित काम करते थे । जीवतराम धीरेसे मुझे बोले, 'देखिये, ये बैरिस्टर, एम० डी० जर-जवाहरात बेचकर लखपति हुए हैं । घंटा आधा घंटा बगीचेमे उनके साथ काम करके हम सब श्रमजीवी होनेका दावा करेंगे ।'

उस दिन तो हम थके हुए थे, अतः हमने आराम किया । गिरधारीने कहा "यह सारा घर हिलता क्यों है ?" मैंने उसे समझाया कि, 'घर नही डोल रहा है । लेकिन समुद्र और जहाज दोनों हमारे दिमागमें धुस गये हैं ।' दूसरे दिन हम भी बगीचेमें जाकर फावड़ा-कुदाली चलाने लगे । नहानेके लिए पानी सब अपने-आप ही खीचते थे । भोजनके समय वहां मैंने एक-एक बालिश्त ऊंची लकड़ीकी गोटियां देखीं ! भोजनके समय क्या खेल खेला जाता होगा । इसका ख्याल मुझे नहीं आया । फिर देख लिया कि हरेक आदमी पालथी मारकर जीमने बैठता है तब घुटनोंको उस गोटीका आधार देता है । मैंने मनमें कहा, "वाह रे सहूलियत ! भोजनयोग चलता हो तब आसनसे मत डोल । इस तत्त्वका पालन होना चाहिए सही !"

रंगूनमें देखने लायक तो बहुत है। सर्वप्रथम मैंने देखा कि रंगून ब्रह्मदेशमें होते हुए भी ब्रह्मी शहर नहीं है। गोरे, गुजराती, मुसलमान, चेट्टी, (मद्रासकी तरफके लिंगायत साहूकार) बंगाली, तथा सिंधियोंसे ही यह शहर बसा हुआ है। रंगूनमें ब्रह्मी लोग दिखते तो हैं लेकिन वे तो मानों 'यह शहर हमारा नहीं है, ऐसा कहनेके लिए ही आये हों ऐसे लगते हैं। गांधीजीने एक बार ब्रह्मी लोगोंसे कहा था कि "ब्रह्मदेश यह हिन्दुस्तानका हिस्सा नहीं है," तब मुझे यह अच्छा नहीं लगा था। हिन्दुस्तानके विस्तारमें ब्रह्मदेश भी समा जाये तो यह ईष्ट हैं ऐसी उस समयकी मेरी मान्यता थी। ब्रह्मदेशमें आनेके बाद मुझे यकीन हो गया कि मनुष्य-के तौर पर अथवा एशियावासीके तौर पर अथवा विशाल अर्थमें आर्यधर्मीके तौर पर भले ही हम भाई-भाई हों, लेकिन ब्रह्मी लोग कुछ हमारे जैसे नहीं हैं। उनकी भाषा हिन्दुस्तानकी भाषाओंसे बिल्कुल अलग है। उनका आहार अलग, उनका रहन-सहन अलग; उनकी संस्कृति अलग है। अरे, उनकी शरीर रचना भी हमसे बिलकुल अलग है। उनकी आंखें, उनका वर्ण, उनके गाल, उनका मुख और उनकी दाढ़ी अथवा दाढ़ीका अभाव सभी हममें अलग हैं। साम्राज्यके लोभसे ही हम ब्रह्म-देशको हिन्दुस्तानका हिस्सा कह सकते हैं। सच पूछें तो ब्रह्मदेश हिन्दुस्तानका अवयव नहीं लेकिन स्वतन्त्र पड़ोसी है। ब्रह्मी चेहरा ईश्वरने मानो हंसनेके लिए ही खास बनाया हो ऐसा लगता है। ब्रह्मी लोग हमसे कम दुखी होंगे ऐसा तो मान ही नहीं सकते। उन पर भी अंग्रेजोंका राज तो है ही किन्तु ब्रह्मी मनुष्य हमेशा खुश मिजाज दिखता है। पुरुषोंकी और स्त्रियोंकी पोशाक लगभग एक-सी होती है। नीचे एक लुंगी और ऊपर एक ब्लाऊज। दोनों रेशमके ही होते हैं। पुरुषोंके सिर पर रेशमका एक हाथ रूमाल लिपटा हुआ होता है। उस रूमालका उद्देश्य सिर ढंकनेका नहीं होता। वह सिर्फ विवेकके खातिर वहां होता है। मकईके भुट्टेके छिलकेके अन्दर तमाखूके पत्ते बांधकर तैयार की हुई चिरुटें पीनेका ब्रह्मी लोगोंको बड़ा शौक होता है। उनकी चिरुट भी छोटेसे भुट्टेकी तरह मोटी और गोल होती है। और ब्रह्मी लोगोंका मुख कुछ छोटा होनेसे दोनों होंठ चिरुटसे भर जाते है। चिरुट पीनेके शौकमें स्त्री-पुरुषका भेद नहीं दिखता।

हम बाजारकी ओर गये। वहां देखा कि ब्रह्मी दुकानोंमें तो उनकी स्त्रियां ही बैठी होती है। मैंने सुना कि स्त्रियोंमें पुरुषोंके जितना ही शिक्षाका प्रचार पहलेसे है। सम्भव है कि स्त्री शिक्षाके विषयमें दुनियाके तमाम देशोंसे ब्रह्मदेश अधिक आगे बढ़ा हुआ हो। सामान्य शिक्षामें भी शिक्षित लोगोंका वहांका प्रमाण देखते हिन्दुस्तानके साथ तुलना करनेको मन नहीं होता। हाथी और भेड़के बीच तुलना करने कौन बैठे? इसका सारा श्रेय ब्रह्मदेशके पुंगी लोगोंको है। समाज तो इन पुंगी सन्यासियोंको फ़क्त अन्नवस्त्र ही देता है। उसके बदलेमें पुंगी लोग पूरे देशको धार्मिक और व्यावहारिक शिक्षा मुफ्तमें देते हैं। ब्रह्मदेशमें मैंने पुंगी लोग बहुत देखे

हैं, लेकिन वे अपने यहाँके भिक्षुक ब्राह्मण जैसे स्वमान भूले हुए नहीं लगते थे। हमारे यहाँ भिक्षुक मांगने आये तब उनकी निर्लज्जता देखकर हमें ही शर्म आती है। सुबह उठकर पुंगी लोग जब मांगने निकलते हैं उस समयका दृश्य देखने लायक होता है। बुद्ध भगवानका संघ पिंडपातके लिए निकलता होगा तब ऐसा ही दिखता होगा, यह मनमें आये बिना नहीं रहता।

३. श्वेडेगॉन पॅगोड़ा

रंगूनमें देखने लायक क्या-क्या है यह हमने पहले ही पूछ लिया। बुद्ध भगवानके दांत पर बंधा हुआ स्तूप वहांकी पुरानी चीजोंमें रंगूनका मुख्य आकर्षण माना जाता है।

दूसरे या तीसरे दिन सुबहका खोदनेका व्यायाम पूरा करके हम 'स्थिरसुख' आसन पर भोजन करने बैठे, वहां एक तरहका कटहल जैसा गोल फल कोई ले आया। उसे दुरियान कहते हैं। दुरियानका स्वाद हमारे कटहलसे कुछ बेहतर होगा। लेकिन उसकी गंध हमें सहन नहीं होती। मैंने एक-दो पेशिया मुहमें डाली इतनेसे ही बस हो गया। उनको भी बड़ी मुश्किलसे नीचे उतार पाया। और लोग तो सब आरामसे उसे खा रहे थे। उस गंधकी नफरतको मारनेका प्रयास करना या दुरियान खानेसे इन्कार करना यही पसोपेश मनमें चली। अंतमें तय किया कि हम अनुभव लेने ही निकले है, और यह फल सड़ा हुआ तो है नहीं, अतः उसको पूरा करनेमें ही बहादुरी है। रंगूनमें जितने दिन रहा उतने दिन दुरियान पसंद करनेका प्रयत्न मुझे करना पड़ा। कभी मैं हार जाता, और कभी दुरियान।

हमारे पुराने मित्र अण्णा याने हरिहर शर्मा हमें श्वेडेगॉन पॅगोड़ा दिखाने ले गये। बौद्ध लोगोंकी श्रद्धाभक्तिसे भी नहीं। वैसे ही यूरोपीय लोगोंकी कोरी कुतूहल वृत्तिसे भी नहीं, किन्तु कुछ सद्भाव तथा आदरके साथ हम उस प्राचीन स्तूपको देखने निकले। यह स्तूप एक ऊंची पहाड़ी पर है। ऊपर चढ़नेके लिए सीढ़ियां बनायी हैं। लंबी-लंबी सीढ़ियोंसे किसी भी स्थानका गांभीर्य बढ़ता है।

थोड़ा विषयांतर करके ऐसी कई देखी हुई सीढ़ियोंका यहां श्राद्ध करनेको जी चाहता है। पूनाके पास पर्वती पर जानेकी सीढ़ियां राजवंशी किन्तु पवित्र लगती हैं। दक्षिण कर्नाटकमें कार्कलके पास गोमटेश्वरकी पहाड़ी पर चढ़नेकी सीढ़ियां गरीब यात्रियोंके जैसी लगती हैं। नागपुरके पासके रामटेककी सीढ़ियां एक तरफसे जुलूसके मार्ग जैसी दिखती है, तो दूसरी तरफकी सीढ़ी वीर्यवान ब्रह्मचारीके लिए ही बनायी गयी है ऐसा ख्याल आता है। शेत्रुंजो पर्वतकी सीढ़ीका तो कुछ ठिकाना ही नहीं है। वह तो हमारी ही है। गिरनारकी सीढ़ी पहाड़ी रास्ता है। अचलगढ़की

सीढ़ी भी वैसी ही है। काश्मीरमें शंकराचार्यकी पहाड़ीकी सीढ़ियां क्षण-क्षण ठहर-कर आसपासकी शोभा देखनेका आमंत्रण देती हैं जबकि मंडालेके पासकी पहाड़ीकी सीढ़ी तो व्यापारका प्राचीन मार्ग हो ऐसा ही ख्याल देती है लेकिन उसका बयान बादमें आना चाहिए।

सीढ़िया चढ़ते ब्रह्मी दुकानदार स्त्रियां हमें मोमबत्तियां खरीदनेका आग्रह करती थी। चंदन जैसे एक लकड़ीको पत्थर पर घिसकर उसका एक किस्मका लेप मुख पर लगाकर ये स्त्रियां अपने सौन्दर्यमें वृद्धि करती हैं। आर्य स्त्रियां हल्दी लगा कर सुवर्ण वर्ण दिखाती थी उसीका यह आधुनिक अनुकरण होगा।

हम ऊपर गये। वहां दूरसे ही मुख्य स्तूपके ऊंचे शिखरकी ओर हमारा ध्यान गया। उस शिखरका आकार चपाकी पुष्पकली जैसा है। आजकल हमारे घरमेंसे दीये निकल न गये होते तो मैं उस धातुगर्भको द्वीप ज्योतिकी ही उपमा देता। जंगलमें असंख्य बांसके अनेक जाले जगह-जगह लग जाते हैं। उसी तरह इस पहाड़ी पर छोटे-बड़े स्तूपोंकी भीड़ लिपटी हुई है। स्तूप बाधनेसे बौद्ध मनुष्यको अनहद पुण्य मिलता है, इसलिए मनुष्य अपनी शक्तिके अनुसार जहां-तहां स्तूप बाधे जाता है। शेत्रुंजोके जैन मंदिर, काशीके महादेव, गोवाके रोमन केथोलिक गिरजाघर तथा ब्रह्मदेशके स्तूप घासकी तरह यहां वहां उगते हैं। मुख्य धातुगर्भ (=दागोबा =पेगोडा)के आसपास उसके छोटे-बड़े बच्चे लिपटे हुए हैं। उस समय यदि आकाशमें काले बादल फैले होते तो गोवर्धन उठानेवाले श्रीकृष्ण और उसके बालगोपालकी ही छवि यहां दिखाई देती।

इसके आसपास बुद्ध भगवानकी बहुत-सी मूर्तियां जगह-जगह ध्यान कर रही हैं। जीवतराम बोले, 'काका, इनमें एक भी मूर्तिका चेहरा ब्रह्मी ढंगका नहीं है। सब मूर्तिया हिन्दुस्तानके लोगोंके जैसी दिखती हैं! क्या हिन्दुस्तानके कारी-गरोंको यहा लाकर ये सारी मूर्तियां यहां बनवाई होंगी?" मैंने कहा, ऐसा ही होना चाहिये। अथवा तो यहांके कारीगर हिन्दुस्तानसे चंद अच्छी मूर्तिया यहां लाये होंगे और फिर धार्मिक कौशल्यसे उन्हींकी प्रतिकृतियां यहां बनायी होंगी। धार्मिक कलाकी चौकसाई असाधारण होती है। हमारे यज्ञके पात्र अमुक लकड़ीके और अमुक ही आकारके होने जरूरी हैं। इस नियमके कारण वेदकालकी कलाके नमूने आज भी देखनेको मिलते है।

आसपास घूमते-फिरते जीवतरामकी कल्पना ही मुझे अधिक संभवनीय लगी; क्योंकि कई मंदिरोंके चौड़े (मोतियामें) तरह-तरहकी पानपत्ती तथा प्रसंग कुरेदे हुए थे उनमें भी छकड़े, बैल, छकड़ेमें बैठे हुए लोग, उनकी पगड़ियां, सभी भारतीय ढंग-का था। कई मंदिरोंकी छत भी हमारे यहां जैसी होती हैं वैसे ही नालीवाले लोहेकी चादर बिठाये हुए थे। लेकिन वे हमारे यहांके छप्परकी तरह दरिद्र नही दिखते

थे। छप्परके अनेक दिशाओंसे इतने तो टुकड़े किये हुए होते हैं कि लोहेकी चद्दरें भी मकानकी शोभा बढ़ाती ही हैं।

एक कोनेमें एक छप्परके नीचे बहुत सी शिलाएं खड़ी कर दी थीं, मानो सिपाहियोंकी तरह कवायतमें खड़ी हों। तलाश करते पता चला कि उन शिलाओं पर महत्त्वके धर्मग्रंथ कुरेदे हुए हैं। दूसरे कोनेपर एक मंदिरमें एक बड़ा घंटा टंगा हुआ था।

'ओ हो हो हो ! कितना बड़ा घंटा ! हम सब उसके अंदर समा जायेंगे', गिरधारीने आनंदके साथ उद्‌गार किया।

प्रदक्षिणा पूरी करके हम मुख्य शिखरकी शोभा फिरसे निहारने लगे। ब्रह्मी लोग पूजाके एक अंगके रूपमें सोनेके पतले वरक गोंदसे मूर्तियों पर चिपका देते हैं। भक्तिमें पागल भक्त ये वरक कहां चिपकायेंगे उसका कोई नियम नहीं होता। इसलिए कभी-कभी तो मूर्तियां होलीके उधममें फंसे हुए किसी गरीब देहातीके जैसी लगती हैं। पेगोड़ाके शिखर (अथवा स्तंभ) पर सोनेका पानी चढ़ाया हुआ है। इसलिए चाहे जहां न देखें, उसकी चमक ध्यान खीचे बिना नही रहती। उस स्तंभके ऊपर के छोर पर नीचेसे छोटीसी दिखनेवाली एक छत्री बिठायी होती है। अण्णाने कहा कि, 'वह छत्री रत्नजड़ित है। इतने लाख या करोड़ रुपयोंके रत्न उसमें जड़े गये हैं। वह रकम कितनी थी यह तो मैं भूल गया हूं। कल्पनासे यदि कोई रकम लिखूं तो उसमें अतिशयोक्ति लगेगी, फिर भी वह सच्ची रकमसे कम भी हो सकती है। अत: यह प्रयत्न छोड़ देना ही उचित है।

श्वेडेगॉन पेगोड़ा देखकर मुझे भूतकालका कुछ दर्शन हुआ। बौद्ध भिक्षु भदंत सोण तथा उत्तर जब सर्वप्रथम इस सुवर्णद्वीपमें आये तब यहांकी क्या दशा होगी? तथागतके दांतकी स्थापना यहां करते समय उनके मनमें धर्मविस्तारके क्या-क्या सपने आये होंगे? पिशाच जैसे माने जानेवाले यहांके मूल वतनियोंको इस नये धर्म-को स्वीकार करनेमें कितना समय लगा होगा? हिन्दुस्तानके धर्मोपदेशक, हिन्दुस्तान के राजपुत्र, वणिक पुत्र, तथा कारीगर जब यहां आये तब वे किस आशयसे प्रेरित हुए होंगे? नंदनवन जैसे इस सुंदर तथा समृद्ध देशको देखकर हॅनिबॉल या सिकंदर-के जैसी लोभी और पापी दृष्टि उन्होंने इस देश पर फैलायी होगी? या यहांके लोगोंका 'धर्म-विहीन जीवन' देख उनमें करूणा उत्पन्न हुई होगी? ब्रह्मदेशमें फैला हुआ बौद्ध-धर्म ही इस प्रश्नका उत्तर देनेके लिए पर्याप्त है।

व्यक्तिगत गायन और वृंदगायन, गृह-रचना तथा नगर-रचना, आख्यानक तथा महापुराण, एक दिन तथा पूरा ऋतुचक्र—ये सबके बीच जैसा फर्क है, वैसा ही फर्क कलाकृतियोंमें भी दिख पड़ता है। अमुक जगह एक ही मूर्ति, एक ही मंदिर, या एक ही गुफा होती है। जबकि कई जगह असंख्य मूर्तियोंका मानो दरबार अथवा व्यवस्थित सैन्य खड़ा किया होता है। मंदिरोंका जंगल चिपका हुआ होता है और

गुफाओंकी श्रेणियां कुरेदी हुई होती हैं। ऐसी सामुदायिक कलाकृतियोंमें भी दो प्रकार होते हैं। उसके जयपुर तथा बनारस ये दो छोर हैं। बनारसमें एक-एक प्रासाद तथा मंदिर सुंदरताकी मूर्ति होते हुए भी इन सबका समूह बेढंगासा है। उसमेंसे भी वैचित्र्यका रस हमें मिलता है, तथा भक्तिके कारण सभी प्रिय लगता है, यह बात अलग है। जयपुरकी नगररचना देखकर इतना तो समाधान होता है कि विचार करनेवाले सनाथ लोगोंने योजनापूर्वक यहां बस्ती बसायी है। जयपुरकी नगररचना सामाजिक है, जब कि बनारसकी समूहके भीड़की है। श्वेडे-गॉन पेगोड़ाकी कला ऐसी ही समूहशाही है। उस समयके लोगोंके मुग्ध तथा धर्म-प्रिय जीवनमें सहिष्णुताकी संस्कारी कला थी इसीलिए स्तूपोंका यह ढेर विशृंखल होते हुए भी विश्री नही लगता।

यहांसे वापिस आते एक वृक्षके नीचे देहाती ब्रह्मी लोगोंका एक नाच हमने देखा। स्वदेशमे नाच देखते खड़े रहनेमें हमको शर्म आती है, किन्तु अनजान प्रदेशमें कुतूहल वृत्ति प्रबल होनेसे यह सब यथायोग्य ही मालूम होता है। अध्ययन वृत्तिके नीचे बाकी सब भाव दब जाते हैं। आगे जाकर एक ब्रह्मी पुस्तकालय देखा। बिना किसीको पूछे हम अन्दर गये। एक पुंगीने हमें ताड़-पत्रकी कई पोथियां दिखायीं। ग्रंथ बहुत ही सम्भालकर रखे हुए थे। ताड़ पत्रपर कुरेदे हुए गोल-गोल लाल तथा सुनहरी अक्षर बहुत ही आकर्षक लगते थे। वे अक्षर थे तो सुन्दर, लेकिन हमारे लिए पुतले जैसे ही मूक थे। हमारे साथ वे बोलते ही नही थे। हमें देखकर शायद वे कहते होगे, ये बहरे लोग यहां क्यों आये हैं ? अंग्रेजी किताबे तो सर्वत्र एक सी होती हैं, किन्तु उनमें बाणभट्टकी कादम्बरीके अंग्रेजी भाषान्तरकी ओर मेरा खास ध्यान गया ! संस्कारी प्रौढ़ भाषाका वह जंगल, अंग्रेजीमें उतारना कितना कठिन है और उसमें मिलनेवाली सफलता कितनी आनन्ददायक होती है इसका प्रत्यक्ष अनुभव कॉलेजमें पढ़ते समय मुझे हुआ था।

दूसरे दिन हमें एक मद्रासी भाईके घर भोजनके लिए जाना था। उनका नाम तो भूल गया हूं, किन्तु उनका प्रेम तथा उनका स्वादिष्ट रसम भूला नही जाता। मनुष्य मानो श्रद्धाभक्तिकी मूर्ति। रामकृष्णपरमहंस तथा विवेकानन्दके वचनोंके प्रति उनकी वेदतुल्य भक्ति थी। मेरा भी इसी दिशाका अनुराग देखकर वे मुझे भाईकी तरह चाहने लगे। अण्णा मेरे साथ अचूक मराठीमें बोलते। स्वाभाविकतया मैं मराठीमें उत्तर देता। रामैयाको लगता कि मानों बहुत बड़ी जियाफतसे हम वंचित रह गये हैं। हरेक वाक्यके बाद पूछते थे, कि आपने क्या कहा ? तब फिर सारा संवाद अंग्रेजीमें व्यक्त करना पड़ता। अण्णा अपनी आदत छोड़ नही पाते, और रामैयाकी जिज्ञासा कम नही होती।

उसी रातको महाराष्ट्र क्लबकी ओरसे हमें आमंत्रण था। बहुत वर्षोंके बाद मराठी भाषा तथा महाराष्ट्री भोजनका आकंठ लाभ मिलने पर मेरी अन्तरात्मा

प्रसन्न हो गयी। लम्बे समय तक हमने बातें कीं।

आजकल महाराष्ट्री जहां जाते हैं वहां अपना एक क्लब अवश्य स्थापित करते हैं। औपचारिक गांभीर्य संभालनेका खूब प्रयत्न महाराष्ट्री करते हैं, किन्तु यह उनके स्वभावमें ही नही है। जरा-सा परिचय होते न होते ही उपचारका कवच गिर जाता है। और फिर दिल खोलकर मनकी बातें शुरू होती हैं। उपचार तथा Policy दोनोंकी हिमायत महाराष्ट्री लोग ही करते हैं! लेकिन दोनोंमेंसे एक भी वस्तु उनके खूनमें नही है।

रंगूनमें गुजराती तथा लिंगायत चेट्टी व्यापार करते हैं। चेट्टियोंकी साहूकारी जबरदस्त है। आंध्र देशके कोंगी लोग रिक्शा चलाते हैं और कुलीका काम करते हैं। बंगाली बड़े-बडे सरकारी पदों पर विराजे हुए हैं। वकील तथा डॉक्टरोंमें भी बंगाली है। महाराष्ट्री अधिकतर रेलवेमें काम करते हैं जबकि पंजाबी सिख सेना में दिखायी देते हैं। यह थी उस समयकी स्थिति। आज क्या है पता नहीं। मेरी स्मृतिके अनुसार चावलका व्यापार मुसलमानोंके हाथमें ज्यादा था। कई अंग्रेज तथा मुसलमान ब्रह्मी स्त्रियोंके साथ शादी करके ब्रह्मदेशमें ही बस गये हैं ऐसा मैंने सुना। चीनी तथा जापानी लोग भी कहीं-कही दिखते थे।

४. सरोविहार

अब देखनेका रहा रंगूनके पासका विख्यात सरोवर। यूरोपका आकार जैसा टेढ़ा-मेढ़ा है वैसा ही इस सरोवरका भी है। इसमें कितने ही अखात, अन्तरीप और संयोगभूमि होंगी। रंगून कोंकणके ही अक्षांश पर आया होनेसे तथा समुद्रके नजदीक होनेके कारण वहांकी वनश्री मुझे खुशनुमा मालूम हुई। जहां देखो वहां बड़े-बड़े वृक्ष। सृष्टिने मानों अपना सारा ही वैभव प्रगट करनेके लिए बाहर निकाला हो। वनश्री तथा जलदेवताका जब मिलन होता है तब लक्ष्मी वहां बिना आमंत्रण आ जाती है। हम शामके समय इस सरोवरके पास जा पहुंचे। बहुत देर तक सरोवरके किनारे-किनारे सैर की। प्रत्येक कोनेसे सरोवरकी शोभा अलग दिखती थी। कई रूपगर्वित वृक्ष सारा समय सरोवरके आईनेमे अपना दर्शन कर रहे थे। फिरते-फिरते हमारा धीरज खत्म हो गया। सरोवर तो नौका-विहारके लिए ही ईश्वरने बनाया हुआ है। हब्शी जॉनको बुलाकर उसकी नावमें जा बैठे, तथा बिना किसी उद्देश्यके अनेक दिशाओंमें घूमे। बीचमें एक टापू था, उसकी मुलाकात लिए बिना वापिस कैसे जा सकते थे? टापू पर एक सुन्दर आरामगृह बनाया था। उसकी सीढ़ियोंकी दोनों दीवारों पर सीमेन्टके बने हुए दो भयंकर अजगर लम्बे होकर पड़े थे। नावमें एक मोड़ लेने पर यकायक श्वेडेगोन पॅगोड़ा अपने ऊंचे शिखरसे दर्शन

देता था। आगरेके किलेमेंसे ताजमहल देखनेका जो मजा आता है वैसा मजा यहां मिल रहा था। वस्तुके नजदीक जाने पर उसका सौन्दर्य प्रगट होता है, लेकिन उसका काव्य तो दूरसे ही खिलता है। यह खूबी जाननेके कारण ही क्या चांद-सूर्य तथा नौलख तारे इतने दूर जाकर विचरते होंगे?

शाम हुई तब हमें ज़बरन लौटना पड़ा। शकुन्तलाकी तरह सरोवरने हमें दुबारा आनेका निमंत्रण तो दिया ही था। अतः दूसरे दिन सुबह स्नानका कार्यक्रम बनाकर हमारी एक बड़ी टोली निकली। वहां पहुंचकर साथवाले लोगोंने कहा कि, 'गोरोंकी बोटिंग क्लबके कारण इस सरोवरमें नहानेकी मनाही है।' धूप पड़ते ही जैसे कुमुद बंद हो जाता है वैसे ही हमारा उत्साह मंद हो गया। इतनी मेहनतके बाद रसपूर्ण सरोवरमें तैरनेके आनन्दसे वंचित होना किसको अच्छा लगेगा! किन्तु हमारे साथके भाई सत्याग्रही थोड़े ही थे। वे खुले आम कानूनका प्रतिकार करनेके बदले चुपचाप कानून तोड़ना अधिक पसन्द करनेवाले थे। उन्होंने सरोवर में कबसे एक एकान्त कोना ढूंढ रखा था जहां गोरोंकी नाव भी नहीं आती और दृष्टि भी नहीं पहुंचती। उस स्थान पर पहुंचकर मैंने देखा कि उसकी शोभा और जगहोंसे कुछ भी कम नहीं थी। एकांतमें चोरीसे स्नान करनेका लाभ लेनेमें कुछ और ही रस था। गिरधारीको तैरना नहीं आता था, उसका श्रीगणेश भी यहीं हुआ। पानीमें तैरते रहनेका अनुभव जब सर्वप्रथम मिलता है तब मनुष्यको जो आनन्द मिलता है उसे उपमा देनी हो तो अण्डेको फोड़कर बाहर निकले हुए पक्षीके ही आनन्दकी उपमा दे सकते हैं। धूप बहुत हो जाने पर भी गिरधारी पानीसे बाहर निकलनेका नाम भी नहीं लेता था और आधा घंटा रहने देनेके लिए वह अंग्रेजीमें बिनती करता और वह मैं न मानूं तब बंगालीमें विनती करता। मानों भाषा बदलनेसे विनतीमें ज्यादा ज़ोर आता हो। ययातिको भी जीवनका आनन्द छोड़ना पड़ा तो हमारे तैरनेके आनन्दका अंत हो उसमें आश्चर्य क्या? थके हुए किन्तु हल्के शरीरसे हम वापिस लौटे।

रास्तेमें अनन्नासका बगीचा था। दूर-दूर तक कंटीले अनन्नासके फव्वारे जमीनमेंसे उड़ते थे। अनन्नासका इतना बड़ा बगीचा कभी देखा नहीं था। अतः पेटमें भूख होते हुए भी तथा अनन्नासकी प्राप्तिकी तनिक भी आशा न होते हुए भी काफी समय तक हम वहां देखते खड़े रहे।



५. लेटाफाया

ब्रह्मदेश यानि उत्तरसे दक्षिण तक दौड़ते पहाड़ तथा नदियोंकी जोड़ियां। बंगाली उपसागरका पूर्वी छोर वह ब्रह्मदेशका पश्चिम किनारा। वहां प्रथम

कुलादन नदी आती है। फिर आते हैं आराकान योमाकी पर्वतमाला। उसके बाद सार्थनामा एरावती बहती है। एरावतीके रक्षणके लिए ही मानो खड़े हों ऐसे आराकान योमा तथा पेगू योमा ये दो पहाड़ दोनों तरफ दीवारोंके जैसे खड़े हैं। इसके बाद भी नदी, पहाड़; नदी, पहाड़ ऐसा चलता ही रहता है। इनमें सिट्टौंग तथा साल्विन दो नदियां महत्वकी है।

हमें सारा ब्रह्मदेश देखना था। इसलिए हमने पेगूयोमाकी उल्टी परिक्रमा करनेका तय किया। रंगूनसे रेलमें बैठकर मंडाले तक गये, और वहांसे स्टीमलांच में बैठ प्रोम तक वापिस आये। बाकीके रास्तेके लिए फिर रेलवेकी शरण लेनी पड़ी।

इस रास्ते पहला स्थान आया वह था पेगू। हमारे ही आग्रहसे एक ब्रह्मी गृहस्थके यहां हमारे रहनेकी व्यवस्था कर दी गयी थी। भोजन मात्र हमारा अलग था। पेगूमें खास देखने लायक तो बुद्ध भगवानकी सिंहशैय्या है। शहरके बाहर खंडहरोंके बीच यह भव्य मनोहर मूर्ति लेटी हुई है। इसको ही लेटाफाया (सोयी हुई मूर्ति) कहते हैं। लगभग साढ़े तीनसौ फुट लम्बे और आठ एक फट चौड़े बरा-मदे पर उतनी ही लम्बी भगवान बुद्धकी मूर्ति विराम करती है। आजकी सरकारने उसके ऊपर लोहेकी चद्दरोंका एक छत्र बनाया है। इतनी बड़ी मूर्ति दुनियामें और कोई होगी कि नहीं हमें मालूम नहीं है किन्तु उसकी विशालता ही उसकी विशेषता नहीं है। प्रचण्ड मूर्तियां वहुधा बेढंगी होती हैं। इस मूर्तिमें तो उसका अग सौष्ठव तथा मुखमुद्राका मार्दवयुक्त स्मित विशेष ध्यान खीचते हैं। मूर्तिके चरणके तलुवे छोटे बालकके पैरकी तरह कोमल तथा पाटल रंगके हैं।

दूरसे ही मूर्तिने अपनी मोहिनी हम पर बिखेर दी। हमारे पैर रुक गये। अति आनंद होने ही इसमें सहभागी होनेवाला कोई है या नहीं यह देखनेकी उत्सुकता स्वाभाविक पैदा होती है। मूर्तिसे दृष्टि हटाकर मैंने अपने साथियोंके मुख पर फिरायी। मैंने देखा कि उनके मुख पर भी उस मूर्तिके जैसा ही प्रसन्न स्मित फैला हुआ है। यह फिर एक नया आनंद। फिर हम नज़दीक गये। वहां मूर्तिके सिर-के नीचे एक गोल तकिया चमक रहा था, उसमें ज्यादा शोभा नहीं थी। किन्तु मूर्ति की गरदनके नीचेकी खाली जगहमे पक्षियोंने घोंसला बनाया था। उसका काव्य जरूर चित्तको हरनेवाला था। उस घोंसलेके कारण बुद्ध भगवानका विश्वव्यापी प्रेम तथा सत्त्वानुकम्पा विशेष रूपसे प्रगट होते थे। आज तो वह मूर्तिमात्र कुतूहल-का विषय होकर रही है। जिस समय इस प्रदेशमें बौद्ध धर्म प्रज्ज्वलित था उन दिनों न जाने कितने ही साधकोंने इस मूर्ति पर ध्यान धरकर समाधिका लाभ प्राप्त किया होगा। योगशास्त्र कहता है कि सिंहशैय्या वीर्यरक्षण तथा अल्पनिद्राके लिए विशेष अनुकूल है। आधी रात एक करवट पर तथा बाकीकी रात दूसरी करवट पर। मात्र गर्दन पर की तान सहन करनेकी शक्ति होनी चाहिए।

प्रत्येक मुसाफिर कभी-कभी, कवितामें व्याकरण ढूंढने जितना ही अरसिक बनता है। मूर्ति कितनी लम्बी-चौड़ी होगी उसका अन्दाज करनेके बाद हम सोचने लगे कि वह किस चीजकी बनायी होगी ? पत्थरकी या मिट्टीकी ? कुछ चर्चाके बाद हमने निर्णय किया कि पूरी मूर्ति ईंटोंकी बनी हुई है। और उस पर सफेद सीमेंट लगा दी गयी है। इससे तो उसके शिल्पीकी सृजनशक्तिके लिए अधिक आदर पैदा हुआ। अवयवोंमें प्रमाण, उसका आकार तथा मुख मुद्रा ये सब उसने किस तरह साधा होगा ? इसकी कल्पनामें हम डूब गये। अमेरिकामें स्वतंत्रता देवीकी ऊची मूर्ति कांसेकी बनायी हुई है, उसके अवयव भी प्रमाणबद्ध होनेकी ख्याति है। उसके शिल्पीने प्रथम एक छोटी सुन्दर मूर्ति बनायी और फिर उसके अवयवोंको उनके प्रमाणसे तीन गुना बढ़ाकर बड़ी मूर्ति तैयार की, ऐसा कहते है। लेटाफायाके शिल्पीने कैसा गणित किया होगा ?

हमारा नीरस गणित ज्यादा चला नहीं। सामनेकी मूर्तिकी शांति ही दुबारा हृदयमें व्याप्त हो गयी। वापिस जाते भी अनेक बार मुड़-मुडकर उस शांतिराजके दर्शन करनेको जी चाहता था।

घर आनेके बाद हमारे ब्रह्मी गृहपतिके साथ बातें हुईं। 'तड़ागत बुडा'के धम्मके वारेमें कई बातें कहीं। आजके ब्रह्मियोंकी धर्म विमुखताके बारेमें खेद प्रगट किया। मैंने उनसे कहा, 'त्रिपिटकका महाशास्त्र आपको जिम देशमेंसे मिला है। उम देशकी लिपिमें वह आज उपलब्ध नही है यह कितने दुखकी बात है ! आप लोग गोरोंकी रोमनलिपिमें पालीग्रंथ छपवानेमें मदद करते हैं। वही ग्रथ यदि आप देवनागरीमें छपवाएं तो बुद्ध भगवानके देशवासी उम प्राचीन अनुशासनमें फिरसे रस लेने लगेंगे।' उसने कहा, 'लेकिन यह काम आपका ही है। हमारे पाससे मदद नही मिलेगी, ऐमा नही। लेकिन हम उस कामको कर नहीं सकेंगे। आगे चलते उसने कहा, 'हिन्दुस्तानके प्रति हमें अमर्याद (अत्यधिक) आदर है। वह हमारी धर्मभूमि है। हर साल संख्यावद्ध ब्रह्मी लोग वहां यात्राके लिए जाते हैं। किन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि आपके देशमें आतिथ्य है ही नही।'

अपने देशके बारेमें ऐसी टीका मुननेको मैं तैयार नहीं था। मैं तो स्तब्ध हो गया। आतिथ्यधन भारतवर्षकी ऐसी टीका ! अपनी भावना दबाकर मैंने धीमे स्वर मे कहा, "अपना कथन जरा अधिक स्पष्ट करें तो ठीक होगा। हम तो मानते हैं कि आतिथ्य हमारे देशका खास गुण है और उसके लिए हमें कुछ गौरव भी है।"

हमारा गृहपति संस्कारी आदमी था। उसने जरा भी चिढ़े बिना, किन्तु दुःखित स्वरमे कहा, "हमारा अनुभव अलग है। आप लोगोंमें अन्दर-अन्दर आतिथ्य खूब होगा, उसकी मैं ना नहीं कहता किन्तु परदेशके लोगोंके प्रति आप बिलकुल ही उद्धत तो नही कहूंगा—किन्तु उदासीन होते हैं। आपके यहा पानी

मांगने जायें तो आप प्याला भी नहीं देंगे। रास्ते पर ही मनुष्यको बैठाकर अंजलिमें पानी पिलाएंगे उसको क्या नाम दिया जाये ?"

अब मैं समझ गया। छुआछूतकी, स्वच्छताकी तथा पवित्रताकी विचित्र कल्पनाके कारण पराये लोगोंको हम कितना दुःखी करते हैं उसका ख्याल हमें कहांसे आयेगा ? मेरे जूतेके नीचे किसीका अंगूठा कुचल जाये तो उसका दुःख मैं थोड़े ही अनुभव कर सकूंगा। घरके अंत्यजोंके प्रति हम कैसा व्यवहार रखते हैं उसका विचार ही काफी है। मुसलमान, पारसी, ख्रिस्ती हमारे साथ मिलते-जुलते नहीं। उसमें कुछ हद तक हम स्वयं जिम्मेवार हैं यह भूलना नहीं चाहिये।

विश्वबन्धुत्वका आर्य आदर्श दुनियाके समक्ष पेश करनेवाले बुद्ध भगवानके देशके लोग अन्तर्राष्ट्रीय शिष्टाचारका विकास कब करेंगे ?

६. बौद्ध पहाड़ी

पेगूसे मंडालेका अच्छा लंबा सफर है। रास्तेमें उद्यमी किसानोंको धानके खेतोंमें काम करते देख मुझे अपने छुटपनके दिन याद आये। मैं भी इसी तरह काम करता था। लेकिन वह शौककी खातिर। ये लोग अपनेको तथा जगत्को आजीविका दिलानेके लिए बारहों महीने कायाको कष्ट दे रहे थे। कहीं-कहीं दूर-दूर चमकता हुआ एकाध स्तूप दिख पड़ता। किसी भी देशमें वहांकी खेती और वहांके मन्दिर मुझे ज्यादा-से-ज्यादा काव्यमय तथा पवित्र मालूम हुए हैं। दोनोंसे मिलकर प्रजा-जीवन संपूर्ण होता है ऐसा कहनेमें जरा भी अतिशयोक्ति नहीं है। और ब्रह्मी मंदिर याने पाठशालाएं भी साथ होती ही हैं। अन्न, ज्ञान तथा समाधान इनमे मानवी जीवन कृतार्थ न बने तो उसे विकृत ही मानना चाहिए। रेलवेके सफरमें हम आंखें फाड़कर दूर तक देखें तो देखा हुआ कुछ भी ध्यानमें नहीं रहता। रेलवेका वेग मनुष्यको अच्छा भले ही लगता हो, किन्तु वह अनुकूल तो नहीं है।

मंडाले स्टेशन पर मेरा ध्यान स्टेशन परके स्टेशनके नामवाले सफेद तख्ते पर गया, क्योंकि वहां देवनागरी अक्षरोंमें मन्दले लिखा हुआ था। स्वदेशमें रोज काममें आनेवाले सिक्कों पर भी जो लिपि देखनेको नहीं मिलती वह परदेशके इस रेलवेके तख्ते पर देख आश्चर्य और आनन्द कैसे न होता ? हिन्दुस्तानके संख्याबद्ध लोग यहां आते रहते हैं इसीलिए रेलवेको देवनागरीमें नाम लिखना पड़ा होगा।

शहरमें हम एक गुजराती जौहरीके घर ठहरे थे। गृहपति बहुत स्नेहपूर्ण तथा विनयी सज्जन थे। हममें यात्रीसहज अधिराई (अधैर्य) थी। जो भी देखनेलायक हो वह सारा एक साथ हजम करें और आगे दौड़ें। मुसाफिरको होता है कि पृथ्वी चौबीस घंटोंमें पच्चीस हजार मील तो अपनी धुरीके आसपास दौड़ती है और

अंतरिक्षमें हर सेकेण्डमें तीस किलोमीटर दौड़ती है, तब हम पृथ्वी निवासी उसका कुछ तो अनुकरण करें। हमारे गृहपति सोचते थे कि अभी-अभी तो मेहमान पधारे हैं, उनकी कुछ खातिर (शुश्रूषा) करेंगे, बातें करेंगे; देखनेकी चीजें तो यहा पड़ी ही हैं, चाहे तब देख लेंगे; इतनी उतावली क्यों? हम शाकाहारी लोग वनस्पतिके संबंधके कारण अन्य लोगोंसे अधिक स्थावर हैं या नही वह कौन जानता है, किन्तु हमारी दुनिया दौड़ती ही नहीं है।

मंडालेमें देखनेलायक है वहांकी बौद्ध पहाड़ी तथा थीबा राजाका किला। प्रथम हम पहाड़ी देखने गये। पहाड़ीकी तलहटीमें ही सुन्दर मकान तथा मूर्तियां हैं। वे देखकर हम ऊपर चढ़े। पहाड़ी अच्छी ऊंची है। उसका विस्तार भी बड़ा है। बौद्ध साधुओंने पूरी पहाड़ीको अनेक ढंगसे सुशोभित किया है। थोड़ा चढ़ने पर एकाध मंडप नजर आता। फिर चढ़ें तब स्वर्ग तथा नरकके चित्र आते (शेत्रुजो पर भी ऐसे चित्र दीखते हैं) और ऊपर गये तब बुद्धकी या बोधिसत्त्वकी पवित्र मूर्ति हमारा मस्तक नीचे नवाती है। आधे रास्ते गये होंगे वहां तो बोधिसत्त्वकी एक अखंड दंडायमान ऊंची मूर्तिने हमारे मस्तक भी ऊंचे कर दिये। मूर्तिने अपना हाथ सीधा लंबा किया था, मानो दूर क्षितिजकी ओर हमें कुछ दिखा रही हो! कारीगरोंको ऐसी मूर्ति बनानेकी प्रेरणा किस तरह होती होगी? इस मूर्तिमें मैंने असाधारण व्यक्तित्व देखा। वह यदि अपना मौनव्रत तोड़े तो अभी मेघगिरिसे कुछ संदेशा सुनायेगी ऐसा प्रतीत होता था।

उससे भी ऊपर हम गये। वहां जगह-जगह बौद्धमठ थे। विद्यार्थी अध्ययन करते थे। पहाड़ीके आरोहणमें प्रतिपर्व रसावहम् ऐसा अनुभव होनेसे जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते गये वैसे-वैसे बिल्कुल शिखर तक पहुंचनेकी उत्कंठा बढ़ने लगी। उस उत्कंठाके कारण सबसे अच्छा देखनेको शिखर पर ही मिलनेवाला है। इस अपेक्षासे बीचके दृश्योंका हम पूरा मूल्यांकन भी कर नही पाते थे।

जैसे-जैसे हम ऊपर चले वैसे-वैसे पहाड़के चारों ओरका विस्तार स्पष्ट दीखने लगा। वहां भी छप्परवाले रास्ते उग्र अथवा हल्की गतिसे पहाड़ी चढ़ रहे थे। आखिर हम चोटी पर पहुंचे। वहा हमने क्या देखा? लाखके रंगीन डिब्बोंमें जैसे एकके अन्दर दूसरा, उसके पेटमें तीसरा, ऐसे डिब्बे होते हैं, और अंदर क्या है यह देखनेके इन्तजारमें हम खोलते चले जाते हैं। ऐसी उत्कंठासे हम ऊपर आये। उन डिब्बोंके पेटमें सबसे अंदरकी डिबिया इतनी छोटी होती है और इतनी तुच्छ होती है कि उसके अंदर कुछ रहनेका सवाल ही नही उठता। उसके जरा-से अवकाशमें फक्त निराशा ही समा सकती है। इस पहाड़ी पर भी ऐसा ही अनुभव हुआ। बिल्कुल चोटी पर खास देखने लायक कुछ भी नही मिला। दूर-दूर तकका दृश्य देखने योग्य ऊंचाई हमने प्राप्त की थी उतना ही लाभ। अनात्मवादी बौद्ध धर्मका ही मानों उसमें सूचन होता था। संस्कारोंका पृथक्करण करके एकदम छोर तक

जाओ तो वहां कुछ भी मिलनेवाला नहीं है। वहां तो शून्य ही प्राप्त होगा। लेकिन वह होता है ठोस शून्य, इसका ही दूसरा नाम है अनन्त !

समाधिके बाद व्युत्थान होता है वैसे हम पहाड़ी परसे नीचे उतरे। उतरते समय दूसरा रास्ता लिया। लगभग सूखे हुए पत्तोंकी शोभा चारों तरफ दिखती थी, अतः सर्वत्र वैराग्यका सूचन हो रहा था।

७. राजप्रासाद

मंडालेका किला लश्करी दृष्टिसे निकम्मा है। इतनी बड़ी पहाड़ी बाजूमें होते हुए भी यदि उस पर लश्करी कब्जा न हो तो उस किलेकी कीमत ही क्या है ? और किला बांधा भी है बिलकुल चौकोर ! बचाव करना हो तो भी अंदरकी सेना पूरा बचाव नहीं कर सकती। किलेके कोने पर ताजिये जैसे छोटे-छोटे गुंबज खड़े किये हैं, इसलिए किला बिलकुल अरसिक नहीं दिखता। युद्धकी तनिक भी कल्पना किए बिना और किलेको मात्र प्रतिष्ठा या शोभाकी ही चीज माननेवाले किसीने इस किलेको यहां बांधा है। अंदर हम ज्यादा नहीं घूमे। अंदरका मुख्य राजप्रासाद मात्र देख लिया।

छप्पर बांधनेकी कला तो ब्रह्मी लोगोंकी ही है। बंगालके ग्रामीण छप्परोंसे ये बिल्कुल उल्टे। हाथीकी पीठ पर वर्गाकार जाजम या चादर रखनेसे जैसा आकार बनता है वैसा आकार बंगाली झोंपड़ोंका होता है। जबकि ब्रह्मी छप्पर ढीले तंबूके कैनवस जैसे होते हैं। बरसातका पानी ऐसे छप्पर पर जैसे-जैसे ज्यादा गिरता है वैसे-वैसे अधिक जोरोंसे वह दूर फेंका जाता है। कई लोग अपनी मूछके सिरोंको ऊपर ऐंठते हैं उसी तरह ब्रह्मी छप्परके चारों कोने ऊपर चढ़े हुए होते हैं। 'आपने क्या समझ रखा है' हम भी तो हैं कुछ, ऐसा अभिमानपूर्वक कहते हों, ऐसे लगते हैं वे कोने—

छप्परोंमें जैसी खासियत है वैसे उनके घरकी जमीनमें भी अमुक विशेषता है। इस प्रदेशमें बारिश बहुत होती है। तथा लोगोंके असली घरोंमें बहुत बार वर्षा-ऋतुका जल-प्रलय (जल-थल एकाकार) होता होगा। इसलिए घरकी जमीन भूमिकी जमीनसे हमेशा काफी ऊंची रखी जाती है। हमारे यहां हम घरसे सटाकर एक चबूतरा-सा बांधते हैं। ब्रह्मी लोग बाहरकी जमीन तथा घरकी जमीनके बीच खुली जगह रहने देते हैं। बरसातका पानी आता है तब मकानके नीचेसे चला जाता है। खेतोंमें चौकसी करनेके लिए चार खंभोंपर अधर झोंपड़ी बांधते हैं उसके जैसा ही यहांका स्थापत्य होता है। सबके सब घर लकड़ीके या बांसकेहोते हैं। एक छोटेसे घरकी जमीन तो बांसके चिकने छिलकोंसे बनायी हुई चटायीकी ही थी। ऐसे घरों

में तो नीचेकी तरफ भी खिड़की रख सकते हैं।

राजप्रासादकी सुदरतासे अधिक उसकी सादगी ही मुझे अच्छी लगी। आगके विरुद्ध रक्षणके लिए कोरी मिट्टीकी खुली पेटियां, हर कमरेमें रखी हुई थी।

किसी भी समाजकी मनोरचना तथा अभिरुचिका सार जैसे उसके संगीतसे निकाला जा सकता है वैसे ही उसके रंगोंकी पसद द्वारा भी निकाल सकते हैं। बनारसी काममें अमुक तरहके रग ही काममें लिए जाते हैं। सिंधमें हालांकि मिट्टी का काम तथा लाखका काम अमुक तरहके रंगोंमें ही खिलता है। रंगोंकी मद्रासी अभिरुचि अलग, महाराष्ट्री अलग। मध्य एशियाके कालीन और इजिप्तके प्राचीन चित्रोंमें रंगका गांभीर्य विशेष रूपसे प्रगट होता है। ब्रह्मदेशके बेंतके बरतनके रंग तथा दीवारोंके रंगोंके बीच असाधारण मेल होता है। कपड़ोंके बारेमें उनकी अभिरुचि कुछ अलग है। इसलिए मकान तथा पोशाकके विरोधके कारण दोनों विशेष असरकारक होते हैं। चमक-दमकवाले रंग कुछ छिछलेपनके सूचक हैं। अतिगंभीर रंगके कारण सूतकी (मरणका) उदास सा वातावरण पैदा होता है। कुछ समय तो वह पसंद आता है, किन्तु ज्यादा दिन ऐसे रंगोंके बीच रहनेमे मन पर बुरा असर होता है। ब्रह्मी रग शान्त तथा संजीदा होते हुए भी उदास नही है। उसमे गर्भश्रीमंतपना अधिक है।

मेरे हृदयमें हिन्दुस्तानके किसी भी पवित्र तीर्थक्षेत्रके जितना ही मंडालेके किलेका महत्त्व था। जिस रत्नागिरिमें ब्रह्मदेशके थीबा राजा कैद किये गये थे उसी रत्नागिरिमें जन्मे हुए लोकमान्य तिलकको अंग्रेज सरकारने छः वर्ष तक थीबा राजाके किलेमें क़ैद रखा था। इसी भूमिपर 'गीतारहस्य' लिखा गया इस ख्यालसे यहांकी हवा भी 'कुरु कर्मैव तस्मात्त्वं पूर्वैः पूर्वतरं कृतम्' कहती हो ऐसा लग रहा था। हिन्दू जातिके एक अन्य कर्मयोगी वीरको भी अंग्रेज सरकारने यहां कुछ समय के लिए गाड़ा (दफनाया) था। लाजपतरायकी कारावासकी कहानी जिसको याद होगी उसको सरदार अजीतसिंह और लाला लाजपतराय यहां किस तरह रखे गये थे उसका स्मरण होगा। स्वराज मिलने तक न जाने कितने ऐसे तीर्थ स्थापित होंगे?

मंडालेमें और तो बहुत कुछ देखा होगा, किन्तु आज कुछ याद नही आता।

ब्रह्मदेशकी कारीगरी खूब सराही गयी है। वहांके बढ़ई और सुनार मशहूर हैं। हमने कुछ चांदीका काम देखा। ज्यादा देखनेका मौका नहीं मिला। एक जगह मैंने लिखा है कि ब्रह्मी लोग हीरेके शौकीन होते हैं। लेकिन हीरेको वे अंगूठीमें उलटा बिठाते हैं। हीरेकी चपटी बाजू अंदरकी तरफ रखते हैं तथा हीरेकी नोक बाहर लाते हैं। मानों किलेके दरवाजे परके बड़े-बड़े नुकीले कील। बर्मी बटन भी ऐसे ही होते हैं।

रास्तेमें एक बारात देखी। बरातियोंके कुरते भी अच्छी इस्त्री किये हुए राजप्रासादके छप्परकी तरह ऊपरको मुड़े हुए नोकदार छोरवाले। उसकी खूबी

विशेष थी· उस पोशाकके कारण मनुष्य भी असरकारक दीखते थे । मंडालेके आस-पासका दृश्य भी अच्छा है । यहांसे उत्तर जाते हुए उत्तर ब्रह्मदेश की जंगली शोभा शुरू होती है । उस तरफ मानिककी खानें हैं ऐसा हमने सुना ।

एक बार हमने सोचा कि जलमार्गसे हिन्दुस्तान वापस न जाकर छिंदवीन नदी के किनारे-किनारे ऊपर जाकर वहांसे मणिपुर चलें, तथा मणिपुरसे पूर्व बंगालमें होते हुए भी कलकत्ता पहुंचा जाये । रास्तेमें सदा रोता हुआ चेरापूजी भी देखनेको मिलेगा । हमेशाकी तरह हमें सूचना मिलती रही कि रास्ता खतरनाक है । उस पर हमने कोई ध्यान नही दिया । बारह-पंद्रह दिन बहुत आनंद मिलता लेकिन साथ में छोटा गिरधारी था । प्रवासका कष्ट सहन न कर सके तो बीमार होगा, और फिर आज सुधरी हुई दुनियासे इतनी दूर कोई मदद मिलनी भी दुर्लभ होगी, इस ख्यालमें हमने अपने उत्साहको रोका । महायुद्धके दिन होनेसे शंकाशील सरकार-की ओरसे भी कुछ परेशानी होनेकी संभावना थी ही ।

८. सुवर्ण देशकी माता

यात्रा करनेवालेको चाहिये कि यात्राके प्रदेशकी जितनी भी जानकारी प्राप्त हो सके वह पहले ही प्राप्त कर ले, नही तो जैसे गायके थन पर बैठकर भी दूध छोड़-कर खून ही चूसना पिस्सूके नसीबमें होता है वैसी स्थिति हो जायेगी । कहां बंबई प्रान्त और कहां उत्तर ब्रह्मदेश ! हम मंडाले तक गये । वहांसे अमरापुरा भी गये । फिर भी जानकारी न होनेसे वहांकी प्रचंड बौद्ध मूर्तियोंको देख न सके; यहां भी दो मद्रासी विद्यार्थी रेशमका बुनाई काम सीखते थे । उन्होने भी हमें कुछ नही कहा । अमरापुरा ऐरावतीके किनारे है । मैं स्नान करना चाहता था लेकिन उन विद्यार्थियोंको पसंद नही आया । आखिर धर्मशास्त्रको आगे करके मैंने कहा कि, "नदीका माहात्म्य मात्र दर्शनमे समाप्त नही होता । स्नान, पान तथा दान इन तीन के बिना नदी आशीर्वाद नही देती ।' फिर तो हम सब स्नान करने गये । नदीका प्रवाह गजगतिसे चलता है । पर बहुत चौड़ा है । और आसपासकी भूमि भी समतल होनेसे यहां नदी गंभीर दिखती है ।

इरावती या ऐरावती ? मैं मानता हूं कि नदीको इराघाससे इरावती नाम मिला होना चाहिये । नदीके किनारेकी इस पौष्टिक घासको खाकर मदमत्त बने हुए हाथीको ऐरावत कहते होंगे । अथवा इन्द्रके ऐरावत जैसी महाकाय तथा गजगतिसे चलनेवाली इस नदीको देखकर किसी बौद्ध भिक्षुने सोचा होगा, 'चलो इसे ही हम ऐरावती कहें ।'

किन्तु ऐतिहासिक कल्पनातरंग चलानेका काम एक जगह बैठे रहनेवालोंका

है, मुसाफिरको वह (पुसेगा नहीं) ठीक नहीं रहेगा।

ऐरावती यदि हिन्दुस्तानमें होती तो संस्कृत कवियोंने उसके बारेमें ऐरावती जितना ही लंबा चौड़ा काव्य प्रवाह बहाया होता। ब्रह्मदेशके कवियोंने ऐरावतीके विषयमें अनेक काव्य लिखे भी हों तो हम क्या जानें ? ब्रह्मी नहीं है हमारी जन्म-भाषा, शास्त्रभाषा या राजभाषा। पड़ोसकी भाषा सीखने जैसी प्रवृत्ति हम लोगों-में है ही कहां ? कोई अंग्रेज बर्मी भाषा सीखकर बर्मी कविता अंग्रेजीमें कर दे तो शायद हम उसे पढ़ेंगे सही।

कोई भी देश ऐरावती जैसी नदीके लिए मगरूर तथा कृतज्ञ हो सकता है। ब्रह्मदेशमें रंगूनसे उत्तरकी ओर ठेठ मंडाले तक हम ट्रेनमें गये थे। वहांसे नजदीक-से अमरापुरा होकर हमने ऐरावतीके प्रथम दर्शन किये।

ऐसी नदीके पृष्ठ पर नावमें बैठकर अथवा 'वाफर' (स्टीमलाँच)में बैठकर यात्रा करना यह जीवनकी एक बड़ी धन्यता ही है। समुद्रकी यात्रा अलग तथा नदी-की अलग ।

नदीमें तरंगें नही होतीं। दोनों तरफके किनारे हमारा साथ देते है। और हमें ऐसा नहीं लगता कि हम जीवन नाम धारण करनेवाले किन्तु जीवलेवा किसी महा-भूतके शिकजेमें फंस गये हैं। नदीका प्रवास तो पृथ्वीके गोलेके अंतरालमें चलने-वाले सनातन व्योमविहार जितना ही शान्त तथा आह्लादक होता है। आज उस ऐरावतीके प्रवासका स्मरण करता हूं तब द्रौपदी जैसी नर्मदाका चाणोद कर्नाली तरफका प्रवास, सीता समान तापीका हजीराके नजदीकके सागरसंगम तकका प्रवास, काशी तलवाहिनी भारतमाता गंगाका प्रवास, मथुरा-वृंदावनका कृष्णसखी कालिन्दीका प्रवास, काश्मीरके नंदनवनमें किया हुआ पार्वती वितस्ताका प्रवास, और वन श्रीके पीहररूप गोमंतक प्रदेशका पेचीदा जल प्रवास एक साथ याद आते हैं। उसमें भी जीभर जाय इतना लंबा प्रवास तो वितस्ता तथा ऐरावतीका ही था। सिन्धु, गंगा, ब्रह्मपुत्र तथा नर्मदाके साथ तुलना कर सकें ऐसी यह नदी है। ऐरावती का पट और प्रवाह देखते ही यह कोई महान साम्राज्य पर राज करनेवाली साम्राज्ञी तो नही होगी, ऐसा भाव मनमें उठता है। आराकान तथा पेगु योमा उसका रक्षण करते हैं सही, किन्तु ऐरावतीकी प्रतिष्ठा संभालनेके हेतु वे आदर-पूर्वक दूर-दूर खड़े हैं।

अमरापुरासे मंडाले वापस जाकर हम 'वाफर'में बैठे। हमारा जहाज चला। कामधेनुके वत्स जैसे शाम होते ही मांके पास भागे आते हैं वैसे आसपासके विस्तीर्ण प्रदेशके श्रमजीवी किसान ऐरावतीके किनारे जहाजके पास एकत्र होते हैं। हमारा जहाज एक बड़ा चलनेवाला, बाजार ही मानें। छोटा या बड़ा बंदरगाह आते ही जहाज लोगोंको आमंत्रण फूंक देता। बस, चीटियां अपनी बांबीमें से उमड पड़ें वैसे लोग भागकर आ जाते थे। खानेकी चीजें, कपड़े, बेंतके लाख चढ़ाये हुए बर्तन,

कारीगरीकी चीजें, तरह-तरहके पदार्थ जहाज पर फैलाते। जहाजमें भी कई व्यापारी अपना माल लेकर तैयार ही बैठे रहते। पक्षीकी कलबलाहटकी तरह लेन-देनका शोरगुल शुरूहो जाता। हमें भाषा समझमें आती तव ही शोरगुलसे ऊब जाते। यहां लोग चिढ़ें, लड़ें या चिल्लायें, हमारे लिए सब एक-सा, मानो एक बड़ा नाटक खेला जा रहा है। विनिमय पूरा होते जहाज चल पड़ता।

बच्चा जननेकी तैयारीमें हो ऐसी भैंस जैसा हमारा जहाज डोलते-डोलते चलता। जहाजके एक हलकट गोरे अमलदारके साथ हमारा कुछ बिगड़नेके कारण प्रवासका आरम्भ मीठे पानीमें भी खारा हो गया। किन्तु मंद-मंद पवनमें वह सब उड़ गया और हम भी कुदरतकी तरह प्रसन्न हो गए।

फिर एक बंदरगाह आया। यहां कुछ विशेष व्यापार चलता होगा। छोटी-बड़ी असंख्य नावोंका झुंड नदीके किनारे कीचड़में लोट रहा था। जानवरकी पीठ पर मक्खियां भिनभिनाती है। वैसे गांवके बच्चे इन नावोंके बीच कूदते और खेलते थे।

ब्रह्मी लोगाम गोदनेकी प्रथा बड़ी प्रिय है। उनकी केवड़ेके रंगकी चमड़ी पर लाल और हरी गोदी हुई आकृतियां शोभा भी देती थी। महाराष्ट्रके गावोमें ऐसी मान्यता है कि इस जन्ममें शरीर पर अलंकार गुदवायेंगे तो अगले जन्ममें सोनेके अलंकार मिलेंगे, और माथे पर बिंदी तथा चंद्र गुदवानेमे अखंड सौभाग्य मिलेगा। यहाके लोगोमें भी ऐसी कुछ मान्यता होनी चाहिए, क्योंकि बहुतसे ग्रामीण कटिसे घुटने तक पूरे शरीर पर तरह-तरहकी डिजाइनवाली लुंगी गुदवाते हैं। इसलिए कई पुरुष नदीमें निर्वस्त्र स्नान करते हुए भी नंगे नही लगते थे। जहाज ज्यादा ठहरनेवाला हो तब हम किनारे जाकर पासके गावमें घूम आते। ब्रह्मी घर तथा गलियोंकी हमारी आखें आदी हो गयी थी। उनकी भाषा हम नही समझते थे, लेकिन उन निर्व्याज ग्रामीणोंका जीवन हमे परिचित-सा ही लगता था। मुत्सद्दी तथा व्यापारी लोगोंके राग-द्वेष छोड़नेके बाद और धार्मिक या अधार्मिक लोगोंकी कल्पना सृष्टिको बाजू पर रखनेके बाद मनुष्य जाति सर्वत्र एक-सी ही है। मैं तो मानता हूं कि दुनियाभरके गांव और वहांके लोग एकसे ही होने चाहिये।

प्रवाहके साथ मानों ताल धरते हों, वैसे स्तूप तथा मंदिर बीच-बीचमें आते। ऊची पहाड़ियां तथा शिखर मनुष्य जातिको हमेशा प्रिय हैं ही। उसमें भी नाईल नदी जैसी ऐरावती जब चारों दिशामें अपनी कृपाका उत्पात हर साल फैलाती है। तब तो ऊंचे-ऊंचे स्थान ही मनुष्यके आश्रय स्थान बन जाते हैं। उसके प्रति अपनी कृतज्ञता मंदिर बांधकर यदि मनुष्य प्रगट न करें तो ‹. › किस तरह व्यक्त हो सकती है, कुदरतने हमें सिखाया है कि हरे पत्तोंमें पीले परिपक्व फल अपनी पूरी खुमारी दिखा सकते हैं। इस पाठका लाभ लेकर लोगोंने वृक्षोंके बीच मंदिर बांधकर उस-पर आकाशके आनंत्य बतानेवाली सोनेकी उंगलियां ऊंची कर रखी हैं। कुदरती

शोभाको मनुष्य बढ़ा नहीं सकता। ऐसे माननेवालोंको ये शिखर एक बार देखने चाहिये।

दोपहरका समय था। अंग्रेजी जाननेवाले एक ब्रह्मी कॉलेजियनके साथ हम बातें कर रहे थे। इतनेमें एक नीरव आवाज सुनाई दी। छिंदवीन नदी अपना कर-भार लेकर ऐरावतीसे मिलने आई थी। क्या था इन दोनोंका प्रेम-संगम ! रामदास और तुकाराम एक-दूसरेसे मिले हों अथवा कवि भवभूति अपना 'उत्तर रामचरित' शतरंज खेलनेवाले कालिदासको सुनाते हों ऐसा वह दृश्य था।

कल्पनामें तो छिंदवीनके अज्ञात प्रदेशमें शान राज्यों तक मैं हो भी आया। हाथमें धनुषबाण अथवा कुल्हाड़ी लेकर फिरनेवाले निश्चित और निर्भय ऐसे बहुतसे वनवासी मुझे वहां मिले। शकमंद होने पर जान लेनेवाले और विश्वास बैठने पर जान देनेवाले उन कुदरतके बालकोंका दर्शन 'मुधार'की कीचड़को धो डालनेवाले मंगल स्नानके जैसा था।

जहाज परका पक्षी चाहे उतना उड़ेगा फिर भी अंतमें तो जहाज पर ही वापस आता है वैसे कल्पना भी जंगलकी सैर करके वापस जहाज पर आ गयी। क्योंकि हम पकोकु बंदरगाह पर पहुंच गये थे।

पकोकुके पासकी कीचड़वाली नदीमें नहाकर तथा ब्रह्मी आतिथ्य स्वीकार करके हम फिरसे जहाज पर सवार हुए और मिट्टीके तेलके कुएं देखने येननजांव तक पहुंचे। यहां अमरीकी मजदूरोंका राज्य चलता है ऐसा कह सकते हैं। यहा एक तरफ ये मिट्टीके तेलके कुओंका आधुनिक क्षेत्र और दूसरी तरफ पहाड़ी पर आये हुए छोटे-से प्राचीन बौद्ध मंदिरका तीर्थ-क्षेत्र। दोनोंको देखकर बहुत-से विचार मनमें आये। मंदिरकी कारीगरीमें हाथीके मुखवाला एक पक्षी कुरेदा हुआ था। दूसरे भी ऐसे अनेक संकर यहां दिखाई दिये। पासवाले मठमें कई बौद्ध साधु लंबी आवाज तानकर संध्याकालकी प्रार्थना या ऐसी ही कुछ विधि कर रहे थे। ऐरावती को मानो कोई पक्षपात न हो इस तरह मिट्टीके तेलके कुएंके पम्पकी धांधली आवाज भी अपने हृदय पर वहन करती है और अनिच्चा वत संखारा उप्पादव्यय धम्मिणोका श्रान्त अथवा चिरंतन संदेश भी वहन करती है। अमरीकाका सामर्थ्य भले ही बेजोड हो किंतु वह खंड तो बालक ही है न ! जीवनका रहस्य उसके हाथ-में इतना जल्द कैसे आयेगा ? उसको तो नदीके तीर पर तीन-तीन हजार फुट गहरे कुए खोदकर मिट्टीका तेल निकालनेका ही तो सूझेगा। दुनियाके सारे सृष्ट पदार्थ उत्पन्न होते है, और नष्ट होते हैं, उसमें सभी नश्वर तथा व्यर्थ है, असार हैं, सार तो केवल उससे बचकर निर्वाण प्राप्त करनेमें है. इस बातका स्वीकार कौन-सा अमरीकी कर सकेगा ? लेकिन ऐरावती नदी तो उत्पाती उत्साह के कारण ज्ञानका इन्कार नहीं करेगी और न तो जराग्रस्त ज्ञानके भारसे उत्साह खो बैठेगी। उसे तो महा-सागरमें विलीन होना है और फिर भी उस विलीन

होनेके आनन्दको अखंड बहते भी रखना है।

यहांसे आगे जाकर वह दीर्घिका अनेकों मुखसे सागरको मिलती है। ऐरावती यथार्थमें सुवर्ण देशकी माता है।

६. पकोकु

बंदरगाह पर गाड़ियां तो बहुत थीं। लेकिन हमको शहरमें ले कौन जाये? मनुष्यकी भाषा हम थोड़े ही बोल सकते थे? हमारा जहाज दोपहरसे रात तक पकोकुमें आराम करनेवाला था। इतने समयमें हमें पकोकुका प्रसाद चखना था। यहांके सैशन्स जजके लिए हमारे पास एक सिफारिशी पत्र था। वह न मिले तो शहरमें ऊगोसिन नामके दूसरे सज्जनके यहां भी हम जा सकते थे। हमारी भाषामें हमने हरेक गाड़ीवालेसे पूछा। हमारी भाषा कौन-सी, यह महत्त्वका सवाल नहीं है। हमारे पास हिन्दी, मराठी, कानडी, गुजराती, बंगाली, सिंधी, अंग्रेजी, फारसी तथा संस्कृत इतनी भाषाओंकी पूंजी होते हुए भी यहा उसमेंसे एक भी चलनेवाली नहीं थी। अंतमें एक इक्केवालेने सिर झुकाकर हमारा सामान कब्जेमें लिया। हम उसकी गाड़ीमें जा बैठे। प्रथम जज साहबके बंगलेकी ओर गये। एक कागज पर अंग्रेजीमें हमने अपना नाम लिखकर गाड़ीवालेको अदर भेज दिया। थोड़ी देरमें वह वापस आया। इशारेसे उसने कहा कि, 'वहां कोई नहीं है। दूर बाहर गांव गये हैं।' हमारे नाम हमारे हाथमें वापस आये।

हमने फिर निश्चय करके गाड़ीवालसे कहा, 'ऊ पो सिन'! गाडी चली, शहरमें एक प्रतिष्ठित घरके सामने खड़ी हुई। गाड़ीवालेने हमारा सामान उतारकर घरमें रखा। हम अंदर गये। घरमेंसे दो-तीन रमणियां बाहर आयीं। हमे संकोच हुआ। हम ने कहा, 'ऊ पो सिन, गमनाजी।' (गमनाजी एक हिन्दुस्तानी व्यापारी आढ़तिया था) उसका पता इस घरका था। महिलाओंने हमें बैठनेको कहा। हम राह देखने लगे। आधा घंटा बैठे होंगे। नहीं आये ऊ पो सिन और न मिले गमनाजी। हमें विचित्र लगा। यूं कहां तक बैठा जाए? जीवतरामसे मैंने कहा, 'आप यहां बैठें। मैं गांवमें घूम आता हूं। कोई हमारी भाषा जाननेवाला मिल जाये तो ईश्वरकी कृपा।' नंदी बैलकी तरह सारे गावमें घूमाफिरा। अपनी भाषाओंमें मैं पूछता रहता। लोग अपनी भाषामें जवाब देते। लेकिन बोध तो आसपासकी हवाको भी नहीं होता, मानो बहरोंका मुल्क। एक जगह मकान पर फोटोग्राफिक कैमराके चित्र चिपकाये हुए देखे। हाश! अब तो कोई अंग्रेजी बोलनेवाला मिलेगा सही। दुकानमें जाकर मैंने अपनी अंग्रेजी उंडेल दी। किन्तु यहां भी उत्तेजक प्रतिध्वनि नहीं निकली।

निराश होकर मैं वापस आया। गिरधारीसे कहा, 'भागकर जा, वह

हमारा गाड़ीवाला दिख रहा है वह अलोप हो जाये उससे पहले उसको ले आ।' गाड़ीवाला आया। हमने अपना सामान गाड़ीमें रखनेके लिये उठाया। घरकी महिलाओंने यह देखा। आये हुए अतिथि आतिथ्य ग्रहण किये बिना जा रहे हैं यह उन्हें बुरा लगा। उनकी भाषा हम समझ नहीं पाते थे, लेकिन उनकी आंखोंमेंसे स्रवनेवाले आतिथ्यको पढ़ते देर लगे ऐसा नहीं था। उन्होंने हमको बहुत कुछ समझाया। हमने भी उनसे कहा कि, आये हुए जहाजमें ही आज शामको हमें वापस जाना है। ज्यादा समय रहा नहीं है।' इतना सविस्तर हम बोले मात्र अपने समाधानके खातिर ही। महिलाएं थोड़ा बोलें और अंदर जायें। किसी वृद्धाको ले आयें। वह कुछ कहें, और दूसरे दरवाजेसे वापस जाये। कुछ देरमें पडोसकी दो वृद्धायें आयी। उन्होने अपनी भाषा आजमायी। हमको तो बुद्धू जैसा लगता था। ऐसे अचानक आना और वैसेही चले जाना इसमें अविवेक था सही, लेकिन करें क्या? गाड़ी छोड़ें तो बंदरगाहका रास्ता भी याद नहीं था। और लोगोंमे पूछे तो किस भाषामें? इसलिए आंखोसे ही माफी मांगकर हम गाड़ीमें सवार हो गये।

धड़-धड़-धड़ गाड़ी चली, और घरकी महिलाओंने किलकिलाहट मचा दिया। हम थोड़ी दूर गये। वहां हंगेरियन टोपीवाला एक आदमी आ रहा था। स्वदेशी भाषा जाननेवाले किसी नररत्नसे मिल सकेंगे ऐसी तो आशा ही मनमें नहीं रही थी फिर भी गाड़ीके पाससे उसको जाते देखकर मैंने मंत्र फेंका "गमनाजी"। आदमी चौंका। वापस आया। हमको हिंमत आयी। मानवी गिराका आश्रय लेकर हमने पूछा, "आप गमनाजी हैं?" उसने हां कही। फिर तो पूछना ही क्या; गाड़ी वापस मुड़ी। हम ऊ पो सिनके घर फिरसे गये। महिलाओंको खूब समाधान हुआ। गमनाजीने थोड़ी दिलगिरी व्यक्त करके कहा कि, वे स्वयं पका नहीं सकते। मिठाई पर ही चलाते हैं। हमने कहा "हमको अन्नाहार मिले तो ब्रह्मी हाथका चलेगा। हम जानते हैं कि ब्रह्मी लोगोंके हाथका किसी भी जातिका हिन्दू खाना नहीं है। लेकिन हमें ब्रह्मी खाना चखना है। उसमें निषिद्ध कुछ न आये ऐसा भरोसा आप दे सकें तो इस घरका हम खायेंगे।"

टूटा हुआ तार फिरसे जुडा हो वैसे घरके लोगोंके साथ हमारा वार्तालाप शुरू हुआ। 'क्या खायेंगे? क्या नहीं खायेंगे?' ये सारा उन्होंने गमनाजी द्वारा पूछ लिया। हमें तो अन्नके रूपमें शुद्ध, सादी, ब्रह्मी खुराक चाहिए थी।

रसोई तैयार हो जाये तब तक स्नान कर लेनेका मैंने सोचा। वास्कोडिगामाकी तरह गुड होप तक मैं घूम आया था। इसलिए ऐरावतीको मिलनेवाली एक छोटी-सी नदी किस दिशामें है यह मैं जानता था। कपड़े लेकर मैं नदी पर गया। नदी कीचड़से लाल थी। लेकिन पसीनेसे तो कीचड़ सह्य है इस न्यायसे मैं पानीमें पड़ा। जीवतराम, गिरधारी भी आये। नहाकर हम भोजन करने बैठे। ब्रह्मी ढंगसे पालथी मारकर हम बैठे, बेंतके सुन्दर लाखी बर्तनोंमें परोसा हुआ

भात, सेम तथा और कई वस्तुएं खायीं। खाना पसन्द आया ऐसा तो नहीं कह सकता; लेकिन था स्वच्छ और बराबर पका हुआ। फिर घरकी वृद्धाएं ऊ पो, सिन, उसका भाई और घरके कई लोगोंकी तन्दुरुस्ती तथा प्रवृत्तियोंके बारेमें कुछ कहा। 'घरमें कोई नही है। इसलिए आपके योग्य आपका स्वागत न कर सके, कहकर दिलगिरी भी व्यक्त की।

हमारे द्वारा जज साहबकी पहचान हो जाये तो अच्छा। ऐसा गमनाजीको लगनेमें वे हमें उनके बंगले पर ले गये। जज साहब सवारीमें गये थे। अपने भले यजमानोंका आभार मानकर हम जहाज पर वापिस लौटे।

१०. मिट्टीके तेलके कुएं

ब्रह्मदेशका सच्चा दर्शन हमें येनननजांवमें हुआ। यहां मिट्टीके तेलके मशहूर कुएं हैं। मिट्टीके तलके पीछे अंग्रेज व्यापारी तथा अमरीकी मजदूर आएंगे ही. हम येजनजांव पहुंचे तब दोपहरका समय था। बन्दरगाहसे शहर कुछ दूर था। जीवतराम मेरा लोटा बन्दरगाह पर भूल गये।आधे रास्ते याद आने पर उसे लानेके लिए वे खुद ही वापिस गये। हम मुकाम पर पहुंचे। बहुत देर हुई फिर भी जीवतराम नही आये। छोटा गिरधारी घबराया और रोने जैसा हो गया। मैंने कहा, 'ठहरो मैं जीवतरामको ढूढने जाता हूं। तब तक तुम यही बैठे रहना। अनजान प्रदेशमें गिरधारी मुझे छोड़कर अकेला तो कैसे बैठता? आफतसे इलाज बदतर ऐसा गिरधारीको हुआ। वह कहने लगा, 'आप तो मत ही जाइये।' मैं उसकी स्थिति समझ गया। उसको लेकर रास्ते पर आया और उसका ध्यान बातोंमें लगाये रखा।

आखिर जीवतराम आये। भोजन करके हम मिट्टीके तेलके कुएं देखने निकल पड़े। पवनचक्कीके ताबूत जैसे लोहपिंजर प्रत्येक कुएं पर दिखने लगे। ये कुएं बहुत नजदीक-नजदीक हैं। कितने गहरे होंगे उसकी तो कल्पना भी करनी हमारे लिए मुश्किल थी। यंत्र द्वारा कुएंमेसे तेल खीचा जाता था। दवाके लिए बैलोंका खून चूस लेते हैं वैसे दीयोंके लिए पृथ्वीका खून चूसनेका काम यहां चल रहा था। एक-एक कुआं दो हजार फुट तीन हजार फुट गहराईका! तीस या चालीस फुट गहरा कुआं होते ही हम कहते हैं 'ओह हो। इस कुएंमें तो चक्कर आते है। तीन हजार फुट गहरे कुएं यानि क्या इसकी कल्पना करनी भी कठिन है। अन्दर देखनेकी हिम्मत करते तो भी ऐसी सहूलियत न थी। कुंओंके मुंह फट्टोंसे बन्द कर दिये गये थे। मात्र पम्पिंग देखनेको मिला। चूसकर निकाला हुआ तेल पासके एक मकानमें इकटठा हुआ था। कुएं देखनेके बाद हम वहां जानेवाले थे।

कुओंके वनमें एक अकेला कुआं देशी ढंगसे चलता था। यह कुआं बिल्कुल छिछला था। मात्र पांच सौ फुटकी गहराई थी। ब्रह्मी मजदूर रस्सीका छोर पकड़कर दौड़े और मैंले मिट्टीके तेलकी बाल्टी ऊपर लाये। हमारे साथ आये हुए हमारे गृहपति ने कहा, 'यहां गांवके लोग कुओंकी मिट्टीको मिट्टीके दीयेमें भरकर रखते हैं। शाम होते ही मिट्टीको सुलगा देते हैं। रात भर भक्क-भक्क-भक्क कर वह जलती रहती है। मिट्टी निस्तैल हो जाने पर उसे फेंक देते हैं और दूसरी स्नेहल मिट्टी भर देते हैं।

इस कुएंमें मैंने अन्दर झांका। रेलकी सुरंगमें जैसा दिखता है वैसा गाढ़ा अन्धेरा अन्दर भरा पड़ा था। बाहरके प्रकाशके कारण अन्दरका नहीं दिखता होगा ऐसा सोचकर मैंने किताबकी नली-सी बनाकर दूरबीनकी तरह पकड़ दृष्टि अन्दर फेंकी। आंखें खीच-खींचकर अन्दर देखा किन्तु निरे अन्धेरेके सिवा कुछ नहीं दिखा।

इन कुओंके बारेमें जितनी जानकारी मिल सकी। उतनी पूछकर हम इंजिन-घरमें गये। वहां कुएंसे निकाला हुआ मिट्टीका तेल एकत्र करके यहांसे रंगून तक पम्प किया जाता है। येननजांवसे रंगूनके पासके एक टापू तक बड़े नल लगाये हुए हैं। यहांसे लगभग तीन सौ मील तक तेल अपने आप दौड़कर जाता है। फिर उस टापूमें उसको बिलोकर शुद्ध किया जाता है। तेल और पानीका मेल नहीं खाता। ऐसा हम अनुभवसे कहते हैं। लेकिन यह कितना आश्चर्य कि मिट्टीके तेलके कुए बड़ी-बड़ी नदियोंके किनारे ही मिलते हैं।

यहांसे हम वापिस आये। रास्तेमें तरह-तरहके विचार चलते थे। यहां काम करनेके लिए अमरीकाके ही मजदूर क्यों आते हैं? दुनिया भरके मजदूर यानि गरीबोंकी एक विराट जाति। कहीं भी जायं तो भी उनको पेटके जितनी या कम रोटी ही नसीब होती है। फिर भी इन लोगोंमें भी वर्ण द्वेष और कौमी स्वार्थ पाये जाते हैं। अमेरिकी मजदूर और लोगोंको उस धन्धेमें दाखिल नहीं होने देते; अन्य गोरोंको भी नहीं। यह उनका नियम है। ऐसे सख्त नियम करनेवाली प्रजा कितनी अक्लमंद और दुष्ट अथवा स्वार्थी होनी चाहिए। जहां जो माल मिले उस पर ही अपना जीवन निर्वाह करना यह पुराना जमाना अब सदाके लिए चला गया है। अब तो जहांसे जो चीज मिले वहांसे उसे लाकर उसका उपयोग करना ऐसा जमाना आया है। छुटपनमें रातको अध्ययन करते समय, नक्शेमें बाटुम कहां हैं? यह देखने के लिए बाटुमका ही मिट्टीका तेल मैंने काममें लिया था। उस दिनसे ही सोच रहा हूं कि, 'दुनियाभरके पदार्थ इकट्ठे करनेका मनुष्यको कैसे सूझा होगा? दियासलायीकी लकड़ी स्वीडनके जंगलोंमेंसे आती है। कंदील आस्ट्रिया तथा जर्मनीसे। मिट्टीका तेल कास्पियन समुद्रके किनारेसे। बत्ती विलायतसे। नक्शा ब्रिटेनसे। किताबका कागज शायद इटलीसे। इतना सरंजाम इकट्ठा हो जाये तब

मेरी पढ़ाई चले' ! उस समय यह स्थिति विषम नहीं लगी थी, किन्तु अंग्रेजोंके उद्यमका और अपने भाग्यका मैं कौतुक ही करता था।

यहांके जंगलोंके इमारती लकड़, खेतोंका धान, खदानके माणिक और पृथ्वी के पेटका मिट्टीका तेल सबके कारण प्राचीन ब्रह्मदेश बिल्कुल असुरक्षित हो गया है। रास्तेके इमलीके वृक्षोंको जैसे पत्थर और लकड़ियां खानी पड़ती हैं ऐसी दशा ब्रह्मदेशकी हुई है। गोरोंके लिए ब्रह्मदेश गुड़के घड़ेके जैसा हो गया है। हिन्दू लोग सामाजिक क्षेत्रको जिस तरह दूर रखते हैं वैसा ब्रह्मियोंका नहीं है। यहां तो गोरे लोग ब्रह्मदेशमें शादी भी कर सकते हैं। सुनते हैं कि कई गोरे इस देशको छोड़कर वापस जाते हैं तब अपनी ब्रह्मी स्त्रीको और उसके बच्चोंको कुछ पैसे देकर यहीं छोड़ जाते हैं।

११. येननजांव

शामको हमें खाना नहीं था। चांदनी रात होनेसे हम गांवमें सैर करने निकले। वहां एक छोटी-सी पहाड़ी पर एक बौद्ध मंदिर देखा। मंदिरमें लकड़ी पर की हुई नक्काशी असाधारण सुन्दर थी। यहांके शिल्पी पुराणकालकी प्रतिभावाले होने चाहियें। एक स्तम्भ पर हाथीके मुखवाला एक पक्षी कुरेदा हुआ था। दूसरे भी ऐसे अनेक संकर यहां दिखे। पहाड़ी परसे चांदनीमें आसपासका दृश्य जादुई मालूम होता था; मानों उपन्यासके कोई अपूर्व मुल्कमें अभिमंत्रित घोड़े पर बैठकर हम आ गये हैं।

वापस आते एक बौद्धमठ दिखायी दिया। खिड़कीमेंसे हमने झांका। कई बौद्ध साधु ऊंचे स्वरसे शामकी प्रार्थना या ऐसी कोई विधि कर रहे थे। जीवतराम को उसमें रोमन कैथोलिक पूजा विधिका साम्य दिखाई दिया। फिर तो हम ख्रिस्ती धर्म तथा बौद्ध धर्मके सम्बन्ध पर उतरे। गिरधारी बीच-बीचमें कुछ सवाल पूछता था। किन्तु पढ़ते समय आंखकी पलकें हिलनेसे पढ़नेमें कोई बाधा नही आती वैसे ही गिरधारीके सवालोंसे हमारी चर्चामें विक्षेप नहीं होता था। बुद्ध भगवान ने अपने शिष्योंको चारों दिशाओंमें जाकर कल्याणमार्गका उपदेश देनेकी आज्ञा की थी। अशोकने बौद्ध भिक्षुओंको दूर-दूरके देशों तक भेजा था। ब्रह्मदेश, लंका, सत्यपुत्र इत्यादि इस तरफके, तथा काम्बोज, फारस इत्यादि पश्चिम तरफके देशों-में अतिओकके राज्य तक बौद्ध भिक्षु पहुंचे थे। एसीनी पंथ पर बौद्ध धर्मका असर स्पष्ट है। और यदि ऐसीनी पंथसे ख्रिस्ती धर्मने बहुत कुछ ग्रहण किया है तो ख्रिस्ती धर्म बौद्ध धर्मका प्रशिष्य कहा जायेगा। ईशुकी प्रेममयी अहिंसा वृत्ति, उसकी परलोकपरायणता तथा उसका गूढ़वाद हमें तनिक भी अपरिचित नहीं

मालूम होते। उसका कारण क्या यह होगा कि आर्यभावनाकी ही वह एक स्वतन्त्र वसाहत (उपनिवेश) है ? मि० एण्ड्रयूज़को भी लगता है कि बौद्ध तथा ख्रिस्ती धर्म के सम्बन्ध तथा साधर्म्य आकस्मिक नहीं हैं।

अथवा यह भी हो सकता है कि सब खुदापरस्त पैगम्बर जो कहते हैं वह तत्त्वत: एक ही होता है, लेकिन हरेक समाजके लोग उसे अपने-अपने ढंगसे स्वीकार कर सकते हैं। इसलिए वे पैगम्बर जब अपने देश तथा समाजकी प्राचीन मान्यताओं और विधियोंके वशीभूत होकर उन सब चीजोंको अपने धर्ममें मिलाते हैं तभी अलगाव उत्पन्न होता है। लेकिन इन दो तत्त्वोंको अलग कौन कर सकेगा ? बहिश्त, दोज़ख, कयामत तथा कुर्बानीकी मान्यताएं इस्लाम कभी अलग कर सकता है ? फिर भी हमें तो मोहम्मद साहबकी अनन्य खुदापरस्ती तथा यतीमोंके प्रति अनुकम्पा, उनका अल अमीनपना, ये ही अत्यन्त आकर्षक लगते हैं।

बौद्ध साधुओंकी प्रार्थना पूरी हुई और हमारी चर्चा भी वहीं रुकी। ब्रह्मदेशमें मुसलमानोंकी अच्छी संख्या है। हिन्दुओंकी तरह वे यहांके लोगोंसे अलग नही रहते। ब्रह्मी लोगोंके साथ उनका रोटी-बेटीका व्यवहार चलता है।

पाश्चात्य पोशाक पहननेसे जैसे हमारी चमड़ी पाश्चात्य नहीं बनती, वैसे ही पाश्चात्य व्यापारके अर्थशास्त्रके शिकंजेमें फसनेसे तथा पाश्चात्य शिक्षामे सराबोर होनेसे भी जीवनके प्रति हमारी निष्ठा और हमारा हृदय धर्म एकदम बदल नहीं जाता। मिट्टीके तेलका इतना प्रचण्ड कारखाना यहां चलता है. देश-देशान्तरके व्यापारी ही नहीं किन्तु मजदूर भी यहां आकर रहते हैं, शराब पीकर कभी-कभी तूफान मचाते हैं, फिर भी ब्रह्मदेशका ठंडा जीवन तनिक भी गर्म नही होता। पुरानी आबादी नष्ट होगी, पेट भरनेकी मुश्किल होगी, शराबखाने तथा चुनावकी शराब गाव-गांव पहुंच जायेगी, पुराने रस्मो-रिवाज बदल जायेंगे, वर्ण-संकरसे सामाजिक कायदे कानूनमें फर्क करना पड़ेगा और फिर भी ब्रह्मदेश-का ब्रह्मीपना कायम ही रहेगा।—ऐसा यहाके मठका घंट बार-बार सुना रहा था।

'हिन्दुस्तानमें पर राज्य, दुष्काल तथा रोग हैं तब तक मिशनरियोंको इस देशमें स्थान है।' यह जितना सत्य है उतना ही यह भी सत्य है कि, जब तक ब्रह्मी लोगोंको शिक्षाकी आवश्यकता है तबतक बौद्धधर्म उस देशमें रहने ही वाला है; क्योंकि बौद्ध पुंगी उस ब्रह्मीसमाजका खमीर हैं। जातिके अभिमानसे जैसे हिन्दुस्तानके ब्राह्मण अपना कर्तव्य भूले है वैसे ब्रह्मदेशके पुंगी अब तक भूले नही हैं : पुँगी सुबह उठकर अपने काशाय चिवर पहनकर याचने जाते हैं। विशिष्ट आकारके अपने भिक्षापात्रों को दोनों हाथसे पेटके पास पकड़कर शांतिसे एक पंक्तिबद्ध घर-घर जाते हैं; जो खानेको मिले वह खाते हैं। उनकी आंखोंमें हमारे यहांके पुरोहितकी लोभी निर्लज्जता नही दिखती। पिण्डपातके बाद वे सारा समय अध्ययन तथा अध्यापनमे बिताते हैं।

हमारे यहांके गृहस्थाश्रमी ब्राह्मण तथा अशिक्षित सन्यासी बहुत बार धर्म पहचानते ही नहीं। अपना जीवन समाजकी धर्म-सेवाके लिए है यह बात ही उन्होंने मानों भुला दी है। ब्रह्मदेशके पुँगी सबके सब धर्मावतार हैं ऐसा कहनेका आशय नहीं; किन्तु वह संस्था अभी तक अपना धर्म तथा अपनी प्रतिष्ठा भूली नही है इतना ही कहनेका आशय है।

मंडालेमें ही हमने देखा था कि लड़के जरा बड़े होते ही पुंगियोंके मठमें पढ़ने जाते हैं। हमारे यहां ब्राह्मणका बेटा जैसे अमुक उम्रका होते ही जनेऊ लेकर द्विज बनता है, वैसे ब्रह्मदेशका बौद्ध बालक संस्कार लेकर प्रथम पुंगी यानि संन्यासी बनता है। हमारे यहां जैसे मां-बाप लड़केकी शादी करना अपना फर्ज समझते हैं, वैसे बौद्ध सामाजिक आदर्श तय करता है कि बेटेको निर्वाणका यानि त्याग, वैराग्यका रास्ता दिखा देना यह मां-बापका मुख्य कर्तव्य है। बेटा पुंगी होकर विद्याध्ययन करता है। फिर उसे मोक्ष धर्म पर श्रद्धा दृढ़ हो जाये तो वह हमेशाका पुंगी बन जाता है; नहीं तो स्वेच्छासे वह गृहस्थ धर्म स्वीकार करता है। शादी करनेकी जिम्मेदारी मां-बापकी नही, मां-बापने तो धर्मका उत्कृष्ट मार्ग बेटे-को दिखा दिया।

हमारे यहांका सामाजिक आदर्श इससे अलग है। गतानुगतिक गृहस्थ धर्ममें बेटेको दाखिल करनेका कर्तव्य मां-बापका माना गया है। उसका इकार करके नैष्ठिक ब्रह्मचर्य लेना अथवा गृहस्थधर्ममेंसे बाहर निकलकर संन्यास लेना, यह उस-उस व्यक्तिके संकल्प तथा पुरुषार्थ पर छोड़ दिया जाता है। आश्रमादाश्रमं गच्छेत। जैसा अधिकार वैसा स्थान आदमी लेगा। बिना अधिकारके संन्यासकी दीक्षा देना यह तो अधःपापको निमंत्रण देना जैसा है। एक बार कदम उठानेके बाद वापस मुड़ ही नही सकते। उसमें चारित्र्य हानि है। भले धीमे चलो, किन्तु पीछे हठ मत करो। असंख्य लोग जिस रास्ते जा नहीं सकते उस रास्तेकी दीक्षा देनेमें यथार्थता कितनी ?

दोनों दृष्टियोंका अंतिम उद्देश्य एक ही है दोनोंका वजूद है। फिर भी कितना बड़ा भेद !

१२. प्रोम

येननजांवसे प्रोम जाकर हमने ऐरावतीसे विदा ली। रास्तेमें एक बंदरगाह आया। उसका नाम याद नहीं है। वहां महायुद्धके कैदियोंको रखा गया था। बंदरगाह पर कई सिख सिपाही इकट्ठे हुए थे। उससे हमें पता चला कि कोई दगा न दे इसलिए यहां कड़ी निगरानी रखी जाती है।

हमें कहा गया था कि प्रोममें देखने-लायक कुछ नहीं है। हम भी रंगून पहुंचने के लिए कुछ अधीर थे। हमारे गृहपतिने रातको प्रोमके रास्ते बाजार देखनेका आग्रह हमसे किया। बाजारके एक विभागमें 'नप्पी'के गोदाम थे। ब्रह्मी लोगोंकी स्वादिष्ट खुराक है। अमुक तरहकी मच्छीको सेवार (काई) में लपेटकर जमीनमें गाड़ देते हैं। वहां जब वह बराबर सड़ जाती है तब वह खाने लायक मानी जाती है। इस आहारके कारण कई लोग रोगके भोग बन जाते हैं फिर भी ब्रह्मीलोग उसका त्याग नहीं करते ! इन गोदामोंके पाससे गुजरते हमें नाक पकड़, सांस रोक-कर जाना पड़ा। फिर भी जो कुछ दुर्गंध दिमागमें घुस गयी वह जल्दी निकलती ही नहीं थी। बहुतसे परदेशी लोग नप्पीके कारण ब्रह्मीलोगोंको बदनाम करते हैं। इस बारेमें ब्रह्मी लोग क्या कहते हैं हम नहीं जानते। एक हिन्दी भाईने कहा, 'यदि हम किसी ब्रह्मीके पड़ोसमें रहते हों और घरमें घी में कुछ तला जाता है तो उस 'दुर्गंध'को ब्रह्मी सहन नहीं कर सकते। पड़ोसी अच्छा धीर हो तो भी ऐसे समय वह धीरज खो बैठेगा, और हमें कम-से-कम चार बातें जरूर सुना जायेगा।' भिन्न-रुचिर्हि लोकः और क्या ?

ये सारी सुनी और पढ़ी हुई बातें हैं। प्राचीनकालसे मुसाफिर लोग देश-देशांतरको बदनाम करते आये हैं। ग्रीक ग्रंथकारोंको देखें या मार्कोपोलोके प्रवास-वर्णन पढ़ें अपने संस्कृत ग्रंथोंको पूछें या मिशनरियोंके बयान देखें, परदेशके बारेमें बेजवाबदार विधान करनेमें हरेकको एक-सा रस छूटता है। जिनके लिये बंधुभाव विकसित करना जरूरी है, जो संस्कारके विनिमयका एलची (राजदूत) है, संधि-कारी प्रेषित जैसी जिसकी पदवी है वही जब अपना महत्त्व बढ़ाने तथा श्रोताओंका कुतूहल तृप्त करनेमें गैरसमझ पैदा होनेवाले वर्णन करते है अथवा काल्पनिक घटनाएं जोड़ देते हैं तब दुःखके साथ कहना पड़ता है कि संस्कृतिका मुख्य साधन असंस्कारी लोगोंके हाथमें जाकर शापरूप बन गया है। किसी भी देशकी संस्कृति, उसकी मान्यताएं, वहांका रहन-सहन, यह सब जानने, समझने, जांचनेके लिए उस देशका लंबा परिचय आवश्यक है और परिचयका होना तो प्रेमके बिना, समभाव के बिना संभव ही नहीं है।

उसी रात हमने प्रोम छोड़ा। गाड़ी देरसे छूटनेवाली होगी। हम जल्दी जाकर ट्रेनमें सो गये। सोते-सोते आधी नींदमें टिकट कलेक्टर तथा गार्डके बीचका संवाद मैंने सुना। हमारा डिब्बा पहला होनेसे एन्जिनसे जुड़ा हुआ था।

'आप जानते नहीं हैं कि मनुष्योंका डिब्बा एन्जिनके साथ नहीं जोड़ा जाता' ?

'उसमें क्या बिगड़ा ?'

'यह कानूनके विरुद्ध है। कानूनमें लिखा है कि एन्जिन तथा मुसाफिरोंके बीच मालके डिब्बे रखने चाहिए। कुछ दुर्घटना हो तो मालके डिब्बे भले टूटें, मनुष्य तो बच जायेंगे।'

'जाओ रे, यों दुर्घटनाएं क्या रोज होती होंगी ?'

'तब क्या दुर्घटना कहकर आयेगी ?'

संवाद बहुत लंबा चला। तूफानी समुद्रमें प्रवास करते भी जो शंका मेरे मनमें आयी नहीं थी वह इस संवादसे उठी। नींद बिगड़ी। मैं सोचने लगा। इससे तो आखिरी डिब्बेमें बैठे होते तो कितना अच्छा होता। लेकिन नहीं, वह भी बराबर नहीं है। उसका अर्थ इतना ही न कि मेरे बदले किसी और की जान जोखिममें होती तो कितना अच्छा ! ऐसा अंधा स्वार्थ हमें शोभा देगा क्या ? किन्तु साथ छोटा गिरधारी है उसकी जिम्मेदारी हमारी नहीं है ? होगी, लेकिन इतनी जिम्मेदारीसे कायर होना ठीक है क्या ? मनुष्य मात्र अपनी जान तक ही वेफिकर रहे और सिर पर थोड़ा-सा भी दूसरेका जोखिम आ जाये तो इतने ही कारणसे व्यवहारकुशल कायरताका आश्रय ले इसका मतलब क्या ? हिम्मत और निश्चिंतता क्या सन्यासी तथा फकीरोंका ही धर्म है ?

धर्माधर्मकी मीमांसा नीदमें डूब गयी, और सुबह हम रंगून पहुंचे।

१३. मोमबत्तीका कारखाना

अब येननजांवके मिट्टीके तेलका अंतमें होता क्या है यह जाननेकी इच्छा जागी। हमारे गृहपति डॉ० मेहताने उसे तृप्त करनेका बंदोबस्त किया; इतना ही नहीं, बल्कि वे स्वयं हमारे साथ आये। रंगून नदीमें छोटेसे वाफरमें बैठ हम कारखाने वाले टापू पर गये, वाफरके धक्केसे कारखाना काफी दूर था, अतः कारखानेकी छोटीसी रेलवे पर ट्रालीमें बैठकर हम चले। हमारा सग छोटासा नहीं था। डॉ० महेता, उनके तीन बेटे अण्णा, जीवतराम, गिरधारी और मैं इतने तो याद हैं। दूसरे भी दो एक होंगे, दो बेन्च पर बैठ जानेके बाद बचे हुए लोग आगे फुटबोर्ड पर बैठ गये। ट्राली घर्-घर् करती चली। बच्चोंको मजा आया। कुछ दूर जानेके बाद एक मोड़ आया। वहां एक आदमी खड़ा था। उसने जोरसे चिल्लाकर हमें चेतावनी दी। क्या है यह सोच सकें उसके पहले सामनेसे एक एन्जिन आता दिखाई दिया। ट्राली खड़ी करके सब उसमेंसे दोनों तरफ कूद पड़े। मैं बेन्च पर बीचमें था। दोनों तरफ दो बच्चे थे और मेरी गोदमें छोटा मगन था। जल्दीसे दोनों बाजू के बच्चोंकी कलाई पकड़कर उनको नीचे उतार दिया, फिर मगनको भी उठाकर उतारा। इतनेमें एन्जिन आकर ट्रालीसे टकराया। ट्रालीमें मैं अकेला ही रह गया था। एन्जिनवालेने जितनी हो सके उतनी एन्जिनकी गति रोकी थी। फिर भी एन्जिन ट्रालीके साथ टकराया तो सही। मेरी आगेके बेन्चकी पीठकी ओर मैं बैठा था। उस बेन्चकी पीठके बीच मेरी छाती फंस गयी। छातीको सख्त चोट लगी।

लेकिन उस वक्त कुछ मालूम न पड़ा। सब मेरी तरफ दौड़े। डॉ० महेता तो अपने मेहमानके लिए बहुत ही चिंतित थे। मुझे सही-सलामत देखकर सबकी जानमें जान आयी।

ट्रॉली फिर चली। कारखानेके रास्ते मिट्टीके तेलकी बड़ी-बड़ी टंकियां दरबार-गढ़की तरह खड़ी थीं। कारखानेमें मैंने देखा कि येननजांवका मिट्टीका तेल यहां शुद्ध होता है। अतिशुद्ध मिट्टीका तेल वह है पेट्रोल। यूरोपमें युद्ध कब सुलग उठेगा यह जैसे कह नही सकते, वैसे ही पेट्रोल कब भभक उठेगा यह भी कहा नही जाता। यूरोपकी शान्तता तथा पेट्रोलकी शीतलता एक-सी ही है। इसलिए उतरनेवाले मिट्टीके तेलको अलग-अलग नलमेंसे अलग-अलग भरा जाता था। मिट्टीके तेलके डिब्बे भी यहीं तैयार होते हैं। बरसोंसे स्वदेशमें हरेक स्टेशन पर मिट्टीके तेलके जो गोदाम हम देखते आये उनका उगम स्थान देख मुझे आश्चर्य हुआ। हिन्दुस्तान जैसे महादेशको प्रवाही आग पहुंचानेका काम यह एक टापू करता है। कितनी उसकी महत्ता!

अंतमें हम मिट्टीके तेलकी मलाई अथवा मैलका कारखाना देखने गये। वह मैल यहां बिलोया जाता था। उसमेंसे पैरेफिन, स्टीरिन जैसे मोम स्वच्छ होकर निकल रहे थे। देखकर तो खानेको ही जी चाहता है। गंदा वेसेलिन भी इसी मंथनसे निकलता है।

पास ही मोमबत्तीका कारखाना था। मिट्टीके तेलका धंधा मुख्य टिनके डिब्बे का धंधा आनुषंगिक धंधा और मोमबत्तीका कारखाना यह जोड़ धधा कहा जाता है। मोमबत्तीके कारखानेमें मिलके बंदियोंका प्रथम दर्शन हुआ। एक विशाल खंड में बहुतसे मर्द तथा छोटे लड़के बैठे थे और मोमबत्तीके लिए नीले कागजके बक्से बना रहे थे। मैं नही मानता कि किसी भी यंत्रका वेग इन मजदूरोंके हाथके वेगसे अधिक होगा। उनके हाथ मानो सांचेके ही हिस्से बन गये थे। एक बक्स अनेक आदमियोंके हाथोंमेंसे गुजरता था। इन लोगोंको वेतन उनके कामके अनुसार दिया जाता है। अमुक सौ बक्से हो जाने पर अमुक आने मिलते है। आरंभमें ऐसे काममें लड़कोंको जरूर मजा आता होगा, उसमें रस भी उत्पन्न होता होगा किन्तु हमेशाके लिए वही एकका एक अर्थविहीन काम करनेसे तो मनुष्य यंत्र-सा बन जाता है। दूसरे कमरेमें यही काम करनेवाली स्त्रियां थीं। उनके मुख पर किसी तरहका भाव नजर नहीं आता था। मानों हर्ष और शोक, आशा और निराशा दोनोंसे वे परे हुई हों। खेतोंमें काम करनेवाले लोग कम कष्ट सहन नहीं करते। लेकिन खेती के काममें बीच-बीचमें विनोद भी चल सकता है। यहां विनोदकी मनाही नहीं होगी। किन्तु ऐसे वायुमंडलमें विनोद सूझे तब न?

यहां पर यदि ऐसा है तो यूरोपमें क्या दशा होगी? गरीब स्त्रियोंकी ऐसी हालत देखनेके बाद ही टॉमस हुडने 'कमीजका गीत' (The song of the shirt)

लिखा होना चाहिये। यह है उसके गुजराती रूपान्तरका भावानुवाद : "सवेरे मंदिरके शंख बजे, और शामको घंटनाद। रात पूरी होती किन्तु मेरा काम तो कम होता ही नहीं। किसको पुकारूं मैं? दिन भर नहीं क्षणका आराम। रातको भी खड़ा है काम और काम।

सिर फिरे, अंग टूटते हैं, हाथ सो जाते हैं, पलकों पर मानो मन एकके वजन रखे हैं, आंखों पर जाले-से बन गये हैं। जेलमें कैदीको भी कभी तो नींद मिल जाती है। फिर भी मुझे तो कभी यह काम छोड़ता ही नहीं।

किनारीकी तुरपाई करूं और बटन गूथूं और कतरन सीऊं। सीते-सीते देर रातको काममें ही ढुलकी आवे। थका हुआ मेरा हाथ फिर भी स्वप्नमें काम आगे चलावे, अरे रे! कब पूरा होगा यह मेरा काम?

किनारीकी तुरपाई करूं और बटन गूंथूं, बटन गूंथूं और कतरनें जोड़ूं, जोड़ते जोड़ते हृदय बैठा जाता और सिरमें चक्कर आते। थकके चूर मेरा हाथ फिर भी धागेको छोड न पाये—अरे मेरे दस हैं खानेवाले घर पे।

भाई तुम्हारी कोई बहन है? बेटा! तेरी मां है? घरमें पत्नी है? पहनके फाड़ते हो यह वस्त्र नही है यह समझ ले बाबा! भाई, बहन, स्वजन तुम्हारे जैसे मनुष्यके उनकी आयुके हैं ये माप। रामजी! क्यों है रोटी मंहगी इतनी। वे लोहा मांस इतने सस्ते?

यहांकी स्थिति अत्यधिक खराब थी ऐसा तो नहीं कह सकते, किन्तु इस स्थितिका प्रथम दर्शन यहां हुआ। बंबई तथा बडौदामें मैंने मिलें देखी थीं, लेकिन उस वक्त काम करनेवालोंकी दुर्दशाकी ओर ध्यान जानेके बजाय, यंत्रकी शोध करनेवालेकी कल्पकता तथा इतना बड़ा व्यापार चलानेवाले व्यापारियोंकी बाहोशी की ओर ही ध्यान गया था।

गये थे उसी तरह ही वापस आये, मैं मात्र छातीमें दुगुना दर्द लेकर वापस आया।

□

हमारे
उस पारके पड़ोसी

अपने मीठे और आत्मीय सत्कारसे
हमारी यात्राको आनन्दपूर्ण बनानेवाले
पूर्व अफ्रीकाके
तीनों रंगके
असंख्य भाई-बहनोंको
कृतज्ञतापूर्वक समर्पित

आगामी कलका महाद्वीप

[गुजराती आवृत्तिकी प्रस्तावनासे उद्धृत]

पुस्तक लिखनेका आज तक मैंने कभी प्रयत्न नही किया। इसलिए उसे लिखते समय कैसी उत्तेजना, कैसा उत्साह मालूम होता है, इसका मुझे अनुभव नहीं है। लेकिन यह प्रस्तावना लिखनेके लिए इस प्रयत्नके कारण मुझे कितनी ही रातें जागकर बितानी पड़ी हैं !

०

मेरे लिए तो यह एक अनोखा मान है, एक विशेष अधिकार है। साथ ही, मेरे लिए यह एक अद्वितीय अवसर भी है।

०

एक बार अफ्रीकाका परिचय हो जानेके बाद इस महाद्वीप और इसके लोगोंके बारेमें बात करनेका कोई भी मौका हाथसे जाने ही नहीं दिया जा सकता। और समर्थन करनेके लिए काकासाहब पासमें हों और कहनेका मौका मिले, यह तो जीवनका बड़ा ही सौभाग्य माना जायगा।

अफ्रीकाके कुछ भागमें काकासाहबके साथ प्रवास करनेका सौभाग्य मुझे मिला था—मै उन्हें सब जगह घुमाकर यह प्रदेश 'दिखानेका' प्रयत्न करता था ! और जैसा कि हमेशा होता है, इस सौदेसे उल्टा मुझे ही लाभ हुआ। इस 'आगामी कलके महाद्वीप'की भूमि पर जिस मानव-समूहका विशाल नाटक खेला जा रहा है, उसके सूक्ष्मसे सूक्ष्म और गहरेसे गहरे रहस्योंका तेजीसे और अत्यन्त बुद्धिमत्तासे काकासाहबको आकलन करते देखकर मैं मंत्रमुग्ध हो गया।

बहुत कम लोगोंको इस बातका पता होगा कि सहाराके दक्षिणमें और दक्षिण अफ्रीकाके उत्तरमें स्थित अफ्रीका महाद्वीपका भूभाग यूरोपसे लगभग तीन गुना बड़ा है और वहां अनन्त और अपार सम्पत्ति सुप्त अवस्थामें पड़ी हुई है। बहुत थोड़े लोग जानते हैं कि इस भूभागमें करीब दस करोड़ मनुष्य ऐसे हैं, जो आजके प्रगतिशील युग तक अपनी प्रागैतिहासिक कालकी सामाजिक, आर्थिक या सांस्कृतिक प्राचीन परम्परामें ही रहते आये हैं और बाहरके संघर्षके फलस्वरूप अभी-अभी ही उससे बाहर निकलनेके लिए थोड़े छटपटाने लगे हैं।

किसी भी प्रजाके लिए ठेठ प्रागैतिहासिक कालसे एकदम अणुयुग तककी हनुमान-छलांग मारना बड़ा कठिन काम है। इसलिए हम सबका यह कर्तव्य है कि इस काममें अफ्रीकाके मूल निवासियोंकी हम मदद करें—वह भी ऐसी मदद करें जिससे अफ्रीका और उसके निवासी संसारके इतिहासके प्रवाहमें आकर उसे अधिक

शांति और सुलहवाला, अधिक प्रगतिशील और (सबसे अधिक महत्त्वकी बात तो यह कि) अधिक मानवतापूर्ण बना सकें।

जैसा कि काकासाहब कहते हैं, अफ्रीकाके निवासी असाधारण प्राणवान मनुष्य हैं। इस विषयमें मुझे जरा भी शक नहीं कि मानव-जीवनके हर क्षेत्रमें पुरुषार्थ करके संसारकी प्रगति और स्थिरतामें बड़ा असरकारक हिस्सा लेनेकी योग्यता उनमें है। पूर्व और पश्चिमके हम लोग उन्हें यह हिस्सा लेने देंगे या स्वार्थी और संकुचित दृष्टिसे नई कठिनाइयां और झगड़े खड़े करके दुनियामें फैली हुई अन्धा-धुन्धीको और बढ़ायेंगे, यही एक बड़ा प्रश्न है।

हम हिन्दुस्तानियोंको अफ्रीकामें बड़ी जिम्मेदारी और महान कर्तव्य पूरा करना है। यह ईश्वरका ही संकेत है। मेरा ख्याल है कि काकासाहब जैसे द्रष्टाओं की मुलाकातों और सम्पर्कसे हमें इस महाद्वीप और उसके निवासियोंके प्रति रही जिम्मेदारियों और कर्तव्योंका भान होगा और हम उन्हें पूरा करना सीखेंगे।

यह पुस्तक बहुत लोग पढ़ेंगे, इसमें मुझे कोई शक नहीं है। मुझे यह भी आशा है कि वह कुछ लोगोंको प्रेरणा देकर कार्यपरायण भी बनायेगी। क्योंकि इस दीवानी दुनियामें योग्य विचारसे प्रेरित योग्य आचार द्वारा ही हम शांति और संतोष प्राप्त कर सकेंगे।

मुझे आशा है कि इस पुस्तकका हिन्दीमें अनुवाद होगा और सारा भारत उसे पढ़ेगा। यह जरूरी है कि हमारे इन 'उस पारके पड़ोसियों'से हम भलीभांति परिचित हों। अब हम बहुत छोटी दुनियामें रहते हैं; और दुनियाके दूसरे भागमें—खास करके निकटवर्ती भविष्यके इस महाद्वीपमें अर्थात् अफ्रीकामें जो कुछ होगा, उसके अच्छे या बुरे परिणाम हमें पूरी तरह भोगने होंगे।

अप्पा पंत

नया मिशन

हमारी यात्राके प्रारंभमें ही अगर कोई चीज मुझे अखरी हो, तो वह थी उस कंपनीका नाम, जिसके जहाजमें हमने यात्रा की। हिन्दुस्तानके स्वतंत्र हो जानेके बाद भी यह कंपनी अपना नाम 'ब्रिटिश इंडिया स्टीम नेविगेशन कंपनी' क्यों रखे? नाममें थोड़ा-सा परिवर्तन कर दे तो भी बस है। 'ब्रिटेन-इंडिया स्टीम नेवि-गेशन कंपनी' कहे, तो हमें कोई एतराज नहीं। लेकिन अब हम अपनी खुदकी इन्डो-अफ्रीकन स्टीम नेविगेशन कंपनी क्यों न खड़ी करें? पुरानी कंपनीके साथ अमुक सालका करार किया हो, तो कमसे कम इतना तो देखना ही चाहिये कि उस कंपनीके अधिकारी हमारे लोगोंके साथ घमंड और तिरस्कारका बरताव न करें।

अगर करारका पालन ठीक-ठीक न किया जाय, तो करार रद्द कर देना चाहिये।

बम्बई और मार्मागोवाका किनारा छोड़नेके बाद आठ दिन तक न तो जमीनका कोई टुकड़ा दिखाई दिया, न कोई पहाड़की चोटी। हम सीधे मोम्बासा पहुंच गये। तुरंत मनमें यह विचार आया कि यहांके लोग हमारे उस पारके पड़ोसी ही हैं। यहांकी लहरें वहांके किनारेसे टकराती हैं और वहांकी लहरें यहांके किनारे-से आकर टकराती हैं। तुरंत उनसे आत्मीयताका संबंध बंध गया। और यह खयाल आया कि यह आत्मीयता कोई आजकी नहीं; इस जमानेकी नहीं; हमारा पड़ोस हजारों साल पुराना है। अफ्रीकामें मैंने जो कुछ देखा, जो कुछ विचारा और जो कुछ कहा, वह सब इस पड़ोसी-धर्मसे प्रेरित होकर ही।

पूर्व अफीका मैं गया तो था 'देश देखने' के कुतूहलसे और गांधीस्मारक कॉलेजके बारेमें सलाह देनेके लिए। लेकिन वहांसे लौटा पड़ौसी-धर्मसे बंधकर। अफ्रीकी लोगोंके साथका पड़ोसी-धर्म, अफ्रीकामें बसे हुए हिन्दुस्तानियोंके साथकी आत्मीयता और वहांके अंग्रेजोंके साथका कॉमनवेल्थका संबंध—तीनों मनमें मजबूत हो गये है। 'हम आजाद हो गये; अब अंग्रेजोंसे हमारा क्या संबंध है'—इस तरहकी जो वृत्ति मनमें पैदा हुई थी वह अफ्रीका जाकर मिट गई। दो जातियोंका हमारा संबंध अभी टूटा नही है। हमारा एक-दूसरेके साथ अवश्य संबंध है और देना-पावना भी है, इसका विश्वास हुआ।

अंग्रेज लोग—वल्कि यूरोपके सारे राष्ट्र एक समय सारी दुनियामे मिशनरी भेज कर ईसाई धर्मका प्रचार करते थे। यह वृत्ति आज भी बंद नहीं हुई है, धीमी जरूर पड़ी है। ईसाई संस्कृतिकी एकता कभीकी मिट चुकी है। पश्चिमके राष्ट्र अब एक-दूसरेसे अलग पड़ गये हैं। इसलिए अंग्रेज आज तक जैसा काम धर्मके नाम पर मिशनरियोंके जरिये करते थे, वैसा ही काम वे अपनी संस्कृतिकी भूमिका पर ब्रिटेनके साहित्य, संगीत, कला वगैराके प्रचार द्वारा करनेका प्रयत्न कर रहे हैं। इसके लिए उन लोगोंने 'ब्रिटिश कौन्सिल' नामकी एक जबरदस्त संस्था कायम की है और उसे अपार धन भी दिया है। विधान या नियमोंकी सख्ती भी उसमें नहीं है। उसके कार्यकर्ताओंको जैसा सूझे वैसा काम वे कर सकते हैं। इस संस्थाका मुख्य उद्देश्य यह है कि अनेक देशोंके नौजवानोंके बीच और प्रतिष्ठित, संस्कारी और प्रभावशाली लोगोंके बीच काम करके उन देशोंके लोगोंके मन और दिल ब्रिटिश संस्कृतिके लिए अनुकूल बनाये जायं और ब्रिटेन तथा उन देशोंके बीच सद्भाव कायम किया जाय। पश्चिमके अनेक देशोंने अब ऐसी संस्थाएं कायम की हैं। ऐसी संस्थाओंको उन उन देशोंकी सरकारोंकी मदद होने पर भी वे संस्थाएं सरकारी नहीं होतीं। उनके कार्यके फलस्वरूप विभिन्न देशोंके बीच राजनीतिक मिठास भी पैदा होती है, फिर भी वे संस्थाएं राजनीतिक नहीं होतीं। धर्म-प्रचार-का उद्देश्य तो उनका होता ही नहीं।

इस तरहकी एक संस्था हमारे देशकी तरफसे भी कायम हुई है। उसका नामहै (Indian Council of Cultural Relations—(I.C.C.R.) । हमारे सारे विश्वविद्यालयोंके और सांस्कृतिक काम करनेवाली संस्थाओंके प्रतिनिधि उसमे हैं। इस समय उस संस्थाने अफगानिस्तान, ईरान, टर्की, मिस्र वगैरा देशोंमें अपना काम शुरू किया है। अरबी भाषामें हम एक सामयिक पत्र भी निकालते हैं। इन सारे देशोंके कुछ विद्यार्थी हमारे विश्वविद्यालयमें हमारी छात्रवृत्ति लेकर अध्ययन करते हैं। हमारे देशकी संस्कृति, हमारा राजनीतिक दृष्टिकोण और दूसरे राष्ट्रोंके बारेमे हमारी दिलचस्पी समझानेके लिए कई नेता उन-उन देशोंमें घूम आते हैं।

दक्षिण पूर्वकी ओरके ब्रह्मदेश, स्याम, थाईलैण्ड, इंडोनेशिया वगैरा देशों-के लिए भी एक विभाग खोलनेकी तैयारी चल रही है।

मुझे लगा कि अफ्रीकाके लिए भी हमें एक ऐसा ही विभाग खोलना चाहिये। इस दिशामें मेरे प्रयत्न चल रहे हैं और उनका अच्छा स्वागत भी हुआ है।[1] दुनियाकी परिस्थितिको जाननेवाले और हमारी संस्कृतिको सामने रख सकनेवाले लोग अफ्रीका जायें, अफ्रीकी लोगोके नेता हमारे यहां आकर हमारे मेहमान बनें और हमारा रहन-सहन अपनी आखोंसे देखें, उनके प्रति हमारे मनमें रहे सद्भावके वे साक्षी बनें—इसके लिए प्रयत्न शुरू हो गये है। हिन्दुस्तानके कमिश्नरके नाते श्री अप्पासाहब पंतने वहां इस तरहका बड़ा अच्छा काम किया है।

पोरबंदरके सेठ श्री नानजीभाई कालिदासने मुझे अफ्रीका भेजकर वहा-की स्थिति समझनेका और सेवाका मौका दिया, इसलिए अब यह एक जिम्मेदारी मुझ पर आ गई है।

अफ्रीकाके उत्साही युवक और विद्यार्थी भी जब हमारे देशमें आवें, तब यह जरूरी है कि छुट्टीके दिनोंमें या त्योहारोके मौके पर हम उन्हें मेहमानके तौर पर अपने घरोंमें बुलावें और उन्हें यह अनुभव करावें कि हमारे दिलोमे रंगभेद या धर्मद्वेष नही है। उन लोगोंका दृष्टिकोण, उनकी संस्कृति और उनकी आकांक्षाएं सहानुभूतिपूर्वक समझनेका मौका हमें घर बैठे मिले, तो हमे उस लाभको खोना नही चाहिये। उनके जीवन और रहन-सहनसे परिचित होने पर हमें जो सर्वसमाजिकता और उदारता अपनेमें बढ़ानी पड़ेगी, वह लाभ भी कोई छोटा-मोटा नही कहा जा सकता। स्वतंत्र देशकी संस्कारी और समर्थ प्रजा किसी भी देशकी प्रजासे अलग रह ही नहीं सकती।

काका कालेलकर

---

१. यह कहते खुशी होती है कि मेरा सुझाव I. C. C. R. ने पसंद किया और उसने अपनी कौंसिलका अफ्रीकी विभाग कुछ दिन हुए खोल दिया है। —का० का०

हिन्दी पाठकोंके लिए

पूर्व अफ्रीकाकी ढाई महीनेकी यात्रामें मैंने देखा कि वहां पर जो दो लाख भारतीय रहते हैं, उनमेंसे करीब ८० फीसदी गुजरात, सौराष्ट्र और कच्छके हिन्दू-मुसलमान हैं। वे सब घरमें गुजराती भाषा बोलते हैं। अतः उनके लिए और उनके भारतवासी स्नेही-संबंधियोंके लिए मैंने यह पुस्तक गुजरातीमें लिखी। किन्तु पूर्व अफ्रीकाका सवाल सारे भारतवर्षका सवाल है। इसलिए यह हिन्दी अनुवाद शाया किया गया है। थोड़े ही दिनोंमें इसकी अंग्रेज़ी आवृत्ति भी संक्षिप्त रूपमें प्रकाशित होगी।[1]

काका कालेलकर

१-१२-१९५१

१. अफ्रीकाका महत्त्व

पृथ्वीकी भूमध्य रेखा पर अधिकांश समुद्र ही समुद्र है। एशिया, यूरोप और उत्तर अमेरिकाके विशाल भूखंड उत्तर गोलार्धमें फैले हुए हैं। आस्ट्रेलिया और दक्षिण अमेरिकाका बड़ा हिस्सा दक्षिण गोलार्धमें है। इनमें एक अफ्रीका ही ऐसा भूखंड है, जो पृथ्वीकी भूमध्य रेखाके दोनों तरफ समानान्तर फैला हुआ है। यह भूमध्य रेखा थोड़ी दक्षिण अमेरिकामें और उससे थोड़ी ज्यादा अफ्रीकामें आई है। (सुमात्रा, बोर्नियो, वगैरा द्वीप भूमध्य रेखा पर हैं जरूर, लेकिन वे बिलकुल छोटे हैं। उनकी गिनती न करें, तो चल सकता है।) भूमध्य रेखाके आसपासकी अफ्रीका-की भूमिमें ब्रिटिश ईस्ट अफ्रीका और बेल्जियम कांगो नामक दो प्रदेश पाये जाते हैं। जलवायुकी दृष्टिसे, मानव संस्कृतिके विकासकी दृष्टिसे और भारतके प्राचीन, आधुनिक और भावी इतिहासकी दृष्टिसे भी अफ्रीकाका यह प्रदेश बहुत बड़ा महत्त्व रखता है।

सारे ब्रिटिश ईस्ट अफ्रीकामें एक या दूसरे रूपमें अंग्रेजोंका ही राज्य चलता है। भारत परका अपना अधिकार छोड़ देनेके कारण ही अंग्रेज अब ईस्ट अफ्रीका में अपने राज्यको ज्यादा मजबूत बनाना चाहते हैं। इसलिए वे अफ्रीकी प्रजा और वहां बसनेवाली हिन्दुस्तानी प्रजाके प्रश्न पर ज्यादा ध्यान देने लगे हैं। हमारे लोगोंने पूर्व अफ्रीकामें काफी अच्छा स्थान प्राप्त कर लिया है। और अफ्रीकी प्रजा

---

१. इसकी अंग्रेज़ी आवृत्ति 'Our Next-Shore Neighbours' नवजीवन-ट्रस्ट, अहमदाबाद द्वारा प्रकाशित हो चुकी है।

तो अब जाग्रत होकर अधिक शिक्षण और अधिक अधिकारोंकी मांग करने लगी है।

इस प्रदेशके दक्षिणमें सुदूर दक्षिण अफ्रीकामें गोरी और रंगीन प्रजाका प्रश्न ज्यों-ज्यों कठिन और पेचीदा होता जाता है, त्यों-त्यों उसका असर पूर्व अफ्रीका पर भी पड़ने लगा है।

इसके साथ सारी दुनियाकी राजनीतिका संबंध अधिकाधिक बढ़ते जानेके कारण संयुक्त-राष्ट्र-संघ भी अफ्रीकाके विविध प्रश्नों पर ज्यादा-से-ज्यादा ध्यान देने लगा है।

हिन्दुस्तानके आजाद होनेके बाद ब्रिटिश प्रजाने उसे अपने कामनवेल्थमें दाखिल होनेका निमंत्रण दिया और हिन्दुस्तानने उसे स्वीकार कर लिया। दुनिया-की राजनीतिमें यह कदम बहुत बड़ा महत्त्व रखता है। हिन्दुस्तान और पूर्व अफ्रीका दोनों देश कामनवेल्थके सदस्य हैं, इसलिए वहांके प्रश्नोंका हल एक खास ढंगसे ही होनेकी संभावना पैदा हुई है।

ऐसी हालतमें अफ्रीका, यूरोप और एशियाकी तीनों महा प्रजाओंका जो विशाल और असीम सहकार पूर्व अफ्रीकामें चल रहा है, वह मानव-जातिके भविष्य की दृष्टिसे अत्यन्त महत्त्वका है। पूर्व अफ्रीकामें दो ढाई महीने रहनेका जो सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ, उस बीच किये हुए प्रवासकी झलकमात्र करानेवाला वर्णन यहां देनेका विचार है। हिन्दुस्तानके हितका व्यापक विचार करते हुए अफ्रीकाके बारे में हमारी भाषाओंमें सैकड़ों पुस्तकें लिखी जानी चाहिये। इसके पीछे ठोस अध्ययन मानव-हितकी विशाल दृष्टि, अर्थरचना और राजनीतिकी सच्ची समझ और मानववंशके विज्ञान (एन्थ्रोपॉलॉजी) में गहरी दिलचस्पीके साथ-साथ पृथ्वीके स्तर की रचनाको समझानेवाले भूस्तर-शास्त्रका ठोस ज्ञान भी होना चाहिये। अफ्रीकाके साथका हमारा सम्बन्ध हम जानते हैं, उससे ज्यादा प्राचीन, ज्यादा गहरा और महत्त्वपूर्ण है। हिन्दुस्तानने आजका आकार ग्रहण किया, उसे लाखों वर्ष हो गये। उसके पहले आजका अरब सागर नहीं था। आजका गुजरात, राजस्थान, गंगा-यमुनाका प्रदेश, बिहार और बंगालका सारा भूप्रदेश समुद्रके गर्भमें था। आजके लक्षद्वीप और मालद्वीप बड़े-बड़े पहाड़ोंके शिखर रहे होंगे। और आजका दक्षिण हिन्दुस्तान इस प्रदेशके जरिये अफ्रीकाके किनारे स्थित मेडागास्कर द्वीपके साथ जुड़ा हुआ था। जिन प्राचीन जानवरोंकी हड्डियां अफ्रीकामें मिलती हैं, उन्हींकी हड्डियां दक्षिण हिन्दुस्तानमें भी पाई जाती हैं। कुछ विशेषज्ञोंका यह अनुमान है कि अफ्रीकाकी कई जातियां दक्षिण हिन्दुस्तानसे ही वहां गई होनी चाहिए। आजके हिन्दुस्तान और अफ्रीकाकी रचनाके बाद वैदिक और पौराणिक कालमें देशवासी मिस्र होकर नील नदीके उद्गम तक और वहां चंद्रगिरि नामके पहाड़ तक पहुंचे थे, ऐसे उल्लेख हमारे प्राचीन पुराणोंमें मिलते हैं। मिस्र देशकी अति

प्राचीन संस्कृति, ग्रीसकी यूनानी संस्कृति, सिन्धु नदीके किनारे विकसित सिन्धवी संस्कृति और इन तीनोंके बीच खिली हुई अनेक शाखाओंवाली खाल्डियन संस्कृति—इन सबका परस्पर परिचय और संबंध था। यद्यपि उस समयका इतिहास उपलब्ध नही है, फिर भी प्राचीन अवशेषोंके आधार पर अत्यन्त प्राचीन समयके इतिहासको शृंखलाबद्ध करनेके प्रयत्न सफल होते जाते हैं। और इस तरह प्राचीनतम इतिहासका प्रकाश मनुष्यके स्वभाव और रहन-सहन पर पड़ता जाता है।

यह सारा ज्ञान अभी तक केवल कुतूहलका ही विषय था, किन्तु अब मानव-जातिको विनाशसे बचाकर एक विश्वपरिवारकी स्थापना करनेके महाप्रयत्नमें इस ज्ञानका बहुत बड़ा उपयोग किया जा सकता है। इसलिए इस प्राचीन इतिहासका सारे देशोंके जनसाधारण तक पहुंचना बहुत जरूरी हो गया है। दुनियाके इतिहास-कार और मानव-हितचिन्तक इस नई दृष्टिका विकास करते जा रहे हैं। हमारी प्रजाका इस दिशामें पिछड़ा रहना उसे महगा पड़ जायगा।

मेरे इस संक्षिप्त प्रवास-वर्णनमें यह सब नही आ सकता। दो महीनोंमें मैंने जो कुछ देखा, अनुभव किया और सोचा, उसीको यहां थोड़ेमें पेश करनेका खयाल है। इसमें किसी पाठकको रस आवे और वह ज्यादा गहरा अध्ययन करनेके लिए प्रेरित हो, तो मुझे संतोष होगा। कमसे कम प्रवास-वर्णन लिखनेका उत्साह ही लोगोंमें बढ़े और भाषामें इस प्रकारका साहित्य खिले, तो भी मुझे पूर्ण संतोष होगा। हमारे देशवासियोने अभी तक कोई कम प्रवास नहीं किये हैं। उन्हें जानने, सीखने और विचार करनेके काफी मौके मिले है और आगे तो ये मौके बढ़ते ही जायेंगे। इनका लाभ सारी प्रजाको अवश्य मिलना चाहिये। बात इतनी ही है कि आदत न होनेके कारण अभी तक हमारे लोगोंको इस विषयमें कुछ लिखनेका सूझा ही नही। एक बार यह दृष्टि पैदा हो और लिखनेका रस बढ़े, फिर तो स्वभावत: विशाल, विविध और कीमती साहित्य तैयार होने लगेगा। ऐसा साहित्य भारतकी किस भाषामें तैयार होगा, यह प्रश्न गौण है। भारतकी किसी एक भाषामें कोई अच्छी व ठोस पुस्तक तैयार हुई कि दूसरी भाषाओंमें उसके अनुवाद आसानीसे किये जा सकेंगे। खास प्रश्न तो विशाल और व्यापक रसका है। वह जब पैदा होता है, तब प्रजा जागे बिना रह ही नही सकती। और जगी हुई प्रजा अपने मिशनको पहचान कर उसे सिद्ध करनेका प्रयत्न करती ही है। भारतके भविष्यके ऐसे स्वप्न मुझे आनन्द देते हैं।

अफ्रीकाका प्रवास करनेके पीछे मेरा क्या उद्देश्य था, ऐसा प्रश्न कई व्यक्तियों द्वारा मुझसे पूछा गया है। यात्राके लिए निकलनेसे पहले यात्राके दिनोंमे और यात्रा के अन्तमें भी इस प्रश्नका उत्तर मुझे देना ही पड़ा है।

कथनकी सत्यताकी रक्षाके लिए मैंने हमेशा कहा है कि मेरा पहला उद्देश्य—

भले वह मुख्य न हो—केवल देश दर्शनका ही है। जिस तरह पुराने भावुक लोग श्रद्धा और भक्तिसे मन्दिरोंमें देव-दर्शनके लिए जाते हैं, उसी तरह और उसी श्रद्धा-भक्तिसे मैं देश-दर्शनके लिए जाता हूं। जब तक मैं केवल भारत-भूमिको ही पुण्य-भूमि मानता था, तब तक ईश्वरने मुझे परदेश जानेका सुअवसर नहीं दिया। जब मनोवृत्ति कुछ उदार बनी, मानवताका खयाल पैदा हुआ और बुद्ध भगवानके उपदेशके प्रति मनमें भक्ति जागी, उसके बाद ही मुझे ब्रह्मदेश जानेका मौका मिला। और पूज्य गांधीजीके साथ जब सिलोन (लंका) गया था, तब भी बौद्ध धर्मका आकर्षण होनेके कारण सिलोन पराया देश-सा महसूस ही नहीं हुआ।

हिन्दू संस्कृतिका सच्चा रहस्य समझनेके बाद और संसारके सारे धर्मोंके प्रति समता और आदरका भाव पैदा होनेके बाद अब जैसे सारे धर्म मुझे सच्चे, अच्छे और अपने ही लगते हैं, वैसे ही संसारके सारे देश मुझे भारत-भूमिके जैसे ही पवित्र और पूज्य मालूम होते हैं। अतः जिस भक्तिभावसे मै सेतुबन्ध रामेश्वरसे लेकर हिमाचल तककी यात्रा कर सका, उसी भक्तिभावसे अफ्रीका देखनेकी इच्छा हुई। दुनियाकी सारी नदियां मेरे ही सगे-सम्बन्धियोंकी लोकमाताएं है; हरएक सरोवर मानस सरोवर जितना ही पवित्र है; हरएक पर्वत हिमालय जितना ही देवतात्मा है; हरएक नदीका उद्‌गम ईश्वरके आशीर्वाद जैसा ही शुभ और श्रेयस्कर है; ऐसी दृढ़ भावना लेकर ही मैं अफ्रीका देखनेके लिए निकला।

जापान और आसाममें भूकम्प होता है, ज्वालामुखी फटते है, वगैरा बातें जाननेके बाद भूकंपशास्त्रमें—सिसमोग्राफीमे रस पैदा हुआ। उससे सम्बन्धित तरह-तरहके यंत्र अलीबागकी वेधशालामें देखे, तबसे यह जाननेका कुतूहल जगा कि अफ्रीका खंडकी भूमि कैसे बनी होगी?

गुलामोंके व्यापारके कारण बदनाम लेकिन लौगकी पैदाइशसे सुगंधित बना हुआ झांझीबार हमारे कच्छ-सौराष्ट्रके हिन्दू-मुसलमानोंकी पुरुषार्थ भूमि है, यह जाननेके कारण भी झाझीबारकी यात्राका सकल्प मनमें उठा था।

पूर्व अफ्रीकाके खारे और मीठे तालाबोंकी विशेषताएं भी मुझे अपनी ओर खीच रही थी। उत्तरकी तरफ बहनेवाली सरो-जा (सरोवरसे पैदा होनेवाली) नील नदीका उद्‌गम स्थान देखनेकी इच्छा गंगोत्रीके दर्शनों जितनी ही उत्कट थी और इसीलिए उस स्थानको मैंने गंगोत्रीकी तरह नीलोत्रीका नाम दिया।

राजरत्न श्री नानजी कालिदाससे उनके और अफ्रीकामे रहनेवाले हमारे दूसरे लोगोंके पुरुषार्थ और पराक्रमकी बाते सुनकर यह कुतूहल बढ़ा था कि वह देश कैसा होगा और उसकी शक्ल बदलनेमे हमारे लोगोंने कैसा हिस्सा लिया होगा।

अफ्रीकाके मूल निवासी अपनी खोई हुई आजादी पुनः प्राप्त करनेके लिए कैसी कोशिश करते हैं, गोरे लोग उन पर कैसा राज्य करते हैं, रंगभेदके आधार पर प्रदेशभेद पैदा करनेकी लीला वहां कैसी चलती है, यह सब अखबारो और

यात्रियों द्वारा जाननेको मिला था। इसलिए मनमें यह विचार उठा कि मानव-व्यापारकी यह विशाल रंगभूमि एक बार देखनी ही चाहिए।

दस-बारह वर्ष पहले श्री शिवाभाई अमीन पूर्व अफ्रीकासे आये थे। उन्होंने अफ्रीकी लोगोंके प्रति हिन्दुस्तानके कर्तव्यके बारेमें महत्त्वपूर्ण बातें की थी, 'फेसिंग माउन्ट केनिया' नामक पुस्तक पढ़नेके लिए भेजी थी और एक बार पूर्व अफ्रीका देख जानेकी सिफारिश की थी। यद्यपि उस समय मैंने उनकी बात नहीं मानी, लेकिन मनमें संस्कार तो जमे हुए थे ही। इन सब कारणोंसे दक्षिण अफ्रीका जानेके मौकेसे लाभ उठाकर पूर्व अफ्रीका देखनेकी इच्छा हुई। इसके अलावा, श्री अप्पा-साहब पंत और श्री नानजी कालिदासने अफ्रीकामें गांधी स्मारकके रूपमें एक कॉलेज कायम करनेकी और उसे अफ्रीकाके काले, यूरोपके गोरे और एशियाके गेहुंए रंगके सभी विद्यार्थियोंके लिए खुला रखनेकी योजना मुझे समझाई और कहा : "इस कल्पनाको पक्का रूप देने और लोगोंको समझानेके लिए आपकी मदद जरूरी है।" इस योजनाके लिए जरूरी पैसा इकट्ठा करनेकी जिम्मेदारी स्वभावतः मेरी नहीं थी। लेकिन लोकहितकी दृष्टिसे तथा शिक्षाके विकासकी दृष्टिसे योजनाको जांचकर उसके बारेमें अपना मत देनेका और लोगोंको इस योजनाके अनुकूल बनानेका काम मैं कर सकता था। मैं जानता था कि यह काम सार्वजनिक भाषणोंके बनिस्वत खानगी बातचीत और चर्चाके जरिये ज्यादा अच्छा हो सकता है। इस-लिए मैंने ऐसा ही करनेका सोचा और पूर्व अफ्रीकाकी अनेक शिक्षा-संस्थाएं देख लेनेका निश्चय किया। भारत सरकारने इसी विषयमें सलाह देनेके लिए दो विशेषज्ञ वहां भेजे थे। उनकी रिपोर्ट भी मंगाकर मैंने पढ़ी थी।

हमारे देशके कुछ धर्मोपदेशक कभी-कभी पूर्व अफ्रीका जाते हैं। उनके प्रचारके फलस्वरूप हिन्दुस्तानी लोगोंकी नैतिक-सामाजिक स्थिति कितनी सुधरी है, यह देखनेकी भी इच्छा थी। क्योंकि कुछ लोगोंके मुंहसे उनकी स्थितिके बारेमें मैंने चिन्ताजनक बातें सुनी थी।

ऐसे अनेक कारणोंसे अफ्रीकाकी यात्रा करनेका मैंने निश्चय किया। तीन महीनोंके अंतमें आज कह सकता हूं कि इन तीनों महीनोंमें मुझे बहुत देखनेको मिला, उससे भी अधिक जाननेको मिला। मैं गांधीजीकी दृष्टिसे अफ्रीकाकी स्थिति की जांच कर सका। और मुझे लगता है कि इससे दुनियाकी आजकी स्थिति समझ-नेकी मेरी शक्ति बहुत बढ़ी है। साधारण तौर पर की हुई दो-तीन महीनेकी यात्रा-में जितना अनुभव और जानकारी प्राप्त की जा सकती है, उससे भी ज्यादा मैं प्राप्त कर सका हूं। क्योंकि इस यात्रामें मुझे अनेक लोगोंसे अनेक प्रकारका जितना सहयोग मिला, उतना शायद ही किसीको मिल सकता है। आज तक मैंने गुजराती भाषाकी जो भी थोडी-बहुत सेवा की होगी, उसके फलस्वरूप मुझे पूर्व अफ्रीकाके

असंख्य गुजराती हिन्दू-मुस्लिम घरोंमें प्रेमका स्थान मिला। अफ्रीकामें मैं गुजराती भाषाकी सांस्कृतिक शक्तिका विशेष दर्शन कर सका।

२. तैयारी

पूर्व अफ्रीका देखनेका अवसर बड़े विचित्र ढंगसे मुझे मिला। नई दिल्लीमें गांधी-स्मारक-संग्रह (म्यूज़ियम) तैयार कर देनेकी जिम्मेदारी स्मारक-निधिने मुझे सौंपी। इसलिए महात्मा गांधीके जीवनसे संबंध रखनेवाली वस्तुएं, उनके जीवन-प्रसंगके बयान वगैरा इकट्ठे करनेका काम मेरे सिर आया। यह सारी सामग्री कालक्रमके हिसाबसे इकट्ठी करनेके लिए पहले सौराष्ट्रका और बादमें दक्षिण अफ्रीकाका प्रवास करना स्वाभाविक था। मुझे लगा कि पूर्व अफ्रीका होकर दक्षिण अफ्रीका जानेमें सुविधा रहेगी। विश्वशांति परिषदके कारण भारत आये श्री मणि-लाल गांधीके साथ इस सारे प्रवासकी योजना सोच ली। उन्होंने मेरा यह विचार भारत सरकारके कमिश्नर और मेरे पुराने मित्र श्री अप्पा साहब पंतके सामने नैरोबीमें जाहिर किया। उन्होंने उसका हार्दिक स्वागत किया, क्योंकि वे मानव-हितोंकी चिंता रखनेवाले एक राजनीतिज्ञकी योग्यता और कुशलतासे पूर्व अफ्रीका-के सवालोंका हल खोज रहे थे और इस संबंधमें अनेक योजनाएं तैयार कर रहे थे। इसलिए न सिर्फ उन्होंने मेरे विचारका ही स्वागत किया, बल्कि ऐसा आग्रह शुरू किया कि दक्षिण अफ्रीका जब जाना होगा तब होगा, लेकिन पूर्व अफ्रीका तो आप-को तुरन्त आ ही जाना चाहिये।

पूर्व अफ्रीकामें ५० वर्षसे भी ज्यादा रहकर केवल अपनी कार्यकुशलतासे करोड़पति बने हुए सार्वजनिक कामोंके लिए बहुत दान देनेवाले श्री नानजीभाई कालिदाससे अप्पासाहबने मेरे संकल्पके बारेमें बात की होगी। उन्होंने हिन्दुस्तान पहुंचते ही मुझे पूर्व अफ्रीका आनेका निमंत्रण दिया और आर्थिक दृष्टिसे मुझे निश्चिन्त कर दिया।

अपने अनेक कामोंके कारण मैं इस आमंत्रणको आगे ही आगे ढकेलता गया लेकिन जब गांधीजीके जन्मस्थान पोरबंदरमें नानजीभाई द्वारा स्थापित कीर्ति-मंदिरको देखने वहां गया, तब उन्होंने परमिटके लिए कागजात तैयार कराकर हमारे दस्तखत लिये और हमें—मुझे और चि० कुमारी सरोज़िनी नानावटीको—पूर्व अफ्रीका भेज ही दिया!

शान्तिनिकेतन और सेवाग्राममें हो रही विश्वशांति परिषदमें दिसम्बरका महीना बीता। जनवरीका महीना बिहारके प्रवासमें बिताना पड़ा। २६ जनवरीके गणतंत्र-दिवसके उत्सवके लिए दिल्लीमें न रहकर मध्यप्रदेशके ५० हजार आदि-

वासियोंके एक विराट सम्मेलनमें हाजिर रहा। और फरवरीका महीना हिन्दुस्तान की ईशान्य सीमा पर सदियाके आसपास वहांके आबोर, मिशमी, वगैरा वनप्रदेश-के लोगोंके बीच घूमनेमें पूरा किया। इतना सब करनेके बाद ही मैं पोरबन्दर जा सका था। वहां पूर्व अफ्रीका जानेका निश्चय कर लेने पर भी अप्रैलमें राष्ट्रीय सप्ताहके दिनोंमें अनुगुल (उड़ीसा) में जो अखिल भारतीय सर्वोदय सम्मेलन होने-वाला था, उसे भला कैसे टाला जाता? वह काम अप्रैलमें पूरा करनेके बाद ही प्रवासकी तैयारी शुरू की।

आजकल जिस किसी देशमें जाना हो, वहांके लोगोंको निर्भय करनेके लिए कुछ खास रोगोंके इंजेक्शन लेने होते हैं। और वहांसे लौटते समय भी वहांके कोई रोग हम साथ न ले आवें इस हेतु यानी अपने देशके लोगोंको विदेशके रोगोंसे बचाने के लिए भी कुछ खास इंजेक्शन लेने पड़ते हैं। इस तरह हमने कॉलेरा, शीतला और यलो फीवर—इन तीनों रोगोंके इंजेक्शनकी मुसीबत भुगत ली। भारतमें अब हमारी सरकार हो जानेसे पासपोर्ट पानेमें कोई कठिनाई नहीं हुई।

निश्चित कब निकल सकेंगे, यह समय पर तय नहीं हो सका। इसलिए 'कंपाला' बोटमें हमें दूसरे दर्जेकी सुविधाओंसे ही संतोष करना पड़ा। ये सुविधाएं हर तरहसे अच्छी थीं और पैसे भी बच गये। ८ मई, १९५०को हमने हिन्दुस्तान छोड़ा—नहीं, ८ मईको स्टीमरमें बैठे, लेकिन स्वदेश छोड़ा तभी कहा जायगा, जब हमने ९ मईको मुरगांव (मार्मागोवा)का बन्दरगाह छोड़ा।

ऐसा नहीं कि इससे पहले मैंने कभी समुद्रयात्रा की ही नहीं थी। स्वदेश कभी छोड़ा नहीं था, ऐसा भी नहीं कह सकता। कलकत्तासे तीन दिनकी यात्रा करके रंगून पहुंचा था और उसी रास्ते लौटा भी था। एक बार बम्बईसे कराची और कराचीसे बंबई भी जहाजसे ही गया था। और एक बार तो बंबईसे कोलम्बोकी समुद्रयात्रा भी पूज्य गांधीजीके साथ की थी। लेकिन किसी वक्त यह भावना मनमें नहीं आई थी कि स्वदेश छोड़कर दूर जा रहा हूं। क्योंकि यह भावना बचपनसे ही बंधी हुई थी कि ब्रह्मदेश और लंका, दोनों हमारे ही देशके दो सुन्दर अंग हैं। इसलिए वहांके लोगोंकी रहन-सहनमें बहुत ज्यादा फर्क होते हुए भी उस समय यह विचार नहीं आया कि मैं परदेश जाता हूं या गया हूं।

इस वक्त हमारे यहांका पासपोर्ट वगैरा लेना और पूर्व अफ्रीकाकी सरकारसे परमिट लेना जरूरी होनेसे यह भावना मन पर जबरन बैठा दी गई कि मैं परदेश जा रहा हूं।

महेता ब्रदर्सके कर्मचारियों द्वारा हमारी सुख-सुविधाका पूरा ध्यान रखा गया था, इसलिए हमें तो सिर्फ स्टीमरमें जाकर बैठ ही जाना था।

कपड़ोंका सवाल परेशानी पैदा करनेवाला था। श्री नानजीभाईने कहा कि जैसे कपड़े आप यहां पहनते हैं, वैसे ही वहां भी पहनेंगे तो चलेगा। चि० बालने

बड़े आग्रहसे कहा कि धोती वगैरा कपड़े परदेशमें बिल्कुल काम नहीं देंगे। वहां आपको पायजामा, पेन्ट वगैरा पहनने ही चाहिये। चि० सतीशने उसका समर्थन किया। श्री देवदास गांधीने कहा कि हमारी धोती परदेशमें नहीं चलेगी, क्योंकि वहां पांवोंकी पिंडलियोंका खुला रहना असभ्य माना जाता है। धोतीके बदले मद्रासी ढंगसे लुंगी पहनें, तो हमारी विशिष्टता भी रह जायगी और परदेशके शिष्टाचारका भी पालन होगा। मेरी यह परेशानी देखकर हमारी पार्लियामेंटके स्पीकर श्री दादासाहब मावलंकरने यह फैसला दिया कि जहां केवल हिन्दुस्तानी ही इकट्ठे हुए हों या खानगीमें मिलना-जुलना हो, वहां धोतीसे काम चलाया जाय। परन्तु जब परदेशके लोगोंसे मिलना हो या किसी महत्त्वपूर्ण सभा अथवा पार्टीमें जाना हो, तब हमारी सर्वमान्य हो चली राष्ट्रीय पोशाक ही पहननी चाहिये—और वह पोशाक है चूड़ीदार पायजामा, बन्द कॉलरवाली अचकन और सिर पर गांधी-टोपी।

दादासाहबकी यह सूचना मुझे हर तरहसे उचित मालूम हुई। हमारे बीचका मतभेद दूर हुआ और देखते-देखते मैं चूड़ीदार पायजामा पहननेकी कलामें पारंगत हो गया!

भोजनके बारेमें मैंने तय किया कि परदेश जानेके बाद शक्कर न खानेका अपना बरसोंका आग्रह मुझे छोड़ देना चाहिए। वहां दूध तो गायका ही मिलता है, इसलिए दूधका सवाल ही नहीं उठता। फिर भी मनमें तय कर लिया कि परदेशमें दूध-घी वगैरा जैसा मिले वैसा ही लिया जाय। शामको सात बजेके बाद न खानेका नियम भी मैंने छोड़ दिया। सिर्फ एक निश्चय स्वभावतः कायम रखा कि परदेशमें होते हुए भी मांस, मुर्गी, मछली, अंडे वगैरा कुछ नहीं लूंगा। शराबका तो सवाल ही नहीं उठ सकता था। इस तरह मद्य-मांससे सुरक्षित रहूं, तो काफी है। बाकी नियमोंका आग्रह परदेशमें न रखा जाय।

३. समुद्रके सहवासमें

बम्बईसे मार्मागोवा जाने तक हिन्दुस्तानका पश्चिमी किनारा बायीं ओर दिखाई देता था। मां आंखोंसे ओझल नहीं होती तब तक बच्चेको यह विश्वास रहता है कि मैं मांके साथ ही हूं, उसी तरह किनारा दिखता रहा तब तक ऐसा नहीं लगा कि हिन्दुस्तान छोड़ दिया है। मार्मागोवा छोड़ देने पर हमारे स्टीमर 'कंपाला'ने स्वदेशसे समकोण बनाते हुए सीधे विशाल समुद्रमें प्रवेश किया। देखते-देखते हिन्दुस्तानका किनारा आंखोंसे ओझल हो गया और चारों तरफ केवल पानी ही पानी फैला दिखाई देने लगा। रात हुई और आकाशकी

ज्योतिर्मयी आबादी बढ़ी। उससे अकेलापन बहुत कम हो गया। लेकिन जैसे-जैसे भूमध्य रेखाकी तरफ बढ़ने लगे, वैसे-वैसे हवा और बादलोंकी चंचलता बढ़ने लगी। मौसम अच्छा होनेसे समुद्र शांत था। लहरें थोड़ा-थोड़ा हंसकर बैठ जाती थी। कुछ लहरें कच्ची छींकको भांति उठते-उठते ही शान्त हो जाती थी। किसी वक्त समुद्रका रंग आसमानी स्याही जितना आसमानी हो जाता; किसी वक्त काला स्याह। और जहाज पानी काटता हुआ आगे बढ़ता, तब दोनों ओर उसका जो सफेद फेन फैलता, वह उस पर बने हुए अबरी बेलबूटों-सा शोभा पाता। आसमानी पानी पर उसकी शोभा एक तरहकी दिखाई देती, काले पर दूसरी तरह की।पहले-पहले समुद्रके चेहरे पर लहरोके अलावा चमड़े पर पड़ी हुई झुर्रियोंकी-सी स्पष्ट छाप दिखाई देती। कभी ये सारी झुर्रियां गायब हो जाती और पानी चमकते हुए बरतनोंकी तरह सुन्दर दिखाई देता था। जहाज धीरे-धीरे डोलता चल रहा था। जहाज जब कदमे छोटे होते हैं, तब ज्यादा डोलते हैं। बड़े जहाज आसानीसे अपनी धीर गतिको छोड़ते नहीं। सामनेसे लहरें आती हैं, तब जहाज डोलनेके अलावा घुड़सवारकी तरह आगे-पीछे हिलता है, जिसे अंग्रेजीमे 'पिचिंग' कहते हैं। यह पिचिंग लम्बे समय तक जारी रहे, तो आदमीको अच्छा नही लगता। लेकिन उसे रोका कैसे जाय? झूले झूलकर उकता गये हों, तो झूला बन्द करके उस परसे उतरा जा सकता है। लेकिन यहां तो एक बार जहाज पर बैठे कि आठ दिन तक उसके हिलने-डुलनेको स्वीकार किये बिना कोई चारा ही नही। कभी-कभी शंका होती थी कि दोनों गतियोंके मिश्रणसे कहीं चक्कर तो नहीं आने लगेंगे? मनमें यह भी डर घर कर लेता कि चक्करकी शंका पैदा हुई, इसीलिए चक्कर आयेंगे। खाते समय स्वाद लेकर रसपूर्वक खाते हों, तो भी यह शंका बनी रहती कि खाया हुआ पेटमें टिकेगा या नही? इस शंकाको मिटाना आसान नही था। जो भी हो, हमने तो अपने आठों दिन खूब आनन्दमें बिताये। लोगोंने डरा दिया था कि आखिरी चार दिन कठिन जायेंगे। लेकिन हमें तो ऐसा कुछ मालूम नही हुआ। जिस दिन हमने भूमध्य रेखा पार की, उस दिन कुछ समय तक हवा खूब तेज चली। लेकिन उससे हम उदास, गमगीन नही हुए।

अपने चारों तरफ जब पानी फैला दिखता है, तब कुछ समय तक मजा आता है। बादमें सारा वातावरण गंभीर बन जाता है। लेकिन जब यह गंभीरता कम हो जाती है, तो आंखें घबराने लगती हैं। हमारी पूरी सृष्टि उस जहाजमें ही समा गई! विशाल समुद्रकी तुलनामें वह कितनी छोटी और तुच्छ मालूम होती थी! वह भी समुद्रकी दया पर जीनेवाली। और उस सृष्टिको छोड़कर बाकी सब पानी ही पानी। इतने पानीका आखिर उद्देश्य क्या है? जमीनका पट चाहे जितना विशाल हो, तो भी ऐसा नहीं लगता कि इतनी जमीन किसलिए बनाई गई होगी? विशाल, व्यापक और अनन्त आकाश देखकर भी ऐसा नहीं लगता कि इतने बड़े

आकाशका निर्माण किस लिए हुआ होगा ? लेकिन समुद्रका पानी देखकर यह विचार उठे बिना नहीं रहता। जमीनसे परिचित आंखोंको जब अपने चारों ओर पानीका अखंड विस्तार देखना पड़ता है, तब वे घबरा जाती हैं और अन्तमें ऊबकर क्षितिज पर छाये हुए बादलोंको देखकर आराम पाती हैं। लेकिन कई बार ये बादल बिना आकारके और अर्थहीन होते हैं। आकाश जब मेघाच्छन्न हो जाता है, तब तो उनकी उदासी असह्य हो उठती है। ईश्वरकी कृपा है कि आखिरकार इस घबराहटका भी अन्त आता है और खुली आंखें भी अन्तर्मुख होकर गहरे विचारमें तल्लीन हो जाती हैं।

रातमें और खास कर बड़े तड़के तारे देखनेमें मजा आता था। लेकिन 'पूरा आसमान तो हरगिज न देखने देंगे', ऐसा कहकर बच्चोंकी तरह बादल आसमानके मुंह पर अपने हाथ घुमाते रहते थे। उनकी दयासे जिस समय आकाश का जितना हिस्सा दिखता, उसीको पढ़ लेनेका हमारा काम रहता।

गुरुवारका प्रातःकाल होगा। जहाज सीधा चल रहा था और उसके मुख्य स्तंभके बिलकुल पीछे शर्मिष्ठा चमक रही थी। स्तंभकी आड़में भाद्रपदाकी चौकौन आकृति किसी तरह जम गई थी। नीचे उतरते हुए ध्रुव तारेके पास देवयानीका उदय हो रहा था। पौने पांच बजे और श्रवण सिर पर दिखाई देनेवाले मंगलके स्थान पर लटकने लगा। हंस, अभिजित और परिजात तीनों मिलकर एक सुन्दर चंदोवा बना रहे थे। बाईं तरफ गुरु, चन्द्र और शुक्र एक कतारमें आ गये थे। चन्द्रकी चांदनी इतनी मंद थी कि उसे छांछकी उपमा भी नहीं दी जा सकती। सामने देखने पर बाईं ओर वृश्चिक अपने तीनों नक्षत्र अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल-के साथ लटक रहा था। जब कि दाईं ओर स्वाति अस्त हो रही थी। बेचारा ध्रुव-मत्स्य (ध्रुव और उसके पासके छह तारोंका समूह) लगभग क्षितिजसे मिल गया था।

दूसरे दिन चन्द्रका पक्षपात शुक्रकी तरफ हो गया। रातमें सप्तर्षिके दर्शन करके हम सोये, उस समय पुनर्वसुकी छोटीसी नावको हमारे साथ दक्षिणकी यात्रा पर रवाना हुई देखकर बड़ा आनन्द होता था। पुनर्वसुकी नौकामें बैठनेकी चित्रा-की तमन्ना अभी पूरी नहीं हुई है। शायद मघा नक्षत्रकी ईर्ष्या इसमें रुकावट डालती होगी! शनिवारके दिन चन्द्र और शुक्रका जोड़ा शोभा पाता था। आखिर आखिरमें इन दोनोंने नीला रंग धारण कर लिया। भाद्रपदाकी चौड़ी चोंगी यहां खूब ऊंची चढ़ी हुई दीखती थी। ध्रुव कलसे ही लुप्त हुआ है।

सवेरे जब उषा स्वागत करनेके लिए मंद हास्य करती है, तब सारे क्षितिज पर चांदी जैसी चमकती किनारी बन जाती है। उसके बाद समुद्र प्रसन्न मुद्रामें हंसने लगता है और उषाको प्रगट होनेका मौका देता है।

शनिवारको सामनेसे आता हुआ एक जहाज दिखाई दिया। उसने अपने

दीयेका प्रकाश चमकाकर हमारे जहाजके साथ शिष्टाचार दिखाया। हमारे जहाज-ने भी उत्तर दिया ही होगा। दोनों जहाज बहुत समीप आ जाते, तो दोनों सीटी बजाते; लेकिन जहां सीटीकी आवाज नहीं पहुंचती, वहां प्रकाश दिखाकर काम चलाना पड़ता है। पूरे चार दिनके बाद हमारे जहाजके जैसी ही दूसरी एक सृष्टि-को जीवनपट पर विहार करते देखकर अत्यन्त आनन्द हुआ। हमारे जहाजके लोग अफ्रीकाके सपने देख रहे थे। सामनेवाले जहाजके यात्री मातृभूमि हिन्दुस्तानके सपने देख रहे होंगे। हर जहाजके यात्रियोंके मनमें चल रहे संकल्प-विकल्पोंका कुल हिसाब लगाया जाय तो कैसा मजा आये!

जहाज पर यात्रियोंकी तीन जातियां होती हैं। प्रतिष्ठाकी अस्पृश्यता भोगनेवाले होते हैं पहले दर्जेके यात्री। उन्हें ज्यादा सुविधाएं मिलें तो कोई चिन्ता नहीं, लेकिन उनका बड़प्पन इस बातमें है कि उनके राज्यमें दूसरा कोई प्रवेश भी नहीं कर सकता। ऊपरी डेकका बहुत बड़ा भाग उनके आराम और खेलकूदके लिए 'रिजर्व' होता है। दूसरे दर्जेके यात्री भी काफी अच्छी सुविधा भोगते हैं। लेकिन तीसरे दर्जेके यात्रियोंकी गिनती तो मनुष्योंमें होती ही नहीं। उनके झुंडके झुंड पशुओंकी तरह चाहे जहां ठूस दिये जाते हैं। आठ दिन तक मनुष्यको पशु-जीवन बिताना पड़े, यह कोई मामूली मुसीबत नही है।

और अब दूसरे और तीसरेके बीचमें ड्योढ़ा दर्जा निकाला गया है। वह पशु और मनुष्यके बीचका वानर वर्ग कहा जा सकता है। उसमें भीड़ तो खूब होती है, लेकिन यही गनीमत है कि यात्री मनुष्यकी तरह सो सकते हैं।

हम जहाज पर हैं, ऐसा कुछ लोगोंको मालूम हुआ, तो वे हमसे बातें करने आने लगे। उसमें भी हमारे सुबह-शाम प्रार्थना करनेके समाचार जब जहाजके खलासियों तक पहुंचे, तो उन्होंने हमें नीचेके डेक पर शामको प्रार्थना करनेके लिए बुलाया। लगभग सारे खलासी सूरत जिलेके थे। भजनके पूरे रसिये। वे अनेक भजन जानते थे और स्वर-तालके साथ गा सकते थे। उनकी भजन-मंडली जब जमती तब वे सारे दिनकी थकान और जीवनकी सारी चिंताएं भूल जाते। आसमानी रंगकी पोशाक पहनकर सारे दिन यंत्रकी तरह काम करनेवाले यही लोग हैं, यह जानते हुए भी यह सच नहीं लगता था। उनके समक्ष मैंने अनेक प्रवचन किये। मैंने उन्हें यह भी समझाया कि जमीन पर ही दीवारें चुनी जा सकती हैं, समुद्र पर नहीं। इसलिए खलासियोंके यहां जात-पांतकी दीवारें नहीं रहनी चाहिये। दरिया पर तो उन्हें दरियादिल बनना चाहिये।

हम लोग इस तरह प्रार्थना और भजनमें तल्लीन रहते थे, उसी बीच जहाजके बहुतसे गोवानी लोगोंने एक रातको स्त्री-पुरुषोंके नाचका आयोजन किया। इसके लिए उन्होने जो चंदा किया, उसमें हमें भी शरीक किया इसलिए हम हकदार दर्शक बने!

गोवाके ईसाइयोंमें यूरेशियन शायद ही देखनेको मिलेंगे। धर्मसे ईसाई लेकिन खूनसे शुद्ध भारतीय ऐसे लोगोंने पश्चिमके जो संस्कार अपनाये हैं, उनका असर देखने लायक होता है। कई युगल संयमपूर्वक नृत्यकलाका आनन्द ले रहे थे। कुछ जोड़े ऐसे गंभीर, अलिप्त और यांत्रिक ढंगसे नाच रहे थे, मानो कोई सामाजिक विधि पूरी कर रहे हों। जब कि दूसरी कुछ जोड़ियां नृत्यके नियमोंके अनुसार बन सके उतनी छूट लेकर नृत्यमें और एक-दूसरेमें लीन दिखाई देती थीं। एक दो जोड़ियोंकी उमर और ऊंचाई इतनी विषम थी कि मनमें यही विचार आता था कि इतनी बड़ी विडम्बनाका भोग उन्हींको कैसे बनना पड़ा। तंग जगहमें इतने सारे लोगोंका नाच जैसे तैसे पूरा हुआ। अन्त तक जागनेकी इच्छा न होनेसे ११ बजनेसे पहले ही हम लोग सो गये।

हमारा जहाज पश्चिमकी ओर यानी पृथ्वीकी गतिसे उल्टी दिशामें चलता था, इसलिए हमें लगभग रोज ही घड़ीके कांटे घुमाने पड़ते थे। जहाजकी तरफसे सूचना मिलती कि 'मध्यरात्रिमें आधा घंटा कम करो' या 'एक घंटा कम करो'। सृष्टिके नियमको समझकर हम इतना नुकसान उठानेको तैयार थे! अफ्रीका पहुंचने तक हमने ढाई घंटे खोये। (बेल्जियम कांगो जाने पर एक घंटा और खोना पड़ा, इसका वर्णन यथास्थान आयेगा।)

भूगोलके तथ्य विस्तारसे न जाननेवाले पाठकोंके लिए इतना कह देना जरूरी है कि रेखांशकी हर १५ डिग्री पर एक घंटा घटाना या बढ़ाना पड़ता है। प्रशांत महासागरमें जब जहाज एशिया और अमेरिकाके बीच १८० रेखांश पर होते हैं, तब उन्हें आते या जाते एक पूरा दिन बढ़ाना या घटाना पड़ता है। इस रेखांशको अंग्रेजीमें 'डेट लाइन' कहते हैं। जिस तरह हमारे यहां अधिक मास आता है, उसी तरह 'डेट लाइन' पर जाते हुए एक दिन अधिक आता है और आते हुए एक दिनका क्षय होता है।

आठ दिनसे न तो कोई अखबार, न डाक, न मुलाकाती और न कोई शहर या गांव देखनेको मिला—यहां तक कि पहाड़ या द्वीप भी सपनेकी संपत हो गये थे। ऐसी हालतमें जब घंटेके घंटे और दिनके दिन चुपचाप बीत जाते हैं, तब वार और तारीखका भी ठिकाना नहीं रहता। हमारे जहाजकी ऊंचाईका हिसाब करते हुए जब मैंने इस बातकी जांच की कि हमारे आसपास क्षितिज तक कितना समुद्र फैला हुआ है, तो जहाजवालोंसे पता चला कि हमारी आंखें एक बारमें चारों तरफ २५० वर्ग मीलमें फैला हुआ समुद्र देख या पी सकती थीं। कितनी बड़ी शांति! और वह भी डोलती, झूलती, बहती और फिर भी स्थिर। आकाशके आशीर्वादके नीचे शांतिका साम्राज्य फैला था। Swelling and rolling peace—abiding and abounding.

कौन जाने किस तरह इस शान्तिके अनुभवके साथ मुझमें मानव-प्रेम उमड़ रहा

था और सारी मानव-जातिसे 'स्वस्ति, स्वस्ति, स्वस्ति' कह रहा था। मानव-जाति का इतिहास आज भी कुल मिलाकर सुन्दर नहीं बन पाया है। इसी समुद्रने कितने ही अन्याय और अत्याचार देखे होंगे; कितने ही गुलामोंकी ठंडी आहें यहांकी हवामें मिली होंगी; और कितनी ही प्रार्थनाएं सूर्य, चन्द्र और तारों तक पहुंचकर भी व्यर्थ गई होंगी। लेकिन इतना होते हुए भी अगर मनुष्यके बहे हुए खूनसे समुद्रमें लाली नहीं आई, दुःखियोंकी आहोंसे यहांकी हवा कलुषित नहीं हुई और लोगोंकी निराशा से आकाशके नक्षत्रों और तारागणोंकी ज्योति मंद नहीं पड़ी, तो मनुष्य-जातिका थोड़ासा इतिहास पढ़कर मेरा मानव-प्रेम किस लिए संकुचित या कम हो? यदि मैं अपने असंख्य दोषोंको भूलकर अपने पर प्रेम कर सकता हूं और अपने विषयमें अनेक आशाएं बांध सकता हूं, तो मेरे ही अनत प्रतिबिम्बरूप मानवजातिको मेरा पूरा प्रेम क्यों न मिले?

इस भावनाके साथ अफ्रीकाकी भूमि पर मनुष्य-जातिके चल रहे त्रिखंड (एशिया, यूरोप और अफ्रीका) सहकारको देखनेके लिए मैं मोम्बासा पहुंचा।

इन आठ दिनोंमें खूब पढ़ने और लिखनेकी जो आशा रखी थी, वह पूरी नहीं हुई। लेकिन ये आठ दिन जीवनके दर्शन, चिन्तन और मननसे भरपूर थे।

४. प्रवेशद्वार

मैंने माना था कि मोम्बासा उतरकर सीधे नैरोबी जाना होगा। मोम्बासामें चार-पांच दिन रहनेका श्री अप्पासाहबने किस लिए तय किया होगा, यह मेरे ख्यालमें नहीं आया था। मोम्बासाके बारेमें मेरी इतनी ही कल्पना थी कि वह पूर्व अफ्रीकाका एक मुख्य बन्दरगाह और व्यापारका केन्द्र है। इसलिए जब ११ मईके सुन्दर प्रभातमें हम मोम्बासा पहुंचे और उसका हराभरा आकर्षक किनारा देखा, तो हमारे आश्चर्यका पार न रहा। हम कुल आठ जन थे। मेरे साथ चि० सरोजका आना पहलेसे ही तय हो चुका था। आखिर-आखिरमें श्री शरद पंड्याने साथ आनेकी इच्छा बताई। पासपोर्ट, परमिट वगैराकी व्यवस्था भी तारसे हो सकी। इस तरह हम तीन हो गये। श्री अप्पासाहबके आमंत्रण और भारत सरकारकी अनुमतिसे श्री कमलनयन बजाज भी पूर्व अफ्रीका देखनेके लिए रवाना हुए थे। उन्होंने जहाजमें हमारे साथ रहनेके लिए अपना कार्यक्रम बदला और कुछ असुविधा उठाकर भी हमारे स्टीमरमें ही जगह प्राप्त की। अपने बच्चोंको देशाटनसे मिलने-वाली शिक्षाका महत्त्व पूरी तरह समझनेके कारण श्री कमलनयनने चि० राहुल और छोटी बच्ची सुमनको भी साथ लिया। इसके अलावा, खाने-पीनेमें सुविधा रहे, इस ख्यालसे उन्होंने दो नौकर भी साथ ले लिये थे। इस तरह हमारा आठ

आदमियोंका काफिला अफ्रीकाकी भूमि पर उतरनेके लिए अक्षरशः उत्कंठ हो गया था। हम तो क्या, लगभग सारे ही यात्री अफ्रीकाके जिराफकी तरह अफ्रीकाके दर्शनके लिए उत्कंठ होकर (गर्दन ऊंची उठाकर) जहाजके कठघरेके पास इकट्ठे हो गये थे। आखिर-आखिरमें एक विघ्न पैदा हुआ। जहाज पर किसी बच्चेको छोटी माता निकली थी। इसलिए जहाजको क्वारेन्टाईनमें रखनेकी बात चली। पहले और दूसरे दर्जेके यात्री हर बातमें सुरक्षित होते हैं, और हम ठहरे भारत सरकारके कमिश्नरके मेहमान ! हमें सारी सुविधाएं समय पर आसानीसे मिल सकी। हमें जो रुकना पड़ा, वह दूसरोंकी तुलनामें कुछ भी नहीं था। उतनेमें नहा-धोकर हमने नाश्ता कर लिया। श्री अप्पासाहबकी तरफसे उनके प्राइवेट सेक्रेटरी श्रीतात्यासाहब इनामदार सवेरे ही बन्दरगाह पर आ पहुंचे थे। उतरनेका समय हुआ कि खुद अप्पासाहब पंत भी जहाज पर आ पहुंचे और प्रेमसे मिले। दूसरे लोगोंको जहाज पर चढ़नेकी इजाजत मिले, इसके पहले ही एक पत्र-प्रतिनिधि बन्दरगाहके डॉक्टरके साथ जहाज पर आ गये और अपने धर्मके प्रति वफादारी बताकर उन्होंने मुझसे एक संदेश मांगा। मैंने उन्हें नीचेका सन्देश लिख दिया, जिसे उन्होंने उसी दिन कई अखबारोंमें छपा दिया था :

> "मैं अफ्रीकाके किनारे पर आज पहली ही बार पांव रख रहा हूं। मैं इस भूमिको हिन्दुस्तान जितना ही पवित्र मानता हूं। इस अफ्रीकामें ही दुनियाको महात्मा गांधीका पहला परिचय मिला। इस अफ्रीका खंडमें दुनियाके तीन खंडोंके मानव परस्पर सहकारके लिए आकर इकट्ठा हुए है और उस विश्व-बन्धुत्वको सिद्ध करनेका प्रयत्न कर रहे हैं, जो मानव-जातिका अंतिम भविष्य है। ऐसी भूमि पर पैर रखते हुए मैं उन अफ्रीकन लोगोंको प्रणाम करता हूं, जिनकी यह मातृभूमि है।"

उतरते ही हम श्री नानजीभाईके सुन्दर और विशाल भवनमें जा पहुंचे। उस दिन हमें पूरा आराम लेने दिया गया। शामको मोटरकी मददसे सारा शहर देख लिया—खास करके बन्दरगाहका भाग, किलेका भाग और बाजार वगैरा। समुद्र किनारे चलते-चलते दीप-स्तंभ देखा, सरकारी मकान देखे, प्रवालके कीड़ों द्वारा बनाये हुए पोले पत्थर देखे। और दूसरे दिनसे शुरू होनेवाले भरेपूरे कार्यक्रमके लिए तैयार हो गये।

पहली बार देखकर मैं समझ गया कि मोम्बासा जैसे यूरोपियनोंका है, वैसे भारतीयोंका भी है। उन्होंने यहां काफी चमकीले सार्वजनिक जीवनका विकास किया है। और उनके आश्रयमें यहांके मूल निवासी अफ्रीकन लोग नये संस्कार ग्रहण करके नई सभ्यताके अच्छे-बुरे सब तत्त्व ग्रहण कर रहे हैं।

मोम्बासा एक टापू ही कहा जायगा। उसके दोनों तरफ जो दो खाड़ियां हैं उनमेंसे उत्तर दिशाकी खाड़ीमें अरबस्तान और हिन्दुस्तानसे आनेवाले छोटे जहाज

लंगर डालते हैं। इन जहाजोंको यहां 'ढाऊ' कहते हैं। दक्षिण दिशाकी खाड़ीमें बड़े-बड़े स्टीमर आकर ठहरते हैं। इस तरफके बन्दरगाहका नाम किलिन्डिनी है। चाहे जिस ओरसे देखिये, समुद्रकी शोभा फीकी पड़ती ही नहीं। शहर नये और पुरानेका मिश्रण है।

मोम्बासा बहुत पुराना बन्दरगाह है। लगभग दो हजार वर्ष पहले लोगोंने यह खोज निकाला था कि सालके अमुक महीनोंमें हवा ईशान्य कोणसे नैऋत्य कोणकी तरफ बहती है और उस मौसमके खत्म होनेके बाद दूसरे कुछ खास महीनोंमें इससे उल्टी हवा चलती है। इतनी शोध हो जानेसे अरबस्तान और हिन्दुस्तानके बहादुर नाविक दिसम्बरसे अप्रैल तकके महीनोंमें अपने-अपने देशसे सीधे अफ्रीकाके किनारे आने लगते और यहांका व्यापार पूरा करके अगस्तके आसपास वे लौट जाते। इस तरह यातायात शुरू होनेसे यहांका व्यापार खूब चमका। इससे चीजों और संस्कारोंके लेन-देनका उत्तम साधन उत्पन्न हुआ और दुनियाका इतिहास बदला। जहाजोंके लिए मोम्बासा उत्तम बन्दरगाह है, इसलिए उस पर अधिकार करनेके लिए अरब और पुर्तगाली लोगोंके बीच सदियों तक खूब झगड़ा चला। पुर्तगालियोंने सन् १६०० से पहले यहां एक किला बनवाया और उसका नाम फोर्ट जीसस रखा। अपना नाम एक लड़ाईमें काम आनेवाले किलेको दिया गया यह जानकर शांतिके पैगम्बर ईसाको कैसा लगा होगा? आजकल इस किलेसे जेलका काम लिया जाता है और झांझीबारके सुल्तानका झंडा आज भी उस पर फहराता रहता है।

यहांके बहुतेरे मकान प्रवालके कीडों द्वारा बनाये हुए पत्थरोंके होते हैं। प्रथम विश्वयुद्धके दिनोंमें एक बार भारतसे कुछ जहाज यहां आये थे। उनके पास काफी माल नहीं था, इसलिए जहाजोंके लिए जरूरी बोझके (बेलास्टके) रूपमें पत्थर भरकर लाये गये थे। उन पत्थरोंसे एक मुहल्लेके अनेक मकानोंकी नीवें चुनी गयी थी। इस तरह भारतके पत्थरों पर खड़े मकान अफ्रीकामें देखकर मेरे मनमें अनेक विचार पैदा हुए और मिट गये। यदि सौ-एक साल तक दुनियामें शांति बनी रही, तो मोम्बासाका बन्दरगाह भी हमारे बम्बई जैसा ही विकास करेगा।

मोम्बासामें हम लोग ६ दिन रहे। इस बीच हमारा खास काम वहांकी शिक्षण संस्थाएं देखनेका था। सारे अफ्रीकामें तीन प्रकारकी शिक्षण-संस्थाएं तो हैं ही। गोरे अलग पढ़ते हैं, अफ्रीकन लोग अलग पढ़ते हैं और हिन्दुस्तानी अलग पढ़ते हैं। हिन्दुस्तानियोंमें धर्मभेद और जातिभेद तो होंगे ही, होते हैं। मुसलमानोंमें भी आगाखानी (इस्माइली), इशनासरी वगैरा भेद हैं। फिर हिन्दुओंमें लुहाणा, वीसा, ओसवाल, जैन, पाटीदार वगैरा भेद होने ही चाहिये। यह हुई गुजरातियोंकी बात। इसके अलावा, पंजाबियोंकी सिक्ख पाठशालाएं भी हैं। इन लोगोंमें भी यों ही पड़े हुए दो पन्थ पाये जाते हैं।

और गोवाके किरिस्तांव लोग खुदको अलग मानकर अलग संस्था चलाते हैं,

सो अलग। लड़कियोंको शिक्षा देनेवाली संस्थाएं कम हैं, लेकिन हैं जरूर। और उनमें भी जात-पांतके भेद तो है ही। इन संस्थाओंमें जाति या धर्मके नाते शिक्षाका कोई भेद नही है। प्रार्थना या धर्मोपदेशोंमें अमुक आग्रह पाये जाते हैं। इससे धार्मिकता बढ़नेके बजाय पंथाभिमान और साम्प्रदायिकता ही बढ़ी हुई देखनेमें आती है। 'वे लोग इस तरह मानते हैं, हम उस तरह नही मानते; हमारी मान्यताएं और विश्वास उनसे अलग हैं इसलिए हम उनसे अलग हैं'—इतना बच्चों के मन पर बैठा दिया कि धर्मकी रक्षा हो गई! उस पर भी खूबी यह कि ये सब विश्वास पालनेके लिए नही, माननेके लिए ही होते हैं।

ऐसी दलीलें की जाती हैं कि दूसरी जातिके लड़के हमारी जातिके बच्चोंके साथ पढ़ें, तो हमारी जातिके बच्चोंके संस्कार बिगड जायंगे और भ्रष्ट हो जायेंगे। लेकिन वे संस्कार कौनसे हैं, यह कोई निश्चित नहीं कह सकता। रहन-सहन तो सबका एकसा ही होता है। सच पूछा जाय तो ये सारे पंथ, उनकी जातियां और उपजातियां अलग-अलग कुटुम्ब-समूह ही हैं। और संकुचित दृष्टि रखकर अपने-अपने समूहके स्वार्थ सिद्ध करनेके लिए ही उत्सुक रहते हैं। जो लोग आपसमें शादी-ब्याह कर सकते हैं, उनकी एक जाति होती है। उस जातिके धनी लोग इस बात का ध्यान रखते हैं कि अपने दान-धर्मका लाभ अपनी जातिवालोंको ही मिले और उसके लिए धर्म, संस्कृति और अध्यात्मवादकी बातें सामने रखते हैं।

जहां-जहां अच्छे शिक्षक हैं, वहां शिक्षाका वातावरण तुरन्त मालूम होता है। लेकिन कुल मिलाकर यही कहना पड़ेगा कि पूर्व अफ्रीकामें हमारे लोगोंकी शिक्षा अच्छी हालतमें नही है।

सच कहा जाय तो हमारे लोगोंको सारे पूर्व अफ्रीकाके लिए एक स्वतंत्र शिक्षा-मंडल कायम करना चाहिये। उसमें उत्तम शिक्षाशास्त्री, अनुभवी समाज-नेता और दूरंदेशीसे सलाह देनेवाले राष्ट्रपुरुष ही हों। जात-पांत या धर्मके भेद-भावोंको छोड़कर सारी शिक्षण-संस्थाएं ऐसे शिक्षा-मंडलके हाथमें सौंप दी जानी चाहिये। हर संस्थाका बजट भले अलग रहे। किसी संस्थाका कुछ खास बातोंके लिए आग्रह हो, तो उनकी रक्षा करनेका वचन भी ऐसा मंडल दे दे। लेकिन सारी संस्थाएं एक मंडलके मातहत काम करें, तभी शिक्षाकी दशा सुधर सकती है। ऐसे मंडलकी प्रेरणा मिले, तो शिक्षक भी तेजस्वी बनेंगे और शिक्षा स्वावलम्बी होगी।

एक बात देखकर मुझे विशेष संतोष हुआ। यहांकी हिन्दू और मुसलमान दोनों शिक्षा-संस्थाओंमें शिक्षा गुजरातीके जरिये ही दी जाती है। सच पूछा जाय तो कच्छ, सौराष्ट्र और गुजरातसे आनेवाले हिन्दू और मुसलमानोंका एक ही समाज है। व्यापारमें तो वे एक दूसरेके साथ जुड़े हुए हैं ही। सामाजिक दृष्टिसे भी कुछ हिन्दू-मुस्लिम परिवारोंमें ऐसा मीठा सम्बन्ध है, मानो वे एक ही हों। हिन्दुस्तानके टुकड़े हुए इसलिए हमें भी यहां अपने संमिश्र जीवनके टुकड़े करने ही

इस जात-पांतके भेदोंके कारण हिन्दुओंका कोई एक समाज रहा ही नहीं। केवल अनेक और भिन्न समाजोंकी एक खास संख्याको हिन्दू नामसे पुकारा जाता है। हम अभिमानके साथ यह कहते हैं कि विविधतामें एकता हिन्दू धर्मका लक्षण है, लेकिन प्रत्यक्ष व्यवहारमें विविधता पर ही सारा जोर लगाया जाता है। अगर कोई एकता टिकी रही हो, तो वह एकसी अज्ञानता, अदूरदृष्टि और झक्कीपनमें ही दिखाई देती है !

कुछ लोग जात-पांतके बंधनोंको तोड़कर केवल चार वर्ण रखनेकी हिमायत करते हैं। आज ये चार वर्ण नाममात्रके ही हैं—वे नाम नहीं, केवल विशेषण ही रह गये हैं। वर्णोंकी आजकी कल्पना पर विचार करते हुए उनका उपयोग केवल मनुष्यके जीवनको एकांगी बनानेके लिए ही है। जब तक हम जाति और वर्ण दोनोंको खत्म नहीं कर देते, तब तक हमारी मनुष्यता पूर्ण रूपसे प्रकट नही हो सकेगी। अनेक जगह मैंने लोगोंसे कहा कि हमारे धर्मशास्त्रोंके अनुसार सतयुगकी स्थिति उत्तम होती है। उस युगमें एक ही ईश्वर और एक ही वर्ण हो सकता है, ऐसा हमारे धर्मशास्त्रोंमें कहा गया है। लोग बिगड़े, युगका ह्रास हुआ, इसलिए लाचार होकर अनेक वर्णों और जात-पांतके भेद पैदा करने पड़े। लोगोंके सामने मैं राजा भर्तृहरिका यह वचन भी उद्धृत करता था—'ज्ञातश्चेद् अनलेन किम् ?'—जाति हो तो भला आगकी क्या जरूरत ? यदि आपके पास जातिके झगड़े हों, तो समाजको जलाकर खाककर डालनेके लिए दूसरी किसी आगकी जरूरत नही।

और अफ्रीका जैसे दूरके देशमें रहन-सहनके बारेमें जात-पांतके बन्धन कोई पालता भी नहीं। घर-घर अफ्रीकन नीग्रो नौकर रखे जाते है, जो कपड़े धोते हैं, पानी भरते हैं, खाना बनाते हैं और बच्चोंको संभालते है। ऊंचे वर्गके यानी खर्चीले रहन-सहनवाले लोगोंके यहां कम-ज्यादा मात्रामें अंडोंका, मांसका और मदिराका व्यवहार होता है। इसमें अपवाद भी है। लेकिन अपवादकी संख्याका पता न लगानेमें ही बुद्धिमानी है। यहां मेरा उद्देश्य सामाजिक जीवन पर टीका करनेका नही, बल्कि यह शंका उठानेका ही है कि ऐसा जीवन जीनेवाले जात-पांतके भेदों और उनके अलग संस्कारोंकी बात कैसे करते होंगे ?

अलग-अलग शिक्षण-संस्थाएं होनेसे पैसा व्यर्थ बरबाद होता है और शिक्षाका उद्देश्य पूरा नहीं होता। शिक्षित लोगोंमें शिक्षाके संस्कार कोई देख नही सकता, लेकिन बड़े-बड़े सुन्दर मकान आसानीसे देखे जा सकते है। दानशूर लोग मकान बनवानेके लिए खुले हाथों पैसा देते है। पूर्व अफ्रीकामें अनेक विद्यालयोंकी इमारतें देखकर ईर्ष्या सी होती है। लेकिन उन सुन्दर इमारतोंमें मिलनेवाली शिक्षाकी दीन दशा देखकर दुःख हुए बिना नही रहता। कुछ संस्थाओंका प्रबन्ध अच्छा है, लेकिन सब जगह एक ही शिकायत सुननेमें आती है कि शिक्षक नहीं मिलते। और मिले हुए टिकते नही। शिक्षकोंका कहना है कि माता-पिता और संस्थाके व्यवस्थापक

इतना ज्यादा हस्तक्षेप करते हैं कि बालकोंमें किसी तरहका अनुशासन या लगन पैदा की ही नहीं जा सकती।

जहां-जहां अच्छे शिक्षक हैं, वहां शिक्षाका वातावरण तुरन्त मालूम होता है। लेकिन कुल मिलाकर यही कहना पड़ेगा कि पूर्व अफ्रीकामें हमारे लोगोंकी शिक्षाकी हालत अच्छी नहीं है।

सच कहा जाय तो हमारे लोगोंको सारे पूर्व अफ्रीकाके लिए एक स्वतंत्र शिक्षा-मंडल कायम करना चाहिये। उसमें उत्तम शिक्षाशास्त्री, अनुभवी समाजशास्त्री और दूरंदेशीसे सलाह देनेवाले राष्ट्रपुरुष ही हों। जात-पांत या धर्मके भेदभावोंको छोड़कर सारी शिक्षण-संस्थाएं ऐसे शिक्षा-मंडलके हाथमें सौंप दी जानी चाहिये। हर संस्थाका बजट भले अलग रहे। किसी संस्थाका कुछ खास बातोंके लिए आग्रह हो, तो उनकी रक्षा करनेका वचन भी ऐसा मंडल दे दे। लेकिन सारी संस्थाएं एक मंडलके मातहत काम करें, तो ही शिक्षाकी दशा सुधर सकती है। ऐसे मंडलकी प्रेरणा मिले, तो शिक्षक भी तेजस्वी बनेंगे और शिक्षा स्वावलम्बी होगी।

एक बात देखकर मुझे विशेष संतोष हुआ। यहांकी हिन्दू और मुसलमान दोनों शिक्षा-संस्थाओंमें शिक्षा गुजरातीके जरिये ही दी जाती है। सच पूछा जाय तो कच्छ, काठियावाड़ और गुजरातसे आनेवाले हिन्दू और मुसलमानोंका एक ही समाज है। व्यापारमें तो वे एक दूसरेके साथ जुड़े हुए हैं ही। सामाजिक दृष्टिसे भी कुछ हिन्दू-मुस्लिम परिवारोंमें ऐसा मीठा सम्बन्ध है, मानो वे एक ही हों। हिन्दुस्तानके टुकड़े हुए इस लिए हमें भी यहां अपने संमिश्र जीवनके टुकड़े करने ही चाहिये, ऐसा समझकर अनेक स्थानोंमें हिन्दू-मुसलमानोंके बीच वैरभाव पैदा किया गया है। उसकी शुरुआत किसने की और किसने बादमें जवाब दिया, इस सवालको लेकर भी मतभेद और झगड़े चलते हैं। क्योंकि दोनों पक्ष यह मानते हैं कि ऐसा भेद पैदा करनेकी दरअसल कोई जरूरत नहीं थी और ऐसे भेदसे दोनोंका बेहद नुकसान भी हो रहा है।

मैंने उन लोगोंको कई जगह कहा कि मैं भारतसे आया, तब मुझे कई रोगोंकी रोकथामके इंजेक्शन लेने पड़े थे। सचमुच हमारे लोग हिन्दुस्तानसे जब यहां आयें, तो उन्हें वहांके हिन्दू-मुसलमान वैमनस्यरूपी रोगकी रोकथामका इंजेक्शन लेकर ही यहां आना चाहिये। कुछ जगहों पर जैसे सारा सामान धुएंकी कोठरीमें रखकर 'डिसइन्फेक्ट' किया जाता है, वैसे ही हिन्दुस्तानसे आनेवाले अखबार भी डिसइन्फेक्ट करके ही पढ़ने चाहिये। तभी हम इस जहरसे बच सकेंगे।

हमारे लोगोंने पूर्व अफ्रीकामें अपने राजनीतिक अधिकारोंकी रक्षा करनेके लिए जगह-जगह इण्डियन एसोसियेशनोंकी स्थापना की। अब कुछ लोगोंको इस 'इण्डियन' शब्दसे एतराज होता है। यह अंधापन इस हद तक पहुंच गया है कि

पक्षाभिमानी लोगोंकी जिद है कि जिस तरह हिन्दुस्तानके टुकड़े हुए, उसी तरह इण्डियन एसोसियेशनोंके भी टुकड़े होने चाहिये और उनके फंडका बंटवारा होना चाहिये।

जिन शिक्षण-संस्थाओंमें हिन्दू-मुस्लिम बच्चे एक साथ पढ़ते हैं, वहां कहीं-कहीं इस बात पर जोर दिया जाता है कि शिक्षकोंकी नियुक्तिमें हिन्दू-मुस्लिम अनुपातका ध्यान रखना चाहिये! व्यवस्थामंडलमें भी जातीय अनुपातका सवाल पैदा होता ही है। हर जगह दोनों समाजोंके नेता निश्चित रूपसे यह बात कहते हैं कि "हमारे मनमें अभी तक ऐसा भेदभाव था ही नहीं। सामनेवाले पक्षकी नीयत बिगड़ी, इसलिए आत्मरक्षाके खातिर हमें सावधान होना पड़ा और कड़े उपाय काममें लेने पड़े।"

भाषाके बारेमें गुजरातीके कारण जो एकता कायम है, वहां भी मुट्ठीभर पंजाबी लोग राष्ट्रभाषाको आगे करके झगड़ा पैदा कर रहे हैं। पंजाबी मुसलमान उर्दूके हामी हैं, जब कि पंजाबके सिक्ख हिन्दीका आग्रह रखते हैं। सिक्ख लोगोंने शिक्षा-विभागके साथ बातचीत करके गुरुमुखीको शिक्षाका माध्यम स्वीकार करवाया है।

पूर्व अफ्रीकामें महाराष्ट्री लोग इतने कम हैं कि वे भाषाके झगड़ेमें भाग नहीं ले सकते। वे सब अपने बच्चोंको गुजराती स्कूलोंमें भेजते हैं। उन्हें गुजरातीके जरिये शिक्षा दी जाती है। और इससे उन्हें कोई नुकसान नहीं हुआ है। मराठी भाषाके संस्कार कायम रखनेका काम वे घरोंमें आसानीसे कर सकते हैं। पंजाबी लोग भी यदि इसी नीति पर चलें, तो यहांकी शिक्षाका सवाल आसानीसे हल हो जाय। यहांके लगभग ६० प्रतिशत हिन्दुस्तानी लोग गुजराती जानते ही हैं। अगर हिन्दुस्तानकी राष्ट्रभाषा हिन्दी है, पाकिस्तानकी उर्दू है, तो पूर्व अफ्रीकाके हिन्दुस्तानी लोगोंकी सूभीतेकी भाषा गुजराती है। धर्मके नाम पर जिस तरह हमारे झगड़े चलते हैं, उसी तरह अगर हम भाषाके नाम पर भी अंधे बनकर झगड़े चलायेंगे, तो हमारा हिन्दुस्तानी समाज हर तरहसे छिन्न-भिन्न हो जायगा।

प्रवास-वर्णनके आरंभमें ही दो महीनोंके अपने अनुभवोंका निचोड़ मैंने दे दिया है, क्योंकि हर जगह उसकी थोड़ी-थोड़ी चर्चा करनेमें असुविधा होगी।

डॉ० कर्वे मोम्बासामें खास ध्यान खींचनेवाले सज्जन हैं। वे महर्षि अण्णासाहब कर्वेके सुपुत्र हैं। बातें करते समय वे पूरे व्यवहारवादी दिखाई देते हैं, लेकिन बरसोंसे वे पंड्या क्लिनिक नामक एक अच्छेसे अच्छा अस्पताल नितान्त सेवा-भावसे चला रहे हैं। पंड्या परिवार समाज-सेवा और दानके लिए मशहूर है। उनके उदार दानके कारण ही इस अस्पतालको 'पंड्या क्लिनिक' नाम दिया गया है। डॉ० कर्वे इस संस्थाके सब कुछ हैं। महायुद्धके दिनोंमें खलासियोंके आराम-गाहके लिए बनाई गई एक बड़ी इमारत भाड़े पर लेकर उसमें यह अस्पताल चलाया

जाता है। डॉ० कर्वेने बड़े प्रेमसे पूरी संस्था हमें तफसीलवार दिखाई। उनके मुंहसे उनके पिताके अनेक जीवन-प्रसंग सुननेमें मुझे बड़ा आनन्द आया। अण्णासाहबके जीवनकी कुछ विशेषताएं मैं डॉ० कर्वेसे ही जान सका। अण्णासाहब एक बार यहां आये थे और बहुत दिनों तक उन्होंने यहां आराम लिया था।

दूसरे एक जानने जैसे डॉक्टर हैं डॉ० शेठ। उनकी पत्नी मेरे बहुत पुराने मित्र और प्रकाशक काशीनाथ रघुनाथ मित्रकी पुत्री हैं।

श्री अप्पासाहब पंतके मिलनसार स्वभावके कारण और उनके अधिकारके कारण पूर्व अफ्रीकाके सभी हिन्दुस्तानी उनकी ओर आकर्षित हुए हैं। हमारा सारा कार्यक्रम उन्हीके द्वारा बनाया होनेके कारण हर जगहके सारे प्रतिष्ठित लोग हमारे स्वागतमें भाग लेते थे। अच्छे-अच्छे स्थानीय कार्यकर्ता कौन हैं, यह हमें खोजना नहीं पड़ता था। कुछ लोगोंसे मैंने सुना कि "अप्पासाहब पंत हिन्दू हैं, उनसे हम किसलिए मिलें?" ऐसी भावना रखकर इस देशके बहुतसे मुसलमान नेता शुरूमें उनसे दूर-दूर रहते थे। बादमें जब उन्हें मालूम हुआ कि अप्पासाहबके मनमें हिन्दू-मुस्लिमका कोई भेद ही नहीं है, वे सबके हैं, सबको अपना समझते हैं, सभीकी सेवा करनेके लिए तैयार रहते हैं और गांधीजी तथा जवाहरलाल नेहरूकी उदार नीति अपनानेवाले ऊंचे दर्जेके राष्ट्रवादी हैं, तब वे धीरे-धीरे अप्पासाहबके प्रति आकर्षित होने लगे। आज वे जितने हिन्दुओंको प्रिय हैं, उतने ही मुसलमानोंको भी प्रिय हैं। उन्हें अपने यहां मेहमानके तौर पर बुलानेमें हर आदमी बड़े गौरवका अनुभव करता है। वे जब यात्राके लिए निकलते हैं, तब बहुतसे लोग अपनी-अपनी मोटरें लेकर उनके साथ जाते हैं, ताकि उनके थोड़े सहवासका मौका मिले।

इसका एक मनोरंजक उदाहरण यहां देने जैसा है। एक बार अप्पासाहब युगान्डामें यात्रा कर रहे थे। उस समय उनके साथ ऐसी ११ मोटरें इकट्ठी हो गई थीं। यह देखकर वहांके अफ्रीकन लोग कहने लगे 'युगान्डाके हमारे 'कबाका' (राजा) की जब सवारी निकलती है, तब उनके साथ चार-पांच मोटरें होती हैं। ये हिन्दुस्तानके कबाका बहुत बड़े होने चाहिये। देखो, इनकी सवारी ११ मोटरोंमें निकलती है।"

अप्पासाहब जैसे मीठे बोलनेवाले हैं, वैसे ही स्पष्ट बोलनेवाले भी हैं। और इसलिए पूर्व अफ्रीकाके तमाम गोरे लोगों पर उनकी अच्छी छाप पड़ी हुई है। हर चीज किस ढंगसे रखनेसे लोगोंको अपने अनुकूल बनाया जा सकता है, इसकी कला उनके पास है। इसलिए वे किसी भी आदमीसे सच्ची बात निकलवा लेनेमें सफल हो जाते हैं। एक आदमीने एक वाक्यमें उनका शब्दचित्र दिया था—

It is impossible for anyone to be mean in his presence.[1]

1. उनके सामने कोई भी व्यक्ति नीचता कर ही नहीं सकता

अप्पासाहब यानी अखंड प्रवृत्तिके अवतार। यहां आये उन्हें करीब तीन साल हुए होंगे। इतने अरसेमें उन्होंने ४० हजार मीलकी यात्रा कर डाली है। इस देशके छोटे-बड़े सभीको वे पहचानते हैं। अंग्रेज उनसे बड़े खुश हैं। अफ्रीकन लोग उनके प्रति आदरसे और बड़ी आशासे देखते हैं। और हिन्दुस्तानी लोग तो यह कहते थकते ही नहीं कि "अप्पासाहब आये और इस देशमें हमारी इज्जत बढ़ी। उन्होंने हमें नई दृष्टि प्रदान की है। अब यहांके लोग हिन्दुस्तानकी प्रतिष्ठा और महत्त्वको समझने लगे हैं। हमें एक ही चिंता है कि जब हिन्दुस्तानकी सरकार इन्हें यहांसे कोई बड़े काम पर भेज देगी, तब हमारा क्या होगा!" अप्पासाहबको अपनी प्रतिष्ठाका जरा भी ख्याल नहीं है। उनकी नम्रता, उनका मानव-प्रेम और हरएक आदमीकी कमियोंको दरगुजर करनेकी उनकी उदारता उन्हें लोगोंके हृदयमें स्थायी स्थान दिलाती है। पुस्तकें पढ़कर जितना ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है, उससे अधिक और गहरा ज्ञान वे अनेक तरहके अधिकारी पुरुषोंके परिचयसे प्राप्त करते हैं। उनकी दृष्टि तुरन्त मिलनेवाले लाभ पर नहीं रहती। लेकिन मानव-हितके शुभ कार्य पीढ़ी दर पीढ़ी कैसा असर करते रहते हैं, इसका उन्हें अच्छी तरह ख्याल है। इसलिए कुशल और दूरदर्शी किसानकी तरह वे भांति-भांतिके महा-वृक्षोंके बीज बोते जाते हैं और सावधानीसे उन्हें सींचते भी हैं।

मोम्बासाकी एक बहुत छोटी और मामूली-सी मालूम होनेवाली शिक्षण-संस्था की तरफ मेरा खास ध्यान गया। पूर्व अफ्रीकामें इस समय शिक्षाकी इतनी कमी है कि उसका रेशनिंग चलता है। स्कूलोंमें हफ्तेमें तीन दिन अमुक विद्यार्थी पढ़ते हैं और दूसरे तीन दिन दूसरे विद्यार्थी पढ़ते है। सुबह अमुक विद्यार्थियोंके वर्ग चलते हैं और शामको दूसरे विद्यार्थियोंकी बारी आती है। ऐसा कई जगह करना पड़ता है। ऐसी हालतमें जो विद्यार्थी लगातार दो बार नापास हो जाय, उन्हें स्कूलसे निकाल दिया जाय, तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है?

ऐसे अभागे विद्यार्थियोंको इकट्ठे करके उन्हें जितनी बने उतनी शिक्षा देनेके लिए डॉ० शेठके प्रयत्नसे एक संस्था खोली गई है। इसमें हिन्दुस्तानी विद्यार्थियोंके साथ तीन अफ्रीकन विद्यार्थी भी पढ़ते हैं। पिछड़े हुए, जड़ और पस्त-हिम्मत बने विद्यार्थियोंमें भी शिक्षा ग्रहण करनेका उत्साह और तेज होता है। साधारण शिक्षण-संस्थाओंमें उन्हें सफलता नहीं मिलती, इसका दोष बहुत बार उनका नहीं, बल्कि परिस्थिति और शिक्षा-पद्धतिका होता है। सब कोई जानते हैं कि इटलीके ऐसे ही लड़के-लड़कियोंको पढ़ाते-पढ़ाते श्रीमती मॉन्टेसोरीने अपनी विश्वविख्यात शिक्षा-पद्धतिका विकास किया था। मोम्बासाका यह 'इंडियन रिपब्लिक स्कूल' समाजके सामने यह सिद्ध करके दिखा सकता है कि समाज द्वारा परित्यक्त मानवोंमें भी उत्तम तत्त्व हो सकते हैं।

क्लिनिकवाले डा० कर्वेने दूसरी एक स्वावलम्बी सहकारी प्रवृत्ति शुरू की है।

गरीब हिन्दुस्तानियोंके लिए अच्छे-अच्छे मकान बनवाने और सस्ते किराये पर देने-की वह प्रवृत्ति है। इस तरह बहुतसे गरीब परिवार स्वच्छ और इज्जतकी जिन्दगी बिता सके हैं। हमने वे मकान देखे हैं। जो स्वच्छता और प्रसन्नता मकानोंके कमरोंमें दिखाई देती थी, वही कमरोंमें रहनेवाली बहनों और बच्चोंके चेहरों पर भी हमें दिखाई दी। स्वच्छ और सुन्दर मकान आत्मगौरव और स्वाभि-मानका वातावरण पैदा करते हैं। नीरोग शरीरमें नीरोग मन रहता है, इस कहावतको व्यापक बनाकर हम कह सकते हैं कि सुन्दर मकान हो, तो भीतर रहने वाले मनुष्योंके मन और जीवन भी बहुत हद तक सुन्दर बन सकते हैं।

मोम्बासामें दो-तीन लायब्रेरियां हमें पसन्द आने जैसी थी। एक पुस्तकालयमें पारसियोंकी अवेस्तागाथा पर हालमें ही लिखी हुई कवि खबरदारकी विद्वतापूर्ण पुस्तक भी देखनेको मिली।

नम्रभावसे सात्त्विक वातावरण पैदा करनेवाले और गांधीजीके विचारोंका थियोसाफीके साथ समन्वय करके लोगोंके सामने रखनेवाले श्री मास्टरका व्यक्तित्व मोम्बासामें सहज ही लोगोंको आकर्षित करता है। उनके धार्मिक गौरवका असर आसपासके समाजपर अच्छा पड़ा है।

जात-पात आदि किसी प्रकारका भेद रखे बिना समाजकी सेवा करनेवाली सोशियल सर्विस लीग यहांकी पुरानी संस्था है। मोम्बासाके एक धनी अरबी व्यापारीने संस्थाकी मदद करके उसे अपने रहनेका मकान दे दिया है।

मोम्बासा पहुंचते ही यहांकी जिस दूसरी प्रवृत्तिकी तरफ मेरा ध्यान गया, वह है बालमन्दिरोंकी स्थापना। मैंने सुना है कि स्व० गिजुभाई बधेकाके लगभग ४० विद्यार्थी अफ्रीकामें जगह-जगह बाल-शिक्षाका महत्त्वपूर्ण काम कर रहे हैं। इन लोगोंको शायद यह पता न हो कि स्व० गिजुभाईने अपना शिक्षाका मिशन पहचाना, उसके पहले वे पूर्व अफ्रीकामें वकालत करने आये थे और स्वाहिली भाषा भी सीखे थे। यहीं उन्हें समझमें आया कि बालकोंको पढ़ाने और उनके स्वातन्त्र्यकी वकालत करनेमें ही अपने जीवनकी सार्थकता है।

गुजरात विद्यापीठके एक पुराने विद्यार्थी कवि सोमाभाई भावसार और उनकी पत्नी मोम्बासाकी बाल-शिक्षामें ओत-प्रोत हो गये हैं। गिजुभाईकी शैलीमें उन्होंने 'अमर गांधी' नामक एक छोटी-सी पुस्तिका लिखी है। इस पुस्तिकाका स्वाहिली और लुगान्डी भाषामें अनुवाद हो जानेसे वह अमर हो गई है।

आगाखानी बालमन्दिर भी बड़े सुन्दर ढंगसे चलता है। वहांके बालकोंकी टीपटाप और प्रसन्नता खास तौर पर ध्यान खींचनेवाली है। आगाखानी प्रवृत्ति पर मुझे आगे चलकर लिखना है, इसलिए यहांके टेकनिकल कॉलेज जैसी महत्त्व-की शिक्षण-संस्थाका भी यहां उल्लेख नहीं करूंगा।

मुसलमान कार्यकर्ताओंमें विशेष आकर्षक थे श्री कादरभाई। अनेक तरहके

कामोंमें भाग लेते-लेते वे बूढ़े हो गये हैं। एक समय उन्हें श्री आगाखानकी बड़ी मदद थी। संस्था चलानेकी कलामें कादरभाई अपना सानी नहीं रखते। उनका उत्साह आज भी बूढ़ा नहीं हुआ है।

अफ्रीकन लोगोंसे मिलनेके लिए मैं पहलेसे ही बड़ा उत्सुक था, लेकिन वे कहीं दिखाई नहीं पड़ते थे। युनाइटेड केनिया क्लबमें उन्हें देखनेका मौका मिला। वहां गोरे भी आये थे और अफ्रीकन लोग भी थे। और बातोंके साथ-साथ मैंने उनसे वंशव्यवस्थाके प्रश्न—'रेशियल एडजस्टमेन्ट'—के बारेमें दो शब्द कहे, जिसका उन पर बहुत अच्छा असर पड़ा।

मैंने कहा : "आर्य, अनार्य, द्राविड़, आदिवासी, शक, हूण, चीनी, पारसी, पठान, मुगल, पोर्तुगीज, फ्रेन्च, यहूदी, अंग्रेज, वगैरा अनेक जातियां भारतमें आकर बसी हैं। मानो सारे मानववंशोंको भारतमें इकट्ठा करनेकी ईश्वरकी योजना ही हो। ये सब लोग आपसमें मिलकर सहयोगसे कैसे रहें, इसके अनेक प्रयोग हमने हजारों वर्षोंसे अपने देशमें किये हैं। इस संबंधमें हमने कुछ गंभीर भूलें भी की हैं, जिनके लिए हम कुछ कम नुकसान नहीं उठाना पड़ा। हमने ऊंच-नीचके मोहल्ले खड़े किये। ऊंच-नीचका भाव पैदा किया और बढ़ाया। बहिष्कारका शस्त्र आजमाया और अनुभव देखा कि कभी-कभी मूल रोगसे भी आजमाया हुआ इलाज ही अधिक घातक सिद्ध होता है। परंतु हमारे ऋषि-मुनियोंने शुरूसे हमें एक संजीवन मंत्र दिया था कि कितने ही प्रयोग करो, परन्तु हिंसाका आश्रय न लो। हमारी आस्तिकताने सर्प-सत्र जैसे घातक प्रयोग तुरन्त रोक दिये। आज हमारे यहां चमड़ीके भेदके कारण अलग जातियां कायम नहीं की जातीं। स्वतंत्र होते ही हमने अस्पृश्यताको दफना दिया। हरिजनोंके लिए हमारे कुएं और भोजनालय, हमारी पाठशालाएं और हमारे मन्दिर पूरी तरह खुल गये हैं। हमारे इस अनुभवसे अफ्रीकामें बसनेवाले तीनों महाद्वीपोंके लोग बहुत कुछ सीख सकते हैं।"

गोवाके ईसाई लोग सबसे अलग रहते हैं। उनके यहां जाकर भी मैंने उन्हें समझाया कि "आप अपनी मातृभाषा कोंकणीकी उपेक्षा करते हैं, यह शाप आपको सता रहा है। आपको तमाम हिन्दुस्तानियोंके साथ मिल जाना चाहिये।' गोवाका राजनीतिक सवाल मैंने जानबूझकर नहीं छेड़ा। क्योंकि मैं जानता था कि उन लोगोंमें तीव्र मतभेद है। कुछ लोग पुर्तगालका जुआ उतार फेंककर भारतीय संघमें मिलना चाहते हैं और कुछ लोग पुर्तगालके साथका सम्बन्ध कायम रखना चाहते हैं और अपनी संस्कृति अलग होनेका दावा करते हैं।

विदेशोंमें रहनेवाली हमारी बहनें संगठित होकर काम न करें, तो वह एक आश्चर्य ही माना जायगा। क्योंकि इन दिनों स्वदेशमें भी बहनोंने जांत-पांत और धर्मका भेद मिटाकर शुद्ध राष्ट्रीय वृत्ति और मानवताकी दृष्टिसे अनेक संगठन दिखा दिये हैं। अधिकारोंके बंटवारेके लोभमें फंसकर जब हिन्दू-मुसलमान एक-

दूसरेके दुश्मन बननेको तैयार हो गये थे, तब भी दोनों जातियोंकी बहनोंने बड़ी इन्सानियत दिखाई थी। मोम्बासामें स्त्रियोंकी एक अच्छीसी संस्था चल रही है और श्रीमती सोंधी उसका सुन्दर नेतृत्व कर रही हैं। यहांकी बहनोंके सामने मैंने अपना संदेश पहले-पहल सुनाया कि बहनोंको मानवताके विकासकी दृष्टिसे अफ्रीकी स्त्रियों और बच्चोंको अपनाना चाहिये और उनकी भी सेवा करनी चाहिये। ऐसे नये कदम उठानेमें बहनोंको पहले पहल संकोच होना स्वाभाविक है। परन्तु बहनोंके प्रधानतया हृदयधर्मी होनेके कारण वे ऐसे कदम स्वाभाविक तौर पर बरदाश्त कर सकती हैं और इस कामको आगे बढ़ानेमें उन्हें कठिनाई नहीं आती। जो बहनें शादी होते ही पतिके घरके अनजान लोगोंको अपना सकती हैं, उनके लिए इस देशकी स्त्रियोंको और बच्चोंको अपनानेकी बात मुश्किल नहीं होनी चाहिये।

इस तरह मोम्बासामें जो दिन बीते बड़े कीमती निकले।

थोड़ेमें कहा जा सकता है कि पूर्वी अफ्रीकाके इस प्रवेशद्वारमें ही यहांके ज्यादातर सवालों और उनके पीछे काम करनेवाली शक्तियोंका दर्शन हो गया और इसलिए खुली आंखों और जागरूक मनके साथ हम सारी यात्रा कर सके।

५. नैरोबी

नैरोबी केवल केनियाकी ही नहीं, बल्कि एक तरहसे सारी ब्रिटिश पूर्व अफ्रीकाकी राजधानी मानी जाती है।

मोम्बासा, टांगा, झांझीबार, दारेस्सलाम और लिंडी वगैरा स्थान समुद्रके किनारे होनेके कारण वहांकी हवा कुछ गरम रहती है। गोरे लोगोंको वह माफिक नहीं आती। हमारे यहांके लोग भी ठंडे प्रदेशमें थके बिना जितना काम कर सकते हैं, उतना गरम प्रदेशमें नहीं कर सकते। अफ्रीकामें जहां-जहां अच्छी ठंडी हवा है, वहीं गोरे लोगोंने येनकेन प्रकारेण उस जमीनको अपने कब्जेमें कर लिया है। हिन्दुस्तानमें भी महाबलेश्वर, शिलांग, शिमला, दार्जिलिंग और नेरापूजी वगैरा स्थान अंग्रेजोंने कैसी युक्ति और चालबाजीसे अधिकारमें लिये थे, इसका इतिहास भुलाया नहीं जा सकता।

अफ्रीकी महाद्वीपमें बसे हुए गोरोंका केनिया मानो स्कॉटलैंड है। यहांके गोरों-के घमंडके उदाहरण इतने प्रसिद्ध हैं कि उनकी बात यहां फिर छेड़नेकी जरूरत नहीं। यहांके अफ्रीकी निवासियोंको भी यह ठंडा प्रदेश बहुत प्रिय होनेके कारण वे अंग्रेजोंको इस कार्रवाई और लूटके लिए कभी माफ नहीं कर सकते। अफ्रीकामें सारी सत्ता ज्यों त्यों करके गोरोंके ही हाथमें रखनी चाहिये, इस बारेमें अधिकरो

अधिक प्रयत्न करनेवाले गोरे इस केनियामें ही हैं। और इसलिए दक्षिण अफ्रीकाके मलानकी नीतिके प्रति उन्हें बड़ी सहानुभूति है।

मैंने देखा कि यहां जमीन लेकर बसे हुए गोरोंके जबरदस्त असरके तले होने पर भी केनियाके गोरे राजकर्मचारी इतने कट्टर नही हैं। उनमें चाहे समझदारी अधिक हो या इन्सानियत, वे कुछ और ही ढंगसे बोलते हैं। अंग्रेजोंके राष्ट्रीय नेता भी समय-समय पर केनियाके गोरे जमीदारोंसे कहते हैं कि पिछले महायुद्धके बादकी नयी दुनियामें उनका घमंड अब चल नहीं सकता। फिर भी हम यह बात नही भूल सकते कि केनियाके गोरे जमीदार गैर-मामूली ताकत और असर दोनों रखते हैं।

अंग्रेज जहां जाते हैं वहां तमाम जमीन सुघड़ और सुंदर बनाते ही हैं। मकान, रास्ते, पानीकी सहूलियत, बिजली, फलफूलोंके बगीचे आदि तमाम सुविधाएं वे बड़ी लगनसे पैदा करते हैं और जीवनको हर प्रकार सुखकर बनाते हैं।

हमारे यहांके लोगोंको इस ढंगसे रहनेकी आदत नही होती। अच्छे-अच्छे मालदार लोग भी कुछ रुपयेके जोर और प्रतिष्ठाके लोभसे ऐसी ही सुविधाएं और ऐशआरामके साधन पैदा तो करते है, परंतु इस व्यवस्थाको वे कायमी नही रख सकते। ऐसी स्थितिमें अगर अंग्रेज हमारे साथ रहें, तो कौनसी नीति अपनायें? म्युनिसिपैलिटीके कड़े कानून बनाकर अदालतकी मददसे उन पर अमल करायें? या यह कहकर कि 'हमें अलग रहने दो, तुम्हें जैसी पसंद हो वैसी व्यवस्था अपने हिन्दुस्तानी विभागमें कर लो' आबादीके दो हिस्से कर लें? जिन लोगोंमें वर्णका अभिमान नही होता, वे पहली नीति पसंद करते हैं और उससे पैदा होनेवाली तमाम मुश्किलें और कड़वाहट बरदाश्त कर लेते हैं। जब कि वे लोग, जिनके दिलोंमें भारतीयों और अफ्रीकी लोगोंके प्रति प्रबल तिरस्कार होता है और जो रोज उठकर नई-नई कड़वाहट मोल लेनेमें विश्वास नही रखते, दूसरी नीति पसंद करते हैं। और आपसमें बातें करते हुए हमेशा कहते है—'Let these wretches stew themselves in their own juice.' वर्णद्वेष एक बार जगा कि रेलवेके अलग डिब्बे और ट्रामकी अलग बैठकें वगैरा व्यवस्था तक वह पहुंच ही जायगा।

एक बात हमें स्वीकार करनी चाहिये कि हमारे यहांके लोग स्वच्छता और शुद्धिके नाम पर पानी बेहद काममें लेते हैं और जहां तहां कीचड़ कर डालते हैं और नंगे पैर चलनेके कारण जहां तहां गंदगी फैलाते हे। हमारे भोजनालय, हमारे पाखाने हमारे नहानेके कमरे जैसे होने चाहिये वैसे नही होते। बच्चोंकी किस तरह रक्षा की जाय और उन्हें कैसे स्वच्छ रखा जाय, उन्हे टट्टी कहां फिराया जाय आदि बातोंमें मध्यम वर्गकी स्त्रियां भी बड़ी लापरवाह होती हैं। समाजके नेता ऐसी आदतोंके कारण अपने लोगोंकी खानगी तौर पर बहुत निन्दा करते हैं। परंतु लोगोंके बीचमें जाकर उन्हें धीरजसे समझानेका काम कोई नही करता। इतना कहना

काफी नहीं कि फलां रिवाज बुरा है। पुरानी आदतोंके बजाय अच्छी कौनसी आदतें डालनी चाहिये और नये ढंगसे सुघड़ता कायम रखनेके लिए क्या क्या करना चाहिये और कौन कौनसी सुविधाएं कायम करनी चाहिये, यह सब उन्हें ब्यौरेके साथ और कई दफा समझाना चाहिये। इतना ही नहीं, बल्कि अच्छे उदाहरणोंके पदार्थपाठ भी उनके सामने पेश करने चाहिये। मनुष्य सुबह उठकर रास्ते पर दतून करे और जोर-जोरसे आवाज करके गला साफ करे, तो यह समझनेमें हरगिज कठिनाई नहीं आ सकती कि यह रिवाज असामाजिक है।

ऐसे तमाम जरूरी सुधार सारी जातिमें जारी करनेके बजाय हमारे यहांके लोगोंने अंग्रेजोंकी पोशाक, उनके खानपानके तरीके और उनकी सामाजिक सभ्यता की भाषा अपना ली। परिणामस्वरूप हम लोगोंमें अंग्रेजोंका अनुकरण करनेवाली एक नयी जाति उत्पन्न हो गई है और रुपये-पैसेसे समर्थ होनेके कारण बाकीके समाजसे वह अलग रह सकती है। इसमेंसे अनेक सामाजिक और आन्तर-सामाजिक पेचीदगियां पैदा हो गई हैं, जिनका हल किसीने अभी तक नहीं ढूंढा।

हमने ता० २१ की शामको मोम्बासा छोड़ा। रातको गाड़ीमें डाईनिंग कारमें हमने भोजन किया। गोरोंके बीचमें खाना खाते हुए हमें एक मुश्किल पेश आई। हममेंसे ज्यादातर शाकाहारी थे, परन्तु उनके बारेमें पहलेसे ही बाकायदा सूचनाएं दे दी गई थीं।

सवेरा होनेसे पहले हम केनियाकी ऊंची भूमि (हाई लैंड्स) पर पहुंच गये थे। ठंडी हवा मीठी चुटकियां ले रही थी और आसपासका उपजाऊ प्रदेश आंखोंको संतोष दे रहा था। मोम्बासा और नैरोबीके बीच एक भी बड़ा स्टेशन नहीं है। हमने जब 'आथी' नदी पार की, तब मुझे आश्चर्य हुआ कि इतने छोटेसे प्रवाहको नदी कैसे कहते हैं। मैं तो उसे प्रवाह या नाला कहते हुए भी संकोच करूं।

नैरोबी पहुंचनेसे पहले ही हमारी ट्रेन वहांके अभयारण्य—नेशनल पार्क—में से गुजरी। अपने डिब्बेकी खिड़कीमेंसे हम बहुतसे जानवरोंको देख सके। अप्पासाहबकी दृष्टि बहुत तेज होनेके कारण वे अधिक दूरके जानवरोंको छांट देख लेते और हमें बताते। इनमें 'एन्टी-एयरक्राफ्ट गन' जैसी लम्बी गरदनवाले जिराफ, ऊंट या हंससे उधार ली हुई गर्दनवाले उड़ना भूले हुए शुतुर्मुर्ग, अपने सींगोंका अभिमान रखनेवाले हिरण आदि अनेक जानवर हमने देखे।

स्टेशन पर पहुंचते ही बरसातने हमारा शुभ स्वागत किया। हमें श्री तात्या-साहब इनामदारके यहां ठहरना था। और वे खुद हमारे साथ थे इसलिए उनकी पत्नी शकुन्तलाबहन और उनकी लड़कियां हमें लेने स्टेशन पर आई थीं। चि० सरोजका एक पारसी बालमित्र श्री जाल कन्ट्राक्टर उससे मिलनेके लिए कभीसे तरस रहा था। वह भी स्टेशन पर आया। स्थानीय नेता तो सभी थे। स्टेशनकी जान-पहचान कितनी ही जरूरी हो, परन्तु उपयोगी साबित नहीं होती। सौ पचास

लोगोंके नाम जल्दी-जल्दी बोले हुए सुने जायं और उनके चेहरोंके क्षणिक चित्र एकके बाद एक आंखों द्वारा लिये जायं, तो यह सब किसी कामके नहीं होते। यह परिचय मेहमानोंके सिवा और सबके लिये ही बड़े कामका होता है।

नैरोबीमें इस बार हम कुल ७ दिन रहे। इन सात दिनोंमें कार्यक्रम इतना अधिक भरा हुआ था कि उसे सारा याद रखना आसान नहीं। मन पर जो संस्कार पड़े, उन सबकी दिमागमें मक्खनके जैसी मुलायम खिचड़ी बन गयी। ये संस्मरण बहुत स्वादिष्ट तो हैं, परन्तु उन्हें अलग-अलग करना असंभव है।

राजधानीके इस शहरमें बहुतसे यूरोपियन मिले। यहांके गवर्नर सर फिलिप मिचेल होशियार आदमी हैं। साम्राज्यके प्रखर राजनीतिज्ञोंमें इनकी गिनती होती है। परन्तु इस समय वे छुट्टी पर गये हुए थे। उनका काम उनके चीफ सेक्रेटरी संभालते थे। उनकी मुलाकातके दौरान जो खास बात मेरे जाननेमें आई, वह अफ्रीकाकी प्राकृतिक परेशानीके बारेमें थी। उन्होंने कहा : "अफ्रीकाकी भूमि बहुत उपजाऊ है, परन्तु यहां पानीकी कमी सदा भुगतनी पड़ती है। यह कमी न होती तो यहां आजसे कई गुना आबादी रह सकती थी।" मैंने कहा : "आपके यहां बरसात कम नहीं पड़ती। इस बरसातका पानी जगह-जगह तालाबोंमें रोक रखा जाय, तो बहुतसी दिक्कतें दूर हो जायं। हिन्दुस्तानके पुराने राजा यही करते थे। नहरें खोदनेके बजाय उन्होंने तालाब बनवाने पर अधिक ध्यान दिया था।" मेरी इस सूचनाका विचार करते हुए उन्होंने जो कठिनाइयां बताईं, उन्हें मैं बराबर सुन न सका। वे साहब बहुत ही धीमी आवाजसे बोलते थे और मेरी कानकी मुश्किल छोटी-मोटी नहीं है। बहुत वर्षोंसे दाहिने कानसे सुन ही नहीं सकता और बायें कानसे जरा कम सुनाई देता है। परिणामस्वरूप जहां बहुत लोग इकट्ठे हुए हों, वहां मुझे खूब संभलकर बैठना पड़ता है। मेरी यह चिंता रहती है कि दायीं तरफ कोई महत्त्वका मनुष्य न बैठे; और सभा या भोजके व्यवस्थापक खास महत्त्वके लोगोंको मेरी दायीं तरफ बिठाते हैं। परिणामस्वरूप मुझे कमरको टेढ़ी करके बायां कान आगे लाना पड़ता है। इससे बायीं तरफ बैठनेवाले मनुष्यका तिरस्कार-सा हो जाता है। कोई परिचित हो तब तो चिंता नहीं होती, अन्यथा बड़ी परेशानी पैदा हो जाती है। हर मौके पर कितने लोगोंको समझाने बैठूं कि सुननेको कान मेरे पास एक ही है! बातचीतमें भी व्याख्यानकी तरह जोर-जोरसे बोलनेवाले लोग दूसरे लोगोंको भले ही अटपटे मालूम होते हों, मेरे लिए उनका 'दाक्षिण्य' बड़ा सुविधाजनक होता है।

एक अधिकारीने—बहुत करके वे यहांके न्यायाधीश होंगे—मध्य एशिया और अफगानिस्तानकी तरफके अपने अनुभव कहे। एक बार वहांके चोरोंने उन्हें लूटा। वे अकेले और सामने बहुतसे डाकू थे, इसलिए इन्होंने 'गांधीजीकी अहिंसक नीति' अपनायी। उन्होंने चोरोंसे कहा : "मेरा सब कुछ ले लो, मगर मुझे सताओ

मत।" बादमें उन्होंने यह और कहा : "मुझे अपनी पतलून तो काममें लेने दोगे न?" चोरोंने मंजूर किया। फिर कहने लगे : "और मेरा टोप मेरे सिर पर नहीं होगा तो मुझे चक्कर आ जायेगा। तेज धूपसे मैं बीमार पड़ जाऊंगा। इसलिए मर्जी हो तो वह भी मुझे दे दो।" वह भी तय हो जानेके बाद चोर साहबको साथ ले गये। इनकी सज्जनतासे वे इतने खुश हुए कि उन्होंने इस गोरे मेहमानको अपने घर खाना खिलानेके लिए रख लिया और दूसरे दिन उन्हें अपने प्रदेशकी सीमा तक सही सलामत पहुंचा दिया!

जिस गोरे अफसरके हाथमें हिन्दुस्तानी लोगोंकी शिक्षा है, उसके साथ मेरी बहुत बातें हुईं। वर्धा-शिक्षाके स्वरूपके बारेमें हमने तफसीलसे बातें कीं। अप्पासाहबकी लगनके कारण कई बार गोरों, थोड़ेसे अफ्रीकियों और हमारे भारतीयोंका मिलाजुला श्रोतृमंडल हमें मिलता था। अफ्रीकाकी भूमि पर तीनों महाद्वीपोंके सहयोगके विषयमें जब मैं बोलता, तब तीनोंको मेरी बात स्वागतके योग्य प्रतीत होती। परन्तु यह सहयोग असलमें तभी सिद्ध होगा, जब गोरे लोकशासक होनेका अपना अभिमान छोड़ दें और गौर वर्णकी महत्ता भूल जायं, हिन्दुस्तानके लोग इस सहयोगके लिए तभी योग्य होंगे, जब वे अपनेको केवल भारतके नहीं परन्तु अफ्रीकाके भी स्थायी निवासी मानें और अफ्रीकी लोगोंसे मित्रता पैदा करें तथा अफ्रीकी लोग आलस्य छोड़कर शिक्षामें तेजीसे आगे बढ़ें और अहिंसक शक्ति पैदा करके दिखा दें।

तीनों जातियोंके सहयोगकी संभावना बताते हुए मैं कहता था कि अंग्रेज राष्ट्रने इस दिशामें पहला कदम उठाया है। हिन्दुस्तानकी पूरी आजादी स्वीकार करनेके बाद ब्रिटिश लोगोंने हिन्दुस्तानको (और इसी तरह लंका और पाकिस्तानको भी) अपने कॉमनवेल्थमें समान हकोंके साथ एक सदस्यके रूपमें शरीक होनेका निमंत्रण दिया। गांधीजीने हमारे देशको सलाह दी कि यह निमंत्रण स्वीकार करने लायक है। अब तक ब्रिटिश साम्राज्य या ब्रिटिश कॉमनवेल्थ सिर्फ ब्रिटिश लोगोंका—गोरे लोगोंका एक कौटुम्बिक साझा था। कनाडा, दक्षिण अफ्रीका, पूर्वी अफ्रीका, न्यूजीलैंड और ऑस्ट्रेलिया सब जगह ब्रिटिश लोगोंका राज्य था। भिन्न जाति, भिन्न वर्ण, भिन्न देश और भिन्न संस्कृतिवाले लंका, पाकिस्तान और हिन्दुस्तानके लोगोंको अपने कॉमनवेल्थमें समान अधिकार देकर उन्होंने एक बड़ा कदम उठाया है, जिसकी मिसाल आजकलके इतिहासमें कहीं भी नहीं मिलती। अब कॉमनवेल्थका बंधन नस्ल या वंशका बंधन नहीं परन्तु एक प्रजासत्ताक आदर्शका बंधन है।

गोरी जातिका यह कदम आखिरी नहीं, परन्तु नव-संगठनका पहला कदम है। समय पाकर इसमें नई जातियोंके और नये राज्योंके शामिल होनेकी गुंजाइश है। ऐसा संगठन हिन्दुस्तानके इतिहासके अनुकूल है। अब जब हम स्वेच्छापूर्वक

काफी विचार करके इस कॉमनवेल्थमें शरीक हुए हैं, तब हमें इस कॉमनवेल्थके प्रति वफादार रहना चाहिये। वफादारीका यह अर्थ नहीं है कि इसके स्याह-सफेद सभी कामोंमें हम इसका साथ दें। वफादारीका सच्चा अर्थ यह है कि इस कॉमनवेल्थके प्रति हम सदा मित्रभाव रखें, सच्चे अर्थमें और सच्चे रास्तेसे उसकी उन्नति चाहें और अच्छे कामोंमें उसे मदद दें और उसकी मदद लें।

शासकोंके साथ सद्भावपूर्ण बर्ताव रखना जैसे हमारा फर्ज है, वैसे ही और उससे भी अधिक यहांके मूल निवासी अफ्रीकी लोगोंके साथ प्रेमपूर्वक सेवकके तौर पर बर्ताव करना हमारा कर्तव्य है। हम इन लोगोंकी भाषा घरके नौकरोंको हुक्म देने भरको ही सीखते हैं, यह काफी नहीं। हमें उनकी भाषा इतनी सीखनी चाहिये कि हम उनके दुःख-सुखमें शरीक हो सकें, उनके दुःखमें उन्हें दिलासा दे सकें, उनके सुखमें उन्हें बढ़ावा दे सकें। और आत्मोन्नतिके उनके सारे प्रयत्नोंमें हम उनके मददगार बन सकें। शिक्षाके मामलेमें हमें हर तरह उनके मददगार बनना चाहिये। हमारी दान-वृत्तिको अब हिन्दुस्तानकी ओर न बहाकर उस प्रवाहको अपने बच्चों और इस देशके बच्चोंकी अर्थात् अफ्रीकियोंकी शिक्षाकी ओर मोड़ना चाहिये, जिससे हमारा जीवन यहांके लोगोंको आशीर्वाद स्वरूप लगे और हमारी जड़ें यहांकी भूमिमें मजबूत हो जायं। हम न यहांके आदिम भूमिजन है और न यहांके शासक है। हम तो सेवाके द्वारा ही यहांके निवासी होनेका अपना अधिकार साबित कर सकते हैं। न संख्याके बल पर और न सत्ताके बल पर, परन्तु अपनी उपयोगिताके बल पर ही हम अपनी शक्ति पैदा कर सकते हैं।

स्वतंत्र हिन्दुस्तानने मित्रताकी निशानीके तौर पर और पड़ोसी धर्मके एक अंगके रूपमें, अफ्रीकी विद्यार्थियोंको हिन्दुस्तानमें जाकर पढ़नेके लिए चार छात्र-वृत्तियां दी है। इसी तरह यहां रहनेवाले भारतीयोंने और बारह छात्रवृत्तियां अफ्रीकियोंके लिए दी हैं। अफ्रीकी लोग जानते है कि यह सब श्री अप्पा-साहबके प्रयत्नसे हुआ है। अब जो खादी-विद्या सीखना चाहते हों, उनके वर्धाके चरखा-संघने छः छात्रवृत्तियां देनेका निश्चय किया है। और हिन्दुस्तान जाकर जो राष्ट्रभाषा सीखना चाहें, उनके लिए हिन्दुस्तानी प्रचार सभाकी तरफसे तीन छात्रवृत्तियां देनेकी मैंने घोषणा की। ऐसी सक्रिय कार्रवाइयोंके कारण ही यहांके अफ्रीकी लोग हिन्दुस्तानके प्रति सद्भाव और आशाकी दृष्टिसे देखने लगे हैं।

कुछ अंग्रेज यहां अफ्रीकी लोगोंको अब समझा रहे हैं कि, 'ये हिन्दुस्तानी लोग तुमसे मनमाना मुनाफा लेते हैं और यह सारा मुनाफा स्वदेश ले जाते है। ये जोंकें जब तक हैं तब तक तुम सिर ऊंचा नही कर सकोगे।' यह बात सच है कि यहांके हमारे लोग कमानेके लिए ही यहां आये थे, इसलिए जितना मुनाफा खींचा जा सकता हो उतना खींचते थे। जैसे अंग्रेज हिन्दुस्तानका रुपया विलायत ले जाते थे, उसी तरह भले ही थोड़ी मात्रामें सही, हमारे यहांके लोग यहांका रुपया स्वदेश ले

जाते थे, यह बात भी सच है। हर साल हिन्दुस्तानसे कितने ही साधु और वहांकी संस्थाओंके प्रतिनिधि यहांसे मदद ले गये हैं।

परंतु हम लोगोंके संपर्कमें यहांके लोग बहुत कुछ सीखे भी हैं। उन्होंने बढ़ई और दर्जी वगैराके छोटे-मोटे धंधे सीखे। रुईकी खेती उन्होंने सफलतापूर्वक बढ़ाई। जहां अंग्रेज पहुच भी न सके, ऐसे दूर-दूरके जंगली इलाकोंमें हम लोगोंने हिम्मतके साथ जाकर दुकानें खोली और अपने बालबच्चोंको ले जाकर जंगलके अफ्रीकियोंके बीच बस गये। कुछ जंगली लोगोंको एक एक शिलिंगमें एक एक पायजामा देकर हम लोगोंने उन्हें अपनी नग्नता ढंकना सिखाया और अब तो कुछ अफ्रीकी हम लोगोंके साथ रहकर दुकानें भी करने लगे हैं। हम लोग उन्हें अपने मुनीमके रूपमें विश्वासपूर्वक रखते है और इस प्रकार उनकी और अपनी आमदनी बढ़ाते हैं। अगर हम लोग बदली हुई परिस्थितिको पहचान कर अफ्रीकियोंकी जागृतिमें मददगार बनें, अपना लोभ कम कर दें और अफ्रीकियोंको अनेक प्रकारसे शिक्षित बनायें, तो हमारा यहां रहना सफल हो।

कुछ लोगोंने मुझे खानगीमें कहा : "आपकी बात हम शिरोधार्य करनेको तैयार हैं। यहांके लोगोंके लिए हम भरसक प्रयत्न करके रहेंगे। परन्तु हमारा अनुभव कहता है कि यहांके लोग बिलकुल कृतघ्न हैं। उनके लिए कितना भी करें, तो भी समय पर आंख बदलने उन्हें देर नहीं लगती।" मैं उनसे कहता हूं कि यह बात सच निकली, तो भी मुझे उसमें जरा भी आश्चर्य नहीं होगा। जिनका देश लूटा गया है, जिन्हें परावलम्बी और भयभीत दशामें हमेशा रहना पड़ता है, मध्य-कालमें जिन्हें पकड़कर गुलाम बनाकर बेचा जाता था, उनके लिए कृतज्ञता भी कई बार आत्मघातक सिद्ध होती है। हमारे यहां भी मुसलमानों और हरिजनोंके लिए ऐसी ही शिकायतें हम सुनते थे। मराठीमें 'गुलाम' शब्द बदमाश या अक्ल-मंदके अर्थमें इस्तेमाल किया जाता था—कभी निंदाके तौर पर और कभी कद्रके रूपमें। यह बताता है कि गुलामोंको बदमाशी सीखे बगैर छुटकारा नहीं था। एक बार इन लोगोंको स्वावलम्बी बन जाने दीजिये, फिर देखिये उनमें धीरे-धीरे इन्सानियतके तमाम लक्षण प्रगट हो जायंगे।

परंतु मैं यह माननेके लिए तैयार नहीं कि ये लोग कृतघ्न हैं। कितने धीरजसे वे गोरोंके तरह-तरहके अन्याय सहन करते आये हैं? हम अहरन लेकर सूईका दान करें और इतने पर ही यह उम्मीद रखें कि वे हमारे प्रति उपकारबद्ध रहें, तो यह किस तरह ठीक माना जा सकता है? अब तक उनका रहन-सहन बिलकुल सादा था। संतोष उनकी जीवन-पद्धतिका प्रधान गुण है। मिट्टी और फूसके झोंपड़ोंमें वे रहते हैं। इतने विशाल देशमें उन्होंने एक भी बड़ा मकान, मंदिर या राजमहल नहीं बनाया। मजदूरी लेकर काम करना उनके स्वभावमें नहीं। इन लोगोंको हमारे जैसे बना देनेके लिए सरकारने उन पर 'मुंड-कर' (Poll tax) लगा दिया

है। कमायें तो ही वे सरकारके शिकंजेसे बच सकते हैं। उनकी संतोषप्रधान संस्कृतिसे उन्हें विचलित करनेके लिए जहां इतने प्रयत्न हो रहे हों, वहां उन लोगोंका जीवन स्वाभाविक रह ही नही सकता।

इतने अधिक मिशनरी इनकी सेवा करते करते मर मिटते हैं। उन्होंने कभी यह शिकायत नही की कि ये लोग कृतघ्न हैं। इस्लामका और ईसाई धर्मका स्वीकार करने पर भी इन लोगोंमें किसी प्रकारकी कट्टरता नहीं आई। इन बातोंको समझनेके लिए हमें समाजशास्त्रकी गहरी दृष्टि पैदा करनी चाहिये। और उनके लिए जो कुछ करें, वह सच्चे धर्मनिष्ठ बनकर निष्काम भावसे करना चाहिये। जहां ऋण चुकाने के लिए सेवा करनेकी बात हो, वहां सामनेवाला कृतघ्न है या कृतज्ञ, यह देखा ही नही जाता; सद्‌गुणों पर किसी भी जातिका ठेका नही होता। जहां आत्मा है वहां तमाम सद्‌गुणोंका उत्कर्ष होगा ही। अर्थात् समय पाकर।

नैरोबीके पास कोई ३० मील दूर एक अफ्रीकी नेता श्री पीटर कोइनांगे रहते हैं। ये भाई हाल हीमें हिन्दुस्तानका सब जगह दौरा करके आये है। भारत सरकारने उनके लिए सब सुविधाएं कर दी थी। हम उनसे मिलने उनके यहां गये। आदमी बड़ा पितृभक्त है। उन्होने अपने पिताका परिचय कराया। उनकी छः माताएं अपने-अपने बच्चोंके साथ अलग-अलग झोंपड़ियोंमें किस तरह रहती हैं, यह सब उन्होंने बताया। पीटर कोइनांगेने अपनी किकूयू जातिके लिए दो सौ पाठशालाएं चलाई है। सरकारसे वे मदद नही लेते। गोरोंकी नौकरी करने या सरकारी नौकरीमें स्थान प्राप्त करनेका उद्देश्य न रखते हुए अपनी जातिकी सेवा करनेकी योग्यता हासिल हो, इस किस्मकी शिक्षा इन पाठशालाओंमें दी जाती है। उसी स्थान पर हमें एक आफ्रीकी बहन मिली—वाजीकू। उन्होंने कातना-बुनना सीखकर अपने कपड़े तैयार किये हैं। हम उनके स्थान पर गये, तब उन्होंने एक हिन्दी पाठ पढ़कर सुनाया और अपनी लिखी हुई थोड़ीसी हिन्दी भी दिखाई!

पूर्व अफ्रीकामें हम लोगोंका सबसे बड़ा सवाल है आन्तरिक एकताका। हिन्दू-मुस्लिम एकता जो पहलेसे मौजूद थी, उसे हमने अकारण तोड़ दिया और पराये लोगोंके सामने हम हंसीके पात्र बने। मैंने उनसे कहा कि हिन्दुस्तानका पागलपन हिन्दुस्तानमें रहने दीजिये। यह मान लें कि वहां लड़नेका कारण था, तो भी वह कारण यहां नही है। उदाहरणके लिए, मैंने कहा कि हिन्दुस्तान उत्तर गोलार्ध-में है, पूर्व अफ्रीकाका बड़ा भाग दक्षिण गोलार्धमें है। हिन्दुस्तानमें जब जाड़ा होता है, तब इधर गर्मी होती है। वहां गर्मी हो, तब यहां सर्दी होती है। ऐसी स्थितिमें हिन्दुस्तानमें जाड़ा होनेके कारण यहां गर्मी होने पर भी हम गर्म कपड़ा ओढकर बैठें और वहां गर्मी पड़नेकी खबर लगते ही यहां हम पंखा चलायें और और ठंडके मारे कांपने लगें, इसमें कोई अर्थ है? यहां आपसमें लड़कर हम क्या ले लेंगे? मिलकर रहेंगे तो हिन्दुस्तानके लिए उदाहृण-स्वरूप बनेंगे। एकता रखेंगे

तभी तीनों महाद्वीपोंके लोगोंके बीच भाईचारा पैदा करनेकी कला हमारे हाथमें आयेगी। इस प्रदेशमें रहनेवाले हमारे मुसलमान करीब सबके सब भारतके ही नागरिक हैं, पाकिस्तानी नहीं।

यूरोपियन लोगोंके साथ बातें करते समय एक सवाल हमसे बहुत बार पूछा जाता था।

हिन्दुस्तानमें कम्युनिज्म—साम्यवादका जोर बढ़नेकी कितनी संभावना है?

मैं उनसे कहता था कि साम्यवादके लिए हिन्दुस्तानमें जरा भी गुंजाइश नहीं है, मगर उसके खास कारण हैं। आप अंग्रेज लोगोंने समयानुसार हिन्दुस्तान छोड़नेका फैसला न किया होता, तो हमारे यहां साम्यवाद जरूर फूट निकलता। गांधीजीकी पैदा की हुई हमारे देशकी अहिंसक शक्तिको आप पहचान सके, आपने उसकी कद्र की और हमारी स्वतंत्रताको आपने मंजूर किया, इसका हिन्दुस्तान पर भारी असर हुआ। आपके प्रति जो द्वेष था वह मिट ही गया, लोगोंको यह भी विश्वास हो गया कि गांधीजीके मार्गसे ही देशकी उन्नति होगी।

और भी कारण हैं। जहां सामाजिक, वांशिक या आर्थिक अन्याय है और गरीबोंमें उनसे मुक्त होनेकी आशा नष्ट हो जाती है, वहीं साम्यवाद फूट निकलता है। हमारे यहां हमने हजारों वर्ष पुरानी छुआछूतको सपाटेसे नष्ट कर दिया और सामाजिक न्याय स्थापित किया। छोटे-बड़े असंख्य राजाओंने सिर परका मुकुट उतार कर प्रजाके चरणोंमें रख दिया। जमीदारी प्रथाका भी अन्त करनेके लिए हम तैयार हो गये हैं और जमीदार भी उचित मुआवजा लेकर जमीन छोड़ देनेको तैयार हो गये है। और हरएक बालिगको मताधिकार देकर दुनियामें बेमिसाल विशाल निर्वाचक मंडल हम लोगोंने तैयार किया है। ऐसी-ऐसी जबरदस्त कार्रवाइयोंके कारण लोगोंमें विश्वास जम गया है कि नेहरू सरकारके हाथों न्याय जरूर मिलेगा। इसलिए हमारे यहा साम्यवादके लिए गुंजाइश नही है। जिस-जिस जगह सरकारी इन्तजाम ढीला था, वहा-वहां साम्यवादी लोग बखेड़ा कर सके। लोगोंमें सीधा प्रचार करके आनेवाले चुनावोंमें जीत जानेकी हिम्मत साम्यवादके पास होती, तो वह बखेड़े और धांधलबाजीके झंझटमें हरगिज न पड़ता। जहां सामाजिक, वांशिक और आर्थिक न्याय होता है, वहां साम्यवादका डर नही रहता। साम्यवाद समूह-जीवनके रोगकी ही एक निशानी है।

एक दिन हमने कबेटे जाकर वहांकी सरकारी उद्योगशाला देखी। इस उद्योगशालामें अफ्रीकी लड़कोंको बढ़ईगिरी, लुहारी, टीनका काम, राजका काम, बिजलीका काम, दर्जीका काम, मोचीका काम वगैरा धंधे सिखाये जाते हैं। पाठ्यक्रम एक से तीन वर्षका रखा गया है। सभी छात्र लगनसे काम करते दिखाई दिए। कामकी सफाई भी अच्छी थी। शिक्षक सभी गोरे कारीगर थे। ऐसा लगता था कि कुछ अच्छे शिक्षाकार भी होंगे। मैंने एक आदमीसे खानगीमें पूछा कि, "क्या यह खयाल

सच्चा है कि अफ्रीकी लड़के दूसरी जातियोंके विद्यार्थियोंसे बुद्धिमें कम या मंद होते हैं ?" उन्होंने जरा सोच कर कहा कि, "आम तौर पर यह बात सच है। परंतु जो होशियार होते हैं, वे गैर-मामूली होशियार होते हैं। तीन सालकी शिक्षाके अंतमें सभी स्वावलंबी बन जाते हैं। अच्छे-अच्छे काम जुटा लेते हैं ।"

पंजाबसे आये हुए सिक्ख लोगोंमे मैंने कहा कि कबेटे जैसी संस्थाएं यहां बढ़ेंगी तो आपका काम यहां नहीं रहेगा। अभीसे इन लोगोंको अपने कारखानोंमें काम देने जाइये, ताकि उनके और हमारे बीच प्रेम संबंध कायम रह सके। अगर हमें यह देश छोड़ना ही पड़े, तो हम यह संतोष लेकर जायं कि हम इन लोगोंको स्वावलम्बी बनाकर ही जा रहे हैं, हम इनका आशीर्वाद लेकर ही जा रहे हैं।

नैरोबीका एक बड़ा आकर्षण है यहांके जंगली शिकारी जानवरोंका अभयारण्य। यह भाग खासा लम्बा चौड़ा ८० चौरस मीलका है। जहां-जहां घाटियां हैं वहां-वहां थोड़ेसे पेड हैं, बाकी सारा भाग घासका खुला मैदान है। इस प्रदेशमें जानवरोंको मारने, छेड़ने या सतानेकी सख्त मनाही है। यह नियम सिर्फ मनुष्यों पर ही लागू है। जानवर आपसमें जंगलके कानूनकी वजहसे जैसा चाहें बर्ताव कर सकते हैं। एक जानवरसे दूसरे जानवरकी रक्षा करनेके लिए भी मनुष्य जाति दखल नहीं दे सकती। इस अरण्यमें सिंह हैं, परन्तु वे पेट भरने जितना ही शिकार करते हैं। सिंहको भूख न हो तो वह नजदीक आये हुए जानवरको भी नहीं मारेगा। इस अभयारण्यमें अनेक प्रकारके चतुष्पाद, श्वापद, सर्प जैसे अनेक सरीसृप और तरह-तरहके पक्षी रहते हैं। बहुत कोशिश करने पर भी इस बार सिंह हमारे देखनेमें नही आया। वैसे, हिरण और गायके लक्षणोंवाले वुद्दू नामक जानवर, 'ज़िब्रा' नामसे परिचित चित्राश्व, जिराफ वगैरा अनेक पशु हमें देखनेको मिले। एक हिप्पोको हमने कीचड़में लोटपोट होते देखा। असंख्य प्रकारके हिरण यहां घूम रहे थे। सिंहके होनेसे वे उदास नहीं थे। शुतुर्मुर्ग जब नीचा सिर किये चरते हों, तब पहचानना मुश्किल होता है। परन्तु जब वे सिर उठा कर इधर-उधर देखने लगें, तब उनका गर्व देखने लायक होता है। वे इस ढंगसे दौड़ते है मानो अपने पांवोंके नीचे भारी कीमती माल छिपा रखा हो !

नेशनल पार्कमें मोटरमें बैठकर दौड़नेमें हमें अपनी कुतूहल वृत्ति ही प्रेरक होती थी। परन्तु भाई सूर्यकान्त जैसे हमारे मेजवानोंके लिए, जो असंख्य बार सारा पार्क रौंद चुके थे, हमारा संतोष ही उनका संतोष था। उनसे इन जंगली जानवरोंकी खासियतें सुनते और पुराने प्रसंगोंका रसपूर्ण वर्णन किये जाते समय हमारा आनन्द द्विगुणित हो जाता था। मेरे खयालसे इन वर्णनोंके बिना पशु-दर्शन ज्यादातर फीका ही रहता।

वापस लौटते समय हमें जो बन्दर दिखाई दिये, उनकी हस्ती तमाम जानवरों में अलग ही मालूम होती थी। मनुष्यको नजदीक देखकर सभी जानवर हट जाते

हैं; परन्तु बन्दर मानो हमें देखकर आलोचना करते हों और हमें तुच्छ समझते हों, ऐसा मुंह बनाकर ही हटते हैं।

हमें कई तरहके जानवरोंको वन्य दशामें देखनेसे आनन्द होता है। देश-देशान्तरके और तरह-तरहके मनुष्योंको इस प्रकार आकर अपना दर्शन देते हुए देखकर श्वापदोंको क्या खयाल होता होगा? अभयारण्यमें आनेवाले सभी मनुष्य सज्जन और तृप्त होते हैं, कोई हमें मारता नही, यह देखकर भी उन्हें आश्चर्य होता होगा।

अरण्यवासी श्वापदोंका जीवन देखकर मेरे मनमें एक विचार आया। सलामती और शांति प्राप्त करनेके लिए मनुष्यने सामूहिक जीवनका संगठन किया। राज्य-व्यवस्थाकी स्थापना की। राजा, न्यायाधीश, सेनापति, सेनाएं और पुलिस खड़ी की। लोगों पर जबरदस्त कर लगाया। अनेक कानून बनाये, व्यक्तिकी स्वतंत्रता पर प्रहार किये, फिर भी हम कितनी हिंसा टाल सके? कितनी शांति स्थापित कर सके? इन पशुओंकी तरह मनुष्य भी वन्य और अराजक दशामें रहे होते, तो क्या आजसे ज्यादा भयभीत हालतमें रहे होते? हमें समझाया जाता है कि आज जितनी मारकाट होती है, मारपीट और लूट होती है, वह अराजक स्थितिकी अपेक्षा बहुत कम है। परन्तु समय-समय पर जो भीषण और अति भीषण युद्ध सहन करने पड़ते है और उनमें जो मनुष्य-हत्या, लूटमार और बर्बादी की जाती है उसका हिसाब लगायें, तो यही कहना पड़ेगा कि राज्यतंत्र स्थापित करके मनुष्य-हत्या अधिक ही हुई है। और न्याय-व्यवस्थाका विचार करने पर भी यह नही कहा जा सकता कि अराजक स्थिति कम संतोषजनक है। मनुष्यके हृदयमें जो स्वाभाविक न्यायबुद्धि है, उसकी अपेक्षा पुलिस और न्यायमंदिरों द्वारा मनुष्य-जातिको अधिक न्याय मिलता है, यह मानना भी कठिन है। अभयारण्यमें पशु-पक्षियोंको विश्वासपूर्वक रहते, चरने और फिरते देखकर मुझे तो विश्वास हो गया कि मनुष्य-समाजसे इसी जगह, पर निर्भयता अधिक है। और किसी भी जातिकी संख्या बढ़ जाय, तो उसका इलाज भी वन्य जीवनमें अपने आप किया हुआ होता है। डार्विन-का जीवन कलहका सिद्धान्त और प्रिंस क्रोपॉटकिनका परस्पर सहयोगका सिद्धान्त दोनों जान लेनेके बाद मनुष्यको एक बार वन्य जीवन और मानवीय राज्य-जीवन-का फिर नये सिरेसे विचार करना चाहिये।

० ० ०

देवताओंका जन्म कब हुआ और किस ढंगसे हुआ, इसका विचार करनेवाले अपने पूर्वजोंके मानसिक पराक्रमसे जैसे हम विस्मित और चकित होते हैं, उसी तरह इस पृथ्वीकी रचना या महासागर और विशाल महाद्वीपोंकी रचनाकी भी कल्पना करनेवाले और उसके लिए विज्ञानका सबूत पेश करनेवाले विद्वानोंकी कल्पनाशक्ति और हिम्मत हमें आश्चर्य-चकित कर डालती है।

अफ्रीका महाद्वीप छोटा-मोटा देश नहीं है। उसका सिर लगभग पांच हजार मील चौड़ा है और उसका उत्तरी दक्षिणी विस्तार इससे जरा अधिक है। इस महाद्वीपकी रचना किस प्रकार हुई होगी, इसका विचार करते समय जैसे सहारा और कलाहारीके दो रेगिस्तानोंका विचार करना पड़ता है, उसी प्रकार पूर्व अफ्रीकाकी जमीनमें जो प्रचंड दरारें पड़ी हैं उनका भी विचार करना पड़ता है। सैकड़ों मील लम्बी, ४० से ६० मील तक चौड़ी और डेढ़से ढाई हजार फुट गहरी दो दरारें—'रिफ्ट्स' किस तरह पैदा हुई होंगी, इसकी कल्पना अनेक भूगर्भ-शास्त्री करते हैं। किसीका मानना है कि हिन्द महासागरके पूर्वी किनारे परका दबाव किसी भी कारणसे घट जानेसे ये दरारें पैदा हुई हैं। दूसरे लोग कहते हैं कि ज्वालामुखीके फटने और पृथ्वीकी सतहमें कोई गड़बड़ होनेसे ये दरारें उत्पन्न हो पाई हैं। कुछ भी हो, ये दरारें आज असली रूपमें नहीं हैं। समय-समय पर ज्वालामुखियोंके फटनेसे हरएक दरारके टुकड़े हो गये हैं। आल्बर्ट एडवर्ड, कीव्हू, टांगानिका, रुकवा और न्यान्जा वगैरा तमाम सरोवर मिलकर एक दरार थी। दूसरी तरफ पूर्वी दरार इयासी, रूडोल्फ, मागड़ी, नैवाशा, हेनिंगटन, बेरिंगो और रूडोल्फ वगैरा सरोवरोंसे लगकर लाल समुद्र होती हुई फिलिस्तीनके मृत समुद्र तक जाती है। और इन दो दरारोंके चिमटेके बीच पकड़ा हुआ हो, इस प्रकार विक्टोरिया (अमृत) सरोवर युगान्डा और केनियाके बीच विराजमान है।

इस पूर्वी दरारका कुछ भाग समतल होनेसे इसमें मनुष्य और प्राणियोंकी बड़ी आबादी समाई हुई है। इसे देखनेका मौका कैसे छोड़ा जाता? पिछले युद्धके इटैलियन कैदियोंने नैरोबीके आसपास बहुतसे रास्ते तैयार कराये गये। इस रास्ते दरारकी एक किनारी पर हम उतर गये और वहांसे कोई ३० मील दूर स्थित सामनेकी किनारी और बीचकी तलहटीमें उभरी हुई कुछ मृत ज्वालामुखीकी पहाड़ियां हम देख सके। कुछ लाख वर्ष पहले जब यह दरार पहले-पहल पड़ी तब कितनी बड़ी आवाज हुई होगी, इसकी कल्पना करने पर काल-बुद्धिने कहा कि उस समयकी आवाज सुननेके लिए न कोई मनुष्य था, न कोई जानवर। भयानक नभोविदारक शब्द हुआ होगा परन्तु डरनेके लिए वहां कोई था ही नहीं! आवाज हुई और वह अनन्त आकाशमें विलीन हो गई। आसपासकी जड सृष्टिने मूल शब्दकी प्रतिध्वनियां बरदाश्त की होंगी। और वे भी अनन्त आकाशमें विलीन हो गई होंगी। आज इस दरारके केवल अवशेष ही रह गये है और उनमें वनस्पति-सृष्टि, पशु-सृष्टि और मनुष्य-सृष्टि अपने-अपने जीवनका आनन्द लेने लगी हैं। इस 'रिफ्ट' का दृश्य सचमुच भव्य है। भूगर्भ-शास्त्रकी जिसे थोड़ीसी भी कल्पना और दिलचस्पी है, उसकी कल्पनाके लिए यह दृश्य बड़ा ही उत्तेजक है।

दूसरे दिन इस दरारके दूसरे प्रदेशमें हम पुराना उत्खनन देखने गये। इस स्थानको 'ओरलेगोसाइली' कहते हैं। वहां एक प्राचीन सरोवरकी तलहटी दस दस

हजार वर्षमें कैसे भरती गई और उस समयके जानवरोंकी हड्डियां किस प्रकार छोटी-बड़ी होती गईं, यह हमने जान लिया।

मिट्टीके, ज्वालामुखीकी राखके, रेतके और हड्डियोंकी जो अलग-अलग पर्तें एक पर एक जमती हैं, उनका हिसाब करके प्रागैतिहासिक बातोंका कालक्रम तय किया जाता है। हमें सब कुछ समझानेवाले भाई कहते थे कि बीचमें दस हजार वर्ष तक बरसातकी एक बूंद तक नहीं पड़ पाई। परिणामस्वरूप सारी प्राणी-सृष्टि मर गई। उसके बाद जब नई सृष्टि पैदा हुई तब फिरसे जानवर पैदा हुए और जैसे-जैसे खुराककी कमी दूर होती गयी, वे प्राणी बड़े भी होते गये।

ऐसी जगह जो प्राचीन अवशेष अथवा उनके 'फोसिल' मिलते हैं, उन्हें उठा कर ले जाना अपराध है या नहीं? साधारण मनुष्य इन अवशेषोंका कोई भी उपयोग नहीं कर सकते। निरर्थक कुतूहल तृप्त करनेके लिए ऐसे प्रागैतिहासिक महत्त्वकी सामग्री उठा कर ले जाना मानवी ज्ञानके प्रति महाद्रोह है। संबंधित देशोंकी सरकारोंको ऐसी तमाम सामग्री संभालकर रखनी चाहिये और दुनियाके समर्थ विद्वानोंकी अन्तर्राष्ट्रीय जातिको इस सामग्रीका उपयोग करनेकी छूट देनी चाहिये।

इस प्रदेशमें जाते और आते रास्तेमें हमने तरह-तरहके अनेक श्वापद देखे। उनमें भी खास तौर पर जो जिराफ बिलकुल नजदीकसे देखनेको मिले, उनकी शान भुलाई नही जा सकती। उनके सिरके सींग इतने छोटे होते हैं, मानो बायनोक्यूलर चश्मेकी तरह आंखोंके ऊपरसे सिर पर चढ़ा दिये गये हों! जिराफ प्राणी इतना ऊंचा और लम्बग्रीव होता है, परन्तु उसके चेहरे परसे ऐसा नही लगता कि खुद उसे यह अटपटा लगता हो। क्या इन जानवरोंको सचमुच अपने पूर्वजोंके हजारों वर्षके इतिहासका पता होगा? काल भगवानके उदरमें प्रवेश करके कल्पनाकी नजरसे देखनेकी शक्ति मनुष्य-जातिके पास ही है। बाकीके प्राणियोंके लिए वर्तमान काल ही सत्य होता है। भूत और भविष्य काल उनके लिए मायाकी तरह ही होगा। और इसलिए वे निश्चिन्त होकर प्राचीन अवशेषोंके बीच भी चल सकते हैं।

'रिफ्ट' वेली और ओरलेगोमाइली, इन दो स्थानोंके दर्शनसे ताजी हुई जिज्ञासाको लेकर हम नैरोबीका 'कॉरिन्डन' म्यूजियम देखने और खास तौर पर उसे अनेक प्रकारसे सजाकर उपयुक्त बनानेवाले विद्वान डॉक्टर लेकीसे मिलने गये।

मैंने सुना कि इसी म्यूजियममें एक गांधी विभाग खोलनेवाले है, मगर अभी तक मैंने यह नहीं पूछा कि इसम क्या क्या रखा जायगा और उसकी व्यवस्था कैसी होगी? गांधी म्यूजियम मेरा क्षेत्र होनेसे इस कल्पनाके प्रेरकोंसे मिलकर उसकी तफसील जान लूंगा।

नैरोबीका कॉरिन्डन म्यूजियम सामान्य संग्रहालय नही है। उसमें सारे अफ्रीका

महाद्वीपका रहस्य प्रगट हुआ है। डॉक्टर लेकी दुनियाके एक प्रखर भूगर्भ-शास्त्री हैं। उन्होंने बड़े-बड़े शोध किये हैं। उन्होंने अफ्रीका महाद्वीपका लाखों और करोड़ों वर्षका इतिहास अनेक उत्खननोंमेंसे खोज निकाला है। केवल मनुष्योंके ही नहीं, परन्तु छोटे-बड़े असंख्य प्राणियोंके इतिहासका श्रेय आज उन्हीको है। खुदाई करते करते उन्हें कुछ खोपड़ियां ऐसी मिली हैं कि जो बन्दर और मनुष्यके बीचकी कड़ी पूरी कर देती हैं। बड़े अभिमानके साथ उन्होंने वह खोपड़ी आलमारीसे निकाल कर हमारे हाथमें रखी और हमें बताने लगे : "देखिये, यह आंखके ऊपरकी भौंहकी उभर आई हुई हड्डी··· । यह देखिये मनुष्यका मस्तिष्क समा जाय ऐसा इस खोपड़ीका बड़ा पोलापन।" बातों ही बातोंमें एक चित्रकी तरफ उंगली दिखाकर उन्होंने कहा : "यह जो वंशवृक्ष मैंने तैयार किया है, इसके लिए कुछ जानकारी हिन्दुस्तानसे ही मिल सकती है। अपने हिन्दुस्तानके भूस्तर-शास्त्रियोंसे कहिये कि इसमें मेरी मदद करें, क्योंकि यह काम सारी मानव-जातिका है।"

मैंने उनसे कहा : "आप जो चाहते हैं उस बातकी खोज हिमालयसे पहलेकी शिवालिक पहाड़ियोंमें ही हो सकती है।" "मैं भी यही मानता हूं" उन्होंने अनुमोदन किया। चर्चा आगे चलने पर मैंने कहा : "मेरे जन्मसे पहले ब्रूसफुट नामक एक भूगर्भ-शास्त्री दक्षिण भारतमें दौरा करता था। उसे एक राक्षसी मनुष्यका जबड़ा मिला था। मेरे पिताजीने उस जबड़ेका जो फोटो लिया था वह मैंने देखा था।"

"ब्रूसफुटका नाम मैंने सुना है। उनको जो जबड़ा मिला था, वह अब कहां होगा?" उन्होंने मुझसे पूछा। मैंने कहा कि, "उस समय मेरा जन्म भी नहीं हुआ था। शायद मद्रास म्यूजियममें वह पड़ा होगा। छुटपनमें वह फोटो मेरे पास था। बहुत लोगोंने उसे देखा है।"

डॉ० लेकीने कहा कि "मनुष्य शरीरसे बड़ा हो या छोटा, यह सब खुराक पर निर्भर करता है। गेंडा या हिप्पो जैसा प्राणी भी खुराककी कमीके कारण दस बीस हजार वर्षके भीतर चूहे जैसा छोटा बन जाता है।"

दो-एक घंटे हमारी बातें हुई। उस बीच अरण्योंके सिलसिलेमें वनस्पतिशास्त्र, तितलियोंका शास्त्र, प्रकृतिमें होनेवाली 'मिमिक्री', पशुपक्षियोंके प्रकार वगैरा कितने ही विषय आ गये। साहबका काम करनेका कमरा देखने लायक था। पुस्तकों, रिपोर्टों, नोटबुकों और तसवीरों आदि अनेक वस्तुओंके ढेर वहां पड़े हुए थे! उनके कपड़ोंका भी ठिकाना नहीं था। सारे समय अपने काममें मस्त, और कुछ उन्हें सूझता ही नहीं था। अपने शास्त्रमें अखंडरूपसे रमे रहते थे। जिस जातिमें ऐसे मस्त लोग पैदा होते हैं, उस जातिका मुख सदा उज्ज्वल रहेगा।

म्यूजियमकी रचना विचारपूर्वक की गई थी। भिन्न-भिन्न जातिके जानवर अपने स्वाभाविक वातावरणमें रखे गये थे। यह देखकर मुझे बंबईका प्रिंस ऑफ

वेल्स म्यूजियम याद आ गया। मैं मानता हूं कि हरएक देशके मुख्य-मुख्य म्यूजियमोंके वस्तुपालोंको सरकारी खर्चसे दूसरे बड़े-बड़े म्यूजियम देखने भेजना चाहिये और उनसे ऐसा साहित्य तैयार कराना चाहिये, जिसे साधारण आदमी समझ सकें।

एक दिन भाई सूर्यकान्तने मुझसे आकर पूछा : "काकासाहब, "आपने यहांका किकूयू सरोवर देखा है ?" मैने कहा : "नही, मेरे सामने किसीने उसकी बात तक नही की।" "आपको उसे खास तौर पर देखना चाहिये। ऊपर जमीन है और नीचे सरोवर है। आप उस पर चल सकते हैं। परन्तु वह जमीन इस तरह झूलती है जैसे रबरकी बनी हो।"

मुझे बंबईकी मलबार हिल परका हैंगिंग गार्डन याद आ गया। इतनी तो मैं कल्पना कर ही सका कि किकूयू सरोवरमें उससे अधिक विशेषता होगी, परन्तु उसकी कल्पना स्पष्ट नही हुई। एक सुबह सूर्यकान्तभाई हमें वहां ले गये। किकूयू स्टेशनसे वह एक फर्लांग भी दूर नही होगा, परन्तु नैरोबीसे वह ग्यारह मील दूर है। वहां जाते हुए रास्तेमें हमें किलिमाजारो पहाड़के सुन्दर शिखरके स्पष्ट दर्शन हुए। दो-तीन दिन पहले युनाइटेड केनिया क्लबमें प्रवचन करनेसे पहले श्री अप्पासाहब अपनी मोटरमें मुझे जल्दीमें ले गये थे और उन्होंने मुझे सूर्यास्तके गेरुआ रंगसे रंगा हुआ किलिमाजारोका शिखर बताया था। दो-तीन मिनिट देखा होगा कि इतनेमें सूर्यनारायणने अपनी किरण-कृपा समेट ली और उसी क्षण शिखरकी शोभा विलीन हो गई।

आज बढ़ते हुए प्रकाशमें किलिमाजारोके शिखरका दर्शन हमने जी भरकर किया। बड़े हाथीकी पीठ हो या किसी औलियाका कमंडलु औंधा रख दिया गया हो, इस तरह वह शिखर शोभा दे रहा था। हमारे देशमें पर्वत-शिखरोंकी कमी नही है। और कितने ही शिखर तो बहुत ही सुन्दर होते हैं। परन्तु किलिमांजारो तो किलिमांजारो ही है।

हम किकूयू पहुंचे और सरोवरके किनारे मोटरमें उतरे। किसी बड़े विशाल तालाबका पानी सूख गया हो और उसकी तहके कीचड़में काई और घास उग आई हो, ऐसा दृश्य था। श्री सूर्यकान्तभाईने कहा कि, "इस जमीनके नीचे पानी है। उस कोनेमें जो पंप दिखाई देता है उसकी मददसे इस तालाबका पानी खींचकर नैरोबीके कुछ भागोंको दिया जाता है। इतना पानी खिंचता है, तो भी तालाबका पानी खूटता नहीं।"

डरते-डरते हमने तालाबके ऊपरकी जमीन पर पैर रखा और आगे चले। जमीन लब-लब-लब हिलने लगी। हमें लगता कि पैरोंके नीचेकी जमीन अब फट जायगी और पैर पानीमें चले जायेंगे। कहीं-कहीं पैर दो इंच इस तरह अंदर भी चले जाते जैसे कीचड़में फंस गये हों। हम चलते-चलते सरोवरके बीच तक गये और

बाईं तरफ मुड़ कर वापस आ गये। बीच-बीचमें छोटे-छोटे कुएं जैसे खड्डे थे, जिनमेंसे नीचेका पानी दिखाई देता था। पानीके ऊपरकी जमीनकी तह आठ नौ इंचसे ज्यादा मोटी नहीं होगी। सूर्यकान्तभाईने एक लोकोक्ति सुनाई कि पुराने जमानेमें कुछ अफ्रीकी लड़के इनामके लालचमें एक किनारे पर पानीमें डुबकी मारकर सरोवरके अंदरसे तैरते-तैरते दूसरे किनारे पर आ जाते थे। इतनी देर सांस रोककर तैरना आसान बात नहीं थी। एक बार एक लड़का इसी तरह डुबकी मारकर गया। वह शायद अंदरके जालमें फंस गया होगा या उसका दम टूट गया होगा। वह ऊपर आया ही नहीं। तबसे सरोवरमें इस तरह डुबकी लगानेकी मनाही कर दी गई है।

सरोवरका आकार टेढ़ामेढ़ा तिकोना है। इसे कुदरतका एक चमत्कार कहा जा सकता है। सरोवरोंका स्वभाव अपना मुख उज्ज्वल और शांत रखकर आकाश के अनंत तारोंको प्रतिबिम्बित करनेका होता है। यह स्वभाव छोड़कर घास-मिट्टी-का घूंघट निकालना इस सरोवरको कहांसे सूझा? या आसपासकी पहाड़ियोंने सासपन चलाकर इस बेचारी लड़कीको इस तरह घूंघट निकालनेको मजबूर किया होगा? क्या यह लड़की इतनी ज्यादा उच्छृंखल थी कि और किसी भी सरोवरको नहीं और इसको पर्दा करना पड़ा?

दोपहरको लंच और रातको डिनर और बीच-बीचमें चाय-नाश्ताका हमारा रोजमर्राका क्रम था। कहीं हम यह न भूल जायं कि हम हिन्दुस्तानसे आये हुए 'बड़े आदमी' हैं, इसलिए यह सारी व्यवस्था थी। हर बार हमें कुछ न कुछ बोलना पड़ता था। श्री अप्पासाहबने कह रखा था कि हर जगह नये-नये लोग आते हैं, इसलिए आप अपना संदेश उन्हें देनेके लिए एक ही रिकार्ड चलाते रहे तो भी हर्ज नहीं। मगर मुझे यह आता नहीं। चीज भले एक ही हो, परन्तु नये लोगोंको देख-कर उस चीजको नये ढंगसे पेश करनेकी इच्छा होती है। और कुछ लोग तो सब जगह हमारे साथ होते ही थे। उन्हें एक ही चीज, एक ही भाषामें बार-बार सुननी पड़े यह भी मुझे अटपटा लगता था। परन्तु प्रचारकोंको इस मामलेमें ढीठ बनना ही पड़ता है। किसी भी शोभा या शृंगारके बिना अपनी बात लोगोंके सामने सीधी रखनेकी कला गांधीजीने पैदा करके दिखा दी। परन्तु इस सादगीमें भी उनका अनुकरण करना आसान नहीं। मैंने निश्चय किया कि अपने विचारों संबंधी अपनी उत्कटता पर विश्वास रखकर समय पर जो सूझे वही बोल दिया जाय।

एक बार मुझे खास विषय दिया गया Non Violence in Peace and War—शांतिकाल और युद्धकाल दोनोंमें अहिंसाका पालन।

विषय जरा विचित्र जरूर था। कुछ लोगोंका ख्याल है कि युद्ध शुरू कर देने-के बाद अहिंसाकी गुंजाइश ही कहां है? Non-Violence in War—युद्धमें अहिंसा परस्पर विरोधी चीज है।

उधर कुछ दूसरे लोग कहते हैं कि जहां हिंसा हो रही हो, वहीं अहिंसाके प्रचारकी गुंजाइश है। शांतिके दिनोंमें सभी लोग अहिंसक होते हैं। शांतिका अर्थ ही यह है। तब शांतिके दिनोंमें अहिंसाके पालन या प्रचारका क्या अर्थ ?

असलमें मनुष्य-जीवन आज इतना कृत्रिम बन गया है कि युद्धके दिन हों या शांतिके दिन हों, शांतिकी साधना उग्र या उत्कट रूपमें करनी पड़ती है।

गांधीजीकी अहिंसा कायरोंकी अहिंसा नही है। असलमें गांधीजीने कोई खास बात सिखाई है, तो वह पूर्ण अहिंसावाला तेजस्वी प्रतिकार है। युद्धके एवजमें सफलतापूर्वक इस्तेमाल की जा सकनेवाली अहिंसा ही गाधीजीका सत्याग्रह है। लड़ाईमें भाग लनेवाले बहादुर लोग खुद मरनेको तैयार होते है और सामनेवाले आदमियोंको मारनेकी कोशिश करते हैं। मरनेकी तैयारी रखना सत्यग्रहीका काम है, मारनेकी तैयारी करना जल्लादका काम है। सत्याग्रही और जल्लाद एकत्र होकर क्षत्रिय वीर बनते हैं। इस क्षात्रधर्मका गांधीजीने शुद्धीकरण किया। जल्लादको निकाल दिया और शुद्ध सत्याग्रहीको रख लिया। इसीका नाम है Non-Violence in War.

परन्तु रोज उठकर सत्याग्रहका हथियार नहीं चलाना पड़ता। सत्याग्रह हो या हत्याग्रह, दोनोंका प्रसंग ही न आये ऐसा निष्पाप जीवन बितानेका नाम है Non-Violence in Peace इसके लिए मनुष्य-जातिको अपना सारा जीवनक्रम ही बदलनेकी जरूरत है।

आज हमारा जीवन अन्याय, अत्याचार और द्वेष पर आधारित है। सामाजिक ऊंच-नीचपन और अपने-परायेका भाव, आर्थिक बंटवारेमें असमानता, राजनीतिक निरंकुशता और वांशिक तिरस्कार—'रेस हेट्रेड'—मानव-जीवनके मुख्य दोष हैं। जब तक ये दोष बने हुए हैं, तब तक हिंसाके लिए स्थान रहेगा ही।

एक बार कुछ विदेशी लोग साबरमतीमें गांधीजीसे मिलने आये थे। बहुत करके युद्धविरोधी शांतिवादी होंगे। गांधीजीने उनसे कहा कि युद्धोंसे मैं घबराता नहीं। युद्धोंमें किया जानेवाला रक्तपात मुख्य हिंसा नहीं है। यूरोप, अमरीकाका दैनिक जीवन ही हिंसा पर अवलंबित है। सामाजिक और आर्थिक अन्याय हदसे बढ़ जाता है, तब युद्ध फूट पड़ते हैं। जैसे मनुष्यको बुखार आता है। ऐसी हालतमें बुखार बीमारी नहीं होता, परन्तु हाजमा और खून बिगड़ जानेकी निशानी होता है। इसी तरह जब सामाजिक न्याय और सामंजस्य बिगड़ता है, तब उसके फलस्वरूप युद्ध फूट निकलते हैं।

मनुष्य मनुष्य-जातिको चूसता है, निचोड़ता है, जबरदस्त आदमी गरीब आदमी पर अपनी हुकूमत चलाता है, यही असली हिंसा है। इसे हम मिटा सकें और अपना जीवन स्वावलम्बी और निष्पाप बना लें तो युद्ध करने ही न पड़े। जहां कोई किसीको निचोड़ता नहीं, वहां जबरदस्त और जेरदस्तका भेद मिट जाता

है। अत्यंत गरीबी और अत्यंत अमीरी एक ही साथ चलती हैं। अगर हम समाजमें से गरीबीकी जड़ उखाड़ दें, तो अमर्यादित अमीरी अपने आप गायब हो जायेगी। मेरी शिक्षा यह है कि अन्यायका प्रतिकार करके न्यायकी स्थापना करनेके लिए हम हिंसाको काममें लेना छोड़ दें और अहिंसक सत्याग्रहको अपना लें। और साथ ही साथ हम अपने जीवनमें ऐसा फेरबदल कर ले कि न हम किसीको लूटें और न कोई हमें लूट सके। ऐसा जीवन बितानेके लिए हमें भोग-तृष्णाका संयम करना चाहिये। विलासकी वस्तुओंके पीछे पड़ना छोड़ देना चाहिये। किसी भी चीजको काममें लानेमे पहले हमें विचार करना चाहिये कि इस चीजको तैयार करनेमें इन्सानकी कितनी मेहनत खर्च हुई है और यह भी सोचना चाहिये कि इस चीजके तैयार करने और जुटानेमें कितना पाप इकट्ठा हुआ है।

दुनियाके लोग जीवनका मानदंड—स्टैन्डर्ड ऑफ लिविंग—ऊंचा करनेकी कोशिश कर रहे हैं। परन्तु भौतिक मानदंड ऊंचा करनेमे वे नैतिक मानदंड—मॉरल स्टैन्डर्ड—गिरा देते हैं और मनुष्यता खो बैठते हैं। हिन्दुस्तानके ऋषि-मुनियोंने ही नहीं, परन्तु राजाओं और सम्राटोंने भी देख लिया था कि भोग-विलासका अंत नहीं है। राजा ययातिने अपनी सारी जिन्दगी भोगविलासमें बिताई—अरे, अपने लड़केकी जवानी उधार लेकर भी उसने मौज उड़ाई, फिर भी उसकी तृप्ति न हुई। अंतमें अतर्मुख होकर वह बोला, "इस दुनियामें जितने तिल और चावल हैं, धन-धान्य और पशु-पक्षी हैं और जितने दास-दासी और युवतियां हैं, उन सबको इकट्ठा कर लें तो भी वे एक मनुष्यकी तृप्ति होनेके लिए काफी नही। इसलिए वासना-निवृत्ति ही सच्चा उपाय है; वही जीवनका रहस्य है।" यह तो हुई पौराणिक कहानी। इतिहास-कालमे सम्राट् अशोकने भी यही अनुभव किया और उसने राज्य-विस्तारका काम छोड़कर धर्म-विस्तारका काम हाथमें लिया।

भोगविलासमें मनुष्य तभी रम सकता है, जब वह दूसरोंके सुख-दुःखके प्रति बेपरवाह हो जाय। अहिंसाके मूलमें विश्वबंधुत्वका आदर्श है, राष्ट्रपूजाका नहीं।

आजकलके राष्ट्र शांति-रक्षाके लिए 'बैलेंस ऑफ पावर' उत्पन्न करना चाहते है। एकके स्वार्थके विरुद्ध दूसरेके स्वार्थको, एकके सामर्थ्यके विरुद्ध दूसरेके सामर्थ्यको तोलकर शांति स्थापित हो ही नही सकती। तराजू बाजारू चीज है, उससे शांति निर्माण नही होती। प्रेम और बंधुत्व ही उसे पैदा कर सकता है। जो कानून हम कुटुम्बके भीतर काममे लेते हैं, वही राष्ट्रोंके बीच इस्तेमाल करना चाहिये।

हिन्दुस्तानके लिए अहिंसाका संदेश युगों पुराना है। गांधीजीने इस सिद्धान्त-को राष्ट्रोंके बीच लागू करके बता दिया।

दुनियामें बन्धुताकी बाते बहुत होती हैं। परन्तु हरएक राष्ट्र कहता है कि

हमें बन्धुता तभी मंजूर होगी, जब बड़े भाईका स्थान हमें मिले।

असलमें बड़ा भाईपन तभी तक निभता है, जब तब बड़ा भाई छोटे भाईके लिए त्याग करनेको तैयार होता है। छोटा भाई बड़े भाईकी आज्ञामें रहे, तब तक बड़ा भाई छोटे भाईका कान पकड़ सकता है। मगर यही छोटा भाई जब बिगड़ता है और घरसे निकलकर रास्ते पर जा खड़ा होता है, तब बड़ा भाई उसका कान छोड़कर पैर पकड़ता है, उसे उससे क्षमा मांगकर उसे घरमें लाता है। यह प्रेमका मार्ग, अहिंसाका मार्ग गांधीजीने राष्ट्र आन्दोलनमें काममें लेकर बता दिया है।

आजकी दुनिया विज्ञानके जोर पर अनेक प्रकारसे समर्थ बन गई है परन्तु वह गांधीजीका रास्ता न ले, तो उसका नाश ही होनेवाला है। उसने मनुष्यता खो दी है। अगर गांधीजीके मार्ग पर दुनिया न सुधरी और उसने अमर्यादित सहिष्णुता और असीम धीरज पैदा नहीं किया, तो दुनिया आत्महत्या ही करेगी।

मेरा भाषण पूरा होनेके बाद एक आदमीने पूछा कि, "अगर कोई सिंह एक गाय पर वार करे, तो गाय अहिंसा किस तरह पाल सकती है?" ऐसे सवाल सदा ही पूछे जाते हैं। मैंने इतना ही कहा: "पशु पशुधर्मके अनुसार चलेंगे। मनुष्यको अपना जीवनधर्म पशुओंसे नहीं सीखना पड़ता। हम किस लिए पशुओंको अपना गुरु बनायें?"

६. थीका

श्री मेघजीभाई शाह पूर्व अफ्रीकाके एक होशियार व्यापारी हैं। वे अपना एक कारखाना दिखानेके लिए हमें थीका ले गये। यह स्थान नैरोबीसे ३८ मील दूर है। वहां मेघजीभाईका वॉटलकी छालसे अर्क निकालनेका कारखाना है। रास्ता बहुत अच्छा है। दोनों तरफ सायसल अर्थात् रेडेअनसकी खेती है। हमारे यहां खेतोंकी बाड़में अनन्नास या केतकीके पत्तों जैसे लम्बे-लम्बे कांटेदार पत्तोंके पेड़ उगते हैं। तलवार जैसे ये लम्बे पत्ते जब पक जाते हैं, तो उन्हें तोड़ कर पानीमें सड़ाया जाता है। सड़ा हुआ भाग सूखकर झटकानेके बाद जो रेशे रहते हैं उनके बड़े-बड़े रस्से बनाते हैं। ये रस्से पानीमें गलते नहीं और बड़े मजबूत होते हैं, इसलिए इन रेशोंकी इतनी कीमत है। इस पेड़को दक्षिण महाराष्ट्रमें रेडेअनस कहते हैं। अंग्रेजीमें इसे सायसल कहते हैं। पूर्व अफ्रीकामें इस सायसलकी खेती बहुत बड़े पैमाने पर होती है।

वॉटल-बार्क बबूलकी छाल जैसी एक छाल है। चमड़ा कमानेमें इसका अर्क बहुत उपयोगी होता है। वॉटलकी छाल इकट्ठी करके उसके टुकड़ोंको उबालकर उसका अर्क निकाला जाता है और इस अर्कको सुखाकर उसकी सूखी सलाइया

तैयार की जाती हैं। थीकामें एक पहाड़ीकी गोदमें, काव्यमय स्थान पर वॉटल-बार्कका अर्क निकालनेका कारखाना है। हमने यह सब विस्तारसे देखा। अपने कारखानेके लोगोंके लिए मेघजीभाईने जो संतोषजनक सुविधाएं कायम की है, वे भी हमने देखी।

लौटते हुए हम थीकाके पासके दो प्रपात देखने गये। उनमेंसे एक प्रपात जहांसे सबसे बढ़िया ढंगसे दिखाई दे सकता था, वहां गोरे लोगोंने एक होटल बनाया है। ऐसी जगहों पर पश्चिमके लोगोंको जीवनका आनन्द लूटनेकी सूझती है, जब कि हम लोग ऐसे स्थानोंको तीर्थधाम बनाकर वहां ईश्वरका चिन्तन करना पसन्द करते है। लेकिन यात्राका धाम तय होते ही वहां मंदिर और धर्मशालाएं आ ही जायंगी। उनके साथ लोगोंके झुंड, बाजार और तरह-तरहकी गंदगी भी—भौतिक और सामाजिक दोनों तरहकी। यहांकी बढ़ियासे बढ़िया जगह होटलके कब्जेमें चली जानेसे वहां सुन्दर बगीचा बनाया गया है। नहानेके लिए एक बड़ा कृत्रिम तालाब बनाया गया है। उसके आसपास कपड़े बदलनेके और गर्म पानीसे नहानेके कमरे भी बनाये गये हैं। भोगविलासके तमाम साधन इकट्ठे किये गये हैं। मगर मामूली आदमी वहां नहीं जा सकता। सिर्फ मालदार और उनमें भी गोरे लोग ही यह सब आनन्द लूट सकते हैं। दोनों प्रकारके अच्छे पहलू जमा करके इसे एक आदर्श स्थान नहीं बनाया जा सकता?

आवश्यक अनुमति लेकर हम ये दोनों प्रपात देख आये। एकका नाम थीका है और दूसरेका चानिया।

पानीका प्रपात नशेकी-सी चीज है। जितना ज्यादा खड़े रहिये, उतना वहीं रह जानेका मन करता है। दोनों प्रपात काफी मस्तीमें थे। मिट्टीके कारण पानीमें ललाई आ गयी थी। परन्तु जहां प्रपात गिरता है वहां ऐसा चमकता हुआ पीलापन दिखाई देता था, जैसे सोनेका ही प्रपात गिर रहा हो!

७. नैरोबीका हमारा घर

जब तक नैरोबी छोड़ा नहीं, तब तक हमें ऐसा नहीं लगा कि अफ्रीकाकी यात्रा शुरू हो गई। मोम्बासा सिर्फ प्रवेशद्वार था। नैरोबी आये तभी लगा कि हम अफ्रीकामें आये हैं। नैरोबी छोड़ा तब लगा कि हम अफ्रीकाकी यात्रापर निकले हैं। तब तक हम मानो अपने घरमें ही थे।

इसका मुख्य कारण थे हमारे मेजबान श्री तात्यासाहब इनामदार, अप्पासाहब पन्तके निजी मंत्री। श्री इनामदारके साथ मेरा परिचय बहुत पुराना था। सन् १९३६ में जब अहमदाबादमें गुजराती साहित्य परिषद हुई थी। और पूज्य

गांधीजी उस परिषदके अध्यक्ष थे; तब मैं था कलाविभागका अध्यक्ष। उस समय श्री इनामदार ईडर राज्यमें शिक्षा-विभागके संचालक होंगे। उन्होंने वहांकी स्थापत्य-कला पर एक सुंदर निबन्ध लिखकर छपाया था, जो मुझे खूब पसन्द आया था। इसी कारण हम नजदीक आये। उसके बाद हरिपुरा कांग्रेसमें हम फिर मिले। इनामदारने देश-देशान्तरकी शिक्षा-पद्धतिका अध्ययन करनेके लिए जापान और यूरोपका सफर किया था। औंधके राजपरिवारके साथ उनका सम्बन्ध है। इसलिए श्री अप्पासाहब पन्त जब भारत सरकारकी तरफसे पूर्व अफ्रीकाके कमिश्नर मुकर्रर हुए, तब स्वाभाविक तौर पर श्री इनामदार उनके निजी मंत्रीके रूपमें उनके साथ आये। मैं मानता हूं कि अप्पासाहबके बचपनमें श्री इनामदारने शिक्षा-शास्त्रीकी हैसियतसे उन पर देखरेख रखी होगी।

नैरोबीमें श्री कमलनयन बजाज सहकुटुम्ब अप्पासाहबके यहां रहे। स्वराज्य आन्दोलनके अन्तमें देशी राज्योंके सवालके हलके सिलसिलेमें वे दोनों एक-दूसरेके काफी सम्पर्कमें आये थे, इसलिए उनका साथ रहना ही यथायोग्य था और मैं श्री इनामदारके यहां रहूं यह भी उतना ही ठीक था। उनके घरमें घुसते ही सौभाग्य-वती शकुन्तलाबहनने हमें घरका बना लिया। 'हम' यानी मेरी पुत्री समान मन्त्री चि० सरोजिनी नाणावटी और मेरे साथ आये हुए श्री शरद पंड्या। श्री इनामदार-की लडकियोंने भी कोई संकोच रखे बिना हमें अपने घरमें स्थापित कर दिया। कुछ-कुछ शरमाये हों तो उनके छोटे भाई विनय कुमार। आजकल सब जगह यही देखा जाता है कि लड़कियोंकी अपेक्षा जवान लड़के ही ज्यादा शरमाते हैं! धीरे-धीरे विनयकुमार भी हमारे साथ घुलमिल गये। इसका मुख्य कारण था उनकी सेवावृत्ति। विनयकुमार तो वे जरूर थे ही, परन्तु तरह-तरहकी सेवा करते हुए विनय कहां तक टिकती? उन्होंने पहले शरदके साथ दोस्ती की, फिर मेरे साथ बातें करने लगे। चि० उषा तो पहले ही दिन हमारी लाड़ली बन गई। प्रार्थनामें भजन गाती, खाते समय हम पर देखरेख रखती। चि० रजनी थोड़े ही दिनोंमें उच्च शिक्षाके लिए हिन्दुस्तान चली गई। नैरोबीसे मोम्बासा तक रेलसे और वहांसे बम्बई तक जहाजमें उसने अकेले ही प्रवास किया। पुराने ढंगकी स्त्रियां ऐसी हिम्मत नहीं करती। आजकलकी लड़कियोंको सफरके लिए कोई साथी मांगनेमें शर्म आती है।

तात्यासाहबकी बड़ी लड़की चि० लताने समाजसेवाकी विद्याकी शिक्षा पाई है, इसलिए वह नैरोबीमें ठोस काम करनेकी तैयारी कर रही है।

इनामदारके यहां दो बिल्लियां, एक बड़ा कुत्ता 'वाघ्या' और एक नीला तोता है। तोतेका काम था घरमें आनेवालोंका स्वागत करनेका। और कुत्तेका काम घरकी रखवाली करनेका। कुत्ता अपने नामके अनुसार सचमुच शेर है। घरके लोग कहें कि 'फलां आदमी पर न भौंको, वे घरके बन गये हैं,' तो फिर वह तुरन्त

दोस्ती करने लगता है। बिल्लियोंने दो सिरेके दो रंग पसन्द किये हैं। इसलिए एक-का नाम मैंने रखा अमावस्या और दूसरीका पूर्णिमा। बिल्लियां स्वभावसे प्रेमेच्छुक होती हैं। सबसे लाड़ वसूल करती ही जाती हैं।

ऐसे घरसे सफरके लिए निकलते समय जी भारी होना स्वाभाविक था। परन्तु तात्या खुद हमारे साथ आनेवाले थे, इसलिए विशेष बुरा न लगा।

८. दो व्योमकाव्योंका समकोण

नैरोबीसे हवाई जहाजमें बैठकर हम निकले टांगा जानेको। परन्तु मोम्बासा-में हमें हवाई जहाज बदलना था, इसलिए पहले हम नैरोबीसे सीधे समुद्रकी तरफ उड़े।

विमानयात्रा यानी व्योमकाव्यका आनन्द। जब हम रवाना हुए, तब मुश्किलसे सूरज उगा था। नीचे गोरोंकी छोटी बड़ी वाड़ियां और अफ्रीकी लोगोंके झोंपड़े दिखाई देते थे। दोनों जातियां खुले जीवनकी रसिया; मगर अफ्रीकी कमसे कम सुविधाओंसे सन्तुष्ट, जब कि गोरे तरह-तरहके सुभीते पैदा करनेमें शूर हैं। हवाई जहाजसे नीचेकी ओर देखने पर पहाड़ोंके सिर पर दौड़ते रास्ते और सिरसे नीचे उतरते हुए पानीके प्रवाह—सभी कुछ सुन्दर मालूम होता था। अफ्रीकाकी सारी ही जमीन पुराणकालके ज्वालामुखीके उत्पातसे बनी हुई है। इस तरफ जमीन सिंदूर जैसी लाल और उसके ऊपर हरी हरी वनश्री—मानो इन्द्रलोकके रसिकोंके लिए खास तौर पर बनाई गई विशाल रंगभूमि हो।

जिसे केवल भूगोल-विद्यामें ही दिलचस्पी है, उसके लिए भी विमानयात्रा एक अपूर्व अवसर होता है। ऊंची-नीची जमीनकी रचना, पानीका विस्तार, नदियोंका टेढ़ापन और जंगलोंकी समृद्धि प्रत्यक्ष आंखों देखनेको मिले बिना भूगोलवेत्ताकी आत्मा तृप्त नहीं होती। परन्तु जो आदमी बचपनसे कुदरतकी उपासना करता आया है, कुदरतके दर्शनसे ही जिसकी आत्मा विकसित होती आयी है और कुदरत-के द्वारा ही जो भगवानके दर्शन करनेकी कोशिश करता आया है, उसके लिए हवाई जहाजका सफर एक आध्यात्मिक महोत्सव ही है।

विमानमें चढ़ते ही अच्छीसे अच्छी जगह देखकर मैं अपनी आंखें खिड़कीके कांचसे लगा देता हूं और भूखे-प्यासेकी तरह सारी दृश्य-सृष्टिका पान करता रहता हूं।

बाईं तरफ सबसे पहले इस प्रदेशके देशनायक गिरिराज माउंट केनिया दिखाई दिये। उन पर एक हद तक वृक्ष वनस्पतिकी समृद्धि उछलती हुई दिखाई देती है। उसके बाद जहां ठंड बढ़ती है, सनसनाती हुई हवा किसी भी वनस्पितिको

टिकने नहीं देती—वहां सब कुछ कोरमकोर (कोरा-खाली) होता है। केनियाको प्रणाम करके नजर दक्षिणकी तरफ घुमाई। वहां पहले पहाड़ोंमें उत्तम माना जाने वाला मेरुपर्वत दिखाई दिया। (भगवान स्वयं स्वीकार करते हैं, मेरुः शिखरिणाम् अहम्।') उस पर नजर जरा ठहरी कि इतनेमें दूर, बहुत दूर अफ्रीकाका गौरवस्वरूप अद्वितीय किलिमांजारो दिखाई दिया। कोरी आंखोंसे जी भरकर देखनेके बाद मैंने उसे दूरबीनके जोरसे अधिक पास खींच लिया। किलिमांजारोकी बगलमें ही उसका एक पड़ोसी है—मानो सेवा करनेके लिए तत्पर खड़ा हुआ कोई किंकर हो। किलिमांजारोके सिर पर श्वेत मुकुट होनेके कारण ऐसा सहज ही लग सकता है कि सारे अफ्रीकी महाद्वीपका राज्यपद उसीका है। दूसरे उसका शिखर सफेद गुम्बजकी तरह अंडाकार दिखाई देता है। परन्तु असलमें उसके सिर पर ज्वालामुखीका द्रोण (क्रेटर) है। किसी तरफसे जब विपरीत दिशाके किनारे का सिरा दिखाई देता है, तो विश्वास होता है कि ऊपर द्रोण जरूर होगा। डॉ० लेकीने हमसे कहा था किलिमांजारोके ज्वालामुखीके अन्दरकी गर्मी धीरे-धीरे बढ़ती जा रही है और इसलिए अन्दरकी तरफका बर्फ धीरे-धीरे कम होता जा रहा रहा है। अगर यही हाल रहा तो किसी समय यह ज्वालामुखी फिरसे सजीव हो सकता है।

,यह कब होगा ?'

'यह नही कहा जा सकता। वह २०-२५ वर्षके भीतर भी फट सकता है, या दो सौ, चार सौ वर्षके बाद भी फट सकता है।' भूगर्भ-शास्त्रियोंके पास संख्याकी कंजूसी नही होती। जैन पुराणोंकी तरह हजारोंकी संख्याकी इनके यहां गिनती ही नही होती।

हमारा विमान आगे चला और देखते-देखते बाई तरफ बादलोंके टोले उमड़ आये। सूर्यकी किरणोंके कारण दाई तरफ कोहरेमें इन्द्रधनुषका एक पूरा गोलाकार बन गया। और उसके केन्द्रमे हमारे हवाई जहाजकी छाया! मानो कोई देवदूत आकाशमार्गमे हम जैसे मनुष्योंको इन्द्रलोकमे पहुचानेके लिए तैयार हुआ है।

थोड़ी ही देरमें दूर सामनेकी तरफ हिन्द महासागर दिखाई देने लगा। दर्शन होते ही उस महापुरुषको मैंने प्रणाम किया, क्योंकि उसकी लहरें मेरी जन्मभूमिको स्पर्श करती हैं। हवामें हम जरा नीचे उतरे और मोम्बासाका टापू स्पष्ट दिखाई देने लगा। हवाईजहाजोंका यह नियम होता है कि एक बड़ी प्रदक्षिणा किये बगैर जमीनको स्पर्श नही किया जा सकता, इसलिए नीचे उतरते-उतरते आसपासकी सारी शोभा सब तरफसे देखनेको मिल जाती है। वहां थोड़ासा आराम करके हमने छोटा-सा नया विमान लिया। उसमें दस आदमी ही बैठ सकते थे। उनमेसे पांच तो हम ही थे। नैरोबीसे मोम्बासाका रास्ता पश्चिमसे पूर्वको था। मोम्बासासे

टांगाका रास्ता उससे समकोण बनाकर उत्तरसे दक्षिणको जाता था। अब एक नया ही दृश्यकाव्य नजरके सामने उपस्थित हुआ। बाईं तरफ समुद्रके अद्भुत रंग—घड़ी भरमें गहरा नीला रंग तो घड़ी भरमें हरा! दूर पेम्बाका टापू दिखाई दिया। उसमें आसपासके समुद्रका हराथोथा जैसा हरा रंग, उसके बाद नारियलके सिरके जैसा काला हरा रंग और कोई ऊंची पहाड़ी आ जाती थी तब उसका सिंदूरी रंग—इन सबकी शोभा आकर्षित करती थी। दाईं तरफ किनारेके फेनकी सफेद चंचल रेखा नाच रही थी। टांगाके आसपास जमीनमें घुसे हुए समुद्रके हाथकी तरह 'बैकवाटर्स' चमकते हैं।

देखते देखते जर्मन निर्मित चौकोर शहर टांगा दिखाई दिया और हमने दुबारा चक्कर काटकर उसकी सख्त जमीन पर पैर रखा।

९. टांगा

हवाई जहाजके बन्दरगाह यानी विमानके अड्डे पर श्री आदमभाई करीमजी अपने बालक लतीफके साथ आये थे। टांगासे थोड़ी दूर लिमोटो नामक एक ठंडा शहर है। वहां मेरे एक स्नेहीके सम्बन्धी डॉ० दिव्यकृष्ण रहते हैं। वे खुद टांगा नहीं आ सकते थे, इसलिए उन्होंने अपनी पत्नी और लड़केको भेजा था। ये लोग भी हवाई अड्डे पर आकर मिले।

यहां भी हमारी मंडली दो-तीन घरोंमें बंट गई। श्री अप्पासाहब और कमल-नयन आदमजीके यहां ठहरे। हमारा डेरा टांगाके प्रसिद्ध वकील मनुभाई देसाईके यहां था। जाते ही कई मिलनेवाले आ गये। उनमें बढ़िया अंग्रेजी बोलनेवाले और उस इलाकेकी हालतको अच्छी तरह जाननेवाले दो अफ्रीकी भाई भी थे। उनके साथ बहुत बातें हुईं। हिन्दुस्तानकी महानुभूतिके कारण अफ्रीकी लोगोंमें बहुतसी आशाएं पैदा हो गई हैं। 'अब हम बिलकुल अनाथ नहीं हैं। एक समर्थ पड़ोसी हमारे जीवनमें दिलचस्पी ले रहा है।' ऐसा इन जातियोंको अनुभव होने लगा है और इसीलिए आयंदा इन लोगोंके प्रति हमारा रवैया बदलना चाहिये। जबसे इन लोगोंने यह बात सुनी है कि गांधी स्मारक कॉलेज खुलेगा, तबसे वे उसकी स्थापना की राह देख रहे हैं।

पहले-पहल रीगल सिनेमामें एक सार्वजनिक सभा हुई। इस सभाके बिखरते ही तुरन्त बहनोंने उस स्थान पर कब्जा कर लिया। उनके सामने भी हमारा व्याख्यान हुआ। इसके साथ ही आर्यकन्या मंडलकी तरफसे लड़कियोंके नृत्य-संगीत वगैरा रखे गये थे। यहां महाराष्ट्रीय और गुजराती बहनोंने मिलकर संगीत कलाका अच्छा वायुमंडल जमा लिया है।।

रातको इंडियन एसोसियेशनकी तरफसे जो भोज रखा गया था उसमें गोरे भी आये थे।

दूसरे दिन आदमभाई करीमजी और उनकी पत्नी जेबुन्निसाबहनके साथ हम उनका चायका बगीचा देखने गये। यह बगीचा टांगासे ६०-७० मील दूर स्थित उसुम्बरा पहाड़की चोटी पर है। पहाड़की वन्य शोभा देखते-देखते हम पुरानी सरकार द्वारा विकसित परन्तु अब कुछ बिगड़ते हुए वानस्पत्यम् (बोटेनिकल गार्डन) तक पहुंचे। वहां हमें मैंगोस्टीनका एक फल मिला। हममेंसे कुछ लोगोंने उसे देखा या चखा नहीं था। कलकत्तेमें यह फल खूब मिलता है। पूर्व एशियाकी तरफका यह स्वादिष्ट मेवा है।

हर जगह नई-पुरानी संस्थाओंके कारण हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न पैदा होता ही है। व्यक्तिगत रूपमें हिन्दू-मुसलमान खूब प्रेमसे मिल-जुलकर रहते हैं। पर संस्था-का नाम आया कि तुरन्त कई सवाल खड़े हो जाते हैं। यहां मेरे हाथों एक 'इंडियन कल्चरल सोसायटी' (हिन्दुस्तानी संस्कृति मंडल) का उद्घाटन हुआ। उसका विधान तैयार करनेमें भी मुझे दिलचस्पी लेनी पड़ी।

तीसरे दिन सवेरे मैं आग्रहपूर्वक 'वॉर सिमेटरी'—जंगी श्मशानभूमि देखने गया, क्योंकि मैं जानता था कि पिछले महायुद्धके समय हिन्दुस्तानके अनेक सिपा-हियोंने यहां अपने प्राण अर्पण किये थे। १९१५ में मारे गये इन चार पांच सौ लोगोंमें ग्वालियरकी तरफके महाराष्ट्री, राजस्थानके राजपूत, काश्मीर-जम्मूकी तरफके हिन्दू, मुसलमान, डोगरे और कुछ मद्रासी थे। अफ्रीकाकी भूमि पर जिस जगह मेरे देशभाइयोंने अपना खून बहाया, उस स्थानके बारेमें मेरे मनमें आदरकी भावना जाग्रत हुई। इसीलिए इन वीरोंकी श्मशानभूमि देखनेका मेरा आग्रह था। दारेस्सलाममें भी भारतीय वीरोंकी ऐसी ही एक श्मशानभूमि है।

टांगा छोड़नेसे पहले हम वहांका करीमजी स्कूल देखने गये। वहांके प्रिंसिपल मि० पैरी मुझे उत्तम शिक्षाशास्त्री मालूम हुए।

हवाई जहाजने जब फिरसे हमें लाद कर उठाया, तब एक ओर समुद्र तथा दूसरी ओर कलके देखे हुए उसुंबरा पहाड़को देखते समय परिचयका आनन्द होता था।

१०. शान्तिधाम दारेस्सलाम

अब हम झांझीबार होकर दारेस्सलाम जानेको निकले। रास्तेमें फिर वही हराभरा दृश्य। आज भी समुद्रमें छोटे बड़े टापू दिखाई देते थे। उनमेंसे कुछ पानी के बाहर सिर ऊंचा कर सके थे और नारियल आदि वनस्पति सृष्टिका भार वहन

करते थे; जब कि कुछ द्वीप अभी तक पानीके बाहर सिर नहीं निकाल सके थे। इन सबको मैंने पन्नालाल नाम दिया है। मेरा विश्वास है कि देवताओंमें रसिकता हो, तो वे इनमेंसे एक द्वीपको उठाकर अपनी-अपनी अंगुलीके लिए उसकी अंगूठी बना लेंगे। द्वीप जरा बड़ा हो तो उसके बीचमें चमकता हुआ भाग होगा ही, जिसका रंग गेरुए और सिंदूरके बीचका ही माना जायगा। उड़ते-उड़ते हम ऐसी जगह आये, जहां नीचे समुद्र और दोनों तरफ जमीनके किनारे दिखाई देते थे। बाईं ओर झांझीबारका टापू और दाईं तरफ अफ्रीकाका महाद्वीप। जंगबार (झांझीबार) के ऊपर पहुंचे तो नीचेसे विद्युत-संकेत मिला कि नीचे कोई मुसाफिर नहीं, जो हमारे विमानमें सवार होना चाहता हो। हमारे विमानमें भी जंगबारमें उतरनेवाला कोई था नहीं, इसलिए हमारे विमानीने कहा, "हम यहां नही उतरेंगे। जंगबार देखना हो तो ऊपरसे देख लीजिये।" उसने विमानका बायां पंख ठीक नीचे झुकाया कि तुरंत हम घनी आबादी वाले जंगबार शहरका पूरा दर्शन कर सके। हमें संतुष्ट देखकर विमानीने अपना विमान फौरन सीधा कर लिया और हम दारेस्सलामकी तरफ वायुवेगसे उड़े। देखते-देखते दारेस्सलामका अविस्मरणीय समुद्र-तट आंखके सामने विशाल होने लगा। हम सारा शहर पार करके दूसरे किनारे पर उतरे और दारेस्सलामके अपने अनेक मेजबानोंके अधीन हुए।

दारेस्सलाम टांगानिका प्रदेशकी राजधानी है। जर्मन लोगोंने टांगाकी तरह यहां भी अपनी नगर-रचना-कला खूब आजमाई है। उसके बाद भी समुद्रके किनारे का यह शहर देखते-देखते बढ़ता रहा। यहांके एक गोरे नगरसेठने बातों ही बातों में कहा: "रिक्शा चलने लायक जो रास्ते शुरूमें तैयार किये गये थे, वे अब असुविधाजनक हो रहे हैं। उस समय किसने कल्पना की थी कि दारेस्सलामके रास्तों पर दिन-रात बड़ी-बड़ी मोटरें दौड़ने लगेंगी ?" मैंने हंसते हुए उनसे कहा: "हमारे यहां बच्चोंके लिए कपड़े बनाये जाते हैं, तब जल्दी-जल्दी बढ़नेवाले शरीरों-का हिसाब रखकर ही कपड़े ब्योंते जाते है।" सफरमें जैसे नैरोबी हमें अपना घर जैसा लगा, उसी तरह दारेस्सलाम भी हमारा घर बन गया। क्योंकि दारेस्सलाम-को मुख्य केन्द्र बनाकर हम एक बार ठेठ दक्षिणमें लिण्डी तक हो आये। फिर यहां-से निकल कर जंगबार हो आये और बादमें थोड़ासा आराम करके हमने टांगानिका इलाकेमें प्रवेश करनेके लिए मोरोगोरो और डोडोमाकी रेलवे यात्रा की। इस प्रकार तीन बार दारेस्सलाम जानेका हुआ। अतः वह घर जैसा बन गया। परन्तु इससे भी अधिक हमारा डेरा एक अत्यन्त सात्त्विक, धर्मपरायण और प्रेमी कुटुम्ब-में रखा जानेके कारण हमारे लिए दारेस्सलाम सब तरहसे घर जैसा बन गया। श्री जयन्तीलाल शाह और उनकी पत्नी मुक्ताबहन दोनोंने हमें घरका बुजुर्ग बना दिया। उनके घरका रहन-सहन हमें सब तरह अनुकूल रहा। घरके छोटे बच्चोंने भी हमें पूरी तरह अपना लिया। श्री जयन्तीभाई थियोसोफिस्ट हैं, इसलिए हमारी

सुबह-शामकी प्रार्थनामें सारे कुटुम्बी आत्मीय भावसे शरीक हो जाते। पहले दिन उनके मकानकी छत पर ही प्रार्थना की। प्रार्थनाके समय ही पूर्वी समुद्रमेंसे नहा-धोकर ऊपर निकले हुए सूर्यनारायणके पावन दर्शन हम कर सके, इसलिए उस स्थानके प्रति भक्तिभाव जाग्रत हुआ। दूसरे दिन प्रार्थनाकी जगह वहांसे हटाकर नीचेके दीवानखानेमें रखी गई, क्योंकि बाहरके कई लोग उसमें शरीक होनेके लिए आने लगे। आखिरी दिनोंमें शहरके हिन्दू मंदिरोंके व्यवस्थापकोंने मांग की कि आप अपनी प्रार्थना हमारे यहां क्यों न करें। बहुतसे नगर-निवासी उसका लाभ उठा सकेंगे। हमने उनसे कहलाया : "चूंकि हम सर्व-धर्म-समानताको मानते हैं, इसलिए हमारी प्रार्थनामें कुरानशरीफकी आयतें भी होती हैं और ईसाई आदि दूसरे धर्मोंके स्तोत्र भी होते हैं। हिन्दू धर्ममें भाषाभेद और धर्मभेदकी आपत्ति नहीं होती, परन्तु आपमेंसे किसीके मनमें आजकलके वातावरणके कारण आपत्ति हो तो नाहक दिल खट्टे हो जायेंगे। इसलिए हमारी सर्वधर्मी प्रार्थनाकी आपके यहां गुंजाइश हो तो ही हम आपके मंदिरमें आ सकेंगे।" उन लोगोंने तुरन्त बिना किसी संकोचके विश्वास दिलाया, "हमें जरा भी एतराज नहीं। सब लोग आपकी सर्व-धर्मी प्रार्थनाका स्वागत करेंगे।" हिन्दू समाजकी इस उदारतासे मुझे कुछ आश्चर्य नहीं हुआ, मगर आनन्द जरूर हुआ। हिन्दुस्तानमें नोआखलीमें गांधीजीकी प्रार्थनामें मुसलमानोंने रामधुन पर एतराज किया था और दिल्लीमें हिन्दुओंने 'अल्फातिहा' पर आपत्ति की थी। ये दोनों प्रसंग मुझे याद आये। गांधीजीकी सर्व-धर्म-समानता-के कारण दोनों जगहके एतराज मिट गये थे, यह बात भी मुझे याद आयी। पर-धर्मके बारेमें हिन्दू धर्ममें कभी असहिष्णुता थी ही नहीं। मैं जानता हूं कि आयंदा भी वह जड़ नहीं पकड़ेगी। इसलिए मुझे दारेस्सलामका सुंदर वातावरण देखकर आनन्द होने पर भी आश्चर्य नहीं हुआ।

पूर्व अफ्रीकामें जो हिन्दुस्तानी मुसलमान हैं; उनमेंसे ज्यादातर नामदार आगाखानके अनुयायी हैं। वे अपनेको इस्माइली कहते हैं। जो आगाखानी नहीं है, उन्हें यहां इश्नाशरी कहते हैं। यहां जो पंजाबसे आकर बसे हुए मुसलमान हैं, वे अलग हैं। जिनका वतन पाकिस्तान है, ऐसे मुसलमान यहां नहींके बराबर हैं। अधिकांश कच्छ-सौराष्ट्रके ही हैं। वे घरोंमें गुजराती बोलते हैं, पाठशालाओंमें गुजरातीकी मार्फत ही पढ़ते हैं। आगाखानी मुसलमानोंके रीति-रिवाज दूसरे मुसलमानोंसे कुछ अलग होते हैं। वे हजरत अलीको मानते हैं। मक्काकी यात्राके बारेमें उन्हें आग्रह नहीं है। माननीय आगाखान असलमें ईरानकी तरफके हैं। आजकल ज्यादातर विलायतमें रहते हैं। उनका घोड़ोंका शौक सारी दुनिया जानती है। घुड़दौड़में आगाखानके घोड़े सबसे अच्छे माने जाते हैं। माननीय आगाखान जैसे इस्माइली लोगोंके धर्मगुरु हैं, वैसे ही ब्रिटिश साम्राज्यमें वे एक अच्छे खासे राजनीतिक पुरुष माने जाते हैं। उनका असर बहुत है और उसे इस्तेमाल करके वे

अपने अनुयायियोंकी बढ़तीके लिए सदा तत्पर रहते हैं। पूर्व अफ्रीकामें इस्माइली जमात सबसे अधिक संगठित है और हमेशा माननीय आगाखानकी सलाहके अनुसार ही चलती है।

कुछ वर्ष पहले यहांके इस्माइली लोगोंने माननीय आगखानकी ६० वर्षकी हीरक जयन्ती मनाई। इसके लिए उन्होंने दुनिया भरसे हीरे इकट्ठे करके माननीय महोदयकी हीरक-तुला की। और उन हीरोंकी जितनी कीमत हुई, वह उन्हें भेंट कर दी गई। अलबत्ता, हीरे अपनी-अपनी जगह वापस चले गये।

गुरुभक्तिका यह ढंग लोक-विलक्षण कहा जायगा। माननीय आगाखानने इस रकमके बड़े भागका ट्रस्ट बनाकर यहांकी अपनी कौमको ही सौंप दिया और उन रुपयोंसे अब इस कौमके उत्कर्षके लिए अनेक योजनाएं अमलमें लाई जा रही हैं। किसी गरीब किन्तु होशियार खोजाको पूंजी चाहिये, तो वह भी इसमेंसे बिना ब्याज मिल सकती है। इतनी बड़ी रकमका संचालन ट्रस्टके द्वारा होता हो, तो कुछ लोग उसकी नीतिके बारेमें आलोचना करेंगे ही। परन्तु सब बातोंको देखते हुए इस कोषसे यहांकी खोजा कौम एकदम आगे बढ़ गई है।

ना० आगाखान एकाग्र निष्ठासे अपनी कौमके दुन्यवी हानि-लाभका विचार करके उसे दूरंदेशी भरी सलाह देते हैं। उदाहरणके लिए, यहांके अपने लोगोंसे उन्होंने कहा कि, "झांझीबारमें अब ज्यादा भीड़ करके नही रहना चाहिये। वहांके वैभवकी अब मर्यादा आ पहुंची है। अब अधिक लोगोंके वहां रहनेमें सार नहीं है। अब आपको अधिकसे अधिक संख्यामें टांगानिका जाना चाहिये। वह प्रदेश बहुत विशाल है और उसमें भावी उत्कर्षके बढ़िया साधन हैं।"

उन्होंने अपने लोगोंको यह भी सलाह दी कि, "लड़के-लड़कियोंकी शिक्षाकी तरफ ज्यादा ध्यान दीजिये। इन सबको अंग्रेजी पढ़ाइये। मानो अंग्रेजी मातृभाषा ही हो, इतने उत्साहसे यह भाषा सीख लीजिये। यह वांछनीय है कि लड़कियां पुराने ढंगकी पोशाक छोड़कर फ्रॉक पहनें। जितने अधिक लोग विलायत जाकर पढ़ आयें उतना अच्छा।"

इसमें आश्चर्य नही कि मुसलमान होनेके ही कारण यहांके मुसलमानोंकी भावना और निष्ठा पाकिस्तानकी ओर है। अब तक हिन्दुस्तानकी हैसियतसे वे यहांके इंडियन एसोसियेशनोंमें खुलकर शरीक होते थे और उनमें प्रमुख भाग लेते थे। अब वे अपनेको अलग मानते है। सुना है ना० आगाखानने उन्हें सलाह दी है कि अब वे हिन्दुस्तान-पाकिस्तानके झगड़ेमे न पड़ें, हिन्दुस्तानके लोगोंका विरोध न करें, मगर अपनी निजी उन्नति पर सारा ध्यान दें।

ना० आगाखानका प्रयत्न अफ्रीकामें बसनेवाले दूसरे मुसलमानोंको भी अपनानेका है। इस देशके मूल निवासी अफ्रीकी लोग अरबोंके असरके कारण खासी संख्यामें मुसलमान बन गये हैं। कहा जाता है कि इन लोगोंको भी संगठित करनेकी

ना० आगाखानकी मुराद है।

ना० आगाखानके अनुयायी इस्माइली लोगोंके रीति-रिवाजोंमें कुछ रिवाज हिन्दुओंके जैसे हैं। वे घरोंमें गुजराती बोलते हैं और रोजमर्राके व्यवहारमें कट्टर नहीं हैं। इसलिए उनके साथ मिठासके साथ रहनेमें हिन्दू लोगोंको कोई कठिनाई नहीं होती। कच्छ-सौराष्ट्रकी तरफके होनेके कारण उनका और गुजराती हिन्दुओंका संबंध ज्यादातर अत्यंत मीठा होता है। यह एकता दोनोंके लिए लाभदायक है। इसलिए मैंने यहांके तमाम लोगोंको सलाह दी कि "हिन्दुस्तानकी राष्ट्रभाषा हिन्दी है; पाकिस्तानकी उर्दू है; और महात्माजी दोनोंकी मिली-जुली हिन्दुस्तानी चलाना चाहते हैं'—इस विवाद या झगड़ेमें न पड़कर गुजराती द्वारा जो एकता सिद्ध हुई है और मीठा संबंध बना है उसीको अधिक मजबूत कीजिये और शक्तिके अनुसार हिन्दी और उर्दू दोनोंका अध्ययन कीजिये। और मुख्य बात यह है कि भाषाके झगड़ेमें पड़ना ही नहीं चाहिये। अंग्रेजी सीखे बगैर यहां काम नहीं चल सकता। शिक्षामें जैसे आगे बढ़ा जा सके वैसे बढ़िये और यहांकी जो अफ्रीकी जनता है उसे हर तरह अपनाना अपना फर्ज समझिये।

"गांधीजीकी शिक्षा है कि सब धर्म सच्चे हैं। सारे मजहब अच्छे हैं। इसलिए हमें इस्लाम और ईसाई धर्म दोनोंके प्रति सद्भाव बढ़ाना चाहिये। इन दोनोंकी असली तालीम हमारे धर्मकी शिक्षासे अलग नहीं है। सभी ईश्वरभक्ति और सदाचारमें विश्वास रखते हैं। सभी विषयवासना पर विजय प्राप्त करनेके हामी हैं। और भगवान सभीका होनेके कारण सभी मनुष्यता बढ़ानेके लिए बने हुए हैं। इसलिए हमें धर्मभेदकी तरफ बिलकुल ध्यान न देकर सबके साथ भाईचारा बढ़ाना चाहिये। किसी भी तरहका पक्षपात मनमें न लाया जाय। दूसरे लोग संकुचित संगठन करें, तो उनसे द्वेष न किया जाय। परन्तु अपनी उदारताका असर उनपर डालते रहें।"

पूर्व अफ्रीकाके कुछ ईसाई मिशनरियोंने अफ्रीकी लोगोंकी बहुत गहरी सेवा की है। यहां तक कि ऐसे मिशनरियोंकी सेवाके प्रतापसे अफ्रीकी लोगोंमें बहुत जागृति हुई है और इसलिए यहांके अंग्रेज शासक इस प्रकारके मिशनरियोंके कामके बारेमें किसी अंशमें सशंक और नाराज रहते हैं। कुछ लोग कहते हैं कि, "इन मिशनरियोंकी सेवाकी बदौलत ही अफ्रीकी ईसाई गोरोंसे समानताकी बातें करते हैं। इससे इस्लाम अच्छा, शासनके विरुद्ध झगड़ा तो नहीं करता।" इस्लामके बारेमें यह कैसी राय!

ना० आगाखानकी जो हीरक-तुला हुई, वह इसी दारेस्सलाममें हुई थी। यहां इस्लामी लोगोंकी संख्या अच्छी है। वे संगठित हैं। लड़के-लड़कियोंकी शिक्षा पर वे विपुल धन खर्च करते हैं। पाठशालाओंमें अनुशासन अच्छा रहे, इसलिए अंग्रेज शिक्षक-शिक्षिकाएं रखनेका भी उनका आग्रह रहता है। कई छोटी-छोटी

उम्रकी खोज। लड़कियोंको अध्यापिकाएं बनकर कक्षाओंको पढ़ाते मैंने देखा। यहां एक बात दर्ज करनी ही चाहिये कि यह शिकायत आगाखानी स्कूलोंके बारेमें भी सुनी जाती है कि 'अच्छे शिक्षक मिलते नहीं; जो मिलते हैं वे टिकते नहीं। नतीजा यह होता है कि पैसा खर्च करने पर भी शिक्षा खराब होती है।' मां-बाप जानते नहीं कि खुद रुपयेके पीछे लगे होनेके कारण वे ही सर्वत्र पैसेका वातावरण फैलाते है। जैसे दुनियाभरके मां-बापकी यह इच्छा पूरी नहीं होती कि हम भले ही कैसे भी हों तो भी हमारे बच्चे धर्मनिष्ठ और चरित्रवान होने चाहिये, उसी तरह शिक्षकोंके बारेमें बिलकुल उदासीन मां-बापके हाथोंमें जिन संस्थाओंका अधिकार है उन संस्थाओंमें अच्छे शिक्षक टिकेंगे नहीं, और शिक्षाका वातावरण बनेगा नहीं। पाठशालाओंकी शिक्षाका वायुमंडल मां-बाप किस तरह बिगाड़ते हैं और उसे कैसे चुपचाप सहन करना पड़ता है, इसकी शिकायत यहांके केवल देशी शिक्षक ही नहीं करते, अंग्रेज भी करते हैं।

मोम्बासामें मुसलमानोंके लिए एक बड़ी संस्था काम कर रही है—'मोम्बासा इंस्टिट्यूट ऑफ मुस्लिम एज्युकेशन।' वहांके एक गोरे अध्यापकसे मैंने यों ही कहा कि, "पूर्व अफ्रीकाके लिए मुस्लिम युनिवर्सिटी बनानेका इरादा सुना जाता है।" उसने हंस कर कहा कि, "इसमें शक नहीं कि शिक्षाका यह एक बड़ा केन्द्र होगा, परन्तु एक ही जातिकी शिक्षाके लिए बंधी हुई संस्थाको युनिवर्सिटी शब्द कैसे लागू किया जा सकता है? युनिवर्सिटी तो युनिवर्सल ही होनी चाहिये न?"

समय और उत्साहके अभावमें मैंने उनसे यह कहनेका विचार छोड़ दिया कि हिन्दुस्तानमें बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी है, अलीगढ़ मुस्लिम युनिवर्सिटी है और जामिया मिलिया इस्लामिया भी है। इन युनिवर्सिटियोंमें दूसरी जातियोंके विद्यार्थी लिये जाते हैं, परन्तु इन संस्थाओंका संगठन जातीय ढंग पर ही किया गया है।

मोम्बासाकी 'इंस्टिट्यूट ऑफ मुस्लिम एज्युकेशन' में औद्योगिक शिक्षाको प्रमुख स्थान दिया गया है। थोड़े ही दिनोंमें वहां जहाजरानीका कॉलेज खुलनेवाला है, समुद्रका किनारा, अच्छे-अच्छे मकान, होशियार अध्यापक, विशाल भूमि और विपुल धन—जब इतनी सुविधाएं मिली हुई है, तो फिर संस्थाका विकास होना ही चाहिये।

इस संस्थाके लिए ना० आगाखानने बहुत बड़ा दान दिया है और पूर्व अफ्रीका की सरकारने वचन दिया है कि इस प्रकार जितनी रकम आपकी तरफसे इकट्ठी होगी उतनी ही सरकारकी ओरसे, कॉलोनियल डेवलपमेण्ट फंडकी तरफसे दी जायगी।

इसमें शक नहीं कि यह इंस्टिट्यूट जब धुआंधार काम करेगी और पूर्व अफ्रीकाकी मुस्लिम संस्थाएं उसके साथ शरीक होंगी, तब यह शिक्षाका एक जबरदस्त केन्द्र बन जायगी।

दारेस्सलाममें भी मैंने अनेक शिक्षासंस्थाओंसे और भारतवासियोंके नेताओंसे जोर देकर कहा कि हमारी प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा अच्छी बुनियाद पर नहीं है, यह मैं अच्छी तरह जानता हूं। शिक्षाको जीवनकार्य बनाये हुए शिक्षक भी आज हमारे पास नहीं, यह भी मैं जानता हूं। परन्तु हमारी मुख्य कठिनाई यह है कि यहां उच्च शिक्षाका कोई साधन नही है। उच्च शिक्षाके अभावमें हमारी सारी जाति, शिक्षाकी दृष्टिसे, वामन अवतारकी तरह बौनी हो गई है। हिन्दुस्तानसे भी अच्छे शिक्षक कितने लायेंगे? वहांसे बहुत लोग नही आयेंगे। यहाके इस सहारामें बाहरसे नदी बहानेसे यहां कुछ नहीं उगनेवाला है। यहीं पर उच्च शिक्षाकी सुविधा करेंगे, तभी अन्तमें हम यहां अपने बीचसे अच्छे शिक्षक पैदा कर सकेंगे। हमें दीर्घदृष्टिवाले मंजे हुए नेता भी इसी शिक्षासे मिलेंगे। हम अपनी संस्थाएं जातीय आधार पर खड़ी न करें। अच्छेसे अच्छे अध्यापक जहांसे मिलें वहींसे हम एकत्र करेंगे। अच्छे अंग्रेज मिलेंगे तो उन्हें भी ले लेंगे। भारत सरकारसे अच्छे विद्वानोंको उधार लेंगे और उच्च शिक्षाकी एक संस्था खोलेंगे। शुरू-शुरूमें उसमें विद्यार्थी थोड़े होंगे, परन्तु देखते-देखते यह संस्था बढ़ेगी। अफ्रीकी लोगोंके लिए इस संस्थामें खास सहूलियत रखेंगे। हमारे बच्चे तो होंगे ही। और मेरा विश्वास है कि भले ही बहुत ही थोड़ी संख्यामें सही, कुछ अंग्रेज युवक भी हमारी संस्थामें अवश्य भरती होंगे। इस खयालसे नही कि और कही अच्छी सुविधा नही है, बल्कि इस नैतिक कारणसे कि यहां तीनों जातियोंके—काले, गोरे और गेहुए विद्यार्थियों-को समानभावसे उच्च शिक्षा दी जाती है, कुछ गोरे मां-बाप ही अपने बच्चोंको यहा भेजेंगे और कुछ नवयुवक मा-बापके विरोधके बावजूद भी आयेंगे। गोरे विद्यार्थियोंकी तादाद नहीके बराबर होगी। मगर जो आयेंगे उनका उद्धार होगा। और कोई नही आयेगा तो भी हमारा कुछ बिगड़ेगा नहीं। हम एक अच्छीसे अच्छी संस्था चलाकर दिखायेंगे। इस संस्थाके साथ गांधीजीका नाम जोड़नेमें कोई आपत्ति होनेका कारण नही। यह सही है कि उसमें गांधीजीकी शिक्षा-पद्धति तुरंत जारी नही होगी। गाधीजीकी पद्धति यूरोप-अमरीकाके कुछ समर्थ शिक्षाशास्त्रियोंके गले उतर गई है। इसका असर हिन्दुस्तानसे नही, परन्तु यूरोप-अमरीकासे यहां आयेगा। गांधीजीका नाम होगा तो कुछ नैतिक ऊंचाई और गरीब दलित जनता-के उद्धारका आदर्श उसमें रहेगा। हम जितना रुपया जमा करेंगे, उतनी मदद सरकार भी हमें दिलायेगी।

हमारे बच्चोको हिन्दुस्तान या विलायत भेजनेसे यहांके प्रश्न हल नही होंगे। नई और उच्च शिक्षा द्वारा हम यहां नई संस्कृति स्थापित करेंगे। एक कॉलेज कायम हो जायगा, तो उसके आसपास अनेक प्रवृतियां गुंथ जायेंगी। गांधी-टैगोर व्याख्यानमाला जारी करेंगे। यहांकी जातियोंकी भाषाओंमें अच्छा साहित्य तैयार कराकर उन भाषाओंकी संस्कारशक्ति बढ़ायेंगे। जिस जातिकी भाषा समर्थ हुई,

वह जाति भी समर्थ होगी ही। क्योंकि भाषा और साहित्य जातिका आध्यात्मिक दूध है। यहांकी ब्रिटिश नीतिकी संकीर्णता मुझे मालूम है। वह हमें अन्त तक नहीं सता सकेगी। आजकलकी दुनियाकी हालत ही ऐसी है कि संकुचित नीति भविष्यमें उन्हें नही पुसायेगी। अगर हम अफ्रीकी जनताकी सच्ची सेवा करेंगे, तो हमारी जड़ें यहां अवश्य मजबूत होंगी। शर्त यह है कि हमें नग्न स्वार्थ छोड़ देना चाहिये और यहांकी जनताके हितोंको प्रधानता देनी चाहिये।

गांधी स्मारक कॉलिजकी कल्पनाके प्रति लोग धीरे-धीरे अनुकूल होत जा रहे हैं। मुझे विश्वास है कि यह काम अवश्य शुरू होगा और उसके द्वारा बहुत अच्छे परिणाम निकलेंगे। परन्तु अच्छे कामोंमें विघ्न भी अधिक होते हैं।

दारेस्सलाम हिन्द महासागरके पश्चिमी किनारेका आभूषण है। जैसे बम्बईमें चौपाटीका गोल समुद्र कोलाबाके प्रकाश-स्तंभसे लगाकर मलाबार हिल तक फैला हुआ है, वही बात दारेस्सलामकी भी है। समुद्र-स्नानके लिए यहां इतनी अच्छी जगहें हैं और वहांके समुद्रके रंग इतने सौम्य, सुन्दर और विविध दिखाई पड़ते हैं कि उन स्थानोको छोड़नेका जी ही नही करता। हिन्दुस्तानमें कारवारका बन्दरगाह भी ऐसा ही सुन्दर है, यद्यपि वहांका दीपस्तंभ यहांकी अपेक्षा अधिक शोभा देता है। उत्तर पूर्वके समुद्र तट पर ओशियन रोड है। यह रास्ता जहां समुद्रकी तरफ आगे जाता है, वहां हमारे यहांके लोगोने एक सुन्दर बंगला बना कर इस स्थानकी कद्र की है। इस समय वहां ओशन ब्रिजके नामसे एक यूरोपियन होटल चलता है। आरामके लिए यहांके किनारेकी अपेक्षा अधिक अच्छी जगह शायद ही कही मिल सके। दारेस्सलाममें जहां तहां नारियलके पेड़ नीचेके मनुष्योंको आशीर्वाद देते हुए खड़े दिखाई पड़ते है। जहां-तहां अच्छे नये मकान बन रहे हैं और इस प्रकार शहरकी शोभा और सुविधाएं बढ़ती जा रहा हैं। कांगोके बेल्जियन लोगोंने यही बंदरगाह अपने लिए पसंद किया है। उनका इलाका मध्य अफ्रीकाके पश्चिमकी तरफ है। परन्तु पश्चिमकी तरफ उन्हें समुद्र तट नहीके बरावर ही मिला है। बेल्जियन कांगोके पूर्वकी ओर टांगानिकाका लंबा सरोवर है। उसका आकार लाल मिर्चके जैसा लंबा पतला है। इस सरोवरके पूर्वी किनारे पर जो किगोमा बंदरगाह है, उसके और दारेस्सलामके बीच सात सौ मीलकी एक सीधी रेलवे जाती है, यह रेलवे सारे टांगानिका प्रदेशको उत्तर और दक्षिणमें विभाजित करती है। युद्धके समय रक्षाकी दृष्टिसे यह रेलवे बड़े ही महत्त्वकी है। रुआंडा-उरुंडी इलाकेकी तरफ या उसुम्बरा शहरकी तरफ जानेके लिए यही रास्ता सुभीतेका है।

दारेस्सलाममे अफ्रीकी बालकोंकी शिक्षाकी दो सरकारी संस्थाएं हमने देखीं। लड़कोंकी संस्थामें पढ़ाईका काम उनसे सख्तीके साथ कराया जाता है। वहांके मुख्य अध्यापकने बातों ही बातोंमें कहा, "जो लड़के चौदहवें वर्षमें शादी करते हैं,

उन लड़कोंको इसी उम्रमें अपने भविष्यका खयाल करके लगनके साथ पढ़ना ही चाहिये। क्या आपको ऐसा नहीं लगता? बच्चे हैं कहकर दरगुजर किया जाय, तो वे कभी ऊंचे नहीं उठेंगे और अपनी सारी शक्ति प्रकट नहीं कर सकेंगे। पढ़ाया जाय प्रेमपूर्वक, परन्तु लड़के पढ़ाईमें ढिलाई करें तो सहन नहीं करना चाहिये।" उस गोरे शिक्षककी बात सच थी। उसके विद्यार्थी लगनसे पढ़ भी रहे थे।

जब हम लड़कियोंकी पाठशाला देखने गये, तब वहां खेलनेकी छुट्टी थी। कुछ लड़कियां खाने बैठी थी, कुछ खेल रही थी। उनके घुंघराले बाल और उस्तरेसे निकाली हुई मांग खास तौर पर देखने लायक थी। दुनियाके दूसरे मनुष्योंसे अफ्रीकी लोगोंके बाल बिलकुल भिन्न होते है। उनमें भी सुन्दरता लानेका ये लोग बहुत प्रयत्न करते है। और उसमें सफलता मिलती ही न हो, सो बात नहीं। यहांके हरएक प्रदेशकी बाल संवारनेकी पद्धति अलग है। ये सब प्रकार फोटो-आल्बममें एकत्र किये जायं, तो अफ्रीकी रसिकताका एक सुन्दर संग्रह तैयार हो जाय। अफ्रीकी लोग दूसरी जातियोंके साथ विवाह करें, तो उनकी संतानकी चमड़ीका रंग बदल जाय। परन्तु कहा जाता है कि बालोंके मामलेमें अफ्रीकी असर स्थायी दिखाई देता है। ऐसी रायें कहां तक सच होती है, यह कोई नहीं देखता। कुछ सिद्धान्त इसीलिए बिना जांच किये स्वीकार कर लिये जाते है कि लोगोंको वे आकर्षक लगते है।

अफ्रीकी लोगोंके लिए सरकारकी तरफसे कई स्थानों पर वेलफेअर सेन्टर्स खुले हुए हैं, जहां ये लोग आजादीके साथ इकट्ठे होते हैं, खेल खेलते हैं, अखबार पढ़ते है, रात्रिवर्ग चलाते हैं और जीमें आये तो वहां शराबका सेवन भी कर सकते हैं।

सारे पूर्व अफ्रीकामें शराब खुले तौर पर इस्तेमाल की जाती है। हमारे यहांके लोगोंने भी इस रिवाजमें वहां बड़ी प्रगति की है! कुछ अच्छे और प्रतिष्ठित लोग जब सूर्यास्तके समय शराब पीते हैं और मस्त होकर बातें करते है तब हमें अजीब-सा लगता है। सभी कहते हैं कि कुछ लोग अपवादस्वरूप नहीं पीते। कौन अपवाद-स्वरूप हैं और कौन नियमके अधीन हैं, यह जांच करने या जान लेनेकी मैंने हिम्मत नहीं की। मैंने यही माननेमें सुविधा समझी कि जो हमारे सम्पर्कमें आते जाते है उनमेंसे अधिकांश नहीं पीते।

हमारे सम्मानमें जो भोज रखे जाते, उनमें यूरोपियन लोगोंको भी आमंत्रण होनेके कारण उनके लिए शराबकी सुविधा रखी जाती थी; और फिर हमारे यहां-के लोगोंमें भी जैसी जिसकी रुचि होती, वह उसी तरह करता था। यह यहांका सर्वमान्य रिवाज है। जब मेरे जैसा कोई आता है तब इन लोगोंको यह प्रश्न पूछने में मजा आता है कि "आप यह सब कैसे निभा लेते हैं?" मैं यह कहकर संतोष कर लेता कि "विदेशमें सारा समाज जिस रिवाजको मानता है, मैं उसका काजी बनने

नहीं आया हूं। मैं अपने सिद्धान्तका पालन करके संतोष रखता हूं। मद्यपान-निषेध-का मिशन लेकर आया होता, तो दूसरा ढंग अख्तियार करता।" दारेस्सलामको ध्यानमें रखकर यह सब नहीं लिखा है। युगांडामें यह सवाल खास तौर पर विशेष महत्त्वका बताया गया था।

अफ्रीकन वेलफेअर सेन्टरोंमें ग्रामोफोन चलता देखकर मैंने अफ्रीकी संगीतकी मांग की। अफ्रीकी भाषाओंमें लिखे गये गीत और यूरोपियन राग—ऐसे प्रकार मिशनरी लोगोंने बहुतसे चलाये हैं। इनका संगीत उच्च कोटिका होता है। अमरीकामें प्रशंसित 'नीग्रो स्पिरीच्युअल' के बारेमें हम जानते हैं। मुझे यहां अफ्रीकी भाषा, अफ्रीकी छन्द, और राग भी अफ्रीकी, ऐसा संगीत चाहिये था। एक ही रेकॉर्ड इस प्रकारका था और उसमें भी राग शुद्ध अफ्रीकी नहीं था। अरबी संगीतका असर उसमें स्पष्ट जान पड़ता था।

हरएक जाति अपने संगीतमें अपनी आत्मा उंड़ेलती है और अपने सारे इति-हासका हृदय पर जो असर हुआ हो, उसे अपने संगीतके द्वारा व्यक्त करती है। इसलिए अफ्रीकी लोगोंका संगीत सुननेको मैं उत्सुक था। जहां-जहां कुछ भी अव-सर मिला, वहीं मैंने अफ्रीकी संगीत सुननेका प्रयत्न किया। और जानकार लोगोंसे उनकी राय पूछी। अफ्रीकी रागोंमें युद्ध संबंधी कोई राग होता है या नहीं, रणमदके स्वर उसमें मिलते हैं या नहीं, इसकी मैंने जांच की। लोगोंने कहा कि वीररसके स्वर तो नहीं मिलते, परन्तु उत्सवों और त्यौहारों वगैराके राग, विवाह-गीत और विजयगीत मिलते हैं। मैंने जो थोड़ासा संगीत सुना, उसमें विषाद और निराशाके स्वर स्पष्ट दिखाई देते थे। अरबी असर होने पर भी यह विशेषता कायम थी। श्री जयंतीभाईने कुछ अफ्रीकी रेकॉर्ड लाकर सुनाये। उनसे ऊपरकी राय मजबूत हुई। परन्तु दूसरी तरहका संगीत अफ्रीकी लोगोंके पास नहीं है, यह कहने जितना अनुभव मुझे नहीं है। संगीतका मर्म समझनेवाले लोगोंको अफ्रीकी संगीतका गहरा अध्ययन करना चाहिये। हमारे यहां संगीतशास्त्रकी जितनी उपासना हुई, उतनी उसके मर्मकी नहीं हुई। इसलिए बहुत लोग 'साइकोलॉजी ऑफ म्यूजिक'से अपरिचित रहते हैं।

दारेस्सलाममें एक अच्छा-सा अफ्रीकी म्यूजियम है। म्यूजियम है तो छोटा, परन्तु अत्यंत कीमती है।

अफ्रीकी लोग जब शिकारको जाते हैं, तब नोक पर जहरसे बुझाये हुए तीर लेकर जाते हैं। पुराने जमानेके तीरोंकी नोक भी लकड़ीकी होती थी और हमारी तकलीकी नोककी तरह उसमें आंकड़ा रहता था। तीर जानवरको लगा कि उसका सिरा तुरन्त टूट जाता है, वह जानवरके शरीरमें घर कर लेता है और नोकके जहरसे जानवर मर जाता है। मुझसे कहा गया कि म्यूजियमके वस्तुपालने अफ्रीका-में काम आनेवाले ऐसे जहरोंका गहरा अध्ययन किया है।

अफ्रीकाके मध्यभागकी किसी गुफामें चालीस हजार वर्ष पहलेका जो एक चित्र चित्रित है, उसकी नकल इस म्यूजियममें रखी गई है। पशुओकी हूबहू शक्लें और शिकारके प्रसंग इस चित्रकी खासियत है।

अफ्रीकाकी सारी संस्कृति ग्रामीण ढंगकी है। एक सिरेसे दूसरे सिरे तक सब जगह झोंपड़े ही झोंपड़े दिखाई देते हैं। ईंट-चूने या पत्थरका एक भी मकान प्राचीन अफ्रीकियोंने नहीं बनाया। चमड़े या वल्कलके उनके कपड़े, लकड़ीमें खोदी हुई नावें, कौड़ियों, कांचके टुकड़ों और मणियोंकी कारीगरी, लकड़ी और चमड़ेके उनके बाजे, ऐसी बहुतसी चीजें देखनेको मिलीं। कुल मिलाकर अब तक हम कोई पांच म्यूजियम ही देख सके।

पूर्व अफ्रीकामें जहां-जहां महाराष्ट्री मिले, वहीं उच्च अभिरुचिवाला संगीत, अच्छासा नाट्य और अहिंसाके सिद्धांतके प्रति अश्रद्धा सुननेको मिली। महाराष्ट्री लोग गांधीजीकी बात समझनेका पूरा प्रयत्न करते हैं। परन्तु एक खास पक्षके नेताओंके अखंड प्रचारका असर उनके मस्तिष्क पर इतना हो गया है कि वे किसी भी तरह इस बातको नहीं मान सकते कि गांधीजीका आदर्शवाद व्यावहारिक भी है। उन्हें धीरजके साथ समझानेकी जरूरत है।

दारेस्सलामका व्यायाम मंडल वहांके युवकोंमें अच्छा काम कर रहा है। व्यायाम मंडलमें सेवाका वातावरण होने और शरीर-संवर्धनकी तरफ ध्यान दिया जानेके कारण धर्मोपदेशकी अपेक्षा भी व्यायाम मडलोंके जरिये चरित्रकी दृढ़ता अधिक अच्छी तरह सपादित होती है।

इसी शहरमें एक अफ्रीकी संस्थाने हमें पार्टी दी थी। उसमे सदाको भांति भाषण होनेके बाद बढ़िया प्रश्नोत्तर हुए। गांधीजीके सिद्धान्तोंको समझनेके लिए और हिन्दुस्तानका रुख जान लेनेके लिए हर जगह अफ्रीकी लोग बड़े उत्सुक होते हैं। "आप लड़ाई किये बगैर और खून बहाये बिना कैसे स्वतंत्र हो सके? आपकी यह कला हमें सिखाइये।" इस तरह हर जगह अफ्रीकी लोग हमसे पूछते। यहां आनेके लिए परमिट देते समय यहांकी सरकारने हम पर किसी किस्मकी शर्त नहीं लगाई थी, यह सच है। परन्तु इसी कारण मेहमानकी हैसियतसे मेरे लिए मर्यादाएं रखना जरूरी था। इसलिए इस प्रकारकी शंका भी मुझे पैदा नहीं करनी थी कि यहां आकर अफ्रीकी लोगोंको मैं यहांकी सरकारके विरुद्ध भड़काता हूं। इसके सिवा माखनसिंह नामक एक हिन्दुस्तानी कम्युनिस्ट पर इन दिनों एक मुकदमा चल रहा था, जिससे सारा वातावरण क्षुब्ध हो गया था। इन सब बातोंका विचार करके मैंने हर जगह गांधीजीके रचनात्मक कार्योंका महत्त्व समझाकर संतोष मान लिया। रचनात्मक कार्योंसे जनताकी शक्ति किस तरह बढ़ती है, उसमें आत्म-विश्वास कैसे आता है और जनताका संगठन करना किस प्रकार सरल हो जाता है, यह सब कहकर ही मैं रुक जाता था। सत्याग्रह या असहयोगकी बात मैं जान-

बूझकर नहीं कहता था। गांधीजीका अंग्रेजी साहित्य सर्वत्र मिलता ही है। गरज होगी तो ये लोग पढ़ लेंगे।

मैं मानता हूं कि इस देशमें अब भी कुछ समय तक गोरोंके लिए स्थान है। हिन्दुस्तानकी स्वतंत्रता मान लेनेके बाद अंग्रेजोंका अंतिम आधार अफ्रीका ही है। अगर ये लोग भविष्यको पहचानकर अफ्रीकाके लोगोंके साथ और यहांके भारतीयों के साथ अच्छा बर्ताव करें, तो अंग्रेज जाति अपना भी उद्धार कर सकेगी और इतिहास-विधाता परमेश्वरकी योजनाओंमें भी अपना ठोस हिस्सा दे सकेगी। आज तो यहांके गोरोंमें यह दूरदृष्टि दिखाई नहीं देती। आज वे इतना ही सोचते हैं कि हिन्दुस्तानी लोगोंको सताकर किस तरह घबरा दिया जाय और यहांके लोगों-को जकड़कर कैसे काबूमें रखा जाय।

मैं मानता हूं कि यह स्थिति लम्बे समय तक नही टिक सकती। कॉमनवेल्थके नेता इकटठे होकर इस तमाम नीतिमें तबदीली करेंगे और यहांके लोगोंको अच्छी शिक्षा देकर यहांकी नीति सुधारेंगे।

आजकल फोटोग्राफीके आ जानेसे चित्रकलाको बड़ा नुकसान पहुंचा है। अगर कोई पूछे कि अफ्रीकी लोग कैसे दिखाई देते हैं, तो उसके सामने हम अफ्रीकाकी दस-बीस जातियोंके प्रतिनिधिस्वरूप कुछ फोटो रख सकते हैं—इतने बढ़िया फोटो कि उन लोगोंको प्रत्यक्ष देखने जैसा सन्तोष मिले। परन्तु अफ्रीकी मूर्तिकार अपनी जातिकी जैसी कल्पना करेगा और उसकी मूर्ति बनायेगा, वह किसी भी फोटोसे नही मिलेगी। फिर भी उस मूर्तिके भीतर अफ्रीकी लोगोंका चेहरा, उनका स्वभाव और हजारों वर्षके अनुभवकी एकत्र की हुई छटा—तीनों हमें एकत्र देखनेको मिलेंगे। इसके लिए मैंने हरएक म्यूजियममें ऐसी मूर्तियां देखनेका अवसर ढूढ़ा। नैरोबी, दारेस्सलाम, झांझीबार, डोडोमा और कंपाला—इतने स्थानोंके म्यूजियम हमने देखे। इसके सिवा झांझीबारके सुलतान, वहांके रेसीडेण्ट, दारस्सलामके गवर्नर, युगाण्डाके कबाका यानी राजा वगैरा बड़े लोगोंके मकानों और दीवान-खानोंमें स्थानीय करीगरीकी जो खास चीजें रखी रहती हैं उन्हें मैंने ध्यानसे देखा। किंग्ज कॉलेज बुडो, मेकरेरे कॉलेज, गायाजाका मिशन स्कूल वगैरा स्थानों पर पुरानी व नई चित्रकला देखनेको मिली सो भी देख ली। जंगबारमें मुझे कोई अच्छी मूर्ति नही मिली। वह मैंने दारेस्सलाममें बड़ी दुकानोंके आगे रास्ते पर बैठ-कर वेचनेवाले लोगोंसे खरीद ली। ये कारीगर कुशल हों या मामूली, वे अपने देश-की परंपरागत कारीगरीको अच्छी तरह पेश करते ही हैं। काले और सफेद रंगकी लकड़ियोंमेंसे खोदी हुई ये मूर्तियां अफ्रीकी जीवनका प्रतिनिधि हैं। उनके कान, उनकी आंखें, उनके होंठ, उनकी ठोड़ी—चारों जगह उनके स्वभावका प्रतिबिम्ब पड़ता है। यूरोपियन लोग अफ्रीकी लोगोंकी मूर्तियां लकडीमें खोदकर अपने घरोंमें रखते हैं और उनके हाथोंमें थाली या तश्तरी देते हैं। यह मुझे बिलकुल पसन्द

वही। यह जाति हमेशाके लिए घरके बॉय या नौकर बननेके लिए पैदा नहीं हुई। नौकरकी मूर्ति रखनी हो तो अपनी जातिकी मूर्ति ही अच्छी। इसकी अपेक्षा हाथमें तीर और ढाल लेकर शिकार करते हुए जंगली अफ्रीकियोंकी मूर्तियां हजार दर्जे अच्छी।

११. प्रार्थना-प्रवचन

महात्मा गांधीने एक बार आश्रमकी व्याख्या करते हुए कहा था कि, "प्रार्थना पर—सामूहिक प्रार्थना पर जिन लोगोंका विश्वास है, उनका संघ ही आश्रम है।" किसी भी धर्मका आदमी आश्रमकी प्रार्थनामें शरीक हो सकता है। कोई खास तरहकी प्रार्थना ही करनी चाहिये, ऐसा आग्रह नहीं है। जिसने सभी धर्मोंको अपनाया, उसे सभी धर्मोंकी प्रार्थनाएं गानेमें संकोच नहीं होता। थियोसोफीने भी सब धर्मोंके सिद्धान्तोंका आदरपूर्वक अध्ययन करने पर बहुत जोर दिया है। इसलिए हमारी आश्रमकी प्रार्थनाके प्रति थियोसोफिस्ट लोगोंका सद्भाव विशेष होता है। मोम्बासामें श्री मास्टरकी गांधी सोसायटीमें, दारेस्सलाममें श्री जयन्तीभाईके वातावरणमें और जंगबारमें उनके पिताजीके चलाये हुए थियोसोफिकल प्रार्थना-मंदिरमें जो प्रार्थनाएं हमने कीं, वे सचमुच सामूहिक प्रार्थनाएं थीं। क्योंकि अनेक लोग उनमें भक्तिभावसे शरीक होते थे। इन प्रार्थनाओंके साथ जो प्रवचन किये गये, उनका सार यहां दिये देता हूं।

प्रार्थना एक दृष्टिसे देखा जाय तो हृदयका स्नान है और दूसरी तरहसे देखा जाय तो दिलकी खुराक भी है। प्रार्थनाके वातावरणमें अगर हम तल्लीन हो सकें, तो हृदयमें जमे हुए अनेक कुसंस्कार और मलिन संकल्प धीरे-धीरे मिट जाते हैं और शुभ संकल्प मजबूत और विकसित होते जाते हैं। प्रार्थनामें हम कुछ मांगें या न मांगें, भगवानकी सन्निधिमें खड़े रहनेसे सारा वायुमंडल अपने आप पवित्र होता जाता है। कितनी ही परेशानियां अपने आप हल हो जाती हैं और समूहमें की गई प्रार्थना द्वारा उसमें सम्मिलित होनेवाले लोगोंके बीच एक प्रकारकी आत्मीयता और आत्म-परायणता पैदा हो सकती है। समाज अनेक तरहसे गिरा हुआ हो, हारा हुआ हो और छिन्न-भिन्न हो गया हो, तो भी उसमें नया चेतन पैदा करनेमें प्रार्थना समर्थ है। प्रार्थना मनुष्य-जातिकी आखिरी पूंजी है। और कुछ भी बाकी न रहा हो, तो भी प्रार्थना हमें धीरज और नई आशा प्रदान कर सकती है। इसलिए मनुष्यको सद्भावपूर्वक प्रार्थनाका रिवाज कायम रखना चाहिये। अगर प्रार्थनाकी आदत हो तो कठिन अवसर पर उसीकी अचूक शरण लेना सूझता है। और इस प्रकार जैसे समुद्रमें डूबनेवाले मनुष्यके लिए रबरके कड़े या कार्कके जैकट

काम आते हैं, वैसे ही प्रार्थना काम आती है। हरएक कुटुम्बमें और कुछ नहीं तो रोज एक बार सवेरे या शामको सब लोगोंको साथ मिलकर प्रार्थना करनेका रिवाज रखना चाहिये। और उसके अन्तमें, उसी पवित्र वातावरणमें घरके सुख-दु:खकी और मेल या झगड़ेकी बातें छेड़नी चाहिये। हरएक खानदानके लिए यह बड़ी शिक्षा है। जैसे व्यक्तिकी आत्मा होती है वैसे ही कुटुम्ब, जाति या संस्थामें भी हम आत्मा जाग्रत कर सकते हैं।

इसी तरह हमारे मंदिर भी सारे समुदायकी आत्माकी जागृतिके लिए इस्तेमाल किये जा सकते हैं। मंदिरोंमें मूर्ति हो या न हो, यह गौण चीज है। परन्तु मूर्तिकी पूजाके साथ आचार धर्मका झगड़ा पैदा हो जाता है। यह नहीं कहा जा सकता कि मूर्तिको नहलाने-खिलानेमें कोई खास धार्मिक वृत्ति पैदा होती ही है। हिन्दू समाजमें जहां खानेकी बात आई, वहां चौका-बेचौका, छुआछूत और ऊंच-नीचका भाव वगैरा असंख्य बातें पैदा हो जाती हैं। शुद्ध और नित्यतृप्त भगवानके लिए नहाने-खानेकी बात न भी रखें तो काम चल सकता है। भोग रखना ही हो तो सूखे या हरे मेवे और मिठाईका रखा जा सकता है। पूजाके लिए पुरोहित नहीं रखने चाहिये। जिसके हृदयमें भक्तिकी उमंग हो, वही अपने लिए पूजा करे। रोज सवेरे उठकर माता-पिताके पैरों पड़नेकी जिसकी आदत है, वह अगर समयके अभावमें यही काम किसी नौकर या चपरासीके द्वारा कराये तो उससे जितना मतलब पूरा होगा, उतना ही पुरोहितके द्वारा पूजा करानेमें हो सकता है। पैरों पड़ना मां-बापकी जरूरत नहीं है, यह तो पुत्रके हृदयकी ऊर्मि मानी जायगी। इसमें एवजी नहीं रखा जा सकता।

हमारे मंदिर बनते हैं कितनी भक्तिसे ! परन्तु बादमें उनमें स्वच्छता कायम नहीं रखी जाती। मंदिरोंमें दिये जानेवाले दानका सद्व्यय नहीं होता। मंदिरों-की आय भगवानके भोगविलासमें इस्तेमाल नहीं होनी चाहिये, परन्तु लोककल्याणके ही काम आनी चाहिये। समाजका चरित्र सुधारनेवाले अनेक कार्य मंदिरों द्वारा हों। मन्दिरोंकी जमीन दीवारों और कठघरोंको दिनमें कई बार गीले कपड़ेसे पोंछकर साफ करना चाहिये। मंदिर अंतर्बाह्य स्वच्छताका स्थान होता है। वहां लोगोंको व्यक्तिगत और सामाजिक दोनों तरहकी सफाईके नियम सीखनेकी सुविधा होनी चाहिये। जहां तहां पानी बिखेरकर गीलापन और कीचड़ पैदा नहीं करनी चाहिये। नाम-संकीर्तनके नामसे चिल्लाकर मंदिरका वातावरण नहीं बिगाड़ना चाहिये। जिन्हें मूर्तिके दर्शन पर आपत्ति न हो, उन तमाम लोगोंको मंदिरमें आने देना चाहिये-- भले ही वे किसी धर्मके हों। दर्शनके लिए आनेवाले लोग बाहर जूता उतारकर मंदिरमें जाते हैं, तब उनका ध्यान जूते चोरी जानेके डरसे अकसर वहीं होता है। इसके बजाय छोटीसी थैलीमें जूता रखकर वह थैली साथ रखनेकी आजादी दी जाय, तो जूतेकी भी रक्षा हो जाय और भगवानका

ध्यान भी बना रहे। पुराने लोगोंने कहा है—'शुष्कं चर्म तु काष्ठवत्' अर्थात् सूखा चमड़ा लकड़ीके समान है। इसलिए उसकी छुआछूत न मानी जाय।

मंदिरों द्वारा धार्मिक ग्रंथोंके संग्रह, उनके अध्ययन, प्रकाशन और चर्चाकी सुविधा होनी चाहिये। मंदिर अतिथिशाला भी हो और मनुष्य तथा जानवरोंके लिए रुग्णालय भी हो। हरएक धर्मके त्यौहार उचित परिवर्तनके साथ मंदिरों द्वारा मनाये जा सकते हैं। इस प्रकार हरएक मंदिरको धर्मसेवाकी एक अद्यतन (अप-टु-डेट) संस्था बनाया जा सकता है।

हमारा धर्म सनातनके नामसे पुकारा जाता है। सनातनका अर्थ है हमेशाका। कोई भी वस्तु सड़े नहीं, बिगड़े नहीं और स्वच्छ और ताजी रहे, तभी उसे हमेशाकी या टिकाऊ कहा जा सकता है। सनातन अर्थात् नित्य नूतन। जैसे बहती हुई हवा शुद्ध हवा होती है, बहता हुआ पानी स्वच्छ होता है, उसी तरह समय-समय पर जिसमें सुधार और फेरबदल होते रहते हैं वही सनातन धर्म माना जाता है। हम इसी प्रकार करते भी आये हैं। बीचमें यह काम रुक गया, क्योंकि विचार-जागृति मन्द पड़ गई और रूढ़िधर्मने जोर पकड़ लिया। अब हमें धर्मके संस्करण-की, सुधारकी प्रवृत्ति फिरसे अपनानी चाहिये।

पामर लोगोने तेज धर्मसे डरकर एवजी धर्म चलाया। "गोदानके बदल सवा रुपया दे दो।"····"त्यागके बजाय दानसे काम चला लो।"····"जीवन परिवर्तनके स्थान पर नाममात्रका प्रायश्चित सुझा दो।" ऐसे अनेक एवजी धर्म हमने चला दिये हैं। नतीजा यह हुआ कि धर्म मंद और निःसत्त्व हो गया। सत्यनारायणकी ही उपासनाको देखिये। उसमें सत्यनिष्ठा पर जोर दिया है। वचनपालनका माहात्म्य बताया है। परन्तु यह सब मन पर जमा देनेके लिए डर और लालचकी दो हीन असामाजिक वृत्तियोंकी शरण ली गई है। "सत्यको छोड़ोगे—धोखा दोगे तो अमुक अमुक हानि होगी। सत्यको मानोगे तो फलां लाभ होगा," ऐसी बनावटी फलश्रुति बताकर लोगोंको सत्यनिष्ठ नहीं बनाया जा सकता। सत्यनिष्ठाके कारण ही मनुष्य सत्यका पालन करे तो ही वह उन्नत होगा।

धार्मिक कहानियां हमें बताती हैं कि भगवान कभी-कभी चाहे जैसा रूप धारण करके हमारी परीक्षा लेते हैं। "वह कुष्ठ रोगीका रूप धारण करेगा, भिखारी बनकर आयेगा। वह यवनके रूपमें प्रगट होगा और हमारी धर्मनिष्ठाकी जांच करेगा।" ऐसी कहानी सुननेके बाद मनुष्य अनजान या विचित्र आगन्तुकसे डरता है। हम यह क्यों न समझ लें कि हरएक मनुष्य ईश्वरका ही रूप है? हरएक मानवके द्वारा प्रतिक्षण ईश्वर हमें कसौटी पर चढ़ाता है। ऐसी भावना दृढ़ हो हो जाय तो हर क्षण और हर प्रसंग नित्य साधना और अखंड आनन्दका बन जाएगा।

भीतर देखने पर ईश्वर अन्तर्यामी है। बाहर देखें तो वह जगत्-स्वरूप है।

ईश्वरने अनेक अवतार धारण किये, उसमे पहले भगवानका सबसे पहला, सबसे बड़ा और सनातन अवतार तो यह सृष्टि ही है। भगवान हमें सृष्टिके रूपमें अखंड दर्शन देते हैं। गीता हमें यही विश्वात्मैक्यका धर्म सिखाती है।

गीता हमारा सर्वोच्च धर्मग्रंथ है, परन्तु हम उसे केवल हिन्दू धमका ही न समझें। गीता-धर्म सिर्फ हिन्दुओंका धर्म नहीं है, वह विश्वधर्म है। हम गीताके हैं। गीता सबकी है, सिर्फ हमारी नहीं। गीता-धर्म सुननेके लिए हम तमाम दुनिया को बुलायें। इसकी दीक्षा देनेकी भी बात नहीं है। वह जिसके हृदयमें उदय हो उसका उद्धार हो जाय, इसीलिए हम गीतामंदिर न बनाने लगें। गीता सभी धर्मों-में प्रवेश कर सकती है। गीता केवल माननेका धर्म नहीं, परन्तु आचरण करनेका धर्म है। उसमें ज्ञानी, भक्त, योगी, पंडित, त्रिगुणातीत और स्थितप्रज्ञके जो लक्षण दिये हैं वे सब एक ही हैं। मनुष्य-जातिके लिए वे सर्वमान्य आदर्श हैं। समाज बना रहे और सर्वांगीण उन्नति करे, इसके लिए जो सद्‌गुण मनुष्यको पैदा करने जरूरी हैं, गीतामें वे सब दैवी सम्पत्तिके वर्णनमें दे दिये हैं। इसलिए गीता समाजधर्म भी है और मोक्षधर्म भी। अभ्युदय और निःश्रेयस—इहलोककी उन्नति और आत्मा-का उद्धार दोनों एक साथ प्राप्त करनेकी कुंजी गीताने मनुष्य-जातिको दी है। इसीलिए गीताधर्मी लोगोंने श्रीकृष्णको 'जगद्-गुरु' कहा है।

हमने समाजधर्मके रूपमें चातुर्वर्ण्यकी स्थापना की। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार समाजोपयोगी वृत्तियां हैं। कुछ लोगोंमें एक वृत्ति प्रधान होती है, कुछमें दूसरी। परन्तु हरएक मनुष्यको ये चारों वृत्तियां इकट्ठी ही अपनेमें पैदा करनी पड़ेंगी। नही तो मनुष्यका जीवन एकांगी और पंगु हो जायगा। अकेला ब्राह्मण, अकेला क्षत्रिय, अकेला वैश्य या अकेला शूद्र सम्पूर्ण मनुष्य नहीं है। गांधीजीमें ये चारों वृत्तिया इकट्ठी विकसित हुई थीं। हमें अब चार अलग-अलग वर्ण और असंख्य जातियां छोड़ देनी चाहिये और हरएक व्यक्तिमें मानवताके सम्पूर्ण विकासका आग्रह रखना चाहिये। गीताका संन्यास, (संन्यास आश्रम नही) ब्रह्मचारी, गृहस्थ आदि सभी लोगोके लिए आवश्यक अलिप्त और अनासक्त वृत्ति है।

और अब तो हमें सभी धर्मोका आदरपूर्वक अध्ययन करक सब धर्मोंको अपनाना है। अलग-अलग धर्मोके बीचका झगड़ा सिर्फ चर्चा और तुलनासे नहीं मिटेगा। सभी धर्मोंको स्वीकार करनेसे सच्ची धार्मिकता ऊपर निखर आयेगी और विधि-विधानका मैल नीचे बैठ जायगा। हमारा बनाया हुआ ऊंच-नीचका और अपने-परायेका भाव धर्मका अंग नहीं है, परन्तु निरा अधर्म है। छुआछूतके साथ ऊंच-नीचका भाव भी हमें निकाल देना चाहिये। हिन्दुस्तानसे इतनी दूर आ गये हैं तो हमें शुद्ध धर्मका चिन्तन करना चाहिये और सामाजिक दोष निकाल देने चाहिये। रोटी-बेटी व्यवहारके पुराने नियम अब कामके नहीं हैं। जहां सभी धर्म

हम अपने मानते हों, वहां धर्म-परिवर्तनकी कोई जरूरत भी नहीं और उसमें कोई पाप भी नहीं।

हमारे तमाम कामोंमें सर्वोदयकी दृष्टि होनी चाहिये। जो सबसे पीछे है उसे आगे लानेका विशेष प्रयत्न होना चाहिए। एकके साथ अन्याय करके दूसरेका भला करने लगेंगे, तो वह सर्वोदय धर्मका द्रोह होगा। इस तरह विश्वबन्धुत्वका हनन होता है। आत्मशुद्धि भी सामाजिक कर्तव्य ही है। अहिंसाके बिना समाजकी धारणा नहीं हो सकती और सत्यनारायणका दर्शन भी नही हो सकता।

१२. किटुंडा

भूमध्य रेखा पार करते समय जैसे मनमें गंभीर भाव प्रगट हुआ था, वैसे ही अब तो दक्षिणमें लिंडी बन्दरगाह तक और मूंगफलीके विराट प्रयोगवाले नचिंग्वे तक ठेठ दक्षिणमें पहुंचनेवाला हूं, इस खयालसे भी मन गंभीर हो गया। ६ जूनको हमने पहली बार दारेस्सलाम छोड़ा। लिंडी तकका २०० मीलका सफर समुद्रके किनारे-किनारे मोटर द्वारा हो सकता था। परन्तु हमें वक्त बचाना था इसलिए पन्त दम्पती, कमलनयन, छोटा राहुल, चि० सरोज और मैं सवेरे दारेस्सलामसे विमान मार्गसे रवाना हुए। यह आसमानी रास्ता पहले जमीन परसे और फिर समुद्र परसे जाता था। इसलिए समुद्रका बढ़िया गुलाबी रंग, बीच-बीचमें छोटे-बड़े द्वीप आने तब पन्नेका हरा रंग, माफिया, सोंगोसोंगो वगैरा द्वीपोंकी शोभा आदि सब कुछ अपेक्षानुसार था। दाईं तरफ पहले किमूजू दिखाई दिया। उसके बाद रुफीजी नदीके असंख्य सुन्दर मोड़ और समुद्रसे मिलनेके उसके अनेक मुख देखकर आनन्द ही आनन्द हो गया। सचमुच उस नदीको रूपवती कहना चाहिये। इसके बाद दो-तीन छोटी-छोटी नदियां समुद्रसे मिलती नजर आईं। और अब लगभग नामशेष रह गये किलवा नामक दो बन्दरगाह दिखाई पड़े। एक है किलवा-किविंजी और दूसरा है किलवा-किसिवानी। इस दूसरे बन्दरगाहसे पुराने समयमें न्यासा सरोवर तक जानेका रास्ता था। यह सारी शोभा देखते-देखते हम लिंडी हवाई अड्डे तक पहुंच गये। लिंडी बन्दरगाह और शहरसे यह विमान केन्द्र लगभग १४ मील दूर है। लिंडीका बन्दरगाह भूमध्य रेखासे दस डिग्री दक्षिणमें है। बन्दरगाह बहुत ही शान्त माना जाता है। लुकलेडी नामकी एक छोटीसी नदी खूब चौड़ी होकर वहां समुद्रमें मिलती है।

लिंडीमें खाना खाकर शाम होते ही एशियन लोगोंकी एक सभा करके हम नदीके उस पार किटुंडा पहाड़ी पर रातको सोने गये। शामकी सभामें हिन्दुस्तानके हिन्दू मुसलमानोंके सिवा बहुतसे अरब भी आये थे। अरबोंका अफ्रीकाके साथका

संबंध हमारे जैसा ही पुराना है। इसके सिवा अरब लोग शुरूसे ही स्थानिक लोगोंके साथ मिलते-जुलते रहे हैं। उन्होंने अफ्रीकाके पूर्वी किनार पर छोटे-मोटे कई राज्य भी स्थापित किये थे। पुर्तगाली लोगोंके साथ वे कई बार हार-जीत खेले है। अरबी और पुर्तगाली दोनों संस्कृतियोंके अवशेष तमाम किनारे पर जगह-जगह फैले हुए हैं। पुर्तगाली लोगोंने बहुत कुछ खो दिया, फिर भी आज मोजाम्बिकका उपजाऊ आर मनोहर प्रदेश उन्हींके हाथमें है। और अक्षाशकी ठीक इतनी ही ऊंचाई पर अफ्रीकाके पश्चिमकी तरफ अंगोलाका मुल्क भी उनके पास है।

अरबोंका दबदबा अब नही रहा। थोड़ी बहुत संस्कारिता अभी तक कायम है। पूर्व अफ्रीकाकी स्वाहिली भाषा पर अरबी भाषाका असर बहुत है।

लुकलेडी खाड़ी पार करनेमें रात हो गई। सामनेकी तरफ हमारे लिए मोटर मौजूद थी। उसमें बैठकर ऊपर चढ़ते समय एक तेन्दुआ दिखाई दिया। मोटरके प्रकाशसे चौंधियाकर उसने नजर फेर ली और देखते-देखते पासके जंगलमें ओझल हो गया। तेन्दुएके शरीर परके धब्बे सुन्दर होते ही हैं। परन्तु उसकी दुमकी मोड़-दार बनावट विशेष आकर्षक होती है। इस दुमके कारण यह जानवर प्रौढ़ दिखाई देता है। श्री मेघजीभाई शाहके सायसलके खेत पार करके पहाडी पर उनकी विशाल कोठीमें हम जा पहुंचे। कोठी बनानेवाले मूल मालिककी कल्पना विशाल थी। कमरे, बरामदे, छत सभी विस्तृत और मजबूत है। हमने छत पर जाकर दक्षिणके तारे देखे। जय, विजय और त्रिशंकुको आसमानमें इतना ऊंचा चढ़ा हुआ देखकर बहुत ही आश्चर्य हुआ। वृश्चिककी शोभा अनोखी थी। सोनेसे पहले और, सवेरे जल्दी उठकर तारे खूब देखे, परन्तु हमारा जी नहीं भरा। दूसरी बार जब देखने गये तब आकाशके बादलोंने हमारे उत्साह पर पर्दा डाल दिया और हमें बिस्तर पर पहुंचा दिया।

सुबह उठकर देखा तो लुकलेडीकी खाड़ी शान्तिसे सो रही थी। वह जिन पहाडियोंके बीच होकर आती थी, वे पहाड़ियां भी निद्रासुख अनुभव कर रही थी। अन्तमें भगवान सूर्यनारायण ऊपर आये और उन्होंने अपनी किरणोंसे उन सबको जगाया। करस्पर्शसे प्रसन्न हुई खाड़ी तुरन्त चमकने लगी। पहाड़ियोंका मुख उज्ज्वल हुआ और उन्होंने हमें अपनी ओर यात्रा करनेका आमंत्रण दिया।

आठ बजे रवाना होकर सायसलके अनेक खेत देखते-देखते और सायसलकी परवरिशकी तफसील सुनते सुनते हम २८ मील पहुंचे। वहां श्री धीरूभाई पोपटकी एक सायसल फैक्टरी थी, उसे देखने गये। इससे पहले नचिंग्वे ग्राउन्डनट स्कीमके लिए सामान ले जानेके लिए जो एक छोटासा बन्दरगाह तैयार किया गया है वह हमने देखा। वहांसे नई रेलवे बन रही है और पम्प करके पेट्रोल भेजा जाता है। चाहे जैसे जंगलमें विज्ञानके साधन लाकर वहांसे चाहे जहां सही सलामत ले जानेकी गोरे लोगोंकी तत्परता प्रशंसनीय है। और उनके ऐसे काम सफलतापूर्वक

पूरे करनेमें यहांके हमारे हिन्दी लोगोंकी उपयोगिता, लगन और बहादुरी भी उतनी ही स्तुत्य है। नई सृष्टि पैदा करके वहां व्यवस्था स्थापित करनी हो, तब गोरे लोगोंका किया हुआ प्रबन्ध समझ लेने और उसे वफादारीके साथ अमलमें लानेमें हमारे यहांके लोगोंकी बराबरी करनेवाली कोई जाति नहीं है। फौजके सेनापति और जहाजोंके कप्तान भी हमारे यहांके लोगोंके इस गुणकी मुक्त कंठसे बड़ाई करते हैं।

यह सब देखकर हम लिंडी पहुंचे, तो वहांके प्रोविंशियल कमिश्नर मि० पाइकने हमें दोपहरका खाना खिलाया। उनके साथ वार्तालाप करके हम हिन्दू मंडलमें गये। वहां अधिकांश बहनें ही थीं।

पूर्व अफ्रीकामें हमारे सन्मानमें जो अनेक भोज और चाय-पार्टियां दी जाती थीं, उनमें यूरोपियन अधिकारी बिना किसी संकोचके आते थे परंतु किसी यूरोपियन अधिकारीने हमें अपने यहां खानेको बुलाया हो, ऐसा यह एक ही उदाहरण है। मि० पाइक अत्यन्त सज्जन मनुष्य हैं और उदार विचारोंके हैं। हममेंसे जो लोग बिलकुल निरामिषाहारी थे, उनके लिए उन्होंने अपने यहां बहुत अच्छा इन्तजाम किया था। उनके यहां और गोरे मेहमान भी आये थे, इसलिए बातचीतका रंग अच्छा जमा।

यहांके इण्डियन एसोसियेशनकी चाय-पार्टीमें रिवाजके अनुसार हमारे भाषण हुए। उनमें श्री कमलनयन बजाजका भाषण जरा सख्त और यूरोपियन लोगोंको चुभनेवाला था। परन्तु मि० पाइकने उस पर जरा भी आपत्ति नहीं की।

रातको किटुंडामें मेघजीभाईकी कोठी पर बड़ा खाना था। वहां भी गोरे काफी संख्यामें आये थे। वर्धा-शिक्षाकी योजना वगैरा अनेक विषयों पर रसिक चर्चा हुई। श्री मेघजीभाई अत्यन्त होशियार और संस्कारी उद्योगपति हैं। उनके साथ उनकी लड़की हंसा भी किटुंडा आई थी।

१३. दुनियाभरके लिए मूंगफली

यूरोपीय महायुद्धके अन्तमें सारी दुनियाकी चिन्ता रखनेवाले होशियार अंग्रेज लोगोंने देखा कि विलायतमें और सब जगह वनस्पतिकी चर्बी यानी तेल और खलीकी कमी पैदा होगी। उन्होंने खूब जल्दी अनेक देशोंमें मूंगफली बोकर उस कमीको पूरा करनेका बीड़ा उठाया और एकसे एक अधिक प्रचंड योजनाएं स्वदेश के सामने रखीं। युद्धके कारण हुई आर्थिक तंगीके बावजूद इग्लैण्डने पार्लियामेंटकी मंजूरी लेकर यह काम शुरू किया। पानीकी तरह पैसा खर्च करके उन्होंने इस योजनाको प्रारंभ किया। जमीनका जो सर्वे करना था, सो हवाई जहाजसे कर

लिया। हिसाबनवीस मिलनेमें पहले काम शुरू भी हो गया। बड़े बड़े ट्रेक्टर और बुलडोजर लाये गये और जहाजोंमें काम आनेवाली लोहेकी बड़ी-बड़ी जंजीरें ट्रेक्टरोंसे बांधकर जंगलके पेड़ जमींदोज करना शुरू कर दिया गया। मूंगफली और सूरजमुखीके फूलोंके बीजोंसे तेल निकालना शुरू किया गया। सारी योजना देखकर लोगोंको ऐसा ही लगता था कि लड़ाईकी तैयारी हो रही है। जब काम खूब बढ़ा तब पता चला कि रुपया तो पानीकी तरह खर्च हो रहा है, परन्तु आयके नाम पर शून्य। बादमें जांच होने लगी। पता चला कि हिसाबका कोई ठिकाना नहीं। जहाजमें काम आनेवाली जंजीरें पुरानी होनेके कारण टूट गईं। नई तैयार कराकर लानी पड़ी। बड़ा शोर मचा। यह भी विचार हुआ कि क्या सारी योजना छोड़ दी जाय? परन्तु बहादुर अंग्रेज जाति युद्धकी तरह आर्थिक योजनामें भी हार मानकर बैठ जानेवाली नहीं थी। अब इस योजनाको पक्के आधार पर चलानेके लिए उसमें आवश्यक सुधार होने लगे हैं।

यह सब काम देखने लायक था, इसीलिए हम इधर आये थे। ८ जूनको सवेरे हम ग्वाना ड्रा. लिंडी होकर ६३ मीलका सफर करके नचिंग्वे पहुंचे। वहां इस जबरदस्त योजनाको अमलमें आते देखा। रास्तेमें मिन्गोयो और म्टामा दो स्थानों पर रास्ता बदलना पड़ा। पेट्रोलका पाइप रास्तेके किनारे-किनारे जाता था। फौजी टैंकोंमें परिवर्तन करके उनके ट्रेक्टर बनाये गये थे। बड़े-बड़े बुलडोज़र जमीनको साफ करते थे। एक सांकलको दो सिरों पर दो ट्रेक्टर चलाते हैं। इसलिए साकलके जोरसे जंगलके बड़े-बड़े आठ दस पेड़ भी एक साथ उखड़कर गिर जाते हैं। यन्त्रके जोरसे मनुष्य कितना राक्षसी काम कर सकता है, यह देखकर मैं तो स्तम्भित हो गया। उसी क्षण मेरे मनमें विचार आया कि गोरोंकी देखभाल भले ही हो, परन्तु इन ट्रेक्टरों और बुलडोज़रोंको चलानेवाले अफ्रीकी लोग ही हैं। इतना प्रचंड राक्षसी काम जिनके हाथों पूरा कराया जाता है, उनकी बुद्धिका विकास हुए बगैर नहीं रह सकता। होशियारीके साथ-साथ उनकी महत्त्वाकांक्षा भी बढ़ेगी। भारतीयोंके सहायक बनकर इन लोगोंने अब तक बढ़ई और दर्जी वगैराका काम सीखा। दुकानोंमें बैठकर हिसाब भी रखने लगे। माल बेचते खरीदते उनमें आधुनिकता आ गई है। अब मूंगफलीकी इस विराट योजनाको सफल करनेमें जब वे पूरी तरह भाग लेंगे, तब चाहे जैसे छोटे-बड़े कारखाने वगैरा चलानेकी हिम्मत उनमें पैदा हो जायगी। फिर इन लोगोंको दबाकर रखना किसी भी राज्यके लिए असंभव हो जायगा।

कार्यालयमें जाकर हम वहांके मुख्य अधिकारियोंसे मिले। उन्होने बारीक जानकारीवाले नकशों पर सारी योजना हमें पहले समझाई। फिर वे हमारे साथ घूमे। उनमेंसे एक अनुभवीने कहा: "ऐसी कोई योजना हाथमें लेनेसे पहले उस जगह पानीकी क्या सुविधा है, यह जांच करनी चाहिये। इस जांच पर और पानी-

की सुविधा पर योजनाकी आधी पूंजी लग जाय, तो भी मुझे आपत्तिकी बात मालूम नहीं होगी। बड़े पैमाने पर खेती करनेके लिए भूगर्भ-विद्याका उत्तम ज्ञान होना चाहिये।" इस भाईने दो तीन नकशे हमारे सामने रखकर हमें बताया कि यहांकी भूमि हिन्दुस्तान या यूरोपकी भूमि जैसी नहीं। ज्वालामुखीकी बनाई हुई इस जमीनमें हिन्दुस्तान जैसी खेती नहीं हो सकती। भाई स्विन्बर्न और कॉफमेनसे अनेक प्रकारकी तफसील जान लेनेके बाद मुझे तो विश्वास हो गया कि इतनी बड़ी योजनामें भी विकेन्द्रीकरणका सिद्धान्त ध्यानमें रखा जाय, तो सब बातोंको देखते हुए लाभ ही है।

यह सारी योजना देख लेनेके बाद हमने वहीं भोजन कर लिया। इस योजनाके सिलसिलेमें जमा हुए दुकानदार आदि जो भारतीय थे, उनके साथ बैठकर हमने महत्त्वपूर्ण वार्तालाप किया। उनके आतिथ्यके लिए धन्यवाद देकर हम वहांसे विदा हुए। इस प्रदेशमें काजूके पेड़ भी बहुत हैं। मैं नहीं जानता कि काजूसे तेल निकल सकता है या नहीं। (इसके छिलकेमेंसे जरूर तेज तेल निकलता है) परन्तु इस मेवे-के प्रति मुझे बचपनसे पक्षपात है। हिन्दुस्तानके पश्चिमी किनारे पर काजूकी पैदावार बहुत होती है। ये पेड़ अफ्रीकासे ही हिन्दुस्तान आये दिखते हैं। कहा जाता है कि यह पुर्तगालियोंकी सेवा है।

नचिंग्वे लौटते समय मोटरमेंसे सूर्यास्तकी शोभा कई तरफसे देखते हुए यात्रा की बहुत कुछ थकावट हम भूल गये। यहां तक कि रातको सोनेसे पहले मैं छत पर जाकर श्रीमती नलिनीबहन पंतको आकाशके तारे विस्तारपूर्वक बता सका। श्री तात्या इनामदार भी इसमें शरीक हो गये।

सवेरे हम किटुंडासे चले। पास ही श्री मेघजीभाईके दो सायसलके कारखाने थे। एककी मशीनरी पुराने ढंगकी है, जबकि दूसरेकी अद्यतन है।

सायसलका धंधा पहले-पहल यूरोपियन लोगोंने शुरू किया था। इसमें वे कामयाब नहीं हुए। धीरे-धीरे गोरे हट गये और यह धंधा हमारे यहांके लोगोंके हाथमें आ गया।

युगाण्डा ट्रान्सपोर्ट कम्पनीका भी यही हाल हुआ। पहले गोरोंने उसका ठेका लिया, परन्तु पहले ही साल ७५००० शिलिंगका घाटा खाया। अन्तमें उन्हें यह ठेका आगाखानी लोगोंको दे देना पड़ा। पहले ही वर्षमें घाटा ७५००० से घटकर ३००० पर आ गया और उसके बाद तो अब ये हमारे लोग २० या २५ फी सदी मुनाफा बांटते हैं। जहां व्यवस्था-शक्तिमें कोई जाति उन्नत हो जाती है, वहां सीधी स्पर्धामें उसे कौन हरा सकता है। ऐसे लोगोंको दबानेके लिए राज करनेवाली जाति यदि हर बार कानून और मनमानीकी शरण ले, तो उस जाति-का मानस विकृत हो जाता है और समय परिपक्व होते उसकी अधोगति हो जाती है।

लिंडीमे दारेस्सलाम जानेको रवाना होनेसे पहले दूसरे कई काम करने पड़े। लिंडीके मुसलमान एक-दो मस्जिदोंका जीर्णोद्धार करना चाहते थे। इस सिलसिलेमें वे श्री अप्पासाहबको और हमें वहां ले गये। अप्पासाहब तो सभीके आदमी ठहरे। हरएक काममें उनकी सहानुभूतिकी आशा रखी ही जाती है और वे भी लोगोंको निराश नही करते। कहीं न कहींसे मदद देना उन्होंने मंजूर किया और मस्जिदका काम आगे बढ़ानेकी सिफारिश की।

लिंडीमें जो सरकारी इंडियन स्कूल चल रहा है, उसका संचालन गांवके लोगोंके हाथमें दिया हुआ है। इस मंचालनमें हिन्दू-मुसलमानोंके साथ होनेसे हालमें ही झगड़े पैदा हो गये हैं। इन झगड़ोंकी तफसीलमें मैं नहीं जाऊंगा, परन्तु उनसे जो निष्कर्ष निकलते हैं वे उल्लेखनीय हैं। मुसलमानोंमें जब तक जागृति नहीं होती, तब तक वे कुछ नही बोलते। जैसे चलता हो चलने देते हैं। जब तक यह हाल रहता है तब तक हिन्दू मुसलमानोंकी तारीफ करते हैं कि, "ये लोग कितने अच्छे हैं। म ाभेद या झगड़ा है ही नहीं।"

ऐसी व्यवस्थामें हिन्दुओंके मनमे मुसलमानोंके विरुद्ध हिन्दुओंका पक्षपात करनेकी बात तो नही होती, परन्तु मुसलमानोंकी संस्कारिता और बुद्धि-शक्तिके बारेमें आम तौर पर हिन्दुओंमें विशेष आदर नहीं होता। मुसलमानोमे जागृति आते ही यह बात उन्हें खलने लगती है। सार्वजनिक कार्योमें भाग लेकर काम करते करते अपनी योग्यताका असर डालने और अपनी कमियां दूर करनेके बजाय वे तुरन्त साम्प्रदायिकता खड़ी कर देते हैं और मुसलमानोंकी हैसियतसे अपने हक आजमानेकी कोशिश करते है। "अधिकांश शिक्षक हिन्दू ही क्यों हों? हमारे शिक्षक भी होने चाहिये।" ऐसा आग्रह शुरू होते ही हिन्दू शिकायत करते हैं कि "चाहे जैसे मंदबुद्धि या संस्कारहीन शिक्षक आप भर दें तो काम कैसे चले? हमारे बच्चोंकी शिक्षा खराब हो, यह हम कैसे सहन करें?" शिक्षकोंकी योग्यता नापनेमें हिन्दू या मुसलमान दोनों व्यवस्थापक तटस्थ होकर विचार नहीं कर सकते। धीरजपूर्वक शिक्षकोंको मौका देकर तैयार होने देना चाहिये, इतनीसी बात हिन्दू नहीं समझते। और इतनासा मुसलमानोंके ध्यानमें नही आता कि चाहे जैसे शिक्षक ले आनेसे लड़कोंकी तालीम बिगड़ती है। व्यवस्थापक व्यवस्थाका विचार करते समय दोनों जातियोंके बालकोंकी शिक्षाका समान आस्थासे विचार करें और एक-दूसरेके प्रति विश्वास और आदर रखें तो झगड़े मिट जायें। अपने-अपने स्वार्थोंकी तनातनी हो जाने पर लोग इतने अंधे हो जाते हैं कि वे निरा स्वार्थ भी समझना छोड़ देते हैं और आत्मनाश तक चले जाते हैं। इसमें भी अगर किसीके सगे-संबंधीकी नियुक्तिका प्रश्न आ जाय, तब तो अंधापन जहरीला बन जाता है। जहां किसी एक जातिके शिक्षकोंका बहुमत हो, वहां दूसरी जाति यह आग्रह रखेगी ही कि "आबादीके अनुपातमें या विद्यार्थियोंके हिसाबसे या रुपयेकी जो मदद दी गई हो

उसके लिहाजसे हिन्दू या मुसलमान शिक्षकोंकी संख्या रहनी चाहिये।" (इसमें अगर कोई पारसी या ईसाई शिक्षक आ गये हों, तो उन्हें अपनी तरफ खींचनेका प्रयत्न दोनों तरफसे होगा ही। और इसमेंसे भी झगड़े पैदा होंगे।)

अपनी ही जातिके अंधे स्वार्थका आग्रह रखनेसे किसीका भी स्वार्थ पूरा नहीं होता। केवल अभिमानका पोषण होता है और सार्वजनिक जीवन बिगड़ता है। फिर नेता कहते हैं कि हम लोगोंके लिए लोकतंत्र अनुकूल ही नही है। मेरी जातिके शिक्षकोंका बहुमत हो या अनुपात अधिक हो, तो मैं अवश्य कहूंगा : "शिक्षक योग्यतानुसार नियुक्त होने चाहिये। अनुपातसे क्या होगा ?" परन्तु यदि मेरी जातिके शिक्षकोंकी संख्या कम हो, तो मैं तुरन्त कहूंगा कि, "मुझे स्वयं आपत्ति नही, परन्तु मेरी जातिका विश्वास आप खो बैठेंगे। फिर अपनी जातिको समझाना मेरे लिए कठिन हो जायगा। इसलिए वस्तुस्थितिको स्वीकार करके समझदारीके साथ अनुपातका सिद्धान्त कायम कीजिये।" इसमें भी अनुपात जनसंख्याका, विद्यार्थियोंका या रुपयेकी मददका रहे ? इस सवाल पर झगड़ा रहेगा ही।

नोआखालीमें एक अस्पतालमें बीमारोंको भरती करनेमें भी जातिका अनुपात रखनेका आग्रह मैंने देखा था और इस कारण एक खास जातिके गंभीर रोगियोंको भी निकालकर दूसरी जातिके नामके बीमारोंको बिस्तर दिये गये थे। वहांका अधिकारी कहता था, "इसमें हमारी कुछ नहीं चल सकती। जातिको और किसी तरह समझाया ही नहीं जा सकता।"

एक जगह तो मुझे मालूम है कि जेलके कैदियोंके मामलेमें भी जातीय अनुपात की चर्चा हुई थी ! परन्तु इन तफसीलोंमें मैं यहां नहीं जाऊंगा।

श्री कमलनयनने सुझाया कि, "व्यवस्थापकोंमें हिन्दुओंका चुनाव मुसलमान करें और मुसलमानोंका हिन्दू करें, तो शायद झगड़ा मिट जाय। थोड़े दिन आजमा कर देखिये।" लोगोंने तुरन्त कहा कि, "ऐसा करनेसे तो सभी निकम्मे लोग जमा हो जायंगे।" दोनों जातियोंके स्वभावकी कमजोरी इस जवाबमें पूरी तरह व्यक्त होती थी। इस तरह जब मामला बिलकुल बिगड़ जाता है, तब दोनों पक्ष एक पाठशालाकी दो पाठशालाएं बना देते हैं। खर्च दुगुना हो जाता है। पराई सरकारके पास अलग-अलग ग्राण्टकी अर्जियां भेजी जाती हैं और प्रतिष्ठा खोकर उसकी आलोचनाएं सुननी पड़ती हैं। ऐसी परिस्थितिसे लाभ उठानेका मौका किसी सरकारने नहीं छोड़ा।

एक दूसरेको प्रेमपूर्वक और आत्मीयताके साथ अपनाकर और थोड़ा नुकसान उठाकर भी साथ रहनेमें ही श्रेय है। और साथ रहनेके लिए दूसरे पक्षके प्रति विशेष उदार रहना चाहिये, इतनीसी बात अगर दोनोंको सूझ जाय तो ही सच्चा उपाय हो सकता है।

साढ़े बारह बजे तक माथापच्ची करके हम विमानमें बैठे और डेढ़ बजे

दारेस्सलाम पहुंचे। रास्तेमें फिर समुद्रके रंगों और छोटे-बड़े द्वीपोंने हमारी आंखों-का स्वागत किया। जिन टापुओंका सिर समुद्रसे बहुत ऊंचा नहीं आता, उन टापुओं पर वनस्पति या मनुष्यकी आबादीकी गुंजाइश नहीं होती। ऐसे द्वीपोंमेंसे धीरे-धीरे ऊपर निकल आनेकी कोशिश करनेवाले कच्चे या बच्चे द्वीप कितने होंगे और लहरोंकी मारसे घिसते-घिसते पानीके नीचे डूब चुके जीर्ण और वृद्ध टापू कितने होंगे ?

गंगा या ब्रह्मपुत्र नदीके किनारे रेतके जो टापू समय-समय पर तैयार होते हैं, उन्हें बंगला भाषामें चर कहते हैं। समुद्रके चर नदीके चरोंसे ज्यादा स्थायी होते होंगे। समुद्रके रंगमें इस बार गुलाबी छटा अधिक थी और उसमें आकाशमें दौड़ने-वाले बादलोंकी छायाने धूपछांह जैसी शकल पैदा कर दी थी।

१४. जंगबारके विविध अनुभव

श्री अप्पासाहब कहने लगे, "झांझीबार अफ्रीकाकी संस्कारदात्री माता है। माता अब वृद्धा हो गई है। अब इसके पास पहलेकी-सी शक्ति नहीं रही। परन्तु इसी कारण हम उसकी संस्कारिताकी कद्र न करें तो ठीक नहीं।" झांझीबार (गुजरातियोंका जंगबार) हिन्दुस्तानके साथ प्राचीनकालसे सम्बद्ध है। इतिहासके शुरू होनेसे पहलेकी बात छोड़ दें; दो हजार वर्षसे जहाजोंका जो आवागमन जारी है, उसे भी छोड़ दें; परन्तु वास्को-डी-गामाके हिन्दुस्तान आनेसे पहलेका जंगबार और हिन्दुस्तानका व्यापारिक सम्बन्ध इतिहास-विदित है।

सन् १८३२ के आसपास मस्कतका सुलतान कुछ कच्छी भाटियोंको लेकर झांझीबारमें आकर बसा। तबसे यहां इस वंशका राज्य है। किसी समय झांझीबार का राज्य पूर्व अफ्रीकामें खूब दूर तक फैला हुआ था। आज सब अंग्रेजोंके अधीन है। इतना ही नहीं, खुद झांझीबारमें भी सुलतानका अधिकार नाममात्रका है। असली सत्ता ब्रिटिश रेजीडेण्टके हाथमें चली गई है।

झांझीबार आज लौंगके व्यापारके लिए मशहूर है। किसी समय अफ्रीकी लोगोंको पकड़ लाकर गुलामोंके रूपमें बेचनेके व्यापारका झांझीबार बड़ा केन्द्र था। पकड़कर लाये हुए गुलामोंमेंसे कितने ही मर जाते, कुछ भाग जाते और बाकी बाजारमें बेचे जाते थे। इस व्यापारके अवशेष ठेठ अभी तक रह गये थे। ब्रिटिश लोगोंका दावा है कि उन्होंने गुलामीका व्यापार मजबूतीके साथ बन्द न किया होता, तो अफ्रीकाकी कुछ जातियां अब तक नामशेष हो गई होतीं।

मनुष्यको गुलाम बनाकर घरके कामके लिए, खेती और बगीचेके लिए, और राजमजदूरके रूपमें रखनेकी प्रथा प्राचीन कालमें हरएक देशमें थी। हां, गुलामों-

के कष्टोंके मामलोंमें भिन्न-भिन्न देशोंमें फर्क था।

चाणक्यने अपने अर्थशास्त्रमें लिखा है कि आर्योंको दास बनाकर हरगिज नहीं रखा जा सकता--**न आर्यः दासभावं अर्हति**। आजकी दुनियाने मनुष्य-जातिके लिए लागू किया है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्यकी मेहनतसे गलत तौर पर लाभ उठाकर आड़े-टेढ़े ढंग पर उसे आज भी गुलामके रूपमें इस्तेमाल करता है। परन्तु उसे हम गुलामी नहीं कहते।

दारेस्सलामसे झांझीबार तक केवल ४६ मीलका समुद्री अंतर है। विमानसे अफ्रीकाका किनारा दीखना बन्द होनेसे पहले ही झांझीबार दीखने लगता है। उड़े और उतरे, इतनेमें झांझीबार आ जाता है। विमान कंपनीके व्यवस्थापकोंकी चालाकीके कारण बादमें आये हुए कुछ गोरोंको हमारे वायुयानमें जानेको जगह मिल गई और बादमें वे कहने लगे कि आप सब अपने सामानके साथ नहीं जा सकते। विमान इतना बोझा उठा नही सकता और जोखम तो उठाया ही नहीं जा सकता। थोड़ीसी झिकझिकके बाद हमने भलमनसाहत की और तय किया कि हममेंसे एक आदमी दोपहरके वायुयानमें आ जाय। हवाई जहाजवालोंकी चालाकी समय पर पूरी तरह ध्यानमें आ गई होती, तो हम ऐसी भलमनसाहत न दिखाते। शरद पंड्या भी और किसीके विमानमें आ सके। इस प्रकार हमारा दल तीन टुकड़ोंमें झांझीबार पहुंचा। रहनेके लिए हम दो घरोंमें बंट गये थे। श्री अप्पासाहब और नलिनीबहन अपने पुराने मित्र श्री सिंधवाके यहां रहने चले गये; जबकि बाकी सब श्री मूलजी वेलजी कंपनीके श्री छगनलालभाईके यहां ठहरे। सात सात मेहमानोंको एक साथ घरमें रखना और उनको सब सुविधाएं देना, यह हमारी बहनें ही कर सकती हैं। श्रीमती कान्ताबहन और उनकी देवरानी लीलम-बहन ऐसी लगती थी मानो सगी बहनें ही हों। दोनोंने बड़े प्रेमसे हमारा आतिथ्य किया। घरके बच्चोंको इस तरह आतिथ्यकी तालीम मिलनेसे हरएक भारतीय कुटंबमें इस परंपराकी सुगंध कायम रहती है।

झांझीबार एक स्वतंत्र दुनिया है। शहरका मुख्य भाग सौराष्ट्रके घनी आबादीवाले किसी पुराने शहर जैसा है। बनारसकी टेढीमेढ़ी तंग गलियोंके साथ उसकी सहज तुलना हो सकती है। आजकलकी मोटरें उसमें कैसे जायं? कुछ गलियोंमें घरोंकी दीवारोंके कोने जरा जरा काटकर ऐसी सुविधा की गई है कि छोटी मोटरें निकल सकें। बनारसकी गलियोंमें चलते हुए अकसर आश्चर्य होता था कि इतना टेढ़ामेढ़ापन मनुष्य कैसे पैदा कर सका होगा? यहां भी यही भावना पैदा हुई।

जहां जायं वहां स्थानदेवता और वास्तुदेवताके दर्शन तो करने ही चाहिये। इस हिसाबसे हम यहांके सुलतानसे मिलने गये। रेजीडेण्टसे भी मिल आये। हर जगह सभ्यतानुसार कहनेकी बातें कह दीं। सुलतान अधेड़ उम्रके संस्कारी मजेदार

आदमी हैं। जरा-जरा हिन्दुस्तानी बोल लेते हैं। उनके घरमें स्थानीय कलाकी कुछ वस्तुएं और कुछ ऐतिहासिक तसवीरें देखनेमें आईं। उनकी सुलताना यूरोपियन पोशाकमें थी। मुझे तो एशियाई पहनावा ही ज्यादा रुआवदार और कलायुक्त लगता है। मुलतानके यहांकी सभ्यता प्रभावशाली थी।

रेजीडेण्ट साहबके यहां हमने शिक्षाके बारेमें बातें की। उनके बंगलेसे समुद्रके दर्शन बहुत ही आकर्षक थे। स्थानीय कारीगरीकी बड़ी-बड़ी वस्तुएं यहां भी रखी हुई थीं।

झांझीबारमें हमारा कार्यक्रम भरा हुआ होने पर भी आनंददायक था। एक दिन हम लौंगका कारखाना देखने गये। कुछ लोगोंने कहा था कि बाजारमें जो लौंग मिलती हैं, वे तेल निकाल लेनेके बाद बची हुई छूंछ मात्र हैं। मैं इसे मान नहीं सका था। लौंगका तीखापन और उसकी खुशबू तेल निकलनेके बाद टिक ही नहीं सकती। झांझीबारमें हमने देखा कि हम जो लौंग खाते हैं, वह असली लौंगके फूलकी लाल कली होती है। इस कलीके नीचेके डंठल लौंग जैसे ही तीखे होते हैं। कलियां तोड़ लेनेके बाद नीचेके डंठल इकट्ठे करके उन्हें उबाल लिया जाता है और उसमेंसे लौंगका तेल या अर्क तैयार करते हैं। तेल निकाल लेनेके बाद जो छूंछ रह जाती है, वह उस कारखानेमें ही ईंधनके तौर पर काममें ली जाती है। मैं यह नहीं समझ सका कि खादके रूपमें इसका उपयोग क्यों नहीं होता। इस छूंछका ढेर करके कहां रखा जाय? और खादके रूपमें कोई ले जाय, तो ईंधनसे सस्ता पड़े या महंगा? यही इसमें मुख्य सवाल है।

पहले दिन हम वहांका कन्या विद्यालय देखने गये पुराने जमानेमें स्त्रिया अपने लिए काममें लिये जानेवाले 'अबला' और 'भीरु' वगैरा विशेषणोंसे खुश होतीं, किन्तु आज आप इस आदर्शको अपनानेके लिए तैयार है? इस किस्मका सवाल पूछकर मैंने विद्यालयकी कन्याओंके सामने नये जमानेकी बाते कही। हमारी लड़कियां नये विचार समझने और स्वीकार करनेमें बड़ी तेज होती हैं। परन्तु सामाजिक रिवाज, रूढ़ि और बंधन देखते-देखते उनका अचार बना डालते हैं। हमारे लोग शिक्षाका महत्त्व समझने लगे हैं, इसलिए जहां तहां कन्या विद्यालय स्थापित हो रहे हैं। परन्तु यह विचार कोई नही करता कि इस शिक्षा द्वारा कैसी स्त्री तैयार होनी चाहिये। हमारे समाजको कैसी स्त्री चाहिये, यह कोई नही कह सकता। यूरोपियन लोगोंमे जो समाज-सेविकाएं हम देखते है और वे जैसा तेजस्वी जीवन बिताती हैं, उसे देखकर हम उनका आदरपूर्वक गुणगान करते हैं। परन्तु वैसी स्त्रियां हमारे यहां तैयार करनेके लिए जैसा वातावरण चाहिये, वैसा वातावरण पैदा करनेमें हमारा विश्वास नहीं!

झांझीबारमें अरब लोगोंका असर अधिकसे अधिक पाया जाता है। यह पता नहीं कि ईरानके तरफके लोग यहां कब आये होंगे। परंतु आज जो शीराजी कहलाते

हैं, वे तो बिलकुल अफ्रीकियों जैसे ही हो गये हैं। लोग स्वाहिली बोलते हैं। मूल निवासी अफ्रीकी लोगोंको और इन शीराजी लोगोंकी भाषा और रहन-सहन एकसी हो जाने पर भी मुझ पर यह असर पड़ा कि इनके बीच पूरी तरह आत्मीयता पैदा नहीं हुई। खास व्यक्तित्व न हो और लोग एक-दूसरेमें घुल मिल जायं तब क्या परिणाम हो, यह समाजशास्त्रका एक गंभीर प्रश्न है। इस बारेमें मनमें विचार बहुत आते हैं, परन्तु उनमेंसे अभी कोई ऐसी चीज नहीं निकली, जो समाजके सामने रखी जा सके।

यह हुई शीराजी कहनेवाले लोगोंके बारेमें बात। यहांके अरब लोगोंकी स्थिति अफ्रीकी लोगोंके जैसी नहीं है। हिन्दुस्तानी लोगोंकी तरह वे भी यहां व्यापार करते हैं। कारीगर भी हैं। अंग्रेजी शिक्षा पाकर उजले रोजगार भी करते हैं। उनके पास राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा कितनी टिकी है, यह थोड़ेसे परिचयमें हमें क्या मालूम हो सकता है? पुराना वैभव अब रहा नहीं और नई महत्त्वाकांक्षाका अभी ठीक-ठीक उदय नहीं हुआ—ऐसी हालतमें ये लोग हैं। एशियनके रूपमें अरब लोग भारतीयोंमें मिल सकते हैं। हिन्दुस्तानके मुसलमान आसानीसे उनके साथ एकरूप हो सकते हैं। इससे जो नये संस्कार और नये बल पैदा हो जायं सो सही। इस मुल्कके करोड़ों आदिवासियोंकी सेवा करनेका एकमात्र आदर्श रखनेवाले लोगोंके लिए बहुत चिंता करनेकी कोई बात नहीं। जहां सेवा करके ही जीवन कृतार्थ करना है, वहां जीवन आसान और सरल बन जाता है। हरएक समाज मनमें संकुचित महत्त्वाकांक्षा रखे और उसकी पूर्तिके लिए षड्यंत्र रचे और जबरदस्ती करे, तो कठिनाइओंका अन्त हो ही नहीं सकता। यहांके कुछ अरब नेताओंके साथ बहुत बातें हुईं। उनके सामने गांधीजीकी सर्व-धर्म-समभाव और जनताकी जागृति के लिए गांधीजी द्वारा प्रसारित रचनात्मक कार्यक्रमकी बातें हमने कीं। इनसे वे प्रभावित हुए।

पश्चिमी संस्कृतिसे अगर हम विज्ञान, समाजसेवा और संगठन-विद्या ले लें और उसका राजनीतिक आदर्श छोड़ दें—भोग और ऐश्वर्यके लोभमें फंसकर नीतिके आदर्शको तिलांजलि दे देनेकी भूल न करें—तो ही हम दुनियाकी सच्ची सेवा करके शान्तिकी स्थापनाके लिए जरूरी वातावरण तैयार कर सकेंगे।

झांझीबार शहरमें अच्छे पानीकी जरा भी मुश्किल नहीं। शहरके पास ही एक जगह जमीनमें पानी इतना छलाछल भरा है कि जरा गड्ढा खोदा कि वहां पानी इकट्ठा होकर बहने लगता है। इस प्रकार अनेक झरने तैयार करके उनमेंका पानी एक जगह इकट्ठा कर लिया गया है। उस स्थानको चमचम कहते हैं। यहांका पानी पप करके सारे शहरको पहुंचाया जाता है। झांझीबारके समुद्र-द्वारमें जो जहाज आते हैं, उन्हें भी इसी खजानेसे ताजा पानी दिया जाता है। जब जहाज पानी लेने नहीं आते, तब फालतू पानी समुद्रमें छोड़ देना पड़ता है।

यहां इतना अधिक पानी आता कहांसे है, ऐसा प्रश्न मनमें उठना स्वाभाविक है।

यही मालूम होता है कि इस ओर बरसात खूब होती है, इसलिए बरसातका पानी जमीनकी अनुकूलताके कारण भीतर ही भीतर जमा होगा। परन्तु कल्पनाशील लोगोंको ऐसी उत्पत्ति कैसे जंचे ? वे कहते हैं कि अफ्रीका महाद्वीपमें यहांसे लगभग २५० मील दूर स्थित पर्वतराज किलिमांजारोका पानी जमीनके नीचेसे, और समुद्रके नीचेसे भी आकर यहां निकल आता है। पानी इतना अधिक अच्छा है कि वह किलिमांजारोसे ही आया हुआ है, यह माननेमें कल्पनाशक्तिको सन्तोष होता है।

झाझीबारमें नारियलके पेड़ बहुत हैं। नारियलके पेड़ोंकी आबादी ही यहां मुख्य मानी जाती है। यहांके कच्चे नारियलके पानीकी खूब प्रशंसा होती है। हमारे यहां कच्चे नारियलके डाब, अड़सर और शहालें वगैरा जैसे नाम हैं, वैसे यहां उसे मडाकू कहते हैं। यहांके लोगोंमें एक मीठी मान्यता है कि जिसने एक बार यहांके मडाकूका पानी पी लिया, उसे इसे फिर चखनेके लिए झांझीबार दुबारा आना ही पड़ता है। झाझीबारकी प्राकृतिक शोभा और यहांके लोगोंके आतिथ्यका विचार करते हुए यहांके मडाकूका ऐसा असर हो, तो इस पर किसीको आपत्ति नहीं हो सकती।

मस्कतके मुलतानके साथ जो भाटिया लोग यहां आये, उनकी निष्ठा और होशियारी पर सुलतानका इतना विश्वास था कि राज्य-व्यवस्थाके अधिकांश विभाग उन्हींको सौंपे गये थे। इस डरसे कि हिन्दू धर्मकी रूढ़ियोंका यहां कैसे पालन होगा, ये भाटिया लोग अपने कुटुम्ब-कबीले यहां नही लाते थे। सुलतानने उन्हे बहुत समझाया कि "आपके धर्मपालनकी सारी सुविधाएं मैं कर दूंगा। पानीके सुभीतेके लिए कहिये तो चांदीके नल लगवा दू।" परन्तु हमारे 'धर्मनिष्ठ' लोगोन मुलतानकी बात नही मानी !

जब यहां अंग्रेजोंका जोर बढ़ा, तब वे यहांके भाटियोंको ही हिन्दू जातिके प्रतिनिधि मानते थे। आजकलके सार्वजनिक युगमें सब हिन्दू जातियोंने मिलकर हिन्दू-मंडलकी स्थापना की। इस कार्रवाईके प्रति भाटिया लोगोंमें अभी तक प्रमन्नता पैदा नहीं हुई है।

हिन्दू जातिका संगठन भी जहां इतना कठिन है, वहां युगधर्म पुकारकर कहता है कि, हिन्दुओंका नहीं, परन्तु तमाम हिन्दुस्तानियोंका संगठन करो।' और यहां अफ्रीकामें तो इससे भी आगे बढ़कर तमाम एशियावासियोंका संगठन करनेसे ही काम चलेगा। युगधर्म पहचानकर अद्यतन संगठन करनेके मामलेमें हम दो क्रांतियोंके बराबर पिछड़े हुए हैं।

हिन्दुस्तानके स्वतंत्र होते ही पंडित जवाहरलालजीने तुरन्त एशियाके तमाम

देशोंके प्रतिनिधियोंको बुलाकर उन्हें हिन्दुस्तानका संदेश सुनाया कि "हम स्वतंत्रता, शांति और बंधुत्वके लिए प्रतिज्ञाबद्ध हैं। जहां स्वतंत्रता नहीं वहां उसे स्थापित करनेकी कोशिश करनी चाहिये। जहां यह कोशिश जारी हो, वहां भारत-की सहानुभूति और नैतिक सहायता मुमुक्षु राष्ट्रके पक्षमें ही होगी; हम साम्राज्य-वादके विरोधी हैं हम अहिंसा द्वारा ससारमें सर्वत्र बंधुत्व स्थापित हुआ देखना चाहते हैं।"

खून बहाये विना हम अपनी आजादी जबरदस्त ब्रिटिश साम्राज्यसे ले सके, इस कारण दुनियामें हमारी प्रतिष्ठा बढ़ी है। एशियाके देश आशाकी नजरसे हमारी तरफ देख रहे हैं। ऐसी स्थितिमें जब एशियाके प्रतिनिधि दिल्लीमें इकट्ठे हुए, तब उन्होंने सुझाया कि हिन्दुस्तानको एशियाका नेतृत्व स्वीकार करना चाहिये। जवाबमें पंडित नेहरूने कहा कि घरके बड़े भाई या बुजुर्ग होनेकी हमारी आकांक्षा नहीं है। गांधीजीने भी घोषणा की कि हम संगठन करके एशियाकी राज-नीतिक इकाई स्थापित करना नहीं चाहते। सारी दुनिया ही हमारी इकाई है।

फिर भी एशियाके देश मदद मांगें, तो हम इनकार नही कर सकते। एशिया-वासी सब एक हैं, इस प्रकारकी भावना एशियासे बाहर जा बसे हुए एशिया-वासियोंके मनमें जाग्रत रहेगी ही। आज नही तो कल वह अवश्य उदय होगी। ऐसी स्थितिमें अफ्रीकामें रहनेवाले हम 'हिन्दू' या 'हिन्दुस्तानी' आदि संकुचित नाम धारण करें, इसके बजाय यही उचित होगा कि हम एशियाई या एशियन नाम धारण करें।

अफ्रीकामें बसनेवाले कबीले (ट्राइब्स) अनेक हैं। इनके बीच आज कोई राजनीतिक एकता सिद्ध नहीं हुई है। फिर भी 'अफ्रीकी' के समान नामकी महिमा से ही वे एक होने लगे हैं। यूरोपमें भी अनेक देश हैं, जो आपसमें लड़ते भी हैं। फिर भी संस्कृति और महत्त्वाकांक्षाकी दृष्टिसे उनका एक खास रवैया होनेके कारण वे यूरोपियन नामसे पुकारे जाते हैं। अब अफ्रीकन और यूरोपियन इन दो शब्दोंकी जोड़का हमारा नाम एशियन ही हो सकता है।

इसलिए आयंदा हमे अपने लोगोंका सगठन एशियन नामसे करना चाहिये। और उसमें हिन्दुस्तान, पाकिस्तान, गोआ आदि घरके भेद भूलकर अरबस्तान, सीलोन, ब्रह्मदेश, चीन, जापान आदि देशोंके जो कोई थोड़े या बहुत लोग अफ्रीका में बसते हों उन सबको भी अपने साथ लेना चाहिये। पाकिस्तानके प्रति सहानुभूति रखनेवाले भारतीय मुसलमानोंको राजी करनेकी खातिर नहीं, लेकिन हमारा स्वाभाविक विशाल नाम धारण करनेके लिए हम एशियन नामसे ही पहचाने जायं। अरब आदि हमारे सारे पड़ोसी इस नामके नीचे हमारे साथ चलनेको रजा-मंद होंगे। गोअन जैसे हिन्दुस्तानके निवासियोंकी भी, जो इस मुश्किलमें पड़े हैं कि वे किस नामसे पुकारे जायं, कठिनाई मिट जायगी।

एक बात मुझे स्पष्ट करनी चाहिये, क्योंकि मैं अपने विचार छिपाना नहीं चाहता। गोअन लोगोंको मैं सोलह आने हिन्दुस्तानी मानता हूं। वे खुद भी जानते हैं कि वे हिन्दुस्तानी ही हैं। उनमेंसे कुछ लोग धर्मसे ईसाई हो गये और पुर्तगाली लोगोंके कुछ रिवाज उन्होंने अपना लिये, इतने ही से यह बात नही हो गई कि वे हिन्दुस्तानी नही रहे। परन्तु आजकलके लोग सांस्कृतिक राष्ट्रीयता जैसी पवित्र वस्तुको भी ताकमें रखकर अपने क्षणिक स्वार्थका विचार करके कभी घोषणा करते है कि वे हिन्दुस्तानी हैं और कभी कहते हैं कि नही हैं। नौकरीका स्वार्थ, व्यापारमें मिलनेवाली सुविधाएं, राजनीतिक प्रतिष्ठा वगैराका विचार करके लोग पगड़ी बदलनेको तैयार हो जाते हैं। हिन्दुस्तान जब परतंत्र था और परतंत्र देशके नागरिकोंके रूपमें अफ्रीकामें हमारी हस्ती प्रतिष्ठा-हीन थी, तब कुछ भारतीय मुसलमान अपने अरब होनेका दावा करते थे और इस प्रकार स्वतंत्र नागरिककी प्रतिष्ठा पाते थे!

मोजाबिक और आंगोलामें सफलता प्राप्तिकी दृष्टिसे कुछ गोअन लोग अपनेको हिन्दुस्तानी न बताकर पुर्तगाल निवासी बतानेमें लाभ देखते हैं। अगर कल भारत सरकार यह घोषणा कर दे कि जो पुर्तगालके निवासी हैं उन्हें हिन्दुस्तानमें विदेशी बनकर रहना पड़ेगा, उन्हें हिन्दुस्तानके नागरिककी हैसियतसे कोई हक नहीं मिलेंगे, तो मैं मानता हूं कि यहांके अधिकांश गोअन हिन्दुस्तान जाते ही ऐलान कर देंगे कि हम हमेशासे हिन्दुस्तानके ही निवासी हैं। बम्बई और मंगलोर जैसे शहरोंमें इतने अधिक गोअन रहते हैं और रुपया कमाकर गोआ भेजते हैं कि यह कमाई बन्द हो जाय, तो वे खुद तो मुश्किलमें पड़ ही जायंगे, परन्तु गोआकी सरकारको भी अपना कामकाज चलानेमें कठिनाई अनुभव होगी। ईसाई लोग ईसाई हैं, इससे किसीको इनकार नही। जहां पुर्तगालका राज्य है वहां पुर्तगालके कानून चलेंगे, यह भी जाहिर है। परन्तु इस बातको वे नही समझते कि अपनी हिन्दुस्तानी राष्ट्रीयताकी बात वे सुविधानुसार बदलते रहें, तो अपनी आत्मप्रतिष्ठा खो बैठते हैं।

पाकिस्तान हिन्दुस्तानका ही एक भौगोलिक अंश है। देश एक, संस्कृति एक और हित-संबंध एक। ऐसा होते हुए भी अलग हो जानेमें स्वार्थ देखकर कुछ लोगोंने एक ढोंग चलाया; वह चल गया, परन्तु उससे भयंकर परिणाम पैदा हुए। जो हुआ सो हुआ। अब ऐसी बातोंका विरोध करनेमें सार नही। जो आदमी कहे कि, 'मैं हिन्दुस्तानी नहीं', उसे जबरदस्ती नही समझाया जा सकता कि, 'तू हिन्दुस्तानी ही है।' हिन्दुस्तानी होनेके लाभ स्पष्ट होंगे, तब वह अपने आप अपनेको हिन्दुस्तानी कहेगा। वह अपने आपको हिन्दुस्तानी न कहे तो इसमें हमें क्या हानि? दो घोड़ोंकी सवारी करनेकी नीति पर चलकर जो दोहरा लाभ उठाना चाहते हैं, उन्हें हम उदार बनकर लाभ उठाने दें तो अन्तमें हमें लाभ ही है। यह

लाभ अगर हम न देख सकते हों तो किसी दिन उन्हें कह दें कि 'दोनों तरहके लाभ आपको नही मिल सकते।' इससे अधिक हमारे हाथमें क्या है? अगर हममें दूर-दृष्टि हो तो हम देख सकेंगे कि लोगोंको दोहरा लाभ उठाने देनेमें हमारा सच्चा या विशेष नुकसान नही है। किसी दिन हमें इसमे लाभ ही होगा। और अगर न हो तो भी क्या हुआ? कोई मनुष्य स्वार्थसे प्रेरित होकर सुविधाके समय सत्य बोले और उससे लाभ उठाये, तो हम उसका इनकार क्यों करें? हिन्दुस्तानके मुसलमान हिन्दुस्तानीकी हैसियतसे भारत सरकारसे कुछ लाभ चाहेंगे और उठायेंगे। और साथ ही साथ पाकिस्तानके प्रति निष्ठा रखकर सतोष मानेगे। गोअन ईसाइयोंकी भी यही बात है। यहांके लोग मानते हैं कि गोअन ईसाई गोआमें सिर्फ ४५ प्रतिशत हैं। हिन्दू वहां ५२ फीसदीसे ज्यादा हैं।

सिक्ख लोगोंमें भी कुछ कहते हैं, 'हमारा धर्म अलग है, हमारा समाज अलग है, हम हिन्दू नहीं हैं।' मैं खुद मानता हूं कि सिक्ख धर्म हिन्दू धर्मका ही एक पंथ है। अंग्रेजोंके राज्यकालमें मुसलमानोंको जब ज्यादा अधिकार मिलने लगे और हिन्दू रहनेमें घाटा ही दिखाई दिया, तब सिक्ख लोगोंने घोषणा की कि, 'हम हिन्दू नहीं, हम अलग हैं।' उन्हें इस तरह कहने देनेमें हिन्दुओंको कोई हानि नहीं दिखाई दी। मुसलमान भी कोई एतराज नहीं कर सके। इस प्रकार सिक्ख, जो सौ फी सदी हिन्दू थे—और अब भी है—अलग हो गये। ऐसी हालतमें कोई सिक्ख जोर देकर कहे कि मैं हिन्दू नही, तो मैं जरा भी आपत्ति न करूं। कुछ सिक्ख कहने लगे हैं, 'धर्मसे हम अलग हैं, समाजके रूपमें हम एक हैं, हमारी राष्ट्रीयता हिन्दू—अथवा हिन्दुस्तानी है।'

मन्दिरोंके देव-द्रव्यको नये कानूनके शिकंजेमें बचानेके लिए चंद जैन भी कहने लगे हैं कि, 'धर्मकी हैसियतसे हम हिन्दू नही, हम अलग हैं।' ज्यों-ज्यों कानून बढ़ेंगे, त्यों त्यों धर्म, समाज, नागरिकता और राष्ट्रीयताके मामलोंमें यह खेल जारी रहेगा। कोई कहेगा: 'हम फलां हैं।' कोई कहेगा: 'हम नहीं हैं।' यह गड़बड़ी बढ़ते-बढ़ते अन्तमें धर्मोंका महत्त्व अपने आप नष्ट हो जायेगा। 'कोई व्यक्ति या समूह दो राष्ट्रोंके एक साथ नागरिक रहें तो हर्ज क्या?' ऐसा पूछनेवाले लोग पैदा होने लगे हैं। वे नही समझते हैं कि दोनों राष्ट्र स्थायी मित्र हों या सदाके लिए अहिंसाकी नीति स्वीकार करते हों, तो ही यह चीज बन सकती है। हिन्दुस्तान और पुर्तगालके बीच लड़ाई छिड़े और अनिवार्य फौजी भर्ती शुरू हो जाय, तब मनुष्य दोमेंसे एक ही देशका नागरिक रह सकता है। जब सब युद्ध मिट जायगे और सब जगह मित्रता या बन्धुत्व स्थापित हो जाएगा, तब मनुष्य विश्व-नागरिक बन सकेगा।

आज भी हर कोई मनुष्य विश्व-नारिक बन सकेगा—इस शर्त पर कि वह घोषणा करे कि, 'किसी भी देशके नागरिकका कोई विशेष अधिकार मुझे नही

चाहिये। जिम्मेदार मनुष्यकी हैसियतसे मैं अपने तमाम फर्ज अदा करूंगा। और अगर उनसे ज्यादा संकुचित फर्ज मुझ पर लादे जायंगे और वे मेरे विश्व-बन्धुत्वमें बाधक होंगे, तो मैं उन फर्जोंमें इनकार कर दूंगा और उससे पैदा होनेवाली तमाम सजाएं खुशीसे सहन करूंगा।'

आज मैं पाकिस्तानी लोगोंके साथ, हिन्दुस्तानके मुसलमानोंके साथ, सिक्ख लोगोंके साथ, गोअन या जैन लोगोंके साथ कोई झगड़ा नहीं करूंगा। मेरी इस नीतिसे मैं उन्हें विचार करनेवाले बना सकूंगा। झगड़ा करनेसे मेरी और उनकी दोनोंकी प्रगति रुक जायगी और तीसरे ही लोग इससे लाभ उठायेंगे। मैं दुनियाके सामने नाहक हंसीका पात्र क्यों बनूं? हम सब एशियन हैं, एशियन कहलायें, इसमें जिसे शरीक होना हो हो जाय; न होना वह न हो। समय आते सबको शामिल होना ही पड़ेगा। तब तक यही उत्तम नीति है कि हम धीरज रखें। और हम दूसरा कर भी क्या सकते हैं कि जिससे सार निकले?

जहां जायं वहांकी संस्थाएं देखनेका रिवाज होता ही है। झांझीबारमें एक अफ्रीकन वेलफेयर सेन्टर हमने देखा। उसकी इमारत अच्छी है। लोग उससे कितना लाभ उठाते हैं सो भगवान जाने। 'जनताके हितमें कुछ पैसा खर्च कर देनेसे हमारा अच्छापन दिखेगा'—इस वृत्तिसे उदासीन सरकारकी तरफसे ऐसे काम किये जाते हैं। वहां एक दवाखाना (क्लिनिक) हमने देखा। कोई डॉक्टर न मिलनेके कारण वह बंद पड़ा है! हिन्दुस्तानी डॉक्टरोंको सरकार यूरोपियन डॉक्टरों जितना वेतन या अधिकार नहीं देती। कोई डिग्रियां लेकर पास हुआ हो और सरकारको वह डिग्री जंचती न हो, तो ऐसे आदमियोंको सरकार धंधा भी नहीं करने देती। मराठी-में एक कहावत है, 'मां घरमें खिलाये नहीं और पिता बाहर जाने दे नहीं'—तो ऐसी हालतमें बालक करे क्या? यही हालत यहांकी जनताकी हो गई है। सरकार-को इस स्थितिसे शर्म नहीं आती और जनताको वह असह्य नहीं लगती, यह देख-कर मनमें बड़ा आश्चर्य और दुःख हुआ।

जब पास ही एक प्रसूतिका अस्पताल हमने देखा और यह नजर आया कि वह अच्छी तरह चल रहा है, तब वह दुःख हम कुछ भूल गये। इस प्रसूतिगृहमें एक चौंसठ वर्षकी बूढ़ी यूरोपियन नर्स काम करती है। मैंने मान लिया कि यह बुढ़िया किसी मिशनकी तरफसे काम करती होगी। मैंने उससे पूछा, "आप किस मिशनकी हैं?" उन्होंने कहा कि "मैं इस अस्पतालकी ही हूं।" इस वृद्धाके कार्यकी लोगोंमें कद्र है। यह अस्पताल बनाया एक-दो मुसलमानोंने और उसे चलाती है यहांकी हिन्दू, मुसलमान आदि सारी जनता। इस प्रकार मिलकर काम होता देखकर बड़ा आनन्द हुआ।

एक रातको हिन्दू-मंडलकी तरफसे व्यायामके प्रयोग हुए। प्रयोग अच्छे थे। हाथोंमें मशालें लेकर चलनेके खेल मजेके दिखाई देते हैं। ऐसा नहीं लगता कि

उनमें व्यायामका कोई विशेष तत्त्व हो, परन्तु नाचती हुई ज्वाला देखनेका आनंद तो है ही।

दारेस्सलाम और झांझीबार दोनोंमें मेरे लिए एक बड़ी दिक्कत पैदा हो गई। मेरे बनावटी दांतोंकी बत्तीसीमें (सच कहूं तो ऊपरकी षोडशीमें) एक दरार पड़ गई। वह धीरे-धीरे बढ़ने लगी। खाते समय होनेवाली कठिनाई सह ली जाती, परन्तु खाते या बोलते समय दरारकी नोकसे जीभ कट जाती थी। यह दु:ख हदसे ज्यादा हो गया। ऐसे दत्तक दांतोंकी मददके बगैर खाया नहीं जाता और सभाओंमें साफ तौर पर बोला नहीं जाता। बोलने लगें तो कष्ट हो, और यहां देश देखनेके सिवा हमारा मुख्य काम तो खाना और बोलना ही था। भोजनवीर और भाषण-वीर इस तरह घायल हो जायं, तब जंगमें क्या करें? अंतमें जगबारके एक भले गोरे दंत-वैद्यने छुट्टीके दिन होते हुए भी मेरी बत्तीसी ठीक कर देनेका काम हाथमें ले लिया और कुछ ही घंटोंमें वह ठीक कर दी गई।

इतना कष्ट उठानेके बाद श्री गांधीजीकी सलाहका महत्त्व मनमें बैठा कि समझदार आदमीको एक फालतू चश्मा और दांतकी फालतू बत्तीसी हमेशा साथ रखनी चाहिये।

झाझीबारके टापूकी बावन मीलकी लंबाई और २४ मीलकी चौड़ाईमें आकर्षक दृश्योंकी इतनी बहुतायत है कि उसे सौंदर्यका संग्रहालय कह सकते हैं। एक दिन हम कूम्बाका समुद्रतट देखने गये। बड़े-बड़े शंख, कौड़ियां और सीप देखकर हम आश्चर्यचकित हो गये। प्राणी-सृष्टिमें दो विभाग दिखाई देते हैं। मनुष्य और पशु-पक्षीकी हड्डियां उनके शरीरके अन्दर होती हैं और मांस ऊपर चिपटा रहता है; जब कि सीप और शंखोंमें मांस अंदर होता है और हड्डियां चमडी और घरके स्थान पर होती हैं। कछुएका भी यही हाल है।

वनस्पति-सृष्टिमें भी क्या ऐसा नहीं है? छुहारेमें हड्डीके स्थान पर माना जानेवाला बीज पेटमें होता है और खानेका स्वादिष्ट भाग बाहर होता है। आमका भी यही हाल है। जब कि बादाम और अखरोट वगैरा फलोंमें मींगी अन्दर होती है और उसे सुरक्षित रखनेवाला कवच बाहर होता है। नारियलका हाल इससे भी अलग है। उसका मगज या खोपरा सबसे अन्दर होता है। टोकसी उसके ऊपर और टोकसीकी रक्षाके लिए सबसे ऊपर जटा होती है। ऊंचे पेड़ परसे फल गिर जाय तो टोकसी (खोपड़ी) के टुकड़े-टुकड़े ही हो जायं। उसकी रक्षाके लिए कुदरतने जटाके रेशोंकी गद्दी बना दी है!

इस ओरके समुद्र-तटके पत्थर विचित्र प्रकारके होते हैं और लहरें इन पत्थरों पर प्रहार करके उन्हें अनेक चित्र-विचित्र आकार दे देती हैं। देखकर मनमें खयाल आता है कि लहरोंकी इस कारीगरीकी कद्र करें या इनके धीरजकी?

झांझीबारमें एक गुफा है। उसके भीतर पुराने जमानेमें पकड़ कर लाये गये

गुलाम रखे जाते थे। हम आम या आलूका ढेर लगाते हैं और उसे बेचनेसे पहले जो सड़ जाएं उन्हें फेंक देते हैं और फेंकते समय कहते हैं कि 'बहुत नुकसान हो गया', यहां रखे गये गुलामोंकी स्थिति इसी तरहकी थी। उनकी रहन-सहनकी हालतमें सुधार कौन करे? जानवरोंसे भी खराब हालतमें उन्हें रखा जाता था। बस, जो मर गये उन्हें फेंक दिया और उनकी कीमत दूसरे जीते रहनेवालों पर चढ़ा दी; हो गया।

झांझीबारका म्यूजियम दो इमारतोंमें बंटा हुआ है। बनानेवालेन इस पर बड़ी मेहनत की है। लिविंग्स्टन जैसे पादरी संशोधकोंके इतिहासके साधन यहां मिलते हैं। मनुष्य-सृष्टि, प्राणी-सृष्टि और समुद्र-सृष्टि तीनोंके अवशेष यहां मिलते हैं। तीनोंके जीवनक्रमके अध्ययनके साधन यहा उपलब्ध हैं। परन्तु यह नहीं लगता कि इन म्यूज़ियमोंको जीवित अर्थात् अद्यतन रखनेकी कोई परवाह करता हो। आज ऐसे म्यूजियमोंको म्यूजियम न कहकर म्यूजियमोंके ममी कहना चाहिये। हिन्दुस्तानके अधिकांश म्यूजियम इसी प्रकार ममीका रूप धारण करके पड़े हैं। हमारा पुराना साहित्य, हमारे धर्म, कई रीति-रिवाज और हमारी संस्कृतिके कुछ अंग कभीसे मृत बनकर नष्ट होनेके किनारे खड़े हैं। जब तक रूढ़िवादियोंका आग्रह कायम था, तब तक ये तमाम चीजें ममीके रूपमें भी सुरक्षित रहती थी! अब उतनी सुरक्षितता भी नही रही। बहुतसी चीजें गिरती जा रही हैं, सड़ती जा रही है या मिटती जा रही है। इतनी ही आशा रखें कि अब उनका खादके रूपमें उपयोग हो सकता है।

पासका पैम्बा द्वीप झांझीबारका उपनगर कहा जा सकता है। दक्षिणके तरफ-का माफिया बहुत दूर है, इसलिए झांझीबारके जीवन पर उसका कोई असर नही। समुद्रका किनारा, इस किनारे पर स्थित शाम्बे (बाड़ियां) और इन बाड़ियोंमें रहने-वाले हरएक वंशके लोग सब मिलकर झांझीबारकी शोभा बढ़ाते हैं। और लौंगके पेड़ उस शोभामें वृद्धि करके सारे टापूको सुगंधित करते हैं।

एक दिन शामको दिनभरके कार्यक्रमोंकी थकावट मिटानेके लिए हम समुद्रके किनारे गये। वहां एक भव्य राजमहल खंडहर होकर पड़ा है उसे मरूबी महल कहते हैं। भव्य मकानोंके खंडहर भी भव्य दिखाई देते है। और जब इन खंडहरोंके बीचमें वृक्ष और लताएं उग आती हैं और इन खंडहरोंकी रक्षा करनेका प्रयत्न करती हैं, तब उनकी शोभा इतिहासके पठन जैसी ही आकर्षक होती है। इस खंडहरके आसपास योजनापूर्वक लगाये गये पुराने पेड़ और उनके बीचमें अपने आप उगे हुए दूसरे पेड़ सारे वायुमंडलकी गंभीरतामें वृद्धि कर रहे थे। अमराई हो या नारियलकी बाड़ी हो, अपने-अपने परिपक्व वातावरणका मनुष्यके हृदय पर प्रभाव डाले बगैर नहीं रहती। इस स्थानको देखनेके लिए आये हुए हमारे जैसे और लोग भी वहां मिले। हमें पहचाननेवाले होनेके कारण उन्होने बातें छेड़ी।

हमें महसूस हुआ कि प्रकाश और अंधकारके बीच गंभीर और पवित्र बने हुए इस जल और स्थलके बीचके स्थानकी कद्र प्रार्थनासे ही हो सकती है। हम समुद्रके किनारे जाकर बैठ गये। सूर्यास्तके बादका प्रकाश मिट रहा था। लाल संध्या बिदा ले रही थी। हमारी प्रार्थना शुरू हुई। प्रार्थनाके अंतमें बहनोंने भावपूर्ण भजन गाये। हमें यह देखकर विशेष आनन्द हुआ कि हमारी प्रार्थनाके साथ ताल देनेके लिए किनारेके सात दीपस्तंभ अपनी सफेद और लाल रोशनी झिलमिल झलका रहे थे। प्रार्थनाका असर हृदय पर गंभीर हुआ और समुद्रकी हवाके कारण वह वहां अंकित भी हो गया।

किसी भी स्थान पर दो-चार दिन रहकर अधिकसे अधिक प्राप्त किया हो, तो जिस घरके लोगोंके आतिथ्यके कारण यह सब कुछ आनन्दपूर्वक हो सका, उन लोगों—बच्चों और बड़ों दोनों—से बिदा लेते समय बुरा लगता है। परन्तु ये प्रसंग भी रोजमर्राके हो जानेके कारण मनका विषाद हंसकर निकाल देनेकी कला भी आ जाती है। इन सब लोगोंके साथ पत्रव्यवहार रखनेको जी तो बहुत चाहता है परन्तु यह हो कैसे? अकसर पुराने दिनोंकी याद करते समय बिजलीकी चमककी तरह अनेक व्यक्तियोंका स्मरण ताजा हो आता है और मनमें जिज्ञासा उठती है कि क्या भिन्न जीवन-प्रवाहवाले वे सब लोग भी हमें इसी तरह कभी-कभी याद करते होंगे?

१५. मोरोगोरो

हवाई अड्डे पर सारा झांझीबार उलट पड़ा था। इतनी बड़ी संख्याके लोगोंके साथ बातें करनेके प्रयत्नमें कुछ लोगोंके साथ बातें न हो सकीं और परिणामस्वरूप मनमें विषाद ही रहा। वायुयानमें हम घरके ही नौ जने थे। इसलिए सारा वातावरण विशेष रूपसे घरके जैसा हो गया। छोटासा सफर। हरएक खिड़कीमेंसे दिखाई देनेवाली सुन्दरता देखनेके लिए एक दूसरेको बुलाते-बुलाते समय पूरा हो गया। और हम फिर वापस घर, यानी जयंतीभाईके घर, पहुंच गये। दो दिन वहां रहकर और सारे कार्यक्रम बाकायदा पूरे करके बिदाका वही अनुभव किया; और १५ जूनको रातकी गाड़ीसे रवाना हुए। इस बारकी यात्रा किनारे-किनारे न थी, परन्तु एकदम अफ्रीका महाद्वीपके पेटमें घुसनेकी थी।

दारस्सलामसे मोरोगोरो और वहांसे डोडोमा तकका सफर रेल द्वारा पश्चिमसे पूर्वकी तरफ हुआ। फिर वहांसे मोटरके रास्ते कई तरहके नये-नये अनुभव करते करते हम उत्तरकी तरफ जाकर ज्वालामुखीके मुंह ङ्गोरोंगोरो गये। वहासे आगे मोशी अरूशाके पासके किलिमांजारो और मेरुके उत्तुंग शिखरोंकी एक प्रकारसे

प्रदक्षिणा करके, अम्बोसेलीके सूखे हुए तालाबके आसपासके अभयारण्यमें रहनेवाले वन्य श्वापदोंके साथ एक रात बिताकर उनके दर्शनसे धन्य होकर उत्तरमें वापस नैरोबी जा पहुंचे।

दारेस्सलामसे श्री डी० के० पटेल साथ आये। हमारे ट्रेड कमिश्नर (वाणिज्य दूत) श्री शान्तिलाल पटेल भी साथ थे। इस ओरका प्राकृतिक सौंदर्य बिलकुल अलग ही था। और जमीनकी पैदावार भी दूसरी ही थी। तरह-तरहके पहाड़ देखते-देखते सुबहके साढ़े छः बजे मोरोगोरो पहुंचे। श्री शिवाभाई पटेलके यहां डेरा था।

मोरोगोरोके पहाड़ अबरकके बने हुए हैं। इस पहाड़में श्रीमती विलिस नामकी एक यूरोपियन महिलाने एक होटल खोल रखा था। मानो मनुष्यके लिए बनाया गया नीड़! पास ही मोरोगोरो नदीका उद्गम है। वहांसे आगेकी घाटियां और उसके बादके मैदानका विस्तार अच्छा मालूम होता था। महिला इतनी होशियार है कि कुछ गोरे यहांकी स्वास्थ्यप्रद हवा और उनकी महत्त्वपूर्ण सेवासे लाभ उठानेके लिए अपने छोटेसे छोटे बच्चोंको भी कुछ समयके लिए यहां छोड़ जाते हैं।

नये ही बने हुए सिनेमाघरमें मोरोगोरोके लोगोंके सामने हमारे भाषण हुए।

यहांसे हम ३२ मील पर मगोले हो आये। जिस चीजको देखनेके लिए हम तरस रहे थे, वह चीज हमें वहां मिली। दुकान चलानेके लिए नहीं, किंतु बाकायदा खेती करनेके लिए कुछ होशियार गुजराती भाई यहां आकर बस गये हैं। ये लोग यहां ५००-५०० एकड़के ३२ खेतोमें सहयोगी ढंग पर खेती कर रहे हैं। इस प्रकार हिन्दुस्तानियों और अफ्रीकियोंके बीच जो जीवन-विनिमय होता है, वह दोनोंके लिए सचमुच पोषक हो सकता है। हमारे इन किसानोंने कितनी होशियारीसे इस कामको जारी रखा है! सरकारी नीतिके कारण उनकी कठिनाई कैसे बढ़ गई है, भारत सरकार और भारतके रुईके व्यापारी जरासी राहत दें तो कितनी बढ़िया मदद हो सकती है—ये सब बातें तफसीलसे प्रमाण और उदाहरणों सहित और जोशके साथ समझानेका काम श्री जेठाभाई पटेलने किया। श्री जेठाभाईने जीवनकी धूपछांह बहुत देखी है और सब तरहसे मंजे हुए आदमी हैं।

मोरोगोरोके पास हमने एक सुन्दर नर्सरी देखी—बच्चोंकी नहीं, किन्तु फल-फूलवाले पौधोंकी। इस प्रकार पहाड़में घूमनेमें जो आनन्द आता है, उसे अनुभवी ही जान सकता है।

मोरोगोरो छोड़ते-छोड़ते वहांके महाराष्ट्री डॉक्टर म्हैसकरके यहा हमने फलाहार किया। कोई डॉक्टर मिले तो उस देश और खास तौर पर उस स्थानकी जनताके बारेमें, उसके बीच फैले हुए रोगोंके विषयमें और साधारण जनताके जीवट ('वैटेलिटी') के बारेम मैं पूछे बिना नहीं रहता। ऊपर-ऊपरसे अच्छे लगनेवाले

अनेक समाजोंके बारेमें भीतरी बातें ज्ञात होती हैं, इससे कभी-कभी दुःख होता है जरूर परन्तु समाजके निरीक्षण और अध्ययनके लिए यह सारी चीज कीमती होती है। ऐसी जानकारी इकट्ठी करते समय किसी भी व्यक्तिके बाबत न पूछने-कहनेका धर्म दोनों ओरसे अच्छी तरह पाला जाता है। हरएक डांक्टर अपने बीमारोंकी बातें गुप्त रखनेको बंधा होता है। कुछ डॉक्टर यह चीज नही जानते। तब उन्हें उनके इस धर्मका भान कराना पड़ता है। डॉ० म्हैसकर जिम्मेदार आदमी दिखाई दिये, इसलिए उनके साथ उचित मर्यादामें रहकर मैं बहुतसी बातें जान सका।

तारीख १७ की शामको हमने मोरोगोरो छोड़ा। आसपासके पहाड़ हमारे साथ हमें पहुंचाने दूर तक आये थे और उनके सिर पर सिंहकी तरह छलांग मारता हुआ चन्द्रमा भी हिरणको पेटमें रखकर हम पर नजर रखता था।

१६. डोडोमा

रेलगाड़ीको क्या है? आधी रातके बाद साढ़े तीन बजे डोडोमा आकर खड़ी हो गई! ऐसे समय हम गाड़ीसे उतरें और गांवके लोग आकर हमारा सत्कार करें, ऐसी व्यवस्था राक्षसोंको तो क्या, भूतोंको भी मंजूर न हो। इसलिए हमने रेलवालोंसे इन्तजाम कर रखा था कि हमारा डिब्बा यही तोड़कर गाड़ी चली जाय। परन्तु इतनी सुविधा हासिल करनेके लिए हमें पहले दर्जेका टिकट होने पर भी दूसरे दर्जेमें सफर करना पड़ा। उसमें सुविधाएं कम नही थी। प्रतिष्ठा कम हो जाने पर हमें एतराज नही था। सवेरे सात बजे श्री दारा कीका, उनकी पत्नी शहरबानू और कुछ नगरनिवासी हमको लेने आये। हममेंसे एक दल श्री दारा कीकाके यहां रहा। बाकीके हम, सब तरह सुभीतेवाली डोडोमा रेलवे होटलमें रहे। हां, खर्चकी दृष्टिसे हम भी ग्रामवासियोंके ही मेहमान थे।

हिन्दुस्तानमें क्या और यहां अफ्रीकामें क्या, पारसी जाति संख्यामें छोटी, लगभग नगण्य होने पर भी केवल अपनी भलाई, चतुराई और सर्व-समाजितासे एकदम निखर आती है और अपनी सुगंध फैलाती है। उसमें केवल व्यापारीकी दूरंदेशी नही होती; इन्सानियतका भी बहुत बड़ा हिस्सा होता है। पारसी लोग देहातमें रहते हों, शराबकी दुकान चलाते हों और काफी मुनाफा कमाते हों, तो भी आसपास किसीका दुःख देखते ही तुरन्त पिघलकर मदद करने अवश्य दौड़ जायंगे।

कुछ लोग रुपया कमाते हैं, सो केवल पूजी बनानेके लिए, जमा करके रखनेके लिए और पृथ्वीमाताका दिया हुआ धन उसीके पेटमें फिर गाड़ देनेके लिए; कुछ

लोग कमाते हैं ऐश-आराम, मौज-शौक और अशोभनीय व्यसनोंमें उड़ा देनेके लिए; कुछ कमाते हैं अपने कुटुम्बियों और बहुत हुआ तो जाति वालोंको हर प्रकारकी मदद देनेके लिए; ऐसे लोग तो बिरले ही होते हैं जो जाति-पांति, धर्म या देशका कोई भेद रखे बिना, जहां भी दुःख या कठिनाई हो वहीं उपयोगी बननेके लिए धन कमाते हैं। पारसी जाति आराममें रहनेमें विश्वास करती है। अपनी जातिके गरीबोंको दान भी काफी और व्यवस्थित रूपमें देती है परन्तु यहीं न रुककर वह दूसरे धर्मों, दूसरी जातियों और दूसरे देशोंके लोगोंको भी दानके समय भूलती नहीं। इसीलिए महात्मा गांधीने पारसियोंको 'परोपकारी पारसी' कहा है।

हिन्दुस्तानमें पारसियोंने एक और तरहसे भी अपना स्थान सुशोभित किया है। वे हिन्दू और मुसलमान दोनोंमें आजादीसे घुलमिल सकते हैं और इस तरह कभी दोनोंके बीच प्रेम-शृंखलाकी कड़ी बन जाते हैं। खाने-पीनेमें वे मुसलमानोंके साथ छूटसे शरीक हो सकते हैं। और धार्मिक भावना और तत्त्वज्ञानकी खोज इन दो बातोंमें वे हिन्दुओंमे अनेक प्रकारसे एकरूप हो सकते है। ईसा मसीहके उपदेश और मिशनारियोंके कार्यकी भी वे कदर करते हैं और कुशल व्यापारी होनेके कारण हरएक सरकारके साथ मीठा संबंध भी रखते हैं।

शिक्षाका महत्त्व अच्छी तरहसे जाननेके कारण जहां व्यावहारिक शिक्षाका सवाल आता है, वहां पारसियोंका कदम आगे ही रहता है। चूंकि ये लोग मानते हैं कि इहलोकका जीवन सुखी बनाया जाय और मनुष्य-मनुष्यके बीचका संबंध मिठासभरा बनाया जाय, इसलिए पारसियोंका जीवन हिन्दुस्तानके लोगोंको कभी खटका नहीं। सर्व-समाजिताके युगधर्ममें पारसियोंका जीवन उपयोगी और शोभा-युक्त है।

ऐसी जातिको हरएक सामाजिक अवसर पर अपनाना हमारा फर्ज है। अगर हिन्दू संकीर्ण वृति रखकर पारसियोंको या ईसाइयोंको अपनानेमें संकोच रखेंगे, तो वे साबित कर देंगे कि उनके विरुद्ध मुसलमानोंके जो आक्षेप है वे सच ही हैं।

ऊपरकी सब बातें सिर्फ इसीलिए लिखनेको प्रेरित नही हुआ हूं कि डोडोमामें एक सज्जन पारसी परिवारके साथ परिचय हुआ किन्तु उससे भिन्न कारण है। वह इस प्रकरणमें यथास्थान आयेगा।

श्री दारा कीकाके यहां बढ़िया नाश्ता करके हम डोडोमाका खनिज संग्रहालय—जियोलॉजिकल म्यूजियम देखने गये। यह संग्रहालय कई प्रकारसे याददाश्त में रखने लायक है। अब तक मैंने जितने संग्रहालय देखे, उनमेंसे कुछ तो इस तरहके थे, जो शुरूके उत्साहमें जितने बन गये सो बन गये और बादमें उनमें कोई वृद्धि नही हुई। इन्हें मैंने ममी-म्यूजियम नाम दिया है (यानी जिनके प्रति उत्साह मर गया है, परन्तु जिनका कलेवर ज्योका त्यों कायम है।) दूसरे कुछ म्यूजियम समय-समय पर वृद्धि द्वारा अद्यतन किये जाते हैं। परन्तु उनका कोई उपयोग

करता है या नहीं, इसके बारेमें व्यवस्थापक उदासीन होते हैं। यह खनिज संग्रहा-लय ऐसा था जिसका उपयोग ज्ञानकी उपासनाके लिए और साथ ही सरकार और जनताको जानकारी देनेके लिए व्यवस्थापक खुद ही करते थे।

टांगानिकामें खनिज संपत्ति बेशुमार है। हीरे और सोनेकी खानें तो हैं ही। किन्तु यह चीज सचमुच संपत्ति नहीं है, परन्तु संपत्तिके प्रतीकके रूपमें काममें ली जाती है। जिन खनिज पदार्थोंका व्यवहारमें अधिकसे अधिक उपयोग है, वे पदार्थ यहां इकट्ठा करके रखे गये हैं और उन पदार्थों पर कई प्रकारके प्रयोग भी हो रहे हैं। खनिज पदार्थोंको सान पर चढ़ाकर पॉलिश करना, तेजाबमें डालकर उनकी खूबियां जांचना, भट्टीमें पकाकर उनमें होनेवाले फेरबदल देखना हरएक पदार्थका पृथक्करण करके खोज निकालना कि उसमेंसे क्या-क्या मिल सकता है—वगैरा अनेक प्रकारके प्रयोग यहां हो रहे हैं। सी०आई०डी० विभागके पुलिसवाले जैसे अभियुक्तको धमकाते हैं, फुसलाते हैं, नशेमें चूर कर देते हैं या कई तरहसे तंग करते हैं और युक्ति-प्रयुक्तिसे उसका सब रहस्य जान लेते हैं, उसी तरह ये विज्ञानशास्त्री जड़ पदार्थों, वनस्पतियों और प्राणियोंके पीछे पड़े रहते हैं। यह लगन एक बार लगी कि जन्मभर उससे चिपटे ही रहते हैं। ऐसे लोगोंने ही मानव-जातिके ज्ञानमें कीमती वृद्धि की है और भौतिक उन्नतिको गति प्रदान की है। ऐसे प्रयोगों पर प्रयोगशालाओंके और दूसरे बहुतसे खर्च करने पड़ते हैं। जो जाति यह खर्च करनेको तैयार नहीं होती, वह किसी भी क्षेत्रमें आगे नहीं बढ़ सकती। इस म्यूजियममें किस-किस किस्मकी चीजें रखी गई हैं और उनमेंसे कौनसी वस्तुएं दुर्लभ हैं इसकी सूचियां देनेका यह स्थान नहीं है। हम लोगोंको अभी कितना करना बाकी है, इसका विचार मनमें करते-करते उस म्यूजियमसे मैं वापस लौटा। भूमिके पेटमें क्या-क्या भरा है, इसका विचार करते हुए इस बातकी तरफ ध्यान जाना ही था कि भूमि परके पहाड़ोंकी रचना कैसी है। डोडोमाके बिलकुल नजदीक एक पहाड़ीके सिर पर कुछ चिकने पत्थर इस तरह रखे हुए हैं कि एक खास तरफसे देखने पर हूबहू ऐसा भासित होता है मानो सिंह बैठा है और हम उसकी जांघ देख रहे हैं। अंग्रेजोंने उसका 'लॉयन हिल' जो नाम रखा है वह ठीक ही है।

रिवाजके अनुसार दोपहरका लंच हुआ इंडियन एसोसिएशनकी तरफसे। उसमें कई अंग्रेज आये थे। इसलिए मुझे यहां अंग्रेजीमें ही भाषण करना पड़ा। दोपहरको सब इधरकी मूंगफलीकी योजना देखनेके लिए डोडोमासे ५२ मील दूर स्थित कांग्वा केन्द्र पर गये। हमारा बहुत सा लिखनेका काम चढ़ गया था। उसे निपटानेके लिए सरोज और मैं पीछे रह गये। कांग्वामें भी वैसा ही काम था, जैसा नचिंग्वेमें देखा था। इसलिए वहां न जानेमें कुछ खोना नहीं था।

मैं पीछे रह गया तो मेरे भाग्यमें एक-दो सभाएं और कुछ मुलाकातें आ गईं। शामको हिन्दू-मंडलके सामने मेरा भाषण था। दूसरे दिन मुझे स्त्रियोंकी सभामें

बोलना पड़ा। श्रीमती शहरबानू कीका हमारे साथ आई थीं। मैंने देखा कि श्रीमती कीकाको शिक्षामें बड़ी दिलचस्पी है। शादी करनेसे पहले वे शिक्षाका ही काम करती थीं। पूर्व अफ्रीकाकी प्राथमिक शिक्षाका विचार करनेके लिए अगर कोई संस्था बनाई जाय, तो उसमें श्रीमती कीकाको लेना ही चाहिये। बातों ही बातोंमें उन्होंने मुझसे कहा कि, "मुझे शिक्षाकी तरह साहित्यमे भी रस है। हम जो कुछ पढ़ते है सो अंग्रेजीमें ही। यह भी ज्ञात नहीं होता कि गुजरातीकी अच्छी पुस्तकें कौनसी हैं। मैंने यहांके हिन्दू-मंडलसे कहा कि बाकायदा फीस लेकर मुझे मंडलकी सदस्या बनाइये, ताकि आपके पुस्तकालयसे पुस्तकें मंगाकर मैं पढ़ सकू। वे कहते हैं कि, "मंडलकी सदस्या आप नहीं बन सकती। आपको जितनी पुस्तकें चाहिये, हम यों ही पढ़नेको दे देंगे।"

अब इस तरह मुफ्त किताबें लेकर पढ़ना हरएक आदमीको पसन्द नहीं होता। लोगोंको ऐसा ही लगेगा कि 'आप हमारे मंडलकी सदस्या नही बन सकतीं', यह कहकर हिन्दुओंने अपनी संकीर्णता प्रकट कर दी। हिन्दू कहेंगे कि पारसी लोगोंको हिन्दूके रूपमें कैसे स्वीकार किया जाय? इधर पारसियोंको यह खयाल होगा कि हिन्दू संस्कृति और हिन्दू रीति-रिवाजके बारेमें हमारे मनमें जो आदर है, उसकी कुछ भी कदर नही? हम पास आना चाहते हैं और ये लोग हमें दूर रखना चाहते हैं।

सही उपाय यह है कि मंडलके उद्देश्योंमे यही लिखना चाहिये कि, "जो हिन्दू हैं या जो हिन्दू संस्कृतिके प्रति सद्भाव रखते हैं, वे सब इस मंडलके सदस्य बन सकते है। हिन्दू धर्मकी किसी रूढ़िके सिलसिलेमें चर्चा हो रही हो, उस समय इस प्रकारके बाकीके लोग मत नही दे सकते। अन्य सब प्रकारसे उन्हें संस्थाके सदस्य माना जायगा।"

इतनी व्यापकता न सूझे तो पुस्तकालयके लिए अलग नियम बनाकर बाहरके लोगोंको उसके सदस्य बनाया जा सकता है। मुख्य बात यह है कि सबके साथ मिलनेकी उत्सुकता होनी चाहिये। आम तौर पर हिन्दू लोगोंमें स्वयंपूर्णताका ख्याल होता है और इस कारण वे बिना विचारे दूसरे लोगोंसे दूर रहते हैं। 'हम अलग स्वभावके हैं और हमारा व्यवहार दूसरे लोगोंको खटकता है', इतनी स्पष्ट बात भी हिन्दुओंके ध्यानमें नही आती।

Oh, would some power the gift give us,
To see ourselves as others see us.

आज दुनियाके दरबारमें हिन्दू लोगोंके प्रति सहानुभूति रखनेवाली जातियां बहुत कम हैं। सिर्फ किसीके भी हाथका और कुछ भी खाने-पीनेको तैयार हो जानेसे हमने अलग-थलगपन छोड़ ही दिया, ऐसा नही होता।

एक बार बम्बईमे हिन्दूसभाका अधिवेशन हुआ होगा। लाला लाजपतराय

अध्यक्ष थे। उन्होंने एक सीधा सवाल पूछा : "असलमें हममें जातीय संकीर्णता नहीं है। हम तमाम भारतवासियोंको साथ लेकर चलना चाहते हैं। ये मुसलमान ही साम्प्रदायिकता पैदा करके हमसे अलग रहते हैं, इसीलिए हम खुद साम्प्रदायिक बनकर पारसी. ईसाई वगैरा दूसरी तमाम जमातोंको अपनेसे दूर क्यों रखें ? मुसलमानोंको हमारे साथ शरीक न होना हो तो वे न हों, जो शरीक होनेको तैयार हैं, उन्हें हम आदरपूर्वक क्यों न बुलायें ?"

असलमें वह जमाना ऐसा था कि अगर हमने पारसी, ईसाई वगैरा दूसरी कौमोंको आदरके साथ अपने सामाजिक जीवनमें शरीक कर लिया होता, तो मुसलमान भी हमसे दूर न जाते। हममें राजनीतिक संकीर्णता तो थी नहीं। हमारा अपराध, हमारा अलग-थलगपन सामाजिक क्षेत्रमें था। उसकी सजाके तौर पर हमें राजनीतिक अन्याय सहन करना पड़ा; हमारी राष्ट्रीयताका हनन हुआ और मानवजातिके दरबारमें हम दूसरे लोगोंकी सहानुभूति खो बैठे।

और फिर भी हमने अपना अलग-थलगपन अभी तक नहीं छोड़ा। हमारे कुछ धार्मिक विचार और रिवाज अधार्मिक हैं। उन्हें हम छोड़ देंगे तभी मनुष्यकी हैसियतसे हम तरक्की कर सकेंगे।

डोडोमामें कोई प्रचारक आया होगा। उसने 'आत्मा नहीं, पुनर्जन्म नहीं, ईश्वर अवतार नहीं लेता, मूर्तिपूजा ढोंग है' वगैरा वगैरा बातें कहकर यहांकी बहनोंको भडका दिया होगा। इसलिए एक बहन इस बारेमें मेरे विचार जानकर कुछ आश्वासन प्राप्त करने मेरे पास आईं। मैंने ये सब प्रश्न उच्च भूमिका पर ले लिये और उनकी चर्चा की। उन बहनको संतोष हुआ, उन्होंने मांग की कि हम स्त्रियोंके सामने भाषण देकर आप ये सब बातें हमें समझाइये।

खानगी समय लेकर मुझे जो खत-खतूत लिखना था सो रह गया और दोपहरको बहनोंकी सभामें जाना पड़ा। मैंने वहां घर और समाजकी सफाईके बारेमें, भोजनके बारेमें और ऐसे ही दूसरे इहलोकमें उपयोगी विषयोंकी बातें कहीं। सर्वसमाजिताके महत्त्व और अफ्रीकी बहनोंको अपनानेके बारेमें तो जरूर कहा ही। इसे तो मैं किसी जगह भूलता या छोड़ता ही नहीं था।

कांग्वा गये हुए हमारे साथी चार बजते-बजते वापस आये। तुरन्त ही हम मिसेज पाइकके यहां चायपार्टीमें गये। लिंडीके वर्णनके समय मैंने लिखा है कि 'गोरोंने हमें अपने वहां खानेको बुलाया हो, ऐसा मि० पाइकका एक ही उदाहरण था।' उसमें इतना संशोधन करना चाहिये कि डोडोमामें उनकी भाभीने भी हमें अपने यहां अपने गोरे मित्रोंसे मिलने बुलाया था।

रातको श्री दारा कीका और श्रीमती कीकाकी तरफसे स्वेच्छा-भोजन था। इसे फ्रेंच और अंग्रेज लोग 'बुफे' कहते हैं। स्वेच्छा-भोजनकी खूबी यह होती है कि खानेकी सब तरहकी चीजें तैयार करके एक मेज पर रख देते हैं। पास ही रकाबियां,

चम्मच, कांटे, हाथ रूमाल वगैरा रखे रहते हैं। मेजबान और मेहमान सब उस मेजके पास जाते हैं और हरएक आदमी एक एक रकाबी लेकर उसमे जो और जितना चाहिये, परोस लेता है और जी चाहे वहां बैठकर या घूमते-घूमते खाने लगता है और अलग-अलग लोगोंके साथ बातें करता है। इस प्रकार आग्रह करके अधिक परोसना और अन्न बिगाड़ना टल जाता है। 'अपना हाथ सो जगन्नाथ' के हिसाब-से हरएक मनुष्य अपनी रुचिकी चीज पसन्द करके परोस लेता है और एक जगह बैठनेकी बात न होनेसे बहुतसी कुर्सियों और मेजों या पट्टोंकी व्यवस्था करनेकी जिम्मेदारी नहीं रहती। लोग घूमते-घूमते खायं तो कई लोगोंके साथ थोड़ा-थोड़ा बोल सकते हैं, दोस्ती बढ़ा सकते हैं। गंभीर लोग दो-चार कुर्सियां जमा करके वहां बैठकर खाते-खाते चर्चा कर सकते हैं। श्री अप्पासाहबके अफ्रीका आनेके बाद यह प्रथा हमारे लोगोंमें काफी फैली। यह कई तरहसे सुविधापूर्ण तो है ही।

भोजनके बाद भाषणमे मैंने कहा कि मनुष्य-जातिका आदर्श त्रिविध माना गया है। स्वतंत्रता, समता और बंधुता। ये तीनों आदर्श सिद्ध करनेके लिए मनुष्य-जातिको महान क्रांतियां करनी पड़ी हैं।

फ्रांस देशने राजनीतिक समता स्थापित की। परन्तु उसके लिए खूनकी नदियां बहाई गई और सामंती प्रथाका, फ्यूडेलिजमका अन्त किया गया। उसके बाद रूसने उतनी ही रक्तरंजित क्रांति करके अपने यहां समताकी स्थापना की और पूंजीपति वर्ग और खानगी संपत्तिका अंत किया। अब बंधुता स्थापित करनेके लिए एक अनोखी क्रांति करनेकी बारी हिन्दुस्तानके भाग्यमें आई है। इसके लिए पहले हिंसा-का अंत करना पड़ेगा। और शहरी संस्कृतिको सीमित करके गांवोंका उद्धार करना पड़ेगा। इस बंधुताकी क्रान्तिके परिणामस्वरूप सामाजिक न्याय, आर्थिक न्याय और वांशिक न्याय तीनोंकी स्थापना होगी।

इसका नतीजा यह होगा कि अफ्रीकाकी भूमि पर भारतकी मिश्रित संस्कृति, यूरोपकी इतिहाससिद्ध संस्कृति और अफ्रीकाकी आदिम संस्कृति तीनोंका समन्वय हो जायेगा। और उसमेंसे एक नई संस्कृति उत्पन्न होगी, जिसका प्रधान स्वर होगा बन्धुता, यह बन्धुता मनुष्य मनुष्यके बीच ही नहीं, परन्तु धर्म धर्मके बीच भी स्थापित होगी।

इतने विस्तारसे नहीं परन्तु इसी प्रकारका भाषण मैंने दिया। उसके बाद अप्पासाहब बोले। उनका भाषण बहुत सुन्दर था। एशिया महाद्वीपकी पुनर्जागृति और अहिंसक पद्धति द्वारा संघर्ष मिटानेकी आवश्यकता उनका विषय था। दूसरे दिन डोडोमा छोड़नेसे पहले हम दो-तीन पाठशालाएं देख आये। इंडियन पब्लिक स्कूलके हेडमास्टर श्री कुरेशी फौजसे निवृत्त हुए आदमी है। इसलिए उन्होंने विद्यार्थियोंको कवायद अच्छी सिखाई है। इसका लाभ हिन्दुओंकी अपेक्षा मुसल-मानोंने ही अधिक प्राप्त किया है, यह असर मेरे मन पर हुआ। यहां लड़कियोंकी

शिक्षाके लिए आगाखानकी कन्यापाठशाला अलग है। वहां श्रीमती टर्नबुल नामकी अंग्रेज महिला बड़ी लगनसे काम कर रही हैं। इंडियन पब्लिक स्कूलकी लड़कियों-को खड़े-खडे खो खो खेलते देखकर मुझे बड़ा आनन्द आया।

यहांकी रेलवे दारेस्सलामसे मोरोगोरो और डोडोमा होकर टबोरा पार करके आगे किगोमा तक जाती है। किगोमा टांगानिका सरोवरका पूर्वी किनारेका बन्दर-गाह है। वहांसे जहाजमें बैठकर बेल्जियन कांगोमें जाते हैं।

हमारे लोग हिन्दुस्तानसे दारेस्सलाम आते हैं, वहांसे रेलवेके रास्ते किगोमा और वहांसे जहाजके रास्ते उसुम्बरा। यह आखिरी बन्दरगाह टांगानिका सरोवरके उत्तर किनारे पर स्थित है।

१७. ङ्गोरोंगोरो

पूर्व पश्चिम जानेवाली रेलवेको छोड़कर अब हमने डोडोमासे नैरोबी तक जानेवाला उत्तरका मोटरका रास्ता पकड़ा। इस प्रदेशमें न बड़े जंगल हैं और न बड़े पहाड़। हमारे सौभाग्यसे श्री बदरू नामक एक भाई अपनी मोटरमें नैरोबी जा रहे थे। अप्पासाहबके प्रति प्रेमके कारण वे हममें मिल गये। इसलिए हमारी मंडली तीन सवारियोंमें आरामसे सफर कर सकी। श्री कमयलयनने एक मोटरगाड़ी टांगामें खरीदी थी। वह डोडोमा आ पहुंची थी। एक वह और दूसरी भाई बदरूकी और तीसरी बॉक्स गाड़ी किराये-पर ली थी।

बरसातके दिनोंमें रास्ते परसे मोटरें जानेसे कई खड्डे-खोचरे हो जाते हैं, जो सूखनेके बाद मोटरोंको परेशान करते हैं। यह मुश्किल टालनेके लिए रास्तेके खड्डे खोचरोंकी हजामत करनेवाली मोटर मनुष्यने बनाई है। लोहेका एक मोटासा उस्तरा रास्ते पर चलाने लगें, तो सूखे हुए कीचड़की उठी हुई नोकें कट जाती हैं और उनकी मिट्टी खड्डोंको भरती जाती है।

इसके सिवा रास्ता सुधारनेका एक देहाती उपाय है। जंगलकी झाड़ियां इकट्ठी करके रास्तेकी आधी चौड़ाई तक पहुंचने लायक एक ब्रश तैयार कर लिया जाता है। बुनाईके काममें मांड़ देनेके लिए जो कूचा तैयार किया जाता है, उसके जैसा ही यह ब्रश होता है। लम्बी रस्सी बांधकर यह ब्रश रास्ते पर फेरनेसे रास्ते पर की मिट्टी समान रूपमें फैल जाती है, इसके कारण मोटरोंकी दिक्कत बहुत कुछ घट जाती है। रास्ते सुधारनेके ये दोनों प्रकार हमने देखे। हमारे यहां कुछ खास स्थानों पर ये जारी किये गये हैं। रास्तेके दोनों ओर दूर दूर तक, जैसे क्रिकेट के क्षेत्रपाल खड़े हों उसी तरह गोरख-चिंच अर्थात् चिरमुलाके विशालकाय पेड़ खड़े थे। ऐसे पेड़ पूर्वी किनारे पर भी बहुत हैं। दारेस्सलामके आसपास तो बहुत

ही हैं। इस इलाकेका नाम टांगानिका न होता तो मैं इसे चिरमुला नाम देता।

आधुनिक सभ्यतासे अलग पड़े हुए इस देशमें जहां-जहां बस्ती है, वहीं हिन्दू और मुसलमान गुजराती अपनी-अपनी दुकानें खोलकर बैठे हैं। इनके बीच कोई झगड़ा नहीं है (क्योंकि यहां संस्कृति, सभ्यता और अखबार नहीं पहुंचे हैं!)। रास्तेमें कोन्डोवा नामक एक छोटासा गांव था। वहां दूरसे पानी लाकर गांवको बड़ी राहत पहुंचाई है। हम यहां न ठहर कर आगे बबाटी पहुंचे और वहां एक मुसलमान भाईके यहां दोपहरका भोजन किया। इनके छोटेसे दीवानखानेमें एक सादा जर्मन चित्र था। उसमें सिंहोंका चित्रण बड़े अच्छे ढंगसे हूबहू किया हुआ था।

यहांसे आगे चलकर सारा प्रदेश बदल गया। बाईं ओर एक विशाल खारे पानीका सरोवर था। उसका नाम मनियारा है। इस सरोवरके आसपास जंगली शिकारी जानवर बहुत हैं। माफयूनी गांवके पास रास्ता फट गया। वह रास्ता पकड़कर हम आगे बढ़े। बाईं तरफ तालाब और दाईं ओर लोसिमिगुर पर्वत। पहले आया करा टू गाव, उसके बाद आया ओलिडयानी। कराटूके पास भाई बदरूकी मोटर बिगड़ गई। हमने उन्हें रास्ते पर छोड़कर आगे जानेसे इनकार कर दिया। जगलमें वे अकेले और इस पर भी एक पैरमें कुछ कमजोरी। उन्हें इस तरह कैसे छोड़ा जाय?

मगर वे माने ही नही। कहने लगे, 'मैंने ऐसे सफर बहुत किये हैं। मैं अपनी मोटरको पहचानता हूं। वह घंटे भरमें ठंडी हो जायगी और मान जायगी।' आखिर हमने उनकी बात मान ली और ओल्डियानी चले गये। वहां पहुंचते ही जब एक बसको भाई बदरूकी मददमें भेज सके, तभी हमारे मनकी घबराहट कम हुई।

इस प्रदेशमें कुछ यूरोपियनोंने सुन्दर खेतीबाड़ी की है। कॉफी, चाय, गेहूं वगैराकी खेती करके वे अच्छा कमाते हैं और अच्छी तरह रहते भी हैं। परन्तु हम इधर जो आये थे सो उनकी खेतीबाड़ी देखनेके लिए नही, बल्कि यहांके एक प्रसिद्ध सुप्त ज्वालामुखीके मुहके भीतर हाथी और सिंह जैसे वन्य पशु रहते हैं, उस स्थानको देखनेके लिए।

अंधेरा होनेकी तैयारी थी। हमने ओल्डियानी छोड़कर ङ्गोरोंगोरो जानेका रास्ता लिया। गोरोंके कितने ही शाम्बे पार किये और पहाड़ चढ़ने लगे। प्रारम्भमें ही एक दो खरगोश मोटरके प्रकाशमें दिखाई दिये। इसलिए आशा बंधी। थोड़े आगे गये तो एक तेंदुआ—नहीं, तेंदुआ छोटा होता है—चीता दिखाई दिया, जिसे अंग्रेजीमें 'लेपर्ड' कहते हैं। मोटरके प्रकाशमें चौंधियाकर वह एक तरफ हट गया और उसने एक पेड़के छोटेसे कोटरमें छिप जानेकी कोशिश की। मोटर नजदीक आई तो उसकी जगह पर जरा अधेरा हो गया। इससे लाभ उठाकर, इधर-उधर

देखकर, जरा दुबक कर उसने दौड़ लगाई और देखते देखते जंगलमें गायब हो गया। हम जरा आगे बढ़े। अंधेरा जम गया था। आकाशका चन्द्रमा छाछसे भी पतली चांदनी बरसा रहा था। इतनेमें मोटरके सामने एक बड़ा जानवर दिखाई दिया। हाथी है या गैंडा है, इसका विचार करें इतनेमें खोपड़ी परके दो सीगोंने बता दिया कि यह वन-महिष है। जंगलके शिकारी हाथी, गैंडे या शेरसे इतने नहीं डरते जितने महिषसे डरते हैं। महिष जबरदस्त ताकतवाला जानवर है। हाथी या शेर भी इसका नाम नहीं लेते। शिकारी कहते है कि बाकी सब जानवरोंका स्वभाव समझा जा सकता है और उनसे निपटा जा सकता है। महिष भूखा हो या न हो, उसे आप छेड़ें, या न छेड़ें, वह अकेला हो या झुण्डमें हो, जहां उसे आपके प्रति शक हुआ कि उसने आप पर हमला किया ही समझिये। और उसका झपाटा इतना जोरदार होता है कि उससे शायद ही कोई बच सके।

हमारे सामनेका महिष खूब मस्तीमें आया हुआ जानवर दिखाई देता था। सामने रास्ते पर आड़ा खडा रहकर डोल रहा था। दूरबीन लेकर देखा तो उसके गले और गरदनकी तरफके बाल काफी लम्बे दिखाई दिये। थोड़े ही समयमें उसने सिर फेरकर मोटरकी तरफ टकटकी लगाई। हमने उसे अच्छी तरह देखनेके बाद मोटरकी रोशनी बन्द कर दी। काफी समय तक अच्छे चन्द्रप्रकाशमें हम एक-दूसरे-के दर्शन करते रहे। उसका विचार हम पर हमला करनेका नहीं था। परन्तु हम हमला नहीं करेंगे, इसका क्या भरोसा? इसलिए उसने थोड़ी देर हमारी बाट देखी। उसे विश्वास हो गया कि हम कुछ भी नहीं कर रहे हैं, तो वह रास्तेके बाईं ओरके जंगलमें विलीन हो गया। रास्तेके दाईं तरफ ऊंचा पहाड़ था। बाईं तरफ उतार था। दिनका वक्त होता तो यह देखनेको हम ठहरते कि वह कहां गया। हम आगे चले। एक स्थानमें ङ्गोरोंगोरोके मुखके भीतरका भाग कुछ कुछ दिखाई देता था। तालाब जैसा था। वहां चांदनीका प्रकाश स्पष्ट हो रहा था। ऊपर पहुंचे तब आस-पास कुछ भी दिखाई नहीं देता था। ऊपर सरकारकी तरफसे यात्रियोंके लिए बनाया हुआ दस-बीस झोंपड़ोंका कैम्प था।

उसमें हमारे रहनेकी सुविधा की गई थी। एक व्यापारी अपने यहांसे ३०-४० कम्बल ले आये थे। पीनेका पानी तो ढेर सारा था। एक बड़ी झोंपड़ीमें खानेकी तैयारी की गई थी। उसकी दीवार पर महिषोंके सिरकी हड्डियां और सीग टंगे हुए थे। हम लोगोंने एक एक झोपड़ी पसन्द कर ली और अपने बिस्तर आग बिछा लिये। सवेरे उठते ही ४० मील चौड़ा और कोई १०० वर्ग मीलके क्षेत्रफलवाला ज्वालामुखी दिखाई देगा तब कैसा लगेगा, इसका विचार करते करते हम सो गये। मनियाराके आसपास हमने असख्य हिरण, शुतुर्मुर्ग, चित्राश्व (जिब्रा), जिराफ और बुद्दू वगैरा जानवर देखे थे। अब सवेरे क्या क्या दिखाई देगा, इसकी कल्पना कर रहे थे। इतनी ऊंचाई पर ठंड तो होती ही है। हम खूब सोकर उठे, प्रार्थना

की ओर बाहर निकले। जहां देखो वहीं कोहरेका क्षीरसागर था! कोहरा कपाल, आंखों और कानोंको गुदगुदाता और आगे चलने लगें तो दो तीन हाथ हट जाता और पीछेकी तरफसे नजदीक आ जाता। आसपास घूमने पर बड़े-बड़े पेड़ कोहरेमें भूत जैसे लगते और पास जाने पर उनकी छाल पर जमी हुई और नीचे लटकती हुई काईके कारण वे रीछ जैसे लगते थे। उन पेड़ोंके नीचे हमारी 'लांग केबिन' बड़ी सुन्दर लगती थी। यह स्थान ८५०० फुट ऊंचा है, इसलिए ठंड और कोहरा दोनों लम्बे समय तक रहते हैं। हमें दोपहर तक अरूशा होकर मोशी जाना था, इसलिए कोहरा मिट जानेकी प्रतीक्षा नहीं की जा सकती थी। हम तुरन्त रवाना हो गये। हमारी पार्टीमेंसे श्री कमलनयन और कुछ आदमी पीछे रह गये। १० बजेके बाद वे सारा ज्वालामुखी (द्रोण) और उसके भीतरके कुछ जानवर देख पाये।

अफ्रीकाकी भूमिका इतिहास ज्वालामुखियोंका इतिहास कहा जा सकता है। ऊपर एक जगह कहा गया है कि लाखों वर्ष पहले पूर्व अफ्रीकाकी भूमिमें ३०-४० मील चौड़ी और ३००-४०० मील लम्बी और हजारों फुट गहरी दो दरारें पड़ी थीं। वे कैसे पड़ीं, कब पड़ीं, उस समय उनका रूप क्या था, यह हम आज नहीं जान सकते। इतना ही जानते हैं कि ये दरारें पड़नेके बाद बीचमें ज्वालामुखी सुलगे। उन्होंने दरारका कुछ भाग भर दिया। परिणामस्वरूप कुछ सरोवर तैयार हुए और नदियां बहने लगीं। यह सब कुछ एक ही समय एक साथ हुआ हो, सो बात भी नहीं। जो फेरबदल होनेवाले थे, वे स्थायी हुए हों सो भी नहीं। १९३८ और १९४८ तक कुछ ज्वालामुखियोंने सिर ऊंचा किया यानी मुंह खोला और उसमेंसे अग्निरस बहने दिया।

ङगोरोगोरोका ज्वालामुख कब बना, यह हम नहीं जानते। परन्तु जब इतना बड़ा ज्वालामुख अग्निरससे खदबदा रहा होगा, तब उसके सिर पर कोई १०० मील तक पक्षी भी उड़नेकी हिम्मत नहीं करते होंगे। आज यह सब शांत हो गया है। इस ज्वालामुखका पेंदा सीधे मैदान जैसा हो गया है। उसमें पानी जमा होता है और जंगल उग आये हैं। ये पेड़ यहां किसने बोये होंगे? जंगलके पेड़ोंके बीज खा-पचाकर अनेक छोटे बड़े पक्षी यहां आये होंगे। विष्टाके द्वारा ये बीज बोये गये और उनके बड़े जंगल हो गये। कुछ जानवर यहां आहार ढूंढ़ते हुए आये होंगे। इतनी ऊंचाई पर वे कैसे चढ़े और यहां उन्होंने स्थायी निवास कैसे किया, इसका इतिहास उन जानवरोंके वंशज कहांसे जानें? और जानें तो भी हम उनसे यह इतिहास कैसे प्राप्त कर सकते हैं? नगैः रक्षितं इति नगरम्, यह नगरकी व्याख्या सच हो, तो अफ्रीकाके श्वापदोंका यह अरण्यनगर है। किसी समयके ज्वालामुखीके सिर पर ठंड और कोहरेका अनुभव करते हुए हम एक रात बिता सके, यह बात भी हमें बहुत संतोष दे सकी। उसी रातको अमरीका—ओटावासे आया हुआ चि० सतीश-

का एक प्रेमपूर्ण पत्र मुझे उस स्थान पर मिला, उसका भी मन पर बड़ा असर पड़ा। कहां हिन्दुस्तान, कहां केनाडाकी राजधानी ओटावा और और कहां यह शिकारी जानवरोंका अरण्यनगर ! परन्तु लेखनकला और पत्रव्यवहारके आधुनिक साधनोंके कारण ऐसी स्थितिमें भी हम एक दूसरेके साथ हार्दिक सम्पर्क साध सके।

१८. दो पर्वतराज

ङ्गोरोंगोरोसे अरुशा और वहांसे मोशीकी दौड़ लगाकर हमें तीसरे पहर तक व्याख्यानके लिए पहुंचना था। इसलिए सुबह जल्दी नाश्ता करके ङ्गोरोंगोरो छोड़ा। पहाड़ परसे जरा नीचे उतरे कि कोहरेके बादल ऊपर रह गये। अब नीचे ओल्डियानीकी तरफका सुन्दर दृश्य नजरके सामने फैल गया। धूप और बादलोंकी धूपछांहके कारण सारी जमीन स्वर्णभूमि जैसी लग रही थी। कराटू तक वापस आये और फिर जिराफ, शुतुर्मुर्ग और तरह-तरहके हिरण बहुत नजदीकसे देखनेमें आये। एक हिरण हमारे नजदीक पहुंचने तक निर्भय होकर हमे देखता हुआ ही बैठा रहा। परन्तु अन्तिम क्षणमें उसने विचार बदल दिया और ऐसी छलांग मारी मानो हवाई गोला हो ! यहां हमने पहली बार जिराफको दौड़ते देखा। सुबह ही मैंने कहा था कि सर पर दूरबीन जैसे सींग लेकर खड़े हुए जिराफ हमने बहुत देख लिये। यह प्राणी दौड़ता होगा तब कैसा दिखाई देता होगा ? और कुछ घंटोंमे जिराफ पानीकी लहरोंकी तरह दौड़ता हुआ हमारे देखनेमें आया। उसकी सुडौल गति देखकर ऐसा ही लगता है कि जान बचानेके लिए भी यह कलावान प्राणी बेढंगेपनसे दौड़नेको तैयार नहीं होता !

कराटूमें एक गुजराती भाईने बड़े प्रेमसे हमें केसरिया दूध पिलाया। जाते समय हम उनके यहां नहीं ठहरे, इस पर हमें उलहना दिया और पक्के केलोंकी एक फली और तरह-तरहके फल हमारी मोटरमें लाद ही दिये ! इन लोगोका कैसा निष्काम प्रेम था ? हमने उनके लिए क्या किया था ? क्या कर सकते थे ? उनके या हमारे जीवनमें दुबारा मिलनेकी संभावना भी कम थी। फिर भी घरके आदमियों-की तरह ये लोग हमारे साथ व्यवहार करते रहे। अपनी सारी होशियारी या बहादुरीका बखान करना भी उन्हें नही सूझता। सारे पूर्व अफ्रीकामें हमें जहां-तहां ऐसे ही गुजराती भाई मिले हैं और हर जगह हमने इसी प्रेमकी बाढ़का अनुभव किया है।

हम अंगारक पर्वत तक सीधे उत्तरमें गये। मोंडुली गांवको बाई ओर रखकर हमने पूर्वकी ओरका रास्ता लिया। थोड़े ही समयमें हमें अफ्रीकानिवासी मेरुपर्वत-के दर्शन हुए। उसका शिखर बादलोंमें ढंका हुआ था और उसका विस्तार पचहत्तर

मील तक फैला हुआ था ! फिर आया अरुशा शहर। बड़ा ही सुन्दर। यूरोपियन लोगोंने इसे नंदनवन बना दिया है। हमे यहां तक लानेवाले श्री त्रिलोकीनाथ वोरा यही उतर गये और हम इन्हीकी मोटर लेकर आगे मोशी गये। रास्तेमे दोनों ओर अंग्रेजोंके अनेक शाम्बों (एस्टेट्स) की शोभा हम देख सके। बीचमें हमने उषा नदी पार की। कितने ही मीलों तक फैले हुए घासके बीहड़ देखे। टांगासे अरुशा तक आनेवाली रेलवेको हमने तीन बार पार किया। पहली बार हमने यहां तारके खम्भे देखे। और अन्तमें—

जिसकी धुन बहुत दिनोंसे लगी हुई थी, वह किलिमांजारो पर्वत नजदीकसे दिखाई दिया। पहले तो बादलोंमें धनुषकी रेखाकी तरह एक सफेद सुरेख किनारी दिखाई दी। मनको यह विश्वास हो जानेके बाद कि यह बादल नही परन्तु पहाड़की चोटी है, हमने देखा तो किलिमांजारो अपने सिर परका बादलोंका पटल धीरे-धीरे हटा रहा है। कैसा वह गंभीर और भव्य दर्शन था ! मानो कर्पूरगौर महादेव बुद्ध भगवानका अवतार लेनेके लिए अपनी जटा उतार कर यहा ध्यानस्थ बैठे हों ! आज किलिमांजारोके सिर पर हमेशासे ज्यादा बर्फ थी। इसलिए उसके नीचे उतरते हुए रेले खूब दूर तक पहुचे हुए दीखते थे। शिखरकी रचना इतनी सुन्दर मालूम होती थी कि यह जानते हुए भी कि उसके सिर पर ज्वालामुखीका द्रोण (मुंह) है, यहांसे वह सच्चा प्रतीत नही होता था। हृदयके उद्गार निकाल डालनेकी पुरानी आदत रही होती, तो मैंने जरूर कहा होता "अद्य मे सफलं जन्म, यात्रा च सफला इयम्।"

हमारी मोटर हमें सपाटेसे मोशी और उसके वैभवशाली पहाड़ किलिमांजारो की तरफ ले जा रही थी। रास्ता टेढ़ामेढ़ा होनेके कारण दर्शनकी खूबियां क्षण-क्षण बदल रही थीं। बादमें मैंने जाना कि मोशीका अर्थ धुआ है। किलिमाका अर्थ पहाड़ और अन्जारोंका अर्थ ऊंचा या चमकता हुआ। दोनों अर्थ इस पहाड़के लिए जंचते हुए थे। किलिमांजारोका विस्तार भी बहुत चौड़ा है। ऊपर चढ़नेका रास्ता उसके पीछेकी तरफ है। दूसरे दिन हम उस रास्तेसे एक अफ्रीका मुखियाका घर देखने गये।

मोशीमे हम बहुत ही थोड़े समय रह सके। परन्तु उस समयका उपयाग अच्छा हुआ। श्री सदरुद्दीन—माननीय वलीमुहम्मद नजरअलीके लड़के—के यहां हमारा डेरा था। श्रीमती सदरुद्दीन बड़ी चतुर महिला थी। उनके यहां खा-पीकर ताजा होकर हम सभामें गये। इतनेमें श्री कमलनयनकी मंडली भी आ पहुंची। प्लाजा थियेटरमें काफी भीड़ लगी हुई थी। बहनोंकी संख्या भी अच्छी थी। यहां पहली बार मैंने अपनी राय जाहिर की कि हिन्दुस्तानके स्वतंत्र होनेके बाद एशिया की अनेकवंशी जनता हमारी तरफ प्रेम और उमंगभरी नजरोंसे देखने लगी है। इसलिए अब हमें एशियाके प्रतिनिधि बनकर एशियन नाम धारण करना ही

पड़ेगा। इस सभाके तुरन्त बाद किलिमांजारोकी बिलकुल सीढ़ियों पर एशियन एसोसियेशनकी चायपार्टी थी। यहां अप्पासाहबका बड़ा प्रभावशाली भाषण हुआ। इस प्रदेशमें रहनेवाले चाग्गा अथवा वाचाग्गा लोगोंकी एक संस्था है। इन लोगोंको शिक्षा देकर उन्हें आगे लानेवाले मि० बेनेटके साथ मुलाकात हुई। एक आदमी सोच ले तो अफ्रीकी लोगोंके लिए कितना कर सकता है, इसका वे उत्तम नमूना थे।

यहांकी पार्टीमें एक महाराष्ट्री डॉक्टर, दो गोअन, अनेक सिक्ख भाई और गुजराती हिन्दू थे। इस्माइली भाई तो बड़ी तादादमें जमा हुए थे। रातको यहांके हिन्दू भाइयोंके साथ खास वार्तालाप रखा गया था, जो ९ से ११ बजे तक चला। ऐसे वार्तालाप हमारी यात्राका सर्वोत्तम भाग माने जाएंगे। इनमें हम कुछ भी संकोच रखे बिना हिन्दू मुसलमानोंके संबंधके बारेमें आजादीके साथ बोल सकते थे, लोगोंकी भावनाएं और उनकी मुश्किलें जान सकते थे और अनेक भूमिकाएं बनाकर हम अपना दृष्टिबिन्दु उन्हें समझा सकते थे। मोशीमें वहांके डिप्टी कमिश्नर मि० जॉन्स्टन मिले। आदमी स्वभावसे बड़ा सज्जन और विचारोंका उदार था। कोई घंटेभर बैठकर उन्होंने बहुतसी बातें की। और उनसे बहुत कुछ जाननेको भी मिला।

दूसरे दिन हम चाग्गा लोगोंके वेलफेअर सेंटरकी एक बाड़ी देखने मरागू गये। उस बाड़ीके पास चाग्गा लोगोंके एक नेता—मुखिया पेट्रोका सुन्दर निवासस्थान है। उनके मेहमान बनकर हमने देख लिया कि अफ्रीकी परिवार कैसे रहते है। उनके नये मकानके पीछेवाली बड़ी गोल झोंपड़ी हम भीतरसे देख आये। बिलकुल अंधेरेमे इन्सान और हैवान साथ-साथ कैसे रहते हैं. यह देखकर हिमालयके पहाड़ी लोगोंकी याद आ गई। परन्तु वहा इतना अंधेरा नही था। अफ्रीकी लोग गायका दूध भी पीते हैं और उसका खून भी पीते हैं। गाय या बछड़ेको खंभेसे बांधकर एक बाणसे उसके गलेकी नस कैसे काटते हैं और आवश्यक लहू निकाल लेनेके बाद घाव कैसे बन्द किया जाता है, इसके बारेमें हमने विस्तृत बातें सुनीं। प्रत्यक्ष प्रयोग देखनेकी मेरी हिम्मत नही हुई, इसलिए मैं वहांसे खिसक गया। हमारे दलके लोगों ने क्या-क्या देखा, सो मैंने पूछा भी नही। श्री पेट्रोके साथ वर्धाके ग्रामोद्योगों और नई तालीमके बारेमें बाते की। हाथकी कती और बुनी खादी और हाथके बने हुए कागजके नमूने वगैरा देखकर उन्हें महसूस होने लगा कि हम भी ऐसा ही क्यों न करें। बादमें मैंने उन्हें बड़े विस्तारसे समझाया कि शहदकी मक्खियोंका पालन कैसे किया जाता है और उनका नाश किये बिना शहद कैसे निकाला जाता है। उन लोगोंने भी खूब ही दिलचस्पीके साथ यह सब सुन लिया।

मुखिया पेट्रोकी बाड़ीके मकईके गरम-गरम भुट्टे हमने चखे। उसके दाने इतने बड़े और मीठे थे कि यहांके बीज हिन्दुस्तानमें ले जानेकी इच्छा हो गई।

मकईका आटा अफ्रीकी लोगोंका मुख्य भोजन है। इसके साथ वे एक प्रकारके बेमिठास केले पकाकर खाते हैं। और एक प्रकारके शकरकन्द भी सेंककर खाते हैं। इन शकरकंदोंका स्वाद भी हमारे शकरकन्द जितना मीठा नहीं होता। अफ्रीकाकी मकईका स्वाद हमने कई जगह लिया है, परन्तु स्वादमें यहांकी मकईकी बराबरी कोई नहीं कर सकी।

लौटकर हमने खाना खाया और अरूशाके लिए रवाना हो गये। रास्तेमें फिर किलिमांजारोंके भव्य दर्शन हुए। अगले दिनके दर्शनोंके कारण आजका दर्शन बासी भी नहीं लगा और उसका नशा भी कम नहीं हुआ। परन्तु परिचयकी आत्मीयता अवश्य उमड़ आई। सारा रास्ता पहचाना हुआ था, इसलिए हम आसानीसे पौने चार बजे अरुशा पहुंच गये। वहा हमारे मेजबान श्री नरसीभाई मथुरादास थे। श्री नरसीदासभाई श्री नानजी कालिदास मेहताके भतीजे हैं। उनका घर अरुशाभरमें तमाम सुख-सुविधाओंसे भरा हुआ सबसे अद्यतन (अप-टु-डेट) माना जाता है। अरुशामें इण्डियन एसोसियेशनकी तरफसे चायपार्टी हुई। इसमें वहाके प्रांतीय कमिश्नर और उनकी पत्नी आई थी। सारी पार्टीमें जो यूरोपियन थे, उनमें ग्रीक और डेन लोग भी थे। एशियन लोगोंमें हमारे हिन्दुस्तानी लोगों—गोअनो सहित—के उपरांत अरब वगैरा थे और अफ्रीकी लोगोंमें स्थानीय एबिसीनियन और सोमाली भी थे। लोग चाय और खाद्य-पदार्थोंके साथ न्याय करनेमें मशगूल थे, जब कि मेरा सारा ध्यान मेरुकी प्रचंड मूर्तिकी तरफ था। इन दिनों मेरुके सिर पर बर्फका मुकुट नहीं होता, परन्तु मुकुटके बिना भी वह आस-पासके प्रदेशके राजाकी तरह ही सुशोभित था। किलिमांजारो और मेरु जबसे ऊपर निकल आए हैं, तबसे अफ्रीकाके शिकारी जानवर और मनुष्य, नदियां और सरोवर—सबके सुदीर्घ इतिहासके वे साक्षी है। प्राचीन कालके कई अफ्रीकी नेताओंने इन दो पहाड़ोंकी शपथ खाकर अपनी मित्रता दृढ की होगी। शत्रुसे बैर लेनेकी प्रतिज्ञा पर मुहर लगाई होगी। ये दो पहाड़ कोई संकल्प नहीं करते। पक्षपात नहीं करते। अपने सिर पर जितनी वर्षा हो, उसके छोटे बड़े झरने बनाकर उसा (usa), पंगानी (pangani), त्सावो (tsavo), जो कोई नदी उनसे लाभ उठाना चाहे उसे जीवन अर्पण करते रहते है।

सार्वजनिक सभामें अनेक पंजाबी और गुजराती बहनें वगैरा मिश्रित श्रोता थे। हिंसा और अहिंसाका प्रश्न तो छेड़ा ही था।

रातके भोजनमें बड़े-बड़े दो सौ लोग मौजूद थे। अंग्रेजोंकी संख्या यहां सबसे ज्यादा थी; Non-violence in peace and war (युद्धकाल और शान्तिकाल दोनोंमें अहिंसाकी नीति) के बारेमें मैं थोड़ा बोला। बहुतसे विदेशियोंने इस चर्चामें भाग लिया। उसमें अपने कर्तव्यका गहरा विचार करनेवाला एक गोरा पुलिस अफसर था। उसने विशेष बातें करनेके लिए दूसरे दिन मिलनेकी इच्छा प्रगट की।

सवेरे अपराधों और उनके लिए दी जानेवाली सजाओंकी काफी तात्त्विक चर्चा हुई। ऐसा जान पड़ा कि यह आदमी अपने कर्तव्यके बारेमें गहराईमें जाकर विचार करता है। हमारे लोगोंकी आर्थिक नीतिमत्ता यानी ईमानदारीके बारेमें उसका ऊंचा खयाल नहीं था। केवल नरसीभाईके बारेमें उसने आदरके वचन कहे थे। मुझे वे केवल शिष्टाचारके शब्द नहीं लगे।

सुबहकी चर्चाके बाद हम एक ऐसा तालाब देखने मोशीके रास्ते रवाना हुए, जो अरुशाके गलेका मोती जैसा लगता है। डेलूटी (Deluti) सरोवरका श्रेय भी ज्वालामुखीको है। उसका आकार देखते ही यह मालूम हो जाता था। इस तालाब के किनारे श्रीमती रॉयडन नामकी एक अंग्रेज महिलाने सुन्दर मकान और उससे भी सुन्दर बगीचा बनाया है। महिला इतनी होशियार है कि पिछले युद्धके दिनोंमें अपनी और दूसरे गोरोंकी १४ एस्टेटें वही संभालती थी। और इस महिलाकी जिज्ञासा इतनी प्रखर कि मिस्रके पिरामिडों और उनके संबंधकी गूढ विद्याके बारेमें भी वह जानती थी। दीवानखानेमें उसने जो चित्र रखे थे, वे भी ऊंची अभिरुचि व्यक्त कर रहे थे।

१९. ब्रह्मक्षत्री साहस

अब तो नमंगा होकर आम्बोसेलीके रेगिस्तान और अरण्यमें एक रात बिताकर नैरोबी जाना बाकी था। परन्तु रास्तेमें एक होशियार भारतीय युवक रजनीकान्त ठाकोरकी खेतीवाड़ी देखनी थी। वह यहां आल्डोनिऊ शाम्बाके नामसे पुकारी जाती है। वहां जाते हुए रास्तेमें ही जो पहाड़ियां दिखाई दीं, वे हरी, चिकनी और मनोहर थीं। खेतीबाड़ीमें अच्छे-अच्छे जानवरोंका पालन हम देख सके। गायें, सांड़ और अन्य पशु यहां खास शास्त्रीय ढंगसे रखे जाते हैं। गायका दूध इकट्ठा करके उसमेंसे मक्खनके उपरांत पनीर (चीज) बनाया जाता है। दूधमेंसे पनीर कैसे बनाया जाता है, इसकी सारी क्रियाएं हमने यहां देखीं। रजनीकान्तके पिता श्री सत्येन्द्र त्र्यंबक ठाकोर यहां बेटेसे मिलने आये थे। उनसे इस तरफका बहुतसा इतिहास जाननेको मिला।

हमारे लोग ज्यादातर देहात या शहरोंमें दुकान खोलकर देशी-विदेशी माल बेचनेका ही काम करते हैं। हाल ही में उन्होंने सायसल, बॉटल या शक्करके कार-खाने शुरू किये हैं। परन्तु खेतीवाड़ीका काम करनेवाले लोग नहीके बराबर ही हैं। इसलिए मोरोगोरोकी तरफके मगोलिया पटेल और आल्डोनिऊके ठाकोर दोनों उज्ज्वल अपवादके रूपमें नजरके सामने आते हैं।

गुजराती ब्रह्मक्षत्रिय जातिकी होशियारीका मैंने बखान किया, तो सत्येन्द्रभाई

कहने लगे : "परन्तु हमारे लोग घरघुस्सू हैं, यह आप क्यों भूल जाते हैं? इतने गुजराती यहां आये हैं, उनमें ब्रह्मक्षत्रियोंकी संख्या कितनी है? हमारे लोग अभिमान ही अभिमानमें रह गये।" हमारे लोगोंने अभी तक काफी होशियारी नहीं दिखाई, ऐसी आलोचना करके ही अपने लोगोंके प्रति अपनी आत्मीयता अनुभव करनेवाले कुछ लोग होते हैं। मेरी गणना भी इसी कोटिमें होती है, इसलिए मैं सत्येन्द्रभाईकी अपने लोगोंकी आलोचनाका रहस्य अच्छी तरह समझ सका।

२०. अभयारण्यमें प्रवेश

हम नमंगा पहुंचे। यहांसे आंबोसेली जानेका रास्ता फटता है। नमंगामें मराठी बोलनेवाले दो होशियार कोंकणी मुसलमान भाई रहते है। इनमेंसे मोहम्मद उमर साहबके साथ मेरी बहुत बातें हुईं। उनके पिताने और उन्होंने अंग्रेजोंको कैसा छकाया; अपने लोगोंका होनेवाला अपमान टालनेके लिए उन्होने यहां कैसे देशी होटल खोला वगैरा बातें उन्होंने कही। जंगलके जानवरोंके पीछे भटकनेकी धुनमें अगर किसीको दूसरा नंबर लेना पड़े, तो वह मोहम्मद उमर साहब नहीं। मोहम्मद साहबने आसपासके आदिवासी मशाई लोगोंकी इतनी ज्यादा सेवा की है कि ये लोग हरएक काममें उनकी सलाह लेते है और उन पर पूरी तरह विश्वास रखते हैं। होटल खोलनेके लिए जब उन्हें जमीन चाहिये थी, तब अंग्रेज लोग उन्हें जमीन मिलने नहीं देते थे। यह मुश्किल मालूम होते ही मशाई लोगोंने अपनी जमीनमेंसे अच्छा टुकडा निकाल कर दे दिया। सरकारी अफसरोंने मशाई लोगोंसे धमकाकर पूछा कि "हिन्दुस्तानी आदमीके प्रति इतना पक्षपात क्यों करते हो?" मशाई लोगोंके नेताओंने उड़ता हुआ जवाब देनेके बजाय सीधा ही कह दिया कि, "मोहम्मद साहब हमारे पुराने दोस्त है, हमारे हितैषी हैं। उनके प्रति पक्षपात करनेमें हमें खुशी ही होती है।"

कई तरफसे नदियोंका प्रवाह आकर जैसे समुद्रमें मिलता है, वही नमंगामें हमारे काफिलेका हुआ। डोडोमासे चले तब श्री अप्पासाहब, श्री इनामदार, सकुटुंब कमलनयन, सरोज, मैं और पंड्या इतने हम थे। अरुशासे श्री नरसीभाई और उनके भाई हमारे साथ हो गये। ङगोरोंगोरोसे श्री जशभाई देसाई, उनके लड़के निरजन और श्री शहाणेके लड़के अजित हमारे साथ शरीक हो गये। आल्डोनिऊसे श्री रजनीकान्त और मिल गये। 'सर्वे एव महारथाः!' अलबत्ता यह रथ तैलवाहन था। अब नमंगामें नैरोबीसे आये हुए डॉक्टर और श्रीमती नाथू, सौ० नलिनीबहन पंतकी सहेली श्रीमती लीला फाटक और चि० सरोजके बचपनके मित्र और सहपाठी श्री जाल कण्ट्राक्टर—ये सब आ पहुंचे। सारा काफिला उमंगके साथ आंबोसेलीके रेगिस्तान और अरण्यमें प्रवेश करने लगा।

मोटरें, लारियां और ट्रकों जैसे महारथ और उनमें बैठे हुए हम महारथियोंके अस्त्र-शस्त्र देखने लायक थे। बन्दूक और पिस्तौलके बजाय हमारे पास टॉर्च और दूरबीन थीं। हम जानवरोंको मारनेके लिए नहीं, परेशान करनेके लिए नही, परन्तु देखने के लिए निकले थे। जो कोई इस अभयारण्यमें प्रवेश करता है, उसे संकल्प कर ही लेना पड़ता है कि 'अभयं सर्व भूतेभ्यः; शम् नो अस्तु द्विपदे; शम् चतुष्पदे।' झाड़ और झंखाड़मेंसे हम पूर्व दिशामें चले। रास्तेमें थूहरके विशाल वृक्ष हमारा स्वागत कर रहे थे और कुछ कांटेदार पेड़ पक्षियोंको अभयदान दे रहे थे।

सो किस तरह? सांप और दूसरे प्राणी वृक्षों पर चढ़कर पक्षियोंके घोसलोंमें से अंडों और बच्चोंको खा जाते थे। इसके विरुद्ध उपायके तौर पर पक्षी अपने घोंसले हमेशा पेड़के सिरे पर, पतली पतली डालियोंके साथ, चीनी लालटेनकी तरह, लटका देते हैं। ऐसी डालियोंके नीचे अगर तालाबका पानी हो, तो ज्यादा अच्छा और डालियां अगर कांटेवाली हों तो वह और भी अधिक रक्षण है। इस प्रकार शत्रुसे हरएक प्रकारकी रक्षा करनेवाले ये तमाम पेड़ पक्षी जातिका आशीर्वाद लेते हैं।

कोई ३० मीलका जंगल पार करनेके बाद हमने दक्षिणका मार्ग लिया। वहां से सूखे हुए आंबोसेली सरोवरका रेगिस्तान शुरू होता था। जहां देखो वहां रेत, रेत ही रेत! और सामनेकी तरफ अपने पवित्र दर्शनोंका लाभ देनेके लिए किलिमांजारो खड़े ही थे।

सारा रेगिस्तान पार करके हमने अभयारण्यमें प्रवेश किया। वहां हिंस्र पशुओंने हमें अभयदान नही दिया था, परन्तु हमारे जैसे मनुष्योंकी सरकारने वहाके तमाम पशु-पक्षियोंको अभयदान दिया था। लम्बे समयकी सुरक्षितताके कारण यहांके पशु भी मनुष्यके प्रति बड़े सौम्य हो गये हैं। और इसलिए हम भी निर्भय हो गये थे। इस प्रकार सब तरहसे अभयारण्य माने जानेवाले इस प्रदेशमें हमने उत्सुक नेत्रोंसे प्रवेश किया। एक बात स्पष्ट करनी चाहिये। यहांके तमाम पशु-पक्षियों और वृक्ष-वनस्पतियोंको सिर्फ इंसानकी तरफसे हीअभयदान है। वे आपस में अहिंसक होनेके लिए बंधे हुए नहीं हैं। और बंधे हों तो खाएं क्या? और हाथी को अगर सूंडसे या सिरके धक्केसे पेड़ गिरानेकी लीला करनेको न मिले, तो बेचारे के लिए सारा जीवन बेस्वाद और भारस्वरूप बन जाय।

पूर्व जन्ममें हमने कौनसे पुण्य किये होंगे कि अनजान मुल्कोंमें ऐसे जंगलमें हम किसी धर्मात्मा सम्राट्की तरह भयानकसे भयानक पशुओंका अहिंसक शिकार कर सकें। जशभाईने कहा, हम जल्दीसे सामनेकी पहाड़ी पर जाते हैं, आप हमारे पीछे पीछे जल्दी आइये। शामके वक्त अकसर यहां हाथी इकट्ठे होते हैं। पहाड़ी परसे अच्छी तरह दिखाई देंगे।" जंगलका इलाका। यहां किसीने कोई रास्ते नही बनाये हैं। जैसे सूझे और जंचे वैसी मोटरें चलाना। मेरे मनमें क्षण-क्षण पर विचार आता

था कि संयोगवश मोटरें यहां अटक जायं तो हमारा क्या हाल हो ? कोई पशु क्रुद्ध होकर हमला कर दे और उसी समय मोटर फेल हो जाय, तो मनुष्य क्या कर सकता है ?

जब तक मृगयाका रंग नहीं जमा था, तभी तक ऐसे विचार मनमें आ पाये। एक बार उत्साहकी भट्टी गर्म हुई कि हम वहांके वातावरणके साथ एकरूप हो गये। जितना हमारा विश्वास अपने पैरों पर था, उतना ही मोटरोंऔर लारियोंपर जम गया। फिर तो खड्डे क्या और टीले क्या; झंखाड़ क्या और पत्थर क्या—हमारे लोगोंने मोटरें चला ही दीं। और मोटरें भी इतनी उमंगमें आ गईं थीं कि जिधर मोड़िये उधर मुड़ती थीं। मनुष्योंको भी चढ़ना कठिन प्रतीत हो, ऐसे स्थान तक पहाड़ी पर हमारी मोटरें चढ़ गईं। चार चार छः छः आंखोंसे हमने चारों किनारे देखे, परन्तु एक भी जानवर दिखाई नहीं दिया। मानो उन्होंने हमारे विरुद्ध षड्यंत्र ही कर लिया हो। हम निराश हो गये। कमी पूरी करनेके लिए संध्याकाल मनानेके खातिर पहाड़ी पर आया हुआ एक पक्षी हम पर हंसने लगा। इतना गुस्सा आया उस पर ! परन्तु करते क्या ? गुस्सेको जेबमें रखकर उतरे। खूब ही भटके। हाथीकी लीद कहीं भी दिखाई दे, तो यह देखकर कि वह ताजी है या सूखी हुई, हम साश या निराश हो जाते।

अब तो अंधेरा भी हो गया। मोटरोंके दीयोंने अपनी आंखें खोलीं, इतनेमें दूर भैंसके जैसी कोई कोई चीज दिखाई दी। नजदीक जाने पर निश्चय हो गया कि नाक पर सींगका भार उठानेवाला एक जबरदस्त गैंडा है। क्षण भरमें उसके पास ही हमने एक बच्चा देखा। विश्वास हो गया कि गैंडी है। अपने बच्चेको संभालती संभालती घूम रही है। हम घड़ी घड़ीमें दूरबीन चढ़ाकर देखते, फिर नीचे रख देते। मैंने देखा कि गैंडी लंगड़ाती है। किसी ऐसे ही दूसरे जबरदस्त प्राणीके साथ झगड़ा हुआ होगा। हमने विचार किया कि सवेरे अगर उसके खूनकी बूंदें दिखाई दें, तो इसका स्थान ढूंढ़ निकालेंगे।

दूसरी पार्टीमें कमलनयन वगैरा थे। उन्हें तीन सिंह दिखाई दिये। हम उस तरफ पहुंचे तो ये तीनों सिंह ऐसे खिसक गये कि उनमेंसे एक ही की पीठ जरा दिखाई दी। सिंहकी जांघ या उसकी दुम पहचाननेमें देर नहीं लगती। कहने लगे कि इस ओर तीन तीन नहीं कोई १५ सिंह घूम रहे थे। खैर, हम जरा ऊबकर अपने डेरेकी तरफ मुड़े। इस अरण्यमें कुछ सरकारी झोंपड़े हैं। उनमें और लोग रहे थे या नहीं सो पता नहीं। परन्तु हमारा डेरा दूसरी जगह स्वतंत्र था। उसका स्थान खोज निकालनेमें देर लगी। डेरेमें जाते ही उसका बादशाही ठाठ देखकर मैं तो हक्का-बक्का ही रह गया। आश्रमवासी यात्री हूं या कोई अरण्य-रसिक शाहजादा हूं ? छोटे छोटे कई तम्बू—उनके आगे बरामदे जैसे शामियाने, कुरसी, मेज, गद्दे, लालटेनें, खानेपीनेकी हर किस्मकी चीजें—सोडा, लेमनेड, कोको-कोला,

फल, मेवे इत्यादि —एक भी वस्तुकी कमी नहीं थी। जंगलमें पीने लायक स्वच्छ पानीकी सुविधा शायद ही मिलती है। राजा दुष्यन्तके साथ शिकारमें जानेवाला उसका दोस्त माढव्य भी शिकायत करता था कि शिकारमें जाने पर जंगलके पत्ते सड़नेसे कड़वा जहर हो गया पानी पीना पड़ता है और रथमें बैठकर श्वापदोंके पीछे दौड़नेमें शरीरकी तमाम हड्डियां ढीली हो जाती हैं। यहां लोहेके एक बड़े पीपेमें पीने लायक पानी भरा था। वही हमारा हौज और वही हमारी टंकी था। पीपा जरा जमीन पर उलटकर हमें लोटा दो लोटा जितना चाहिये पानी दे देता। कुछ पंजाबी बहनें खास तौर पर आकर हमारे लिए पूरियां तल रही थीं और तरह तरहके साग तैयार कर रही थी।

शिकारका व्यवसाय करनेवाले यूरोपियन लोग इधर बहुत हैं। उनके बराबर ही या उनसे ज्यादा होशियार हमारे एक भाईने भी यह व्यवसाय हाथमें लिया है। इनका नाम है श्री तरलोकसिंह। उन्होंने और उनके साथी श्री राणाने अप्पासाहब के प्रेमके कारण और स्वदेशमे महात्माजीके आदमी खास तौर पर आये हैं, इस खयालसे हमारे लिए दूर दुर्गम जंगलमें तमाम सुविधाएं जुटा दी थी। और स्वयं आकर तमाम बातों पर देखरेख रखते थे। इतना ही नहीं, खुद सारा काम भी करते थे। बर्तन वगैरा धोनेके लिए पानीकी सहूलियत देखकर ही कैम्प खड़ा किया गया था। यही स्थान हाथियोंका भी माना हुआ होनेके कारण शामको जब तम्बू तन रहे थे, तब कुछ हाथी यहां दर्शन देकर गये थे। परन्तु हमारे भाग्यमें उस रात को उनका दर्शन नहीं लिखा था।

जंगलमे इतनी सुरक्षितता अवश्य होती है कि जहा धूनी जल रही हो या मनुष्योंके हाथोंमें मशालें हों, वहां जंगली जानवर पास नहीं आते। परन्तु बीस पच्चीस कदम आगे जाने पर आप सुरक्षित नहीं हैं। कोई जानवर ताकमे बैठा हो, तो पशदेवोंके लिए भी दुर्लभ हमारा लहू उसे चखनेको मिल जाय। इसलिए रात को अग्निके प्रकाश जितनी दुनिया ही सुरक्षित माननी चाहिये। परन्तु शौच जाने की हालत हो तब क्या किया जाय? हाथमें टॉर्च और लोटा लेकर अंधेरेमें गये बिना काम नहीं चल सकता। पशुओंका डर और मनुष्यकी शर्म दोनोंके बीच प्रसंगानुसार उचित हिसाब लगाकर मैंने अन्तर तय कर लिया। बिल्लीकी तरह मिट्टीमें खड्डा किया और उसी मिट्टीको खड्डा भरनेके लिए काममें ले लिया और आरामसे लौट आया। खा-पीकर तम्बूमें आकर बैठे और प्रार्थना की। मनमें विचार आया कि हिन्दुस्तानसे चार हजार मील दूर, श्वापदाकीर्ण इस जंगलमें हिन्दुस्तानके लोग कितने आये होगे? और उनमें भी गंभीरतापूर्वक भगवानका स्मरण करके वैदिक मंत्रोंसे प्रार्थना करनेवाला क्या कोई आया होगा! भारतके समस्त ऋषि-मुनियोंका स्मरण करके मैंने भक्तिभावसे प्रार्थना शुरू की। श्री जाल कण्ट्राक्टर उसमे प्रेमसे शरीक हो गये। और भी कई लोग थे। प्रार्थना हुई और

हमने सोनेकी तैयारी की। इतनेमें पता चला कि श्री अप्पासाहब, कमलनयन और कुछ और लोग चुपचाप खिसक कर शिकारी जानवर देखने निकल गये है। हम झुंझलाये। मैंने तुरन्त मोहम्मद साहबसे कहा, 'अगर लारी तैयार कर सकें तो हम भी चलें।' हम गये। घोर अंधकारमें—अनजान जंगलमें—हम चले। मोटरों के आने जानेसे जो रास्ते पड़ जाते हैं, वे रातको अच्छी तरह दिखाई नही देते। कहीं कहीं झूठा भ्रम भी हो जाता है कि रास्ता होगा। भटकते भटकते हमें अप्पा-साहब वाली पार्टी लौटती हुई दिखाई दी। उन्होंने कहा कि, 'एक गैंडेने हम पर हमला किया था। हम वहांसे भागे परन्तु दिशा भूल गये। टकराते और कुटते-पिटते वापस आ रहे हैं।' हमारे जीमें आया कि हमें भी कुछ न कुछ अनुभव लेना चाहिये। हम भी पेट्रोल या लारी पर दया किये बगैर खूब भटके। श्वापद भले ही न मिले हों, परंतु मोटरके प्रकाशमें झाड़-झंखाड़के तने दिखने और पगपग पर जोखम उठानेका मजा तो आया ही। अपवादके रूपमें एक गैंडा चरता हुआ और एक जरख हमसे डरकर भागता हुआ दिखाई दिया। गैंडेके देखते ही भाई जालको काव्य सूझा और उन्होंने ललकारा: "छुप छुप बैठे हो जरूर कोई बात है, पहली मुलाकात है, पहली मुलाकात है!" उस गैंडे पर इस प्रेमकाव्यका कोई असर हुआ हो, ऐसा लगा नही। गैंडे लोगोंका प्रेम करनेका ढंग कैसा होता है, यह हम कहां जानते है?

हम इतने थक गये थे कि दूसरे दिनका सदुपयोग करनेका सकल्प न होता, तो सुबह आठ बजे तक उठते ही नही।

नीद तो चार ही घंटे मिली, परन्तु हम इतने गहरे सो लिये कि चार बजे ताजा होकर जगे और फिर प्रार्थना करके तैयार हो गये।

साढ़े पांच बजे निकल गये। दिन उगा। परन्तु भाग्य जागनेके लक्षण नहीं दिखाई दिये। खूब भटकते भटकते दूर एक हाथी दिखाई पड़ा। हमने तरसती आंखों से उसे देख लिया। इतनेमें वह पासके एक गावके खेतमें जाकर गायब हो गया। अफ्रीकाके हाथियोंके कान बहुत ही बड़े और चौड़े होते हैं। हममेंसे दो जने मोटरसे उतर कर हाथीके पीछे दूर तक चले गये थे। वक्त बचानेके लिए हमने उन्हे वापस बुलवा लिया। उस हाथीके मुख पर ऐसा भाव दिखाई नही देता था कि हम सारे प्रदेशमें अकेले पड़े हैं। "मुझे क्या? सारा राज मेरा ही है", ऐसी अनिरुद्ध चालसे गजराज घूम रहे थे। 'मुबारक हो आपको अपना राज्य' कहकर हम वहांसे चल दिये। मोरनी और मुर्गीके बीचका रूप धारण करनेवाले गिनीफाउल, कुछ बंदर और चार पांच तरहके हिरण हमने देखे। उन्हें देखनेमें मजा तो आया। परन्तु यह हमें कैसे महसूस होता कि उनके दर्शनोंसे हमारा मन कृतार्थ हुआ? हम तो तरस रहे थे सिंह, हाथी, गैंडे और महिष जैसे प्रचंड और भयानक प्राणी देखनेको। अंत-में एक दिशासे निराश होकर हम दूसरी तरफ गये। वहां हाथियोंकी ताजा लीद देखकर हमारा उत्साह बढ़ा। वहां थोड़ी दूर पर दो हाथी घास उखाड़ते, मिट्टी

उड़ाते स्वच्छंद खड़े थे। इन्सानको देखकर हाथी भड़कता नहीं। लेकिन अगर इन्सान आवाज करे या हवाके कारण इन्सानकी गंध उसकी सूंड़ तक पहुंच जाय, तो हाथीको क्रोध आता है। इसलिए हम खुल्लमखुल्ला परन्तु चुपचाप मोटरमें उतरकर हाथीकी तरफ जाने लगे। हाथीने हमें देख लिया, परन्तु अपना वनविहार रोका नहीं। जब हम विशेष नजदीक गये, तब उसे पसन्द नहीं आया। हमें धमकाने का भी उसका इरादा नहीं था। उसने सिर फेर लिया और धीरे-धीरे वहांसे खिसक गया। तब हमने उसे छोड़कर दूसरे हाथीकी तरफ अपनी मोटर हांकी। फिर उतर-कर हम उसके निकट गये। उसने भी थोड़े समय हमें सहन करके नया रास्ता ले लिया। यह समझकर कि दिन सफल हुआ, हम लौट रहे थे कि हमारे साथके एक अफ्रीकीने इशारा किया कि 'पास ही एक सिम्बा (सिंह) है।' तुरन्त हमारा सारा ध्यान हमारी दोनों आंखोंकी पुतलियोंमें आकर बैठ गया। परंतु हमें शेरको देखनेकी जितनी उत्कंठा थी, उतनी उत्कंठा शेरको इन्सानको देखनेकी नहीं थी। इसलिए वह हमारी मोटरके नजदीककी घास और झाड़ियोंमेंसे बाहर आकर दूसरे रास्तेसे भीतरकी तरफ लुप्त हो गया। अयाल नहीं थी इसलिए हम समझ गये कि सिंहनी हैं। सिंह ताकतवर जानवर भले ही हो, परन्तु क्रूर नहीं दिखाई देता। उसके मुंह पर सज्जनता छाई होती है। उसमें जरासी तुच्छताकी छटा होती है, जो इन्सानको देखकर यों ही बढ़ जाती है। सिंहनीने हमारी तरफ देखा और चली गई। परन्तु इतनेसे हम पर यह असर पड़ गया कि हम लोग उसकी नजरमें कुछ नहीं। सिंहको देखनेके आनन्दमें अपमान और तिरस्कारकी यह भावना मिलाकर ही हमें लौटना पड़ा।

सारा सामान मोटरों और लारियोंमें भर लिया और पिछली रात और आज-की सुबह जिन भाई-बहनोंने हमारी सेवामें बिताई थी, उनका आभार मानकर हम रवाना हुए।

बहुत कुछ देखा। हमारी वनयात्रा सफल हुई, यह भावना लेकर हम लौटे। इतनेमें एक आदमीने आकर हमारे कानमें कहा, 'जरा मुड़कर बायें जायंगे तो वहां कितने ही हाथी हैं।' हमारी उत्सुकता तुरंत जग उठी और हम हाथियोंकी तलाश-में निकल पड़े। हमें अधिक भटकना भी नहीं पड़ा। एक, दो, चार करते-करते आठ हाथी हमने पेड़की डालियां तोड़कर पेटको अर्पण करते देखे। हम उतरकर हाथियों-की तरफ चलने लगे। उनमें एक हाथी छोटा था। उसकी नजर हम पर सबसे पहले पड़ी। उसने अपनी सूंड़ हमारी तरफ उठाई और दोनों कान चौड़े फैलाकर हमें सूचित किया कि, 'आप लोग कितने ही अच्छे हों, हमारे खयालसे इष्ट नहीं हैं।' हाथी सूंड़ ऊंची करे और कान फैलाये, तो समझ लेना चाहिये कि वह नाराज हो गया है। हम जरा ठिठके और छोटा हाथी नरम-नरम डालियां तोड़कर खाने लगा। हमारी हिम्मत बढ़ी तो आगे चले।

अगर हाथी हम पर हमला करते, तो हम सही-सलामत मोटर तक दौड़ सकते या नहीं, यह सन्देहास्पद है। और मोटर भी हाथीके आगे सुरक्षित नहीं है। मोटरका पहिया सूंड़में पकड़कर उसे उलट देनेमें हाथीको देर नहीं लगती। और दो हाथी मिलकर मोटरको मत्थेसे धक्का लगायें तो तुरन्त स्वीकार करना पड़े कि मोटर लोहेकी नहीं परन्तु मोमकी बनी हुई थी। फिर भी हम जिज्ञासासे कुछ-न-कुछ आगे बढ़े। आज तक इस जिज्ञासाके कारण कम लोगोंने प्राण नहीं गंवाये। परंतु जिज्ञासा कभी-कभी जिजीविषासे भी अधिक प्रबल सिद्ध होती है। हमारा अविनय देखकर हाथी नाराज हुए। परन्तु हम पर क्रुद्ध नहीं हुए। मत्थेरे उठकर इन दो पैरवालोंको कौन छेड़े, यह विचार करके इन लोगोंने उस स्थानको छोड़कर जाना तय किया। परन्तु व्यवस्था न रखें तो वे हाथी नहीं। तलवार निकाली हुई हो, इस तरहके दो दांतोंवाला एक बड़ा हाथी सबसे पीछे रहा। एक आगे चला। हथिनी और बच्चे बीचमें रहे और इस प्रकार आठोंका यह जुलूस एकके बाद एक वनमें चला गया। न [illegible]ाजी जरा भी नहीं पाई जाती थी। मानो वे ये समझते हुए चले कि वनदेवीकी सवारी गभीरताके साथ ही चलनी चाहिये। हमने वह जुलूस जी भर कर देखा। उसके चले जानेके बाद हम थोड़े समय वहां खड़े ही रहे, मानो देखा हुआ सारा दृश्य हमारे समक्ष विद्यमान ही हो!

पालतू हाथियोंके जुलूस हम कई बार देखते हैं। आठ-आठ दस-दस हाथी, अरे पचास हाथी तक हम ला सकते हैं। परंतु स्वच्छंद विहार करते हुए आठ हाथियोंको एक जगह कौन ला सकता है? और वे आठ कैसे! लम्बे-लम्बे और मुड़े हुए दातोंवाले पेड़ोंकी छोटी-मोटी डालियां तोड़कर खा जानेवाले। मैं इन प्रचंड गंभीर प्राणियोंको देखकर धन्य-धन्य हो गया। जब उनका जुलूस चला तब मालूम हो रहा था, मानो समस्त वनकी महत्ता चल रही हो। वह दृश्य जन्मभर भुलाया नहीं जा सकता।

लौटते समय हमारी पार्टियां अलग-अलग हो गई। जो जल्दी रवाना हुए, वे सीधे रास्ते गये। हम अपने गजानन्दकी जुगाली करते-करते चले। और दाहिनी ओर जानेके बजाय बाईं तरफ मुड़े। हमारी दिशा ठीक है या नहीं, इसकी जांच करनेके लिए मैं बार-बार पीछे मुड़कर किलिमांजारोकी तरफ देखता था। मुझे लगा कि कोई भूल हो रही है। परन्तु मोटरकी पगडंडी दूसरी नहीं थी। मैं नकशा देखता जाऊं और कहता जाऊं कि "दिशा-भूल हो गई है।" और लोग कहे "नहीं, ठीक है।" सभी अनजान! हरएकके दिमागमें आत्मविश्वास और अविश्वासकी लहरें एकके बाद एक उठती जाती। जो आदमी विश्वासके साथ चलता, वह कुछ समयके बाद विश्वास खो बैठता, तब तक दूसरे मस्तिष्कमें गड़बड़ी हो जाती। फिर वह दिशा बताना स्वीकार करता और नया घोटाला कर देता! 'नैको मुनिर्यस्य वचः प्रमाणम्'—एक भी ऐसा समझदार नहीं मिलता था कि जिसके वचनको

प्रमाण मानकर चला जा सके।

एक बार तीन महाराष्ट्री वनमें घूम रहे थे। उन्होंने एक नेवला देखा। एक आदमी बोल उठा, "मुमंग, मुमंग, मुमंग!" दूसरा क्रुद्ध होकर बोला, "सुमंग सुमंग क्या करता है? इसका नाम तो मुसंग है।" तीसरा समझदार बनकर कहता है, "जान लिया, जान लिया! इसका नाम घूमसं।" नेवलेके लिए मराठीमें सच्चा नाम है मुंगुस! उन्हींके जैसी हमारी स्थिति थी। संतोष इतना ही था कि वक्त सवेरेका था। हम रेगिस्तानमें उगी हुई छोटी घास परसे जा रहे थे, इसलिए दूर तक देख सकते थे। और पेटमें नाश्ता था और मोटरमें पेट्रोल था। हम इस तरहसे दिशा बदल-बदल कर जा रहे थे कि किसी अनजान आदमीको ऐसा लगता कि इन लोगों को किसीने आम्बोसेलीकी लम्बाई चौड़ाई बाकायदा माप लेनेका सर्वे (survey) का काम सौंपा है। और ये लोग उसे एक खास समयके अंदर पूरा करके इनाम कमानेके लिए भागदौड़ कर रहे हैं।

पहले तो रास्ता भूलनेमें भी मजा आया, परंतु धीरे-धीरे नाश्ता पचने लगा और पेट्रोलका धुआं हो गया। अब अगर रास्तेमें ही पेट्रोल खतम हो जाय तो? हमने मोटरका भोंपू बजाकर दसों दिशाओंमें घोषणा कर दी कि हम रास्ता भूल गये हैं। परन्तु वापस प्रतिध्वनि करनेके लिए कोई पहाड़ी भी नजदीक नहीं थी। ध्वनि अंतरालमें विलीन हो गई और मैदानकी शांति पूर्ववत् स्थापित हो गई।

काफी वक्त निकलनेके बाद हमारी ही पार्टीकी एक मोटर दाहिनी ओर दूर-दूर धूल उड़ाती हुई दौड़ती दिखाई दी। हमने उन्हें देख लिया और उस दिशामें दौड़ लगाई। परंतु वे स्थिर नहीं थे। बीचमें कोई रास्ता मिलता तो यह समझकर कि वह हमसे ज्यादा समझदार है, उसकी सलाहके अनुसार चलते। परंतु वह कोई हमारे लिए वहां खड़ा नहीं था। थोडासा आगे जानेके बाद मूक रास्तेकी सलाह मानने पर पछताकर हम फिर अपना दिमाग चलाते। इस प्रकार करते-करते मैदान पार करके हम झाड़ियोंके जंगलमें पहुंचे। वहां रास्ता मिलनेमें काफी देर लगी। मोटरको सख्त भूख लगी थी। वह कोई मनुष्य नहीं कि खुराकके बगैर काम चला सके।

दोपहर होते हुए भी पक्षियोंके घोसलोंने हमारा प्रेमसे स्वागत किया, हमें आगेका रास्ता बताया और हम ज्यों-त्यों करके नमंगा पहुंच गये और वहां थोडा खा लिया।

नमंगा, जो हमारा कल मिलन-स्थान था, आज विदाई और बिखर जानेका स्थान बना। कुछ लोग अरुशाकी तरफ गये, कुछ नमंगामें ही रह गये और बाकीके सब लोग तीन मोटरोंमें बंट गये, और नैरोबीकी तरफ चल पड़े। रास्ता सुन्दर था। यहां अभयारण्यका आश्रय न लेनेवाले कितने ही श्वापद हमारे देखनेमें आये। खास तौर पर जिराफ, शुतुर्मुर्ग, बुद्दू और चित्राश्व। १०२ मीलका रास्ता काट-

कर हम नैरोबी पहुंचे। अब नैरोबी शहरके पास स्थित अभयारण्य हमें सादा और बेमजा लगने लगा! उसी दिन मुझे स्व० गिजुभाईकी पुण्यतिथिकी सभामें जाना था, इसलिए हमारी मोटरने विशेष वेगसे दौड़ लगाई। हम नैरोबी पहुंचे और हमारी पूर्वी अफ्रीकाकी यात्राका पूर्वार्ध पूरा हुआ।

२१. फिर नैरोबीमें

नैरोबीमें दो दिन रहकर हम युगांडाकी यात्रा पर निकलनेवाले थे। नैरोबीमें आते ही भाई वसन्त नायक और श्रीमती कान्ताबहनके स्वामित्वके बालमंदिरकी तरफसे होनेवाले गिजुभाई-उत्सवमें मुझे भाग लेना था। मैंने इन लोगोंसे कहा कि, "स्वर्गीय गिजुभाईने बालशिक्षाके लिए फकीरी ली, उससे पहले वे वकालत करनेके लिए पूर्वी अफ्रीका आये थे और उन्होंने स्वाहिली भाषा सीखी थी। यह बहुत लोगोंको मालूम नहीं होगा। आज गिजुभाईके ४० शिष्य उसी पूर्वी अफ्रीकामें बालशिक्षाका काम कर रहे हैं। यह कितना सुन्दर है!" बालशिक्षाका महत्त्व लोगोंको समझाया और खानगी संस्थाओंको भी खुले हाथों मदद देनेकी सिफारिश की।

रातको भाई इब्राहीम नाथूके यहां भोज था। बहुतसे यूरोपियन आये थे। मैंने एक छोटासा भाषण दिया। बादमें प्रश्नोत्तर हुए। हालांकि यूरोपियनोंने प्रश्न नहीं पूछे, परन्तु उनकी बातें प्रश्नके रूपमें ही इब्राहीमभाईने रखी। उन्होंने कहा कि, "हिन्दुस्तानी लोग छोटे-छोटे धन्धोंमेंसे अफ्रीकियोंको खदेड़ रहे हैं और इसलिए कुछ लोगोंका यह विश्वास है कि वे अफ्रीकियोंके शत्रु हैं। इस बारेमें आपका क्या कहना है?"

मैंने कहा, "आपने प्रश्न अच्छा पूछा। जबसे पूर्वी अफ्रीकामें आया हूं, तबसे हर जगह अपने देशके लोगोंसे शिकायत करता रहा हूं कि, 'आप अफ्रीकी लोगोंके साथ काफी मिलते-जुलते नहीं। आपको अपने धन्धोंकी खूबियां उन्हें सिखानी चाहिये, उन्हें साथ लेना चाहिये,' वगैरा वगैरा। इसलिए, आज अगर उनके पक्षमें जो कुछ कहने लायक है, वह कह दूं तो उनके साथ कुछ न कुछ न्याय होगा और मेरा भी भला ही होगा।

"आप कहते हैं कि, 'छोटे-छोटे धन्धोंमेंसे हिन्दुस्तानियोंने अफ्रीकी लोगोंको निकाल दिया है।' इसका जवाब क्षणभर बाद दूंगा। परन्तु बड़े-बड़े धन्धोंका क्या हाल है? सबसे बड़ा धन्धा राज्य करनेका है! वह तो अफ्रीकियोंके हाथमें था। पर अब किसके हाथमें चला गया है?

"अब मुझे बताइये कि कौन-कौनसे धन्धे अफ्रीकियोंके हाथमें थे, जो हिन्दु-

स्तानियोंने उनसे छीन लिए हैं ? ऐसा एक भी धन्धा बता सकेंगे ? उल्टे मैं आपको ऐसे उदाहरण दे सकता हूं, जहां बेचारे हिन्दुस्तानी ऐसे जंगली इलाकेमें जाकर रहे, जहां अंग्रेज भी नहीं पहुंच सकते; और वहां बिलकुल नंगे रहनेवाले लोगोंको एक-एक शिलिंग न एक-एक पायजामा देकर कपड़ा पहननेवाले बनाया। जो काम वे खुद करते, उसमें अफ्रीकियोंको सहायक बनाकर हमारे लोगोंने उन्हें बढ़ईका काम सिखाया, दर्जीका काम सिखाया, और तरह-तरहका भोजन बनाना सिखाया। इसीलिए तो वे लोग अंग्रेजोके यहां उपयोगी नौकर बन गये।

"हमारे लोगोंने यहां रेलवे बना दी। उस काममें कितने ही भारतीय भाई जंगली जानवरोंके पेटमे पहुंच गये, कितने ही मलेरियाके शिकार बन गये। इस प्रकार हमारे लोगोंने यहां अंग्रेजों और अफ्रीकियोंकी कम सेवा नही की। यह सही है कि हम लोगोंको वड़े-वड़े शब्दोंमें अपनी सेवाका बखान करना नही आता। ऐसे भी लोग होते हैं जो बेशुमार धन भी लेते हैं और सेवाकी बात करते है। और ऐसे लोग भी होते हैं जो जानकी जोखिम उठाकर सेवा करते हैं, केवल पेट भर लेते हैं और सेवाका नाम लेनेमें संकोच अनुभव करके नम्रतापूर्वक कहते हैं कि, 'हम यहां पेटके लिए आये हैं।' ऐसे लोगोंकी निन्दा करना किसीको भी शोभा नही देता।

"और दूर जंगलमे दुकान खोलकर रहनेवाले हमारे लोग कमाते भी कितना हैं ? अगर वे ऐश-आराममे रहकर फिजूलखर्ची करते और दुराचार फैलाते तो उनके हाथमे कुछ न रहता। हमारे लोगोंका स्वभाव है कि वापका कर्ज सिर पर न रखें। कानूनके अनुसार कर्ज चुकाना लाजिमी न हो, तो भी लड़का बापका कर्ज चुकाये बगैर नही रहता। इस प्रकार अगर किसीने यहां किफायत करके रुपया वचाया हो और हिन्दुस्तानमे भेजकर बापको ऋणमुक्त किया हो या किसी शिक्षासंस्थाम या मंदिरके जीर्णोद्धारके लिए रुपया दिया हो, तो इसकी इतनी शिकायत क्यों ? हमारे लोगोंने अफ्रीकियोंका सारा देश कब्जेमें तो नही किया; इनके बीच रहकर वे सेवा ही करते रहे हैं। हमारे लोगोंकी रक्षाके लिए फौज नहीं रखनी पड़ी। हमारा रहना अफ्रीकियोंको अगर बुरा लगता, तो जंगलोंमें हम अरक्षित और अकेले जाकर रह नही पाते।

"अब मैं उनसे कहता हूं कि आप शिक्षामे आगे बढ़िये। अपने बच्चोंको अच्छी-से अच्छी शिक्षा दीजिये। अफ्रीकियोंको भी उसका लाभ दीजिये। यहाका रुपया यही खर्च कीजिये। आप जिस देशमें रहते हैं, वह कॉमनवेल्थका सदस्य है। हम भारतवासी भी राजी-खुशीसे इस कॉमनवेल्थमें रहे हैं, इसलिए अंग्रेजोंके साथ हमारा संबंध मित्रतापूर्ण रहना चाहिये।

"वंशभेदके कारण उत्पन्न होनेवाला अलग-थलगपन किसी दिन अवश्य दूर होगा और हम सब मिलकर इस देशमें विश्व-कुटुम्बकी स्थापना कर सकेंगे।"

इन्ही दिनों विलायतके एक प्रसिद्ध पत्रकार आये हुए थे। कहा जाता है कि

उन्हें हिन्दुस्तानियोंसे न मिलने देनेका पूरा प्रयत्न हुआ था। परन्तु इस भोजमें उन्हें निमंत्रण दिया गया और वे आये। उन्होंने शर्त रखी थी कि "मैं आ तो जाऊंगा परन्तु मुझसे बोलनेके लिए न कहियेगा।"

मेरे भाषणके बाद उन साहबसे नही रहा गया। उन्होंने कहा, "आजके मेहमान नम्रतासे कहते हैं कि 'इस देशमें केवल दो महीने रह कर सर्वज्ञकी तरह उपदेश करनेका—'ग्लोब ट्रॉटर' का काम मैं नही करूंगा।' मैं तो यहां तीन ही दिनसे आया हूं और फिर भी अपनी राय देना चाहता हूं! तीन बरस पहले इसी तरह एक बार मैं यहां आया था। उस वक्त हिन्दुस्तानियोंके बारेमें बहुतसी प्रतिकूल बातें सुनी थी। इस बार कम्पालामें मैंने देखा कि एक भारतीयने उस शहरको बढ़िया पार्क दिया है! एक टाउन हॉल बना दिया है। इन लोगोने अफ्रीकी लोगोंके लिए छात्रवृत्तिया दी हैं। मैं समझ नही सकता कि वे क्या करें? ये लोग अगर थोड़ा पैसा स्वदेश भेज दें, तो कहा जाता है कि They are bleeding Africa white—वे अफ्रीकाका खून चूस रहे है; और यहां घरबार बना कर यहांके होकर रहना तय करें, तो कहा जाता है कि ये लोग अफ्रीकाको खरीदने बैठे हैं। तो आखिर ये लोग करे क्या? इस समय इन २० मिनिटोंमें मैं जितना समझ सका हूं, उतना बहुत घूमकर भी न समझ सकता। आपके जैसे लोगोंको यहां अकसर आना चाहिये और गलतफहमियां दूर करनी चाहिये।"

हमारे दोनोके भाषणोंका यूरोपियन मेहमानों पर क्या असर हुआ सो जाननेमें नही आया। हिन्दुस्तानी मेहमान खुश हुए, इसमे आश्चर्य नही। परन्तु मैं मानता हूं कि उन्हें अपने कर्तव्यका भान हुआ। श्री बार्टलेटकी मौजूदगीका परिणाम बहुत अच्छा हुआ।

दूसरे दिन सवेरे यहांकी एक प्रारम्भिक पाठशालाके आचार्य मिलने आये। उन्होने शिक्षण-कलाका एक सवाल छेड़ा कि, 'प्रारम्भ अक्षरोंसे किया जाय, शब्दोसे किया जाय या वाक्योंसे किया जाय? प्रारम्भिक इकाई किसे माना जाय?' राजनीतिक और सामाजिक बातें कर करके ऊबे हुए मुझको यह विषयान्तर खूब भाया। मैंने उनसे कहा कि, "गुजराती, हिन्दी वगैरा स्वभाषा सिखाते वक्त हमें लेखन द्वारा भाषा सिखानी ही नही चाहिये। हमे भाषाका ज्ञान प्रारम्भमें मौखिक ढंगसे ही देना चाहिये। लेखनकी जल्दी नहीं करनी चाहिये। लिखना-पढ़ना सीखनेसे पहले बालक सुन्दर साहित्य—गद्य और पद्य—बहुतसा सुनें, कंठस्थ करें, संवादोंका अभिनय करें, पत्र लिखायें, वर्णन लिखाये। इतनी तैयारी होनेके बाद भाषाकी इकाई ढूढनेकी जरूरत नही। विचारोंकी इकाई वाक्य है, इस बारेमे शंका नहीं। परन्तु लिखनेमें सच्ची इकाई अक्षरमे भी नही और शब्दमें भी नही, सच्ची इकाई 'सिलेबल' है। सिलेबलका अर्थ है एक स्वर और उसके आधार पर बोले जानेवाले एक या अधिक व्यंजन मिलकर तैयार होनेवाली ध्वनि। यह सिलेबल ही हम बारह-

खड़ी द्वारा बच्चोंको सिखाते हैं। हमारे अक्षर 'लेटर्स' नहीं, परन्तु 'सिलेबल्स' हैं। हरएक अक्षरके भीतर आकार छिपा ही रहता है। इसलिए अंग्रेजीमें जिस ढंगसे इस विषयकी चर्चा होती है, वही ढंग हमारी भाषामें लानेकी जरूरत नहीं।" मेरे संक्षिप्त उत्तरसे मेरे उस व्यवसाय-बन्धुको पूरा संतोष नहीं हुआ। मेरे पास अधिक समय होता, तो यह सब विस्तारपूर्वक समझता।

मेरे एक मित्रके एक सम्बन्धी लिसोटोमें रहते थे। वे अपनी पत्नी और बच्चेको लेकर मुझसे मिलने आये। वे डॉक्टर थे और आगे पढ़ाईके लिए विलायत जाना चाहते थे। उनके सामने यह सवाल था कि पत्नीको साथ लेकर उन्हें नर्सिंगके लिए तैयार कर लिया जाय तो दोनोंके लिए ठीक रहे। परन्तु छः बरसके बच्चेका क्या किया जाय? माता-पिताके सहवासके कारण बालकमें उसकी उम्रके हिसाबसे ज्यादा समझदारी आ गई दिखाई दी। वह अकेला हिन्दुस्तान जाने और वहां किसी बोर्डिंगमें रहकर आगे पढ़नेको तैयार हो गया। छः वर्षका लड़का अफ्रीकासे हिन्दुस्तान अकेला जानेको तैयार हो जाय और मां-बापके लौटने तक अकेला रहनेको तैयार हो जाय, यह हम लोगोंके लिए मामूली बात नहीं। मां-बापको मैंने आवश्यक सलाह दी और उनकी इस हिम्मतके लिए उन्हें बधाई दी। अफ्रीका जैसे दूर देशमें आकर रहनेमें कुटुम्बमें कैसे सवाल पैदा होते हैं और उन सवालोंमें निपटनेकी कितनी हिम्मत हमारे लोग पैदा कर लेते हैं, इसका नमूना दर्ज करनेके लिए ही यह किस्सा मैंने खास तौर पर यहां दिया है।

जैसे मुझे श्री गिजुभाई-उत्सवमें भाग लेना था, वैसे ही इस बार नैरोबीके महाराष्ट्र मंडलके मकानकी कोण-शिला (कॉर्नर स्टोन) रखनेका काम भी करना था। महाराष्ट्रियोंके मेरे प्रति सद्भावके लिए मैं सदा उनका ऋणी रहूंगा। बात यह है कि मेरी शिक्षा पूरी हुई तबसे, यह कहा जा सकता है, मैं महाराष्ट्रमें रहा ही नहीं। ज्यादातर गुजरातमें रहा हूं और फिर सारे देशमें घूमता ही रहा हूं। परिणामस्वरूप महाराष्ट्रियोंके साथ मेरा संबंध बहुत ही कम माना जा सकता है। महाराष्ट्रके लोग लोकमान्य तिलककी राजनीतिक कार्यपद्धतिको विशेष जानते और मानते हैं। गांधीजीकी पद्धति उनके गले उतरनेमें मुश्किल होती है। इस कारण भी वे मेरे साथ मिलने-जुलनेमें कुछ-कुछ संकोच अनुभव करते हैं। लोकमान्य तिलक और महात्मा गांधी दोनों स्वराज्य-प्राप्तिके लिए प्रतिज्ञाबद्ध थे, दोनों महान देशभक्त थे, दोनोंके मनमें एक-दूसरेके लिए असीम आदर था। फिर भी दोनोंकी कार्यपद्धतिमें कुछ मौलिक भेद था। यह भेद समझकर अपनी मान्यता और अभिलाषाके अनुसार स्वराज्यकी सेवा करना दोनोंके अनुयायियोंके लिए मुश्किल नहीं था। परन्तु जहां पद्धति-भेद आया, वहां विवेक छोड़कर भी आपसमें चर्चा करना और भेद बढ़ाना इन लोगोंका स्वभाव था, उन्होंने दोनों ओर मामला बिगाड़ा। इस परिस्थितिका बहुत अनुभव किया हुआ होनेके कारण मुझे जब महाराष्ट्री अपनाते

हैं और किसी खास अवसर पर बुलाते हैं, तब मनमें कृतज्ञताकी भावना पैदा हुए बिना नही रहती। परन्तु जब उनसे मिलता हूं, तब केवल शिष्टताकी चार बातें कहकर वापस नहीं चला आता। बहुतसी बाते साफ-साफ कहनी ही पड़ती है।

हिन्दुस्तानमे महाराष्ट्री मेरा यह स्वभाव समझ गये है, इसलिए अब पहले जैसी मुश्किल नही होती। यहाके महाराष्ट्रियोंके साथ मेरा सम्पर्क नहींके बराबर है। गुजरातियोने मेरा साहित्य थोड़ा बहुत पढ़ा है। मै बीस-पच्चीस वर्ष गुजरात मे रहा हूं और वह भी गांधी-युगके प्रारंभके दिनोंमें। इसलिए गुजरातियोंके बीच और मेरे बीच आत्मीयता पूरी तरह जम गई है। महाराष्ट्रियोंकी यह बात नही है।

ऐसे वातावरणमें जब यहाके महाराष्ट्रियोने अपने मंडलकी इमारतकी कोण-शिला रखनेके लिए मुझे बुलाया, तब मुझे बहुत ही आनन्द हुआ। यहाके महाराष्ट्री या तो सरकारी अफसर हैं या कर्मचारी वर्ग हैं। गुजरातियोकी तरह उनके पास रुपयेकी बहुतायत नही है। मराठी भाषाकी एकाध पाठशाला स्थापित करना भी उनके लिए कठिन है। न रुपया मिलता है और न काफी विद्यार्थी। बड़ी मुश्किलसे इन लोगोंने थोड़ासा रुपया इकट्ठा किया और थोड़ासा लोनके तौर पर ले लिया। उनकी होशियारी और ईमानदारीकी साख अच्छी होनेसे लोन लेनेमे उन्हें कठिनाई नहीं होती। अच्छे स्थान पर जरूरी जमीन प्राप्त करके उन्होने प्रारंभ कर दिया और जब मैं यह लिख रहा हूं तब तो जिस हॉलकी कोण-शिला मैंने रखी थी, वह लगभग पूरा भी होने आया है।

मैंने अपने भाषणमे महाराष्ट्रियोंसे उनके इतिहास-सिद्ध स्वभावकी बाते कहीं। चीनी यात्री ह्वेनएनसांग महाराष्ट्रियोंके बारेमे जो कुछ लिखा है, वहासे लगाकर शिवाजीके समयके मद्रासी कवि व्यंकटाध्वरिके वचनों तकका हमारे देशके लोगोंका मत उद्धृत करके मैंने उनसे कहा कि, "हमारे लोग किसीका दम्भ, कृत्रिमता या खाली बाते सहन नही कर सकते। यह सब ठीक है। परन्तु दम्भ या खाली बातों और आदर्शवादके बीचका भेद समझना चाहिये। आदर्शकी बातें एकदम अमलमें नही आती। आदर्शवाद सदियो तक हवामे ही रह जाता है, इतनेसे ही उसका भी विरोध करना शुरू करें, तो जीवनमें श्रेष्ठ तत्त्व रह ही नही जाता। महाराष्ट्रियोंको आदर्शवादका विरोध हरगिज नही करना चाहिये। आदर्शवाद महाराष्ट्रके संतोंसे मिली हुई हमारी कीमती पूजी है। शंकाशील बनकर हम इसे खो न बैठें। नौकरी-की कारगुजारीमें ही अटके न रहकर हमे आगे बढ़ना चाहिये" इत्यादि। इस उत्सवमें नैरोबीके छोटे बड़े सभी महाराष्ट्री जमा हुए थे। स्त्रियों और बच्चोंकी उपस्थिति भी अच्छी थी। इसलिए सारा वातावरण एक विशाल कुटुम्बके जैसा बन गया था। मैंने उनसे कहा कि अपने मंडलकी प्रगतिके बारेमें मुझे समय-समय पर लिखते रहिये और बैठे या मैदानी खेलोंमें सिर्फ महाराष्ट्रियोंको ही नहीं, परन्तु

नैरोबीमें रहनेवाली तमाम जातियोंको शरीक कीजिये।

माननीय माथू यहांके अफ्रीकी लोगोंके नेताओंमेंसे एक हैं। रातके एक-दो भोजोंके समय उनसे परिचय हो गया था। उनकी इच्छा थी कि हम एक बार उनके घर जायं और उनके घरके लोगों और कुछ मित्रोंके साथ आरामसे बातें करें। नैरोबीकी पहली यात्राके समय ऐसा न हो सका, इसलिए इस बार हम आग्रहपूर्वक उनके यहां गये। उनका घर नैरोबीसे २६ मीलकी दूरी पर है। जाते ही उनकी पत्नी और बच्चे वगैरासे मिले। थोड़ासा खाया और पीछे उनके बगीचेमें कुछ घूमकर खुलेमें घास पर बैठ गये।

अफ्रीकी स्त्रियोंके बाल पुरुषोंकी तरह ही घुंघराले होनेके कारण वे उन्हें लम्बे नहीं बढ़ाती। शायद बहुत बढ़ते भी नहीं होंगे। उनके अंदर ही उस्तरेसे तीन चार मांगें निकालकर बाके बालोंकी शोभा लाई जाती है। हमें ऐसे सिर देखनेकी आदत नहीं, इसलिए पुरुषोंके सिर जैसे लगते हैं। उनकी पोशाक कुछ-कुछ हमारी कुर्ग प्रांतकी बहनोंकी पोशाक जैसी है। धीरे-धीरे वह पूरी अंग्रेज बन जाती हैं। चेहरा, बाल या पोशाक कैसे भी हों, स्त्रीमें मृदुता, विनय और शालीनता तो होती ही है। और बच्चोंको लेकर जब खिलाती है, तब माताओंका वात्सल्य सारी दुनियामें एक-सा ही होता है। और बच्चे तो भगवानकी मूर्ति है। अनजान मुल्कसे आये हुए नये लोगोंको देखकर उन्हें प्रथम विस्मय होता है। और पास या गोदमें बिठाये तो क्षण भर वे हम पर विश्वास नहीं करते। यह संकोच एक बार छूटा कि तुरन्त गोदमें ऐसे जम जाते है कि उठनेको जी भी नहीं चाहता। छोटे बच्चोंको भाषाका झंझट नहीं होता। आंखोंसे और मुस्कुराहटसे सारा भाव समझ जाते है और व्यक्त करते हैं। गलतफहमीके लिए कोई कारण ही नहीं होता। हम कोई आधा घंटा अनजाने महाद्वीपके ऐसे घरोंमें बिताते हैं। परन्तु मैं मानता हूं कि घरके लोगों और आस-पासके पड़ोसियोंके लिए भी वह महीनों तक बातों और चर्चाओंका विषय बनता होगा उन्हें। लगता होगा कि इतनी दूरसे आनेवाले ये लोग हमारे जैसे नहीं हैं। इनके देशका जीवन कैसा होगा? परन्तु ये हमारे लोग जैसे बिलकुल नहीं, सो बात भी नहीं।

जब आंगनमें घास पर जाकर बैठे, तब गांधीजीकी नई तालीम यानी वर्धा-शिक्षाके बारेमें बातें हुई। श्री माथू बीचमें ही बोल उठे, "काकासाहब, आपकी एक बात मेरे मन पर सोलह आने जम गई है। हमें हिन्दुस्तानी भाषा सीखनी ही पड़ेगी। हिन्दुस्तानकी भाषा द्वारा ही हिन्दुस्तानके साथ अपना सम्बन्ध हम दृढ़ कर सकेंगे और हिन्दुस्तानको पहचान सकेंगे। मैं गुजराती सीखना तो शुरू कर ही दूंगा।" एक आदमीने पूछा, 'हम गुजराती सीखें या हिंदी? आपकी क्या सलाह है? कौनसी भाषासे हमें ज्यादा लाभ होगा?" मैंने कहा कि इस चिन्तामें जितना समय बितायेंगे, उतने समयमें दोनों भाषाएं सीख सकेंगे। गुजराती भाषा आई कि हिन्दी आधी आ ही गई। यहां आपके देशमें गुजरातियोंकी संख्या अधिक है, इसलिए

आपको यहां वह भाषा अधिक उपयोगी साबित होगी। इस कारण वहांसे आरम्भ कर सकते हैं। परन्तु हिन्दुस्तान आना हो, तो हिन्दीके बिना आपका काम नहीं चलेगा।"

'अफ्रीकाके ४० विद्यार्थी आज हिन्दुस्तानमें पढ़ रहे हैं, इनमेंसे एक तो सारी दिल्ली युनिवर्सिटीमें पांचवाँ आया,' वगैरा बातें मैंने कहीं और कहा कि, "जो लोग कहते हैं कि 'आप सभ्यता-सुधारोंके मामलोंमें पिछड़े हुए हैं—हजार दो हजार वर्ष पिछड़े हुए हैं, हिन्दुस्तान या पश्चिमके लोगोंकी पंक्तिमें आकर बैठनेमें आपको हजार वर्ष बाट देखनी पड़ेगी', उन पर पर आप विश्वास न कीजिये। अज्ञान दूर करनेके लिए हजार वर्षकी जरूरत नहीं। २५-३० सालके अन्दर, एक ही पीढ़ीमें आप सबके जैसे हो सकेंगे। गलत खयाल और तंग भावनाएं ('सुपरस्टिशन्स एन्ड प्रेज्युडिसिस') छोड़ देनेमें बहुत देर लगती है। परन्तु अज्ञान तो पोलेपनकी तरह है। उसे दूर करते देर नहीं लगती। किसी कमरेमें दो सौ बरसका अंधेरा हो, तो क्या वह वहां जमकर पक्का हो जाता है? दरवाजा खोलते या प्रकाश भीतर ले जाते ही अंधकार गायब हो जायगा।" श्रोता लोगों पर इस उपमाका अच्छा असर पड़ा। उनके चेहरे एकदम खिल उठे। सभी कहने लगे, "हां, सच बात है।"

संयोगसे मेरी पुस्तक 'ब्रह्मदेशका प्रवास' के नये संस्करणके प्रूफ हिन्दुस्तानसे उसी दिन मुझे मिले। हिन्दुस्तानके बाहर पूर्व दिशामें जहां तक गया था, वहांके प्रवास-वर्णनके प्रूफ हिन्दुस्तानके बाहर पश्चिमके सिरे पर बैठकर देखते समय मन बड़ा उत्तेजित हुआ। ब्रह्मदेशकी माता 'ईरावती' के दर्शनका वर्णन दुबारा पढ़ रहा था और मिस्रकी माता 'नील' नदीके उद्गम स्थानकी ओर उड़कर जानेकी तैयारी कर रहा था! रातको प्रूफ देखे, टिप्पणियां देखी। दूसरे दिन सुबह उठकर नये संस्करणकी नई प्रस्तावना जब लिखी, तो उसमें इस अद्भुत संयोगका उल्लेख किये बिना कैसे रहा जाता!

२२. सरोवर पर व्योम-विहार

सोमवार तारीख २६ जूनको हमने नैरोबी छोड़ा। नैरोबीसे कम्पाला तकका लम्बा सफर हमने सवा दो घण्टेमें पूरा किया। सुबह नौ बजे हम रवाना हुए। रास्तेमें पहले केनिया हाईलैंड्सकी खेती देखी। यह सुन्दर उपजाऊ प्रदेश है। यहां रहनेवाले किकूयू लोगोंकी सबसे बड़ी शिकायत यह है कि हमारी इस अन्नपूर्णाको यूरोपियन लोगोंने हजम कर लिया है। लम्बे-लम्बे खेत, मनोहर पहाड़ियां, उनके बीच बहनेवाले पानीके झरने, गोरे जमींदारोंके बंगले, और बेचारे अफ्रीकियोंकी झोंपड़ियां—ये सब देखते देखते हम आकाशमें आगे चले—चले नहीं बढ़े। पहले

तो सब जगह बादल ही थे। मैंने आशा रखी थी कि दूर एलगनका पहाड़ दिखाई देगा। परन्तु बादलोंमें कुछ भी दिखाई नहीं दिया। माउंट केनियाका धवल शिखर बहुत दूर और पीछेकी तरफ होनेके कारण उसके दीखनेकी आशा ही नहीं थी। अब हमारी नजरके सामने आता हुआ विक्टोटिया सरोवर दिखाई दिया। यह तालाब सारे अफ्रीका महाद्वीपके लिए वैभवस्वरूप है। मीठे पानीका इतना बड़ा तालाब दुनियामें शायद और ही हो। सत्ताईस हजार वर्गमीलका मीठे पानीका विस्तार कोई छोटी बात है! अगस्त्यका स्मरण करके दो आंखोंसे इस सारे विस्तार को पी जानेकी हमने बहुत कोशिश की। दाईं ओर दूर किसूमू शहर विक्टोरिया सरोवरसे इस तरह लगा हुआ दिखाई दिया, जैसे बछड़ा गायसे लगा रहता है; सरोवरका किनारा बड़ा टेढ़ा-मेढ़ा है। अन्दर छोटे-बड़े अनेक टापू थे और पानीके पृष्ठ भाग पर लज्जाकी झलक थी! सारा सरोवर इतना प्रसन्न—पावन दिखाई देता था कि मुझमें शक्ति होती तो वहीं एक स्तोत्र तैयार कर देता। कुछ जहाज अपने पाल फैलाकर सरोवर पर तैर रहे थे, जब कि कुछ बालक-बादलोंको सरोवर पर हवामें तैरनेकी सूझी थी। किस तरह वे दौड़ रहे थे और किल्लोल कर रहे थे! बादलोंने सरोवरकी शोभा कितनी बढ़ा दी थी, इसका उन्हें खयाल होता तो वे इतनी जल्दी न बिखर जाते। असलमें इसमें उनका दोष नहीं था। हमारा विमान वायुवेगसे दौड़ रहा था, इसलिए सब बादल पीछे रह गये।

हम कितनी ही तेजीसे दौड़े—हमारे साथ ठीक उतनी ही गतिसे हमारे विमानकी छाया दौड़ लगा रही थी। उसे जमीन, पानी, टापू, बादल—किसी पर भी दौड़नेमें कठिनाई नहीं थी। वह छाया दोनों ओर पंख फैलाकर दौड़ती थी, क्योंकि उसे अपनी वफादारीमें कमी नहीं आने देनी थी। विमान बहुत ही ऊंचा चला जाता, तो छाया अपनी श्यामलता छोड़कर उज्ज्वलता धारण कर लेती। परन्तु सूर्यकी दिशा कायम रखकर वह रहती साथ ही। विमान बहुत ही ऊंचा चला जाय, तो छायाके पैर जमीनको नहीं छूते। उसे अपना मयूख आकाश ही आकाशमें खीचना पड़ता। आगे चलकर पानी पर समानान्तर सफेद रेखाएं दिखाई देने लगी। समुद्रमें कभी कभी छोटी छोटी लहरें फूट कर हंसती है। उनके जैसी यह बात नहीं थी। जाड़ेमें जैसे मनुष्य नाखूनसे शरीर खुजाता है और उस पर सफेद लकीरें पड़ जाती हैं, वैसी ही ये लकीरें दिखाई पड़ती थी। विमानकी गतिके साथ ये तिरछी होकर दृष्टिके पथमें आती और जाती थी। इससे विशेष आकर्षक मालूम होती थी। ये लकीरें कैसे पैदा होती हैं, इसका मैं खयाल नहीं कर सकता। ऐसा कोई जानकार भी अभी तक नहीं मिला जिससे मैं पूछ सकू।

हमारा समय पूरा हुआ और सामने एन्टेबे दिखाई देने लगा। एन्टेबेका हवाई अड्डा सरोवरके बिलकुल किनारे है। हवाई जहाज नीचे उतरे तो किनारेको ही छुए। जरा भूल हो जाय तो पंख पानीमें भीग जायं। मछलियां पकड़नेवाले बगुलों

की खूबीके साथ हमारा विमान जमीन पर उतरा।

विमानसे बाहर निकलते ही तुरन्त कंपालाके खास भारतीय नागरिकोंने हम पर अधिकार कर लिया। एन्टेबेसे कंपाला १६ मील दूर है। एन्टेबे युगांडाके अफसरोंकी अंग्रेजी राजधानी है। अंग्रेज गवर्नर वहीं रहता है। जब कि कंपाला युगांडाकी व्यापारिक राजधानी है। इस प्रदेशके अफ्रीकी लोगोंका राजा, जिसे कबाका कहते हैं, कंपालामें ही रहता है। हम एन्टेबे ठहरे बिना सीधे कंपाला जा पहुंचे।

इस हवाई सफरके दौरान इसका ठीक-ठीक खयाल न रहा कि हम भूमध्य रेखा पार करके दक्षिणी गोलार्धमेंसे उत्तरी गोलार्धमें कब चले गये।

२३. नौ पहाड़ियोंकी नगरी

एन्टेबेसे कंपाला तकका १६ मीलका सारा प्रदेश बहुत ही मनोहर है। विमान में सरोवरकी शोभा देखनेके बाद मोटरके रास्तेमें दौड़ते हुए यही तालाब कई तरह से दिखाई देता है, उस समय हमें ऐसा आनन्द होता है कि हम कोई नई ही शोभा देख रहे हैं।

पूर्व अफ्रीकामें कई शहर देखे। उनमें पहाड़ियोंके कारण अनोखी शोभा कंपालाकी, समुद्र तटकी शोभा दारेस्सलामकी और उंगलियोंमें अंगुलियां डालकर प्रेम करनेवाले तालाव और पहाड़ियोंके गूंथनसे बनी हुई शोभा कॉस्टरमनविलकी है। इसका वर्णन आगे आयेगा। इन नगरियोंकी शोभा भुलाई नही जा सकती।

कंपाला नगरी प्राचीन रोम शहरकी तरह सात पहाड़ियों पर बसी हुई थी। परन्तु यह नई नगरी जल्दी-जल्दी बढ़ती जा रही है इसलिए इसमें दो पहाड़ियोंकी वृद्धि हो गई और आज वह 'नौ पहाड़ियोंकी नवल नगरी' बन गई है। हम कंपालाके नजदीक पहुंचे और एक पहाड़ी परकी मस्जिद दिखाई दी। टेकरीके सिर पर विराजमान मस्जिद इतनी सुन्दर लगी कि हमने निश्चय किया कि पहाड़ी पर जाकर मस्जिदको पाससे देखे बिना कंपाला नहीं छोड़ेंगे। (लेकिन हुआ ऐसा कि अबकी बार नही, किन्तु युगांडाका सारा कार्यक्रम पूरा करके रुआन्डा-उरुण्डीवाला बेल्जियन इलाका देखकर आनेके पश्चात् ही रवाना होते-होते हम उस मस्जिदके पास जा सके।)

इस मस्जिदका कुछ इतिहास है। मुसलमानोंको मस्जिद बनानेके लिए अच्छी जगह मिलती नहीं थी। इसलिए यहांके कबाकाके किसी रिश्तेदारने इस पहाड़ी परकी अपनी जगह मुफ्त दे दी। इतनी बढ़िया जगह इस तरह गई हुई देखकर यूरोपियन लोगोंको बुरा लगा। उन्होंने मुसलमानोंसे कहा, "इतनी जगह लेकर

क्या करोगे ? मस्जिद बनानेके लिए आपके पास रुपया नहीं है। इसलिए आप कुछ जगह मस्जिदके लिए रखकर बाकीकी हमें दे दीजिये। हम आपको मस्जिद बनानेके लिए आवश्यक रुपया देंगे।" मुसलमानोंने जवाब दिया, "जमीन नहीं दी जा सकती। धीरे-धीरे रुपया जमा करके हम मस्जिद बना लेंगे।" मस्जिद लगभग पूरी हो गई है, अब थोड़ा ही काम बाकी रह गया है।

जैसे एक पहाड़ी पर यह मस्जिद है, वैसे ही और दो पहाड़ियों पर दो ईसाई गिरजे भी हैं। एक रोमन कैथलिक मन्दिर है और दूसरा प्रोटेस्टेण्ट प्रार्थनागृह है। हम ये दोनों गिरजाघर देख आये। एककी खिड़कियोंमें बाइबलके पौराणिक प्रसंगके चित्र थे।* मकान भव्य हैं और वहांसे आसपासकी शोभा भी अच्छी दिखाई देती है।

हम कंपाला पहुंचे तब स्थानीय सेवादलने हमारा पहले-पहल स्वागत किया। यह कहा जा सकता है कि सारा गांव इकट्ठा हुआ था। यहां भी अंधेरा होने पर मशालोंका कार्यक्रम रखा गया था। कवायद और व्यायामके कार्यक्रम अच्छे थे। भारतीय स्त्री-पुरुषोंकी इतनी बड़ी संख्या देखकर मैंने अपना मुख्य भाषण वहीं दिया। उसके बाद कई जगह दोपहरका भोजन, शामका खाना और समय-समय पर चाय पार्टियां छह दिन तक होती रहीं। पहली ही रातको नकासीरो क्लबमें भोज रखा गया था। यहां मेरा पहले-पहल ध्यान गया कि ऐसे भोजोंके समय शराब का आजादीसे व्यवहार होता है। मेरे सामने बड़ा धर्म-संकट पैदा हो गया। हमारे सम्मानमें खाना रखा जाय और उसी वक्त लोग क्लबके बार (दुकान) में शराब लेकर पीते रहें, यह मुझसे क्योंकर सहन हो? भारत सरकारने राष्ट्रीय नीतिके रूपमें सार्वजनिक अवसरों पर मद्यपानका निषेध किया है। फौजके कुछ लोगों या प्रसंगोंको ही अपवाद रखा है। और मैं तो आश्रमवासी हूं। मेरा यहां क्या धर्म है?

ऐसा ही एक धर्म-संकटका मौका पू० गांधीजीके लिए भी आ गया था। उनके सम्मानमें राजकोटके ठाकुर साहबने एक गार्डन पार्टी दी थी। जिस मेज पर गांधी जी बैठे थे, उसी पर एक तरफ ठाकुर साहब और दूसरी ओर ब्रिटिश पोलिटिकल एजेण्ट थे। बातें हो रही थीं, इतनेमें गांधीजीने ठाकुर साहबके सामनेकी शराबकी बोतल उठाकर पोलिटिकल एजेण्टके आगे रख दी।

धर्माधर्मका खयाल रखनेवाले किसी सामाजिक पहरेदारने गांधीजीसे इस विषयमें पत्र लिखकर स्पष्टीकरण मांगा कि, "आपके जैसा मद्यपान निषेधक ऐसे स्थान पर भोजन कर ही कैसे सकता था? आपने भोजन ही नहीं किया, बल्कि शराबकी बोतल भी पीनेवालेके सामने रख दी!" गांधीजीने उत्तरमें इतना ही

*ईसाई गिरजोंमें रंगीन कांच काममें लेकर खिड़कियोंमें जो चित्र बनाये जाते हैं, वे सदा उच्च कलाके नमूने होते हैं। अंग्रेजीमें उसे 'स्टेन्ड ग्लास' कहते हैं।

लिखा, "ऐसे अवसर पर कैसा व्यवहार किया जाय, इसका सूक्ष्म विवेक मुझे मालूम है। आपसे इतना ही कह सकता हूं कि आपके जैसे लोग मेरा अनुकरण न करें।"

मांसाहारके सम्बन्धमें भी ऐसे ही प्रश्न उठाये जाते हैं। हम मांसाहारको व्यसन नही मानते परन्तु पाप समझते हैं। धूम्रपानको व्यसन मानते हैं, पाप नहीं मानते। कितने ही बाबा लोग अखंड चिलम फूंकते रहते हैं। यह व्यसन है इससे वे भी इनकार नहीं कर सकते। फिर भी समाज यह नहीं मानता कि उतनी मात्रामें उनका साधुत्व कम है। स्वामी विवेकानन्द जैसे आधुनिक साधु भी हुक्का छोड़नेकी आवश्यकता नही मानते थे। इस कारण उनके प्रति मेरा आदर तिलभर भी कम नहीं हुआ। तथापि मैं तो मानता हूं कि धूम्रपान साधुजीवनका ऐब ही माना जाना चाहिये। जिन लोगोंका आहार ही मांस है, उन लोगोंको जीवहत्यामें कुछ भी नहीं लगता। दुनियाकी आजकी नीतिकी कल्पनाको देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता कि वे पाप करते हैं। फिर भी जीवहिंसा क्रूरता और पाप तो है ही। जो इस बातको नही मानते या नही समझते या आदतके कारण मांसाहार जारी रखना चाहते हैं, उनको दोप नहीं दिया जा सकता।

तो क्या हम समाजके मांसाहार करनेवाले और न करनेवाले दो भाग कर दें? और दोनोंके बीचका व्यवहार ही तोड़ डालें। न करनेवालोंकी जाति ऊंची और करनेवालोंकी नीची तय करके न करनेवालोंके अभिमानका पोषण किया जाय? और करनेवालों पर घटियापनका ख्याल बिठा दिया जाय? हम हिन्दू लोगोंने यह सब करके देख लिया है। ऐसा करके हमने अपने समाजकी उन्नति नहीं की। हम यह मान लें कि मांसत्यागियों और मांसाहारियोंके बीचका व्यवहार तोड़ देनेसे मांसत्यागियोंका निश्चय अधिक मजबूत होना संभव है। परन्तु हमें यह नही भूल जाना चाहिये कि मांसाहारियोंकी अलग जाति बना देनेके कारण उनमें सुधार होनेकी संभावनाको भी हम रोक देते हैं।

गांधीजीको ईसाई धर्मकी तरफ खींचनेकी कोशिश करनेवाले एक पादरीने उन्हें हर रविवारको अपने यहां खानेका निमंत्रण दे रखा था। गांधीजीने उसे स्वीकार कर लिया। खानेकी मेज पर मिशनरीके कुटुंबी मांसाहारकी चीजें लाकर खाते, गांधीजीका आहार कट्टर परहेजका रहता। उनसे इस तरह पूछनेवाला वहां कोई नहीं था कि 'मांसाहारी लोगोंकी मेज पर आप कैसे खाते हैं?' आहारमें पाप-पुण्य सम्बन्धी बात न छेड़नेका शिष्टाचार गांधीजीमें था। परन्तु मिशनरीके बच्चे पूछने लगे, "कुछ चीजें मि० गांधी क्यों नही खाते?" माता-पिताको कहना पड़ा, "उनके धर्ममें यह पाप माना जाता है।"

"पाप क्यों माना जाता है?"

"वे मानते हैं कि पशु-पक्षियोंके भी आत्मा है, सुख-दुःखकी अनुभूति है।

जीवोंको मारनेमें क्रूरता है—पाप है ।"

"बात तो सच्ची मालूम होती है। तो हम इस चीजको पाप क्यों नहीं समझते ?"

"हम मानते हैं कि पशु-पक्षी आदि मनुष्येतर प्राणियोके आत्मा नहीं होती।"

"यह तो कौन जाने ? परन्तु उन्हें मारनेमें क्रूरता अवश्य है। मारते वक्त वे भागदौड़ अवश्य करते हैं और जोरसे रोते है, इतना तो हम अवश्य प्रत्यक्ष देखते हैं। कलसे हम ये चीजें नहीं खायेंगे।"

"न खाओगे तो कमजोर हो जाओगे।"

"तो मि० गांधी क्यों नही कमजोर होते ?"

अंतमें पादरियोंने गांधीजीसे क्षमा मांगी और रविवारका भोजन निमन्त्रण वापस ले लिया।

यह सारा प्रसग क्या शिक्षा देता है ? एक जमाना था जब जैन लोग मांसाहारी लोगोंमें जाकर धर्मप्रचार किया करते थे। जैन शास्त्रोंमें ऐसा उल्लेख पाया जाता है कि कुछ जैनी मांसाहार करते थे। आदतन् मांसाहार करनेवाले लोगोंको पहले जैन धर्ममें ले लिया होगा। वे धीरे-धीरे मांसाहारका त्याग कर देंगे, ऐसी आशा रखी गई होगी और वह सफल भी हुई होगी।

इसके बाद जीवोंको बचानेकी वृत्ति शिथिल हो गई। केवल अपना धर्म बचानेकी वृत्ति बाकी रह गई होगी। इसलिए जैन लोगोंने मांसाहारी लोगोंके साथ मिलना-जुलना छोड़ दिया होगा। परिणामस्वरूप नये लोगोंका जैन धर्ममें आना बन्द हो गया। यानी मांसाहारी लोगोंने मांस छोड़ा हो, ऐसे किस्से बन्द हो गये। मांसाहार न करनेवाले कट्टर जैनियोंमेंसे कोई मांसाहारकी ओर फिसला ही नही, यह कहा जा सकता तो कितना अच्छा होता !

परन्तु मांसाहारकी बात अलग है। शराब अनीतिकी ओर ले जानेवाला हलाहल व्यसन है। शराबमें जीवहिंसा नहीं है, परन्तु जीवहिंसासे खराब बुद्धिनाश है। उसके साथ समझौता कैसे हो सकता है ?

इस दलीलमें बड़ा तथ्य है। जिसमें शक नहीं कि जहां हमारे समाजमें शराबका व्यसन बहुत नही फैला है, वहां समाजके नियम कड़ाईसे पालने चाहियें। परंतु जहां हमारे लोग विदेशोंमें जाकर बस गये हैं और धीरे-धीरे बिलकुल शिथिल हो गये है, उनमें मद्यपान फैला हुआ देखकर उनका बहिष्कार करने लगे, तो स्वयं ही बहिष्कृत बन जायंगे और कुछ भी काम नही कर सकेंगे। इसमें शक नही कि जिन्हें शराब पीनेकी आदत पड़ गई है और जिन्होंने इसे सामाजिक रिवाज बना लिया है, उन्हें हानि होती ही है। इसमें भी शंका नही कि इन लोगोंको शराबसे बचानेकी कोशिश होनी चाहिये। परन्तु यह काम उनका बहिष्कार करनेसे नही हो सकता; और खास तौर पर कहनेकी बात यह है कि ऐसा अनुभव भी नही कि

वे और सब प्रकारसे खराब आदमी होते हैं। मद्यपानके लिए मेरे मनमें जो तिरस्कार है, वह मद्य पीनेवाले तक नहीं पहुंचता। इसलिए ऐसे लोगोंके साथ मैं आजादीसे घुलता-मिलता रहा हूं। ऐसे कुछ लोगोंके प्रति मेरे मनमें आदर भी है। मेरे जैसोंको खानेके लिए बुलानेके बाद वहां शराब इस्तेमाल न करनेकी सभ्यता दिखाई होती तो मैं खुश होता। परन्तु यह सभ्यता हकके तौर पर मांगकर नहीं ली जा सकती। और हरएक समाजमें यह शर्त भी नहीं कराई जा सकती कि ऐसी सभ्यता रखी जाय तो ही मैं आपके यहां आऊंगा।

यहां यह उल्लेख करते मुझे संतोष होता है कि एक सज्जन पारसी भाईने (जो कभी-कभी शराब लेते भी हैं) हमारे सम्मानमें होटलमें भोज दिया, तब शराब इस्तेमाल न करनेकी व्यवस्था रखी। इस दिन मुझे बड़ा आनन्द हुआ।

इसमें सन्देह नहीं कि मद्यपान करनेवालोंके सम्पर्कसे खुद फिसल जानेकी जिन्हें दहशत हो, उन्हें ऐसे अवसरोंसे बचना चाहिये। परन्तु वह आत्मरक्षाके लिए, न कि मद्यपान निषेधके कार्यक्रमके तौर पर।

कुछ लोग शराब पीनेके 'आदी' होते हैं। लुक-छिपकर पीते हैं और यह स्वीकार नहीं करते कि पीते हैं। एक, यह डर कि प्रतिष्ठा जाती रहेगी; और दूसरे, यह सात्त्विक अभिलाषा कि अपनी छूत दूसरे लोगों तक न पहुंचे। इसे दंभ कहा जाय या नहीं? मिथ्याचार जरूर कहा जा सकता है।

धर्माधर्मका विचार बहुत सूक्ष्म होता है। अफ्रीका जानेके लिए मैं रवाना हुआ उससे पहले ही श्री नानजी सेठने मुझे चेतावनी दी थी कि 'पूर्व अफ्रीकामें आपको शराबका व्यवहार खुलकर होता हुआ देखनेको मिलेगा। इससे आपको आघात लगेगा।' उसी समयमें मैंने विचार कर रखा था कि मुझे वहां क्या करना है। शामके सात बजेके बाद न खानेका अपना नियम मैं पूर्व अफ्रीकामें नहीं चलाऊंगा, यह तो मैंने पहले ही तय कर रखा था। शक्कर न खानेका नियम भी मैंने छोड़ दिया था। चीनीके प्रति पक्षपात तो मुझमें था ही नहीं। इसलिए स्वाद-जयकी दृष्टिसे इस नियमकी जरूरत नहीं थी। इसलिए मनमें यह तय करके ही रवाना हुआ था कि अनजान समाजके लिए यथाशक्ति दिक्कत नहीं बनूंगा और ऐसा करते हुए अपने जीवन-सिद्धान्तमें शिथिल नहीं होऊंगा। हरएक भोजके समय आग्रहके साथ सब चीजोंकी जांच करता था कि किस-किसमें मांस या अंडा नहीं है। सिर्फ उतनी ही चीजें खाता था। जहां भी शंका होती वहां कड़ाईके साथ काम लेकर वे चीजें छोड़ ही देता था। इसमें सुधार इतना ही हुआ कि पनीर जैसी चीजको, जिसे मैं निर्दोष समझकर हिन्दुस्तानमें लेता था पूर्व अफ्रीकामें जाकर छोड़ दिया। क्योंकि मैंने देखा कि पनीर (cheese) बनानेमें रेनेट नामक एक पदार्थ काममें लेना पड़ता है, जो मरे हुए बछड़ोंकी अंतड़ियोंसे निकाला जाता है।

पूर्व अफ्रीकाके सफरमें मद्य-मांसके बारेमें जो विचार मेरे मनमें चक्कर काटते

रहे, उनका बयान यहां पेश किया गया है। इसमें यह सूचित करनेका इरादा नहीं कि दूसरे लोग कैसा बरताव करें। यह विवेचन नहीं, केवल मनन है। इतना ही कहा जा सकता है कि जिन्हें इसमें भी कमजोरी या शिथिलता लगती हो, वे इस चीजका अनुकरण न करें।

पूर्व अफ्रीकामे हर जगह धर्मकी संस्थाएं होती हैं। हिन्दुओंके आर्यसमाजी या दूसरे मंदिर, सिक्खोंके गुरुद्वारे, मुसलमानोंकी मस्जिदें, ईसाइयोंके रोमन कैथलिक मंदिर अथवा प्रोटेस्टेण्ट प्रार्थना-गृह। हरएक धर्मकी तरफसे पाठशालाएं खोली जाती हैं। उनमें अपने-अपने पंथके सिद्धान्तोंके अनुसार धर्मकी शिक्षा दी जाती है। इस धार्मिक शिक्षा या उपदेशका असर किस पर कितना होता है, क्या इसका अन्दाजा लगाया जा सकता है? कहा जाता है कि धनिकवर्गको धर्मकी जरूरत नही होती। उनके अमीरी संस्कार, दिनभरके कार्यक्रम और महत्त्वाकांक्षाओं द्वारा प्रेरित प्रतिस्पर्धाएं उनके लिए काफी होती हैं। उनमें थोड़ी बहुत धार्मिकता हो तो उसका उपयोग भिन्न-भिन्न धर्मोंकी संस्थाओंको रुपयेकी मदद देनेमें हो जाता है।

और बिलकुल गरीब कंगाल लोगोंके लिए धर्म कैसा? वे कैसे जीते है और रहते हैं, इसकी ओर किसीकी नजर ही नही होती। विरासतमें उन्हें जो वहम मिले हों वही उनका धर्म है। नित्यकी सोहबतके कारण मुसीबतोंके वे इतने ज्यादा आदी हो जाते हैं कि उन्हें दैव या भाग्यका धर्मशास्त्र मानकर ही चलना पड़ता है। ऐसे लोग संकटके समय एक दूसरेके प्रति जो सक्रिय सहानुभूति दिखाते है, वही उनका धर्मानुभव है। उसकी भी काफी कद्र करने जितनी मानसिक फुरसत उनक पास नही होती।

अगर सच्चा धर्म कुछ भी बच गया हो, तो उसका अस्तित्व मध्यम वर्गके लोगोंमें पाया जाता है। वहां भी हरएक धर्मके खास-खास विधि-विधानों और विशेष विश्वासोंका ही प्रभाव अधिक होता है। फिर भी उसके पीछे शुभभावना और गहरे विचार जरूर होते हैं। धर्मके मानी हैं चैतन्यकी अनुभूति—यह अर्थ सच्चा हो तो उसका साक्षात्कार इन तीनोंमेंसे किसी भी वर्गके व्यक्तियोंको किसी-न किसी समय अंधेरेमें बिजलीकी चमककी तरह हो सकता है। इसके लिए मदिरों, रिवाजों या शास्त्रोंकी जरूरत होती ही हो सो बात नही। फिर भी धर्मके ये तीनों वाहन मनुष्य-जातिके लिए जरूरी माने गये हैं। इनके द्वारा धार्मिक संस्कृतिकी रक्षा होती है और मनुष्य-जातिको उसके कर्तव्य और जीवनक्रम दोनोंका स्मरण रहता है।

भूलना नहीं चाहिये कि जब-जब समाजमें अनाचार फैलता है, तब तब लोग इन तीनों वाहनोंसे किसी अच्छे इलाजकी अपेक्षा न रखकर किसी जीते-जागते सत्पुरुपके सत्संगकी आशा रखते हैं। परन्तु इस कारण यदि सत्पुरुष स्वयं सत्संगकी संस्था बनाकर साधुओंके अखाड़े चलायें, तो वहां भी जड़ता अवश्य घर कर लेती

है। धर्म कभी मकान, ग्रंथ, विधि-विधान या संस्थामें सुरक्षित नहीं रखा जा सकता। फिर भी ये सारी चीजें धर्मकी रक्षाके लिए खड़ी करनी ही पड़ती हैं। दुःखकी बात है कि ये सारी संस्थाएं मिलकर एक शराबकी बुराईको भी दूर नही कर सकीं !

कंपालामें अफ्रोकियोंकी कुछ महत्त्वपूर्ण संस्थाएं देख ली। यहां ऐसी दो संस्थाएं हैं, जिन्होंने अफ्रीकी लोगोंको अच्छे खासे नेता मुहैया किये हैं। एक है किंग्स कॉलेज बुडो और दूसरी है मेकेरेरे कॉलेज। दोनों संस्थाओके शिक्षक शिक्षाके व्रती और अपने-अपने विषयोंके निष्णात जान पड़े। अध्यापकोंमें जो प्रसिद्धि-पराङ्मुखता होती है या होनी चाहिये वह भी दिखाई दी। बुडो कॉलेजमें प्रिंसिपल मि० कॉब और उनके कई साथियोंसे हम मिले।

शिक्षाका असर प्रत्यक्ष देखा जा सकता है संगीत और चित्रकलामें। इसलिए मैंने इन चीजोंको ही खास तौर पर देखनेकी मांग की। अफ्रीकी बालकोंमें अपने आप चित्रकलाका विकास हो, ऐसा प्रयत्न करनेवाली एक यूरोपियन अध्यापिका से हमने बहुत कुछ जान लिया। विद्यार्थियोंके चित्र भी बहुतसे देखे। सभी चित्र प्राकृतिक दृश्य; (लैण्डस्केप्स) के थे। चित्रोंमें विद्यार्थियोंकी कचाई तो होती ही है। परन्तु प्रकृति माताके विविध दर्शनोंकी सजीवता उनमें अद्भुत ढंगसे प्रगट हुई थी। हरएक चित्रमें कुदरतके भिन्न-भिन्न स्वभावोंके हृदय पर पड़नेवाले असरकी गहराई थी। वहांके व्याख्यानमें मुझसे कहे विना नही रहा गया कि इन अफ्रीकी युवकोंका कुदरतके साथ जो गाढ़ा परिचय है, उसे व्यक्त करनेका साधन मानो आज तक इनके पास नही था। उसके मिलते ही अनुभूतियोंकी गहराई इन चित्रोंमें फूट निकली है। और यह बताता है कि इन बालकोंको शिक्षा भले ही न मिली हो, परन्तु संस्कृतिकी सच्ची गहराई इनके पास छिपी हुई थी। हमारे गोरे या हिन्दुस्तानी लड़के भी यहांकी कुदरतका दर्शन दिन-रात करते है। परन्तु ऐसा नहीं लगता कि उन्होंने यहांकी कुदरतका व्यक्तित्व इतनी शक्तिके साथ पकड़ा हो। आजकी हमारी संस्कृति ही छिछली हो गई है।

"चित्र सब प्राकृतिक दृश्योंके ही क्यों हैं, पशुपक्षियों या मनुष्योंके चित्र लगभग क्यों नही हैं ?" मैंने पूछा। मुझसे कहा गया कि मनुष्यके चित्र बनानेमें इन्हें डर लगता है। मुझे शंका हुई कि कही इसकी जड़में इस्लामी मर्यादाका प्रभाव न हो। अन्यत्र जांच करने पर ये दोनों कल्पनाएं सही नही लगी। तो क्या यह इन विद्यार्थियोंकी उस होशियार शिक्षिकाका ही प्रकृतिके प्रति पक्षपात होगा ? विद्यार्थी एक क्षेत्रमें विकास करने लगे और किसीने उन्हें दूसरी तरफ अभी तक मोड़ा नही होगा।

हम गयाजा नामक एक गांवमे गये थे। वहांके सुन्दर मिशनरी स्कूलमें हमने मनुष्योंके चित्र जीभर कर देखे। वे सब अफ्रीकी विद्यार्थियोके हाथके बनाये हुए थे। ईसाई पौराणिक कहानियोंकी मर्यादा तो वहां थी, परन्तु हरएक चित्रमें मौलिकता और सजीवता तो थी ही।

संगीत और नृत्यके मामलेमें अफ्रीकी लोगोंके असली नमूने मुझे आसामके मिकिरी लोगोंके प्रारम्भिक श्रेणीके नृत्य-संगीत जैसे लगे। कुछ हावभावोंको शृंगारिक कहनेके बजाय लैंगिक ही कहना चाहिये। इनके संगीतमें ताल तो होता है, परन्तु रागकी खास खूबी दिखाई नहीं दी। मुझे तो अरबी या यूरोपियन संगीत-के असरसे मुक्त शुद्ध अफ्रीकी संगीत सुनना था। जो शुद्ध माना जाता था, वह बहुत आकर्षक नहीं लगा।

अफ्रीकी लोगोंने अमरीका जाकर जिन 'नीग्रो स्पिरिच्युअल्स' का विकास किया है, उनकी तारीफ सारी दुनिया करती है। वे गीत भी हमें सुननेको मिले। ईसाई स्तोत्र भी। इन परसे हमने देख लिया कि अफ्रीकी लड़के-लड़कियोंके कण्ठमें विशेष माधुर्य ही नहीं होता, बल्कि उनमेंसे कुछ तो उस संगीतके भावमें तल्लीन भी हो जाते हैं।

दूसरे दो स्थानों पर, खासकर गयाजामें और नैरोबीके पासके अलायन्स स्कूल-में हमने ऐसा नीग्रो संगीत सुना, जिसके सब अवयव शुद्ध अफ्रीकी थे, परन्तु जिसकी व्यवस्था—जिसका ढांचा अंग्रेजी ढंगका था। इस संगीतका असर सचमुच भव्य और गहरा था। अफ्रीकी संगीतका कच्चा मसाला लेकर उसमें थोड़े बहुत सुधार करके उसके गहने बनाये जायं, तो यह नया शृंगार दुनियाके किसी भी संगीतमें चमक उठने लायक है।

मेकेरेरे कॉलेजमें और अन्यत्र भी भाषाका सवाल मैंने विशेष गहराईमें उतर-कर छेड़ा। मैंने देख लिया कि अंग्रेज शिक्षक और इतर अंग्रेज शासक सचमुच मानते हैं कि किसी न किसी दिन अफ्रीका महाद्वीपकी आमभाषा अंग्रेजी ही होगी। हिन्दुस्तानका अनुभव उनके इस विश्वासको शिथिल नहीं करता। वे कहते हैं कि, "हिन्दुस्तानमें एक जबरदस्त संस्कृति थी। चाहे वह हमसे बिलकुल भिन्न हो, परन्तु संस्कृति तो थी ही। यहांके लोगोंके पास जो भाषाएं है, उनके लिए न कोई लिपि है, न कोई साहित्य। आधुनिक विचारों या विज्ञानको तेजीसे अपनाना हो, तो अंग्रेजी भाषा लेनी ही पड़ेगी।" मैंने कहा, "इससे इनकार नहीं कि वे अंग्रेजी भाषा सीखें। सवाल यह है कि वे कौनसी भाषामें अपना जीवन व्यक्त करें?" वे मानते हैं कि अफ्रीकामें सर्वमान्य हो सकनेवाली कोई भाषा है ही नहीं। स्वाहिलीके प्रति कुछ जातियोंमें सख्त विरोध है। (कुछ और लोग कहते हैं कि यह विरोध सच्चा नहीं। अंग्रेजोंका पाला हुआ है।) स्वाहिली भाषाके विकासका प्रयत्न अंग्रेजों ने अपने हाथमें ले रखा है। यह काम इतना धीमा हो रहा है कि इस ढंगसे कोई मतलब हल नहीं हो सकता। अंग्रेजोंका कहना है कि इस महाद्वीपमें अंग्रेजी संस्कृति लाये बिना काम नहीं चल सकता। चूंकि इन लोगोंको अंग्रेजी सिखानेके जो प्रयत्न हमने किये उनमें सफलता मिली है, इसलिए इसी नीतिको आगे बढ़ायेंगे।

सारे महाद्वीपमें अंग्रेजोंका राज्य नहीं है। बेल्जियन कांगोमें सर्वत्र फ्रेंच भाषा

चलानेका आग्रह दिखाई देता है। मोजाम्बिक और अंगोलामें पुर्तगाली भाषा चलानेका प्रयत्न हो रहा है। परन्तु यह सारी चर्चा मैंने इन लोगोंके साथ नहीं छेड़ी। गोरे लोगोंने तय कर लिया मालूम होता है कि जैसे हिन्दुस्तानमें आर्य लोग आये और उन्होंने अपनी संस्कृति चलाई और यहांके दस्यु लोगोंको शूद्र जाति बनाकर रखा, उनसे सेवा कराई और खुद श्रेष्ठ बन गये, इसी तरह अफ्रीका महाद्वीपको यूरोपके लिए शूद्रभूमिके रूपमें चुना जाय और यहांके अफ्रीकी लोगोंको धीरे-धीरे यूरोपियन संस्कृति और यूरोपियन भाषाके असरमें लाकर यहां द्विवर्णी समाजकी स्थापना की जाय। यह बात कुछ गोरे स्पष्ट कहते हैं और कुछ मनमें ही रखते हैं।

एक अंग्रेजने साफ लिखा है कि अमरीकामें हम साम्राज्य स्थापित करने गये। थोड़े दिन हमारा काम चला। परन्तु वहां अपने ही लोग होनेके कारण उस साम्राज्यको हमें छोड़ देना पड़ा। दूसरा साम्राज्य हमने कायम किया हिन्दुस्तानमें। वह बहुत चला, परन्तु हिन्दुस्तानकी जनता संस्कारी थी, संख्या भी जबरदस्त थी, इसलिए वह साम्राज्य भी हाथसे निकल गया। अब ब्रिटिश जातिके विकासके लिए सिर्फ अफ्रीकाकी भूमि रह गई है। यहां अब तककी ढिलाई छोड़कर मजबूतीसे साम्राज्य स्थापित करेंगे, तो सौ डेढ़-सौ बरस तो वह जरूर चलेगा। बादमें देखा जायगा।

मैं गोरोंसे कहता था कि अफ्रीकामें ब्रिटिश संस्कृति चलानेकी बात छोड़ दीजिये, वह बात चलनेकी नहीं। अफ्रीकी लोगोंके पास उनकी अपनी संस्कृति है। उसकी अवहेलना करनेके बजाय आदरपूर्वक उसका विकास करें। इस भूमि पर अफ्रीकी, हिन्दुस्तानी (या एशियाई कहूं) और यूरोपियन—तीन संस्कृतियोंका सुन्दर समन्वय होगा। अगर आप उच्चताका अभिमान छोड़ दें और हम यहांसे भाग जानेका विचार छोड़ दें, तो हम तीनों मिलकर यहां एक भव्य विश्व-संस्कृतिकी स्थापना कर सकेंगे।

अनेक विचारशील अंग्रेज स्वीकार करते हैं कि हिन्दुस्तानके लोगोंकी मददके बिना अंग्रेजोंका राज्य अफ्रीकामें टिक नहीं सकता। हम उनसे कहते हैं कि केवल अंग्रेजोंका ही राज्य चलानेके सपने छोड़ दीजिये। तीन महाद्वीपोंके लोग यहीं इकट्ठे होकर जीवन-सहयोग करेंगे। आपके पास विज्ञानका बल है, संगठनशक्ति है, आपकी यह श्रेष्ठता आज सब लोग मान लेंगे। मगर अन्तमें मनुष्य मनुष्यके बीच असमानता नहीं रहनी चाहिये, इतना आप मान लें और दूसरे लोगों पर विश्वास रखने लगें, तो यहां हम सब मिलकर विश्वराज्य स्थापित कर सकेंगे। हम यहांके लोगोंके साथ अधिकाधिक घुलमिल जायंगे, उन्हें शिक्षा देंगे, और अपने जीवनमें भी जरूरी परिवर्तन कर लेंगे, तो इस भूमिमेंसे ऐसी बंधुता पैदा करके दिखा देंगे जिससे तमाम दुनियाको सबक मिले।

भाषाका प्रश्न अभी तक अनिर्णीत ही है। खुद मुझे तो ऐसा लगता है कि करोड़ोंकी संख्यावाली जातिको अंग्रेजी जैसी बिलकुल पराई भाषा देना असंभव नहीं है, परन्तु कठिन काम है। अफ्रीकाकी ही दो-चार भाषाओंको चुनकर उनका विकास करना चाहिये। और इन्हींमेंसे किसी एक भाषाको अभीसे दूसरी भाषाके रूपमें सब जगह चलाना चाहिए। किसी भी जातिकी प्रगति अपनी भाषा द्वारा जल्दी होती है और स्वाभाविक क्रमसे होती है। अंग्रेजी द्वारा यह सब करेंगे तो सामान्य जनताको बहुत वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। अंग्रेजी या फ्रेंचका एक उपयुक्त भाषाके रूपमें भले ही प्रचार हो।

पूर्व अफ्रीकामें रहनेवाले हमारे लोग जैसे स्वाहिली या लुगाण्डा भाषा सीखते हैं, वैसे ही कुछ अफ्रीकी लोगोंको गुजराती और हिन्दुस्तानी सीखनी चाहिए। यह सुझाव मैंने अफ्रीकी नेताओंके सामने रखा है। उन्होंने इस चीजको खुशीसे मंजूर किया है। क्योंकि इसमें उन्हें प्रत्यक्ष लाभ दिखाई देता है। दुःखकी बात इतनी ही है कि इसका महत्त्व हमारे लोगोंकी समझमें नहीं आता। मैंने अपने लोगोंसे कहा कि गुजराती पाठशालामें कोई अफ्रीकी लड़का पढ़ने आये, तो आप उसे लेनेसे इंकार मत कीजिए। इतनी छोटी-सी बात मनवानेमें भी मुझे मुश्किल पड़ी। मुझे कहते खुशी है कि अन्तमें हमारे लोग इसके लिए तैयार हो गये।

कंपालामें युगाण्डा शिक्षा-विभागके एक अधिकारी मुझसे मिलने आये थे। उन्हें गांधी कॉलेजकी कल्पना पसंद नहीं थी। उन्होंने मुझसे सीधा सवाल पूछा कि, "मेकेरेरे कॉलेजके होते हुए दूसरा कॉलेज आप क्यों खोलना चाहते हैं?"

मैंने कहा, "मैं मानता हूं कि वह कॉलेज केवल अफ्रीकियोंके लिए है।"

"आप ऐसा क्यों मानते हैं? उसमें तमाम जातियोंके विद्यार्थी आ सकते हैं।"

"अच्छी बात है। तो मेकेरेरेमें अंग्रेज विद्यार्थी कितने हैं?"

"अभी तो नहीं हैं, क्योंकि उनके लिए वहां कोई आकर्षण नहीं है। यह कॉलेज बढ़ेगा तब यूरोपिन विद्यार्थी आयेंगे।"

"ऐसा हो जाय तो इस चीजको मैं अभिनन्दनीय मानूंगा। आज अगर इस कॉलेजमें हिन्दुस्तानी लड़के आयें, तो सबको उसमें जरूर ले लिया जायगा या यह नियम बनायेंगे कि इतने फीसदी अफ्रीकी और इतने एशियन लेंगे?"

"ऐसा नियम बनाना भद्दा तो होगा ही, परन्तु किसी समय ऐसा नियम बनाना पड़ सकता है।"

"तो फिर बाकीके अफ्रीकी और एशियन उम्मीदवारोंका क्या होगा?"

"यह मुश्किल तो है। परन्तु गांधी कॉलेज और मेकरेरे कॉलेजके बीच स्पर्धा नहीं होने देनेके लिए आप क्या करेंगे?"

"जैसा दुनियामें सब जगह होता है, वैसा ही यहां करेंगे। हरएक कॉलेजमें कुछ खास विषयोंका विकास करेंगे। 'फैकल्टी वाइज' जो भेद होगा, सो सब तरह

से वांछनीय ही होगा। हरएक कॉलेजके साथ जो छात्रालय होंगे, उनमें मांसाहारी और अन्नाहारी अलग-अलग भोजनालय रखने पड़ेंगे। और कोई भेद नही रहेगा। मुझे विश्वास है कि हमारे कॉलेजमें यूरोपियन लड़के भी आयेंगे। इनकी संख्या ज्यादा भले ही न हो, परन्तु इसमें मुझे शंका नहीं कि हमारा आन्तरजातीय वायु-मंडल पसन्द करनेवाले गोरे मां-बाप और विद्यार्थी जरूर निकलेगे। हम प्रोफेसर चुनेगे तो अच्छेसे अच्छे चुनेंगे, फिर चाहे वे किसी भी कौम या देश या धर्मके हों।

"मेरी एक नयी कल्पना है। पूर्व अफ्रीकाका अपना विश्वविद्यालय स्थापित न हो जाय, तब तक हमारा कॉलेज लंदन और बम्बई दोनों विश्वविद्यालयोंसे संबंधित होगा।"

"यह कैसे हो सकता है?" उन्होंने चकित होकर पूछा।

"मुश्किल यही है न कि आज तक ऐसा नही हुआ? या और कोई कठिनाई है? बम्बई विश्वविद्यालयने लंदनकी उपाधियोंको मान रखा है। लदन विश्वविद्यालय-ने बम्बईकी डिग्रियोंको मान रखा है। पूर्व अफ्रीका, ब्रिटेन और इण्डिया तीनों एक ही कॉमनवेल्थमें हैं, तो फिर ऐसा दोहरा सम्बन्ध होनेमे क्या आपत्ति है?"

"आपाततः कोई नही दीखती। आपकी कल्पना सुन्दर है। अमलमें आ जाय तो अच्छा ही है।"

"हमारे कॉलेजका पाठ्यक्रम तैयार करते वक्त पाठ्यक्रमसमितिमें लंदन युनि-वर्सिटी और बम्बई विश्वविद्यालय दोनोंके प्रतिनिधियोंको लेगे और पाठ्यक्रम दोनों युनिवर्सिटियोंमें पास करायेंगे। कुछ विषय लेकर जो पास हो, सो बम्बई विश्व-विद्यालयकी तरफ जाय; कुछ खास विषय ले सो लंदन युनिवर्सिटीमें जाय। इस तरहका इन्तजाम आरामसे किया जा सकता है। हिन्दुस्तानका इतिहास, हिन्दुस्तानका तत्त्वज्ञान वगैरा विषय तीनों कौमोंके कुछ विद्यार्थी जरूर सीखेंगे।"

गुजरात विद्यापीठके एक विद्यार्थी और श्री गिजुभाईके शिष्य सोमाभाई भावसार मोम्बासाके बालमंदिरमे काम कर रहे हैं। उन्होंने बच्चोंके लिए 'अमर गांधी' नामक एक बिलकुल छोटी गुजराती पुस्तक लिखी है। इसका स्वाहिली अनुवाद झांझीबारवाले श्री रामभाई और भानुभाई त्रिवेदीने प्रकाशित किया है। इसी पुस्तकका युगाण्डामें प्रचलित लुगाण्डा भाषामे हुआ अनुवाद कंपालामें मेरे हाथों प्रकाशित करनेका इन्तजाम किया गया था। इस छोटीसी पुस्तिकाका वहांके लोगों पर अच्छा असर हुआ है। इस समारोहमें मैंने श्री काकूभाईको पहचान लिया। वे यहांके लोगोंकी भाषा बहुत बढ़िया बोलते हैं। यहांके लोगों पर इनका प्रभाव भी अच्छा है। एक बार अफ्रीकी लोगोंने दंगा किया था, परन्तु काकूभाई-को उसमें कोई आंच नही आई। अफ्रीकी लोगोंने उनसे कहा, "आप चिंता न करें, आपको या आपकी एस्टेटको कुछ नही होगा। आप निश्चिन्त रहें।"

एक बातकी चर्चा यही कर दूं। कुछ लोग कहते हैं कि अफ्रीकी मजदूर और

घरोंमें काम करनेवाले नौकर लोग कृतघ्न होते है। इन लोगोंके भलेके लिए मेहनत करनेवाले कुछ सज्जन लोगोंकी भी ऐसी राय सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ। मैं ऐसी रायको स्वीकार नहीं कर सकता। मनुष्य स्वभाव सब जगह एकसा ही होता है। इन्सान तो क्या, क्रूर जानवर भी प्रेमके वश होते हैं।

कृतघ्नता बहुत ही थोड़े लोगोंमें दिखाई देती है। अकसर उपकार करनेवाले अधीर होकर कृतज्ञताकी अपेक्षा रखते हैं, और अधीर होकर ही दूसरे आदमी पर कृतघ्नताका आरोप करते हैं। जैसे हम कृतज्ञताकी जरूरतसे ज्यादा अपेक्षा रखते हैं, वैसे दूसरा आदमी भी हमसे जरूरतसे ज्यादा भलाईकी अपेक्षा रखकर हमेशा असंतुष्ट रहता है। किसी नौकरको हम अच्छी तरह रखते हों, तो हम आशा करते हैं कि वह हमें छोड़कर नही चला जायगा। उसके घर या बाल-बच्चोंकी स्थितिका हमें खयाल नहीं होता। ज्यादा आमदनीकी जरूरत हो तो बेचारा क्या करे? कभी-कभी अच्छा व्यवहार होते हुए भी दोनों तरफ गलतफहमी होती है।

और हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि सैंकड़ों वर्षों तक अरबों, गोरों और किसी हद तक हमारे लोगोंने भी इन लोगोंको पकड़-पकड़कर निर्दयतासे गुलाम बनाकर बेचा था और रखा था। इनके मनकी तो क्या, शरीरकी हालतका भी हमने विचार नही किया। ऐसे लोग मनुष्य-जाति पर अभी तक कुछ भी विश्वास रखते हैं, यही आश्चर्यकी बात है। साप इन्सान पर भरोसा नही करता और इन्सान सापका भरोसा नही करता, इसके पीछे हजारों वर्षका दोनोंका जातीय अनुभव है। अफ्रीकी लोगोंने दूसरे महाद्वीपोंके लोगोके हाथो जितना कष्ट उठाया है, उतना किसी भी अन्य मनुष्य-जातिने नही उठाया। इतने पर भी यह जाति क्रुद्ध नही हुई, यह या तो इसकी भलाई जाहिर करती है या बचपन जाहिर करती है। किसी भी मिशनरीने आज तक नही कहा कि यह जाति कृतघ्न है।

कंपालामें अफ्रीकी लोगोंके राजा रहते है। उन्हें ये लोग 'कबाका' कहते हैं। रानीको 'नेबागदीका' कहते हैं। हम कबाकासे मिलने गये। आदमी जवान, उत्तम पढ़ा हुआ और संस्कारी लगा। चेहरा भी प्रभावशाली था। विलायतमें पढ़ा हुआ होनेके कारण वहांकी रीति-नीति अच्छी तरह जानता था। युगाण्डाके गांवोंमें पंचोंका राज थोड़ासा रहा होगा। वह इस कबाकाकी देखरेखमें चलता है। सुना है इस राजाकी वृत्तिया अच्छी हैं। परन्तु यह अनुभव होनेके कारण कि उनके हाथमें कुछ करनेका बहुत अधिकार नही रह गया है, उनका उत्साह मन्द पड़ गया है। हम जब उनसे मिलने गये तब उनके महलमें कही-कही इमारती मरम्मतका काम हो रहा था, इसलिए हम सारा महल नहीं देख सके। राजमहलके आंगन में कुछ गोल-गोल झोंपड़ियां देखी। झोंपडियां देखकर मुझे आश्चर्य हुआ, परन्तु एक तरहसे अच्छा लगा। अफ्रीकी संस्कृतिके स्मारकके तौर पर ये मिट्टीकी झोंपड़ियां राजमहलके पास ही हैं, यह यथायोग्य है। रानीकी बहन किंग्स कॉलेजमें

अध्यापिकाका काम करती हैं। वे वहां सरोजसे मिली थीं। उसी दिन दोपहरको एक जगह राजाके प्रधानमन्त्री भी मिले। जैसे अनुभवी अधिकारी होते हैं वैसे ही ये थे।

मेकेरेरे कॉलेजके साथ एक म्यूजियम है। वह कई तरहसे देखने लायक है। अफ्रीकी लोगों द्वारा विकसित कई कलाएं वहां देखनेमें आती हैं। उनके बर्तन, शिकारके साधन, तरह-तरहके बाजे, जानवरोंके सींग, अफ्रीकियोंके नाना प्रकारके जेवर, कपड़े, काठकी मूर्तियां और औजार वगैरा सब वहां देखने योग्य हैं। और उन परसे सहज ही कल्पना होती है कि इन लोगोंने एक खास हद तक अच्छी प्रगति की थी और उसके बाद इनकी संस्कृति बीचमें ही ठहर या रुक गई।

अपने आसपासकी कुदरत, पेड़, पत्ते, आबोहवा, ऋतु, जंगलके जानवर और अपनी जरूरतें इन सबका विचार करके इन लोगोंने अपना जीवनक्रम और समाज-व्यवस्था बना रखी है। मन पर यह असर पड़े बिना नहीं रहता कि उनकी परि-स्थितिमें सबसे अच्छी व्यवस्था वही हो सकती है। उनकी संस्कृतिका स्वरूप भले ही प्रारंभिक हो, परन्तु उसमें संस्कृतिके सभी तत्त्व है। यह बात निर्विवाद है कि नये ढंगसे मानस तैयार करनेका काम हो जानेके बाद उन लोगोंको आधुनिक संस्कृति अप-नानेमें कठिनाई नहीं हो सकती। बुद्धि-शक्ति और संगठन-शक्ति विकसानेमें ये लोग घटिया साबित नहीं हुए। उनके जीवनको नये ढंगकी तरफ मोड़नेकी ही बात है। आज वह पुरानी संस्कृति उनके कबाकाकी तरह बेकार पड़ी है।

जिन दिनों हम कंपालामें थे, हमें एक दिन रातके खानेके लिए एन्टेबे जाना था। वहाका विक्टोरिया होटल सरकारकी तरफसे चलाया जाता है। इन्तजाम बहुत अच्छा था। ऊपर कहा ही गया है कि कम्पाला युगाण्डाकी देशी राजधानी है, जबकि एन्टेबे सरकारी राजधानी है। यहां सरकारी नौकरी करने वाले हमारे देशी भाइयोंकी तरफसे भोज था। यहां चर्चा भी बढ़िया हुई थी।

इस स्थान पर आखिरी दिन सेठ नानजी कालिदासके लड़के धीरुभाईकी तरफ-से एक बड़ा भोज था। उसमें युगांडाके स्थानापन्न गवर्नर और बड़े-बड़े अधिकारी भी आये थे। यह कहें तो कोई हर्ज नहीं कि सारे खानेका ठाठ बादशाही था। उस पर कितना खर्च हुआ होगा, इसका विचार करनेकी भी मैंने हिम्मत नहीं की। कोशिश करके दिमागको ठिकाने न रखा होता, तो पूर्व अफ्रीकामें दावतोंकी भर-मारसे दिमाग फिर गया होता और मैं मान बैठता कि हम कोई बड़े अमीर या महा-पुरुष हैं।

हम कम्पाला गये तब यह देखकर मुझे बड़ा आनन्द हुआ कि वहांके मेयर पंजाबके हमारे देशी युवक भाई थे। माननीय श्री मैंगी यहांके पहले हिन्दुस्तानी मेयर हैं। अपनी होशियारीसे उन्होंने अपने लोगों पर, और गोरो पर भी अच्छा असर डाला है। हमारे ही एक देशवासीके बनाये हुए यहांके सुन्दर टाउनहॉलको

देखनेके लिए श्री मैनीके साथ जानेमें बहुत आनन्द हुआ।

कम्पालामें हमारी सारी व्यवस्था श्री नानजीभाईके कुशल साझीदार श्री छोटाभाई पटेलने की थी। अपने मीठे आतिथ्यसे श्री रामजीभाई लद्धाने हमें सहज ही अपना बना लिया था। उनके घरके आलबम क्या थे, सारे कुटुम्बका इतिहास था।

२४. अफ्रीकाके गांवोंमें

किसी भी देशमें यात्रा पर जाते हैं, तो वहांकी कला, कारीगरी और सौंदर्यके नमूनोंके तौर पर प्रेक्षणीय स्थान देखते हैं, बड़े-बड़े शहर देखते हैं, कारखाने देखते हैं और इनके अलावा वहांके खास-खास व्यक्तियोंसे मिलते हैं। इतनेसे उस देशकी विशेषता ठीक-ठीक ध्यानमें आ जाती है। लेकिन अगर उस देशका वातावरण, उसकी असली हालत और लोक-स्वभाव देखना हो, तो उसके मामूली देहातमें ही जाना चाहिये। और वह भी आप रास्ता छोड़कर यदि एक तरफ हों, तो ही उस देशकी आत्मा 'अपने तनका विवरण' दे सकती है।

जून महीनेके आखिरी दिन हमें अफ्रीकाके तीन गांव देखनेका अवसर मिला। कम्पालामें साढ़े नौ बजे चलकर हमने आड़े रास्तेसे बारह मीलका सफर किया और गयाजा पहुंचे। वहां हमारे देशसे जाकर बसे हुए सादे, मेहनती और साखवाले दुकानदार देखे। हमारे स्वागत-सत्कारमें सभी कुटुम्बीजन इकट्ठे हुए थे। मसालेदार दूध और पेड़े वगैरा स्वागतके लिए तैयार थे। परंतु हमें विशेष आनन्द यह हुआ कि वहांके हिन्दुस्तानी लोगोंने हमारा आग्रह पहलेसे जानकर आसपासके अफ्रीकियोंको भी इकट्ठा कर लिया था। देहातमें रहनेवाले भारतीय और ग्रामीण अफ्रीकी दोनोंका सहयोग प्रयागमें मिलनेवाले गंगा-यमुनाके प्रवाह जैसा लगता था। गेहूंवर्णी और कालेके मिश्रणके कारण ही नहीं, परंतु रहन-सहनके भेदके कारण अलग-अलग रहनेका रिवाज होते हुए भी ये दोनों किस प्रकार कुछ न कुछ ओतप्रोत हो जाते हैं, यह देखनेका मौका मिलनेके कारण। सभी भारतीय यहांकी लुगांडा भाषा अच्छी तरह बोल सकते थे। और अफ्रीकी लोग मानो हिन्दुस्तानके जातिभेदके आदी हों, इस ढंगसे अलग रहनेमें और फिर भी सहयोग करनेमें कोई कठिनाई महसूस नहीं करते थे। यहां मैंने दोनोंके लिए छोटासा भाषण दिया।

मेरे भाषणकी स्थिति यह होती है कि मैं पहलेसे तैयारी नही करता। आखिरी वक्त श्रोताओंका समूह देखकर वातावरणके अनुकूल जैसा सूझता है बोल देता हूं। कभी-कभी हमारी पार्टीमें शरीक होकर साथ आनेवाले लोगोंका खयाल मनमें रखकर भी बोलता हूं। और कभी-कभी उसी क्षण अकल्पित रूपमें कोई विचार मनमें आ जाता है, तो फिर श्रोताओंका या प्रसंगका कुछ भी विचार किये बिना बोल ही देता हूं। या यों कहूं तो कोई हर्ज नहीं कि ऐसे किसी विचारका उदय हो जाता है, तब

और कुछ बोला ही नहीं जाता। भले ही बुद्धि कहती हो कि यह विचार यहांके योग्य नहीं है, परन्तु विचार अपना सोचा हुआ ही कर लेता है।

गयाजामें मैंने प्रारंभ किया कि इस देशमें तीन महाद्वीपोंकी संस्कृति एकत्र हुई है। एशिया महाद्वीप महान पैगम्बरोंकी आध्यात्मिक वृत्तिकी परंपराका क्षेत्र है। चीनमें कन्फ्यूशियस और लाओत्ज़ेके उपदेशोंमेंसे एक समूची संस्कृति फली-फूली। अरबस्तानमें अब्राहमसे लेकर मुहम्मद और अली तक कई पैगम्बर वहांके लोगोंको शिक्षा देते रहे। और पेलेस्टाइन तो अनेक छोटे-बड़े नबियोंका घना जंगल रहा। ईसा मसीह इसी फसलके एक पके हुए फल थे। मध्य एशिया और ईरानमें ऐसे ही असंख्य नबी हो गये हैं, परंतु उनमेंसे अनोखा रास्ता बताया अशो जरथुस्त्रने। उनकी गाथाओंमें वैदिक परम्पराकी एक भिन्न शाखा हमें देखनेको मिलती है। और हिन्दुस्तान तो मानव-जातिके इतिहासमें लेकर आज तक अखंड चली आ रही ऋषि-मुनियोंकी और संत-महात्माओंकी परम्पराकी भूमि ही है। इन सब धर्मप्रवर्तकोंने मनुष्य-जातिको आध्यात्मिक संस्कृति दी और उसकी आत्माको सुसंस्कृत किया। यह है एशियाकी खासियत।

यूरोप महाद्वीपने विज्ञान और संगठनका अद्भुत पराक्रम बताया है। यह पुरुषार्थ अभी पूरा नहीं हुआ, परंतु ये दोनों शक्तियां अब यूरोपकी विशेषता नहीं रहीं। इनका फैलाव सारी दुनियामें होने लगा है। विज्ञानकी साधना आत्माकी साधनासे बहुत घटिया हरगिज नहीं कही जा सकती। आत्माकी साधना अन्तरात्मा-का साक्षात्कार कराती है, जबकि विज्ञानकी साधना सृष्टिके अणु और उनकी अनन्तता, दोनों रूपोंकी गहराई और विस्तारका दर्शन कराकर सर्जनहारकी झांकी कराती है। इस विज्ञानने तमाम संसार पर अपना अच्छा-बुरा असर डाला है।

अब अफ्रीकामें मानव-जातिकी अन्तिम साधना शुरू होगी। इसका प्रारम्भ गांधीजीने इसी भूमिमें किया था। काले जुलू लोगोंका शिकार करने निकले हुए गोरोंको रोका तो नहीं जा सकता था, परंतु उस 'युद्ध' (!) में मददगार बनकर घायल जुलूओंकी सेवा करनेके लिए गांधीजीने हिन्दुस्तानियोंका एक दल तैयार किया और विश्व-बंधुत्वका प्रारंभ किया। सेवा और सत्याग्रह द्वारा सज्जन दुर्जन सबकी एकसी सेवा करनेका और मानवताका विकास करनेका सर्वोदय पन्थ गांधीजीने अफ्रीकामें शुरू किया। अब यहां यूरोपके गोरों, और हिन्दुस्तानके गेहुंए रंगके लोगों और अफ्रीकाके काले लोगोंको वर्णभेद भूलकर, ऊंच-नीचका फर्क मिटाकर, विश्व-कुटुम्ब स्थापित करनेकी कोशिश करनी है। यह मानवता सिद्ध करनेके लिए लोगों-का मलिन स्वार्थ दूर होना चाहिए। जीवनशुद्धिके बिना हृदय-समृद्धि असंभव है। यह जीवनशुद्धि शुरू करनेके लिए गांधीजीने खादीकी दीक्षा दी है। गांधीजीने कहा है कि शोषणरहित अहिंसक समाजकी स्थापना ग्रामोद्धारसे ही हो सकती है और हिन्दुस्तानमें ग्रामोद्धारका आधार खादी है।

प्रकृतिकी कृपासे, हिन्दुस्तानी लोगोंकी मददसे और अफ्रीकी लोगोंकी मेहनतसे युगांडामें बहुत अच्छी कपास होती है। यहांके ग्रामीण लोगोंको सतत उद्योगकी जरूरत है। गोरे लोगोंकी या हिन्दुस्तानियोंकी पूंजी पर आधार रखनेके बजाय देहातके लोग खादीको अपनायेंगे, तो यहां भी समय पाकर विश्व-बन्धुत्वकी स्थापना उत्तम रूपमें हो सकेगी।

इसी सभामें किसी अफ्रीकी जमातका एक मुखिया हाजिर था। इधर इन मुखियोंको अंग्रेज लोग चीफ कहते हैं। उसने हमें धन्यवाद देनेका काम अपने जिम्मे लिया। हिन्दुस्तान और अफ्रीकाके बीचके स्नेहसंबंधके बारेमें उसने इतना सुंदर उल्लेख किया और अपने हृदयके भाव व्यक्त करते हुए भी राजनीतिक जिक्र उसने ऐसी खूबीसे टाला कि मुझे खयाल हुआ कि उचित अवसर मिले तो यह आदमी अच्छा खासा राजनीतिक पुरुष बन सकेगा।

यहांसे हमारी मंडलीके अधिकांश लोग बोम्बोकी तरफ आगे चले गये। हम रास्तेमें पड़नेवाले एक मिशन स्कूलको देखने गये। इस पाठशालाको चलानेवाली यूरोपियन महिला यहां सेवा करते-करते बूढ़ी हो गयी है। अफ्रीकी लोगोके बीच अकेले रहकर ये मिशनरी लोग पाठशालाओंकी स्थापना करते हैं। जो जमीन मिल जाती है उस पर सख्त मेहनत करके उसे नन्दनवन बना देते हैं। अत्यंत सादे झौंपड़ोंमें रहते हुए भी उनमें कोशिश करके सुघड़ता और सुन्दरता स्थापित कर देते हैं और हरएक आदमीसे कहलवा लेते हैं कि जहां बुद्धि, हृदय, लगन और परिश्रम हैं, वहां लक्ष्मी और सरस्वती प्रसन्नतापूर्वक स्थायी बन ही जाती हैं।

इस पाठशालामें भी हमने संगीत और चित्रकलाकी मांग की। मैंने शुरूमें ही कह दिया था कि अंग्रेजी राग और अफ्रीकी शब्दोंवाला संगीत मुझे नहीं चाहिये। अंग्रेजी चित्रकलाकी नकलें भी मुझे नहीं देखनीं। संस्थामें घूमते-घूमते मैने देखा कि कागजों पर ही नहीं, बल्कि दीवार पर भी जीवनकथा ईसाकी, परंतु चित्रकलाकी आत्मा शुद्ध अफ्रीकी—ऐसा कीमिया यहां सध गया है। संगीतमें भी इन लोगोंने अफ्रीकी रागोंमें ईसाई भाव प्रगट करनेके लिए तरह-तरहसे संमिश्रण पैदा किये हैं। सादेसे सादे रागोंमेंसे जटापाठ और घनपाठ काममें लेकर इन लोगोंने भावोंकी कुछ ऐसी संसृष्टि की थी कि जिसने यह सब कुछ साधना की थी, उस कलाकारको बुलाकर बधाई दिये बगैर मुझसे रहा नहीं गया।

बोम्बोमें एक भाषणसे निपटकर दुग्ध-पान करके हम बोबुलेन्जी गये। वहां हमें भोजन करना था। अफ्रीकाके लगभग मध्यप्रदेशके एक मामूली गांवमें गुजराती भाइयोंके बीच स्वदेशी ढंग पर भोजन करते हुए मुझे असाधारण आनन्द हुआ। यहांकी सभामें आसपासके मिशनरी जाग्रत कुतूहलके साथ आये थे।

स्वाभाविक तौर पर मेरे भाषणका एक खास भाग उन लोगोंको ध्यानमें रखकर दिया गया था। हम लोग ऐसा नहीं मानते हैं कि 'हमारा ही धर्म सच्चा है। ज्ञान-

सूर्य हमारे ही पास है। बाकीकी सारी दुनिया अज्ञानके अंधकारमें डूबी हुई है, भ्रम-में पड़ी हुई है। हमारी यह भावना है कि 'हम सब धर्मोंको स्वीकार करते हैं, सभी धर्म सच्चे हैं, अच्छे हैं और इसलिए हमारे हैं।' यह बात मैंने सौम्य शब्दोंमें रखी। हम लोगोंको सेवा द्वारा ही साबित करना चाहिये कि 'हमारा यहां होना अफ्रीकी लोगोंके लिए उपकारक और मंगल-साधक है,' यह बात मैंने यहां भी जोर देकर कही।

लौटते वक्त श्री छोटाभाईके साथ बहुतसी बातें कर लीं। आर्य-समाजका हिन्दुस्तानमें क्या स्थान है और उसका मिशन क्या हो सकता है? हिन्दू-मुस्लिम संबंधोंमें सुधार कैसे हो? हिन्दुस्तानी और अंग्रेज मिलकर इस देशकी सेवा किस तरह कर सकते हैं?···वगैरा सवालों पर बहुत विस्तारमें जाकर हमने चर्चा की। सारी बातचीत खानगी होनेके कारण कुछ भी संकोच न रखकर गुण-दोषकी मीमांसाके साथ हमने सारा ऊहापोह कर लिया।

शामको भाटिया चेम्बर्समें भोज था। वहां भाषणके बाद अच्छे प्रश्नोत्तर हुए। कांग्रेस आंदोलन, हमारा राष्ट्रीय झंडा वगैरा कई प्रश्नोंका इतिहास और इन चीजों का रहस्य स्पष्ट करनेका इस प्रकार सुन्दर अवसर मिला। खानेसे पहले कम्पाला-की कुछ लड़कियां यह कहकर मिलने आई थीं कि 'हमें आकाशके तारे दिखाइये'। बादलोंने हमें यह आनन्द नहीं लेने दिया, परंतु लड़कियोंमें तारा-दर्शनका यह उत्साह देख कर मुझे आनन्द हुआ।

२५. नीलोत्री

१

अफ्रीकाकी यात्रा करनेमें एक उद्देश्य था उत्तर-पूर्व अफ्रीकाकी माताके समान उत्तरवाहिनी नील नदीके उद्गम-स्थान 'नीलोत्री'का दर्शन। गंगोत्री और जमनोत्री कीयात्रा करनेके बाद अभी-अभी महसूस होने लगा था कि नीलोत्रीकी यात्रा अवश्य करनी चाहिये। वह दिन अब निकट आ गया। जुलाईकी पहली तारीख हुई और हमने कम्पाला छोड़कर जिंजाके लिए प्रस्थान किया। अपने जरूरी कामके कारण श्री अप्पासाहब आज नैरोबी वापस चले गये और हम मोटर लेकर अपने रास्ते चल पड़े।

कम्पालासे जिंजाका रास्ता बड़ा मनोहर है। कई छोटी और चौड़ी पहाड़ियां चढते-उतरते हमारी मोटर हमारे और नीलोत्रीके बीचका ५२ मीलका अन्तर काटती गई और हमारी उत्कंठा बढ़ाती गयी। कितना बड़ा सौभाग्य था कि जिंजा पहुंचनेसे पहले ही हमारा संकल्प पूरा हुआ और हमें नीलोत्रीके दर्शन हुए! दाईं ओर विक्टोरिया अथवा अमरसरका सरोवर दूर तक फैला हुआ है और उसमेंसे

स्वाभाविक लीलासे छलांग मारकर नील नदी अस्तित्वमें आ जाती है। हम नदीके पुल पर पहुंच गये। मोटरसे उतरे और दाईं तरफ मुडकर रिपन फॉल्सके नामसे प्रसिद्ध छोटेसे प्रपातमें हमने नील नदीके दर्शन किये।

प्रपातके तुषारसे पैर ढंक गये हैं। सिर पर मुकुट चमक रहा है और पीछे एक हराभरा पेड़ मुकुटको अधिक सुन्दर बना रहा है। देवीके दोनों हाथोंमें धानकी पूलियां हैं और मुंह पर प्रसन्न वात्सल्य खिल रहा है। ऐसी मूर्ति कल्पनाकी नजरमें आई। मूर्ति नील रंगकी नहीं थी, परंतु श्याम वर्णकी तरफ जरा झुकती हुई गौर ही थी। सारे शरीर परसे पानीकी धारा बह रही थी और इससे देवीके मुख परका हास्य अधिक सुन्दर लग रहा था।

जी भरकर दर्शन करनेके बाद हमने बाईं ओर देखा। दाईं ओर पानी हमारी तरफ दौड़कर चला आ रहा था। बायीं तरफका पानी हमसे दूर-दूर दौड़ा जा रहा था। दोनोंका असर बिलकुल अलग था। हम जानते थे कि जैसे दायीं ओर रिपन प्रपात है, उसी तरह बायीं तरफ जरा दूर ओवन प्रपात है, हमारे देशमें उसे कोई प्रपात कहेगा ही नहीं। पानीकी सतहमें कुछ फुटका अन्तर पैदा हो जानेसे ही कहीं प्रपात बन जाता है? प्रपात तभी कहा जा सकता है, जब पानी धमाधम पड़ता हो। जितना पड़े उतना जोरसे वापस उछलता हो और फेन तथा तुषारके मेघ आसपास नाचते हों।

यात्राके अन्तमें जब तुरन्त जाकर मंदिरोंमें दर्शन करते हैं, तब यात्रियोंकी परिभाषामें उसे 'धूल-भेंट' कहते हैं। यात्रा पैदलकी हो, सारे शरीर पर धूल छाई हो और उत्कंठाके कारण उसी हालतमें दौड़कर इष्टदेवके चरणोंमें गिर रहे हों या मिल रहे हों, तब उसे 'धूल-भेंट' कहा जा सकता है। हम तो मोटरके वेगसे आये थे। सवेरे थोड़ीसी बरसात हो जानेके कारण रास्ते पर भी धूल नहीं थी। इसलिए इस प्रथम दर्शनको 'गीली-भेंट' ही कहा जा सकता है। इसे 'भाव-भीनी' कहें तो ही वह अधिक यथार्थ वर्णन होगा। मूर्ति गीली, जमीन गीली, आंखें गीली और अनेक मिश्रित भावोंसे सराबोर हृदय भी गीला। 'अद्य मे सफलं जन्म, अद्य मे सफलाः क्रियाः' यह पंक्ति जिसने पहले-पहल गाई होगी, वह मेरे जैसे असंख्य यात्रियोंका प्रतिनिधि था।

नीलमाताके ये प्रथम दर्शन हृदयमें संग्रह करके हमने जिंजामें प्रवेश किया। विद्यापीठके किसी समयके मेरे विद्यार्थी एडवोकेट श्री चन्दुभाई पटेलके यहां हमारा डेरा था। पुराने विद्यार्थियोंके यहां आतिथ्य अनुभव करना जितना आनन्ददायक होता है, उतना ही कड़ा और कठिन भी होता है। घरकी अच्छीसे अच्छी सुविधाएं हमें दे कर खुद अड़चन भुगतनेमें वे आनन्द मानते होंगे, परन्तु हमें संकोच और परेशानी हुए बगैर कैसे रह सकती है?

अब हम नीलोत्रीके बाकायदा दर्शनके लिए रवाना हुए। जहां अमरसरका

पानी पत्थरोंकी किनारी परसे नीचे उतरता है और नील नदीको जन्म देता है वहां हम पहुंचे। जल्दी-जल्दी पानी तक पहुंच कर पहले पैर ठंडे किये। आचमन करके हृदय ठंडा किया और क्षणभरके लिए उस स्थानका ध्यान किया। मेरी आदतके अनुसार ईशोपनिषद् मांडुक्य उपनिषद् अथवा अघमर्षणसूत्र मुंहसे निकलना चाहिये था। परंतु यकायक यह श्लोक निकला :

ध्येयः सदा सवितृ-मंडल-मध्यवर्ती
नारायणः सरसिजासन-सन्निविष्टः।
केयूरवान् मकरकुंडलवान् किरीटी
हारी हिरण्मय-वपुर् धृत-शंख-चक्रः॥

नील नदीके किनारे अलग-अलग समय, अलग-अलग जगह तीन बार नीलाम्बा का ध्यान किया और हर बार मुंहसे अचूक यही श्लोक निकला। अब मुझे मिस्र देशकी संस्कृतिके पुराणोंमें यह खोज करना है कि क्या नील नदीका भगवान सूर्य-नारायणके साथ कोई खास संबंध है?

मैं संस्कृत . . . कवि होता तो इस नदीके पानीमें रहनेवाली मछलियों, इस पानी पर उड़ते हुए बातूनी पक्षियों और उसके किनारे लोटपोट होनेवाले किवोंका (हिपोपॉटेमस) की धन्यताके स्तोत्र गाता। नील-नदीके किनारे जो वाटर-वर्क्स हैं, उनकी देखभालके लिए नियुक्त एक गुजराती भाईसे, उन्हींकी भाषामें ईर्ष्या प्रगट करके मैंने सतोष मान लिया : "आप कितने धन्य हैं कि आपको दिन रात नीलोत्री के दर्शन होते हैं और यहांसे न हटनेके लिए आपको वेतन दिया जाता है!" उन भाईको ऐसी धन्यता महसूस होती थी या नहीं, यह देखने या पूछनेके लिए मैं वहां नहीं ठहरा।

मेरे ख्यालमें नदिया दो प्रकारकी होती हैं: जो पहाड़से निकलती हैं और जो सरोवरसे निकलती है। पहलीको मैं शैल-जा कहूंगा या पार्वती; और दूसरीको सरो-जा (दुनियाभरके कमल, आशा है, मुझे क्षमा करेंगे)। शैलजा नदियोंका उद्गम बहुत छोटा, पतला और लगभग तुच्छ जैसा होता है। इसलिए उनके विषयमें आदर उत्पन्न करनेके लिए बड़े-बड़े माहात्म्य लिख डालने पड़ते हैं। गंगोत्रीके पास गंगाका प्रवाह कभी-कभी इतना छोटासा हो जाता है कि मामूली आदमी भी एक किनारे एक पैर और दूसरे किनारे दूसरा पैर रखकर खड़ा रह सकता है। सरोजा नदियोंकी यह बात नहीं है। विशाल और स्वच्छ वारि-राशिमें से जितना जीमें आये उतना ढेर खींचकर वे अस्तित्वमें आती हैं और उनके चलने और बोलनेमें गर्भ-श्रीमन्ताईका आत्मभान होता है।

नीलोत्रीकी यात्रा पर आनेका एक और भी अदम्य आकर्षण था। महात्मा गांधी के पार्थिव शरीरको अग्निसात् करनेके बाद उनके फूल (अस्थि) और चिता-भस्मका विसर्जन हिन्दुस्तान और संसारके बहुतसे पुण्यस्थानोंमें किया गया था। उन्हींमेंसे

एक स्थान नीलोत्री है।

हम जिजा नगरीके सार्वजनिक मेहमान होनेके कारण यहांके लोगोंने हमारी उपस्थितिसे 'लाभ उठाने' का निश्चय किया। जिस जगह चिता-भस्मका विसर्जन किया गया था, उसीके पास एक कीर्तिस्तंभ खड़ा करनेका निश्चय हो चुका था। इसलिए उसकी बुनियाद मेरे हाथों डालनेका प्रबंध किया गया :

२ जुलाई, १९५० अर्थात् अधिक आषाढ़ कृष्णा तृतीयाके दिन सवेरे सैकड़ों लोगोंकी उपस्थितिमें मैंने यह विधि पूरी की। इस उत्सवके लिए गांधीजीका एक बड़ा चित्र सामने रखा गया था। उसकी नजर मुझ पर पड़ते ही मैं अस्वस्थ हो गया। वैदिक विधि पूरी होनेके बाद मैंने गांधीजीके जीवनके बारेमे और अफ्रीका ही उनकी तपोभूमि होनेके बारेमें थोड़ासा प्रवचन किया। फोटो वगैरा लेनेकी आधुनिक रस्मसे मुक्त होते ही किनारेके एक पत्थर पर बैठकर नीलमाताके सुभग जलप्रवाह पर मैंने टकटकी लगाई और अंतर्मुख होकर ध्यान किया। उस समय मनमें विचार आया कि इस स्थान पर यूरोप, अफ्रीका और एशिया तीनों महाद्वीपों के, बल्कि अमरीकाके भी, महान और साधारण आबालवृद्ध स्त्री-पुरुष आयेंगे, सर्वोदयके ऋषि महात्मा गांधीजीके जीवनकार्य और अंतिम बलिदानका यहां चिन्तन करेंगे और मनुष्य मनुष्यके बीचका भेदभाव भूलकर विश्व-कुटुम्बकी स्थापना करनेका व्रत लेंगे। भविष्यके इन तमाम आगामी प्रवासियोंको मैंने वहांसे अपने प्रणाम भेजे।

२

नील नदीकी दो शाखाएं हैं। श्वेत और नील। जिसका उद्गम जिजाके पास है वह श्वेत शाखा है। नील शाखा भी सरो-जा ही है। ईथियोपिया, जिसे हम लोग हब्शियाना (एबिसीनिया) कहते हैं, देशमें ताना नामक एक सरोवर है। इस सरोवरमेंसे नील शाखा निकलती है। ये शाखाएं लाखों बरससे बहती रही हैं और इनके किनारे रहनेवाले पशु-पक्षियों और मनुष्योंको जलदान करती आई है। परंतु यूरोपियन लोगोंको जिस चीजका पता न हो वह अज्ञात ही कही जायगी! एक तरहसे उनका कहना सच भी है। दूसरे लोग नदीके किनारे रहते हुए भी इसकी खोज न करें कि वह नदी असलमें आई कहांसे और आगे कहां तक जाती है, तो यह नहीं कहा जा सकता कि उन लोगोंको सारी नदीका ज्ञान है। उदाहरणके लिए, तिब्बतके लोग मानसरोवरवाली सानपो नदीको जानते हैं। वह नदी पूर्वकी तरफ बहती-बहती जंगलमें गायब हो जाती है। अधिकसे अधिक इतना ही वे लोग जानते हैं। इस तरफसे हमारे लोग ब्रह्मपुत्रका उद्गम ढूंढते-ढूंढते उसी जंगलके इस तरफ के सिरे तक पहुंचे। आगेका वे कुछ नहीं जानते : जब अनेक अंग्रेज प्रतिकूल परिस्थिति होते हुए भी इन जंगलोंमेंसे गुजरे, तभी वे यह स्थापित कर सके कि तिब्बतकी सानपो नदी ही इस ओर आई है और दूसरी कई छोटी-बड़ी नदियोंका पानी

लेकर ब्रह्मपुत्र बनी है।

नील नदीका उद्गम ढूंढनेवालोंमें मि० स्पीक अन्तमें सफल हुए और उन्होंने साबित किया कि जिंजाके पास सरोवरसे जो नदी निकलती है वही मिस्र-मा नील है।

ये स्पीक साहब भारत-सरकारकी नौकरीमें थे। इन्हें समाचार मिले कि प्राचीन हिन्दू मिस्र अर्थात् मौजूदा इजिप्त देशके बारेमें बहुत जानते थे। उन्होंने जांच करके मालूम किया कि संस्कृत पुराणोंमें कहा है कि नील नदीका उद्गम मीठे पानीके अमरसरसे हुआ है। इसी प्रदेशमें चन्द्रगिरि है। ठेठ दक्षिणमें जाने पर मेरु पर्वत स्थित है, वगैरा। पुराणोंमेंसे कुछ संस्कृत श्लोकोंका उन्होंने अनुवाद कराया और उनके आधार पर नीलके उद्गमकी खोज करनेका मनसूबा बनाया। द्रव्यबल और मनुष्य-बलके बिना ऐसे पुरुषार्थ सफल नहीं हो सकते, इसलिए उन्होंने हिन्दुस्तानके उस वक्तके वायसरायसे मदद ले ली।

इस तरह जुटाया हुआ रुपया और सैनिक आदमी लेकर वे पहले झांझीबार गये और वहांसे सब तैयारी करके केनिया प्रदेश पार करके युगांडा गये। वहां उन्हें अमरसरवाला 'अच्छोद' सरोवर मिला। (अच्छ = सुअच्छ = स्वच्छ। उद = उदक = पानी। मीठे पानीके सरोवरको अच्छोद कहा जा सकता है।) और वहांसे निकलनेवाली नील नदी भी मिली। उन्होंने यह प्रमाणित किया है कि सूडान और मिस्रमें बहनेवाली यही नदी है। इस बातको अभी पूरे १०० वर्ष भी नहीं हुए।

अफ्रीका महाद्वीप सचमुच वहां रहनेवाली कई अफ्रीकी जातियोंका मुल्क है। इस प्रदेशके बारेमें अगर यूरोपियन लोगोंको काफी जानकारी नहीं थी, तो यह कोई वहांके लोगोंका दोष नहीं था। यूरोपकी तरफके और खास तौर पर अरबस्तान के लोग अफ्रीकाके किनारे जाकर वहांके लोगोंको पकड़ लेते और अपने देशमें ले जाकर गुलाम बनाकर बेचते। पकड़े हुए लोगोंमें स्त्रियां भी होतीं और बच्चे भी होते, परन्तु लुटेरे उनका इन्सानकी तरह खयाल क्यों करने लगे?

कुछ मिशनरी लोगोंको सूझा कि ऐसे जंगली लोगोंकी आत्माके उद्धारके लिए उन्हें ईसाई बनाना चाहिये। जिस गहन प्रदेशमें लोभी व्यापारी भी जानेकी हिम्मत नहीं करते, वहां ये उत्साही धर्मप्रचारक पहुंच जाते और वहांकी भाषा सीख कर ईसा मसीहका 'शुभ सन्देश' उन्हें सुनाते।

आगे चलकर यूरोपके राजाओंने अफ्रीका महाद्वीपको आपसमें बांट लिया। इसमें नियम यह रखा कि जिस देशके मिशनरियोंने जितना इलाका ढूंढ निकाला (!), उतना इलाका उस देशकी सम्पत्ति माना जाय। इसमें एक बार ऐसा हुआ कि स्टैनली नामक मिशनरीने इंग्लैंडके राजासे कांगो नदीके क्षेत्रका प्रदेश 'ढूंढ़ने'के लिए मदद मांगी। इंग्लैंडके राजा यानी पार्लियामेंटने यह मदद नहीं दी, इसलिए वह बेल्जियमके राजाके पास गया। राजा लियोपोल्ड लोभी और उत्साही

था। उसने सब मदद दी। परिणामस्वरूप जब अफ्रीका महाद्वीपका बंटवारा हुआ, तब कांगो नदीके क्षेत्रका मुल्क बेल्जियमके हिस्सेमें गया! यह बेल्जियन कांगोका इलाका लगभग हिन्दुस्तान जितना बड़ा है। वहांसे रबर प्राप्त करनेके लिए गोरोंने वहांके लोगों पर जो जुल्म गुजारे हैं, उनका वर्णन पढ़कर रोंगटे खड़े हो जाते हैं, ऐसा कहना अल्पोक्ति होगी। भावनाशील मनुष्य वह वर्णन पढ़े, तो उसका खून ही जम जाय। फिर भी गोरोंने वहांके लोगोंको धीरे-धीरे 'सुधारा' जरूर। अब वे लोग कपड़े पहनते हैं, बालोंमें तरह-तरहकी मांगे निकालते हैं, और शराब भी पीते हैं। इस तरह अधिकांश ईसाई बन गये हैं।

जिसके खर्चसे जो प्रदेश ढूंढा जाय उसीका वह प्रदेश हो जाय, इस हिसाबसे नील नदीके उद्गमकी तरफका सारा युगाण्डा प्रदेश हिन्दुस्तानके हिस्सेमें आना चाहिये था। परन्तु हिन्दुस्तान जैसे गुलाम देशको भला अधिकार कैसा? अच्छा हुआ कि इस पापके बंटवारेमें हमारे हिस्सेमें कोई भाग नहीं आया। हमारे यहांके लोगोंने युगाण्डामें जाकर कपासकी खेती बढ़ाई। शासकोंकी मददसे वहां बड़ी-बड़ी एस्टेटें बनायीं और करोड़ों रुपये कमाये। हमने भी वहांके लोगोंको सुधारा है। दरजीका काम, बढ़ईगिरी, राजका काम, रसोईका काम वगैरा धंधोंमें हमने उनकी मदद ली, इसलिए धीरे-धीरे वे लोग प्रवीण हो गये। हिन्दुस्तानके कपड़ेकी और विलायतसे आनेवाली शराब आदि तरह-तरहकी चीजें बेचनेकी दुकानें खोलीं और उन लोगोंको जीवनका आनन्द अनुभव कराया।

गोरे और गेहुए रंगके लोगोंके इस पुरुषार्थकी साक्षीस्वरूप नील नदी यहां चुपचाप बहती जाती है और अपना परोपकार अपने दोनों किनारों पर दूर तक फैलाती जाती है।

हमारे देशमें गंगा नदीका जो महत्त्व है वही महत्त्व, अधिक उत्कट रूपसे, उत्तर-पूर्वी अफ्रीकामें नील नदीका है। दुनियाकी सबसे महत्त्वपूर्ण संस्कृतियोंमें इजिप्तकी मिस्र अथवा मिसर संस्कृतिका स्थान है। और उसका प्रभाव यूरोपके इतिहास पर ही नहीं, परन्तु उसके धर्म पर भी पड़ा है। हमारे यहां जैसी चातुर्वर्णी संस्कृति फैली, वैसी ही संस्कृति प्राचीन मिस्र देशके इतिहासमें भी देखनेको मिलती है; और उसका प्रतिबिंब ग्रीक तत्त्ववेत्ता अफलातूनकी समाज-रचनामें पड़ा हुआ मिलता है।

चार वर्णवाली संस्कृति उस जमानेके लिए चाहे जितनी अनुकूल हो और भव्य मानी जाती हो, परन्तु तूफानी यूरोप उसे नहीं पचा सका। यूरोपमें जो ईसाई धर्म फैला है, उसका पालन-पोषण मिस्रमें कम नहीं हुआ है। परन्तु वहां विकसित हुए वैराग्य और तपस्या और देह-दमनको बहुत आजमानेके बाद यूरोपने छोड़ दिया। ऐसा होने पर यूरोप संस्कृतिका मूल खोजने जायं, तो इजिप्तके इतिहासमें जाना पड़ता है और इस इतिहासका निर्माण एक अंश तक नील नदी पर आधारित

है।

जिस तरह नदीका पानी आगे बहता जाता है, पीछे नहीं जा सकता, उसी तरह यह चीज हमारा ध्यान आकर्षित किये बिना नहीं रहती कि इजिप्तकी संस्कृति नील नदीके उद्गमकी तरफ युगाण्डा प्रदेशमें नहीं पहुंच सकी। अगर इजिप्तके लोग अमरसरके आसपास आकर बसे होते, तो अफ्रीकाका ही नहीं परंतु दुनियाका इतिहास और ही तरहसे लिखा जाता।

हमारे यहां हम नदियोंके जितने उद्गम देखते हैं, वे सब जंगलोंमें या दुर्गम प्रदेशोंमें होते हैं। और ये उद्गम छोटे भी होते हैं। नील नदीका उद्गम चौड़ा है, इसकी तो कोई बात नहीं। परन्तु उद्गमके काव्यमें खामीकी बात यह है कि वहां एक शहर बसा हुआ है। हमारे यहां कृष्णा और उसकी चार सहेलियां महाद्रिके जिस प्रदेशमेंसे निकलती हैं, वह प्रदेश दुर्गम और पवित्र था। संतोंने वहां शिवजी महाबलेश्वरकी स्थापना की। परन्तु अंग्रेजोंने उसे अपना ग्रीष्म-नगर बना कर उस तपोभूमिको विहार-भूमि या विलास-भूमि बना डाला। जिंजामें यह इतिहास याद आये बिना नहीं रहा।

और अब तो वहां ओवेन फाल्सके आगे एक बड़ा बांध बांध कर बिजली पैदा करनेवाले हैं। दुनियाका यह एक अद्भुत बांध होगा। इसकी शक्ति युगाण्डामें ही नहीं, परन्तु सूडान और इजिप्त तक पहुंचेगी। जिससे खाद्यपदार्थ बढ़ेंगे, अकाल दूर होगा, असंख्य अश्वत्थामा (हार्स-पावर) जितनी शक्ति मनुष्यकी सेवाके लिए मिलेगी। इसलिए ऐसी प्रवृत्तिको तो आशीर्वाद देने पर ही छुटकारा होगा। फिर भी हृदय कहता है कि मनुष्य-जाति इसके बदले कुछ ऐसा खोयेगी कि जिसकी समानता बड़ेसे बड़ा वैभव भी नहीं कर सकेगा। नील नदी माता थी, देवी थी। अब यह लोकधात्री दाई होनेवाली है!

२६. नील मैयाकी छायामें

हमारे लोग और गोरे लोग दोनोंके द्वारा उत्साहपूर्वक विकसित किये हुए शहरोंमें जिंजाकी गिनती हो सकती है। इतने बड़े तालाबके किनारे होनेसे उसका व्यापार जहाजों द्वारा किसुमु, म्वांझा वगैरा स्थानोंके साथ है ही। इसके अलावा वहांकी कई संस्थाओंके कारण भी जिंजाका महत्त्व बढ़ गया है। यहां बिजली आते ही जिंजा अफ्रीकाके औद्योगिक शहरोंमें मुख्य स्थान प्राप्त कर ले तो कोई ताज्जुब नहीं।

यहांकी संस्थाओंमें मुझे तो जिंजाकी महिलाओंकी चलाई हुई संस्था खास तौर पर सजीव लगी। वहां बहनोंके लिए तरह-तरहके वर्ग चल रहे हैं। परन्तु दूसरी संस्थाओंकी तरह यहां यह बात नहीं है कि बहुत-सी बहनें केवल अपना

नाम देकर संतोष कर लें और काम दो-तीन बहनें ही करती हों, यहांकी पाठशालाओंके आचार्य भी अपने कामोंके लिए विशेष उत्साह रखते दिखाई दिये।

एक दिन हम पासकी एक पहाड़ी पर मिशनरियोंकी तरफसे अफ्रीकियोंके लिए चलनेवाली एक संस्था देखने गये। रविवार होनेसे गोरे सब शिक्षक गैरहाजिर थे। अफ्रीकी विद्यार्थियोंने हमें सब मकानात और विद्यार्थियोंके लिए रहनेकी सब सुविधाएं आदि बतायी। मिशनरी संस्थाओंमें जैसे अन्यत्र होता है वैसे यहां भी कक्षाके मकानोंकी टीमटाम अच्छी थी। परन्तु मुझे लगा कि खानेपीनेके मामलेमें काफी कंजूसी बरती जाती है।

उसी दिन हम श्री मूलजीभाईके साथ उनकी ककीरा एस्टेट और चीनीका कारखाना देखने गये। जैसे मध्ययुगमें किसी सरदारके गढ़के आसपास उसके गढ़वाले और तरह-तरह आश्रित कारीगर रहते थे, वैसे ही वातावरणवाले आजकलके कारखानेदारोंके इस स्थानको देखकर मुझे एक प्रकारसे अच्छा लगा। एक छोटी-सी पहाड़ी पर शाही बंगलेमें मूलजीभाई अपने कुटुंबके साथ रहते हैं। और उस पहाड़ीकी देखरेखमें उनके कारखाने और गन्ना, कॉफी, चाय वगैराके खेत दूर-दूर तक फैले हुए हैं। जगह-जगह मजदूरोंके लिए अफ्रीकी ढंगके झोंपड़े बने हों और पहाड़ीकी तलहटीमें कारखानेके कर्मचारियोंके छोटे-बड़े बंगले हों, तो ऐसे सारे दृश्यमें मनुष्य-मनुष्यका सम्बन्ध टूटा हुआ नहीं लगता।

फिर भी मुझे यहां उल्लेख करना चाहिये कि एक अज्ञानी अफ्रीकी मजदूरने मूलजीभाई पर घातक हमला किया था। वे बड़ी मुश्किलसे बच सके। जांच करने पर मालूम हुआ कि यह कोई मालिक-मजदूरके बीचका झगड़ा नहीं था, परन्तु शराब पीकर पागल बने हुए मनुष्यका अंधा आक्रमण था। जहां जीवन है और मनुष्यका समाज है, वहां ऐसी दुर्घटनाएं होंगी ही।

मूलजीभाईने एक बड़ी रकम खर्च करके अफ्रीकी लोगोंके लिए एक खास कॉमर्स कॉलेज खोला है। कंपालासे आते हुए रास्तेमें हमने इस कॉलेजके मकान बनते हुए देखे थे।

जिंजासे काफी दूर इगांगा नामक एक गांव है। वहां हमारे यहांके लोगोंकी अच्छी-खासी बस्ती है। इन लोगोंने रातको हमें भोज दिया। मोटर द्वारा जंगली प्रदेश पार करके हम कोई नौ बजे इगांगा पहुंचे होंगे। लोगोंमें उत्साह खूब था। भोजन शुद्ध गुजराती ढंगका था, यद्यपि खाना मेज पर परोसा गया था। इतना सुधार हमारे यहां सभी जगह होना चाहिये। खानेसे पहले मैंने जांच की कि आमंत्रित सज्जनोंमें कोई अफ्रीकी है या नहीं। किसीको यह बात सूझी नहीं थी, यद्यपि बहुत जगह मेरा यह आग्रह लोगोंके कानों तक पहुंच गया था। हमारे लोगोंने कहा कि हमें इस बातमें आपत्ति नहीं कि कोई अफ्रीकी हमारे साथ पंगतमें बैठकर खाये। परन्तु इतनी रात गये किसी अफ्रीकीको कहांसे बुलाया जाय?

जवाबमें मैंने इतना ही कहा कि, "तब तो हम लाचार हैं। इस हद तक हमारा समारोह नीरस रहा।"

खाना शुरू होते-होते वे किसी अफ्रीकी शिक्षकको बुला लाये और उसे हमारे साथ खानेको बिठा दिया। खानेके बाद मैं गुजरातीमे बोला। परन्तु अन्तमें दो-तीन अफ्रीकी समझ सकें, इसलिए अंग्रेजीमें बोला। भाषणके आखिरमें उस अफ्रीकी शिक्षकने कहा कि, "मुझे शिक्षा देनेवाले अंग्रेज थे। मुझ पर उनके बहुत उपकार हैं। परन्तु वे हमें कभी अपने साथ खानेको नहीं बैठाते। हमें यह बहुत खटकता है। आप लोगोंके साथ भी हम बहुत मिलजुल नहीं सकते। आज यह पहला ही मौका है जब मैं इस तरह समान भावसे खाने बैठा हूं।"

समान भावसे साथ बैठ सकनेके कारण उसके मन पर जो असर हुआ, उसका मेरे मन पर गहरा असर पड़ा। मुझे खयाल हुआ कि हमारे लोग झूठे धार्मिक विश्वासके वशीभूत होकर अलग-थलगपन रखते हैं और इन्सानियत खो बैठते हैं। और इसीलिए उन्हें इस देशमें यहांके लोगोंके बीच विदेशियोंकी तरह रहना पड़ता है। अंग्रेज तो [illegible] हैं। चमड़ीका घमंड रखते हैं। उन्हें अभिमान है कि उनकी सभ्यता श्रेष्ठ है। उनका अलग-थलगपन दूसरी तरहका है। हमारा सामाजिक अलग-थलगपन भिन्न है। इसकी तहमें 'धार्मिक' भावना है। अनजान लोगोंके प्रति दूर-भाव है और ऊंच-नीचका भाव तो है ही। हम जब तक यह दोष दूर नहीं कर लेंगे, तब तक विदेशोंमें हमारे लिए कहीं भी स्थायी स्थान नहीं है। और स्वदेशमें भी हम आइंदा सुरक्षित नहीं हैं। मांसाहार और अन्नाहारके बड़े फर्कके कारण भोजन-व्यवहारमें कुछ मुश्किलें तो रहेंगी। परन्तु उन्हें पार करनेकी शक्ति हममें होनी ही चाहिये। परन्तु इस तरहकी बंधुताकी वृत्ति ही हम पैदा नहीं करते।

अंग्रेज लोग अफ्रीकी लोगोंके हाथका खाते हैं, परन्तु उन्हें साथ नहीं बैठने देते। हम तो अब तक अफ्रीकियोंके हाथका खाते तक नहीं। अब यह घृणा बहुत कुछ मिट गई है और हिन्दुस्तानियोंके ज्यादातर घरोंमें खाना अफ्रीकियोके हाथका ही होता है। सारे पूर्व अफ्रीकामें कई जगह खानेके बाद मैं कह सकता हूं कि अफ्रीकी रसोइये हम जैसी चाहें वैसी रसोई तैयार कर देते हैं। पंजाबी, गुजराती, महाराष्ट्री या कोंकणी तरह-तरहके व्यंजन वे हमारे लोगों जैसे ही बढ़िया बनाना सीख गये हैं। हमारे बच्चोंको भी अफ्रीकी नौकर लगनसे रखते हैं। जहां हमारे व्यापारियोंने इन पर विश्वास रखा है, वहां उन्होंने दुकान चलानेमें भी अपनी योग्यता साबित की है। और हमारे लोगोंने कहीं-कहीं तनख्वाहके अलावा कुछ फीसदी मुनाफा देने-की शर्त पर अपनी दुकानकी शाखाएं अनुभवी अफ्रीकियोंको सौंपी हैं। अफ्रीकियों-को समान भावसे हम अपने काम और अपने घरोंमें रखें, तो इसमें हमारा लाभ तो तो है ही, परन्तु मुख्य बात यह है कि इसमें हमारा नैतिक उद्धार भी है।

इगांगासे लौटनेमें बहुत देर हो गई थी, परन्तु तीनों महाद्वीपोंके समन्वयके

सुन्दर सपने मनमें चक्कर काटने लगे थे । चांदनी अपनी कीमिया फैला रही थी। उसीमें हमने अपनी प्रार्थनाका प्रवाह बहा दिया और रातको १२ बजे आकर सोये। इस तरह हमारी अफ्रीकाकी कुछ प्रातः-सायं प्रार्थनाएं इतनी गहरी और सुगंधित हो गई हैं कि आज भी वे याद आती हैं।

२७. इति और अथ

शुरूमें सोची हुई पूर्व अफ्रीकाकी यात्रा अब पूरी होनेको आई। जिन नानजी-भाई कालिदासके आग्रहसे मैं पूर्व अफ्रीकाकी यात्रा पूरी कर सका, उनका गढ़ लुगाजी देख कर और वापस कंपालामें उन्हींके स्थानका आखिरी आतिथ्य लेकर यह यात्रा पूरी करनी थी। परन्तु सकल्पोंका स्वभाव ही जरा लम्बा होनेका, बढ़ने-का होता है। हम बाजारमें कोई चीज खरीदें, तो दुकानदार हमें पूरा तौल देनेके बाद जरा अधिक देगा ही। जिससे दोनोंको संतोष होता है। तराजू-भक्त अंग्रेजोंने भी डबलरोटीके लिए १२ के स्थान पर १३ रोटीके दर्जनकी कल्पना की है!

अफ्रीकाके हमारे सभी यजमान कहने लगे कि, 'यहां तक आये हैं तो पूर्व अफ्रीकाका पश्चिमी सिरा पूरा करके बेल्जियन कांगोमें माना जानेवाला रुआंडा-उरुंडीका रमणीय प्रदेश क्यों न देखते जायं?' इस प्रदेशके नक्शे मैंने देखे ही थे। बुन्योनी, कीवू जैसे सरोवर देखनेको मिलेंगे। मिस्रके आकारके नग और लम्बे टांगानिका सरोवरके उत्तरी सिरे तक जा सकेंगे। सोये हुए या बुझे हुए ज्वालामुखी दिखाई देंगे। घने अरण्योंमें जोखिमभरे सफर किये जायंगे। यह सारी उत्सुकता मनमें थी ही। इन्सानसे ज्यादा ईमानदार जंगली जानवरोंके दर्शन करनेके लिए भी लोगोंने हमें ललचाया था। इसलिए हमने अपने पास वक्तका कितना बजट है, इसका हिसाब लगाया और मित्रोंके सुझावको स्वीकार किया। परन्तु ऐसा करनेमें हमारी मंडलीके सदस्योंमें फेरबदल हुआ। श्री अप्पासाहब पंत जिंजासे पहले ही नैरोबी लौट गये थे। अब तात्या इनामदारने वापस जाना तय किया। इनके स्थान पर सर्वेन्ट्स-ऑफ-इण्डिया-सोसायटीवाले मोहनराव शहाणे और उनकी पत्नी यमुताई हमारे दलमें शामिल हुए। श्री कमलनयन बजाजने भी अपनी पत्नी सावित्री और बच्चोंको नैरोबी होकर हवाई रास्तेसे हिन्दुस्तान जाने दिया। नानजीभाईके लड़के धीरुभाई भी हमसे विदा ले कर यूरोप जानेवाले थे। इसलिए ३ और ४ जुलाईके दो दिन हमारे लिए मिश्रित भावनाओंवाले और कठिन सिद्ध हुए।

जिंजासे विदा लेनेके लिए हम खास तौर पर ओवेन फॉल्स तक गये। श्री रामजीभाई लद्धा वगैरा मित्रोंने वहां अनेक फोटो लिये। हमारे लोगोंकी शिक्षाके

विषयमें और हमारी संस्थाओंमें अफ्रीकी बच्चोंको आने और पढ़ने देनेके बारेमें बहुतसी बातें कीं और हम लुगाजी पहुंचे।

श्री धीरुभाई और आनन्दजीभाईने हमें सारी एस्टेट बताई। ककीरा और लुगाजीमें बहुत साम्य है। यहां एक ऊंची पहाड़ी पर पुराने और नये दो राजमहल जैसे मकान हैं। इस पहाड़ीकी तलहटीमें एस्टेटके होशियार कर्मचारी रहते हैं। दूर-दूर तक खेत फैले हुए हैं। उन खेतोंके सिरे पर अफ्रीकी मजदूर रहते हैं। यहांके बच्चोंकी पढ़ाईके लिए अच्छी व्यवस्था है। मजदूरोंके लिए दवा-पानीकी व्यवस्था भी संतोषजनक थी। मैंने यहांके डॉक्टरोंसे मजदूरोंको खास तौर पर किन-किन रोगोंके लिए दवा देनी पड़ती है वगैरा कुछ महत्वके सवाल पूछे। एस्टेटकी व्यवस्था में सिर्फ गुजराती ही हों सो बात नहीं है। यहां कुछ पंजाबी हैं, महाराष्ट्री हैं, बंगाली हैं, मद्रासी हैं और अंग्रेज भी हैं।

दुःखकी बात इतनी ही है कि इन खेतोंमें जितनी पैदावार की जा सकती है, उतनी करनेकी यहां सुविधाएं नहीं हैं। यहांकी सरकार बाहरसे मजदूरोंको आने नहीं देती और अफ्रीकी मजदूर काफी संख्यामें मिलते नहीं। नानजीभाईको आज यहां सात हजार मजदूर चाहिये। उसके बजाय सरकार उन्हें चार हजार ही देती है। परिणामस्वरूप जितना गन्ना बोया जाता है, उतना पेरा तक नहीं जाता। कुछ तो खेतोंमें ही सूख जाता है।

२८. भूमध्य-रेखा पार की

हमारी नई अथवा अतिरिक्त यात्राका आरम्भ कंपालासे हुआ। यहांके एक गुजराती शिक्षित व्यापारीने बेल्जियन कांगोके वर्णनवाला अपना लिखा हुआ एक उपन्यास मुझे पढ़नेको दिया और उसीके साथ एक कीमती कैमरा भी भेंट किया। वे उसी दिन जापान जानेवाले थे। डॉ० मूलजीभाईके दो मित्र श्री खीमजीभाई और ब्रजलालभाई शाह हमारे साथ चलनेको तैयार हो गये। इन दो भाइयोंके बिना हमारी यात्रा अच्छी तरह हरगिज पूरी न होती। उनकी होशियारी और उनकी नम्रताके बीच मानो होड लगती थी। वे अपनी एक नई सुन्दर कार लेकर आये। हमारे हाथों उसका मुहूर्त करते हुए उन्हें आनन्द हो रहा था। मुझे कहना चाहिये कि उनकी इस कारका हमने पूरा उपयोग किया। श्री कमलनयनने यह कार इतनी होशियारीसे चलाई कि हिम्मत और सावधानी दोनोंकी उचित मात्रा उनके हाथमें पूरी तरह आई हुई मालूम होती थी।

हमारा सफर शुरू होते ही मैं बाईं ओर विक्टोरिया सरोवरकी आशा रखने लगा। वह जरा-जरा दिखाई देता, अपनी तरह हमें भी प्रसन्न करता और छिप

जाता। परन्तु मैंने जितना सोचा था उतना नजदीक वह न आया।

पहले ही दिन हम एक ऐसी जगह पहुंचे, जिसका महत्त्व वहांकी भूमि और वहांके लोग महसूस नहीं करते थे। परन्तु हम सब उत्तेजित हो गये। क्योंकि हम अपनी धरती माताकी मध्यरेखा पर पहुंच गये थे। हमारा एक पैर उत्तरी गोलार्धमें हो और दूसरा दक्षिणी गोलार्धमें हो, तो ऐसे स्थान पर पहुंच कर कौन उत्तेजित न होगा? रास्तेके किनारे पर यहांकी सरकारने एक खंभा गाड़कर दो हाथोंसे बताया है कि उत्तरी गोलार्ध इसकी दाईं ओर है और दक्षिणी गोलार्ध बाईं तरफ। मुझे खयाल आया कि यही खंभा अगर रास्तेके दूसरी ओर गाड़ दिया गया होता तो ज्यादा अच्छा होता। दक्षिणी गोलार्धकी तरफ दाहिना हाथ आ जाता। हम उस खंभेके आसपास हो गये, मानो बड़ी बहादुरी कर रहे हों। और वहां इस तरह अपने फोटो लिये, मानो उसका दस्तावेज हमारे पास होना ही चाहिये। हमें आगे जाना था इसलिए इस स्थानको हमने छोड़ा।

दोपहरको मसाकामें भोजन करके थोड़ासा आराम किया और वहांसे लगभग उतने ही मील दौड़कर रातको म्बरारा पहुंचे। रातको हम एक ऐसे होटलमें रहे, जहां पहाड़के एक तरफ वृक्षोंके बीच अफ्रीकी ढंगकी गोल झोंपड़ियां बनाई गई थी। इन गोल झोंपड़ियोंमें सुविधा हो या न हो, काव्य तो है ही। ऐसे स्थान पर एक रात बिता कर अफ्रीकाका जितना अनुभव किया जा सकता है, उतना यूरोपियन ढंगके बंगलोंमें नहीं होता। इसी स्थान पर किसी अपीलकी अदालतका उस दिन पड़ाव था, इस कारण मसाकाके एक गुजराती एडवोकेट यहां आये हुए थे। वे हमसे मिले। उन्होंने आते ही अपना परिचय दिया कि, "मैं भादरणका हूं, विद्यापीठमें आपका विद्यार्थी था, मेरा नाम रावजीभाई पटेल है।" उनके साथ बहुत बातें की। खास तौर पर यहांके अफ्रीकी लोग कैसे है, उनमें किस प्रकारके अपराध अधिक हैं, वे झगड़ालू हैं या नहीं, किस हद तक विश्वासपात्र हैं, उनके विवाहके नियम कैसे हैं, उत्तराधिकारकी क्या व्यवस्था है, वगैरा।

यहांका इलाका कम्पाला, एन्टेबे जैसे शहरोंसे दूर होनेके कारण पिछड़ा हुआ माना जाता है और इसलिए यहां अफ्रीकाका सच्चा दर्शन होता है। दूसरे दिन होटलमें गरम पानीसे नहाये—पानी क्या था लोहेके जंगका काढ़ा (कषाय) बनाया हो ऐसा उसका रंग था। परंतु सफरकी थकावट मिटानेके लिए गरम पानीके टबमें लंबे होकर सोना इतना ज्यादा सुखकर और हितकर होता है कि जब तक पानीका वह रंग हमारी चमड़ीको नहीं लगता, तब तक उसमें नहानेमें जरा भी संकोच नहीं होता।

होटलमेंसे उतर कर हम म्बराराके लोगोंसे मिले। व्याख्यानोंका कर चुकाये बिना तो जा ही कैसे सकते थे? सिक्खोंके गुरुद्वारोंके पीछे स्त्री-पुरुषोंकी सभा इकट्ठी हुई थी। वहां हमने भाषण दिया। श्री अप्पासाहबसे इतना सीख लिया था कि

प्रस्तावना कुछ भी की जाय, परंतु हरएक व्याख्यानमे विषय एक ही आना चाहिये। सभामें जब बहनें आतीं तब मैं कुछ सामाजिक रीति-रिवाजों पर अधिक जोर देता। सिक्ख लोग होते तो उनके लिए कुछ बातें मनमें खास तौर पर रखी ही रहतीं। यह प्रसंग अच्छे-अच्छे अनेक विचार लोगोंके सामने पेश करके विविधता लानेका नहीं था, परंतु सारे अफ्रीकामें हमारे लोगोंको दृष्टि-परिवर्तन और जीवन-परिवर्तनका एक ही संदेश हर जगह सुना कर सर्वत्र एक ही फेरबदल करानेकी बात थी। गांधीजीके नाम पर, स्वतंत्र हिन्दुस्तानके नाम पर, हमारे लोगोंके स्वार्थकी दृष्टिसे और मानवताके कल्याणके लिए आयंदा हमें क्या करना चाहिये, यह हम हर जगह समझाते थे।

२९. कबाले

अफ्रीकाके अनेकों सुन्दर स्थानोंमें भी कबाले खास तौर पर सामने आता है। हम म्बरारासे भोजन करके चले। ९० मीलके कई उतार-चढ़ावाले सफरको पूरा करके शामको ५ बजे हम कबाले पहुंचे। रास्तेमें दृश्योंकी विविधता थी। परंतु जब यह दर्शन-समृद्धि बढ़ जाती है तब बहुतसे अनुभव-भारसे कुचल जाते है और संपूर्ण चित्र मनमें नही टिकता। अभी तो इतना याद आता है कि एक बड़ी राक्षसी लारी रास्तेके एक तरफ औंधी पड़ी हुई थी, उसके नीचे तीन आदमी मर गये थे। हम तो केवल वह लारी और उसके पास पंचनामा करनेवाले पुलिसवालोंको ही देख सके। ऐसी दुर्घटना उससे होनेवाले नुकसानसे भी ज्यादा भयानक दिखाई देती है और इस बातका पदार्थ-पाठ सिखाती है कि दुनियामें ऐसी दुर्घटनाएं भी हो सकती हैं। आज विचार करता हूं तो ऐसा लगता है कि दो-चार दिन बाद ही हम जिस ज्वालामुखीके लावाके दर्शन करनेवाले थे उसकी वह पूर्व-तैयारी ही थी।

अप्पासाहबकी सिफारिशके अनुसार हम कबालेकी 'व्हाइट हार्स इन' नामक होटलमें ठहरे। पहलेसे तार देकर सारी व्यवस्था कर ली थी। इस होटलमें ठंडे पानीसे गरम पानीकी सुविधा अधिक आसान थी। थकावटके साथ मुझे अपने सिर के बालोंका भार भी उतारना था। कबालेके एक नाईको बुला लाये। ये भाई झांझीबारसे यहां आकर बस गये हैं। वहां तंदुरुस्ती अच्छी नही रहती थी इसलिए यहां आ गये हैं। यहां इनका काम ठीक चलता है। इन्हींके भाई हमें झांझीबारमें मिले थे।

कबालेकी खास खूबी उसकी प्राकृतिक सुन्दरता तो है ही। ऊंचाई ६,४०० फुटकी होनेके कारण यहांका जलवायु स्वास्थ्यवर्धक है, यह भी इस स्थानके महत्त्व-को बढ़ानेवाली बात है। तीसरी चीज यह है कि अफ्रीकाकी दूसरी असली जातियों-

से यहांके लोग ज्यादा मेहनती और होशियार हैं। इसका परिचय यहांकी हरएक पहाड़ी देती है। जहा हमे ऐसा लगे कि अनाज उगाया ही नही जा सकता, वहां भी इन लोगोंने मेहनत करके अन्न उत्पन्न किया है। इन लोगोंने जमीनको कसकर खुराक सबंधी स्वयंपूर्णता ही प्राप्त नही की है, बलिक वे आसपासके लोगोंको भी खुराक मुहैया कराते हैं।

सबर हमारे साथियोंके उठनेमे पहले चि० सरोज और मैं घूमने निकले। आस-पास सब जगह धुध थी। हमें मीठी गुदगुदिया करनेमें उसे मजा आता था। हमने आशा रखी थी कि धूप निकलनेका वक्त होने पर धुध पतली हो जायगी, परन्तु वह तो गाढी होने लगी। सामनेकी पहाड़िया दिखाई ही नही देती थीं और जब दिखाई देती थीं तब ऐसी मानो जन्मान्तरका अस्पष्ट स्मरण होता हो। ऐसी शका पैदा करती थी कि व प्रत्यक्ष हैं या कल्पनाका अनुमान ही हैं। अतमें सूर्यकिरणें विजयी हुई, धुध धीरे-धीरे नीचे दब कर घाटियोंमे छिप गयी और ऊची-ऊंची प्रौढ पहाड़ियां प्रकट हुई। नाश्तेके बाद पुराने अनुभवोंका वितरण शुरू हुआ। बादमे हाथ देखने-का खेल चला। पता नहीं यह खेल दुनियामें सब जगह कैसे फैल गया है। इन लोगोंका उस पर विश्वास नही, ऐसे लोगोंको भी हाथ दिखानेमें मजा आता है; और जिन्हे इस विद्याका कुछ भी ज्ञान नही, ऐसे लोग भी हाथ देखकर मनमाने अनुमान लगा लेते हैं। हाथ देखनेवाले हरएक आदमीमे अपने अनुमान अनिश्चित भाषामें पेश करनेकी कला तो आ ही जाती है।

खाना खाकर हम यहाका प्रसिद्ध और रमणीय वुन्योनी सरोवर देखने गये। वहा हमारे लिए एक स्टीमलाचका बंदोबस्त कर रखा था। परतु वह लाच शुरूसे ही नाराज हो गया। परिणामस्वरूप हम एक नाव करके सरोवरमे थोड़ा घूमे। इससे स्टीमलाच शरमाया और समझदार बनकर उसने चलना मजूर किया। थोड़ासा चला कि फिर अड़ियल टट्टूकी तरह ठहर गया। हममेंसे कुछ लोग ऊब गये और नावमे चले आये। औरोंने अपने धीरजकी परीक्षा कर लेना चाहा। उन्हे उसका मीठा फल मिला। वे खूब दूर तक सरोविहार कर आये। हम अपनी नाव लेकर तालाबमें खिले हुए नील कमलोंसे मिलने चले।

कमलकी सुन्दरता असाधारण होती ही है। भारतीय कवियोंने तमाम फूलोंमें इसे मुख्य स्थान दिया है। कीचड़में जन्म लेकर भी जीवनकी सारी ऊंचाईको अपना कर अलिप्त भावसे पानी पर तैरता रहे और एकनिष्ठासे 'प्रजाके प्राणस्वरूप' सूर्य भगवान पर टकटकी लगा कर ध्यान करे, ऐसे इस फूलको हमारे कवियोंने आर्य-संस्कृतिका प्रतीक बनाया हो तो इसमें आश्चर्य क्या है?

कमलोंका राजा लाल कमल है। इसकी प्रसन्न प्रौढ़ता, इसका निर्व्याज प्रफुल्ल वदन, इसका लावण्य और मार्दव—सभी आह्लादक होते हैं। और इसकी हलकी भीनी सुगंध तो इसे ढूंढ निकालनेके बाद मोह पैदा किये बगैर रहती ही नही।

इसके बाद आता है पीला कमल। इसका सुवर्ण कभी-कभी हलका होता है और कभी-कभी गहरा। सुवर्णके सूचनसे ही उसकी अमीरी साबित होती है।

इन रंगोंकी शोभा तभी तक ध्यान खींचती है, जब तक सचमुच बड़ा सफेद कमल नजर नही आता। कौन कहता है कि सफेद रंग बिलकुल सादा होता है? उसकी प्रतिष्ठा समझनेके लिए बाकीके सब रंग जी भरकर देखे हुए होने चाहिये। दूसरे रंग कितने ही सुदर और आकर्षक हों, तो भी उन्हें देखकर अंतमें थकावट आ जाती है। परंतु सफेद तो शुचि, शुभ, सनातन और समृद्ध होता है। सफेद कमलोंके अंदर लाल कमल उगा हो, तो वह विशेष शोभा देता है। परंतु लाल कमलोंमें जब एक ही सफेद कमल सिर ऊचा करता है तब ऐसा लगता है कि बाकीके कमल इहलोकके है और यह सफेद स्वर्गलोकसे उतर कर आया है।

ऐसे कमल हमारे यहां अनेक तालाबों और सरोवरोंमे देखनेको मिलते हैं। नील कमलका वर्णन हम कवितामे ही सुनते हैं, इसलिए उसकी स्पष्ट कल्पना नही होती। नील रंग शांत-सुभग होता है, इसलिए हम इतनी कल्पना कर सकते है कि वह अच्छा ही दिखता होगा। परंतु जब सचमुच नील कमल नजर आता है, तब हमारी सारी कल्पनाएं फीकी पड़ जाती हैं और हमारा हृदय बोल उठता है कि असली काव्य तो नील कमलमे ही है। नील कमल मानो परियोंकी सृष्टि है। इसकी नजाकत और इसकी अटूट सूचकता और किसी भी कमल या फूलमे नही आ पाती। श्वेत कमलकी तरह यह दैवी नहीं है, लाल कमलकी तरह यह वैभवकी सूचना नही देता, पीले कमलकी तरह हमे पूजाके लिए प्रेरित नही करता। परंतु वह कहता है कि, 'मैं परी हूं; और तमोगुणी या रजोगुणी नही, किन्तु शुद्ध सत्त्वगुणी अप्सरा हूं। मेरा दर्शन, मेरा स्पर्श, मेरा सहवास सहज उन्नतिकारी है। मेरी दुनियामें एक बार प्रवेश करनेके बाद आप उसे आसानीसे भूल नही सकते, क्योंकि आप इस दुनियाके महज मेहमान नही रहते, परंतु इसका पूर्ण अधिकार आपको मिल जाता है।' हमारे कवि नीलोत्पल पर इतने मोहित हुए हैं सो निष्कारण नहीं। नील कमलोके बीच हमने काफी सरोविहार किया।

बुन्योनी देखने हम एक रास्तेसे गये और वापस आये दूसरे रास्तेसे। दोनों मार्ग सुन्दर थे। शामको वहांके एक अफसर मि० रसेल हमसे मिलने आये। बड़े संस्कारी प्रतीत हुए। उनसे मालूम हुआ कि स्वाहिली भाषा पूर्व अफ्रीकामें सभी जगह काफी समझी जाती है। स्वाहिली भाषाके प्रति जगह-जगह जो विरोध कहा जाता है, वह कृत्रिम रूपमे पैदा किया गया है। श्री रसेलसे हमने जाना कि जो बुन्योनी सरोवर हम देखने गये थे उसके भीतर एक टापू है। उस टापूमें कुष्ठ-रोगियोंके लिए एक बस्ती बनाई गई है। कुछ मिशनरी लोगोने कुष्ठसेवाके लिए फकीरी ले ली है। उनकी सेवाका असर खास तौर पर देखने लायक है। उस अफसरके साथ मैंने एक प्रश्न छेड़ा कि अफ्रीकी लोगोंकी संस्कृतिने उसका जो स्व-

रूप इस समय है वह कैसे पकड़ा होगा ? उन्हें भी इस विषयमें दिलचस्पी थी, इसलिए हमारी खूब बातें हुईं।

कबालेके हिन्दू-मंडलने हमारे लिए एक सभाका प्रबंध किया था। उसमें अफ्रीकी लोगोंकी संख्या अच्छी थी, इसलिए मैं उन्हें ध्यानमें रखकर अधिक विस्तार से बोला। मेरे अंग्रेजी भाषणका एक-एक वाक्य एक अफ्रीकी भाई वहांकी भाषामें समझाते थे। केवल अनुवाद करनेके बजाय विस्तार भी करते थे। उन लोगोंकी भाषा जाने बिना भी मैंने देखा कि वे मेरे भाव अच्छी तरह समझ रहे थे और उनका विकास करके लोगोंके सामने रख रहे थे। सभाके अन्तमें थोड़े प्रश्नोत्तर हुए। इस मार्गसे अफ्रीकी लोगोंका दृष्टिकोण समझनेका मुझे अच्छा मौका मिलता था, इसलिए इसका मेरे लिए अधिक महत्त्व था। प्रश्नोत्तरकी झड़ी लग गई। उसमें एक आदमीने जो प्रश्न पूछा, उसका अंग्रेजी भाषान्तर करके मुझे समझानेसे हमारे दुभापियेने इनकार किया। उलटे उसने सभामें उपस्थित गोरे अफसरसे पूछा कि, 'ऐसा सवाल मेहमानोंके सामने जवाबके लिए रखा जा सकता है ?' अफसरने कहा, 'आप मेहमानोंसे ही पूछ लीजिये।' मैंने आग्रह किया कि, 'सवाल कैसा भी क्यों न हो, मुझे उसका अंग्रेजी करके कहिये। जवाब देनेवाला तो मैं हूं। मुझे अवसरकी रक्षा करना आता है।' इतनी प्रस्तावनाके बाद प्रश्न आया :

"आपके देशके लोग कभी-कभी हमारी लड़कियोंसे विवाह करते हैं, तो आपकी लड़कियां हमसे शादी क्यों न करें ?" दूसरा सवाल यह था कि, "आपके लोग हमारी लड़कियोंसे ब्याह तो कर लेते हैं, परंतु उनके बच्चोंको नहीं अपनाते। परिणामस्वरूप उनकी स्थिति बड़ी विषम हो जाती है। इन संतानोंको आप अपने देशमें क्यों न ले जायं ?"

मैंने देखा कि प्रश्नकी तहमें कड़वाहट है। प्रश्न सुनकर सभाके हिन्दुस्तानी श्रोताओंने उत्तेजना नहीं दिखाई। यह देखकर मुझे संतोष हुआ। एक गुजराती भाईने वहीं खड़े होकर कहा कि, "काकासाहब, आप इन लोगोंको समझाइये कि हमारी लड़कियां इन लोगोंके साथ ब्याह करनेकी इच्छा करें तो हम एतराज नहीं करेंगे। जबरन तो कोई किसीकी शादी नहीं कर सकता ?"

मैंने कहा कि, "भिन्न-भिन्न वंशोंके बीच विवाह हों तो इसमें मुझे तात्त्विक विरोध नहीं। परंतु यह नाजुक सवाल है, इसलिए मैं दोनों ओर ऐसे विवाहोंको प्रोत्साहन नहीं दूंगा। इस महाद्वीपमें अफ्रीकी, यूरोपियन और एशियन तीन नसलोंके लोग इकट्ठे हुए हैं। वे एक दूसरेको समझने लगें और व्यवहारमें एक-दूसरेके साथ घुल-मिल जायं, आज तो मैं इतना ही चाहता हूं। आगे चलकर परिचय-के परिणामस्वरूप आत्मीयता पैदा हो जानेके बाद इस सवाल पर दूसरी ही तरहसे विचार होगा।

"इन्डो-अफ्रीकी सन्तानके बारेमें आपने जो सवाल उठाया है, उसके बारेमें मैं

इतना ही कहूंगा कि अफ्रीकी लोग हिन्दुस्तानमें न जाते हों सो बात नहीं। आज भी आपके तीस-चालीस विद्यार्थी हमारे विश्वविद्यालयोंमें पढ़ रहे हैं। ये लोग अगर हमारे यहां शादी करें और स्थायी हो जायं, तो उनकी संतानकी हम रक्षा करेंगे। यहांकी सन्तानकी रक्षा आप कीजिये।"

मेरा जवाब सुनकर अफ्रीकी श्रोता भी प्रसन्न हो गये और हमारे देशी भाई भी खुश हो गये। परंतु मेरा दिमाग जोरसे चलने लगा। अंग्रेज लोग यहांके काले लोगोंके साथ घुलते-मिलते नहीं। शासक बनकर न रहा जा सके तो वे यहांसे चले जायंगे। यहांके लोगोंके साथ केवल प्रजाजनके रूपमें समान भावसे रहनेको तैयार नही होंगे। एक अफ्रीकी सरदारने किसी गोरी लड़कीके साथ शादी कर ली, तो इस पर दोनों ओरसे शोर मच गया। अमरीकामें गोरे लोगोंने नीग्रो गुलाम रखे। बादमें उन्हें स्वतंत्र कर दिया, परंतु वहां यह सवाल अभी तक हल नहीं हुआ। गोरे बाप और काली मांकी संतानका सवाल वहां अभी तक हल नही हो सका है। हमारे यहां भी यह सवाल प्राचीन कालसे खड़ा है। हमने यह घोषणा करके देख लिया कि भिन्न जाति और भिन्न नस्लके लोगोंका आपसमें विवाह करना अवांछनीय है। वर्णसंकरके विरोधमें कड़वीसे कड़वी भावना पैदा करके इह-लोकमें प्रतिष्ठा खोनेका और परलोकमें नरकका डर बताया; फिर भी हम भिन्न लोगोंको अलग नहीं रख सके।

हमने दूसरा प्रयोग किया। भिन्न जातियों, भिन्न वर्णों, भिन्न वर्गों और भिन्न वंशोंके बीच विवाहोंकी छूट देकर देख लिया। भावनाकी रक्षाके लिए इसमें अनुलोम व प्रतिलोमका भेद जारी किया। तमाम जातियां चार वर्णोंसे ही पैदा हुई हैं, यह कल्पना जमा देनेका प्रयत्न किया। जिसे अंग्रेजीमें 'लिगल फिक्शन' कहते हैं, उसे सब तरहसे करके देख लिया। फिर भी हमें भिन्न वंशोंके बीचके सबंधका शुद्ध हल अभी तक नही मिला।

ऊंच-नीच और अपने-परायेके भाव इन्सानियतके पवित्र खयालके लिए घातक हैं। परंतु ये दोनों वृत्तियां मनुष्यके स्वभावमें ही मौजूद हैं। इन वृत्तियोंको स्वीकार कर उनमेंसे कोई समाजोपयोगी रचना खड़ी करनेका भी हमने प्रयत्न किया। इसका इतिहास पढ़कर दक्षिण अफ्रीकाके राष्ट्रपुरुष जनरल स्मट्स बहुत खुश हो गये। परतु इस प्रयोगके द्वारा हम मनुष्य-जातिका कल्याण नही कर सके।

जो परेशानी जातिभेद और वंशभेदकी तहमें है, वही परेशानी धर्मभेदकी तहमें भी है।

एक ही देश और एक ही धर्मकी संतानोंमे हमने इतने ज्यादा भेद पैदा कर दिये हैं कि हमारा मस्तिष्क भेदमय बन गया है। किसी समय सांसके बिना शायद हम जी सकते हैं, परंतु भेदभावके बिना जीना हमारे लिए कल्पनातीत वस्तु बन गई है!

ऐसे स्वभाववाले हम लोग अफ्रीकामें आकर बसे हैं। इनमें भी हिन्दू-मुसलमानका भेद है। मुसलमानोंमें भी तीन चार जातियां हैं। हमारे लोग यहांके लोगोंके साथ घुल-मिल नहीं जायंगे, तो मुश्किल अवश्य पैदा होगी। परंतु मिल जानेके बाद पैदा होनेवाली संतानोंको हम अपनायेंगे नहीं, तो यह गैर-जिम्मेदारी ही हमें नरकमें पहुंचा सकती है। अफ्रीकामें बसे हुए हमारे भारतीय लोगोंके नेताओंको मानव-धर्म पहचानकर, दीर्घदृष्टिसे काम लेकर हमारे लोगोंको रास्ता बताना चाहिये।

३०. नये मुल्कमें

अब हम अफ्रीकाके सुन्दरतम प्रदेशमें प्रवेश करनेको उत्सुक हो गये थे। कबालेके सुदर और आतिथ्यशील होटलमें मजेसे नहाये, नाश्ता किया। होटलकी भली संचालिकाने हमारी मेज पर बुन्योनी सरोवरके हमारे ही नील कमल सुन्दर रूपमें सजाये थे। वनस्पति-सृष्टिकी परियोंका यह अंतिम दर्शन करके हमने प्रस्थान किया। कलका बुन्योनी सरोवर दायीं ओर फैला हुआ था। सरोवरकी असली शोभा या तो नावमें बैठकर विहार करते हुए लूटनी चाहिये या पहाड़ी परसे या पहाड़की ऊंचाईमें उसके चमकते मुखड़ेका दर्शन करते हुए पी जानी चाहिये। कवि वाल्मीकिने सरोवरके स्वच्छ जलको सज्जनोंके पारदर्शक, निर्मल चरित्रकी उपमा दी है। चारित्र्यको गंगाजलकी उपमा देनेवाले कवि बहुत हैं। परंतु उपमान और उपमेय दोनोंका अदल-बदल करना तो वाल्मीकि जैसे कवीश्वरको ही सूझ सकता है। बुन्योनीका प्रसन्न दर्शन करनेके बाद मनमें विचार आया कि इस सरोवरका वर्णन करनेवाला कोई वाल्मीकि या बाणभट्ट कब पैदा होगा ?

आगे चलकर खेतोंवाली प्रचंड पहाड़ियोंके सिलसिले पूरे हुए और ऊंचे-ऊंचे परंतु पतले बांसोंका विशाल वन शुरू हुआ। बेळगांव और बेळगुंदी मेरे बचपनके दोनों स्थानोंका नाम 'बेळ' यानी बांबू या बांस परसे ही पड़ा है। कन्नड़ भाषामें बेळका अर्थ है बांस। ठेठ बचपनसे मैं फव्वारे जैसे टापुओंको देखता आया हूं। बांसके खम्भे, बांसकी दीवारें, बांसके छप्पर, बांसकी चटाइयां, बांसके बर्तन, बांसके बाजे और औजार, इतना ही नहीं परंतु बांसका साग और बांसका अचार भी वहां था ! ऐसी संस्कृतिमें पला हुआ मैं बांसके जंगल देखकर पागल-सा हो जाऊं तो आश्चर्य क्या ? बेळगाव, धारवाड़, कारवार वगैरा अनेक स्थानों पर मैं बांसके जंगलोंमें घूमा हूं। जीवित बांसकी दीवारोंवाले गांवोंकी सुरक्षितता मैंने देखी है। पतलेमें पतले और मोटेसे मोटे बांसके दर्शन ठेठ लंकामें किये हैं और दौड़ती रेलमें घंटों तक अटूट वेणुवनके विस्तार पूर्वी बंगालमें आसाम जाते-आते मैंने देखे हैं। इन तमाम संस्मरणोंको ताजा बनानेवाला यह वेणुवन कल्पनाके लिए कितना पौष्टिक

साबित हुआ होगा, इसकी कल्पना मेरे जैसे अरण्यक ही कर सकते हैं।

दोपहर हुआ और हम किपोलो या किसोरो पहुंचे। श्री महताके यहां भोजन करके हम आगे बढ़े। कंपालासे कबाले तक हमारा सारा रास्ता दक्षिण-पश्चिमकी ओर जाता था। कबालेमे किसोलो तक हम लगभग पश्चिमकी तरफ ही जाते थे। ऐसे पहाड़ी प्रदेशमें कोई भी रास्ता सीधा तो हो ही नहीं सकता। परंतु कहनेका आशय इतना ही है कि किसोलो कबालेके पश्चिममें है। हमारे साथी खीमजीभाई और व्रजलालभाई कबालेमें आराम लेनेके बजाय रुहेंगेरी चले गये थे। वे वहांसे लौटकर हमें यहां मिले। हमारे शरद पंड्या भी उन्हीके साथ चले गये थे। उन्होंने वहांकी सुन्दरताका वर्णन जी भरकर किया। परंतु रुआण्डा-उरुण्डीकी हमारी यात्रा उसी रास्तेसे पूरी होनेवाली थी, इसलिए वहांके प्रत्यक्ष दर्शनका ही यथास्थान वर्णन करना अच्छा होगा।

अब हमने ब्रिटिश ईस्ट अफ्रीका छोड़कर बेल्जियन कांगोमें प्रवेश किया। असलमें बेल्जियन कांगोमे नही, परंतु बेल्जियन कांगोके अधीन रुआण्डा-उरुण्डी प्रदेशमे प्रवेश किया। पिछले युद्धके अन्तमे 'यूनो' की तरफसे यूरोपियन राष्ट्रोंको जो 'मेण्डेटेड' मुल्क मिले हैं, उनमे टांगानिका ब्रिटिशोंके हिस्सेमें आया और रुआण्डा-उरुण्डी बेल्जियन कांगोको मिला। इतने सुन्दर और समृद्ध प्रदेशका अधिकार बेल्जियमको मिला, इसके लिए कोई भी इस देशसे ईर्ष्या ही करेगा।

अब आगे राज्य अंग्रेजोंका नही, परंतु बेल्जियन लोगोंका है और हम नये ही मुल्कमे दाखिल हो रहे है, इसके तीन प्रमाण हमें यहां तुरंत मिल गये। अब तक मोटर और दूसरी सवारियां रास्तेके बाईं ओर चलानेका नियम था। अब दाईं ओरका नियम शुरू हुआ। यह नियम अगर हर क्षण याद न रखा जाय और मनुष्य पुरानी आदतके अनुसार चले तो पग-पग पर दुर्घटनाएं हों। श्री कमलनयनने व्रजलालभाईसे अनुरोध किया कि "आपकी मोटर मैं चलाऊं, परंतु कृपा कर आप मेरे पास बैठिये और हर मौके पर मुझे चेताते रहिये कि मोटर दाईं ओर चलानी है।"

दूसरा सबूत यह था कि मीलके बजाय मीटरका नाप शुरू हुआ। दो गांवके बीचका अंतर किलोमीटरोंमें ही मिल सकता था। हमें याद रखना पड़ा कि एक किलोमीटर लगभग पांच फर्लांगके बराबर होता है।

हमने इस प्रदेशमें प्रवेश किया और हमे अपनी सभी घड़ियां एक घंटे पीछे करनी पड़ी। अब हम अफ्रीका महाद्वीपके लगभग मध्य तक पहुंच गये थे।

आगे चलकर जब पैसेका लेनदेन करना पड़ा, तब हमें पता चला कि अब शिलिंगका चलन नही परंतु फ्रेंकका है। और फ्रेंकके व्यवहारका अर्थ था बड़ी-बड़ी संख्याओंका हिसाब। यहांकी सरकारने महंगाई काफी रहने दी है। और उस पर भी फ्रेंककी गिनती! सौ-सौ फ्रेंक, दो-दो सौ फ्रेंकका व्यवहार करते समय हर वक्त यह खयाल रहता था कि हम कितने फिजूलखर्च हैं।

जहां सरहद पार की थी वहां भी हमें गुजराती भाई ही मिले। ब्रिटिश हद पर छगनभाई शाह नामक एक कच्छी भाई चुंगी अफसर थे। उन्होंने मेरा नाम सुन रखा था। खूब ही प्रेमसे उन्होंने हमें मोटरकी परमिट वगैरा लेनेमें मदद दी। इसके सिवा उन्होंने अपने पासका इस प्रदेशका एक सुन्दर नक्शा हमें इस्तेमालके लिए दिया। इससे हमें बहुत ही मदद मिली।

इस इलाकेमें जब-जब रास्ते दाईं या बाईं ओर मुड़ते हैं, तब-तब रास्तोंके बीच खूटियां गाड़कर या छोटे-छोटे पौधे लगाकर रास्तेके दो भाग कर दिये जाते हैं, ताकि आमने-सामने आनेवाली मोटरें टक्कर खानेसे बच जायं। यह व्यवस्था हर देशमें दाखिल करने योग्य है।

अब काफी दूर तक एक सपाट मैदान आया। सुबहसे गोलमटोल पहाड़ियां दीख रही थीं। धीरे-धीरे हम इन पहाड़ियों तक पहुंचे। हम इतने ऊंचे पहुंच गये कि उसका अभिमान होने लगा। आठ या साढ़े आठ हजार फुटकी ऊंचाई पर मोटर लेकर दौड़ना कोई छोटीसी बात है! इतनी ऊंचाई तो पूर्व अफ्रीकाका सफर पूरा करके जब हम ईथियोपियाकी राजधानी एडिस-अबाबा गये तभी मिली थी।

अभिमान करनेके बाद नीचे तो उतरना ही पड़ता है। 'दि ग्रेट गॅप' नामसे प्रसिद्ध घाटीमें होकर हम इतने सपाटेसे उतरे कि उसके लिए अधःपातके सिवा और कोई शब्द ही काममें नहीं लिया जा सकता! जैसे युद्धके दिनोंमें की गई कमाई मंदीके दिन आते ही कोई व्यापारी खो बैठता है, वैसी ही ऊंचाईके बारेमें हमारी स्थिति हो गई।

अब हमने उत्तरकी दिशा पकड़ी और रुटशुरू पहुंचे। परंतु रुइण्डीके अभयारण्यकी तरफ जानेको हम इतने उतावले हो गये थे कि रुटशुरू न ठहरकर आगे ही चले गये। यहां हमने रुटशुरू नामकी नदी पार की। यह नदी एडवर्ड सरोवर और बुन्योनी सरोवर दोनोंको मिलाती है। अब तक हमने आंबोसेली और नैरोबीके ही दो अभयारण्य देखे थे। ङ्गोरोंगोरो जाते हुए मनियाराके खारे तालाबके किनारे भी हमने असंख्य श्वापद देखे थे। परंतु रुइण्डीके जंगलमें श्वापदोंकी जो समृद्धि है, वह क्या और कहीं मिल सकती है? अभयारण्यमें प्रवेश करते ही दिलमें उथल-पुथल मचने लगी। दाईं तरफ देखते समय दाईं ओरका कोई श्वापद बिना देखे रह जाय तो? और बाईं तरफ देखने पर दाईं ओर हमें धोखा हो जाय तो?—इस डरके मारे क्षण-क्षण सिरको घुमाते हुए आगे बढ़े। रास्तेमें हाथियोंकी लीद दिखाई देते ही विश्वास हो गया कि आसपास हाथियोंका आगमन हुआ है। फिर तो हम इस की जांच करने लगे कि लीद सूखी है या ताजी गीली है।

रास्ते पर जहां वहां फ्रेंच भाषामें और कहीं-कहीं अंग्रेजीमें नोटिस लगे थे कि मोटरसे बाहर निकलना खतरनाक है। लेकिन जब हमने रास्तेकी दाईं ओर गरम पानीके झरने उबलते और फुदकते देखे, तब हमसे अंदर कैसे रहा जाता? छोटे-बड़े

अनेक झरने थे। उनसे दुर्गन्ध आ रही थी। कुछ समय उनके बीच घूमने पर भाप-वाली हवा दिमाग तक पहुंचकर अस्वस्थ करने लगी थी। मैंने एक जगह देखा कि उबलता हुआ पानी इकट्ठा हुआ है, परंतु उसके नीचे काई जमी हो ऐसा हरा रंग दिखाई दे रहा था। लाठीका सिरा पानीमें डालकर उस काईको बाहर निकालकर देखनेका जीमें आया। इतनेमें किसी साथीने दूसरी ही तरफ ध्यान खींच लिया और वह बात रह गई। आसपास देखनेमे भरोसा हो गया कि यह भाग किसी दरार (rift) का ही एक अवशेष है। हम मोटरमें बैठ रहे थे कि इतनेमें हमारे पीछेकी मोटर-वाले मोटर दौड़ाते हुए आ पहुंचे। उन्होंने कहा कि, 'दूर हमने एक हाथी देखा। यह लगने पर कि वह हमारी तरफ आ जायगा हमने दौड़ लगाई है। आप भी यहां अधिक समय न ठहरिये।' हम रवाना हो ही रहे थे। असलमें यहाके हाथियोंका मनुष्यके पीछे दूर तक हमला करनेके लिए आनेका अभी तक कोई उदाहरण नहीं था। नजदीक जाकर छेड़ें या मनुष्यकी गंध उन्हें असह्य हो जाय तभी वे हमला करते हैं।

शाम होने आई और हम आल्बर्ट पार्कके रुइण्डी कैम्पमें पहुच गये। पत्थरकी नाटी दीवारसे घिरी हुई इस जगहमें एक होटल और दस-पंद्रह गोल-गोल झोपड़ियां थी। हरएकमें खाट वगैराकी सुविधा थी। बिजलीका डाइनेमा अमुक समय तक ही चलना था। झोपड़ियोंकी गलीके बीचमें थूहरके पेड़ोंकी कतार सुन्दर ढंगसे लगाई हुई थी। कैम्पके दो-तीन सिरों पर हाथीके मुंहकी हड्डियां रखी हुई थी। बरामदेसे दूरके मैदानमें दो-तीन जंगली भैंसें चरती दिखाई दी। यहांकी भाषामें इन्हें भोगो कहते हैं। यहांके जंगलमें बसनेवाले लोग और शिकारी सबके सब जंगली भैंससे जितने डरते हैं, उतने तो हाथी और सिंहसे भी नही डरते—अकल कम और कीना बेहद।

रातको मोटरें लेकर जंगलमें घूम आनेका हमारा विचार था। आम्बोसेली और नैरोबीमे भी हमने निशाचर बननेका आनंद अनुभव किया था। परंतु यहां हमें कहा गया कि, "रातको तो क्या, सवेरे आठ बजे तक भी आपको कैम्पसे बाहर जानेकी इजाजत नहीं।'

इतनी निराशा होनेके बाद तो खाने-पीने और आरामसे सोनेकी ही बात सूझ सकती थी।

३१. टेम्बो, भोगो और किबोकोका अभयारण्य

हरएक दिन २४ घटेका ही होता है, फिर भी 'सब दिन होत न एक समान'। इन २४ घटोंमें कितने और कैसे अनुभव समाते हैं, इस परसे यह तय होता है कि

वह दिन छोटा था या बड़ा। अफ्रीकाकी सारी यात्रामें जगलके जानवर देखनेके कुल दिन ५-६ ही होंगे। इन जानवरोंके किसी सवालको हल करनेके लिए हम वहां नहीं गये थे। हमारे जैसे लोगोंमें उन वन्य प्राणियोंको लाभ-हानि कुछ भी नही थी। उनके लिए थोड़ी परेशानी मानी जा सकती थी, परन्तु यह अनुभव तो उन्हें सदासे था। हम अगर मांसाहारी होते, शिकारके शौकीन होते या स्थानीय खेतीबाड़ीकी रक्षाकी जिम्मेदारी हमारे सिर पर होती, तो इन जानवरों और उनके स्वभाव और जीवनक्रमको जानकर हमें कुछ न कुछ व्यावहारिक लाभ होता। हमारे लिए इनमे मे कोई भी कारण नही था। फिर भी इतनी दूर आकर रुपया, समय और प्रभाव खर्च करके हम इन श्वापदोंके और उनके निवास-स्थानके दर्शनोंके लिए उन्मुक हुए थे! और मानते थे कि इसमे हमारे जीवनकी अनुभूतियोंमें कीमती वृद्धि होगी। इस उत्कंठामें जानकी जोखिम भी अपना भाग अदा कर रही थी। हां, हजारों लोगोंका अनुभव देखते हुए इस जोखिमको कुछ भी महत्त्व नही दिया जा सकता था। जहाज या वायुयानके सफरमे क्या जोखिम नहीं होती? और जिस प्रदेशमें कभी-कभी भूकम्प आता है अथवा ज्वालामुखी फूट निकलता है, वहां भी चाहे जैसी जोखिम पैदा हो सकती है। समय-समय पर इसके उदाहरण भी उपस्थित न होते हों सो बात नहीं। फिर भी हम ऐसी जोखिमको कुछ नही गिनते। यहांकी भी यही बात मानी जाय।

आठ जुलाईका दिन निकला। हमारी मोटर-यात्रा शुरू होनेमें देर थी। साढ़े छह पौने सात बजे होंगे। पूर्व दिशाकी लालिमा इतनी आकर्षक थी कि कैम्पमें बैठे रहना असंभव हो गया। मैंने सरोजसे कहा, "हम कैम्पसे बाहर जरा घूम आयें। अभी सूर्योदय होगा।" मेरा वाक्य पूरा भी नही हुआ कि दूर क्षितिज पर रक्त सूर्यका चमकता हुआ बिम्ब प्रगट होने लगा। पूर्वी ८०° रेखांशके आसपास रहनेवाले हम आज पूर्वी ३०° रेखांशके आसपास खड़े रहकर सूर्यका दर्शन कर रहे थे। २० से २४ उत्तरी अक्षांशके आदी हम भूमध्य रेखाके दक्षिणमें पहुंच गये थे, इस बातका भान भी उस सूर्योदयको अधिक कीमती और हमारे लिए अधिक दुर्लभ बना रहा था। इस सूर्योदयसे उत्तेजित होकर मैं जल्दी-जल्दी कदम आगे बढ़ाने लगा। मेरी ऐसी उत्तेजनाके प्रति सरोजका सदा ही सहयोग होता है। इसमें भी निसर्गकी सुन्दरता और भव्यताका आकर्षण कम नही था। परन्तु हम कैम्पसे दूर जा रहे हैं, इस तरफ उसका ध्यान गया। मेरा उत्साह मन्द किये बिना उसे मेरा ध्यान इस ओर खींचना था कि हम सलामतीके क्षेत्रसे बाहर जा रहे है। उसने हंसते-हंसते मुझसे पूछा, "Have you an immediate appointment with the lions?"—"अभी तुरंत सिंहोंके साथ कोई जरूरी मुलाकात रखी गई है क्या?"

मैं हंस पड़ा और ठहरकर आगे देखने लगा तो देखता क्या हूं कि चार अल-मस्त भोगो (वन-महिष) हमारी मुलाकातके लिए मौजूद थे! हम कुतूहल और

कुछ-कुछ आश्चर्यसे उनकी तरफ देखने लगे। उनका भी ध्यान हमारी तरफ गया। अपने सुन्दर कान हमारी तरफ फेर कर वे हमारी ही तरह कुतूहल और आश्चर्यमे हमें देखने लगे। पहले ही क्षण हमारी तरह वे भी अन्दाज लगाने लगे कि सामने-वालोंका क्या मनसूबा है। इसी एक क्षणमें युद्ध हो या सन्धि, इसका निर्णय हो जाता है। हमने अपनी नजर बिलकुल अक्षुब्ध, अहिंसक और मित्रतापूर्ण रखी। उन्होंने भी अपने चेहरेकी घबराहट उतार डाली। फिर तो केवल दोनों ओर दर्शनानन्द ही रह गया। उनके मनमें क्या व्यापार चल रहा होगा, इसका हमें क्या पता? जी भर कर देख लेनेके बाद उन्होंने फिर चरनेकी तरफ ध्यान लगाया और हम वापस कैम्पकी तरफ मुड़े। इगोरोंगोरो जाते हुए रातको एक भोगो नजदीकसे देखा था, परन्तु उस समय मोटरकी रोशनीकी मददसे जितना दिखाई दिया उतना ही देखा। इस समय तो सूर्य भगवान सारे प्रदेशको प्रज्वलित कर रहे थे और हमसे कह रहे थे कि 'पश्याद्य सचराचरम्'। और सचमुच उस दिन 'बहूनि अदृष्ट-पूर्वाणि आश्चर्याणि' सूर्य भगवानकी कृपासे हमने देख लिये।

इतने शुभ-शकुनसे हमारा दिन शुरू हुआ। एक-एक मोटरमें एक-एक अस्कारी (सिपाही) लेकर हम चले। आज कितना घूमेंगे इसका हिसाब न होनेके कारण हमने अपनी मोटरोंको उनका पेय कण्ठ तक पिला दिया। बहुत समय तक हमें यों ही घूमना पड़ा। फिर दूर एक जानवर दिखाई दिया। पिछले भाग परसे यह यकीन नहीं होता था कि यह हाथी है या गैंडा? यहांकी भाषामें कहें तो टेम्बो है या फारु? हम थोड़ेसे आगे निकले तो देखा कि वह इनमेंसे एक भी नहीं था। वह था किबोको (हिप्पोपोटेमस)। गैंडा (फारु) इसके बाद दिखाई दिया। तत्पश्चात् यत्रतत्र अनेक जानवर दिखाई दिये। एक हाथी घास उखाड़कर उसकी जड़ोंकी मिट्टी अपने सिर पर बिखेर लेनेमें आनन्द मान रहा था। कभी-कभी मक्खियोंको हटा देता होगा। इसके बाद एक प्रकारके सूअर दिखाई दिये। उनके दोनों ओरके बाहर निकले हुए दांत सीधे आनेके बजाय कोष्ठक जैसे बिलकुल टेढ़े थे!

नैरोबीके अभयारण्यमें हिप्पो बहुत कम हैं। एक ही जगह पानीमें लोटपोट होते हुए एक हिप्पोका मुंह और उसके गुलाबी कान मैंने देखे थे। इसलिए जीमें यह लग रही थी कि हिप्पो कब दिखेगा—कब दिखेगा? पर यहांके अभयारण्यमें इतने अधिक हिप्पो देखनेमें आये कि हमारे कुतूहलमें उनका भाव एकदम घट गया। परन्तु वह फिर बढ़ गया—जब हम इस अरण्यके एकदम सिरे पर पहुंच गये और वहांकी नदीमें बहुतसे हिप्पो जलक्रीड़ा करते हुए देखनेको मिले।

यह जानवर भी जीमें आ जाय तो पागल हमला कर देता है, इसलिए उससे डरकर ही चलना पड़ता है। इन पशुओंको नजदीकसे देखनेके लिए हमें अपनी मोटरोंसे उतर कर नदीके किनारे तक पहुंचनेमें काफी चलना पड़ा। और वह भी ऊंचेसे नीचे उतरना था। हिप्पो हमला कर दे तो मोटर तक सही-सलामत दौड़

जा सकता है या नहीं, इसका हिसाब क्षण-क्षण करना पड़ता था। मैंने सरोजसे कहा, ' तुम ऊपरसे ही देखना। हमें नीचे जाने दो।" परन्तु कमलनयनने हमारा यह विचार बदल दिया। उन्होंने कहा, 'हमें ऐसी जगह जिन्दगीमें एक ही बार आना है। थोड़ीसी जोखिम उठा लें और सरोज बहनको साथ ले चलें।' हिम्मत कहा तक की जाय और जोखिम किस हद तकउठाई जाये—इस बारेमें कमलनयन-की दृष्टिके प्रति मुझे विश्वास होनेके कारण उनकी बात मैंने झट मान ली और सरोजको साथ ले लिया। हमारी तरफके हिप्पो पानीमें लगभग सो गये थे। एकाध हिप्पोको करवट बदलने या स्थानान्तर करनेका इरादा हो जाता तो बाकी को यह अच्छा न लगता। वे उसकी जरा भी मदद न करते। नदीके सामनेवाले किनारेकी तरफ जो हिप्पो पानीमें लोट रहे थे वे ज्यादातर उत्पाती थे। उनकी जल-क्रीडा देखना ही अधिक मजेदार था। सामनेके किनारेके ऊंचे पेड़ पर एक सफेद पक्षी था। वह भी हमारी ही तरह तटस्थ भावसे यह क्रीड़ा देख रहा था और आनन्द ले रहा था।

हमने अस्कारीसे कह रखा था कि वाकीके जानवर कितने भी दिखाई दें, या न दें हमें अफ्रीकाका अच्छासा उम्दा सिंह देखना है। और वह भी सिंहनी नही बल्कि अयालवाला बड़ा सिम्बा! हमारी यह ख्वाहिश सुननेके बाद अस्कारियोंकी तीखी नजर सब जगह घूमने लगी। एक खास जगह हम पहुंचे और दोनों अस्कारी गरज उठे 'सिम्बा, सिम्बा, सिम्बा।' दूर-दूर—दो तीन फर्लांग दूर झाड़ियोंके बीचकी एक खुली जगहकी तरफ उन्होंने उंगली की। पहले तो कुछ दिखाई ही नही दिया। परंतु वे लोग विश्वासके साथ कहते थे कि वहां बड़ा सिंह जरूर है। धीरे-धीरे घासमें मिट्टीके ढेर जैसी कोई चीज दिखाई दी। एक धब्बेसे ज्यादा बड़ी नही थी। हम दूरबीनसे देखने लगे। इतनेमें शंका हुई कि धब्बा सिर हिला रहा है। फिर तो छाती ऊंची निकालकर बैठे हुए सिंहकी समूची भव्य आकृति बन गई। वह बीच-बीचमें सिर घुमाकर देख रहा था। मोटर लेकर उसकी तरफ जा तो सकते ही नहीं थे, इसलिए इतनी दूरसे ही उस वनराजको देख कर संतोष मानना पडा। उसे जीभर देखनेके बाद हम अन्यत्र देखने लगे। इतनेमें दूरबीनसे ताक कर देखनेवाले शरद पंड्याने घोषणा की कि 'सिंह उठ गया है, अब चलने लगा है।' मैंने तुरन्त अपना दूरबीन चढ़ाया। क्या शोभा और क्या शान थी उस सिंहके चलनेमें!

बन्दर, हिरण, नीलगाय, तरह-तरहके जानवरोंको देखते-देखते हमने सारा अभयारण्य छान डाला। असली शोभा तो हाथियोंकी ही थी। कई जगह हमने कई जंगली हाथी देखे। और सब तरहसे जी भरनेके बाद लौटे। थूहरके पेड़ोंकी शोभा इस अरण्यकी खासियतोंमें वृद्धि कर रही थी। जल्दी वापस जानेके लिए हमने बीच की दिशा ली। यह तो कहा ही कैसे जाय कि रास्ता लिया? हमारे पहले गयी हुई किसी मोटरकी लीकको रास्ता कहें तो रास्ता जरूर था। हमारी मोटर आगे थी।

सावधानी और जल्दीके बीच रास्ता काट रही थी। इतनेमें सामने बाईं ओरसे रास्ता लांघता हुआ जंगली भोगों—भैंसों—का एक झुंड दिखाई दिया। डेढ़ सौ-दो सौ जरूर होंगे। हम एकदम ठहर गये। यह भी कहा जा सकता है कि ठंडे हो गये। वे सोच लेते तो एक क्षणमें हमारी दोनों मोटरोंका चूरा कर डालते। उनका रुख भी दोस्ताना नहीं मालूम होता था। मैंने कमलनयनसे कहा, "नाजुक प्रसंग है। भोंपू तो बजाया ही नहीं जा सकता। इस झुण्डमें उनके छोटे-बड़े बच्चे हैं। उन्हें जरा भी शंका हो जाय कि बच्चोंको जोखिम है तो सारा झुण्ड ही हम पर टूट पड़ेगा। हमारी पीछेवाली मोटर भी नजदीक आ पहुंची थी। हमने उसे रुक जाने का इशारा किया। वे भी समझ गये कि रुके बिना चारा नही है। उस समयका हर क्षण कितना अधिक लम्बा था!

हमें निश्चल देखकर बड़े-बड़े भोगोंने रास्ते पर अपनी कतार खड़ी कर दी। सींगोंवाली इस फौजको देखकर बड़े-बड़े सिंह भी हिम्मत हार जायं। इस व्यवस्थित पंक्तिके पीछेसे बाकीके सब भोगों और उनके बच्चे रास्ता लांघकर दाईं ओर दूर तक पहुंच गये, तब कही रक्षक वीरोंकी कतार जरा ढीली पड़ी। ये लोग भी रास्ता छोड़कर दाईं ओर पहुंच गये। जब हमें विश्वास हो गया कि रास्तेके बाईं तरफ एक भी प्राणी अब नही रह गया है, तभी हम आगे बढ़े और तुरन्त ऐसी दौड़ लगाई कि झुण्ड हमारे पीछे पड़ जाता तो भी हमे पकड़ नहीं सकता था।

ऐसे समय रास्तेमें न कोई खड्डा आया, न एंजिन बिगड़ा और न सामनेसे कोई हाथी आया। यह ईश्वरकी कम कृपा नही थी। सचमुच आज वन्य श्वापदोंको देखकर हमारा जी भर गया था। पशु किस परिस्थितिमें रहते हैं, जोखिमके बारेमें वे कितने लापरवाह रहते है और खाने और जीने दोनोंकी मुश्किलके बीच जीवनका आनन्द किस तरह लूटते हैं, यह देखकर सचमुच ही जीवनकी अनुभूतियों में एक अपूर्व वृद्धि हुई थी। इतने सारे प्राणी किसी भी नियमके बिना, राज्य या संरक्षक दलके बिना यहा रहते हैं, बढ़ते हैं, घटते हैं; और प्रकृतिकी योजनाको पूरा करते हैं। न उनके पास कोई इतिहास है, न कोई परम्पराओंका स्मृतिशास्त्र है। प्रकृति देवी जैसी प्रेरणा दे और सुविधा या असुविधा पैदा कर दे उसीके अधीन वे रहते हैं। प्रकृतिसे अलग क्रम पैदा कर लेनेकी उनमें इच्छा नही है। जीनेके बारेमें उन्हें विषाद या थकावट या निर्वेद नही है। इन श्वापदोंका कोई कमीशन मनुष्य-जातिके बारेमें अपनी राय इकट्ठी करके लिख ले, तो उसमें हमारे बारेमें क्या-क्या होगा?

अनुभवोंके भारी-भारी गुच्छे बटोरकर हम आल्बर्ट नेशनल पार्कसे लौटे। रुइंडी और रुटशुरू दोनों नदियां फिर पार की। एडवर्ड सरोवर दिखाई नही दिया इसका पछतावा रहा। आसपासके पहाड़ोंको "पुनरागमनाय" कहकर नमस्कार किया। छोटी दरारको पार कर लिया। गंधकके झरनोंको 'क्या हाल है?' कह कर

खैरियत पूछी और देखते-देखते रुटशुरू गांव तक आ पहुंचे। यहांसे हमें तिलोत्तमा या उर्वशी जैसे रूपराशि कीव सरोवरकी तरफ जाना था।

३२. कीवूसरकी आधी प्रदक्षिणा

आगेका प्रवास सचमच एक सुन्दर सरोवरकी उलटी परिक्रमा था। इसके लिए हम पहले रुटशुरूसे गोमा गये। वहां कीवू सरोवरके प्रथम दर्शन हुए। गोमाके पास ही किसेनी नामका छोटासा एक सुन्दर स्थान कीवूके किनारे है। वहां एक दिन आनन्द ले कर हम अपनी उलटी प्रदक्षिणा करनेके लिए वापस गोमा गये और सरोवरकी बाईं ओरकी सारी यात्रा पूरी करके कालेहे होकर कॉस्टरमन-वील तक गये और वहासे रुझीजी नदीका सारा दाहिना प्रदेश पार करके टांगानिका सरोवर तक पहुंचे। जैसे कीवूके किनारे किसेनी है, उसी तरह टांगानिकाके किनारे उसुम्बरा है। वहां एक दिन रहकर हम लौट आये और फिर उत्तरकी दिशा लेकर कीवू सरोवरको बाईं ओर रखकर नये-नये सुन्दर प्रदेशोंमेंसे कुदरतका अद्भुत दर्शन करते हुए कबाले लौटे। इस प्रकार हमारी विशाल परिक्रमा पूरी हुई।

रुटशुरूसे गोमा तकका रास्ता बहुत ही रमणीय था। वनश्री इतनी घनी थी कि उसमेंसे रास्ता कैसे तैयार किया होगा इसका हमें आश्चर्य होता था। कौन जाने कहासे सारे रास्तेमें पीली तितलियां इधर-उधर दौड़ रही थीं। इस रास्तेमें एक और बड़ा अभयारण्य है और सुना है कि उसके एक सिरे पर मनुष्य-कल्प गोरिला वा-नर रहते हैं। पहाड़ियोंकी शोभाके बीच कॉफीकी खेती शोभा दे रही थी। और बीच बीचमें पेरेथ्रमके सौम्य सफेद फूल अमावसकी रातके तारोंकी तरह घनी बस्ती बना कर उगे हुए थे। यह फूल चमड़ा रंगने और कमानेके काममें आता है, इसलिए यहांकी सरकारने इसकी खेतीको बड़ा प्रोत्साहन दिया है।

जिस सिंकोना पेड़से बुखारकी दवा क्विनाइन निकलती है, उसे भी यहांकी सरकारने खूब बोया है। इस नयन-मनोहर मार्गका अन्त नयी नगरी गोमाके दर्शनसे हुआ। गोमाकी पहाड़ी परसे कीवू सरोवरका विस्तार अच्छा दिखाई देता है। यहां के छोटे-छोटे मकान भी बड़े सुन्दर हैं।

गोमाके पास ही अगर उसका प्रतिद्वन्द्वी किसेनी न फैला होता, तो गोमाका वैभव हमेशा बढ़ता ही रहता। सुन्दर मकान, अच्छे रास्ते, तरह-तरहके फूल और नावमें बैठकर सरोवरकी सैर करनेका आनन्द—ये सब किसेनीके आकर्षण हैं। सीधे ऊपर जानेवाले पेड़ बीच बीचमें खड़े होकर इस स्थानके लालित्यमें गाम्भीर्यका मिश्रण कर रहे थे।

व्हाइट रशियाकी एक महिला फ्रांसमें रहकर फ्रेंच बन गई होगी। वह वहांकी

सरकारकी तरफसे कलकत्तेमें रह चुकी थी। यह महिला किसेनीमें बुगोई नामक एक होटल चला रही है। हम उसीमें ठहरे थे। यहां भी सब सुविधाओंवाली गोल झोंपड़ियां बना कर उनमें मुसाफिरोंको रखा जाता है। यह महिला कई यूरोपियन भाषाएं जानती हैं। दुबारा हिन्दुस्तान आने और हिन्दुस्तानके विदेश-विभागमें काम करनेकी उसकी बड़ी इच्छा है। दूसरे दिन इस स्थानके गोरे कर्मचारी हमसे मिलने आये थे। स्थानीय भारतवासियोंने इन्हें चाय-पार्टी दी थी। गोरे सिर्फ फ्रेंच जानते थे। मैं जितना अंग्रेजीमें बोला वह उस महिलाने उनके लिए फ्रेंच करके सुना दिया। सरोजको थोड़ी बहुत फ्रेंच आती थी। इसलिए वह भाषान्तर कैसा हुआ, इसकी उसने मुझे कल्पना करा दी। यहांके भारतीयोंको हमारे आनेका पता था, इसलिए हिन्दू और मुसलमान दोनों इकट्ठा होकर मिलने आये। उनके साथ बहुत बातें हुईं। हिन्दू-मुसलमानोंकी मित्रताके बारेमें, सरकारके साथ अच्छे सम्बन्ध रखनेके बारेमें, और अफ्रीकी लोगोंकी अच्छीसे अच्छी सेवा करनेके बारेमें बातें की। हमें मालूम था कि किसेनीके पास एक 'सजीव' ज्वालामुखी है। हमने इस बातकी जांच की कि वहां तक जाया जा सकता है या नहीं। यह नई खोज हमारे कार्यक्रममें बैठ नहीं सकती थी, इसलिए रातको अंधेरा हो जानेके बाद गांवके बाजारमेंसे हमने उस ज्वालामुखीका शिखर देखा। अंधेरेमें भूतकी तरह अपना शिखर उठा कर उस पर एक विराट अंगीठी उसने धारण की हो, ऐसा वह दृश्य था! ज्वालाके कारण आसपासका आकाश भी लाल लाल दिखाई देता था।

सुना है अफ्रीकामें ऐसे दो तीन ज्वालामुखी हैं। बाकीके सब या तो मृत हैं या सो रहे हैं। हरएकके सिर पर गहरा और विशाल द्रोण या ज्वालामुख तो होता ही है। ऐसे सुप्त-शीतल शिखरोंकी शोभा भी कम नहीं होती। ऐसे शिखरोंके दर्शन मेरे लिए केवल प्राकृतिक शोभा नहीं होते, भगवानकी विभूतिके दर्शन ही होते हैं। उस दिन शामको सरोवरके किनारेकी गई प्रार्थनामें जैसे प्रशांत सरोवरने अपना भाग अदा किया था, उसी तरह दूसरे दिन सवेरे जब उसी जगह प्रार्थना करने गये तब प्रार्थनामें सरोवरके अलावा रातका ज्वालामुखी भी उपस्थित हुआ था। सचमुच प्रार्थना द्वारा ही चेतन और अचेतनके बीचका ऐक्य अनुभव किया जा सकता है।

प्रार्थना और नाश्तेसे फारिग होनेके बाद हम स्थानीय मार्केट देखने गये। हमने देखा कि हमारे लोग अफ्रीकी लोगोंको तरह तरहके कपड़े बेचते है। खुले मैदानमें जहां अफ्रीकी लोगोंके बीचमें ही लेन-देन होता था, वहां सब चीजें इतनी थोड़ी और सादी होती थी कि हमें यही खयाल होता कि इतनी-सी बातके लिए वे बाजार तक क्यों आते हैं? कुछ अफ्रीकी लड़कियां रंग-बिरंगे फैशनके कपड़े और मुश्किलसे दो तीन दिन चलनेवाले सस्ते गहने पहन कर इधर-उधर टहल रही थीं। भगवानने उन्हें जैसे बाल दिये हैं उनमें उस्तरे और कैंचीकी मददसे तरह तरहकी शोभा पैदा करनेके लिए भी वे प्रयत्न कर रही थी। बुढ़ियाएं सब पुराने ढंगकी थी। उनकी

पोशाक और व्यवहारसे ही अफ्रीकी लोगोंकी पुरानी रूढ़ संस्कृतिकी कल्पना हो सकती थी। एक वृद्ध अफ्रीकीने अपने कानकी लोलक इतनी बड़ी कर ली कि थी उसकी अड़चन मिटानेके लिए वह उसे उठाकर जनेऊकी तरह कान पर रख सकता था !

ऐसे अफ्रीकी लोगोंके बीच खडे रह कर हमने फोटो खिचवाये। ऐसे फोटोकी तरफ हम एक नजरसे देखते हैं। अफ्रीकी लोगोंकी नजर दूसरी ही होती है।

सब देख लेनेके बाद एक बार मोटरमें बैठ कर किसेनीका सारा किनारा देखनेकी जीमें आई। पहले हम बाईं तरफ जहा एक रास्ता जा सकता था वहां तक गये। फिर बाईं तरफ गोमाके बंदरगाह तक गये। वहांसे पासकी पहाड़ी पर जा कर सारा दृश्य आँखें भर कर देखा। इससे ज्यादा कुछ नहीं किया जा सकता था, इसलिए हम वापस आ गये।

अब हमारी कीवू सरोवरकी परिक्रमा शुरू हुई। गोमा तक उत्तरमे जाकर हमने मुड कर दक्षिणका रास्ता लिया। उतार-चढ़ाव तो होता ही है। घड़ीभरमे रास्ता सरोवरके पास आ जाता, घड़ीभरमें दूर चला जाता। ऐसा लगता था कि दाई तरफकी पहाड़ियोंको इस बातका दुःख हो रहा है कि वे सरोवर तक नहाने नही आ सकतीं।

थोड़े आगे गये और हमने देखा कि दो ढ़ाई वर्ष पहले (सन् १९४८ मे) एक ज्वालामुखीने उबलकर सरोवर तक आनेका प्रयत्न किया था। उबलते हुए लावाका रेला इतनी दूरसे और इतने जोरसे आया कि उसका एक बड़ा राक्षसी जत्था सरोवरमें उतर पड़ा। सरोवरका पानी जल गया। उसने हाहाकार किया। आखिरकार लावाको सरोवरका एक खासा बड़ा टुकड़ा मूल तालाबसे अलग करके ही संतोष मानना पड़ा। कोयलेकी तरह काले चमकते हुए लावाके इस जत्थेको देखकर जी घबरा गया। सुलगते हुए रसकी लहरें एकके बाद एक आ रही थीं। सूखनेके पहले उसमें सलवटें पड़ती थीं। किसी-किसी जगह यह रस गोल चक्कर काटता और जहा तहां फट जाता। अब ठंडा हुआ यह सारा दृश्य भयानक और विषाद उत्पन्न करनेवाला था। पेड़, पत्ते, सादी मिट्टी या पत्थर कुछ भी नहीं दीखता था। सब जगह काला स्याह लावा और उसमेंसे जाता हुआ हमारा रास्ता था।

हम विषण्ण मनसे आगे बढ़े। वहां ऐसा ही परन्तु दूसरी तरहका दृश्य देखनेको मिला। सन् १९३८ ईसवीमें एक और लावाका रेला कीवूमें नहाने आया था। इसका विस्तार भी पहलेकी तरह फैला हुआ था। परन्तु १२ सालकी धूप, बरसात और हवामे उसका चूरा हो गया था। उसके ऊपर जगह-जगह मिट्टीने अपना राज्य जमा लिया था। और मिट्टी आई इसलिए बीच-बीचमें वनस्पतिने उसके ऊपर अपनी हरी हरी ध्वजाएँ फहरा दी। मनमें विचार आया—मरण और विनाश चाहे जितने भीषण और दुर्धर हों, परन्तु जीवन उसके ऊपर विजयी होता ही है। विनाश उत्पाती परन्तु क्षणजीवी है, जबकि जीवन सौम्य-सनातन है।

सरोवरकी शोभा देखकर चाहे जितने तृप्त हुए हों परन्तु, उससे पेट नहीं भरता। इसलिए कालेहेमें हमने खाया-पीया और आगे चले। शामको साढ़े छह बजे हम गंधर्व नगरी जैसे एक शहरमें आ पहुंचे। उसका पुराना नाम बुकाफू था। आजकल उसे कॉस्टरमन-वील कहते है।

३३. बच्चा शहर और प्रवाही कन्या

महात्मा गांधीजीने एक जगह लिखा है कि आकाशके तारे जहां हैं वहां भयंकर गर्मी है। वहां सभी चीजें पिघलकर द्रव्यरूप ही नही वायुरूप हो जाती हैं। हजारों डिग्रियोंकी उनकी गर्मीकी हम कल्पना भी नही कर सकते। परन्तु इन्ही तारोंका प्रकाश जब करोड़ों मीलका सफर करके हमारे पास आता है, तब कितनी शीतलता प्रदान करता है! ऐसे ही आश्चर्य हमारी पृथ्वी पर भी जहां तहां फैले हुए हैं। अफ्रीकाके सभी सरोवर और फटी हुई दरारें भयानक ज्वालामुखीके आभारी है। कीवूका सरोवर समुद्रकी सतहसे ४८२९ फुट ऊंचा है। इतना ऊंचा सरोवर दुनिया मे दूसरा नही है। ऊपर कहे अनुसार ज्वालामुखियोंकी इस सरोवरके साथ खास दोस्ती है। वे देर-सवेर इसमें नहाने उतरते हैं।

प्राचीन कालमें—किसीको पता नहीं कि कब—इसी तरह कोई ज्वालामुखी दौड़ आया होगा। उसने कीवू सरोवरके दक्षिणमें एक बड़ी पहाड़ी सरोवरमें घुसेड़ दी है। उस पहाड़ी पर वनस्पतिने अपनी बस्ती बसाई। उसके बाद मनुष्यको उनके बीच जाकर रहनेका सूझा। इस तरह बुकाफू गांव पैदा हुआ। इतना रमणीय स्थान गोरोंकी नजरसे कैसे बचता? बढ़िया पानी, स्वास्थ्यप्रद हवा, रमणीय दृश्य और सुविधापूर्ण बन्दरगाह—यह सब देख कर उन्होने यहां कॉस्टरमन-वीलकी स्थापना की। मध्य अफ्रीकामे इतना छोटा और इतना सुन्दर दूसरा शहर शायद ही हो। अफ्रीकामें हम सबसे अधिक पश्चिममें इसी स्थान पर पहुंचे होंगे। यह नगरी लगभग २८° रेखांश पर स्थित है।

हम एक अच्छेसे अच्छे यानी मंहगेसे मंहगे होटलमें जाकर रहे। हमारे देशके लोगोंमेंसे जान-पहचानवाले यहां कोई नहीं थे। होटलमे जाकर हमने समझाया कि हम मांस नहीं खाते, मुर्गे नहीं खाते, मछली नही खाते, अंडे भी नहीं खाते और चर्बी भी हमें नही चलेगी। शराबको तो हम छू भी नही सकते। अगर अभक्ष्य भक्षणसे बचना हो तो इतनी बातें बताये बिना छुटकारा नही होता। हमारी सेवाके लिए तत्पर और चेहरे व कपड़ोंसे अत्यन्त गंभीर व्यक्ति हमारी यह बात सुनकर भौ-चक्का ही हो गया। मंहगेसे मंहगे होटलका खर्च दे कर ये लोग एक रात रहने आये हैं और कहते हैं कि ये-ये चीजें नही खाएंगे। तो इनको खाना क्या है? शराब? वह

भी इन लोगोंको पीनी नहीं है ! उसे लगा होगा कि यह सारा दल पागलखानेसे भाग कर यहां आ गया है। उसने हमारे साथी शहाणेसे पूछा, "ये सब चीजें आप क्यों नही खाते ? किसीको भी ये माफिक नहीं आती ?" शहाणेने कहा कि, "हमारे धर्मके अनुसार ये चीजें नही खाई जा सकती।" बेचारा शहाणे ! हमारे कारणसे उसे भी यह परहेज रखना पड़ा ! यह कहकर मैंने कमी पूरी की कि, "मैं पनीर भी नही खाऊंगा।" शहाणे बोला, "मैं तो खाऊंगा।" होटलवालेको लगा कि इन लोगोंका यह धर्म कैसा ? वह मनमें चिढ़ा। परन्तु कुछ न कुछ खाना दिये बगैर छुटकारा भी नहीं था। और हम उगाही करने बैठे हुए पठानकी तरह मेजके आस-पास जम कर बैठ गये थे। उठनेका नाम भी नही लेते थे। कड़ाकेकी भूख और खाने के कष्टसे निपटनेके लिए हममेंसे कुछ विनोद करके हंसने लगे। वह ज्यादा चिढ़ा। खाली सोडा या ऑरेन्ज स्क्वेश लें, तो भी रुपये दो रुपये देने पड़ें।

खैर, हमने ज्यों-त्यों करके खाया और थकावट मिटानेको अपने कमरोंमें चले गये। नहाने-सोने वगैराकी सब सुविधाएं शाही थी। हमारे खयालसे खानेकी सहूलियतसे नहानेका सुभीता ज्यादा महत्त्वका था। मनुष्य जब अपने बूतेसे अधिक खर्च करता है, तब इन सुविधाओंका अधिकसे अधिक उपयोग करके क्षणभरके लिए उसके जीमें यह मान लेनेकी आती है कि 'मैं बादशाह हूं। अरेबियन नाइट्स-वाले अबूहसनकी मनोदशा समझनेके लिए यह अनुभव काफी था।

सुबह जल्दी उठकर सरोज और मैं सैर करनेको निकले। हमारे साथी निद्रा-नन्द लूट रहे थे। शरद पंड्याको भी उठाये बिना हम चुपचाप बाहर निकल गये और सारे टापूका चक्कर लगा आये। नीचे पानीके किनारे तक गये तो वहां कुछ अफ्रीकी छोटीसी नावमें आ रहे थे। वे हमारी ओर आश्चर्यचकित होकर देख रहे थे। उनकी कल्पना यह थी कि जिन्हें गरीबीका दुर्दैव भुगतना पड़ता है, वे ही इतनी जल्दी उठ सकते हैं। ऊंचे-ऊंचे पेड़ोंके बीच घूमते-घूमते हम एक पुराने गिरजे या महलके पास पहुंच गये। एक कोनेमें रास्तेके एक तरफ एक खंभे पर माता मरियमका छोटासा देवस्थान था। परम भागवत बाल-ब्रह्मचारी ईसाकी माता मरियमको हमने प्रणाम किया और पासकी बड़ी-बड़ी सीढ़ियोंसे उतर कर फिर सरोवरके पास गये।

मैंने सरोजसे कहा कि, "मध्यरात्रिके बाद यहां थोड़ासा भूकंप हुआ होगा। मैं नींदमें चौंककर जागा था। पहले ऐसा लगा कि कोई मोटर गुजरी होगी।" सरोज-ने कहा, "अपने कमरेमें मुझे भी ऐसा ही अनुभव हुआ था।" यह धक्का हमारे कुंभकर्णकी जातिवाले साथियोंकी नींद भंग न कर सका। इसलिए उनसे हमारे अनुभवका समर्थन प्राप्त नहीं हो सका।

सुबहके समय आसपास सब जगह घूमकर हमने अनेक स्थान देखे और आगे बढ़े।

कीवू तालावकी लम्बाई ६२ मील है। जब कि उसके दक्षिणमें स्थित टांगानिका सरोवरकी लम्बाई ४५० मील है। दोनोंकी ऊंचाईमें भी एक हजार तीन सौ फुटका अंतर है। और कुदरतकी खूबी यह है कि एक सुन्दर नदी कीवूके दक्षिणमें निकलकर टांगानिका सरोवरसे उत्तरी सिरे पर जा कर मिलती है। इस छोटी नदीको लगभग अस्सी मीलके अन्दर तेरह सौ फुट नीचे उतरना पड़ता है। उसका प्रवाह कितना वेगवान होना चाहिये ? इस रुझीजी नदीका उद्गम हमारे होटलसे बहुत दूर नहीं था, परन्तु वहां तक जानेके लिए एक बहुत बड़ा चक्कर काटनेकी जरूरत पड़ती थी।

कीवूके किनारेसे रास्ता निकाल कर जहां रुझीजी छलांग मारती है, उसी जगह पर एक ऊंचा पुल है। हम वहां गये। नदीका उद्गम सबसे पवित्र स्थान होता है। कितनी उत्सुकतासे हम उसका दर्शन करने गये ! परंतु हमारा उत्साह क्षणभरमें विषादमें बदल गया। एक सुन्दर चमकती हुई पुष्ट गाय उस पुल परसे जा रही होगी। सामनेसे कोई बड़ी लारी आई होगी। उसने जान बचानेके लिए पुलकी बाजूमें न [illegible] जानेकी कोशिश की। वह पुलका किनारा था। वापस लौटे तो कुचल जाय। आगे बढ़े तो उतनी ऊंचाईसे पानीमें कूदना ही पड़े। भगवान जाने उस जानवरको क्या सूझा। उसने छलांग मार कर अपनी तकदीर आजमानेका विचार किया होगा। 'या तो बच जाऊंगी या नीचेके पानीमें छिपे हुए पत्थरोंमें टकरा कर चूर-चूर हो जाऊंगी।' बेचारी गायके भाग्यमें दोनोंमेंसे एक भी अन्त नहीं था। उसने छलांग मारी तो सही, किन्तु इसमें पुलकी किनारकी लोहेकी दो बड़ी पटरियोंके बीच उसका पिछला पैर फस गया। वह पिछले एक पैरसे वहां लटकती ही रह गई। इस स्थितिमें उसने कितनी वेदना सहन की और वह कब मर गई, सो कौन जाने ? हम गये तब वह गाय पुलकी ऊंचाईसे नीचेकी नदीकी तरफ मुंह करके एक पांवसे निश्चेष्ट लटक रही थी। किसी भी जानवरकी ऐसी दशा देखकर हृदय विदीर्ण हो जाता, फिर वह तो एक गाय थी। उसे देखकर गहरा आघात लगा। हम पुल पर गये। नजदीकसे देखा कि पैर कैसे फंसा है। गाय मर गई थी, इसलिए उसकी मदद करनेके लिए चार आदमियोंको जमा करनेका सवाल ही न था। हमने पुलके दोनों सिरोंसे और ठीक बीचसे नीचेकी नदीको देखा। उत्सवके दिन हम ऐसे विषादके साथ लौटे, मानो सूतक आ गया हो।

अब हमारी यात्रा इसी रुझीजी नदीकी दिशामें उसके उद्गमसे उसके मुख तककी थी। किनारे-किनारे जानेकी बात थी ही नहीं। परन्तु नदीके दाईं ओरके छोटे-बड़े ऊबड़-खाबड़ पहाड़ोंके बीचसे जो जोखमभरा रास्ता तैयार किया गया था उसी रास्तेसे हम उतरे। केवल उतरना ही न था। अनेक बार चढ़ते, अनेक बार उतरते। कई बार जानको मुट्ठीमें लेकर विचार करते कि, 'अरे ! अब क्या होगा ?' इस तरह करते-करते हम उवीराके रास्ते चले। बीच-बीचमें रुझीजीके

दर्शन होते तब दार्जिलिंग कालिंपोंगकी तरफकी तीस्ता नदीकी याद आती थी। ऐसे रास्ते पर श्री कमलनयनकी सारथ्य-कलाकी उत्तम परीक्षा होती थी। सचमुच वह एक होशियार सारथी है।

इस रास्तेमें कुछ भाग इतना तंग है कि दो मोटरें एक-दूसरीको पार करके नहीं जा सकतीं। इसलिए वहां 'वन वे ट्रेफिक' (एकतरफा यातायात) का प्रबन्ध है। कुछ मोटरोंको उत्तरसे दक्षिण जाने देते हैं और वे सिरे पर पहुंच जाये तब दक्षिणकी मोटरोंको उत्तरकी तरफ जाने देते हैं। कितनी मोटरें छूटी हैं और कहां तक आई हैं, इसकी खबर दोनों सिरों पर पहुंचानेके लिए यहां टेलीफोनकी सुविधा भी नहीं है। इसलिए जंगलके लोगोंको बैठाकर उनकी पद्धतिसे ही समाचार पहुंचाये जाते हैं। अनुकूल स्थानों पर लोहेके बड़े-बड़े डिब्बे या पीपे रख कर उन पर नगाड़ेकी तरह आवाज की जाती है। यह आवाज कुछ मील तक पहुंचती है। वहां इसी तरहका समाचारोंका आदान-प्रदान होता है। और इस जंगली ढंग पर सुधरी हुई मोटरों और उनके मुसाफिरोंको सलामत रखा जाता है। इस प्रकार पहाड़ उतर जानेके बाद सीधी भूमि आई। वहां बाईं ओर नदीके किनारे एक छोटीसी रेलवे जाती देख कर हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। रुझीजी नदी पहाड़से निकलनेके बाद जिस घाटीमें प्रवेश करती है, वहांकी जमीनकी पैदावारको यह रेलवे लुवुगी स्टेशन से चढ़ा कर उवीरा ले जाती है। और वहां जहाज पर चढ़ा कर किगोमा, आल्बर्टवील या ठेठ दक्षिणमें कासंगा तक ले जाते हैं। किगोमासे एक रेलवे ठेठ दारेस्सलामके बन्दरगाह तक जाती है। हमारे लोगोंके लिए यह रेलवे सहायक है, यह मैं पहले ही लिख चुका हूं।

पहाड़ परसे उतरते उतरत जब टांगानिका सरोवरके प्रथम दर्शन हुए, तब इस ओर आये हुए बरटन और स्पीक जैसे यात्रियोंको जो आनन्द हुआ होगा, लगभग वैसा ही आनन्द हमें हुआ। हमने माना था कि उवीरा तक पहुंचनेके बाद ही उमुबरा तक जाया जा सकेगा। मगर साथके नकशोंने हमारा भ्रम मिटा दिया। उवीराका बन्दरगाह दो-एक मील दूर रहा होगा कि इतनेमें एक रास्ता बाईं ओर फटा। उसने हमें उमुंबरा तक पहुंचानेका भार सिर पर लिया—सिर पर क्या, छाती पर लिया। यह रास्ता टांगानिका सरोवरके उत्तरी किनारे पर जाता था और सरोवर की सतहसे बहुत ऊंचा तो था ही नहीं। सरोवरका पानी चार-छह फुट चढ़ जाय तो यह रास्ता डूब ही जाय।

एक-दो छोटे प्रवाह पुलकी मददसे लांघनेके बाद रुझीजी नदीका बड़ा पुल आया। सवेरे जिस सरो-जा नदीके उद्गमकी तरफके विषादमय दर्शन किये थे, उसी नदीको यहां सरो-गामिनी होती देख कर मन बहुत ही प्रसन्न हुआ। पानी भी नाचता-कूदता-दौड़ता था और टांगानिका सरोवर प्रसन्न और शांत-वदन होकर

उसका स्वागत कर रहा था। सरोवर-सुता और सरोवर-कान्ता इस रुझीजी नदी-को कैसे भुलाया जा सकता है ?

थोड़े ही समयमें हम उसुंबरा जा पहुंचे।

३४. उसुम्बरा और उसके बाद

हम शामको उसुम्बरा पहुंचे। रुआन्डा-उरुन्डीके सफरमें हमारा यह सबसे सिरेका यानी दक्षिणका स्थान था। उसुम्बराका निमंत्रण लगभग एक महीने पहले दारेस्सलाममें ही मिल गया था। अगर केवल उसुम्बरा ही जानेकी बात होती तो रास्ता आसान था। दारेस्सलामसे किगोमा ट्रेन द्वारा और वहांसे जहाज द्वारा उसुम्बरा। हमारे लोग जब बम्बईसे आते हैं तब कहते हैं कि उसुम्बरा भले ही दूर हो,परन्तु जानेका झंझट कम है। बम्बईसे जहाजमें बैठे और दारेस्सलाम उतर गये। वहांसे रेल पकड़ी और किगोमा उतर गये। फिर जहाजमें बैठे और घर आ गये। परन्तु हमें कम्पालासे उसुम्बरा तकका मुल्क देखना था। हमारे लिए पहुंचना महत्त्वकी बात नहीं थी। आनन्द तो जाने और देखनेका ही था।

यह शहर एक पहाड़ीकी तलहटीमें अतिदीर्घ सरोवरके किनारे बसा हुआ है। चूंकि यह सरोवर प्रागैतिहासिक कालकी एक दरारसे बना है, इसलिए इसकी गहराई दूसरे किसी भी सरोवरसे बढ़कर है। एक जगह तो इसकी गहराई ३१९० फुट है। भूगर्भ-शास्त्री कहते हैं कि इस सरोवरका पृष्ठभाग आजकी अपेक्षा हजार-सवा हजार फुट अधिक ऊंचा था। अर्थात् कीवू सरोवर और टांगानिका सरोवरके पृष्ठभागोंमें ज्यादा फर्क नहीं था।

यह सरोवर जैसे उत्तरमें रुझीजीसे पानी लेता है, वैसे दक्षिणमें लुकुगा नदी-को वह पानी देता भी है।

उसुम्बरामें हम डेढ़ दिन रहे। हमारे यजमान श्री जूठाभाई वेलजीकी पुत्रवधू-प्रतिभा जैन छोटी थी तब कराचीमें हमसे मिली थी। हिन्दुस्तानके एक सिरे पर जिस लड़कीको हमने अपनी स्वाक्षरी (ऑटोग्राफ) दी थी, उसीको उसुम्बरा जैसे दूरके स्थान पर दुबारा नये सिरेसे स्वाक्षरी देते वक्त आनन्दके साथ आश्चर्य भी हुआ। बादमें मैंने देखा कि उस जूठाभाई वेलजीकी लड़कीने ही जंगबारके मणि-भाई मूलजी वेलजीकी पत्नीके रूपमें हमारा आतिथ्य किया था। इस प्रकारके संबंधोंके कारण इस घरमें प्रवेश करते ही हम घरके जैसे हो गये। रातको मिलने आनेवाले लोगोंके साथ ही सारा वक्त पूरा हो गया। इस शहरमें नीचेकी आबादी और ऊपरकी आबादी, इस प्रकारका भेद है। गोरे सब ऊपरकी बस्तीमें रहते हैं। हमारे लोग सरोवरके किनारे नीचेकी बस्तीमें रहनेमें सुविधा समझते हैं। और

बेचारे अफ्रीकी लोगोंकी झोंपड़ियां तो पासकी एक पहाड़ी पर इधर-उधर फैली हुई दिखाई देती हैं।

सवेरे उठ कर हमारा पहला काम तालाबके किनारे बैठ कर प्रार्थना करना था। बन्दरगाह जरा दूर था। हमारे साथ प्रतिभा, सुलभा, कमला वगैरा घरकी महिलाएं प्रार्थनामें शरीक हुई थी। उन्होंने प्रार्थनाके अन्तमें जो भजन गाया, उसमें निराशाके विषादमय स्वर इतने ज्यादा थे कि मुझे ऐसा महसूस हुआ मानो अफ्रीकाकी तमाम कौमें इकट्ठी होकर अपने पिछले सौ-दो सौ बरसके अनुभवोंका निचोड़ यहां उड़ेल रही हैं। अपनी संतोष और सादगीवाली संस्कृतिमे निकल कर पश्चिमकी प्रगतिशील परन्तु उत्पात-परम्परावाली सभ्यताकी दीक्षा जबरन लेनेमें उन्हें कितना कष्ट उठाना पड़ता है, यही मानो वे हमारे सामने पेश कर रही थीं।

जूठाभाईके यहां निरंजन भट्ट नामक एक शिक्षक हमसे मिले। वे अकसर दारेस्सलाममें रहते हैं। अफ्रीकाके बारेमें उन्होंने बहुत साहित्य पढ़ा है। बड़े अध्ययनशील हैं। बहुत जानते हैं और अपने पासकी जानकारी व्यवस्थित ढंगसे पेश भी कर सकते हैं। यह दुर्भाग्यकी बात है कि ऐसे लोग हमारी भाषाओंमें यात्राका साहित्य नहीं बढ़ाते और इस महाद्वीपकी आदिवासी जातियोंका जीवनक्रम हमें नही समझाते। ऐसे लोगोंको कद्र करनेकी बात तो दूर रही, कुछ गृहस्थाश्रमी लोग इनका इकट्ठा किया हुआ साहित्य भी खो बैठते हैं!

हम यहांकी पाठशाला देखने गये। हमारे लोगोंकी शिक्षाके प्रश्नोंकी वहां कुछ चर्चा की। हमारे लोग वर्तमान परिस्थितिको समझ कर और भविष्यके काल-प्रवाहकी दिशाको पहचान कर योजनापूर्वक जीवनक्रम नही बनाते। जो कुछ पुराना है वह—भला और बुरा सब कुछ—कायम रखनेका प्रयत्न करते हैं। इसमें भी सिद्धान्त-प्रेम कम होता है। जो रूढ़ि पड़ गई है उसे बनाये रखना और ऐसा करनेमें जो कष्ट उठाने पड़ें सो उठाते रहना, परन्तु परिवर्तनका पुरुषार्थ जहां तक हो सके न करना, यह हमारे लोगोंका स्वभाव है। परिस्थितिके मजबूर करने पर कुछ फेर-बदल करते जरूर हैं, परन्तु मौका हाथमे निकल जानेके बाद ही सब कुछ सूझता है। इसलिए उससे फायदा नहीं उठा सकते।

जूठाभाईने समाजमें होनेवाले परिवर्तनका वर्णन एक ही वाक्यमें कर दिया। उन्होंने कहा कि, "पुराने जमानेमे हमारे लोग बहुत जल्दी और कदम-कदम पर अपवित्र हो जाते थे। अब नही होते।"

लोगोंको धर्मकी परवाह हो तो वह पाठशालामें बोली जानेवाली प्रार्थनामें ही दिखाई देती है। इसमे हिन्दू-मुसलमान वगैरा कौमी झगड़े पैदा होते हैं। मुसलमान पाठशालाओंमे अगर कोई हमारे बच्चोंको कुरान सुनाये तो हम नाराज होते हैं। परन्तु हमारी पाठशालाओंमे मुसलमान बालकोंको हम अपनी प्रार्थना सिखाते हैं और इन बालकोंको कोई कठिनाई नही होती तो इसके लिए आनन्द प्रगट करते

हैं। मुसलमानोंमें भी यही दोष दिखाई देता है। ईश्वर-भक्ति और सदाचार, ये दो मुख्य चीजें सभी धर्मोंमें समान रूपसे होती हैं। परन्तु हमारे ख्यालमें यह वस्तु गौण है। हमें अपने चौखटे और लेबलकी परवाह होती है। हमारे लोगोंमें यह दोष पहले इतना अधिक नहीं था। ज्यों-ज्यों राजनीतिक जागृति बढ़ी, त्यों-त्यों ऐसे झगड़े बढ़ते गये।

भिन्न जाति, भिन्न धर्म और भिन्न वंशके लोगोंके साथ घुलमिल जानेकी आवश्यकताके बारेमें यहांके लोगोंके साथ मैंने बहुत बातें कीं। अफ्रीकाके मूल निवासियोंका मूलधर्म कैसा था, उस पर इस्लामका क्या असर हुआ और मिशनरी लोगोंने ईसाई धर्मके साथ कैसी संस्कृति फैलाई है, इसकी भी चर्चा की।

दोपहरको बाजारमें जा कर कुछ चित्र और बेल्जियन कांगो सम्बन्धी एक फ्रेंच पुस्तक खरीद ली। सार्वजनिक बागमें जा कर चिम्पाजी जैसे बन्दर, मोर जैसे दिखाई देनेवाले विचित्र प्राणी और मगर वगैरा देखे। पहाड़ पर जाकर शहर और सरोवर दोनोंकी शोभा देखी। शामको 'पाकीदास होटल' नामक यूरोपियन होटल-में एक बड़ी पा[illegible]का प्रबन्ध किया गया था। प्रांतीय कमिश्नर वगैरा गोरे अधि-कारियोंको आमंत्रित किया गया था। अरब और खोजे भी थे। न थे तो सिर्फ अफ्रीकी। अफ्रीकियोंको ऐसे सामाजिक व्यवहारमें शरीक करनेकी हमने बहुत-सी बातें कीं, परन्तु सफल नहीं हुए।

यहांके हमारे लोगोंको गोरे अधिकारियोंके साथ मिलने-जुलनेका ज्यादा अभ्यास दिखाई नहीं दिया। अलबत्ता, जूठाभाईकी सरकारमें अच्छी प्रतिष्ठा थी। अरब तटस्थ थे। गोरे अफसर केवल फ्रेंच जानते थे। अंग्रेजी नहींके बराबर जानते थे और इस बारेमें मनमें डर रखते थे कि विदेशसे आये हुए ये प्रतिष्ठित अतिथि हमारे विषयमें क्या लिखेंगे?

रातको पाठशालामें एक सभा हुई। उसमें बहुतसे मुसलमान आये थे। बहनें भी बहुत आयी थीं। मैंने इस बारेमें विस्तारपूर्वक कहा कि हम सब एशियाई हैं और हमें मिलजुल कर एक होना सीखना चाहिए। प्रश्नोत्तरके अंतमें मुसलमानभाई खुश हुए दिखाई दिये।

किसेनीसे उसुम्बरा तक हमारे लोगोंको एक ही सवाल चिंतित करता जान पड़ा। यहांकी सरकार हमारे लोगोंको यहांसे निकाल देना चाहती है। जिसे फ्रेंच आती हो उसीको स्थायी निवासका प्रमाण-पत्र मिल सकता है, वगैरा अनेक कष्ट हैं। कहीं-कहीं हमारे लोगोंको एक जगह लम्बे समय तक नहीं रहने देते। यहांसे उठो और दूसरी जगह जा कर बसो, इस तरहके हुक्म निकलते रहते हैं। इसलिए लोगोंकी अच्छे मकान बनानेकी हिम्मत नहीं होती।

अंग्रेज लोग तरह-तरहके विचित्र कानून बना कर हमारे लोगोंको खूब तंग करते हैं। यहांकी सरकार तो यह कानूनी बुद्धि काममें नहीं लेती, परन्तु अधिकारी

मनमाने हुक्म जारी करके उनका अमल करते हैं। शराबके प्रति अफसरोंकी कमजोरी और रिश्वतकी सम्भावना वगैरा बहुतसी बातें सुननेमें आती थीं। हममें से कुछ स्पष्टवक्ता लोग हमारे लोगोंके दोषोंकी खुल कर बातें करते थे। सचमुच सब तरहके लोगोंसे मिल कर दुनिया बनती है। यहांके प्रान्तके गवर्नरने जब देखा कि रुआन्डा-उरुन्डीके बारेमें मुझे आवश्यक जानकारी मिल नही रही है, तो उन्होंने बड़ी आस्थाके साथ श्री जूठाभाईकी मारफत मुझे एक खास पुस्तक 'मोनोग्राफी एग्रीकोल द्यु रुआन्डा-उरुन्डी' भेजी। मुझे फ्रेंच आती होती तो मैं उसका बहुत उपयोग करता। उसमे नकशे, चित्र और आंकड़े भरपूर हैं। मैंने देखा कि इस इलाकेमें बड़े-बड़े होटलोंमें पार्टियां देनेसे हमारे लोगोंकी प्रतिष्ठा बढ़ती है। दक्षिण अफीकामें गांधीजीने माननीय गोखलेके लिए जिन अनेक भोजोंका प्रबंध किया था, उनका महत्त्व मैं अफ्रीका आनेके बाद ही समझ सका।

हमने १३ जुलाईको प्रातःकाल उसुम्बरा छोड़ा और एक नया ही रास्ता ले कर अस्ट्रीडा, कबगये और रुहेंगेरी आदि सुन्दरसे-सुन्दर प्रदेशोंमें हो कर वापस कबाले पहुंचे। उसके आनन्दका यहां उल्लेख किये बगैर इस यात्रासे बिदा नही ली जा सकती।

सवेरे जल्दी साढ़े छह बजे हम रवाना हुए। यहांकी शोभा कुछ अलौकिक ही थी। सरकारी विभागने यहांके रास्तोंकी तरफ खास ध्यान दिया है। पहाड़की पगडंडीसे जब रास्ता जाता है, तब एक तरफ पहाड़ और दूसरी ओर खन्दक, ऐसी हालतमें गाड़ियों और मोटरोंके खन्दकमें गिर जानेका भय रहता है। बरसात होने पर रास्तेकी मिट्टी बह जानेसे रास्तेमें बड़ा खड्डा पड़ जाता है। यह जोखिम सबसे बड़ी है। खन्दककी तरफ ऊंची दीवारें बना देनेका रिवाज होता है, परन्तु सैकड़ों मील तक दीवार बनानेका खर्च कैसे किया जा सकता है? बीच-बीचमें पत्थर जमा देनेसे भी सुरक्षितता नही रहती, और अगर दीवारके नीचेकी मिट्टी बह जाय तो दीवारकी सलामती भी नहीं रहती। इन सब मुश्किलोंका एक अच्छा उपाय ढूंढ निकाला गया है। सीध्र ऊंचे उग सकनेवाले चीड़ जैसे पेड़ खन्दककी ओर पास-पास लगा दिये जायं, तो शोभा भी बढ़े और जड़ें मिट्टीको इस तरह पकड़ लें कि रास्ता सदाके लिए सुरक्षित हो जाय।

रास्ता मोड़ खाते-खाते इतना ऊंचा चढ़ गया कि बड़े-बड़े पहाड़ छोटी पहाड़ियोंकी तरह घाटियोंमें छिपते हुए दिखाई देने लगे। इधर भी पहाड़ोंके उतार पर खेती होती है। घाटियोंमें बहनेवाले पानीका भी ये लोग अधिकसे अधिक उपयोग करते हैं।

यहांके सफरमें एक बात देख कर हमें ग्लानि हुई। रास्ते परसे कोई भी अफ्रीकी जाता होगा, तो मोटरमें बैठे हुए लोगोंको सलाम जरूर करेगा। हमारे जैसे मुसाफिर, सज्जनता हो तो, सलामके बदलेमें सलाम करेंगे। कुछ लोग अफ्रीकियोंके

प्रति तुच्छताकी नजर डालकर आगे चले जाते हैं। इस रिवाजकी तहमें जो इतिहास है वह समझने लायक है।

पश्चिमके लोग व्यक्तिके अधिकारों और उसकी स्वतंत्रताका ज्यादा खयाल रखते है। हमारे लोग नम्रतामे ही संस्कारिताकी निशानी देखते हैं। इसलिए कोई अनजान आदमी सामने दिखाई दे, तो उसे भगवानकी तरफसे आया हुआ एक फरिश्ता समझकर उसे नमस्कार करेंगे। और अगर कोई घरमें अतिथिके रूपमे आ जाय, तो इस वृत्तिसे कि उसने हम पर अनुग्रह किया है धन्यता दिखा कर उसकी सेवा करेंगे। इसी किस्मकी भलमनसाहत इन अफ्रीकी लोगोंमें भी होगी। अंग्रेज लोग जहां जाते हैं वहां अपनी धाक जमानेकी कोशिश करते है। कोई इन्हें 'साहब' न कहे तो उसे मारते हैं। जो सलाम न करे उसे 'फसादी' ठहरा देते हैं। धाक जमाने के लिए लोगोको पेटके बल भी चलाते हैं। जो सलाम पहले संस्कारिता की निशानी थी, वह अब गुलामीका चिह्न बन गई। आगे चलकर जब स्वाभिमानकी भावना बढ़ी, तब लोगोंने इस प्रकार सलाम करना छोड़ दिया।

हमारे देशमें कुछ सज्जन अंग्रेज लोगोंको यह सलामकी प्रथा अच्छी नहीं लगती थी। कर्नाटकमें एक कलेक्टर अपने बगलेसे रोज शामको पैदल घूमने निकलता और अपने मनचाहे रास्ते पर घूम आता। थोड़े दिन बाद उसने वह रास्ता छोड़ दिया और एक कम सुंदर रास्तेसे जाने लगा। उसके एक अंग्रेज दोस्तने रास्ता बदलनेका कारण पूछा। उसने कहा, "पुराने रास्तेमे जाने पर बीचमे फलां रायबहादुरका घर आता है। मेरा समय जानकर वह रोज बिलानागा उसी समय रास्ते पर आ कर खड़ा रहता है। मुझे देखते ही जमीन तक झुककर सलाम करता है और खुद धन्य हुआ हो ऐसा मुह बना कर वापस जाता है। रोजकी इस कवायदमे मैं तंग आ गया हूं। इसलिए मैंने रास्ता ही छोड़ दिया!"

दोपहर तक हम आस्ट्रीडा पहुंचे। वहां खाया और आगे न्यांजा होकर कबगये तक पहुंचे। यहां मिशनरी लोगोंका एक बड़ा केन्द्र है। कबगयेसे हमने बड़ा रास्ता दाहिनी तरफ छोड़ दिया और कच्चे रास्तेसे रुहेंगेरीकी तरफ मुड़े। यह रास्ता जितना रमणीय था उतना ही जोखिमभरा भी था।

रुहेंगेरीमे पोपटभाई नामके एक दुकानदार रहते थे। उनके यहां हमने थोड़ा आराम किया, खाया और आगे चले। इन भाईके यहां कई साहित्यिक किताबें देखी। उन्होंने बहुतसी पढ़ी भी थीं। उनसे मालूम हुआ कि उन्होने अनेक अफ्रीकी लोगोंको अपनी दुकान पर बैठा कर शिक्षा दी है और विश्वास जम जाने पर अपनी दुकानकी शाखाएं खोल कर वहा उनको बैठा दिया है। कुछ वेतन और कुछ प्रतिशत मुनाफा, इस शर्त पर ये शाखा-दुकानें अच्छी चलती है।

यहांसे थोड़ी दूर पर हम सोडा वाटरका झरना देखने गये। टूटे हुए हौज जैसा यह स्थान था। उबलते हुए पानीमेंसे बुदबुदे उठते हों ऐसा दीखता पानी बिलकुल

ठंडा था। हमने प्याले भर-भरकर पानी पिया। मुझे डर था कि उस पानीमें दूसरे क्षार होंगे, जिससे स्वाद विचित्र लगेगा। पर थोड़ा पीते ही मुंहसे खुशीका यह उद्गार निकला कि इससे अच्छा सोडा वाटर कही पीया हो, ऐसा याद नहीं पड़ता।

यहांसे आगे जाने पर तीन बड़े सुप्त ज्वालामुखी अपने रुपहले शिखर ऊंचे करके श्रेणीवद्ध खड़े दिखाई दिये। एकका नाम मुहावुरा, दूसरेका सेबिनियो और तीसरेका गहिंगा। शाम हुई अंधेरा होने लगा। ये तीनों ज्वालामुखी भयानक राक्षस जैसे दिखाई देने लगे। हमें एककी तलहटीमें हो कर ही जाना था। ठीक याद नही है, परन्तु वह मुहावुरा होगा। उसे बायी तरफ छोड़ कर हम आगे बढ़े। अब तो मोटरकी लाइट दिखाती थी उतना ही रास्ता दिखाई देता था। सारा प्रदेश इतना भयानक था कि डाका डालनेवाले डाकू भी यहां आना पसंद नही करेंगे।

अंतमें हमने कस्टमकी सीमा पार की। उस भाईका नक्शा अनेक धन्यवादके के साथ वापस दिया। हमारी घड़ियोंको चाबुक लगा कर एक घण्टे आगे दौड़ाया और मोटरोंको दाहिनी तरफ रखनेका नियम भुला कर बायीं तरफ किया और जैसे तैसे बाकीका रास्ता काट कर साढ़े नौ या दस बजे कबालेके होटलमें पहुंच गये। वहांकी भली बाईने हमारे लिए अच्छा खाना बना कर रखा था। बिस्तर भी तैयार कर रखे थे। इतने लम्बे सफरके अंतमें इतनी अच्छी सुविधाएं मिलनेके बाद नीदमें स्वप्न भी आनेकी हिम्मत कैसे करते? मुर्दे भी हमसे ईर्ष्या करें, इतनी गहरी नीदमें हम सोये।

३५. कबालेसे कंपाला

जिस रास्तेमें गये हों उसी रास्तेसे वापस लौटने पर शोभा कम नही होती। हरएक दृश्य उलटी दिशामें देखनेको मिलता है, इसलिए नयेकी तरह ही लगता है। आगे क्या-क्या आनेवाला है, इसका खयाल रहनेके कारण नवीनता चाहे न हो, परन्तु उत्सुकता मरी हुई नही होती। इसलिए रसकी दृष्टिसे यह प्रवास जरा भी घटिया नही होता। फिर भी मन तो कहता ही रहता है कि 'यह सब तो एक बार हो चुका है।' और इसमें ध्यानकी कमानी ढीली हो ही जाती है।

रुआण्डा-उरुण्डीवाली इस अंतिम यात्रामें श्रीमती यमुनाताई शहाणे हमारे साथ थी। इन्हें तरह-तरहके सवाल छेड़नेमें मजा आता था। महाराष्ट्रकी सामाजिक परिस्थिति संबंधी श्री मोहनरावके और मेरे विचार मिलते रहे हैं। इसलिए हम थोड़ेसे अनुभवोंका आदान-प्रदान करनेके सिवा अधिक चर्चा नहीं कर सकते। यमुनाताई ठहरीं विद्वान पतिकी बहुश्रुत पत्नी। कई लोगोंकी कई रायें पेश करके

उनके सम्बन्धमें जानकारी प्राप्त करने और चर्चा द्वारा नई-नई जीवन-दृष्टि पैदा करनेका उन्हें बड़ा शौक है। इसलिए चर्चा खूब चलती। ब्राह्मण जातिके गुण-दोष, उसका हुआ पतन और इस जातिके उद्धारकी योजनाएं आदि बहुतसे प्रश्नोंकी चर्चा होती। रास्ता काटनेके लिए सबसे उपयोगी इलाज चर्चा ही है। ग्यारह बजे कब्राले छोड़ कर दो बजे हम म्बरारा पहुंचे। वहां हमारे मेजबान श्री छगनभाई ठक्करने हमसे ठहर जानेके लिए बहुत अनुरोध किया, परन्तु हमने जानेका ही आग्रह रखा। इतनेमें हमारे साथ सारी यात्रा वफादारीके साथ करनेवाली मोटरने ऐलान कर दिया कि, "मेरे हाथ-पैर अब नहीं चलते।" हालत ऐसी हो गई जैसे सारी लड़ाई लड़ चुकनेके बाद आखिरी दिन सेनापतिका घोड़ा घायल हो जाय।

म्बरारा ऐसा कोई बड़ा शहर नहीं है कि जहां मोटरको कारखानेमें भेज कर तुरन्त ठीक करा लिया जाय। पहियेके पासका एक क्लिप ही टूट गया था। स्थानीय कारीगरने कहा कि मोटर ढ़ाई घण्टेमें तैयार हो जायगी। ढ़ाई घण्टेके अन्तमें देखा कि उसने हमारा काम हाथमें ही नहीं लिया था! जिसका आरम्भ ही नहीं हुआ उसका अन्त कब होगा, इस प्रश्नका जवाब कोई वेदान्ती भी नहीं दे सकता। इस सम्बन्धमें तरह-तरहकी विडम्बनाओंका वर्णन करनेसे क्या लाभ? श्री कमलनयनका रसोइया गोपी बीमार पड़ गया। उसे चक्कर आये और कुछ न सूझा तो किसीने उसे ब्रांडी पिला दी। उसे पीछे छोड़ कर कमलनयन आगे जानेको तैयार होते, परन्तु शहाणेने ऐसा नहीं करने दिया। बहुतसी चर्चाके अन्तमें हमने तय किया कि जो एक मोटर अब भी सेवा करनेको तैयार है उसे ले कर कुछ लोग आगे जायं। कमलनयन, यमुनाताई, शरद पंड्या और गोपी, इन चार आदमियोंको साथ लेकर शाह बन्धु अपनी मोटरसे रवाना हुए और हम अपनी बीमार मोटरके अच्छी हो जानेकी राह देखते रहे।

फिर तो हमने स्थानीय पाठशालाके व्यवस्थापकोंमें मतभेद कैसे शुरू हुआ, उससे दो अलग-अलग पाठशालाएं कैसे बनी आदि सब बातें विस्तारपूर्वक सुनी। लिंडीसे हम ऐसे किस्से सुनते आ रहे थे। सवाल एक ही हो तो स्थानीय तफसीलोंमें नवीनता होती ही है। अफ्रीकामे इस्लामका स्थान क्या है, इस बारेमें मैंने लम्बा विवेचन किया। फिर भी मोटर अच्छी होती ही नहीं थी। सवेरे नाश्ता करके जानेको तैयार होनेवाले हम लोग ज्यों-त्यों करके रातके साढ़े आठ बजे चले। परंतु वह भी अपनी मोटरमें नहीं। हमारे साथ दिनभर भागदौड़ करके थके हुए छगनभाईकी मोटरमे। वह अगर ठीक होती तो हम कभीके म्बरारासे निकल गये होते। हमारा यह आग्रह देखकर कि किसी भी जोखिम पर रात-बसेरा टालना ही चाहिये, छगनभाईने अपनी मोटर तैयार की। उसे तैयार होनेमे भी देर तो लगी ही। म्बरारासे बाहर निकले। दायीं तरफ पहाड़में भारी आग लगी हुई थी। उसका प्रकाश हमारे रास्ते तक आता था। हमारी मोटर बड़ी बहादुरीसे तीस मील तक

चली और फिर रुक गई। उसे खयाल हुआ होगा कि एक बीमार मेहमान मोटरको घरमें छोड़ कर मेरा इस तरह जाना अनुचित है।

उसका पंचर ठीक करनेके लिए हमने जैक ढूंढ़ा। हमारे परोपकारी शोफरने बीमार मेहमान मोटरकी सेवामें उसे पीछे रह जाने दिया था! अब क्या हो? सारी रात जंगलमें बितानेके सिवा कोई चारा नहीं था। किसीने कहा कि यहांके जंगलोंमें शेर तो होते ही हैं। रातको एकाधसे भेंट हो जाय तो आश्चर्य नहीं। शेरकी मुलाकातके हम आदी हो गये थे। मोटरके खिड़की दरवाजे बन्द करके हम बैठ सकते थे। परन्तु सारी रात मोटरमें बैठे-बैठे हाथ-पैर रह जायें, इसका क्या किया जाय?

बहुत इन्तजार करनेके बाद सामनेकी तरफसे एक मोटर आई। उन लोगोंको एक खास वक्त तक कबाले पहुंचना था। हमारी प्रार्थना वे स्वीकार नहीं कर सकते थे। हमने कहा, 'अच्छा तो जाइये। जो कुछ होना होगा हो जायगा।' इस अंतिम वचनका उन लोगों पर असर पड़ा। इस बातका भी खयाल आया कि हम कौन हैं। हमारी मोटरका लगड़ाता हुआ पैर जैककी मददसे उठाकर उसकी जगह दूसरा पहिया बिठाया। परन्तु हमारा शोफर कहने लगा, 'अभी ६० मीलका सफर है। मेरी हिम्मत नहीं है कि आपको सही-सलामत आगे ले जा सकूं।' हमारे सामने एक समस्या खड़ी हो गई। वापस लौटें तो मोटर अच्छी तरह चलेगी ही, इसका क्या भरोसा? वह कोई जानवर नहीं थी कि घरका रास्ता देख कर उमंगमें आ जाय। फिर भी हमने हिसाब लगाया कि ६० मीलकी जोखिमसे ३० मीलका जोखिम कम है। हम लौट गये। इतनेमें हमारी अपनी मोटर भी अच्छी हो कर आ पहुंची। अब मसाका जानेमें आपत्ति नहीं थी। परन्तु सभी सारथी हिम्मत हार गये थे। हमने दूसरा ही हिसाब लगाया। वापस जाते हैं तो वहांके गृहपतिको ११ बजेके पहले ही जगाना पड़ेगा। मसाका जाते हैं तो पिछली रात दो, ढाई या तीन बजे वहांके गृहपतिको अचानक जगाना पड़ेगा। इस हिसाबसे वापस जानेमें ही कम हिंसा थी। हम वापस लौट गये। जा कर सोनेमें बारह बज गये। यह सारा दिन हमें बड़ा महंगा पड़ा।

दूसरे दिन मसाका जानेके लिए हमें भाई हसनअली और भाई रजबअलीका साथ मिल गया, क्योंकि हम उन्हींकी मोटरमें जा सके। इनमेंसे हसनअलीभाई बम्बईके पास घोलवड़-बोर्डीके स्कूलमें पढ़े हुए थे। यह साबित करनेके लिए वे राष्ट्रीय वृत्तिवाले हैं, उन्होंने जोर दे कर कहा कि, "मैं बोर्डी स्कूलका विद्यार्थी हूं।" उनसे म्वराारा स्कूलका विभाजन कैसे हुआ, इसका दूसरा पक्ष सुना।

मसाका पहुंचते ही हमने कंपाला फोन करनेका प्रयत्न किया, परन्तु उसमें सफल न हुए। इतनेमें वहांसे कमलनयनका फोन आया कि हम मरच्युसन फॉल्स देखने जा रहे हैं। ज्यादा लोगोंके लिए सुविधा नहीं हो सकती। आपके लिए

मोटर भेज रहे हैं।

अब इस मोटरके लिए हमें ठहरना ही पड़ा। हमने विचार किया, "बैठेसे बेगार भली! मसाकाके लोगोंकी हमेशाकी शिकायत है कि जितने नेता, मेहमान और साहसी यात्री इधर आते हैं, वे सब मसाका भोजनके लिए ही ठहरते हैं। जवानका दूसरा उपयोग करते ही नहीं हैं।" हमने भी जाते हुए ऐसा ही किया था कमलनयनकी मोटर म्बारारासे जब हमने आगे भेजी, तब आशा रखी थी कि कमलनयन मसाकामें डेढ़ दो घण्टेका भाषण दे कर लोगोंको सन्तुष्ट करेंगे। परंतु उन्होंने हमारा हवाला दे कर कंपालाका रास्ता पकड़ लिया था। इसलिए मसाकाका उलाहना दूर करनेका फर्ज मेरे सिर आ पड़ा। गांवके जमा होनेमें देर नहीं लगी। श्री अमृतलालभाई असामान्य होशियार आदमी हैं। केवल मसाकाके ही नहीं परन्तु आसपासके सारे इलाकेके लोग उनकी रायको आदरपूर्वक मानते हैं। ३ बजे सिनेमाहॉलमें सभा हुई। "हम सब एशियाई हैं। हममें एकता होनी चाहिए। गांधी-शिक्षा द्वारा हमें अफ्रीकी लोगोंकी सेवा करनी चाहिये।" इत्यादि बातें मैंने विस्तारसे समझाईं। उन लोगोंको मेरा भाषण पसन्द आया। मुसलमान अधिक प्रसन्न हुए। उनमें एक अलीभक्त कोई इस्माइली भाई थे। उन्होंने अली-माहात्म्यके बारेमें थोड़ासा भाषण दिया।

खीमजीभाई और व्रजलालभाईके भाई हीराचन्द हमारे लिए कंपालासे मोटर ले आये। कल मोटरकी दुर्घटनाके हम इतने आदी हो गये थे कि इस नई मोटरमें कंपाला तककी ८२ मीलकी यात्रा बेखटके पूरी की, इसका हमें आश्चर्य हुआ। यह कहें कि अपेक्षा-भंग हुआ तो भी हमें हर्ज नहीं। कंपाला जा कर छोटाभाई पटेलके यहां भोजन किया और रातको नानजीभाईके यहां आराम किया।

लंबी यात्रा पूरी करनेका संतोष लेकर सोना था, परन्तु वह हमारे भाग्यमें नहीं था। यह समाचार मिलनेसे दिल गम्भीर हो गया कि श्री आर०एस० शाहकी बहनकी छोटी लड़कीने कुनैनकी बहुत-सी गोलियां खा ली और डॉक्टरी इलाज होनेसे पहले ही उसका देहान्त हो गया। वर्धा-सेवाग्राममें हमारे आर्यनायकम्के लड़केका ऐसा ही किस्सा याद आया और मन उस तरफ दौड़ गया। और इस विचारसे कि मरनेके लिए कैसे सादे कारण भी काफी होते हैं और गफलतें कई बार कितनी महंगी पड़ती हैं, लम्बे समय तक नींद न आई।

रविवारका दिन पुराना कर्जा चुकाने और पुराने संकल्प पूरे करनेके लिए बिताना था। छोटाभाई और छोटूभाई दोनोंको साथ लेकर हम उस मस्जिदको देख आये। वह मस्जिद दूरसे ही बड़ी अच्छी लगती थी। ऊपर चढ़नेके बाद आसपासका प्रदेश दूर-दूर तक देखनेको भी मिला। वह मस्जिद दिखानेके लिए मेजर दीन हमारे साथ आनेवाले थे, परंतु उनकी तंदुरुस्ती अच्छी न होनेसे हम ही उनसे मिलने गये। उनकी सज्जनता, संस्कारिता और मिलनसारिता तीनों मामूलीसे ज्यादा थीं।

दोपहरको जॉर्ज सली नामक एक अफ्रीकी युवक हमसे मिलने आये। उनके साथ उनके बड़े भाई और पिता भी थे। भारत सरकारकी तरफसे उन्हें छात्रवृत्ति मिली है। दक्षिण अफ्रीकाकी अपनी पत्नीको भी हिन्दुस्तान ले जानेका उनका विचार था।

रुआण्डा-उरुण्डीकी सारी यात्रामें अपनी मोटर ले कर सेवाभावसे हमारे साथ घूमनेवाले शाहबन्धुओंके यहां हम भोजन करने गये। घरके लोगोंसे मिल कर हमें बड़ा आनन्द हुआ। यह परिवार लम्बा-चौड़ा है। सब मिला कर बावनकी संख्या है। इतने लोग मिल-जुल कर रहते हैं, इसकी तहमें कितनी अधिक संस्कारिता और कुशलता होनी चाहिए! श्री खीमजीभाईने गैंडेका एक बड़ा सींग मुझे भेंट किया। मैं उसे अपने साथ न ला सका। बादमें उसके लानेके लिए सारी व्यवस्था करनी पड़ी थी।

कंपालाके महाराष्ट्र मंडलसे मुझे पहले ही मिल लेना चाहिये थे। परन्तु यह गफलतमें रह गया था। महाराष्ट्र मंडलका कार्यक्रम बहुत ही मजेदार था। संगीत तो उसमें था ही। श्री गोंधलेकरसे हमने बेल्जियमके बारेमें कुछ जानकारी प्राप्त की। मेरे भाषणके बाद थोड़ेसे प्रश्नोत्तर हुए। उसमें हिन्दुस्तानके ही सवाल पूछे गये थे। "भाषावार प्रान्त-रचना होगी तब बम्बईका क्या होगा?" यह एक सवाल था। और दूसरा यह कि "हिन्दुस्तानके राजनीतिक आन्दोलनमें महाराष्ट्रका स्थान कहां है?" दोनों सवालोंकी तहमें शुद्ध जिज्ञासा और हितेच्छा थी, इसलिए मैंने भी विस्तारसे जवाब दे कर उन लोगोंकी चिन्ता दूर कर दी।

कंपालामें जिन एक भाईसे मिलना रह गया था, वे थे श्री धीरुभाई मारफतिया। वे भारतसे हालमें ही लौटे थे। अपनी लड़की आशाकी शिक्षाके लिए काफी परिश्रम कर रहे हैं। यहांके सार्वजनिक जीवनमें भी उनका हाथ है। वे हमारे साथ लुगासी तक आये। रास्तेमें गांधी-स्मारक-कॉलिजके बारेमें हमने बहुत-सी चर्चा की। श्री धीरुभाई मारफतिया चाहें तो कॉलेजकी योजनामें बड़े मददगार हो सकते हैं।

३६. मांग कर ली हुई मीठी कैद

दो मासकी अद्भुत यात्रा पूरी करके हमने इतने अधिक संस्कार जुटा लिये थे कि उनका संग्रह न करें तो वे बादलोंकी तरह उड़ जायेंगे, यह डर मनमें पैठ गया। रुआण्डा-उरुण्डी जानेसे पहले ही मैंने छोटूभाईसे कहा था कि अफ्रीका छोड़नेसे पहले ही यात्राका वर्णन नहीं लिख डालूंगा, तो हिन्दुस्तानमें जानेके बाद लिखना नहीं होगा। वहां जाते ही वहांके कामोंसे और चिन्ताओंसे घिर जाऊंगा। मुझे किसी

ऐसे एकान्त स्थानमें बन्द रहने दीजिए, जहां आरामसे कुछ लिख सकूं। छोटूभाईने यह जिम्मेदारी सिर पर ले ली और उन्होंने तय किया कि मैं श्री नानजी सेठके लुगासीके भवनमें आठ दिन बिताऊं। इतनेमें श्री अप्पासाहबने एतराज किया : "यह न भूल जाइये कि नैरोबीमें कमिश्नरका दफ्तर नये बने हुये मकानमें जानेवाला है, उसका प्रवेश-समारोह आपके हाथों होगा। हम आपको नैरोबीमें भी शांति दे सकेंगे।" सदाकी भांति इन दोनों मेजबानोंने 'त्वयार्धम् मयार्धम्' का सिद्धान्त लगा कर समझौता कर लिया। यह निश्चय हुआ कि चार दिन लुगासी रह कर हम नैरोबी जायं। इस निर्णयके अनुसार हम कंपालासे लुगासी पहुंचे। कमलनयनने मरच्युसनसे लौट कर नैरोबीका रास्ता लिया। चि० सरोजिनी, मैं, शरद पंड्या और हमारा हिन्दी करमुद्रणयंत्र—इतने लुगासीमें रह गये। वहां जाते ही श्री आनंदजीभाईने हम पर अधिकार कर लिया। हमारे रहने-सहनेकी सब सुविधा कर दी और हमें किसी भी समय कोई मिलनेको न आये, इसकी चौकीदारी अपने हाथमें ले ली। फिर भी कंपालासे या और कहींसे कोई-न-कोई मिलने आते ही थे। उनके लिए आनन्दजीभाईने खानेका समय खुला रख दिया। हम इतनी 'कैद' में रहे, इसलिए काफी लिख सके।

लुगासी स्थान ही ऐसा है कि एक बार देखनेके बाद मन पर उसका चित्र जम ही जाता है। ककीरा और लुगासीकी सुन्दर जोडी है। मैंने यह नहीं पूछा कि इन दोनोंमें किसने किसका अनुकरण किया है। लुगासीकी पहाड़ी पर दो मकान हैं। एक पुराना, जो पुराना भी है और सादी सुविधाओंवाला है। दूसरा नया ऐश-आरामवाला है। पहला मकान पुरुषार्थी मनुष्यकी सादी अभिरुचिवाला है। दूसरा मकान धनी पिताके भाग्यशाली लड़कोंके रहने लायक है। हमने छोटे (अलबत्ता, कदमें छोटे) मकानमें रह कर एकाग्रतासे लिखना पसन्द किया। रोज सुबह और शाम हम आसपासके दृश्यका—सूर्योदय और सूर्यास्तका सौंदर्य देख कर और दोनों संध्याओंके सूर्यनारायणका उपस्थान करते हुए पक्षियोंका गान सुन कर हृदयको उसकी खुराक देते और बाकीका सारा समय लिखनेमें बिताते।

पहला दिन एक दो पत्र लिखनेमें, वर्णनके अध्याय बनानेमें और प्रस्तावना लिखनेमें गये। रातको खानेके बाद शिक्षकों-विद्यार्थियोंके साथ थोड़ीसी बातचीत हुई। 'गुजराती पाठशालामें अफ्रीकी विद्यार्थी आपकी भाषा सीखने आयें, तो आप उन्हें लेनेको तैयार होंगे या नही ?' मैंने यह सवाल पूछा। मुझे इस बारेमें विद्यार्थियोंकी राय जाननी थी। शिक्षकोंसे यह सवाल पूछनेका कोई अर्थ न था, क्योंकि इस कारखानेकी पाठशालाकी सारी व्यवस्था मैनेजरके ही हाथमें होती है। भाई जाजल यहाके जनरल मैनेजर है। उन्होंने परिस्थितिके सम्बन्धमें बड़ी छानबीन की। मुझे जो कुछ कहना था सो सब मैने चर्चा द्वारा कह दिया।

श्री छोटाभाई कंपालासे तात्याका एक पत्र लेकर आये। उन्हें यह भी जानना

था कि हम नैरोबी कब पहुंचेंगे और उनका तैयार किया हुआ आगेका कार्यक्रम हमें मंजूर है या नहीं। अपने स्वभावके अनुसार मैंने उनका कार्यक्रम मंजूर कर लिया, क्योंकि कामकी दृष्टिसे वह ठीक था। इसका एक परिणाम यह हुआ कि मुझे मरच्युसन फॉल्स देखने जानेका मौका छोड़ना पड़ा और विक्टोरिया सरोवरके किनारेका मशहूर बन्दरगाह किसूमू देखनेकी इच्छा भी दबानी पड़ी।

श्री नानजीभाईने अपने कारखानेमें जगह-जगहसे लोगोंको ला कर बसाया है। इनमेंसे एक महाराष्ट्री भाई श्री भोंसे हैं। ये असलमें फल्टन और सताराकी तरफके हैं। शक्करके मामलेमें निष्णात हैं। यहां उन्होंने तीन साल तक काम किया है। लड़का घरका काम सभालने लायक हो गया है, इसलिए ये निवृत्त होकर गुजारेके लायक ले कर राष्ट्रसेवा करना चाहते हैं। उनकी मैंने यह खासियत देखी कि सिद्धान्त या व्यक्तिगत संबंध कायम रखनेमें व्यावहारिक नुकसान हो जाय, तो उन्हें इसका जरा भी पछतावा नहीं होगा। उनकी मातृभक्ति देख कर मुझे उनके प्रति विशेष आकर्षण हुआ।

उसी रात कमलनयन और शहाणे दम्पति मरच्युसन फॉल्सकी यात्रा पूरी करके मोटरके रास्ते नैरोबी जानेके लिए इधर आये। रातको लुगासी आनेके बाद कच्चे रास्ते पर कीचड़में फंस कर खूब परेशान हुये। दूसरे दिन सवेरे इसीकी बातें मजाकका विषय बन गयीं।

तीसरे दिन किसूमूसे वहांके लोगोंका लम्बा तार आया कि 'हमारे यहा जरूर आइये।' मसाकाका बदला चुकानेका निश्चय करके मैंने यह काम कमलनयनको सौंप दिया और किसूमूके लोगोंको एक मीठा पत्र लिख कर माफी मांग ली। कमलनयन व्याख्यानमें हारनेवाले हैं ही नहीं और विनोदके फव्वारे तो हमेशा उनके पास मौजूद ही रहते हैं। उन्होंने जाते ही कह दिया कि, "महादेव खुद न आ सके, इसलिए उनका नंदी आया है।" अपना ही मजाक उड़ा कर उन्होंने जो वातावरण पैदा कर दिया, उससे वे लोगोंमें मान्य बन गये। एक बार अपना ही मजाक उड़ा लिया कि यह औजार औरों पर आजमानेकी तो छूट मिल ही जाती है!

कमलनयनके साथ लुगासीमें ही हमने तय कर लिया कि मुझे भी मिस्र न जाते हुये अदीस-अबाबा तक जाकर जीबूटी और अदनके रास्ते हिन्दुस्तान लौट जाना चाहिये।

मेरा मिस्र जानेका इरादा छोड़ देने पर बहुतोंको आश्चर्य हुआ। खर्चकी कठिनाई भी नहीं थी। वह नानजी सेठकी तरफसे आसानीसे मिल जाता। परन्तु इतने दिन साथ सफर करके आखिरी वक्त कमलनयनको छोड़ कर आगे चले जाना मुझे पसन्द नहीं आया। और इससे भी अधिक या मुख्य विचार यह था कि मिस्रकी संस्कृति दूसरी है। वहांके सवाल अलग हैं। वहांके पिरामिड देखेंगे, काहिराका अद्भुत संग्रहालय देखेंगे और अल-अजहरकी युनिवर्सिटी देखेंगे, तो इतने

अधिक भिन्न और विविध संस्कार मन पर पड़ेंगे कि पूर्व अफ्रीकाके संस्कार दब जायंगे। मुझे ऐसा नहीं होने देना था।

हिन्दुस्तानका पूर्व अफ्रीकाके साथ जिस किस्मका सम्बन्ध है वैसा मिस्रके साथ नहीं। पूर्व अफ्रीकामें सेवाकी पुकार थी। मिस्रमें संस्कार-समृद्धि और अद्भुत परम्पराओंका आकर्षण था। नील नदीका जीवन-चरित्र-चित्रण पढ़े विना, मिस्रकी मिश्रित संस्कृतिके बारेमें ज्ञान ताजा किये बिना और मिस्रमें नैपोलियनसे लेकर पश्चिमके अनेक लोगोंने जो पुरुषार्थ फैलाया है उसकी जानकारी प्राप्त किये विना जाना मुझे जरा जल्दबाजीका कदम मालूम हुआ। ईसाई धर्मके प्रारंभके दिनोंमें मिस्रने इस धर्मको आश्रय दिया, उसका इतिहास भी फिरसे याद करने लायक था ही। मैं नहीं जानता था कि यह सब कर सकूंगा और मिस्र कब जाऊंगा। और जब जाऊंगा तब यह सारी तैयारी करनेका वक्त मिलेगा या नहीं, इस बारेमें भी मुझे शंका है। हमारे भाग्यमें जितना होता है उतना ही हमसे बनता है और उसी मात्रा-में हमें लाभ मिलता है। मेरा यह विश्वास दैववादसे उत्पन्न नहीं हुआ, परन्तु जीवन परिचयसे उत्पन्न हुआ है—जिसे लोग कर्मका सिद्धान्त कहते है।

उसी दिन एक सज्जन और सेवापरायण वृद्ध व्यक्तिका परिचय हुआ। डॉक्टर हण्टर अपनी युवावस्थामें कर्णाटकमें हमारे बेलगांवकी तरफ रह चुके थे। उनके पिता भी वहीं थे। बेलगामके पास जिस हिन्डलगा जेलमें मैं रहा था, उसीके गांव-मे उन्होंने एक कुष्ठाश्रम चलाया था। हमारे बेलगावकी तरफके डॉक्टर हण्टर यहां अफ्रीका कैसे आये और कब आये, यह मैंने उनसे नहीं पूछा। उन्होंने कहा हो तो याद नहीं। आज उनकी उम्र ७२ बरसकी है। थोड़े ही वर्ष हुए उनकी पत्नी और उनका लड़का पूर्व अफ्रीकामे ही गुजर गये। अब वे अकेले ही हैं। नानजी सेठ उन्हें खर्चके लायक देते हैं, परन्तु वे यह रकम पेंशनके रूपमें ले कर लुगासीके कारखानेमें मजदूरोंकी स्वास्थ्य-सेवा करके सन्तोष मानते हैं। जब मैंने यह कहा कि 'इतनी उम्रमें आप काम करते हैं यह आश्चर्यकारक है'', तो उस वृद्धने बिलकुल मुग्धभाव से कहा : "After all it is better to wear away than to rust away." (जंग लग जानेसे घिस जाना ज्यादा अच्छा है।)

ऐसे सत्पुरुषको श्री आनन्दजी मेरे पास ले आये, इसके लिए मैंने उन्हें धन्यवाद दिया। अफ्रीकासे स्वदेश लौट आनेके बाद खबर मिली कि वे डॉक्टर हण्टर जहां उनकी पत्नी और लड़का गया है वहीं पहुंच गये हैं। परन्तु कितनी सुगध अपन पीछे छोड़ गये !

सारे दिन लिखनेके बाद विनोदके रूपमें आनन्दजीभाईसे पूर्व अफ्रीकाके एमि-ग्रेशन कानूनकी बहुतसी पेचीदगियां जान ली। रातको लुगासीकी संस्थाकी तरफसे रिक्रिएशन क्लबमे थोड़ेसे प्रश्नोत्तर हुए।

अंतिम दिन कंपालासे श्री काकूभाई और रमाकान्त आये। उनके साथ अनेक

बातें हुईं। २१ जुलाईको हम लुगासी छोड़ कर कंपाला गये और एन्टेबे होकर ४ बजे वायुमार्गसे नैरोबी पहुंच गये।

परन्तु कंपाला हमें आसानीसे छोड़नेवाला नहीं था। खीमजीभाई कहने लगे कि "आप मेरे भाईके यहां भोजन कर चुके हैं। मेरा घर आपने कहां देखा है ?" इसलिए २१ तारीखको हमने उनके यहां नाश्ता किया। सर्विस स्टोर्समें जा कर कंपालावाले सब भाइयोंसे मिले। वे सब अब घरके लोगोंके जैसे हो गये थे। श्री शाह, काकूभाई, रामजीभाई लद्धा—सबने कंपालाकी यादगारके तौर पर कई फोटो दिये। रामजीभाई तो इतने प्रेमी थे कि ऐन्टेबे जा कर जब तक हमने विमानमें प्रवेश न किया, तब तक उन्होंने तरह-तरहके फोटो देना जारी ही रखा। कोई खास शब्द काममें लिये बिना आतिथ्य और स्नेह दिखानेकी उनकी कला सचमुच अनोखी है। उन्होंने हमें बिलकुल अपना ही बना लिया।

इन सब मित्रोंके साथ हम एन्टेबे जानेके लिए रवाना हुए। १९ मीलका रास्ता था। हमारा विमान ११ बजकर २० मिनट पर चला और १ बज कर १० मिनट पर नैरोबी पहुंचा। इस बार हमने विशाल विक्टोरिया सरोवरका अंतिम दर्शन किया उसके भीतर दिखाई देनेवाले एक-एक टापू पर कल्पनासे घर बना कर उनमें काफी रहे। सरोवर परसे दौड़ते हुए बादलोंके साथ बुजुर्ग बन कर बातें की, क्योंकि हम उनसे भी ऊंचाई पर थे। फिर केनियाकी असंख्य पहाड़िया देखी। गोरे और अफ्रीकी लोग उन पहाडियोंका किस प्रकार सेवन करते हैं, यह ध्यानपूर्वक देखा। आखिरी समय हमारा विमान खूब हिला। विमान जब इस तरह हिलता है, तब मुझे वह अधिक सजीव मालूम होता है। और उसके साथ मेरी कल्पना भी हिलने लगती है। नहीं तो सारा प्रवास अलोना ही होता है। मुसाफिरोंको सोने न देनेके लिए ही विमान थोड़ेसे ऊपर नीचे दचके लगाये तो इससे क्या होता है ?

नैरोबी उतरते ही तात्या इनामदार हमसे मिले और अपने घर ले गये।

३७. उत्कट और समस्त

पूर्व अफ्रीकाकी सारी यात्राके निचोड़के तौर पर नैरोबीमें हमने ११ दिन बिताये। इन दिनोंमें जितना सोचा उतना लिखा नहीं गया। परन्तु ग्यारह दिन अनुभव, संस्कार, जानकारी, परिचय और सेवाकी दृष्टिसे पूरी तरह पूर्ण थे। इन ग्यारह दिनोंमें यात्राके सभी तत्त्व एकत्र हो गये थे। जमीनकी रचनाका अध्ययन, प्रपात जैसे प्राकृतिक दृश्योंका दर्शन, वन्य श्वापदोंकी मुलाकात, गांवोंके दर्शन, अफ्रीकी नेताओंसे भेंट, देहातमें उनके बनाये हुए समृद्धिशाली घर, अफ्रीकी जनता, उसके नृत्य, उसकी महत्त्वाकांक्षाएं, हमारी संस्थाएं, हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न और राजनीतिक विप्टियां, हिन्दुस्तान जानेके बाद करनेके कामोंका अन्दाज, संस्कृतिके

अध्ययन और प्रचारके लिए शिक्षा-सम्बन्धी और धर्म-प्रचारके काम, महाराष्ट्रियों के मीठे परिचय, उनके पुरुषार्थका परिचय, मिशनरियोंकी चलाई हुई संस्थाएं और उनकी तहमें उनकी गहरी नीति, आगाखां और आर्यसमाज दोनोंके शिक्षा-सम्बन्धी आन्दोलन, अफ्रीकियोंके लिए साहित्य-निर्माणका प्रारम्भ, खादी और चरखेका प्रचार और नये मिले हुए मित्रोंके साथ प्रेमका वार्तालाप—सभी चीजें इन ११ दिनोंमें उत्कटतासे इकट्ठी हुई थी। मेरा अब भी खयाल है कि इन ग्यारह दिनोंमें मैं एक वर्ष जितना जिया होऊंगा।

शामको थियोसॉफिकल लॉजमें निमंत्रण था। धन कमाने और जीवनके मजे लूटनेसे कुछ अधिक विचार करनेवाले लोग इकट्ठे होते हैं तब अच्छा तो लगता ही है। मोम्बासामें श्री मास्टर, दारेस्सलाममें जयंतीलाल द्वारकादास शाह और नैरोबी में श्री [illegible]वाभाई अमीन और पारसी भाई बहेरामजी जैसे लोगोंने सात्त्विक आध्यात्मिक वातावरण उत्पन्न करने और रखनेका अच्छा प्रयत्न कर रखा है। आम तौर पर पाया जाता है कि सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवनके शोरगुलमें [illegible] केन्द्रमें नहीं होते, परन्तु ये सब प्रवृत्तिकी किनारे पर लग जाते है और लोगोंकी सत्प्रवृत्तियोंका सगठन करके धार्मिक सुगंध फैलाते हैं। जिस प्रदेशमें हमारे लोगोंने बड़े-बड़े हाईस्कूल बनाये हैं, अस्पताल और टाउन-हॉल खड़े किये है और जातिवार बड़े-बड़े हॉल भी बनवा दिये है, इतना ही नहीं परन्तु मंदिर और गुरुद्वारे भी स्थापित कर दिये है, उस प्रदेशमें थियासॉफिकल सोसायटीका अपना एक भी मकान नहीं, यह चीज ध्यान खींचे बगैर नहीं रहती। इस प्रवृत्तिमें तेज ही नहीं है [illegible] वह अति सात्त्विक है? यह मध्यमवर्गके गरीब लोगोंकी सात्त्विक प्रवृत्ति होती है। इसमें शक नहीं कि इन लोगोंको ऐसी जगह हृदयका आश्वासन मिलता है। और चारित्र्यका अच्छा-सा आदर्श मन पर जमानेमें भी ये स्थान उपयोगी ही है। असाधारण स्वार्थत्याग, जातीय आत्मोत्सर्ग या रजोगुणी वैभव—इनमेंसे एकका भी संसर्ग न होनेसे इस प्रवृत्तिका विकास नहीं होता, ऐसा मैं मानता हूं।

एक छोटेसे मकानमें कुछ लोग जमा हुए थे। उन सबका परिचय सुनकर उनके प्रति मनमें सद्भाव जम गया। इसलिए मैंने यहां बड़ी उत्कटतासे बातें की। सत्य, सर्वधर्म-समभाव; सब धर्मोंका लघुतम भाज्य (L. C. M.) और महत्तम भाजक (G. C. M.) निकालनेके बारेमें जप तथा प्रार्थनाके बारेमें भी तफसीलसे बातें की। मनको तैयार करनेमें जो गूढ़ शक्तियां ('ऑकल्ट पावर्स') प्रगट होती है, वे स्वाभाविक होने पर भी उनके पीछे पड़नेके खतरेके बारेमें भी मैंने इशारा किया। मैंने ये खतरे बताये कि इन शक्तियोंके पीछे पड़नेसे मनमें विकृति आती है, समतुला नहीं रहती और ध्येयसे हम हट जाते हैं। रातको श्री ठाकुरके यहां भोज था, तब पता नहीं कैसे मेस्मेरिजम और ऐसे ही अन्य विषयोंकी चर्चा चल पड़ी थी।

पूर्व अफ्रीकाका सारा सफर पूरा करके हमने नैरोबीमें दस दिन बिताये यह एक तरहसे अच्छा ही हुआ। दो ढाई महीनेके प्रवासके बाद नैरोबीकी अनेक अफ्रीकी पाठशालाएं देख लीं—कुछ सरकार अथवा मिशनरियोंकी चलाई हुई और कुछ दूसरी अफ्रीकी नेताओंकी अपने ही पुरुषार्थसे चलाई हुई। दोनों तरहके स्कूलोंकी विशेषताएं अलग-अलग थीं। ये संस्थाएं देखनेके बाद इसकी काफी कल्पना हो गई कि अफ्रीकी लोगोंका भावी किस प्रकार बन रहा है। इस तरह ये दस दिन ढाई महीनेकी सारी यात्राके संक्षिप्त संस्करणकी तरह थे, क्योंकि ढाई महीनेमें जितनी विविधता अनुभव की गई थी उस सबका प्रतिनिधित्व इन दस दिनोंमें सामने आया था। उदाहरणके लिए, अफ्रीकाके वन्य पशुओंका दर्शन लीजिये। हम लगातार दो दिन अभयारण्यमें हो आये। अब तो वह सारा प्रदेश और उसके भीतरके स्वतंत्र प्राणी परिचित जैसे प्रतीत होते थे। और वहांके दीर्घग्रीव जिराफ तो मानो हमें खास तौर पर पहचानते हों, इस प्रकार हमारी मोटरके सामने फोटोके पोजके लिए आकर खड़े रहते। श्री जशभाईको यह उत्सुकता थी कि हम अफ्रीका आकर नैरोबीके सिंह-दर्शनसे वंचित न रह जायें।

एक बार शामको गये तब इसका निश्चित पता लगने पर भी कि सिंह कहां है वनराजसे हमारी भेंट नहीं हो सकी। उनके रहस्य-मंत्रियोंने हमसे कहा कि, "महाराजके यहां आज अच्छी दावत हुई है, इसलिए कहीं आरामसे सो रहे हैं। आज आपको दर्शन नहीं होंगे।" हम घंटों तक खूब भटकते रहे। परन्तु महाराजके दर्शन किसीको नहीं हुए सो नहीं हुए। दूसरे असंख्य पशुओंको हमने उनकी प्राकृतिक अवस्थामें देखा होगा, परन्तु मुख्य मुलाकातके अभावमें मनमें ग्लानि ही रही।

दूसरे दिन सवेरे इसका बदला मिल गया। हम बहुत जल्दी आ कर अभयारण्य में पहुंच गये। एक अस्कारीके साथ इन्तजाम कर रखा था। ये अस्कारी लोग दुपाये मनुष्य तो जरूर होते हैं, परन्तु पशुओंकी रीति-नीति वगैरा खूब जानते हैं और जहां हमारी नजर न पहुंचे वहां वे अचूक किसी भी पशुको ढूंढ निकालते हैं। फर्क इतना ही है कि हवा किस तरफकी है, इसका ज्ञान पशु नथुने फुलाकर कर लेते हैं और ये लोग थोड़ीसी मिट्टी उड़ाकर यह ज्ञान कर लेते हैं। हमारा अस्कारी दस-पांच मीलकी दौड़में ही हमें सिंहकी दो रानियोंके सामने ले आया। सूखे हुए घासमें पीली चमड़ीवाले शेर आसानीसे नजर नहीं आते परन्तु एक बार नजर आनेके बाद आप उन्हें नजरसे हटा ही नहीं सकते। सिंह प्राणी, खासकर मादा, दीखनेमें असाधारण नहीं होती, परन्तु उसकी चालढाल देखनेके बाद तुरन्त विश्वास हो जाता है कि यह राजवंशी प्राणी है।

मोटर लेकर हम काफी नजदीक चले गये। दोनों रानियोंने हमारी तरफ जरा नजर डाली और 'होगा कोई मानव प्राणी' इस लापरवाहीसे नजर घुमा ली।

एक क्षणके लिए भी विचार करने लायक हमारा महत्त्व उन्हें न लगा। दोनों रानियां एक ही फोटोमें आ सकें, इसके लिए हम अपनी मोटर दूसरी ओर ले गये। वहां हमारी इस धृष्टताके प्रति तिरस्कार दिखानेके लिए एक रानीने हमारी तरफ देखकर एक जम्हाई ली। इन्सानकी हैसियतसे ऐसा अपमान सहन करना किसे अच्छा लगता? परंतु अभयारण्यमें यह सब सहन करनेके सिवा हम और कर भी क्या सकते थे? हम जहां थे वहांसे आगे नहीं जाया जा सकता था, इसलिए वापस लौटकर अर्ध-चन्द्राकार रास्ता निकालकर हम उसी सिंहनीको दूसरी तरफसे देखने पहुंचे। हमें बार-बार इस तरह पास आते देखकर उस सिंहनीको न आश्चर्य हुआ, न सताये जानेका क्रोध आया। उसके खयालमें हमारा कोई महत्त्व ही नहीं था। एक सिंहनी धीरे-धीरे वहांसे चली गई और दूसरी आड़ी होकर सो गई! इस प्रकार उनके आगे अपना प्रतिष्ठा खोकर हम वापस आ गये। सिंहकी भयानकताके बारेमें कितनी सारी कहानियाँ पढ़ी थी और अजायबघरोंके पिंजरोंमें बन्दी बने हुए सिंहोंको मनुष्यों पर क्रुद्ध होते देखा था। परंतु यहां तो इन प्राणियोंकी उदासीनता और लापरवाही ही ध्यानमें आई। इसका विचार करते-करते हम दस-बीस मील दौड़-कर जंगलके दूसरे सिरे पर पहुंचे। वहां अचानक लम्बे-लम्बे बालोंवाला एक सिंह दिखाई दिया। उठकर जा रहा था। 'ठहर, ठहर' हमने बहुतेरा कहा, परंतु उसे कहीं समय पर जाना होगा। वह चला ही गया। परंतु जो दो चार पल हम उसे देख सके, उसीसे उसकी तसवीर हमारे मन पर पूरी तरह अंकित हो गई। 'यह सारा राज्य मेरा ही है', इस स्वाभाविक दबदबेके साथ सिंह जब लम्बे-लम्बे डग भरते हैं, तब उनके बारेमें आदर पैदा हुए बिना नहीं रहता।

मैंने कहा, 'सिंह कुछ बूढ़ा मालूम होता है।'

इस पर चर्चा हुई। 'आपने कैसे जाना?' साथी पूछने लगे। श्री जशभाईने भी मेरे साथ मतभेद प्रगट किया। अन्तमें उन्होंने अस्कारीसे उसकी भाषामें पूछा। जवाब मिला कि 'बात सही है। सिंह बूढ़ा है। हम बीस वर्षसे देख रहे हैं। वह यहीं रहता है। पहले जितना उत्साही अब नहीं है।' सबने मुझसे पूछा, 'आपको कैसे पता चला?' मैंने कहा कि, 'जानवर जवान होते हैं तब उनके बालों पर तेलकी-सी चमक होती है। वे जब बूढ़े हो जाते हैं, तो उनके बाल सूखे हुए घासकी तरह बेचमक हो जाते हैं। इस सिंहके बालोंकी चमक घटती दिखाई दी। इसके सिवा इस सिंहके गलेके पासकी अयालके कुछ बाल मैंने गिरे हुए देखे। इसलिए अनुमान लगाया कि इस सिंहका बुढ़ापा शुरू हो गया है।' उस दिन हम कृतार्थ होकर लौटे। राजा और रानी दोनोंसे मुलाकात हो गई। फिर भी लौटते समय जरखोंके बड़े झुण्डसे भेंट कर ली। चित्राश्व, बुद्दू और इसी तरहके कई जानवर दिखाई दें, तो भी अब वहां ध्यान कैसे जमे? हमारी इस तृप्ति पर आशीर्वादकी मुहर लगानेके लिए किलिमांजारोने हमें अन्तिम दर्शन दिये।

जिन्हें राजनीतिक माना जा सकता है, ऐसी तीन प्रवृत्तियोंका यहां उल्लेख कर देना चाहिए। २३ जुलाईको श्री अप्पासाहबका दफ्तर उसके लिए खास तौर पर बनाये हुए मकानमें पहुंच गया। पंजाबी ठेकेदार श्री मंगतने नैरोबीके दो मुख्य रास्तोंके कोने पर एक भव्य मकान बना कर उसकी ऊपरकी सारी मंजिल अप्पा-साहबके लिगेशनके लिए किराये पर दे दी है। इस मकानका नाम 'इंडिया आफिस' रखा गया है। इस मकानका उद्घाटन मेरे हाथसे हुआ। १६ तारीखको होनेवाला था सो २३ को हुआ। इसलिए संगमरमरकी लिखावटमें तारीखकी गड़बड़ी रह ही गयी। इस शुभ अवसरके लिए लोग दूर-दूरसे आये थे। भारत स्वतंत्र हो गया, इसीलिए यहांके हिन्दुस्तानियोंको एक कमिश्नर मिले; और वे भी अप्पासाहब जैसे! इसलिए लोग बेहद खुश थे। एक आदमीने प्रासंगिक कविता सुनाई। श्री मंगतका, अप्पासाहबका और मेरा इस तरह तीन भाषण हुए। इस अवसरका लाभ उठाकर मैंने अप्पासाहबके बारेमें, उनके प्रकाशन-मंत्री (इन्फर्मेशन ऑफिसर) श्री शहाणेके बारेमें और उनके निजी मंत्री श्री तात्यासाहब इनामदारके बारेमें थोड़ासा कहा। रातको श्री मंगतके यहां ही भोजन किया। इन भाईकी होशियारी अनेक क्षेत्रोंमें काम कर रही है।

दूसरे दिन यहांके अमरिकन कौन्सल जनरल मि० ग्रांथके यहां हम दोपहरको भोजन करने गये। हल्की-हल्की बातोंमें और हंसी-मजाकमें हरएक मनुष्यका रुख पहचानने और आवश्यक जानकारी निकलवा लेनेकी कलामें ये लोग कुशल होते हैं। हिन्दुस्तानके लोग धर्मचर्चामें खिलते हैं और योगके बारेमें उन्हें आस्था होती है, इत्यादि भारतीयोंकी ख्याति अमरीका तक पहुंच गई है। इसलिए अमरीकी लोग हमारे साथकी बातचीतमें ऐसे विषय जरूर लाते हैं। परन्तु मुझे लगा कि मि० ग्रांथको इन विषयोंमें सचमुच ही दिलचस्पी होगी। अफ्रीकियोंकी सेवा करनेवाले मिशनरियोंके बारेमें, कम्युनिस्ट लोगोंके बारेमें और स्वीडनके बारेमें तरह-तरहकी बातें हुई। हम मांसादि नहीं खाते, इसलिए हमारे वास्ते रोचक निरामिष आहार तैयार करानेकी तरफ मि० ग्रांथने काफी ध्यान दिया था। सामाजिक समानताके असरके कारण अमरीकी लोग अंग्रेजोंसे अधिक मिलनसार होते हैं। एक बार जब हम नैरोबीमें नहीं थे तब मि० ग्रांथने हमारे शरद पंड्याको अपने यहां नाश्तेके लिए बुलाया था और उनके साथ भी योग, प्राणायाम और सूर्य-नमस्कारके बारेमें बहुत बातें की थीं।

तीसरा राजनीतिक प्रसंग २६ तारीखको आया। श्री कुरेशी नामके पंजाबके एक पाकिस्तानी भाई उस दिन मिलने आये। कुछ ही दिन पहले कराचीसे वापस लौटे थे। किसी समय शिक्षक थे। अब राजनीतिक बातोंमें प्रमुख भाग लेते हैं। उन्होंने पूर्व अफ्रीकामें हिन्दू-मुस्लिम झगडे संबंधी सारा इतिहास अपनी दृष्टिसे विस्तारपूर्वक बताया। उनकी बड़ी शिकायत आर्यसमाजियोंके खिलाफ थी। झगड़ा उन्होंने शुरू

किया। मना करने पर मानते नहीं थे। इसलिए मुसलमानोंने 'ऑब्जरवर' नामक अखबार निकाला। उन्होंने भी उतना ही बिगाड़ा। कुरेशी खुद तटस्थ रहे। फिर निवृत्त हो गये—वगैरा प्रारंभिक बातें उन्होंने बतायी। आगे चल कर संबंध कैसे बिगड़ते गए और उन्होंने समझौता करनेके लिए क्या-क्या निष्फल प्रयत्न किये, यह भी कहा। अन्तमें उन्होंने मुसलमानोंके लिए अलग निर्वाचक मंडल तैयार करनेकी सरकारसे मांग की। 'आप गांधीजीके आदमी, तटस्थ और देवता पुरुष हैं। आप बीचमें पड़कर हिन्दुओंको समझायें तो हमारा झगड़ा निपट जाय।' वगैरा बहुतसी बातें उन्होंने कीं। मैंने उनसे पूछा कि, "अप्पासाहबसे तो आप मिले ही होंगे। वे भी हिन्दू-मुस्लिम एकताके लिए पच रहे हैं। उन्होंने आपसे क्या कहा?" "अप्पासाहब तो उच्च कोटिकी ('हायर लेवल' की) बातें करते हैं। मुझे तुरन्त समझौता चाहिये।" मैंने उनसे कहा कि "सच्ची और स्थायी एकता 'हायर लेवल' पर ही होगी। दूसरी तरहसे कामचलाऊ दोस्ती नहीं हो सकती सो बात नहीं। स्वार्थी लोग भी कई बार संघर्षके बाद सहयोग करते ही हैं। परन्तु उसके लिए दूसरे लोग चाहिए। मैं गांधीजीका आदमी हूं। सर्वधर्मी हूं। केवल हिन्दुओंका नेतृत्व मुझसे नहीं होगा। पूर्व अफ्रीकामें हिन्दुओं और मुसलमानोंके हितोंमें कोई भी फर्क नहीं।"

फिर मैं आगे बढ़ा, "मुझे एक अत्यंत व्यावहारिक उपाय सूझता है। हिन्दुस्तानसे आये हुए हम हिन्दू-मुसलमान सब यहांकी सरकारसे लड़-लड़ कर यहांके राजकाजमें आखिर कितने स्थान जुटा सकते हैं? अंग्रेजोंकी सत्ता और अफ्रीकियोंकी संख्या दोनोंके आगे हमारी बिसात ही क्या? हमारे पास जब ऐसी छाप है ही नहीं कि हम यहांकी राज्य-व्यवस्था पर असर डाल सकें, तो हम आपसमें खींचातानी करनेके बजाय यह क्यों न तय कर लें कि हिन्दुस्तानी लोगोंके लिए जितनी सीटें (जगहें) मिलें, उनके लिए हम अच्छे अफ्रीकी लोगोंको ही चुन कर भेज दें? ऐसा करके हम अफ्रीकी लोगोंके सामने साबित कर देंगे कि उन पर हमारा विश्वास है, उनके हाथोंमें हम अपनेको सुरक्षित मानते है और वे अपने देशमें हमें जैसे रखें वैसे रहनेको हम तैयार हैं। हम यहांकी विधानसभामें अपने ही आदमी भेजेंगे, तो हम दरियामें खसखसकी तरह गुम हो जायेंगे। इस पर भी आपसमें लड़ें तो दुनियामें हंसीके पात्र बनेंगे। इसके बजाय अफ्रीकियोंको ही हम अपने प्रतिनिधि बना लेंगे, तो सभी अफ्रीकी मत (वोट) हमारे लिए अनुकूल हो जाएंगे। अपने मत देकर उनके बदलेमें अफ्रीकी मत प्राप्त कर लेना कोई बुरा सौदा नहीं।

"मैं यह नहीं कहता कि हम विधानसभामें जाएं ही नहीं। अगर अफ्रीकी लोग अपने प्रतिनिधिके रूपमें हममेंसे किसीको चुनें, तो उस चीजका हम जरूर स्वागत करें। दक्षिण अफ्रीकामें कानूनकी रूसे काफिरों और हिन्दुस्तानियों दोनोंको अपने प्रतिनिधिके तौर पर गोरोंको ही चुनना पड़ता है। इसके बजाय अगर अफ्रीकी

लोग स्वेच्छासे हममेंसे किसीको सेवाके कारण चुन लें, तो यह नया ही उदाहरण बनेगा ।"

मेरी बात भाई कुरेशीके गले नहीं उतरी। आजकी स्थितिमें किसीके भी गले नही उतरेगी, यह मैं जानता हूं। क्योंकि इसके लिए उच्च भूमिकावाली कल्पना-शक्तिकी जरूरत है ।

उसके बाद हिन्दुस्तानकी स्थितिके बारेमें बातें हुई। उन्होंने कहा कि, "हिन्दुस्तान पाकिस्तान एक हो जाय, यह तो आप जरूर चाहेंगे।" मैंने कहा, "नहीं। हिन्दुस्तान पाकिस्तान एक राज्य हो या न हो उसकी मुझे परवाह नहीं। मुझे एकदिली चाहिए। भारत और पाकिस्तानके एक राज्य बननेके लिए मैं प्रयत्न नहीं करूंगा। इतना ही नहीं, परन्तु ऐसी प्रार्थना भी नहीं करता। जो एक बार दे दिया सो दे दिया। अब अगर पाकिस्तानके मुसलमान ही एकताका विचार करें और ऐसा सुझाव मेरे सामने लायें, तो इस दिशामें मेरा दिमाग काम करेगा। एकता रखनेके लिए हम लोगोंने बहुत प्रयत्न किये। वे आपने माने नहीं। अब प्रयत्न करेंगे तो आप कहेंगे कि देखिये, ये लोग पाकिस्तानकी हस्तीके दुश्मन हैं। और आपको ऐसी शंका रहेगी तो दिलकी एकता नही होगी।"

भाई कुरेशीके बिदा ले कर जानेसे पहले केनियाकी किकूयू जातिके दो अफ्रीकी नेता—श्री जोमो केन्याटा और श्री पीटर कोयनांगे मुझसे मिलने आये। मैंने उनसे हमारे बीच हुए संवादका सार कहा। मेरा सुझाव स्वीकार हो या न हो, परन्तु मुझे इसका एक नमूना पेश करनेका संतोष मिला कि तीन महान जातियोंके बीच सम्मानपूर्वक एकता करनी हो तो किस दिशासे प्रयत्न करना चाहिये। मैंने अपना यह विचार नैरोबीके कई नेताओके सामने रखा। और आज तो इतना ही कह सकता हूं कि मैंने उन्हें विचार करनेमें लगा दिया।

इसके बाद जोमो केन्याटा और पीटर कोयनांगेके साथ बहुत बातें हुई, परन्तु वे सब खास तौर पर शिक्षा और रचनात्मक कार्योंके विषयमे थी। मैंने उन्हें अपना चरखा चला कर दिखाया और उन्हें भेंट कर दिया। काममें न लेनेके कारण वह जरा भारी चलता था। श्रीमती ताई इनामदारने उसे हलका कर देनेका काम अपने जिम्मे ले लिया। समाज-सेवाके कार्यमें (१) कष्ट-निवारणका काम और (२) समाज-निर्माणका रचनात्मक काम इन दोनोंके बीच गांधीजी जो भेद बताते हैं उसकी भी बात मैंने की।

अफ्रीकामें 'इन्डिपेंडेंट अफ्रीकन्स' नामक एक आन्दोलन चल रहा है। इसे चलानेवाले लोग अफ्रीकी ईसाई होते हैं। गोरे मिशनरियोंके प्रति कृतज्ञा रखते हुए भी उनके विरुद्ध इन लोगोंकी एक शिकायत होती है। ये उन्हें कहते हैं, "हम सब ईसाई जरूर हैं, परन्तु जब तक हमारे प्रति होनेवाले दो अन्याय आप दूर नहीं करा सकेंगे, तब तक हम एक जगह बैठकर प्रार्थना कैसे कर सकते हैं ?

"एक तो यह कि चमड़ीके रंगके कारण सफेद और कालेका जो वर्णभेद आपके लोग करते हैं उसे दूर करा दीजिये; और दूसरा यह कि हमारी सर्वोत्तम उपजाऊ और ठंडी आबोहवावाली जमीन गोरे हजम कर बैठे हैं वह हमें वापस दिलाइये। इतना प्रायश्चित कीजिए, तभी हम साथ-साथ प्रार्थना कर सकेंगे।"

अफ्रीकाकी भूमि-पुत्रोंके हृदयका यह रुदन गोरे क्यों नहीं समझते होंगे? अन्यायकी बुनियाद पर खड़ी की गई उनकी सभ्यता और संस्कृति कहां तक कल्याणकारी सिद्ध होगी? जब-जब गोरोंसे मिलनेका मुझे मौका मिले, तभी मैंने उनसे यह अनुरोध अवश्य किया कि "हिन्दुस्तानमें उच्च वर्णके लोगोंने आप जैसी ही जो भूलें की थीं और जिनके बुरे फल हम भोग रहे है, उनका इतिहास आप देखिये और उससे कुछ सबक लीजिये।"

अप्पासाहबके साथ सारी यात्राका सांस्कृतिक परिणाम जोड़नेके लिए मैंने एक दिन बिताया। हमारी चिन्ताके तीन-चार विषय थे। अफ्रीकामें क्या-क्या करना चाहिए इस सिलसिलेमें; और हिन्दुस्तानमे क्या-क्या होना चाहिए इस विषयमें।

छात्रवृत्तियां ले कर जो अफ्रीकी विद्यार्थी हिन्दुस्तान जाते है, उन्हें अच्छी तरह रास्ता दिखा कर यहांके अच्छे-से-अच्छे परिवारोंमे रहनेका अवसर दिलाना, उन्हें हमारी संस्कृतिका परिचय करानेके प्रसंगोंका प्रबंध करना, रचनात्मक कार्यका स्वरूप और उसके भीतर जो दृष्टि है उसे समझानेके लिए उन्हें हमारी संस्थाओंमें घुमाना और हमारे लोगोंको अफ्रीकी स्थितिसे वाकिफ करना वगैरा बहुत-सी बातें इसमें आ गयीं। अफ्रीकामें कालेज खोलनेकी बात सबसे मुख्य थी। उसके हरएक पहलू पर हमने चर्चा की।

हमने यह भी सोचा कि इस देशमें हम अपनी तरफसे आश्रम खोलने न बैठ जायें। हमारे आश्रम देख कर आए हुए अफ्रीकी लोग अपने देशके अनुकूल पड़नेवाली आश्रम जैसी संस्थाएं खोलें यही ठीक है। हमें इतनेसे संतोष कर लेना चाहिए कि गांधीजीके विचार और उनके कार्यक्रम आदि सब बातें यहांके नेता और महत्त्वाकांक्षी युवक जान लें। फिर इस बातका तो यही लोग निश्चय करें कि यहांके लोगोंको लाभ पहुंचानेके लिए क्या-क्या करना चाहिए। बाहरसे लादी हुई चीज बोझ बन जाती है। भीतरसे पैदा हुई चीज ही प्राणदायक होती है। अफ्रीकी लोगोंकी भाषामें साहित्य पैदा करनेके बारेमें भी हमारा यही दृष्टिकोण होना चाहिए। जैसे अंग्रेजी पढ़ाई द्वारा अफ्रीकियोंको यूरोपियन संस्कृतिका परिचय होता है, वैसे ही एशियाई संस्कृतिके बारेमें भी इन्हें ज्ञान होना चाहिए। अभी वह ज्ञान अंग्रेजी द्वारा ही हो सकता है। हमारे देशकी कुछ अच्छी पुस्तकोंका स्वाहिली में अनुवाद करवाकर इन लोगोंको इस चीजका स्वाद चखायें। इसके बाद इच्छा हो तो ये लोग भले ही हिन्दी वगैरा भाषाएं सीखें। किसी दिन ये संस्कृत भी सीखेंगे। अभी तो उनके पास हिन्दी और गुजराती भाषा सीख लेनेकी स्वाभाविक

सुविधा है। हम अपनी भाषाका खासतौर पर प्रचार करने न निकलें। परन्तु जिन लोगोंको सीखना हो उन्हें सिखानेकी तैयारी हमारी संस्थाओंको रखनी चाहिए। हमारे लोग यहां जो इंडियन ऐसोसियेशन चला रहे हैं, उसे बदलकर एशियन एसोसियेशन कर दिया जाय, तो हिन्दुस्तान-पाकिस्तानका अलगाव यहां न रहेगा। अरबस्तानके लोग भी हममे शरीक हो सकते हैं। गोआके लोगोंको भी हम खुशीसे ले सकते हैं और कोई एकाध चीनी होगा तो वह भी संस्थाके बिना नहीं रहेगा। अफ्रीकाकी परिस्थिति अच्छी तरह जान लेनेके लिए और अपनी सेवाशक्ति बढ़ानेके लिए हमारे लोगोंका एक बड़ा सेक्रेटेरियट यहां होना चाहिये। उसमें सब प्रकारकी पुस्तकें, मासिकपत्र, रिपोर्टें, जनगणनाके विवरण वगैरा सब कुछ रखा जाय और यहांकी तीनो जातियों सम्बन्धी सवालोंका गहरा अध्ययन करनेवाले कुछ निष्णात तैयार किये जायें।

हमने इसकी भी चर्चा की कि पीटर कोयनागेके हाथों चलनेवाली अनेक पाठशालाओंमें बुनियादी शिक्षा कैसे जारी की जा सकती है। हमारी इस चर्चामेंसे क्या-क्या अमलमें आता है, और क्या हवामें ही रह जाता है, यह तो भगवान जाने। हमारे देशकी कार्य-शक्ति बढ़नी चाहिए और कोई काम करना चाहता हो तो उसका विरोध करनेके बजाय उसे भरसक मदद देनेकी नीति सब धारण कर लें, तो ही हमारा देश दूसरे देशोंकी पंक्तिमें खड़ा रह सकेगा और विदेशोंमें वहांके लोगोंकी सेवा करनेमें समर्थ होगा।

२३ जुलाईको डॉ० कारमन नामक एक बड़े मशहूर डॉक्टर मिलने आये। क्लोरोफार्म आदि दवाए सफल ढंगसे देनेमें इस आदमीकी ख्याति विशेष है। उनके साथ ढाई घंटे बातें हुईं। युद्धविरोधी शांतिवाद, साम्यवाद, गरीबोंको होनेवाली तकलीफ, अंग्रेजोंका अफ्रीकामें मिशन वगैरा अनेक विषयों पर हमने चर्चा की। आदमी बहुत ही सज्जन है, परन्तु बाइबलके अक्षरार्थमें चिपटे रहनेवाले हैं। ईसाई लोगोंकी जो एक भविष्यवाणी है कि ईसा मसीह फिर इस दुनियामें आयेंगे और सारी पृथ्वीके राजा बनकर सर्वत्र शांति और बंधुता फैलायेंगे, इसमें उनका बड़ा विश्वास है। चर्चामें अपनी दृष्टि क्षणभरके लिए भी अलग रखनेकी उनकी तैयारी नहीं थी।

इसी दिन एक महाराष्ट्र परिवारके साथ भोजन करने गया। वहां भी लोगोंने भाषाका प्रश्न छेड़ा। हिन्दीके बजाय मैं गुजरातीका इतना पुरस्कार क्यों करता हूं, इस बारेमें मुझसे पूछा गया। मैंने दुबारा समझाया कि हिन्दीका प्रचार तो मैं करता ही हूं। परन्तु यहांके हिन्दुस्तानियोंमें ८० फीसदी लोगोंकी जन्मभाषा गुजराती है। उसी भाषाके द्वारा यहांका विविध-धर्मी सामाजिक जीवन बगैर झगड़के विकसित किया जा सकता है।

अनेक मिशनों द्वारा मिल कर अफ्रीकियोंके लिए चलनेवाला एक अलायन्स

हाईस्कूल हम देख आये। इसे सरकारकी तरफसे सहायता मिलती है। हर विद्यार्थी पर साठ पाउंड वार्षिक खर्च आता है। इसमें सब कुछ आ जाता है। इस स्कूलकी विशेषता यह थी कि यहांके विद्यार्थी अंग्रेजी संगीत तो सीखते ही थे, परन्तु उन्होंने शुद्ध अफ्रीकी संगीतके कुछ राग शामिल करके ऐसा सुन्दर संगीत तैयार किया है कि उसमें यूरोपीय संगीतकी सारी भव्यता आ गई है। और फिर भी वह अफ्रीकी गूढ़भाव अच्छी तरहसे व्यक्त कर सकता है। दो संस्कृतियोंके समन्वयका यह असर देखकर मुझे मदुराका तिरुमल नाईकका राजमहल याद आ गया, जिसमें हिन्दू, इस्लामी और ईसाई तीनों स्थापत्योंका अच्छा मेल हुआ है। स्वाभिमान और आत्मीयता नष्ट किये बिना जब एक संस्कृति दूसरी संस्कृति पर असर डालती है, तभी ऐसे सुन्दर परिणाम पैदा होते हैं। ऐसे अनोखे प्रयोग करनेके लिए मैंने इन अफ्रीकी गायकोंकी प्रशंसा की और इस प्रयोगको उत्साहके साथ आगे बढ़ानेका सुझाव दिया।

उसी रातको इंडियन जिमखानेमें भोज था। यहां जातपांत और धर्मके भेदके बिना लोग सदस्य बनते हैं और जिमखाना ही होनेके कारण ऐश-आराम करते है। हर जगह जातीय संगठनोंसे घबराये हुए हम यहां खुश हुए और खुल कर बोले। कमलनयनका यहांका भाषण विनोदपूर्ण आलोचनाका था। वह सभीको पसन्द आया।

दूसरे दिन हम जीन स्कूल देख आये। केन्द्रीय सरकारी संस्थासे इसका संबंध है। प्रिंसिपाल मि० एस्क्विथ अफ्रीकी लोगोंके प्रति सद्भाव रखते हैं। अफ्रीकी जीवनका उन्होंने गहरा अध्ययन किया है। हमने संस्थाकी सारी व्यवस्था देखी। बहुत कम संस्थाओंमें इतनी सुन्दर व्यवस्था और इतनी सुविधाएं होती हैं। अपनी ही मोटरबस रख कर विद्यार्थियोंको अनेक प्रवासिया बताने ले जाते है। इस संस्थाकी विशेषता यह है कि अफ्रीकी लोगोंके नेता, उनकी पत्नियां और उनके बालक यहां शिक्षा पाते हैं। कुटुम्बीजनसे अलग हुए बिना यहां शिक्षा पाते हैं, इसलिए यहां होनेवाला जीवन-परिवर्तन सदाके लिए टिकता है। प्रिंसिपल ऐस्क्विथ धुरंधर विद्वान और समाजशास्त्रके विद्यार्थी होनेके कारण उनके साथ चर्चा करनेमें बड़ा आनन्द आया। अफ्रीकी भाषाओंके विकासके बारेमें और अंग्रेजीके बजाय स्वाहिलीके जरिये कब पढ़ाया जा सकता है, इस बारेमें बहुत-सी बातें हुईं।

यूरोपियन लोगों द्वारा संचालित ऐसी संस्थाएं देखनेके बाद यह विचार मनमें आये बिना नहीं रहता कि हमारे लोग अपने ही बालकोंके लिए भी ऐसी व्यवस्था क्यों नहीं करते।

आर्यसमाजी लोगोंका शिक्षा-संबंधी उत्साह प्रशंसनीय होता है। आगाखानी संस्थाओंमें कई जगह यूरोपियन शिक्षकों और व्यवस्थापकोंको रखा जाता है।

और इससे कुछ व्यवस्था, टीमटाम और दक्षता आ ही जाती है। फिर भी कहना पड़ता है कि भारतीय संस्थाओंके व्यवस्थापकोंकी दृष्टि संकुचित और उनका हस्त-क्षेप बाधक होनेके कारण जितनी होनी चाहिये उतनी प्रगति नहीं होती। शिक्षक जब-जब दिल खोल कर बातें करते हैं, तब सारी परिस्थिति ध्यानमें आती है। और फिर यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि 'हम ही अपनी शिक्षाके शत्रु है।'

आर्यसमाजका रवैया कैसा होना चाहिये, इस बारेमें आर्यकन्या पाठशालामें खास बातें कीं। क्योंकि वहांके शिक्षक और व्यवस्थापक ऐसे थे, जो इस सारी वस्तुको ग्रहण कर सकते थे। उसी दिन हम स्थानिक आगाखानी कन्या-पाठशाला-में गये। लड़कियोंने हमारे देखते-देखते कुछ सुन्दर व्यंजन तैयार किये और हमें खिलाये। कक्षाएं, ड्रिल, कवायद, संगीत वगैरा सारे काम विस्तारपूर्वक बताये। और खूबी यह कि उन्होंने हममेंसे किसीसे भाषण देनेका आग्रह नहीं किया! यहां-की मॉन्टेसोरी पद्धतिवाली छोटीसी शिशुशाला बड़ी आकर्षक थी।

नैरोबीके जिस महाराष्ट्र मण्डलके मकानकी नीव मैंने रखी थी, उसकी इमारत अब लगभग पूरी होने आई। यह यहांके महाराष्ट्रियोंकी कार्य-कुशलताकी अच्छी निशानी थी।

उसी स्थानके पीछे श्री शिवाभाई अमीन रहते थे। मुझे उनसे फुरसतसे मिलना था, क्योंकि पूर्व अफ्रीकाकी तरफ मेरा ध्यान पहले-पहल खीचनेवाले वही थे। शुरू-के दिनोंमें हमारे लोगोका पथप्रदर्शन करनेका काम और उनके पक्षमें अखबारोंमें लिखनेका काम शिवाभाईने ही किया था। तारीख २७ को उनके यहां खानेका निमंत्रण स्वीकार किया। हमें बहुतसी बातें करनी थी, परन्तु दोनों स्वभावसे ठहरे हिन्दू। एक यूरोपियन महिला उनके घर पर मेहमान बन कर आई हुई थी। वे बीमारीकी कमजोरी मिटा रही थी। हमने उन्हीके साथ बातें करनेमें वक्त बिता दिया। उनके कुशल शिक्षाशास्त्री और मानसशास्त्री होनेके कारण बातें जम गयी और हमें जो आपसमें विचार-विनिमय करना था सो रह ही गया। उन्होंने हमें इतनी चेतावनी दी कि पूर्व अफ्रीकाके हिन्दुस्तानियोंके मनमें शिक्षाका महत्त्व जम तो गया है, परन्तु अभी इस मुल्कमें आर्थिक मंदी है। साधारण आदमी खुले हाथों रुपया नहीं दे सकता।

जैसे विक्टोरिया सरोवरके किनारे पर स्थित किसुमु देखना रह ही गया, उसी प्रकार हमें डर था कि रिफ्ट वेलीमें स्थित नकुरु भी रह जायगा। परन्तु हमारा हवाई जहाज हमें पहली अगस्तमे पहले नही ले जा सकता था। इसलिए आखिरी दिनोंमें २९ जुलाईको हम नात्याके साथ नकुरु हो आये। कोई मनुष्य अफ्रीका जाय और यह रिफ्ट वेली न देखे, तो कहा जायगा कि उसने बहुत कुछ खो दिया। नैरोबीसे हम दो ढाई हजार फुट उतर कर रिफ्ट वेलीमें पहुंचे। एक बार नीचे उतरनेके बाद सारा रास्ता सीधा सपाट है। इतनी बड़ी लम्बी-चौड़ी घाटीमें सुन्दर-

से-सुन्दर रास्तेसे गुजरना ही एक आनन्दका विषय था। आसपासकी पहाड़ियोंके सिर पर अनेक ज्वालामुख—द्रोण थे। ज्वालामुख पहचाननेकी कला हमारे हाथ-में—या असलमें आंखोंमें—आ गई थी। रास्तेमें एकके बाद एक हमने तीन सरोवर देखे—नैवाशा, गिलगिल और नकुरु। चमकते हुए पानीका प्रसन्न वदन किसी भी मनुष्यको (और पशुपक्षियोंको भी) अवश्य प्रसन्न करता है। सपाट भूमि पर स्थित ये सरोवर देखते-देखते अपना संकोच भी कर सकते हैं और विस्तार भी कर सकते हैं। जब संकोच करते हैं तब उनका खुला हुआ पेंदा अध्ययन करनेवालोंके लिए बड़ा आकर्षक होता है। लोभी मनुष्य वहांसे तरह-तरहके क्षार भी ले सकता है। नैवाशा के बारेमें दूसरी आकर्षक बात यह थी कि अफ्रीका और यूरोपके बीच आने-जाने-वाले समुद्री विमान यहींसे रवाना होते हैं।

समुद्री विमान जमीन पर पैर नहीं रखते। इस तालाब जैसे पानीके विस्तार ही उनके लिए अड्डेका काम देते हैं। पानीमें तैरते-तैरते पंख फड़-फड़ाकर उड़ जानेवाले बतख, बगुले और हंस या राजहंसकी जातिके ये समुद्री विमान देखनेमें बड़ा मजा आता है। चढ़ते हैं तब नहाकर निकले हुए प्राणियोंकी तरह पानीके रेले नीचे छोड़ते हैं। परन्तु जब ऊपरसे आकर पानी पर उतरते हैं, तब शान्त पानीको ऐसा बिलोते हैं कि मछलियोंको लगता होगा कि यह क्या आफत आ गयी?

नकुरुमें हम श्री मगनलाल ठाकरके यहां पहुंचे। वक्त थोड़ा होने पर भी हमें दो जगह थोड़ा-थोड़ा खाना ही पड़ा। सिक्ख गुरुद्वारेमें सभा की गई। उसमें थोड़ेसे गोअन भाई भी थे। उनका नाम आगे करके लोगोंने मुझसे अंग्रेजी भाषणकी मांग की। मैं पहले हिन्दीमें बोला, बादमें अंग्रेजीमें। सब जगहोंकी तरह यहां भी हमारे लोगोंमें दो दल हैं। विशेषता इतनी ही थी कि इन्होंने इन दलोंके लिए अद्यतन नाम रखे हैं—एक पूंजीपतियोंका दल और दूसरा मजदूरोंका दल। मैं नहीं मानता कि पूंजीपति दलमें सभी लक्षाधीश हैं। मजदूर दलमें थोड़े भी अगर हाथसे काम करते होंगे तो मैं उन्हें बधाई दूंगा।

वापस घर पहुंचनेमें रातके पौने नौ बज गये। फिर भी श्री गुलाबभाई देसाई और ललिताबहनका आतिथ्य स्वीकार करना बाकी ही था। खाते-खाते भगिनी समाजके बारेमें थोड़ी-सी बातें कीं। श्री कुरेशीके साथ हुई चर्चाका सार डॉ० अडालजासे कहा। और उन्होंने भी कहा कि आपका सुझाव अत्यंत व्यावहारिक होने पर भी मुझे आशा नहीं कि उस पर आज अमल हो सकता है।

श्री तात्या इनामदार और उनके कुटुंबके साथ हम इतने दिन रहे, परन्तु उनके साथ एकाध दिन फुरसतसे बितानेकी भूख रह ही गई थी। इसलिए सार्व-जनिक कामोंसे पूरी छुट्टी लेकर रविवारके दिन हम "चौदह प्रपातों" वाली जगह गोठ करने चल दिये। विनयकुमार (भाऊ) हमारे साथ नहीं आ सके। तात्याके

कुटुंबके बाकी सब लोगोंके साथ हम रवाना हुए। श्री सूर्यकान्त पटेल और उनकी पत्नी भारती भी साथ थी। घरसे बयालीस मील दूर यह स्थान है। थीकामे चौदह मील है। वहीसे एक नदी यहां चट्टानके अर्धचन्द्रमें १८ धाराओंमें कूदती है और आसपासके प्रदेशके लोगोंको विनोद करनेका आमंत्रण देती है। थीका और चनिया—ये दो नदियां इतनी छोटी हैं कि हमारे यहां उन्हें नदीका नाम शायद ही कोई दे। चौदह प्रपातोंके स्थान पर हमें बहुत शांति मिली। हम नीचे उतरे, ऊपर चढ़े, अनेक चट्टानें पार की, फोटो लिये, पेटभर खाया, बे-सिर-पैरकी बातें की और वहां नहीं रहा जा सकता था इसलिए अन्तमें लौट आये।

पूर्व अफ्रीकाकी सारी यात्रामें जो चीज मुझे सबसे आकर्षक और महत्त्वपूर्ण लगी, वह थी पीटर कोयनागेके घरमें उनके पिता और दूसरे कुटुम्बियोंकी मुलाकात और गिथुगुरी तथा एक अन्य स्थान पर पीटरकी तरफसे खोली हुई पाठशालाओंका अवलोकन। गिथुंगुरीका अवलोकन केवल एक पाठशालाका अवलोकन नहीं था। परन्तु अफ्रीकी समाजके समस्त जीवनका, उसके भूत, वर्तमान और भविष्यका एक शुद्ध दर्शन था। श्री पीटर कोयनांगे, उनके वृद्ध पिता, उनके साथी लोकनेता जोमो केन्याटा और दूसरे बहुतसे अफ्रीकी वृद्ध और युवक यहां इकट्ठे हुए थे। अनेक पाठशालाओंके विद्यार्थियोंके विशाल समूहके बीच हमने तरह-तरहके अफ्रीकी नृत्य देखे। हरएक जातिके छात्र अपने अलग-अलग नृत्य दिखाते, चाहे जब अलग हो जाते, अव्यवस्थित रूपमें घूमते फिरते बातें करने लग जाते और देखते-देखते किसी कप्तानके हुक्मके बिना सुन्दर रचनामें गुंथ जाते। कुछ विद्यार्थी किकूयू जातिके थे। कुछ कुवा जातिके थे। बाकी जातियोंकी संख्या कम थी। इन सब नर्तकोंने अपनी प्राचीन संस्कृतिकी प्रणालीके अनुसार चित्र-विचित्र पोशाकें पहन रखी थी। तरह-तरहकी छापोंमें मुंह रंगे थे। घुटनों पर टीनके डब्बोंमें कंकर डालकर बनाये हुए घुघरू बंधे हुये थे। ठेका लगाकर नाचते तब घुघरूका मन पर बड़ा असर होता था। इस सारे नाचका नशा इतना चढ़ा कि हम सब अपने-अपने आसन छोड़ कर उनके बीच जा खड़े हो गये। तात्याकी उषा और लना स्त्रियोंके बीचमें शरीक हो कर खुद भी नाचने लगी!

आखिरी नाच वृद्धाओंका था। नियमानुसार जिनकी ६० वरससे कम उमर हो, वे इसमें सम्मिलित नहीं हो सकती थी। इन सब बहनोंने पुराने ढंगकी रंग-बिरंगी पोशाकें पहनी थीं। तरह-तरहकी पीछियां (पंख) बांधी थी। उस्तरेसे सिर साफ करके तेल लगाकर चमकदार बनाये थे। गलेके हार छाती पर ही नहीं परन्तु पीठ पर भी लटक रहे थे। कमर पर आगे और पीछे कोलोबसके चमड़े बांधे थे। यह नृत्य प्रार्थना-नृत्य था। वृद्धाओंके नृत्यका एक नियम यह था कि वे किसी तरह नाचें, परन्तु पैरका अंगूठा जमीनसे लगा ही रहना चाहिए। (मुझे तुरन्त याद आया कि हमारे यहांके सितार बजानेवाले खानदानी लोग हाथका अंगूठा सितारसे लगा हुआ

ही रखते हैं ।) एक वृद्धाकी उम्र नब्बे सालसे ज्यादा थी। परन्तु नाचनेमें उसका उत्साह जरा भी कम नहीं था। इन लोगोंका एक नियम बड़ा मजेदार लगा। अगर किसी लड़कीकी किसी बूढ़ेसे शादी हुई हो, तो उसकी उम्र कम होने पर भी उसे इन वृद्धाओंके नृत्यमें भाग लेनेकी प्रतिष्ठा मिलती है! नृत्यमें भाग लेनेवाली बुढ़ियोंमें ऐसी कोई 'वृद्ध युवती' है या नहीं, यह हमने नहीं पूछा। हमको लगा कि ऐसा पूछना असभ्यता होगी।

इन तमाम राष्ट्रीय नृत्योंके अन्तमें दो वृक्ष लगानेकी धर्मविधि हुई। इस विधिका हमारे मन पर गहरा असर हुआ। खुले मैदानमें छोटे-छोटे पत्थर जमा कर एक तरफ अफ्रीका महाद्वीपकी एक मोटी आकृति बनाई गई थी और थोड़े अन्तर पर उचित दिशामें ऐसे ही पत्थरोंसे हिन्दुस्तानका नक्शा खींचा गया था। हिन्दुस्तानसे आये हुए दो मेहमानोंके हाथों इन दो आकृतियोंके भीतर दो धर्मवृक्ष ('सेरिमोनियल ट्रीज़') बोये जानेवाले थे। यह सारी कल्पना देख कर मैं गद्‌गद् हो गया। अफ्रीकाकी आकृतिमें पेड़ बोनेका काम मेरे हिस्से आया। हिन्दुस्तानके नक्शेमें कमलनयनने बोया। अफ्रीकाके नेताओंने कहा कि, "दोनों देशोंके बीच सौहार्द्र और शान्ति रहे, इसके ये दो वृक्ष द्योतक हैं। हम इन वृक्षोंको उत्साह और लगनसे बढ़ायेंगे, क्योंकि ये वृक्ष महात्मा गांधीके साथ रहे हुए लोगोंके हाथसे बोये जा रहे हैं।" यह विधि पूरी होनेके बाद मैं जो कुछ बोला, उसके एक-एक वाक्यका अनुवाद स्वयं श्री जोमो केन्याटाने किया। अपनी जातिमें वे बड़े वक्ता माने जाते हैं। उन्होंने हमारी बातें थोड़ा विस्तार करके लोगोंको समझायीं। अपनी पसन्दका वाक्य आता, तो वृद्धाएं अपने गाल बजाकर 'हुलुलू' शब्द करतीं। जो लोग पूर्वी भारतमें घूमे हों उन्हें 'हुलुलू' जयध्वनिके बारेमें विस्तारसे कहनेकी जरूरत नहीं। मैंने अंतमें जब उन वृद्धाओंसे हिन्दुस्तान और अफ्रीकाके बीचकी हार्दिक एकताके लिए उनका आशीर्वादकी याचना की, तब उन्होंने बहुत ही उत्साहसे मिनट दो मिनिट चलनेवाला लम्बा 'हुलुलू' शब्द किया। यह प्रसंग कभी भी भुलाया नहीं जा सकता।

इसी स्थान पर कमलनयनने अपने भाषणके अन्तमें 'जय अफ्रीका' का नया जय घोष शुरू किया, जिसे वहांके जवान-बूढ़े, स्त्री-पुरुष, सबने उत्साहके साथ अपना लिया। यह जयघोष इस महाद्वीपमें चल पड़े, तो वह गांधीजीके विश्वप्रेमी अहिंसा-धर्मका प्रतीक होगा।

गिथुगुरीके इस अनुभवसे हम इतने अधिक प्रभावित हुए कि हमने श्री पीटर-कोयनांगेसे उनकी कोई पाठशाला चलती हुई देखनेकी मांग की। तदनुसार हम ता० २७को रवाना हुए। पीटर खुद हमें साथ ले गये। यहां लड़के-लड़कियाँ साथ पढ़ते थे। कुल मिलाकर १०३० विद्यार्थी पढ़ते थे। हमने कई कक्षाओंमें जा कर उनका काम देखा। यहां भी सभी विद्यार्थियोंके अक्षर अच्छे थे। व्याख्यान सुननेके लिए जब

विद्यार्थियोंको सामने बैठाया गया, तब मैंने मांग की कि जो लड़कियां पीछे बैठी हैं वे सामने आ जायें। अवश्य ही यह बात लड़कियोंको खूब पसन्द आयी। जो लड़के पुराने ढंगके कपड़े पहन कर नाच रहे थे, वे भी तुरन्त शर्ट और हाफपेंट पहनकर और सिरके बाल ठीक करके सामने आकर खड़े हो गये और अंग्रेजीमें जवाब देने लगे, तब मुझे बातका खयाल आया कि इन लोगोंने दो युगोके बीचका अन्तर कितनी जल्दी काट दिया है। बढ़ई-कामकी कक्षा चलानेवाले भाईका परिचय कराते हुए श्री पीटरने कहा कि, 'ये भाई हमारे बढ़ई भी हैं राज भी हैं, और धर्मोपदेशक ('प्रीस्ट') भी हैं।' मेहनत-मजदूरी करनेवाले इस पादरीको देख कर मुझे सेन्ट पॉलका स्मरण हो आया।

इस स्थान पर अफ्रीकी लोगोंको संबोधन करके मैंने कहा कि अन्न, वस्त्र और घर मनुष्यकी मुख्य आवश्यकताओंमें से अन्न और घरके मामलेमें आप स्वावलम्बी हैं। जब आप अपने कमाये हुये वल्कल और चमड़े पहन कर फिरते थे, तब आप स्वावलम्बी यानी सुधरे हुए थे। आज अच्छीसे अच्छी रुई पैदा करके भी आप कपड़ेके मामलेमें परावलम्बी हैं, यह दयाजनक स्थिति है। आप जिस दिन चरखा चला कर हाथके करघेमें कपड़ा तैयार कर लेंगे उस दिन स्वावलम्बी हो जायेंगे। ऐसा हो जायगा तो हम अपने देशका एक बड़ा ग्राहक जरूर खो बैठेंगे। परन्तु अपंग पड़ोसीसे व्यापार करके धनवान बननेके बजाय स्वावलम्बी और समर्थ पड़ोसीके साथ दोस्ती पैदा करना दोनोंके लिए श्रेयस्कर है।' अपने पासका चरखा उन्हें दे देनेकी बात मैंने यहीं की, जिसका महत्त्व पीटर कोयनांगेने विद्यार्थियों और शिक्षकोंको विस्तारपूर्वक समझाया।

श्री पीटर अपनी ये दो और ऐसी दूसरी बहुतसी पाठशालाएं किसी सरकारी मददके बगैर चला रहे हैं। उनकी कार्यपद्धतिका नमूना नीचे लिखे किस्सेसे ध्यानमें आ जायगा।

एक जगह भाई पीटर पाठशालाके लिये चन्दा इकट्ठा कर रहे थे। वहां उपस्थित एक देहाती बुढ़ियाके पास देनेको कुछ नही था। इसलिए उसने आगे आकर अनाजकी एक फली चन्देमें दी। पीटरने उसकी इस भावनाका आदर करके वही उस फलीको नीलाम किया। (बापूजीकी यह कला इस देशमें भी पैदा हो गई!) नीलाममें एक भाईने अच्छी रकम देकर वह फली खरीद ली! परन्तु खूबी तो उसके बादकी है। श्री पीटरने इस रकमकी रसीद उस भाईके नाम पर नहीं, परन्तु बुढ़ियाके नाम पर दी! और सभामें ही उन्होंने उससे कहा कि, "अब तुम्हें हमारी संस्थाका हिसाब जब चाहो आ कर देखनेका अधिकार है।'

यहांसे हम श्री जोमो केन्याटाका घर देखने गये। उनके पास बहुत जमीन है। पास ही उनके ससुरकी भी जमीन है। कोलोबस नामक एक किस्मके काले और लंबे बालोंवाले बन्दर होते हैं। उनके कमाये हुये चमड़े घरमें जमीन पर बिछे हुए

थे। उनमेंसे एक बढ़िया चमड़ा उन्होंने मुझे भेंट किया। एक बार इस प्रदेशमें अफ्रीकी लोगोंने क्रोधमें आकर दो यूरोपियनों और पुलिसवालोंको मारा था। इसका बड़ा कांड हो गया था। उसी स्थान पर लोगोंके लगाये हुए दो वृक्ष हमें बताये गये।

अफ्रीकी लोगोंके साथ इस प्रकारकी दोस्ती और माननीय माथूके यहां अफ्रीकी युवकोंके साथ हुई मुलाकात मेरे खयालसे पूर्व अफ्रीकाकी यात्राकी अधिकसे अधिक हार्दिक आनन्द देनेवाली घटनाएं हैं। किलिमांजारोकी गोदमें मुखिया पेट्रोके यहां गये थे, वह प्रसंग भी मैं उतने ही महत्त्वका मानता हूं।

नैरोबीके दस दिनके अनुभवोंकी कितनी ही बातें मैंने जान-बूझकर छोड़ दी हैं। भाई जाल द्वारा हमारे सम्मानमें दिया गया शराबका खाना, 'फ्रेंड्स सर्कल' (मित्र मंडल) में हुआ वार्तालाप, श्रीमान और श्रीमती कौलके यहां चखे हुए काश्मीरी व्यंजन, अरुशावाले नरसीभाईके साथ हुई चर्चाएं वगैरा अनेक मीठे प्रसंग मैंने छोड़ दिये हैं। अलबत्ता, भाई जालके दिये हुए भोजके समयके नृत्योंकी सुंदर कलाके बारेमें बहुत कुछ लिखा जा सकता है। जानेका दिन ज्यों-ज्यों नजदीक आने लगा, त्यों-त्यों हमें ऐसा ही लगने लगा कि मानो यह सजाका दिन आ रहा है। किसी दिन यमुनाताईका गांधी-अलबम देखा करता, तो किसी दिन तात्याके कुटम्बी-जनोंके साथ कांगोके तोते किसुकूके साथ फोटो खिचवाता, किसी दिन सूर्यकान्त और उनके डॉक्टर भाईके साथ तरह-तरहकी बातें करता। भाई बहेरामजीके साथ उनका समाज-सेवाका काम देख आता, अदीस-अबाबाकी ठंडसे डर कर थोड़े गर्म कपड़े खरीद लेता। इस तरह करते-करते जानेका दिन अनिवार्य रूपमें आ ही गया। मन उदास हो गया, खुशमिजाज अप्पासाहब भी गमगीन दिखाई देने लगे। इस प्रकार जुलाईका महीना बिदा ले कर चला गया और पहली अगस्तका उदय हुआ।

जिस हवाई अड्डेके नजदीक रेडियो पर मैं एक भाषण दे आया था, उसीसे हमें रवाना होना था। सवेरे जल्दी उठ कर हम तैयार हुए। हमें कल्पना नही थी कि हवाई अड्डे पर इतने अधिक लोग जमा होंगे। सिर्फ नैरोबीके ही नही परन्तु कंपालाके भी कुछ भाई अचानक आ पहुंचे थे। हरएक यात्रीके भाग्यमें बिदाईकी घटनाएं होती ही हैं। नये स्थान पर नये मित्र और नये अनुभव मिलनेकी उत्सुकता-में बिदाईका दुःख इन्सान भूल जाता है। आज ऐसा नहीं हुआ।

जब हम पहले-पहल नैरोबी पहुंचे थे, तब हिन्दुस्तानसे आये हुए मेहमानके तौर पर हमारे सम्मानमें बहुत लोग स्टेशन पर जमा हुए थे। आज जब हम नैरोबी छोड़ कर जा रहे थे, तब उससे भी अधिक लोग हवाई अड्डे पर एकत्रित हुए। परन्तु आदर करनेकी भावनासे नही बल्कि प्रेमके आकर्षणसे। कई लोग हमारे स्थायी मित्र जैसे बन गये थे। कई कुटुम्बोंमें हम स्वजन जैसे हो गये थे। सवेरे ७ से ६ बजे तकका सारा समय बिदाईकी बातें करने और अलग-अलग टोलियोंके फोटो लेनेमें ही हमने बिताया। कई लोगोंने प्रेमके चिह्नस्वरूप हमें फूल

और फोटो दिये, परन्तु अडालजा दम्पतीने मुझे 'दि अकिकूयू' नामक कीमती पुस्तक भेंट की। पीटर कोयनागे, जोमो केन्याटा वगैरा पूर्व अफ्रीकाके नेता इसी किकूयू वंशके हैं। कैथोलिक मिशनरियोंकी तरफस लिखी गई इस पुस्तकमें इस जातिका जीवन सुन्दर रूपमें प्रतिबिंबित हुआ है और चित्र इतने ज्यादा है कि सारा जीवन प्रत्यक्ष होते देर नही लगती। इन लोगोके घरोंमें जाकर हमने जो कुछ आंखोंसे देखा, उसका असर सबसे ज्यादा था। उनकी पाठशालाओं और उनके म्यूजियमोंमें हम जो देख सके, वह उसमें मूल्यवान वृद्धि थी; और उसमें जो कुछ कमी रह गई होगी, वह इस पुस्तक द्वारा पूरी हो जाती थी। हमारी यात्राकी सफलता चाहनेके लिए इससे अधिक सुन्दर भेंट क्या हो सकती थी ?

'पुनरागमनाय च' कहकर भारी हृदयके साथ हमने पूर्व अफ्रीकासे बिदा ली।

३८. जूड़ा केसरीके देशमें

अगर हम मिश्र गये होते तो रास्तेमें इथियोपियाकी राजधानी अदीस-अबाबा (नवपुष्प) जाना क्रमप्राप्त था। मिस्र जाना मौकूफ करनेके बाद अदीस-अबाबा जानेका विशेष प्रयोजन नही था। परन्तु कमलनयनकी इच्छा थी कि हम वहां होकर जायं।

सारे अफ्रीका महाद्वीपमें यूरोपियन लोगोंका ही राज्य या अधिराज्य है। सिर्फ इथियोपिया या ऐबिसिनिया ही उसमें अपवाद है। यहांका राजा या बादशाह धर्ममें ईसाई है इस कारण हो या यहांका मुल्क पहाड़ी और दुर्गम होनेसे फौज या व्यापार यहां तक ले जानेमें कठिनाई होगी इस कारण हो, परन्तु यह राज्य स्वतंत्र जरूर रह गया। बीचमें इटलीकी नीयत बिगड़ी। उसने १९३५ के अरसेमें इथियोपिया पर चढ़ाई की और यह देश जीत लिया। वहांके सम्राटको स्वदेश छोड़कर इंग्लैंड जा कर रहना पड़ा। यूरोपका दूसरा महायुद्ध शुरू होते ही इंग्लैंड-ने इटलीको हरा कर इथियोपियाका राज्य वहांके बादशाहको लौटा दिया और अपनी राजनीतिके अनुसार उसके हर विभागमें एक-एक ब्रिटिश सलाहकार नियुक्त कर दिया। बादशाहने यह व्यवस्था तीन वर्ष तक निभाई। उसके बाद उसने हर-एक महकमेके लिए यूरोप और अमरीका दोनों खंडके अलग-अलग देशोंके गोरोंको सलाहकारके तौर पर मुकर्रर कर दिया है। इस प्रकार उसे पश्चिमके होशियार आदमियोंकी सलाह भी मिलती है और किसी एक देशके प्रभावमें उसका राज्य आता भी नही। इथियोपियामें वहांके बादशाहने रूसियोंको अलग नही रखा, इस पर अंग्रेज उस पर नाराज रहते हैं। परन्तु आजकी स्थितिमें कुछ कर नही सकते। इथियोपियाके बादशाह हाइले सेलासी शिक्षाको इतना ज्यादा महत्त्व देते हैं कि

उन्होंने यह विभाग खासतौर पर अपने ही अधीन रखा है। इस विभागमें विदेशियों की मदद काफी मात्रामें ली जाती है। उसमें हिन्दुस्तानी शिक्षकोंकी संख्या खासी है।

इथियोपिया देश इतना पिछड़ा हुआ है कि सारे देशमें एक भी कॉलेज नहीं है। अदीस-अबाबामें बादशाहकी तरफसे अपने खर्च पर एक हाईस्कूल चलाया जा रहा है। दूसरे दो-चार शहरोंमें छोटे-छोटे हाईस्कूल हैं। शिक्षा वहांकी आम्हारिक भाषा और अंग्रेजीके द्वारा दी जाती है। मैंने मान रखा था कि आम्हारिक भाषाके लिए उर्दू जैसी ही कोई लिपि होगी। परन्तु आम्हारिक लिपि नागरी या रोमनकी तरह बाईं ओरसे दायीं ओर लिखी जाती है।

तमाम अफ्रीका महाद्वीपमें इथियोपिया ही एक स्वतंत्र देश होनेके कारण मैं मानता था कि अफ्रीकी लोगोंमें जो स्वतंत्रताकी भूख जगी है और गोरोंका जुआ उतार फेंकनेकी जो तमन्ना कुछ अफ्रीकी लोगोंके दिलोंमें है, उसका नेतृत्व प्रगट या गुप्त रूपमें इथियोपियन लोग करते होंगे। परन्तु इस देशमें प्रत्यक्ष पहुंचनेके बाद ऐसा कुछ महसूस नहीं हुआ। इथियोपियन लोग अपने ही सवालोंके नीचे दब गये हैं। शायद पूर्व-पश्चिम या दक्षिण अफ्रीकाके लोगोंके साथ इथियोपियन लोगोंके वंशका मेल भी न हो! जब मिस्र जाऊंगा और वहांके हालातकी जांच करूंगा, तब इस सवाल पर अधिक प्रकाश पड़ेगा।

इथियोपियाका मौजूदा राज्य ३५,००० वर्गमीलका है। और जनसंख्या पौन करोड़से जरा ज्यादा है। इस हिसाबसे प्रति वर्गमील आबादीका अनुपात बाईस भी नहीं है। फिर भी यहांकी सरकार बाहरके लोगोंको अपने राज्यमें आ कर बसने देनेको रजामंद नहीं है। यूरोपियन लोगोंने दुनियामें जहां-तहां जिस प्रकार पैर फैलाये हैं, उसे देखते हुए सभी लोगोंका दूसरे देशोंके प्रति सशंक रहना आश्चर्यकी बात नही है।

इटालियन लोगोंके इथियोपिया जीतनेसे पहले इस देशमें हमारे हिन्दुस्तानी लोगोंकी संख्या लगभग चार हजार थी। इटालियन लोगोंने इन सबको यहांसे निकाल दिया। आज इस देशमें हमारे लोगोंकी तादाद पांच सौसे ज्यादा नहीं। इनमें से साढ़े तीन सौ तो अदीस-अबाबामें ही रहते हैं। इनमें ज्यादातर गुजरात-सौराष्ट्रकी तरफके हिन्दू-मुसलमान ही हैं। शिक्षकोंमें कुछ महाराष्ट्री हैं, जब कि अधिकांश गोआ या कोचीनके क्रिरिस्तांव (ईसाई) है। कुल मिला कर सत्तरसे ज्यादा नहीं हैं। यहांका साठसे सत्तर फीसदी व्यापार हमारे लोगोंके हाथमें है। हां, उद्योगमें गोरोंका अनुपात अधिक है। यहांकी सरकार बहुत चाहती है कि हिन्दुस्तानी लोग अपनी पूंजी लगा कर इथियोपियाकी खेतीबाड़ी, उसका व्यापार और उसके उद्योग बढ़ानेमें मदद दें। कपड़ेकी मिलें, शक्करके कारखाने, सीमेण्ट, दियासलाई, चमड़ा कमानेका काम वगैरा बहुतसे उद्योगोंके विकासके लिए यहां सुविधा है। मकई, कॉफी, शहद, मोम और तरह-तरहके फलोंके बगीचे—ये सब कमाईके उत्तम क्षेत्र हैं। मुश्किल एक ही है कि यहां कानूनका नहीं, परन्तु बादशाह और

उनके अधिकारियोंकी मर्जीका राज्य है। इसलिए हमारे लोग यहां पूंजी लगानेमें हिचकिचायें, तो इसमें जरा भी आश्चर्य नहीं।

ऐसे इस देशके लिए हमने पहली अगस्तको नैरोबी छोड़ा। नैरोबीसे अदीस-अबाबा, वहांसे दिरेदवा, जीबुटी, अदन कराची और बम्बई—इतने हवाई जहाजके सफरका टिकट १६०० शिलिंगका था।

हमारा हवाई जहाज ठीक आठ बजे उड़ा। ७१२ मील तुरन्त जाना था। हम ज्यों ही उड़े कि थोड़े ही समयमें बादलोंमें फंस गये। ऊपर, नीचे, आसपास—सर्वत्र क्षीरसागर! इस स्थितिकी अद्‌भुतताके आदी हो जानेके बाद उसमे बहुत मजा नहीं रहता। इसलिए जब हमारा वायुयान इन बादलोंमेंसे ऊपर निकला तब हमें संतोष-सा हुआ। बादमें तो हमारा विमान मानो इन बादलोंकी गद्दी पर लोटता हुआ चला—परन्तु गद्दीके किनारेसे। सारे बादल दायीं तरफ फैले हुए थे; बायीं ओर केनियाकी उपजाऊ जमीन दिखाई दे रही थी।

थोड़े समय बाद दायीं ओर माउण्ट केनियाका गर्वोन्नत शिखर अपने लम्बे-चौड़े आसन पर विराजमान दिखायी दिया। उस शिखरके पीछे अनेक बादल होनेसे सारा दृश्य बहुत ही उठावदार दिखाई देता था। जो पर्वत हम नेरीकी तरफमे जाकर देखनेवाले थे, वह अब हमने आखिर विमानमें बैठ कर देख लिया। किलिमांजारोकी ऊंचाई १४,००० फुटसे ज्यादा है। केनियाकी १७,००० से कम नहीं। हवाई जहाजसे जहां तक केनियाकी चोटियां दिखाई दी, वहां तक और कुछ देखनेको जी ही नही चाह सकता था। कई छोटे बड़े शिखरोंके बीच एकदम आकाश को छेदनेवाला केनियाका मुख्य शिखर ऐसा लगता था, जैसे साधारण मनुष्योंके बीच किसी महात्माकी विभूति खड़ी हो। दुनियाके बड़े-बड़े पहाड़ोंमे भी केनियाका पर्वत पुराण-पुरुष माना जायगा। वह इतना पुराना है कि उसका सिर घिमते-घिसते उसकी ऊंचाई तीन हजार फुट तक कम हो गई है। उसके सिर पर ज्वाला-मुखीका जो द्रोण (मुंह) था, वह भी कभीका घिस गया और फिर भी आज वह १७,००० फुटकी अभ्रभेदी ऊंचाई दिखा सकता है। ऐसे पहाड़का ही नाम आस-पासके मुल्कको दिया गया हो तो इसमें आश्चर्य क्या? गोरे लोग तो इस पहाड़के चारों तरफ लिपट गये हैं।

अन्तमें महान केनिया भी पीछे रह गया और आखिरमें ओझल हो गया। अब केवल बादल ही रह गये। उसके बाद सादी जमीन आई। यह सब देख कर आंखें थक गई और हमसे पूछे बिना ही नीदमें डूब गयी।

ताजा होकर आसपास देखा तो दारेस्सलामकी तरफका एक गोरा वकील हिन्दुस्तानके बारेमें कोई पुस्तक पढ़ रहा था। उसके साथ बातें शुरू हुई। रोज़गार के सिलसिलेमें उसे कराची और ईरानकी खाड़ीकी ओर जा कर वापस आना था।

और कुछ न सूझनेके कारण मैंने हवाई जहाजमें फिरसे नाश्ता किया। इतनेमें

दायीं ओर सुन्दर-सुन्दर सरोवर एकके बाद एक अस्तित्वमें आने लगे। कुल मिलाकर कोई पांच सरोवर हमने पार किये होंगे। नक्शेमें देखने पर इनके नाम चामो, अबाया, औसा, शाला, लांगाना और जवाई थे। इन सरोवरोंके पीछे मेण्डेबो पहाड़की कतार दिखाई दे रही थी। सरोवरोंके कारण इथियोपियाकी भूमिके बारेमें मनमें विशेष आकर्षण पैदा हुआ। नक्शेमें सरोवरोंके नाम ढूंढते-ढूंढते पता नहीं चला कि हम अदीस-अबाबाके नजदीक पहुंच रहे हैं। परन्तु हवाई जहाज जल्दी-जल्दी ऊचा-ही-ऊंचा चढ़ने लगा, तब विश्वास हुआ कि अब अदीस-अबाबा आना ही चाहिये। यह दुनियाके ऊंचेसे ऊंचे शहरोंमेंसे एक है। समुद्रकी सतहसे नौ हजार फुटकी ऊंचाई पर बसे हुए शहर संसारमें कितने होंगे? सचमुच अदीस-अबाबा एन्टोटो पहाड़ पर खिला हुआ मनोहर और खुशबूदार नया फूल ही है। अदीस-अबाबाका वहांकी भाषामें अर्थ होता है—नया फूल। खुशबूदार इसलिए कि सारे शहरमें जहां-तहां युकेलिप्टसके ऊंचे-ऊंचे पेड़ हैं।

ठीक साढ़े बारह बजे हम अदीस-अबाबाके हवाई अड्डे पर पहुंचे। हमारी सरकारकी तरफसे हालमें ही एलचीके रूपमें नियुक्त हुए सरदार संतसिंह, उनकी प्रौढ़ा पत्नी और बहुतसे हिन्दुस्तानी हमें लेने आये थे। सरदार साहबने पूछा कि, 'मेरे मेहमानके तौर पर मेरे यहां रहेंगे या यहांके सबसे बढ़िया होटलमें ठहरना है? तैयारी दोनोंकी की गई है।' मैंने कहा, 'मैं तो आश्रमवासी हूं। कहीं भी एक कोना मिल जाय तो आरामसे रह सकता हूं। और हम असुविधाजनक मेहमान साबित नहीं होंगे। शाकाहारी है।' इतनेसे विनोदके साथ हमने तय किया कि सरदार संतसिंहके यहां ही रहना है। उनकी पत्नी खुद अन्नाहारी ही थी। इसलिए खुराकके बारेमें कोई कठिनाई नहीं थी। हमारे डेढ़ दिनके कयाममें तीन चार जगह खाना था, इसलिए होटलमें ठहरनेका कोई अर्थ नहीं था। और होटलमें ठहरनेमें प्रतिष्ठाका बहिष्कार भुगतना पड़ता है। किसीके साथ खुल कर बातें करनेका समय ही नहीं मिलता।

मुझे सरदार संतसिंहके साथ इथियोपियाकी ही नहीं, परन्तु हिन्दुस्तानकी स्वराज्यकी लड़ाईके विषयमें भी बहुत-सी बातें करनी थी। वे दिल्लीकी बड़ी धारासभा(संसद)के एक सदस्य थे। आठ वर्ष तक सरकार विरोधी दलके नेता थे। अंग्रेज कर्मचारियोंके साथकी नोंकझोंकमें दिखाई हुई उनकी बुद्धिकी तीक्ष्णता मैं अखबारोंमें दिलचस्पीके साथ पढ़ता था। इसलिए वे सारे प्रसंग दुबारा याद करनेमें मुझे बड़ा रस आ सकता था।

इथियोपियामें वे भारतके राजदूत मुकर्रर हुए, उससे पहले भारत सरकारकी तरफसे १९४८में इस देशमें जो सौहार्द मंडल ('गुडविल मिशन') भेजा गया था उसके वे प्रमुख थे।

हमारे कार्यक्रममें खाना, बोलना, देखना और खानगीमें चर्चा करना इतना

ही था। शामको इंडियन एसोसियेशनकी तरफसे म्युनिसिपल हॉलमें बड़ी सभा रखी गई थी। जहां-तहां इथियोपियन झण्डे दीवारों पर शोभा दे रहे थे। इथियोपियन झण्डेके रंग और हिन्दुस्तानके झण्डेके रंग लगभग एकसे ही हैं। सरदार साहब स्वयं ही उस सभाके अध्यक्ष थे। मैं जानबूझ कर गुजरातीमें बोला, क्यों कि श्रोताओंमें करीबन् सभी स्त्री-पुरुष—हिन्दू और मुसलमान—गुजराती थे। दूसरे लोगोंके साथ खानगीमें अंग्रेजीमें बात करके काम चलाया जा सकता था। सरदार संतसिंह गुजराती ज्यादा नही समझते थे। परन्तु मेरे बाद श्री कमलनयन बजाजका भाषण हिन्दीमें हुआ। सरदार साहबको वह बहुत ही पसन्द आया। सभाके बाद इंडियन एसोसियेशनकी तरफसे इम्पीरियल होटलमें भोज था। कोई बीस आदमी होंगे। शाकाहारी भोजन वहां अच्छा तैयार किया गया था।

अदीस-अबाबा पहुंचने पर मुझे विशेष आनन्द यह हुआ कि यहांकी भारतीय जातिके एक कुशल सेवकके रूपमें जिन रतिलाल सेठका नाम मैंने कइयोंके मुंहसे सुना था, वे मेरे एक पुराने युवक मित्र निकले। एक बार मैं कराची गया था, तब करसनदास माणेक, फोटोग्राफर जीवराज महेता वगैरा मेरे किसी समयके विद्यार्थियोंके संग युवक रतिलाल सेठ भी हमारी मनोराकी सैर पर आये थे। इतने पुराने सम्बन्धके बाद दिल खोल कर बातें करनेमें मुश्किल क्या हो? उनसे वहांकी सब परिस्थितिके बारेमें बहुतसी बातें अधिकृत रूपमें जान ली।

ऐसे ही आनन्दका एक और विषय यह था कि सरदार साहबके मंत्री श्री गुणवंतसिंह मलिक भी चि० सरोजिनीके बालमित्र निकले। ये लोग भी बचपनमें सिन्धमें ही एक-दूसरेसे मिले थे। मनुष्यका स्वभाव ऐसा विचित्र है कि नये अनुभव प्राप्त करनेकी उमे जितनी उत्सुकता होती है, उतनी ही पुराने संस्मरण ताजा करनेकी होती है। नव-कुसुम-पुरमें हम दोनोंको दोनों प्रकारका आनन्द पूरी तरह मिला।

हिमालयकी निवृत्ति छोड़नेके बाद मेरी तमाम यात्राएं हमेशा जल्दीमें ही हुई हैं। कहीं भी जाना हो तो पहलेसे उस स्थानके बारेमें जो पढ़ा हो उतना ही ज्ञान होता है। उस प्रदेशमें बैठ कर उसके बारेमें फुरसतसे पढ़नेका वक्त ही नहीं मिलता। अदीस-अबाबा या इथियोपिया जानेका विचार ही नहीं था, इसलिए उसके बारेमें कुछ भी नहीं पढ़ा था। सरकारी दृष्टिसे लिखी गई परन्तु बहुत अच्छी दो-एक पुस्तकें सरदार संतसिंहने मुझे दी। परन्तु उन्हें पढ़ू कब? समयाभावकी खीजमें सुबह तीन बजे उठा और जितना पढ़ सकता था उतना पढ़ लिया। हमारे ऋषि-मुनियोंने एक समझदारीका नियम बनाया है कि प्रातः ब्राह्ममुहूर्तमें उठ कर वेदब्रह्मका अध्ययन करनेके बाद थकनेके कारण दुबारा सो नही जाना चाहिये। 'न निशान्ते परिश्रान्तो ब्रह्माधीत्य पुनः स्वपेत्'। कारण स्पष्ट है। सुबहके अध्ययनके बाद सो गये तो पढ़ी हुई चीजें भी सो जाती हैं। मैं यह नियम

जानता था, इसलिए फिर सोनेका विचार छोड़ कर प्रार्थना वगैरासे निपटकर हम यहांका गुजराती स्कूल देखने गये। प्रधान अध्यापक रोग-शय्या पर थे। उनकी पत्नीने पाठशाला दिखाई। मेरे ख्यालसे हमारी पाठशालाओंमें सिर्फ अच्छे शिक्षक रखनेसे काम नहीं बनता। बच्चोंके लिए घरका वातावरण सुधरे और घर पर अच्छे संस्कार जड़ पकड़ें, तो ही पाठशाला पर की गई मेहनत सफल होती है। आगेसे पाठशालाओंमें कक्षाओंके शिक्षकोंके सिवा एक अधिक शिक्षक रखनेका नियम होना चाहिये। उसका काम बच्चोंके मां-बापसे मिल कर उन्हें अधिक खर्चमें डाले बिना घरका वातावरण बदलनेमें मदद देना हो।

यहांसे दो मोटरोंमें घूमने निकले। अदीस-अबाबासे अदीस-आलम—पुरानी राजधानीके रास्ते दूर तक खुले प्रदेशमें हम सैर कर आये। रास्तेकी हरियाली, आसपासके पहाड़, उनमें बायीं ओरके एक पहाड़का सुडौल आकार—सभी कुछ आकर्षक था। सरदार संतसिंहकी मोटरका तिरंगा झंडा इथियोपियन झंडे जैसा ही दूरसे लगता था, इसलिए रास्ते पर भोले लोग सिर नीचे झुकाकर उस झंडेको सलाम करते थे। उस सलामकी तहमें सरकारी हुकूमतका डर नहीं, परन्तु अपने राज्य और राजपुरुषोंके प्रति भक्ति स्पष्ट दिखाई देती थी।

रास्तेमें भी सरदार साहबके साथ ज्यादातर हिन्दुस्तानके बारेमें ही बातें हुईं। इतना सुन्दर और इतना विस्तृत रमणीय प्रदेश इतनी ऊंचाई पर है, इससे मनमें ईर्ष्या तो होती ही थी। यहांके लोग सोच लें तो यहांकी जमीन और यहांकी आबो-हवाकी इस सुविधासे आला दर्जेकी समृद्धि जुटा सकते हैं।

दोपहरको सरदार साहबकी तरफसे रास होटलमें भोज था। इसमें इथियोपियन सरकारके खास-खास मंत्री थे। बादशाह हाइले सेलासी बाहर गये हुए थे, इसलिए उनसे मिलना नहीं हो सका। उनके प्राइवेट सेक्रेटरी आये थे। अर्थमंत्री और व्यापार-उद्योगके मंत्रीके साथ थोड़ीसी बातें हुई। इस देशमें शहद और मोम भी आयके अच्छे साधन हैं, यह मैंने सुबह ही पढ़ा था। इसलिए मैंने इसकी भी यहां बातें की। हिन्दुस्तान और उसके स्वराज्यके बारेमें उन लोगोंका बातें करना और अनेक प्रश्न पूछना स्वाभाविक था। दो मंत्री अपनी-अपनी पत्नियोंके साथ आये थे। अंग्रेजी भाषा और रीति-रिवाजसे वे परिचित थे, इसलिए उनके साथ बातें करनेमें मुश्किल नहीं हुई। उनमें बहन एलिजाबेथ इतनी ममतावाली थीं कि उन्होंने हमें अदीस-अबाबाके बड़े-बड़े प्रसिद्ध ईसाई गिरजे दिखानेका जिम्मा लिया। शहरके भीतर एक बड़ा गिरजा हमने बाहरसे ही देखा। दूसरा अन्दरसे देखा। उसके पूजा और उपदेशके स्थान और बैठनेकी सुविधाएं बिलकुल दूसरे ही ढंगकी होनेके कारण बहुत आकर्षक लगी। यह भी विचार आया कि ऐसी रचना हमारे यहा क्यों न जारी करें?

अदीस-अबाबाके पासकी एक ऊंची पहाड़ी पर एक पुराना ईसाई गिरजा

और उसके साथ एक मठ है। हमारे जंगलोंमें स्थित किसी मंगल-मंदिर जैसा यहांका वातावरण था। ऊपरसे आसपासका इलाका दूर-दूर तक दिखाई देनेके कारण मंदिरकी ऊंचाई भव्य लगती थी। हमने अन्दर जा कर प्रदक्षिणा की। दीवार परके चित्र—ईसा मसीहके और साथ ही उनके अनेक शिष्यों और संतोंके चित्र—बिलकुल हिन्दू ढंगके थे। मंदिरके उत्सव, पूजाविधि वगैरा बहुत कुछ हमारी ही पद्धतिके हैं, इसलिए इस देशके कॉप्टिक चर्चका इतिहास जान लेनेका कुतूहल बढ़ गया।

ईसाई लोगोंकी आधुनिक संस्कृतिका श्रेय ज्यादातर विज्ञान और विशाल संगठनको है। उसकी जड़में ईसाई धर्मको अपेक्षा यूनानी लोगोका तत्त्वज्ञान और रोमन लोगोंकी साम्राज्यप्रियता ही है। असली ईसाई धर्म एशियाई वृत्तिका है। उसके भी कितने ही नये-नये संस्करण हो चुके हैं। पीटर, मेथ्यू, जॉन वगैरा शिष्योंको ताकमें रख कर सेण्ट पॉलने ईसाई धर्मको नया ही रूप दे दिया। इसके बाद उसके अनेक संस्करण होते गये। मैं तो मानता हूं कि ईसाई धर्मका असली स्वरूप अच्छी तरह समझ कर उसमें वेदान्त और अभेद भक्तिकी बुनियाद डालनेका काम किसी दिन हिन्दुस्तानके ईसाई ही करेंगे। बंगालके ब्रह्मबांधव उपाध्यायने ऐसा थोड़ासा प्रयत्न किया था। यहांके मठमें रहनेवाला एक ईसाई साधु वहां आया। उसके कपड़े, उसकी दाढ़ी, बातें करनेका तरीका, सब कुछ हमारे यहांके देहाती साधु जैसा ही था। आसपासके लोगोंके मनमें इस साधुके प्रति बड़ा आदर था। साधुके व्यवहारमें उस आदरकी जरा भी कद्र दिखाई नहीं देती थी!

रातका भोजन घर पर ही था, इसलिए मैं तो जल्दी खाकर सो ही गया। कमलनयनने अफ्रीकाके वन्य-जीवन सम्बन्धी अपनी लाई हुई फिल्में दिखाईं और इथियोपियामें रहनेवाले हमारे लोगोंको आनन्द दिया।

इतनी दूर विदेशमें रहनेवाले हमारे भारतीय लोगोंको जब पता चलता है कि स्वदेशसे कोई आया है, तब वे उससे मिलनेके लिए बहुत ही आतुर होते हैं और निमंत्रण भेजनेकी धांधली मचा देते हैं। अदीस-अबाबामें ही दिरेदवाके भारतीयोंके पत्र आ गये थे। हमारा कार्यक्रम पहलेसे ही निश्चित हो चुकनेके कारण दिरेदवामें एक दिन बिताना भी असंभव था। हमने उनसे इतना ही कहा कि हवाई अड्डे पर जो दस-पांच मिनट मिल सकेंगे, उन्हींमें स्वदेशके भाइयोंसे मिलनेका आनन्द प्राप्त कर लेंगे।

दूसरी अगस्तको हमने अदीस-अबाबा छोड़ा। परन्तु उस राजधानीकी नीयत हमें आसानीसे जाने देनेकी नहीं थी। सवेरे जल्दी उठ कर नाश्ता वगैरा करके चले। सरदार साहबकी तबीयत अच्छी नहीं थी। उन्हें हवाई अड्डे तक न आनेके लिए मैंने बहुतेरा कहा, परन्तु वे क्यों मानने लगे? अड्डे पर सबके साथ आनंदसे बातें कीं। भाई रतिलाल सेठने यहांकी यादगारके रूपमें एक छड़ी मुझे दी। यहांके

खुशबूदार युकेलिप्टसकी ही यह पतली छड़ी थी और उसकी हाथीदांतकी मूठ थी। बिलकुल सादी छड़ी थी, परन्तु सुन्दर थी और प्रेमकी सुगन्ध धारण किये हुए थी।

हमारा हवाई जहाज रवाना हुआ। वह कोई मुसाफिरोंके लिए आरामकी बैठकोंवाला जहाज नहीं था। भारवाही भी नहीं कहा जा सकता। एक तरफ थैले और तरह-तरहका माल बड़े-बड़े रस्सोंसे बांध रखा था और सामनेकी ओर टीनकी बेंच पर हम चौदह यात्री बैठे थे। मेलगाड़ीमें बैठनेके आदी लोगोंको मालगाड़ीके डिब्बेमें कोई बन्द कर दे, तब उनके चेहरे जैसे दिखाई देते हैं वैसे ही हमारे हो गए थे! हम रवाना हुए और हमारे मेजबान अपने-अपने घर गये। हमारा जहाज कोई २५ मिनट चल कर नीचे उतरा। रास्तेमें बहुत ही बादल होनेके कारण इतना ही दिखाई दे सकता था कि किस बादल पर सूर्य-प्रकाश अधिक है। सूर्य-प्रकाशकी दिशा बदली तब मुझे जरा अटपटासा तो लगा, परन्तु मेरा ध्यान उस तरफ नहीं था। दिरेदवा इतनी जल्दी आ नहीं सकता था। मैं चिन्तामें पड़ गया कि बीच-में कोई छोटा-सा स्टेशन है या क्या? विमान ठहर गया और सीढ़ियोंसे उतर कर बाहर देखता हूं तो सामने अदीस-अबाबा! जाग रहे हैं या स्वप्नमें हैं? यह हुआ क्या!···

इतनेमें विमानवालोंने कहा कि, "हम कोई पचास मील गये होंगे कि इतनेमें हमारा इंजन जरा आवाज करने लगा। हमें विश्वास नहीं रहा कि यह जहाज दिरे-दवा तक सही-सलामत जायगा। अदन तक पहुंचनेकी हिम्मत ही कैसे की जा सकती थी? इसलिए आगे सौ मील जानेके बजाय वापस पचास मील जानेमें ही समझदारी है, ऐसा निश्चय करके हम गोल चक्कर काट कर वापस लौटे। आप मुसाफिरोंको जोखिममें कैसे डाला जा सकता है?" पच्चीस मिनटकी सैर करके हम जहां थे वहीं आ पहुंचे! कंपनी दूसरा हवाई जहाज लायी और उसमें सारा माल बदल कर रख दिया और हम दूसरी बार रवाना हुए।

यह जहाज भी कैसा निकला? आप कहें उतना जमीन पर दौड़नेको वह तैयार था। अड्डेके मैदानमें उसने दो चक्कर लगाये, परन्तु उड़नेका नाम ही न लेता था! चालकोंने उसकी बहुत खुशामद की, परन्तु वह माना ही नहीं। हम फिर नीचे उतरे। कम्पनीवालोंने हमसे कहा कि, "अब आप जरा आराममें नाश्ता कीजिए। इसके दाम कम्पनी देगी।" गोदाममें अब एक ही विमान शेष था। उसे अच्छी तरह जांच कर यह भरोसा किया कि वह अच्छा है। फिर उसे ले आये। मालका ढेर उसमें रखा और फिर हम भी तीसरी बार सवार हुए। विश्वास नहीं था कि यह जहाज रवाना होगा। परन्तु ठीक साढ़े नौ बजे जहाज रवाना हुआ और कोई आनाकानी किये बिना डेढ़ घण्टेके भीतर दिरेदवा पहुंच गया।

वहांके लोगोंने अड्डे परका एक हॉल गलीचों, झंडों वगैरासे खूब सजाया था। अड्डा गांवसे काफी दूर था। वहांसे सब चीजें लाना आसान नहीं था। दिरे-

दवाके सभी हिन्दुस्तानी इकट्ठे हुए थे। और दो घण्टेसे बैठे हमारी राह देख रहे थे। ईश्वरने खाने और बोलनेके लिए हमें एक ही इन्द्रिय दी है। इसकी असुविधा यहां स्पष्ट दीख रही थी। लोगोंका बड़ा आग्रह था कि हम कुछ खायें। और इसके लिए भी वे उत्सुक थे कि हम दो शब्द बोलें। अच्छा हुआ कि मुख्य मेहमान हम दो थे। सरोजिनीके पास खाने या बोलने—दोमेंसे एकका भी उत्साह नही था! हमने श्रम-विभाग किया। कमलनयनने नगर-निवासियोंका आतिथ्य स्वीकार किया और मैंने उनके कान भर दिये।

दिरेदवासे एकाध घंटे आगे उड़े और जीबुटी पहुंचे। इसे अफ्रीकाका मिरा कह सकते हैं। विमानसे उतर कर एक मोटरमें बैठ कर सभाके लिए एकाध फर्लांग गये। वहांके लोगोंके सामने मैंने कोई दस मिनट गुजरातीमें भाषण दिया। लोगोंने कहा कि, "यहांके मुसलमान हमारे साथ शरीक नही होते। पाकिस्तानी मनोवृत्ति रखते हैं।" मैंने उन्हें समझाया कि हमारी वृत्ति कैसी होनी चाहिए। मैंने देखा कि कहीके भी हों, गुजराती लोग गांधीजीकी दृष्टिको आसानीसे समझ लेते हैं और यथाशक्ति उस पर अमल भी करते हैं।

जीबुटीसे रवाना हुए और मेरी उत्कंठा बहुत ही तीव्र हो गई। क्योंकि अदन-की खाड़ी पार करने पर हम ऐसी जगह पहुंचे, जहांसे एक ओर अफ्रीका महाद्वीप-की भूमि दिखाई देती थी और दूसरी तरफ एशियाकी। और नीचे छोटे-छोटे द्वीपों से सजा हुआ हरा पानी! हवाई जहाजका आविष्कार न हुआ हो, तो ऐसा विराट-भव्य काव्य मुझे आंखो देखनेको कहांसे मिलता? मैंने मनमें प्रार्थना शुरू की कि भगवान! दो महाद्वीपोंको इकट्ठा दर्शन करने जितनी ऊंचाई पर मैं पहुंचा हूं। दोनों महाद्वीपोंकी पक्षपात-रहित सेवा करनेकी वृत्ति और शक्ति मुझे दीजिए।

समुद्रकी शोभा देखते-देखते हम आगे चले। अफ्रीकाने—ढ़ाई महीनेसे परि-चित अफ्रीकाने—हमसे विदा ली और हम एशियाके मेहमान बने।

हमारे खयालसे दो महाद्वीपोंका अर्थ है दो अलग दुनिया। परन्तु दो महाद्वीप जहा पास आते हैं, वहां रहनेवाले लोगोंको वे दो नाम सुन कर बहुत बड़ा अन्तर या फर्क जैसा नही लगता। जीबुटीके लोग और अदनके लोग इतने नजदीक हैं, उनका जीवन इतना अधिक ओतप्रोत है कि यहांसे वहां और वहांसे यहां आनेमें उन्हें ऐसा लगना ही नही कि हमने कोई भारी देशान्तर या खंडान्तर किया है। और अगर मनुष्यका जीवन राजनीतिक संगठनसे विभक्त नहीं हुआ होता, तो आज जो थोड़ा-सा अन्तराय है, कचहरियोंका, शिक्षण-संस्थाओंका और कानूनका, वह भी न रहता। यह विचार आया और मेरा मन भी, जो महाद्वीपोंका अन्तर हो जानेकी कल्पनासे ऊंचा उड़ा था, मानवताकी विशाल भूमि पर नीचे उतर गया। अदनके सिर पर आने पर नीचे नमक पकानेके 'आगर' दिखाई देने लगे। अदनके वनस्पतिहीन पहाड़, उनके बीचका बड़ा ज्वालामुख और अदनको अरबस्तानके

साथ जोड़ देनेवाली रेतीली संयोगभूमि—ये सब देखते-देखते ढ़ाई बजे हम अरबस्तानकी जमीनका स्पर्श कर सके।

और देखते-ही-देखते यहांके भारतवासियोंने हमें घेर लिया।

३९. पैगम्बर साहबके देशमें

अदनकी भूमि पर पैर रखनेसे पहले मनमें दो-चार विचार आये। सबसे पहला यह कि हमारा कितना भाग्य है कि जिस भूमि पर मुहम्मद पैगम्बरने दीन और ईमानका प्रचार किया उस पर हम पैर रख रहे हैं। दूसरा ख्याल यह आया कि अदनकी भूमि अरबस्तानके प्रदेशके साथ पहलेसे जुड़ी हुई थी या दोनों ओरके समुद्रकी लहरोंने रेत फेंकनेका खेल खेलते-खेलते यह संयोगभूमि तैयार कर दी? अदनके ज्वालामख देख कर ऐसा ही लगता है कि असलमें यह द्वीप अफ्रीकाका ही भाग होगा। अफ्रीकाकी भूमिमें प्रागैतिहासिक कालमें जो दो दरारें पड़ी, उन्हीका एक सिरा लालसमुद्र होकर जॉर्डन नदी तक पहुंचा होगा। और तीसरा विचार यह आया कि राजनीतिक दृष्टिसे अदनकी भूमि किसी समय (मेरे बचपनके दिनोंमे) हमारे बम्बई इलाकेका ही एक भाग था। उन दिनों मैं कह सकता था कि मैं अपने ही प्रांतकी भूमि पर पैर रख रहा हूं। अमरीका और यूरोपका सफर पूरा करके स्वामी विवेकानन्द जब स्वदेश लौट रहे थे, तब अदनमें आते ही स्वदेशकी भाषा हिन्दुस्तानीमें बात करनेका अवसर प्राप्त करनेके लिए एक पानवालेकी दुकानके आगे बैठ गये थे और पान खाते-खाते उन्होंने अपने यूरोपियन शिष्योंसे कहा था कि इतने दिनोंके बाद स्वदेशके आदमीसे बातें करनेमें अनोखा आनन्द आ रहा है।

विमानसे बाहर निकलते ही श्री सबनीस, जोशी, भट्ट वगैरा स्वकीय लोग मिले। भारत सरकारकी तरफसे यहां रहनेवाले हमारे कमिश्नर श्री थडानी, उनकी पत्नी सावित्री और लड़की शीला, सब मिले। विमानमेंसे सामानका कब्जा लेना, चुंगीवालोंकी जांचसे गुजरना वगैरा सब झंझटोंसे हम बिलकुल बच गये। मित्रोंने यह सारा काम अपने जिम्मे ले लिया।

यहांके इंडियन एसोसियेशनके प्रेसीडेंट श्री दीनशा अदनवाला यहांके पुराने निवासी हैं। चि० सरोज १८ वर्ष पहले जब पिताके साथ यूरोप गई थी, तब इन्हीं भाईके पिताने उनका स्वागत किया था। इसलिए इस खानदानने मानो सरोज पर अधिकार ही कर लिया।

अरब सागर यहांसे शुरू होनेके कारण ऐसा लग रहा था, मानो उसे अपने सारे रंग यहां खिला कर बतानेका शौक हो। नई अथवा प्रतिष्ठित बस्ती समुद्रके

किनारे पर फैली हुई है। हां, पुरानी साधारण लोगोंकी 'नेटिव' बस्ती ज्वालामुखके भीतर तंग मकानोंमें बसी हुई है। यह सारा भाग यहां क्रेटरके नामसे ही मशहूर है। हमे अपना डेरा यहांके समुद्र-तटके सबसे बढ़िया 'क्रेसेंट' होटलमें रखना पड़ा। इतने अधिक आतिथ्यशील स्वदेशी लोगोंके होते हुए भी सिर्फ प्रतिष्ठाके खयालसे हमें होटलमें धकेल दिया गया। यह हमें अच्छा तो नही लगा, परन्तु हमारे कमिश्नर उसी होटलमें रहते हैं, इसलिए उनकी सूचनाके आगे झुकना शहरियोंके लिए अनिवार्य था।

अदनमें हमें छब्बीस ही घण्टे बिताने थे। नहा कर तैयार होते-होते थडानीके यहां चायकी व्यवस्था हो गई। चुनिंदा अरब और भारतीय—हिन्दू, मुसलमान, पारसी और ईसाई नेता इकट्ठे हुए थे।

सार्वजनिक सभाके लिए हम तैयार होंगे या नही, इस विषयमें सन्देह होने पर भी यहांके लोगोंने सभाकी घोषणा कर ही दी थी।

ज्वालामुखके एक कोनेमें इंगलाज देवीका मंदिर है। उस मंदिरके सामने बड़ी सभा हुई। लोगोंकी संख्या देख कर मैं तो दंग ही रह गया। अधिकांश गुजराती भाई-बहन ही थे। थोड़ेसे अरब और दूसरे लोग थे। मैंने गुजराती और अंग्रेजी, इस प्रकार दो टुकड़े करके भाषण दिया। और हिन्दीमें बोलनेकी जिम्मेदारी कमल-नयन पर छोड़ दी।

मैंने कहा : "अदन तो इत्तिफाकसे अनायास ही आना हो गया है, परन्तु पैगम्बरकी भूमि पर पैर रखते हुए धन्यता महसूस करता हूं। आजकल देश-देशके बीच अविश्वास बढ़ गया है। और लोग स्व-पर-भाव प्रयत्नपूर्वक पैदा करते हैं। हिन्दुस्तानका स्वभाव इससे भिन्न है। हमने अरबस्तानसे आये हुए इस्लामका स्वागत किया। हिन्दुस्तानमे जिस इस्लामका विकास हुआ है, वह दूसरे धर्मोके साथ दोस्तीकी भावना रखता है। हमारे स्वराज्यकी लड़ाई जब पूरे जोरसे चल रही थी, तब अरबस्तानसे आये हुए एक विद्वान मुसलमानको हमने अपनी कांग्रेसके अध्यक्षके आसन पर बिठाया था। आज हमारे देशका शिक्षा-विभाग हमने उनके हाथोंमें सौंप रखा है। हम चाहते हैं कि अरबस्तानके साथ हमारी हमेशा दोस्ती रहे और बढ़ती जाय। यहां रहनेवाले भारतीयोंको महात्माजीका सन्देश है कि आप यहांके लोगोंके साथ इस तरह घुलमिल जाएं जिस तरह दूधमें शक्कर।"

सभाके बाद रातको हमने सबनीसके यहाँ भोजन किया। उनके यहां खूब बातें हुईं। भूगोलकी शौकीन मेरी आंख दीवार परके एक नक्शे पर पड़ी। वह नक्शा अरब-सागरका था। एक सिरे पर अफ्रीकाका सींग और दूसरे सिरे पर हिन्दुस्तान। ऊपरकी ओर विशाल अरबस्तान और बीचमें सारा पश्चिम महासागर। ऐसा सुन्दर नक्शा देख कर मेरी नीयत बिगड़ी। आज वह नक्शा मेरे कमरेमें दीवार पर रह कर अदनमें बिताये हुए एक दिनकी आनन्ददायी घड़ियोंकी याद दिला रहा है।

क्रेसेण्ट होटलमें हमने सिर्फ एक ही रात बिताई और दो बार नहाये। खाना तो मित्रोंके यहीं था। फिर भी रहनेके लिए २५ रुपये देने पड़े। सुबह श्री जोशी-के यहां नाश्ता किया। उनका घर मानो समुद्रके बिलकुल किनारे पर लटक रहा था। महाराष्ट्रियोंके साथ खानेमें व्यंजनोंकी विविधता तो होती ही है, परन्तु देखते-देखते लोग एक-दूसरेके साथ घुलमिलकर हंसी-मजाक तक पहुंच जाते हैं!

सुबहका सारा वक्त अदनके भ्रमणका होनेके कारण हमने उसकी पूर्व-तैयारी की और निकले। मुख्य बस्ती क्रेटरके द्रोणमें ही है। यह नीचेवाला क्रेटर है। उसके आसपास पहाड़ी दीवार है, उसके ऊपर और एक क्रेटर है। क्रेटरसे बाहर निकलनेके लिए एक घाटी और दो बोगदे (टॅनॅल) हैं। पहाड़की ओर पुराने जमानेके राजाओं-ने बड़े-बड़े तालाब बनाये हैं। इसलिए इन तालाबोंका महत्त्व है। यहांसे दस-बारह मील दूर शेख उस्मान नामक एक स्थान है। वहां मौजूदा सरकारने जो पाताल-कुएं—'ट्यूब वेल'—खोदे हैं वे भी हम देख आये। इस तरफ एक सादा मामूली बाग है। यहांके ऊजड़ प्रदेशमें ऐसे बागकी भी प्रतिष्ठा और कद्र कम नहीं है।

क्रेटरमें हम देशी लोगोंकी पुराने ढंगकी बस्ती देख रहे थे, तब बीच-बीचमें कुछ घर बिलकुल जले हुए और लुटे हुए मालूम होते थे। मुझे आश्चर्य हुआ। जांच करने पर पता लगा कि कुछ ही समय पहले यहांके अरब लोगोंने यहूदी लोगों पर क्रोध करके उन्हें यहांसे निकाल दिया। उनके घर जला दिये। उसी अत्याचारका यह अवशेष है। अब अदनमें यहूदी नहीं रहे। दो-चार बचेखुचे होंगे तो वे डरके मारे जान हथेली पर रख कर रहते हैं।

हिन्दुस्तान-पाकिस्तानकी तनातनीका भयानक अनुभव होनेके कारण यह दृश्य मुझे आश्चर्यकारक नहीं लगा। दुःख बहुत हुआ। मुसाफिर देखें सब कुछ, परन्तु उसके बारेमें जहां तक हो सके बोलें नहीं, इस सूत्रका पालन करनेमें ही श्रेय था।

हमारा दोपहरका भोजन कुछ मित्रोंने रखा था और वह भी पारसियोंकी एक अगियारीके हॉलमें। मैंने सोचा नहीं था कि इतने ज्यादा लोग जमा होंगे। चौवीस घण्टोंके भीतर हम कितना अधिक देख सके, कितने संस्कार जुटा सके! अदनके जीवनके लगभग सभी पहलुओंके साथ हमारा परिचय हुआ।

अब हम चार बजे हिन्दुस्तान जानेके लिए रवाना हुए। हवाई अड्डे पर बहुत लोग आये थे। वहां स्थानीय अरब लोगोंकी तरफसे एक संदेश मिला कि, "कलके आपके सार्वजनिक व्याख्यानका हमें पता नहीं था। जो थोड़ेसे अरब लोग उपस्थित हो सके थे, उनकी जबानी आपके व्याख्यानका सार सुना। हमें वह खूब पसन्द आया। हम आपका एक व्याख्यान रखना चाहते हैं। आजके दिन ठहर जायं तो अच्छा।"

रहना असंभव था। "हिन्दुस्तानके बनिये हमें लूटते हैं। ब्रिटिश सरकारको

चाहिए कि उनसे वह हमारी रक्षा करे।" इस किस्मका आन्दोलन कुछ अरबोंका तरफसे हो रहा है। ऐसे समय अरब लोगोंका निमंत्रण! रह सकता तो यहांके अरबोंके साथ जरूर परिचय पैदा करता। मैंने इतना ही कहा कि, "मिस्र देखने जानेका संकल्प है। उस समय अदन एक दिन ठहरूंगा और आपसे खास तौर पर मिलूंगा।"

हमने चार बजे जमीन छोड़ी। जब तक प्रकाश था हमारा हवाई जहाज अरबस्तानके दक्षिणी भागके ऊपरसे जा रहा था। नीचेके भागमें वीरान पहाड़ियां ही थीं। न कोई पेड़ था, न घास या मिट्टी। पत्थर और रेतके सिवा कुछ भी नहीं दीखता था। कभी-कभी एकाध घाटीमें पानीकी लकीर दिखाई देती थी। उसके किनारे थोड़ीसी झोपड़ियां और हरीभरी पहाड़ियोंकी कतार बहुत ही सुन्दर लगती थी। धूपकी छाया जैसे-जैसे लम्बी होती गई, वैसे-वैसे वह कतार और भी उठावदार दीखने लगी।

हम पश्चिमसे पूर्वकी ओर जा रहे थे, इसलिए हमें अपनी घड़ियां एकदम ढ़ाई घण्टे आगे करनी पड़ीं। इंग्लैंडमें एक बार पंचांग सुधारनेके लिए वहांकी सरकारने एक महीनेमें ग्यारह दिनकी छलांग मारी (२ तारीखके बाद एकदम १३ तारीख कर दी) थी, तब अनपढ़ लोगोंने झगड़ा मचाया था और 'हमें अपने ग्यारह दिन लौटा दो' के नारे लगाये थे। मुझे अपनी घड़ी आगे करते समय इस घटनाकी याद आ गई, परन्तु वह सूर्यास्तके बादके अंधेरेमें डूब गई।

हमारा हवाई जहाज टाटा कंपनीके एयर इण्डिया कांस्टेलेशनवाला था, अर्थात् दुनियाके सर्वोत्तम अमीरी हवाई जहाजोंमेंसे एक था। यात्रियोंकी भीड़ न थी। सूर्यास्तके बाद अच्छा भोजन किया। टाटा कंपनीके नैरोबीके एजेन्टकी सिफारिशसे कांस्टेलेशनमें मेरे सोनेकी सुविधा बहुत अच्छी कर दी गई थी। जमीन और पानीसे हजारों फुटकी ऊंचाई पर किसी फरिश्ते या गंधर्वकी तरह आकाशमें सो जानेका अनुभव अनोखा ही था।

रातको डेढ़ बजे कराची पहुंचे। अब वह हमारा पुराना कराची नहीं रह गया था, जो 'कराची कांग्रेस'के दिनोंमें हमने देखा था। आज वह पाकिस्तानकी राजधानी था। कोई डेढ़ घंटा वहां बिता कर हम फिर चल दिये और ५ अगस्त, १९५० को सबेरे ठीक ५-२० बजे स्वराज्यनगरी बम्बईमें आ पहुंचे। तीन महीनेमें तीन दिन कम—इतना समय स्वदेशसे दूर रहे। परन्तु इतनेसे समयमें इतने अधिक अनुभव और संस्मरण इकट्ठे हो गये थे मानो बरसों बीत गये हों!

बम्बई पहुंचने पर बड़ा आनन्द हुआ। मेरे साथ हाथीदांतकी अफ्रीकी कारीगिरीकी तीन चीजें थी, जिन पर मुझे पचहत्तर फीसदी जकात देनी पड़ी। चूंकि मैं जानता था कि यह रुपया स्वराज्य सरकारके ही खजानेमें जा रहा है, इसलिए पचहत्तर रुपया देनेमें मुझे जरा भी बुरा न लगा।

जिन्दगीमें पहली बार विदेश जाकर आया था। पूर्व अफ्रीकामें स्वतंत्र भारतके स्वतंत्र नागरिककी हैसियतसे भ्रमण कर सका था। वहांके हिन्दुस्तानियोंका आतिथ्य चख सका था। और खास तौर पर अफ्रीकानिवासी अफ्रीकी लोगोंके कुछ नेताओंका विश्वास सम्पादन कर सका था। ये सभी धन्यताके विषय थे। हिन्दुस्तान और अफ्रीकाके बीच स्नेह-सम्बन्ध बढ़ानेकी जिम्मेदारी सिर पर लेकर स्वदेश आया हूं, इसलिए हिन्दुस्तानकी आजादीकी गहराई भी अधिक अनुभव करने लगा हूं।



सूर्योदयका देश

स्व० जमनालालजीको

जब मैं मूल गुजराती परसे इस किताबका हिन्दी अनुवाद कर रही थी, तब मेरे पिताजी पू० जमनालालजी (जिन्हें हम काकाजी कहते थे) की पवित्र स्मृतिका मधुर वातावरण मेरे आसपास फैला हुआ था। पू० काकाजीको नित्य-नूतन स्थानोंकी यात्रा करनेका और करानेका बड़ा शौक था। यात्राको वे शिक्षाका बड़े महत्त्वका अंग समझते थे। विदेशोंमें भी उनकी खास इच्छा जापान जानेकी थी। लेकिन सारा समय हमारे देशके स्वतंत्रता-संग्राममें जुटे रहनेसे वे अपनी इस इच्छा-को प्रत्यक्ष रूपमें पूरी नहीं कर पाये।

उन दिनों तो वे ब्रिटिश सरकारकी जेलकी चार-दीवारोंके भीतर ही विदेश-यात्राका मजा ले लेते थे।

पू० काकासाहबके लिए उनके दिलमें हमेशासे गहरा स्नेह था। काकासाहबके द्वारा की हुई यात्राके इस वर्णनानंदको वे स्वयं की हुई यात्राके आनंदके समान ही मान लेते। शायद इसीलिए आज यह जापान-यात्राका हिन्दी अनुवाद उन्हींके स्मरणोंमें घिरा हुआ प्रकाशमें आ रहा है। —ॐ

जिस साल स्व० जमनालालजी हिन्दी-साहित्य-संमेलनके अध्यक्ष थे, उनका और मेरा विचार था कि हम हिन्दीका सन्देश लेकर पूर्व-एशियाकी यात्रा करें। लेकिन वैसा उस समय हो नहीं पाया। उन्हींकी लड़कीके द्वारा किया हुआ मेरी जापान-यात्राका यह अनुवाद श्री जमनालालजीकी पवित्र स्मृतिको अर्पण करते मुझे दुगुना संतोष होता है।

—**काका कालेलकर**

राष्ट्रपति भवन,
नई दिल्ली।
मार्च ३, १९५९
फाल्गुन १२, १८८० (श)

प्रिय ओम्,

आशीर्वाद।

तुम्हारा २१ फरवरीका पत्र मुझे मिला। यह जानकर मुझे खुशी हुई कि काकासाहेब कालेलकर द्वारा जापानके सम्बन्धमें लिखित गुजराती पुस्तकका

अनुवाद तुमने हिन्दीमें किया है। उसका कुछ भाग जो तुमने जापान यात्रा पर जानेसे पूर्व मुझे दिया था उसे मैंने देखा भी था। आज हिन्दीमें ऐसे साहित्य का बहुत अभाव है। वर्तमान युगमें तो जब कि सभी देश एक दूसरेके इतने नजदीक आ रहे हैं, यह आवश्यक हो गया है कि जनता दूसरे देशोंके सम्बन्धमें कुछ जानकारी पा सके और हमारे सम्बन्ध दूसरे देशोंसे बढ़ें, हम लोग वहांकी संस्कृतिके बारेमे कुछ जानें और सीखें। मुझे यह जान कर प्रसन्नता हुई कि यह पुस्तक जिसका नाम तुमने 'सूर्योदयका देश' रखा है प्रकाशित होने जा रही है। तुम्हारा यह प्रयास सफल हो और इसी प्रकार भविष्यमें भी तुम्हारी रुचि ऐसी ऐसी पुस्तकोंके लिखनेमें बढ़े। तुम्हें मेरी बधाई और आशीर्वाद है।

तुम्हारा,

राजेन्द्र प्रसाद

समभावी अनुवादिका

हमारी भाषामें स्वदेशके या परदेशके प्रवास-वर्णन बहुत कम हैं। अगर भारतीय जीवनको परिपुष्ट करना हो तो भारतवासियोंको प्रवास, अध्ययन और सेवा द्वारा अपना विश्व-परिचय और विश्व-समभाव बढ़ाना ही चाहिये। भारतकी परिस्थिति भी कहती है कि जो चीज भारतकी एक भाषामें प्रकट हुई हो वह यहांकी दूसरी भाषाओंमें भी प्रकट होनी चाहिये। यह आसानीसे हो भी सकता है।

प्रवास-वर्णन—खास करके परदेशका प्रवास-वर्णन—जितना समृद्ध हो सके उतना अच्छा ही है। किन्तु आजकी प्राथमिक अवस्थामें सामान्य प्रवासानन्दकी पुस्तकें ही ज्यादा लाभदायक होंगी।

मैंने जापानकी यात्रा दो बार की। इस यात्रामें जापानका जो प्राकृतिक सौंदर्य और जापानी जीवनका जो माहात्म्य मैं देख सका, उसका कुछ प्रतिबिम्ब प्रस्तुत करनेके लिए मैंने 'उगमणो देश—जापान' नामक गुजराती पुस्तिका लिखी। इसके हिन्दी अनुवादके लिए मुझे ओम्‌का ध्यान आया। उसने भी उसे स्वीकार किया। इससे मुझे बड़ी खुशी हुई।

चि० उमाका असल नाम है ओम्। स्व० श्री जमनालालजीने अपनी लड़कियोंके नाम कमला, मदालसा और ओम् रखे। उसमें उनकी आध्यात्मिक अभिलाषा और साधनाकी मंजिलें पायी जाती हैं। चि० ओम्‌के बचपनसे—करीब जन्मसे ही मुझे उसका परिचय है। और उसके सुन्दर विकासका मैंने कदम कदम पर निरीक्षण भी किया है। उसके बचपनमें बंबईके समुद्र-किनारे पर, आमके पेड़ोंमें बैठी हुई कोयलोंके शब्दका अनुकरण करनेमें मैंने ही उसे प्रोत्साहन दिया था।

माता-पितासे जैसे अनेक उत्तम संस्कार ओमने पाये, वैसे ही पिताके सेवा-समृद्ध जीवनके कारण हिन्दी, मराठी, गुजराती—तीनों भाषाओंका उत्तम परिचय भी ओम्ने पाया। जब इन भाषाओंमें वह बोलती है, तब उस भाषाके स्वारस्यसे तद्रूप हो जाती है। भारतमें फैली हुई आजकी भाषिक संकीर्णताके दिनोंमें यह विशाल आत्मीयता सचमुच एक राष्ट्रीय लाभकी बात है। आजकल जिन लोगोंने भारतकी सब भाषाएं अपनायी हैं, उनके द्वारा ही भारतकी एकता, स्वतंत्रता और सेवा-योग्यता मजबूत होनेवाली है। श्री जमनालालजी और श्री विनोबा जैसोंसे इन बच्चोंने एक कीमती विरासत पाई है।

मेरे प्रवास-वर्णनका अनुवाद करनेका उत्साह ओम्ने दिखाया, इससे मुझे परम संतोष हुआ। थोड़ा अनुवाद सुनाते समय ओम्ने जो शब्दचर्चा मेरे साथ की, उससे उसकी साहित्यिक अभिरुचिकी नजाकतका मुझे परिचय हुआ।

पश्चिमकी ओर यात्राके लिए प्रस्थान करनेके कारण इस पूर्वकी यात्राके वर्णनका अनुवाद मैं पूरा सुन नहीं सका। लेकिन उसकी तनिक भी जरूरत नहीं थी। चि० ओम्को और उसके इस सुन्दर अनुवादको मैं अपने हार्दिक शुभ आशीर्वाद देता हूं।

नई दिल्ली, **काका कालेलकर**
५-६-'५८

पत्रामृत

जापान देशमें—जिसका असली नाम निप्पोन अथवा नीहोन है, मैं दो बार हो आया हूं। पहली बार गया था तीन वर्ष पूर्व १९५४ के अप्रैलमें, दो सप्ताहके लिए। और दूसरी बार, पिछले साल जुलाई-अगस्तमें, लगभग चार सप्ताहके लिए गया था। पहली बार मैं वहांकी विश्वशांति परिषद्के लिए गया था। उसकी कुछ बातें एक छोटी-सी डायरीमें लिख रखी थी। उनके आधार पर इस देशका विस्तृत वर्णन लिखनेकी इच्छा थी। गांधी-स्मारक-निधिको उस परिषद्की रिपोर्ट भी देनी थी। लेकिन दूसरे कर्तव्योंके सामने यह सब रह गया। इस बार मैं एटम-बम और हाईड्रोजन बमके प्रयोगोंके विरुद्ध दुनियाका पुण्यप्रकोप प्रकट करने और पृथ्वी पर सेनाओंका भार हलका करनेके विषयमें प्रबल और प्रमत्त राष्ट्रोंसे विनती करनेके लिए होनेवाली परिषद्में भाग लेनेके निमित्त गया था। इस बारकी यात्राका वर्णन भी गुजरातकी जनताके सामने लिख कर पेश करनेका काम रह ही जाता। लेकिन चि० सरोज इस बार मेरे साथ जापान न आ सकी थी, इसलिए मैं वहांसे उसे नियमित पत्र लिखता रहा। उनमें यह वर्णन विस्तारके साथ और पुराने अनुभवोंको

जाग्रत करनेवाली व्यक्तिगत भावनाओंके साथ सुरक्षित रहा। आखिरी प्रकरणकी बातें चि० सतीशको लिखे गये पत्रसे ली गई हैं।

ये सब पत्र इकट्ठे करके और मेरे साथ गई हुई मंजुलाकी डायरीमेंसे थोड़ी बातें चुन कर कुछ परिवर्तन और परिवर्धनके साथ यह पुस्तक तैयार की गई है।

पहली बार हमने टोकियोसे दक्षिणका जापान देश ठेठ कुमामोतो तक देखा था। उत्तरका भाग अनदेखा ही रह गया था। इस बारकी यात्रामें ठीक उत्तरके किनारेसे ले कर ठेठ दक्षिणके किनारे तकका सारा जापान देश देखनेका मैंने निश्चय किया था। लेकिन पहली यात्रामें जो महत्त्वके स्थान देख लिये थे उन्हें इस बारके प्रोग्राममें नहीं रखा जा सका। इसलिए इस बारका वर्णन इस हद तक अधूरा रहता।

यह बात भी खटकने लगी कि जापानके इस वर्णनमें क्योतो और नारा जैसे संस्कार-धाम रह जायें, हिरोशिमाके बलिदानका वर्णन न आवे, आसो जैसे ज्वालामुखीके रोमांचकारी दर्शनसे यह पुस्तक वंचित रहे और कुमामोतो शहरका तथा वहांके शांति-स्तूपका उल्लेख भी न आवे, तो यह इस वर्णनकी एक बड़ी कमी ही मानी जायगी। आखिर चि० सरोजने हिम्मत की और उस छोटी-सी डायरीके चौदह दिनके पृष्ठोंसे हम दोनोंने अपनी स्मरण-शक्ति ताजी करके उस पुरानी यात्राका वर्णन लिख डाला। जैसे-जैसे लिखते गये वैसे-वैसे कई पुरानी चीजें मानो कल ही की हों ऐसी लगने लगीं। तब मैंने फिरसे अनुभव किया कि मनुष्य अपनी विस्मरण-शक्ति पर भी कभी विश्वास नहीं रख सकता। देखते-ही-देखते यह यात्रा-वर्णन तैयार हो गया; और नई यात्राकी इस पुस्तकका अग्रभाग बननेका हकदार भी बना।

पिछले १५-२० वर्षोंकी लगभग सभी छोटी-बड़ी यात्राओंमें चि० सरोज मेरे साथ रही है और देश-दर्शनके इस आनन्दमें उसने उत्साहसे भाग लिया है। इसलिए तीन वर्ष पहलेकी इस यात्राके संस्मरणोंको ताजा करनेमें उससे बड़ी मदद मिली।

०　　　　०　　　　०

हमारे देशमें यात्रा-वर्णनकी पुस्तकें बहुत थोड़ी लिखी जाती हैं। विदेश-यात्राओंके वर्णन तो हमारे यहां नहींके बराबर हैं। ऐसी स्थितिमें केवल यात्रा-वर्णनोंमें ही रस पैदा करना हो तो वह विविध प्रकारकी ऐतिहासिक और वैज्ञानिक जानकारीसे भरा हुआ नहीं होना चाहिये। सामान्य मनुष्य स्वाभाविक कुतूहलसे जितना देखता है और जिस तरहका आनन्द मना सकता है, उतना ही यदि दे दिया जाय तो पढ़नेवालेको खुद सफर करनेका कुछ हलका-सा आनन्द मिल सकता है। उसके बाद मौका मिलते ही वह खुद सफरको निकल पड़ेगा। और यदि ऐसा न हो सके तो वह कमसे कम उस देशके विषयमें जरूरी और महत्त्वकी बातें बतानेवाली

पुस्तकें तो पढ़ेगा ही।

थोड़ी जानकारी देनेवाली और सरल वर्णन करनेवाली जिस दृष्टिके बारेमें मैंने ऊपर कहा है वह दृष्टि अब पश्चिममें भी स्वीकार की जा रही है। लेकिन वहां इसका कारण बिलकुल उलटा है। पश्चिमके लोग पिछले १००-२०० वर्षोंमें सारी दुनियाका प्रवास कर चुके हैं। उन्होंने प्रत्येक देशकी रग-रगकी ऐतिहासिक, भौगोलिक और जनपदीय इतनी सारी जानकारी इकट्ठी की है कि हर देशके लोगोंको अपने देशके विषयमें जाननेके लिए भी पश्चिमके लोगोंकी लिखी हुई पुस्तकें ही देखनी पड़ती हैं। इस तरह प्रत्येक देशके विषयमें शुद्ध और सबल जानकारीसे भरी हुई भारी-भरकम पुस्तकें वहां इतनी अधिक संख्यामें तैयार हुई हैं कि पाठकोंको उनका अपच हो जाता है और वे सरल किताबोंके लिए तरसते हैं।

इस नई दृष्टि अथवा वृत्तिके लिए एक दूसरा भी कारण है। आज तककी दुनियाका गठन प्रत्येक देशके प्रतिष्ठित लोगोंके हाथोंसे हुआ है। जिस तरह सारे महाभारतमें केवल ब्राह्मण और क्षत्रियोंका ही वर्णन आता है, उसी तरह दुनियाके साहित्य तथा [illegible] अधिकतर ऊपरके दस प्रतिशत लोगोंके ही पुरुषार्थका वर्णन किया जाता है। अब पिछले १०० वर्षोंसे सामान्य जनताके लोकयुगका प्रारम्भ हुआ है। इसलिए जिसका राजनीति, अर्थशास्त्र और धर्मशास्त्रके साथ अधिक सम्बन्ध नहीं है, लेकिन जो केवल जीती है, प्रेम करती है और आनन्दसे रहती है ऐसी जनताके जीवनमें ही आजके नये पाठक रस लेने लगे हैं। वे कहते हैं कि रूसके साम्यवादके पक्षमें या विरोधमें लिखे हुए लम्बे-लम्बे प्रवचनोंको सुन कर तो हम तंग आ गये हैं। रूसकी सामान्य प्रजा कैसे जीती है, कैसे श्रम करती है, कैसे नाचती है तथा गाती है, बस इतना ही जाननेके लिए हम उत्सुक है। इस तरहकी जिज्ञासाको संतुष्ट करनेवाली पुस्तकें सब जगह ढेरों बिकती हैं और पढ़ी जाती हैं।

और मैं तो मानता हूं कि शिक्षित समाज तथा सामान्य जन-समाज जिन पर आधार रखता है तथा जिनसे हमारा श्वास चलता है और हमें पोषण मिलता है, वे पृथ्वी, जल और आकाश भी मनुष्यकी जिज्ञासाके प्रधान विषय होने चाहिये। और सृष्टिके इस पोषण पर जीनेवाले पशु-पक्षी, कृमि-कीट, मछलियां और छोटे-मोटे कीड़ोंवाले शख और इन सबको आधार देनेवाले वृक्षों तथा वनस्पतियोंको भी हम अपनी जिज्ञासासे वंचित कैसे रख सकते हैं? जीवन यानी अखण्ड जीवन! उससे कुछ भी बहिष्कृत नहीं होना चाहिये।

मनुष्यने अपनी मति और वृत्तिके अनुसार छोटे-बड़े अनेक पाप पैदा किये हैं तथा उनको पोसा है। लेकिन सबसे बड़ा पाप है—एकांगिता। इस एकांगिताके कारण मनुष्यके अनुभवमें और विचारोंमें प्रमाण-बद्धता नहीं रहती। कोई आदमी किसी सभा अथवा समारम्भकी बात करते हुए यदि दरवाजे पर देखे हुए जूतोंका ही वर्णन करने लगे तो हम अनुमान लगा सकते हैं कि वह वर्णनकार या तो धन्धेसे

निरा चमार होगा अथवा जूते सुधारनेवाला मोची। और यदि कोई दूसरा आदमी उसी समारम्भके केवल अध्यात्मका ही वर्णन करने लगे तो हम पहचान सकते हैं कि वह कोरा तार्किक पंडित ही होगा। हम तो चाहते हैं जीवन-परायण, जीवनानन्दी और जीवनोपासक लेखक ! जीवनके सारे पहलुओंको सप्रमाण व्यक्त करना ही नये साहित्यका आदर्श होना चाहिये। यदि हम भविष्यके साहित्यको इस दिशा में मोड़ सकें, तो भी वह शुभ मंगलाचरण कहलायेगा।

जापानके विषयमें लिखनेको तो बहुत है। एशियाकी पुनर्जागृतिके इस जमानेमें एशियावासियोंको एक-दूसरेका गहरा परिचय प्राप्त करना चाहिये। और इस परिचयके द्वारा मिलनेवाले इस जीवनानन्द और मानवानन्दको विकसित करना चाहिये। मेरी यह पुस्तक बहुत हुआ तो भोजनके प्रारम्भमें, स्वाद जाग्रत करनेके लिए दिए जानेवाले पेयके जैसी, अर्थात् पंचामृत (appetizer) जैसी ही है।

गुजरातकी जनता पुरुषार्थी है। उसकी महत्त्वाकांक्षा अब अनेक दिशाओंमें जाग्रत हुई है। व्यापार और उद्योगोंके लिए साहस करनेकी वृत्ति तो इसकी रगोंमें पहलेसे ही है। भारतके युवकोंको अब जापान, चीन व कम्बोडिया जैसे पूर्वके देशोंकी बार-बार यात्रा करनी चाहिये। आजकलके नये साहित्यकार देश-देशान्तरोंकी 'जमीन और जनता' के बारेमें, भारतकी अपनी दृष्टिसे लिखे हुए वर्णनोंको इस उदीयमान पीढ़ीके सामने रखें यह बहुत जरूरी है।०

काका कालेलकर

पहली यात्रा-१९५४

१. जापान बुलाता है

मैं कई वर्षोंसे कहता आया हूं कि मेरी दुनियाके सारे देश देखनेकी इच्छा है; लेकिन जापान व अमरीका देखनेकी खास इच्छा नहीं होती। कोई देश जितना अधिक पिछड़ा हुआ, अविकसित अथवा उपेक्षित हो उसकी ओर मेरा उतना ही अधिक आकर्षण होता है। उसके विषयमें मैं बहुत-कुछ जानना चाहता हूं। उसके पास अपनी विशिष्ट प्रकृति तो होती है। लेकिन जापान और अमरीकाके विषयमें कुछ ऐसा खयाल बन गया था कि ये दोनों देश उधारी पूंजी पर ही आगे बढ़े हैं। इनके पास अपना मौलिक या गंभीर कुछ नहीं है। जो कुछ भी है, लिया हुआ है, पैदा किया हुआ नहीं है। इसलिए इन देशोंके लोग छिछले और अभिमानी होने

---

० मूल गुजराती आवृत्तिकी प्रस्तावना।

चाहिये। उनकी संस्कृति अथवा सम्पन्नता टिकते-टिकते भी कहां तक टिकेगी? घासकी ज्वाला भड़क कर जलती है, किन्तु अल्पजीवी होती है। दूसरी ओर, लकड़ियां धीरे-धीरे जलती है पर वे सारी रात जल सकती हैं…इत्यादि।

पर अब मैं देखता हूं कि इस विचारमें उतावलापन था, दीर्घ दृष्टि नहीं थी। उधार पूंजी लेनेवाले भी यथासमय मौलिकताका विकास कर सकते हैं और विशिष्टता प्रगट कर सकते हैं। खानदानियत तो अनुभव और समयकी उपज है। मुरब्बा जिस दिन बनता है उस दिन कच्चा ही होता है। श्रद्धा और धीरज रखनेसे ही वह तैयार होता है। मधु-मक्खियोंके शहदके बारेमें भी ऐसा ही है।

मुझे अपने-आप तो जापान जानेका शायद ही सूझता। कहते हैं कि जापानके गुरुजी निचिदात्सु फूजीई जब गांधीजीसे मिलने सेवाग्राम जा रहे थे तब मुझे ट्रेनमें मिले थे। स्वाभाविक जिज्ञासासे मैंने उनके साथियोंसे कई सवाल पूछे होंगे। पर मैं तो यह सब भूल गया था। उसके बाद उनके शिष्य एकके बाद एक सेवाग्राम आश्रममें आकर रहने लगे। चमड़ेका पंखा बजा कर 'नम् म्यो हो रेंगे क्यो' की प्रार्थना करना तो उनका नित्यका नियम था। आश्रमका प्रतिदिनका सौंपा हुआ कार्य वे बड़ी लगनसे करते और बाकीके वक्त अपनी चित्र-विचित्र लिपिमें लिखते रहते। जो कोई भी मिलता उसे प्रसन्नतापूर्वक नमस्कार करते। आश्रम-जीवनके दरम्यान इन लोगोंने किसी तरहकी कोई मांग नहीं की, न कभी किसीकी शिकायत की अथवा किसी तरहकी टीका-टिप्पणी ही की। वे तो बस काम करते, लिखते और हंसकर सबको नमस्कार करते। प्रार्थनाके पहले पंखा बजा कर मंत्र बोलते और माथा टेककर प्रणाम करते।

इन लोगोंकी कार्य-तत्परता, इनका मेहनती स्वभाव और इनका प्रसन्न संयम —इन तीनोंका गांधीजीके मन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। युद्ध प्रारम्भ होने पर जापान राष्ट्रके ब्रिटेन-विरोधी दलमें शामिल होते ही भारतकी अंग्रेजी सरकारने आश्रमवासी जापानी साधुओंको गिरफ्तार कर लिया। आश्रममेंसे ये साधु इस तरह गये इसलिए गांधीजीने उनकी यादगारमें और उनके सम्मानमें उनका मंत्र आश्रमकी प्रार्थनामें सम्मिलित किया।

जापानके विषयमें मैंने पहले-पहल अट्ठारह सौ चौरानबेमें अपने बचपनमें सुना था। उस समय जापानने चीनके साथ युद्ध करके विजय प्राप्त की थी। और इससे पश्चिमके राष्ट्र जापानकी कदर करने लगे थे। इसके बाद जापानकी बहुत ही सस्ती-सस्ती चीजें भारतमें आने लगीं। सन् उन्नीस सौ चारमें रूस और जापानके बीच युद्ध छिड़ा। ये हमारे स्वदेशी हलचलके दिन थे। जापानकी विजयसे हम खुश हुए। जापान एशियाके गुरु-स्थान पर पहुंच गया। और हम अंग्रेजी मालकी जगह स्वदेशी मालकी जैसी भक्तिसे ही जापानी माल लेने लगे। हमारे कुछ विद्यार्थी जापान हो आये। दो कुशल जापानी मजदूरोंकी मददसे तलेगांवमें सार्व-

जनिक पैसे-पैसेके चन्देसे एक कांचका कारखाना खोला गया। फिर तो लोग कहने लगे कि अपने देशमें कांचका कारखाना —यह तो एक नया अवतार ही है।

अब शिन्टो, मिकाडो, बुशीडो, सामुराई, हरिकेरी, जिनतान वगैरा जापानी शब्द लोगोंके कानोंमें पड़ने लगे। जापानकी सैनिक बहादुरीके विषयमें हम अभिमान व्यक्त करने लगे। मारक्विस ईटो, एडमिरल टोगो, जनरल कुरोकी, मार्शल ओयामा वगैरा सैनिक और राजनीतिक नेताओंके नाम हमे ऐसे लगने लगे मानो वे हमारे घरके ही हों। पोर्ट आर्थरका किला, मुकडेनकी रणभूमि और सुशीमाकी खाड़ी, ये तीनों तो एशियाके भाग्योदयके पुण्य-क्षेत्र ही बन गये।

पिछले महायुद्धमे जापानी लोग सिंगापुर और मणिपुर तक पहुंचे थे। नेताजी सुभाषचन्द्र बोसने उनके साथ सहकार किया था। आगे चल कर हिरोशिमा और नागासाकीमें पश्चिमके गोरोंकी संस्कृति और हमारी एशियाई संस्कृतिके बीचका सम्बन्ध स्पष्ट हुआ। जापानके विषयमें जो कुतूहल व आदरकी भावना थी वह अब सहानुभूतिमें बदल गई। पर्ल हार्बर पर घातकी हमला करनेका जापानका कदम सभीको विचित्र लगता था। परन्तु पश्चिमके लोगोंने हमारे यहां इस तरहके दगा-बाजीके कृत्य न किये हो, ऐसा नही है। इसलिए इस घातकी कृत्यके विषयमें पश्चिमके लोगोंका रोष समझमे आना जरा कठिन था। मनमें तो यही लगता था कि शायद जापानके पक्षमें भी कोई बचाव होगा, जिसे हम नहीं जानते। खैर, हिरोशिमा और नागासाकीके बाद तो जापानके विरुद्ध कुछ कहनेको जी नहीं चाहता था।

युद्ध समाप्त होने पर आश्रममें रहे हुए एक बौद्ध साधु आनन्दा मारुयामाका जापानसे पत्र आया कि उनके गुरुजी गांधीजीके विचारोंका प्रचार करनेके लिए एक प्रदर्शनी कर रहे हैं। उसके लिए मैं गांधीजीका साहित्य और तसवीरें आदि कुछ सामग्री भेजू। मैंने यह खुशीसे किया। बादमें सुना कि गुरुजी विश्व-शांतिके लिए जापानमे जगह-जगह स्तूप-पेगोडाकी स्थापना करना चाहते है। मैने उन्हें लिखा कि जापानकी परिस्थितिमें भले ही इस कार्यकी आवश्यकता व उपयोगिता हो, लेकिन मेरे मनमें तो न इसके लिए विश्वास है और न उत्साह है।

गुरुजीके शिष्योंने उनके शांति-स्तूपोंके बहुतसे चित्र मुझे दिखाये। स्तूपोंकी आकृति और आसपासके प्रदेशको देखते हुए वे सचमुच सुन्दर कलाकृतियां थीं। फिर भी विश्व-शांतिके आदर्शको जनता तक पहुचानेकी उनकी शक्ति अथवा उप-योगिताके विषयमे तो मनमें शंका बनी ही रही।

जापानमें जिस बौद्ध-धर्मका प्रचार है वह महायान है। यह मैं जानता था। इसलिए पेगोडाके लिए उनका पक्षपात मुझे आश्चर्यजनक नही लगा। ब्रह्मदेशके हिनयानी—यानी थेरवादी बौद्ध भी जब नये-नये पेगोडे खड़े करते है, तब वे सना-तन वृत्तिवाले महायानी तो करेंगे ही।

इसी बीच जापानमें शांतिवादियोंकी विश्व परिषद्का होना निश्चित हुआ। गुरुजीका निमंत्रण आया कि मुझे इस परिषद्के लिए जापान जरूर आना चाहिये। वे तो यह भी चाहते थे कि मैं इस परिषद्के बाद जापानमें महीने दो महीने गांव-गांव घूम कर उनकी शांति-प्रवृत्तिमें सहायता दूं और खास कुमामोतोमें स्थापित होनेवाले सबसे बड़े शांति-स्तूपके उद्घाटनके अवसर पर भी उपस्थित रहूं।

जवाबमें मैंने कहलवाया कि पिछड़े वर्गोंकी जांचके कमीशनका भार मेरे सिर पर है इसलिए नहीं आ सकूंगा। महीने-दो-महीनेका वक्त निकालना तो असम्भव ही है।

उनकी फिरसे चिट्ठी आई कि यदि आठ-दस दिन भी निकाल सकें तो अवश्य आइये। हम आपकी जापानमें रहनेकी व्यवस्था तो अपनी ओरसे करेंगे ही साथ ही जापान-यात्राका एक तरफका खर्च भी आपको देंगे जो हम किसी दूसरेको नहीं देते हैं। उन लोगोंने गांधी स्मारक निधिको भी लिखा कि हमारी शांति परिषद्में आपके किसी प्रतिनिधिका होना आवश्यक है। निधिने मेरा और श्री भारतन् कुमारप्पाका नाम पसन्द किया। परिषद्-वालोंने मुझे एक विशेष आग्रहपूर्ण निमंत्रण तारसे भेजा तथा उसमें एक वाक्य यह भी जोड़ दिया—"We consider you to be the backbone of the Conference." प्रशंसा सुन कर एकदम फूल उठनेवाला तो मैं कभी था ही नहीं, इसलिए वाक्य व्यक्तिगत रूपसे मेरे लिए ही है ऐसा समझनेकी भूल तो मैं कैसे करता? गांधीजीका उपदेश और भारतकी अहिंसक लड़ाईकी प्रतिष्ठाके कारण जापानमें जो आशा बधी थी वही इसमें व्यक्त हो रही थी।

इतने आग्रहके बाद जापान गये बिना छुटकारा न था। पिछले युद्धके अन्तमें अमरीकाने शांतिकी जो शर्तें जापान पर लादी थी, उनमें मुख्य यह थी कि जापान अबसे लड़ाईके लिए सेना नहीं रखेगा। पराजित राष्ट्र इस अपमानको पी गया। उसने केवल भीतरी शांतिके लिये ही जरूरी सेना रख कर संतोष किया।

परन्तु कालका चक्र पलटा। अमरीकाको अब रूस व चीनका डर पैदा हुआ और उनके विरुद्ध जापानको सशस्त्र करनेकी जरूरत महसूस हुई। अमरीकाने राज्यका जो संविधान जापान पर लादा था उसमें जरूरी हेर-फेर किये बिना जापान सशस्त्र नहीं हो सकता था। खुद लादे हुए संविधानको अब बदलनेकी सूचना अमरीकाने जापानको दी। जापानके शातिवादियोंने इसका विरोध किया। गुरुजी निचिदात्सु फूजीई मूलमें तो साम्राज्यवादी थे और जापान द्वारा सारी दुनियामें बौद्ध-धर्म फैलानेकी महत्त्वाकांक्षा भी रखते थे। लेकिन महायुद्धमें हारनेके बाद और हिरोशिमा व नागासाकीके अनुभवोंके बाद गांधीजीसे सुनी हुई अहिंसाकी नीति उनके गले उतरी। उन्होंने प्रचार शुरू किया, "अमरीका द्वारा लादी हुई निःशस्त्रीकरणकी नीति सचमुच ईश्वरके आशीर्वादके समान है। अब इसे

नही छोड़ना चाहिये।" चारों ओर उन्होंने यही प्रचार चलाया। इस काममें वे भारतकी सहानुभूति चाहें यह स्वाभाविक था। इसीसे उनका आग्रह था कि मैं विश्वशांति परिषद्में उपस्थित रहूं।

सोच-विचारके बाद सारा हिसाब लगा कर मैंने जापानके लिए चौदह दिन निकालनेका निश्चय किया। और आते जाते रास्तेमें किसी भी देशको देखनेके लिए नही ठहरूंगा ऐसा संयम भी अपने लिए निर्धारित कर लिया। मेरे आने-जानेका हवाई-खर्च तो गांधी स्मारक निधिने दिया और जापानमें रहनेका खर्च वहीके लोगोंने किया।

इस तरह मेरी पहली जापान यात्राकी योजना बनी और सन् उन्नीस सौ चौवनके मार्चकी २९ तारीखकी दोपहरको चि० सरोजके साथ मैंने भारत छोड़ा। भारतन् बादमें आनेवाले थे।

पिछले पन्द्रह-सोलह वर्षोंसे चि० सरोज बेटीकी तरह ही मेरे साथ रहती आई है। मेरा लेखन और दूसरा सब काम भी वही संभालती है। इसलिए उसका मेरे साथ जापान जाना स्वाभाविक था। उसने अपने खर्चसे जानेका निश्चय किया और हम कलकत्तेसे चल पड़े।

२. विश्व-शांतिकी खोजमें

हम कलकत्तेसे २९ मार्चकी दोपहरको चले और शामको रंगून पहुंचे। हमारा हवाई-जहाज रातके सफरमें विश्वास नही करता था, इसलिए हमें एक रात ब्रह्म-देशमें बितानी पड़ी। रातको हमारे रहनेका प्रबन्ध स्ट्रेंड होटलमें था। मित्रोंने जिन लोगोंको हमसे मिलनेके लिए पत्र व तार भेजे थे वे उन्हें नही मिले थे। इसलिए हमें जरा निराशा हुई। लेकिन इसी बीच श्यामजी प्रेमजी कम्पनीके श्री हरकचन्द भाई हमें होटलमें मिले। पहले तो वे हमें घूमने ले गये। फिर उन्होने ही वहांके प्रसिद्ध भाई सीतारामजी (एकाउन्टेंट) को फोन करके बुलाया। उन्हींके साथ हमने ओरिएन्टल क्लबमें बैठ कर सरोवरकी शोभा देखी। उसके बाद हम भाई रशीदके यहां गये। भाई रशीद मूल भारतीय है। ब्रह्मदेशमें जाकर वही शादी करके उन्होंने वहांकी नागरिकता स्वीकार कर ली है। आज वे बर्मी सरकारमें मन्त्री-पद पर हैं। उन्होंने बर्मी सरकारका पूरा विश्वास प्राप्त किया है और वे ब्रह्मदेशकी स्वराज्य सरकारकी उत्तम सेवा कर रहे हैं। उन्हींके यहां हमें श्री और श्रीमती सलाहुद्दीन तैयबजी मिले। चि० रेहाना और सरोजकी वजहसे वे दोनों हमारे लिए घरके जैसे ही थे। उनसे अचानक मुलाकात हो जानेसे हमें बड़ी खुशी हुई। वे भी बड़े खुश हुए। भारत और ब्रह्मदेशके विषयमें उनके साथ बहुत-सी बातें हुईं। प्रधान मंत्री ऊ

नू ने बौद्ध-धर्म-ग्रंथके नव संस्करणके लिए दो वर्ष तक चलनेवाली संगीति (परिषद्) बुलाई है, यह चर्चाका मुख्य विषय था। सारे बौद्ध जगतके लिए यह परिषद् बड़े महत्त्वकी थी।

रंगूनसे सुबह बहुत जल्दी उठ कर हमें हवाई अड्डे पर पहुंचना था। सारे दिनका हवाई सफर करके हम ठेठ शामको साढ़े सात बजे टोकियो पहुंचनेवाले थे। वहां जाते ही स्नान नहीं हो सकेगा इसलिए आधी रातको करीब एक बजे उठ कर हमने हरकचन्द भाईके यहां ही नहा लिया। फिर हमने सवेरे साढ़े तीन बजे रंगून छोड़ा और शामको देरसे टोकियो पहुंचे। रास्तेमें बैंकॉक और हांगकांग आये या नहीं यह इस समय याद नहीं आ रहा है।

प्रयानुसार हमारे हवाई जहाजने टोकियोकी एक आकाशी प्रदक्षिणा की और बादमें नीचे उतरा। इस बीच हम टोकियोके विस्तारकी कल्पना उसके सुन्दर रंग-बिरंगे दीयोंमें कर सके। सचमुच, वह दीपावली अद्भुत थी!

हम हानेडा हवाई अड्डे पर उतरे। वहां हमारा कल्पनातीत स्वागत हुआ। भिक्षु [illegible] तो उसमें थे ही। भारतमें उन्नीस सौ उनचासमें हुई शांति-परिषद्में मिले हुए श्रीमती डॉ० टोमी कोरा वगैरा बहुतसे जापानी भी वहां आये थे। भारतके दूतावाससे श्री रणवीरसिंहजीने (महाराजसिंहजीके लड़के), श्री मौलिक और श्री मुखर्जी आदि भी थे। यहां जिन भाईकी भारतके राजदूतके स्थान पर नियुक्ति हुई थी वे अभी टोकियो नहीं पहुंचे थे इसलिए उनकी जगह श्री रणवीरसिंहजीने हमारा स्वागत किया और गाजे-बाजेके साथ हम अपने डेरे पर पहुंचे।

निहोन सैनेन कान (जापान-युवा प्रासाद) नामका यह पांच मंजिला भव्य भवन था। सारा मकान लड़के-लड़कियोंसे भरा था। हमें तो सारे जापानियोंके चेहरे एकसे लगते हैं। ऊपरसे इन लड़के-लड़कियोंने गणवेश (यूनिफार्म) के तौर पर एक-सी ही पोशाक पहनी हुई थी। क्या उनका उत्साह था और क्या गजबकी उनकी उछल-कूद थी! छुट्टियोंमें सरकारकी ओरसे सारे देशके बच्चोंको बारी-बारीसे राजधानीमें ला कर सब कुछ दिखाया जाता है। लड़कोंके दलके दल किसी दिन पार्लमेंट देख आते तो किसी दिन बादशाहका राजमहल देखते। किसी दिन संग्रहालय देखने तो किसी दिन तरह-तरहके कारखाने! जब भी थोड़ा समय मिलता वे टेलीविजनके सामने बैठ कर नाटक, क्रिकेट या टेनिसके खेल देखते। उन दिनों टेलीविजन नया-नया तमाशा था। इसलिए लड़के-लड़कियां मधु-मक्खियोंकी तरह टेलीविजनके इर्द-गिर्द इकट्ठे होते थे।

हमारे लिए तो वे सब जैसे एक ही झुण्डके समान थे। लेकिन आपसमें वे सब एक दूसरेको पहचानते थे, अपनी-अपनी संस्थाके लिए अभिमान रखते थे, रिश्तेदारोंसे मिल आते थे और अध्यापकोंके साथ बैठ कर आगेके अपने जीवन-क्रमकी तरह-तरहकी योजनाएं बनाते थे। वे सब एक तेजस्वी और उद्योगी राष्ट्रके प्रतिनिधि

थे। हम कौन हैं, यह जाननेकी उन्हें परवाह ही न थी। यदि होगी भी तो उन्होंने अपने लोगोंसे पूछ कर अपनी जिज्ञासा कभीकी तृप्त कर ली होगी। मैं उनको निहार-निहार कर भविष्यके जापानी राष्ट्रका दर्शन कर रहा था और एशियाके उत्कर्षके दिवा-स्वप्नोंकी कल्पनामें खो रहा था। भारतके आजके जवान और जापानके युवा मिल कर कोई भारी पुरुषार्थ नहीं करनेवाले हैं, ऐसा कौन कह सकता है? हजारों वर्षोंके बाद सूर्य फिरसे पूर्वमें उगना चाहता है। अभी अपनी पूरी तैयारी नहीं है। लेकिन जैसा कि विख्यात जर्मन लेखक स्पेंगलर कहता है, क्या पश्चिमका अस्त शुरू हुआ होगा? और आजकल वहां जो चकाचौंध करनेवाली प्रगति दिखाई दे रही है वह क्या सचमुच संध्याकी ही लाली होगी? रबिबाबूने तो उस संध्याकी लालीका भयानक गीत गाया ही है।

सामान्यतया नये देशमें पहुंचनेके बाद आसानीसे नीद नही आती। लेकिन सारे दिनकी थकावटने असर किया और बिना किसी टके-पैसेके खर्चके या बिना हवाई जहाज जैसे वाहनकी मददके ही हम देखते-ही-देखते स्वप्न-सृष्टिमे पहुंच गये!

सुबह उठ कर हमने खिड़कियोंके परदे हटाये। जिस प्रकार छोटे बच्चे विना किसी कारण ही हंसते हैं उसी तरह हमें बाहर साकुराके पेड़ों पर पहले-पहल खिले हुए शुभ्र रेशमी फूल मुस्कुराते हुए दृष्टि-गोचर हुए।

जापान देशको पश्चिमके लोग Land of the cherry blossoms कहते हैं। यह कितना सच है, इसकी प्रतीति हमें अपने इस चौदह दिनके सफरमें हुई। जहां देखो वहीं साकुराके फूल-ही-फूल दिखाई दे रहे थे! डालियां धीरे-धीरे ढंक गई थी, पत्ते लोप हो गये थे। जापानके इस छोरसे उस छोर तक बस साकुरा ही साकुरा दिखाई देता था। वैसे तो ये फूल बिलकुल सफेद और निर्गन्ध होते हैं। उनमें कोई उन्मादक तत्त्व नहीं होता। लेकिन इनकी बहार तो इतनी उन्मादक होती है कि सारी जापानी प्रजा साकुराके ही गीत गाने लगाती है। सब जगह ये फूल एक साथ ही खिलते हैं। कुदरतने मानो सलाह करके ही सारे देशमें एक साथ साकुराके पेड़ों पर फूल खिलाये हों। और तीन-चार हफ्ते पूरे होते-न-होते सभी जगहकी बहार खतम भी हो जाती है। चित्रांगदाका रूप-लावण्य ज्यादा नहीं फिर भी एक वर्षके लिए तो खिल ही उठा था। लेकिन साकुराकी पुष्प-सृष्टि तो एक ऋतु भी नही टिकती। पर जब ये खिलते हैं तो सारा देश उनके पीछे पागल हो जाता है। अपने यहां तो तरह-तरहके फूल होते हैं। एककी बहार फीकी नही पड़ पाती कि दूसरी आ जाती है। बारामासी फूल तो अपने नामानुसार छहों ऋतुओंमे एक ही निष्ठामें खिलते रहते हैं। दो हफ्तेके बाद जब हमने इसी टोकियोसे जापान छोड़ा, तब साकुराके पेड़ों पर फूलोंकी पूर्णताको पहुंची हुई बहारमे थोड़ी-थोड़ी हरी पत्तियां भी दिखाई देने लगी थीं। वे इशारा कर रही थीं कि यौवन ढलने

लगा है इसलिए जितना नयनोत्सव मनाना हो अभी एकाग्रतासे मना लो !

पहले ही दिन आकासाका डायट (पार्लमेंट) के बड़े दीवानखानेमें हमारी शांति परिषद् शुरू होनेवाली थी। इस जागतिक परिषद्में भाग लेनेके लिए अनेक देशोंके प्रतिनिधि आये हुए थे। इसलिए ऐसी व्यवस्था हुई थी कि कुल बारह अध्यक्ष बारी-बारीसे इस कामको चलावें। इनमें कई जापानी थे और कई बाहरके थे। बाहरके अनेक देशोंमेंसे किन-किन देशोंको यह सम्मान मिले और वह किस मात्रामें, इसकी खूब चर्चा रही। अवसर मिलते ही मैंने कहा कि हमारे हिसाबसे तो सभी देश समान हैं। छोटे-बड़े, ऐसा भेद हम क्यों करें ? और कुछ नहीं तो कम-से-कम हम इस परिषद्में विश्वकुटुबका वातावरण तो पैदा करें ! भारतकी ओरसे हमारा किसी भी तरहका आग्रह नहीं है। अध्यक्ष-मंडलमें हमें स्थान न मिले तो हमें बुरा नहीं लगेगा। इसका असर अच्छा हुआ। लेकिन मैने सोचा था उससे बिलकुल उलटा ! भारतकी ओरसे मैं और अध्यापक कालिदास नाग मंडलमें चुन लिए गए। असलमें तो श्री भारतन् कुमारप्पा हम दोनोंसे अधिक उपयोगी साबित हुए। उनका नम्र व मीठा स्वभाव, भाषा व विषय पर काबू और उनकी मेहनती वृत्ति—इन सबके कारण सब जगह उन्हींकी माग थी। प्रस्ताव बनाने हों या वृत्तान्त तैयार करने हों, भारतन्के बिना किसीका काम ही नहीं चलता था। सचमुच उस सारी परिषद्के वे एक रत्न थे।

हमारी यह प्राथमिक परिषद् दोपहरको एक बजे शुरू हुई। इससे पहले हम सब हिन्दी भाई प्रथानुसार भारतके दूतावासमें हो आये। वहां डॉ० कालिदास नाग के आग्रहसे हमने एक प्रस्ताव पास करके पं० जवाहरलालजीको एक तारसे भेजा। फिर बैंक आफ इण्डियामे जाकर अपने पासके पाउण्डोंके जरूरी जापानी येन करवाये। डॉ० कोराके साथ जापानकी परिस्थितिके विषयमें बहुतसी बातें हुईं। मैंने रणवीरसिंहजीसे कहा कि जापानके प्राचीन आदिवासी आयनु लोगोंके विषयमें मुझे जानना है। उन्होने थोड़ीसी जानकारी दी और बताया कि अब उन लोगोंमें काफी मात्रामें जापानी मिश्रण हो गया है। अनेक जापानियोंके साथ बातें करनेके बाद मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि अपने देशकी पिछड़ी जातियोंके साथ मिलना और उन्हें अपनाना रूसी लोगोंको आता है। चीनी भी ऐसा प्रयत्न करते हैं। लेकिन जापानियोंने अभी यह कला नही सीखी है।

परिषद्की ओरसे हम दोनोंकी मददके लिए दो जापानी विद्यार्थी दिए गए थे। वे स्थानीय विश्वविद्यालयमें हिन्दी सीखते थे। एकका नाम था कीमुरा और दूसरेका नाम था कोबायाशी। दोनो स्वभावसे नम्र और मिलनसार थे। हर तरहसे उपयोगी सिद्ध होनेके लिए वे हमेशा तैयार रहते थे। उनमेंसे भाई कीमुरा तो एक कोबेको छोड़ कर चौदह-चौदह दिन तक हमारे साथ घूमते रहे।

मेहमानोंकी व्यवस्थाका भार भिक्षु सातो-सान पर था। ये भाई चतुर थे और

थोड़ी अंग्रेजी भी जानते थे। चाहे जैसी मुसीबत हो, वे धीरज नहीं खोते थे और न किसी बातसे परेशान होते थे। बादमें मालूम हुआ कि वे भिक्षु होनेसे पहले जापानकी सेनामें थे और हवाई जहाजसे शत्रु पर बम फेंकनेके पराक्रम भी उन्होंने किये थे। आज उस कार्यके लिए वे पछताते हैं और उसकी बातें करते हुए हमेशा संकोचका अनुभव करते हैं।

इंग्लैंडसे आये हुए प्रतिनिधियोंमें मि० टकर और मिसेज विलियमसन थीं। क्वेकर दलकी प्रतिनिधि श्रीमती ग्लैडिस ओवेनको तो हम भारतकी ही प्रतिनिधि मानते थे। उनसे हमारी पहचान भारतमें ही मिस म्यूरियल लेस्टरकी मार्फत हुई थी। (गांधीजी जब गोलमेज परिषद्के लिए विलायत गये थे तब लन्दनके गरीबोंके मुहल्लेमें मिस म्यूरियल लेस्टरके मेहमान बन कर रहे थे। हम भी जब लन्दन गये थे तब खास तौर पर उनसे मिले थे। उन्होंने हमें अपने वहां सब जगह घुमा कर गरीबोंके घर व उनके जीवनके बारेमें बताया था और वे लोग कैसा स्वाभिमानी जीवन बिताते हैं यह समझाया था।) मिस म्यूरियल लेस्टर जब दिल्लीमें हमारी मेहमान बनी थीं तब ग्लैडिस ओवेन भी उनके साथ थी। ये दोनों बहनें सेवा-परायण और उदार-हृदया हैं।

टोकियोमें डॉ० हावर्ड और एना ब्रिन्टन, इन क्वेकर दम्पतीसे हमारी जान-पहचान ग्लैडिस ओवेनकी मार्फत हुई। एम० आर० ए० वाले श्री और श्रीमती बैसिल एन्टविसल भी मिले। उन लोगोंसे जापानियोंके जीवनके विषयमें काफी जानकारी मिली। लेकिन हम दुनियाकी शांतिकी चर्चा करनेके लिए ही इकट्ठा हुए थे इसलिए दूसरी बातें हमें अधिक सूझती भी नहीं थीं और न हम उनमें ज्यादा समय दे सकते थे।

पहली अप्रैलकी सुबह पार्लमेंटकी लायब्रेरीमें, शांति-परिषद्का पहला अधिवेशन यथाविधि शुरू हुआ। प्रारम्भमें अध्यक्षपद संभालनेका कार्य मेरे हिस्से आया। भारतकी कदर करनेकी दृष्टि तो इसमें थी ही। इसके अलावा गुरुजीका भी कुछ आग्रह होगा। मैं थोड़ा अंग्रेजीमें बोला। उसका जापानी अनुवाद तुरन्त कर दिया गया। सुबहका अधिवेशन पूरा होते ही अमरेलीवाले भाई प्रतापराय मेहता, जो उसी वक्त टोकियो आये थे, मुझे और चि० सरोजको टोकियो होटलमें खाना खाने के लिए ले गये। हमें क्या अच्छा लगेगा इसका ध्यान रखते हुए श्री प्रतापभाईने भोजनकी उत्तम व्यवस्था करवाई थी। श्री रणवीरसिंह वहांसे हमें टोकियो विश्वविद्यालय ले गये। कुछ गडबड़ हो जानेके कारण हम जिनसे मिलने गये थे वे भाई न मिल सके। लेकिन उनके बदले एन्थ्रोपोलोजी—नृवंशशास्त्रके प्रोफेसर ईशीडा मिले। वे अंग्रेजी अच्छी जानते हैं, लेकिन बोलनेकी इतनी आदत नहीं है। मैंने यह भी देखा कि इस विश्वविद्यालयमें नृवंश-विद्या पर अंग्रेजीकी पुस्तकें नहींके बराबर थीं। ज्यादातर अच्छी पुस्तकें जर्मनमें ही थीं। प्रोफेसर ईशीडाने जब देखा कि

जापानके विषयमें मैं अंग्रेजी साहित्य खरीदना चाहता हूं, तब उन्होंने अपना काम एक ओर छोड़ा और अपनी शिष्या आकेमीको साथ ले बाजार आये। उस दिन छुट्टी थी फिर भी ईशीडाके कहने पर एक बड़े दुकानदारने Ainu life and lore और दूसरी उपयोगी पुस्तकें मुझे निकाल कर दी। इन किताबोंके लिए मैंने चौदह सौ येन दिये।

इतना बड़ा राष्ट्र अपना हिसाब येन जैसे छोटे-से सिक्केमें किस तरह करता होगा यह अभी भी मेरी समझमें नहीं आया है। ७५ या ७६ येनका अपना एक रुपया होता है। इसलिए एक येन अपने पुराने पैसेसे कुछ छोटा और नये पैसेसे कुछ बड़ा होता है। एक हजारसे अधिक येन दो तब एक अंग्रेजी पाउण्ड मिलता है जो करीब अपने साढ़े तेरह रुपयेके बराबर होता है।

अपने यहां पुराने जमानेमें इससे उलटा था। एक रुपयेके ६४ पैसे और ६४ कौड़ीका एक पैसा। लोग बाजारमें सब्जी खरीदने जाते थे तब कौड़ियोंका उपयोग करते थे। एक पूरा पैसा खर्च करनेवाले उड़ाऊ तो उस वक्त कोई नही थे! उत्तर भारतमें एक पैसेके अंगूर सारा परिवार खा लेता था। नमक पैसे सेर और चने पैसे सेर यह तो एक समयमे सामान्य भाव था। अब पैसे सस्ते हो गये हैं। भिखारी भी एक आनेसे कम दान नही लेता।

बहन आकेमी अपने गुरुके साथ हमे टेलीविजन विभाग दिखाने ले गई। वे वही काम भी करती थी। हमने यहांसे टेलीविजन टावर (मीनार) पर चढ कर टोकियो देखा। पूरा शहर देखा ऐसा तो नही कह सकते। फिर भी हम काफी दूर तक देख सके। प्रोफेसर ईशीडा और आकेमी बहनके बीचका गुरु-शिष्य सम्बन्धी वात्सल्य-भाव हमें विशेष रूपसे रुचिकर लगा। सचमुच सारे एशियाकी संस्कृति एक ही है, इसमे कोई शक नही।

शामको हम फिर जागतिक परिषद्में गये। वहां मैं विश्व-शांतिके लिए सर्व-धर्म-समन्वयकी आवश्यकता पर थोड़ा बोला।

दूसरी अप्रैलको ९ बजे फिर परिषद्में पहुंचे। साढ़े दस बजे वहीं एक कमरेमें सारे प्रतिनिधियोंने खाना खाया। हमारे हिस्सेमें इजीप्शियन खण्ड आया था। उसका सारा ठाठ, चित्र और खिलौने सब कुछ ईजीप्टकी शैलीके थे। दोपहरके इस आन्तरराष्ट्रीय भोजनके बाद जापानके सबसे विशाल हॉलमें—जिसे हीबिया कहते हैं—टोकियोवासियोंके लिए एक बड़ी सभा रखी गई थी। विदेशसे आये हुए हम सब प्रतिनिधियोंको स्वागतके लिए विशाल रंग-मंच पर बिठाया गया था। फिर हम जितने मेहमान थे उतनी ही जापानी बालाएं पुराने ढंगकी राष्ट्रीय पोशाकोंसे सज कर हाथमें फूलोंके बड़े-बड़े गुच्छे लेकर आयीं और ये गुच्छे उन्होंने हमें दिये। सभाका सारा दृश्य भव्य था। इस सभामें मेरे आग्रहसे भारतकी ओरसे श्री कुमारप्पा बोले।

अखबारवालोंने मुझे सभामें कई बार बाहर बुला-बुला कर सवाल पूछे। दूसरे दिन समाचार-पत्रोंमें ये मुलाकातें छपीं। फोटो तो लिये ही गये।

एक भेंटमें मैंने कहा : "जापानने पश्चिमी विद्या अपना कर उसमें किसी भी एशियाई राष्ट्रसे अधिक सफलता प्राप्त की है और दुनियाको दिखा दिया है कि जापान चाहे तो पश्चिमी विद्यामें पश्चिमवालोंसे सफल स्पर्धा कर सकता है। एक बार यह साबित करके अब जापान अपनी मौलिक संस्कृतिकी प्रवीणता केवल कला में ही नहीं बल्कि अपने समस्त जीवनमें क्यों न सिद्ध करे? जिस तरह भारतने अहिंसा और सत्याग्रहका नया मार्ग अपना कर एक रास्ता दिखाया है, उसी तरह जापान भी बौद्ध और शिन्टोके संस्कारमेंसे उत्पन्न हुई एक निराली जीवन-परंपराको विकसित करके दिखावे तो इसमें क्या आश्चर्य है? उसी रास्ते वह शांतिका नया मार्ग-दर्शन भी करा सकता है।

स्त्रियोंकी संस्थाओंके प्रतिनिधियोंसे मुलाकात करते हुए मैंने कहा कि पुरुषोंने झगड़ालू संस्कृतिका विकास किया है। प्राण-घातक प्रतिस्पर्धामें पड़ कर उन्होंने मानव-जीवनका सत्यानाश किया है। अब स्त्रियोंको दुनियाके काम-काज और व्यवहारका अधिकार अपने हाथमें ले कर स्नेहमयी संस्कृतिका विकास करना चाहिए।

युवकोंको मैंने खास तौरसे कहा : Do profit by the heritage of the past. but pray, don't belong to the past. Yon have to be loyal to the future of mankind.

"प्राचीनकी देनका लाभ अवश्य उठाइये, परन्तु भूतकालके बन्धनोंको छोड़ कर। सारी मानव-जातिका भविष्य बनाना आपके ही सिर पर है। पुरानी परम्पराओंसे मुक्त हो जाओगे तभी भविष्यके निर्माता बन सकोगे।"

इस तरहकी मुलाकातें अखबारोंमें पढ़ कर नये-नये लोग सभाओंमें आते रहे और मेरे साथ उत्साहसे बातें करते रहे।

शांति-परिषद्के अन्तमें बाहर निकले तब भीड़मेंसे एक जापानी भाईने अंग्रेजीमें लिखा हुआ अथवा किसीसे लिखवाया हुआ एक पत्र मेरे हाथमें दिया और डबडबाई आंखोंसे मेरे साथ शेकहैंड किया। भीड़में उस पत्रको पढ़नेका मौका नहीं था। इसलिए मैंने उसे जेबमें रख लिया और उनसे बिदा ली। एक भोले, रसिक और कुटुम्ब-वत्सल जापानी मजदूरके हृदयके उद्‌गारोंको जब मैंने पढ़ा तो मेरा हृदय गद्‌गद हो गया। 'निप्पोन' की जनता भारतकी ओर किस आशासे देखती है, यह बतानेके लिए मैंने वह पत्र संभाल कर रखा और पं० जवाहरलालजीको दिखाया। यह रहा वह मूल अंग्रेजी पत्र :

Dear Dr. Kalelkar,

I take the liberty of writing to you. I am a labour in the Japanese. In Japan, as you see, it is spring now. There are cherry-blosam in field and mountain and skylark's song over our heads.

It is best season for picnic and cherry-blosam viewing to go out with family.

But I don't feel such delightful. Because it is A-BOMB that damaged some fishmen and fishes, we live on, by radiation ash and contaminated water. A certain Dietman said, if three A-BOMB exploded in Japan, she would were destroyed at once. A scientist declared that in future Japanese will never increase on account of effective for radiation. So I hav'nt any hope in future, when hear that.

I suppose, it is not only my trouble but also other people's.

To settle such tension of world, I believe that it is India to do that. Because your country don't belong Two Power. She has been neutral.

I heard that you had said "A-BOMB's experiment should be prohibited at once."

I support your opinion.

On April 8 is feted Buddha's birthday, at every temple of note throughout Japan it is held ceremony as annual tradition.

We say it HINAMATSURI.

The 25th century ago Buddha has been born in India, then Buddha saved many people and gave them delightful hope.

The present time your country will give us that one.

Peace for Asia, for Asian and all mankind of world.

It is on yourshoulder.

Take care of yourself.

Yours very truly.
Sd. S. Nagamine
A labour

प्रिय आचार्य कालेलकर,

मैं आपको पत्र लिखनेकी इजाजत लेता हूं। मैं एक जापानी श्रमिक हूं।

जैसा आप देख रहे हैं, आजकल जापानमें बसन्तका आगमन हुआ है। मैदानों-में और पहाड़ोंपर चारों ओर साकुराके फूल खिले हुए दिखाई देते हैं तथा आकाश-में स्काइलार्क पक्षियोंका सुमधुर गान सुनाई देता है।

कुटुम्बी-जनोंके साथ वनभोजनके लिए तथा साकुराके फूलोंकी शोभा निहारने के लिए यह उत्तम ऋतु है।

परन्तु मेरा हृदय ऐसा अनुभव नहीं करता, क्योंकि जिन मछलियोंके ऊपर हम जीते हैं वे मछलियां और हमारे मछुए, दोनोंका अणु-बमसे निकलनेवाली राखसे और समुद्रका पानी जहरीला हो जानेसे नाश हुआ है। हमारी लोक-सभा (पार्लमेंट) के एक सदस्यने कहा है कि यदि ऐसे तीन अणु-बम जापानमें फूट पड़ें तो सारे देश-का तुरन्त नाश हो जायगा। एक वैज्ञानिकने घोषणा की है कि बमसे फैलनेवाले रेडियेशनके प्रभावके कारण अब आगेसे जापानियोंके वंशका विस्तार नहीं होगा। जब यह सब सुनता हूं तब भविष्यके लिए मेरे मनमें किसी तरहकी आशा नहीं रहती है।

मैं मानता हूं कि यह विपत्ति केवल मेरी ही नहीं है, औरोंकी भी है।

दुनियामें यह जो तनातनी चल रही है उसका निवारण करनेका काम भारत का है। भारत ही यह कर सकता है। क्योंकि आपका देश दोनोंमेंसे किसी भी महाशक्तिके पक्षमें नहीं गया है। वह तटस्थ रहा है।

मैंने सुना है कि शांति-परिषद्में आपने कहा है, 'अणु-बमके प्रयोग एकदम बंद कर देने चाहिये।' मैं आपकी इस रायका समर्थन करता हूं।

८ अप्रैलको बुद्धका जन्मोत्सव मनाया जाता है। जापानके सब प्रसिद्ध मन्दिरों में वार्षिक त्यौहारके रूपमें यह उत्सव मनाया जाता है। हम इसे हिनामात्सुरी कहते है।

पच्चीस सौ वर्ष पहले भारतमें बुद्धका जन्म हुआ था। उस समय बुद्धने अनेक लोगोंको उबारा और उन्हें मंगलमय आशा प्रदान की।

वर्तमान समयमें आपका देश हमें ऐसी ही आशा प्रदान करेगा--एशिया, एशियावासी और संसारकी समस्त मानव-जातिके लिए शांति देगा।

यह भार आपके कन्धों पर है। अपनी तबियत संभालियेगा।

आपका

एस० नागामिने (मजदूर)

आज भी हम फुरसत मिलते ही शहरमें घूमे। इसमें खास देखने लायक था सर्व-वस्तु-भंडार (डिपार्टमेंटल स्टोर्स) हमारे यहां अनेक वस्तुओंको बेचनेवाली बड़ी-बड़ी दुकानें बहुत हैं, परन्तु उनमें इस विराट सर्व-वस्तु-भंडारका खयाल नहीं आयेगा। इसमें सुईसे लेकर हाथी तक कोई भी चीज खरीदी जा सकती है। ऐसा लगता है मानो अनेक मंजिलोंवाले इस स्टोरके विशाल मकानमें सैकड़ों दुकानें मिल कर एक हो गई हैं। इसकी बराबरी करनेवाली एक दुकान लन्दनमें देखी हुई याद आती है। इस एक भंडारकी विशालता और अंदरकी कीमती वस्तुओंकी विपुलता देखनेके बाद यह मानना मुश्किल होता है कि पिछले महायुद्धके कारण

जापान तबाह हो गया था। एक तरफ फूल और सब्जी मिलती है तो दूसरी ओर दुर्बीन, कॅमरे और खेल-खिलौने मिलते हैं। तैयार कपड़े तो सारी दुनियाके खरीदे जा सकें इतनी तरह-तरहके हैं। सारी व्यवस्था मानो घड़ीकी सुईके समान ठीक चल रही थी। हमें आश्चर्य तो केवल एक मंजिलसे दूसरी मंजिल पर आने-जाने-वाली लिफ्ट पर हुआ। 'आरोह-अवरोह' करनेके वे कमरे लम्बे-चौड़े और मजबूत तो थे, लेकिन उनमें एकसाथ कितने लोग चढ़ें इसका कोई नियम न था। जिस तरह दियासलाईकी डिब्बियोंमें तीलियां खचाखच भरी होती हैं उसी तरह स्त्री-पुरुष तथा बच्चे जितने ठूंस-ठूंस कर भरे जा सकें उतने अन्दर घुस जाते हैं और ऊपर-नीचे आते-जाते हैं। यहां इस भीड़की किसीको कोई परवाह ही नहीं है।

एक बार डॉ० मेडम कोरा हमारे साथ आयी थीं। चीजें पसन्द करके खरीदने-में उन्होंने हमारी मदद की। टोकियोके जीवनके विषयमें भी उनसे बहुत-सी बातें जाननेको मिलीं।

इन दो-तीन दिनोंमें हम टोकियो शहरमें खूब घूमे और बहुत-कुछ देखा। हमारे जैसे शाकाहारी लोग खा सकें ऐसे जापानी व्यंजन हमने जगह-जगह पर खाये। हमने लोगोंका जीवन देखा और मनुष्य-जातिने जीवनकी कलाको कितनी तरहसे उन्नत किया है, यह देख कर आश्चर्य-चकित हुए। लेकिन साथ ही इस विविधताके पीछे भी एक ही हृदय काम करता है, इसका आश्वासन भी प्राप्त कर सके।

एक तो हम घूमते-घूमते थक गये थे और ऊपरसे हमारे 'युवाप्रासाद'का लिफ्ट बिगड़ गया था! मुकाम पर पहुंचना यानी पांच मंजिल चढ़ना और पांच मंजिल उतरना। चि० सरोजने बडी हिम्मत बताई, इसलिए कोई परेशानी नहीं हुई।

तीसरी अप्रैलको सैनान-कानमें नाश्ता करके हम परिषद्में गए। वहां मैं कोरियाके विषयमें बोला। परिषद्के बाद भारतीय दूतावासमें जा कर श्री रणवीर-सिंहके साथ जरूरी बातें करके हम जापानी ट्रेन द्वारा सफरके लिए निकल पड़े। परिषद्से भिन्न यह हमारी व्यक्तिगत यात्रा थी। ठीक साढ़े बारह बजे हाटो एक्स-प्रेससे हमने टोकियो छोड़ा। स्टेशन पर रणवीरसिंहजी छोड़ने आये थे। हमारे साथ भिक्षु मारुयामा और ईमाई-सान दोनों थे। हमें टोकियोसे ओसाका और कोबे जाना था। योकोहामाको तो टोकियोका विराट व्यापारिक उपनगर ही समझिए—वैसे ही, जैसे कि पच्चीस मीलकी दूरी पर बसे हुए 'ओसाका' और 'कोबे' एक दूसरेके पूरक है।

दोपहर शाम तक यात्रा करके रास्तेमें सारे देशके सौंदर्यकी चर्चा करते हुए हम ओसाका स्टेशन पर पहुंचे। वहां हम अनेक जापानी और भारतीय भाइयोंसे मिले। बादमें हम मोटरसे पच्चीस मीलका रास्ता तय करके 'कोबे' पहुंचे। वहां भाई धर्मदास थानेवालेके यहां हमारा ठहरनेका प्रबन्ध था। बिस्तर पर पहुंचते-पहुंचते रातके लगभग पौने बारह बज गये।

३. संस्कार धाम

अपने अपने ही होते हैं। बिना किसी पूर्व परिचयके भाई धर्मदास थानेवालेके यहां हमारे रहनेकी व्यवस्था की गई थी। उनका घर था तो बड़ा व्यवस्थित, लेकिन हमारे जैसे दो मेहमानोंके समाने लायक था, यह नहीं कह सकते। फिर भी भाई धर्मदास और उनकी पत्नी रसीला बहनने बड़े परिश्रमसे हमारे लिए सुन्दर व्यवस्था कर दी। उनका बालक 'शिशिर-चान' तो अपनी मधुर तोतली बोलीसे हमारा मनोरंजन करता ही रहा। छोटा अबरीष तो आश्चर्य ही करता होगा कि घरमें ये नये लोग कौन आ गये? चि० सरोजकी और रसीला बहन की तो खासी दोस्ती जम गई थी।

कोबेको अपना केन्द्र (हेडक्वार्डर) बना कर ओसाका, क्योतो और नारा इन तीन स्थलोंकी हमने यात्रा की। यहां मैंने देखा कि आदरार्थमें 'सान' शब्द केवल मध्यम-वर्गके लोगोंको ही नहीं लगाते बल्कि रसोइयेको भी 'कुक-सान' कहते हैं। बच्चे भी सान या 'चान' प्रत्ययके पात्र माने जाते हैं।

ओसाकामें हमें कई लोगोंसे मिलना था। पहले तो ईमाई-सान मिले। वह हमें दूसरे जापानी लोगोंके पास ले गये। जापानमें धर्ममें रस लेनेवाले लोगोंको Religionist कहते हैं। ऐसी दो बहनोंसे हम मिले। फिर हम क्योतो गये और वहांका एक बहुत बड़ा शिन्टो मन्दिर देखा। मन्दिरके पुजारियोंने हमारा स्वागत किया। मन्दिरका वैभव और उसमें छिपी सादगी बड़ी आकर्षक थी। प्रत्येक कमरे की दीवारके ऊपरी हिस्से पर लकड़ीके पटिये लगे हुए थे, जिनका खुदाईका काम बारीक-कलाके उत्तम नमूनोंमें गिना जा सकता है।

यहांके मन्दिरके एक विद्वान पुजारी टोपी पहन कर हमारे साथ आये। उन्होंने हमें एक थियेटरमें हो रहे नृत्यके टिकट बड़ी मेहनतसे दिलवाये। नृत्य और नाटक करनेवाली स्त्रियां सब गेशा लड़कियां थीं। गेशाके लिए हमारा पुराना शब्द गुणिका है जिसका रूप बाद में गणिका हुआ। गोवामें इन्हें कलावन्तिन कहते हैं। इनको केवल वेश्या कहना ठीक नहीं है। ये लोग संगीत, वादन, नृत्य, चित्रकला, नाट्य, अभिनय इत्यादि अनेक कलाओंमें प्रवीण होती हैं। सम्भाषण-चतुर तो होनी ही चाहिये। इन लड़कियोंका मुख्य काम उच्च-संस्कारी अभिरुचिका पोषण करनेवाली अपनी कलाओंसे मालिकोंको या ग्राहकोंको संतोष देना होता है। इन लोगोंकी कमाई भी हैरतमें डालनेवाली होती है।

एक अनजाने देशकी संस्कृतिके नमूनेके रूपमें ही हम यह नृत्य नाटिका देखने गये थे। नाट्य-गृहका नाम था डोरैमिको। रंग-मंच प्रेक्षकोंके तीन ओर फैला हुआ था। नृत्य करनेवाली लड़कियां जहां-तहां बड़ी तादादमें मूर्तियोंकी तरह बैठी या खड़ी थीं। सामनेका रंग-मंच चाहे जब जमीनमेंसे ऊपर निकल आता था या

भीतर चला जाता था। पर्दोंका तो कहना ही क्या ? पर्दा खींचे बिना भी उनके दृश्य परिवर्तित होते थे। कभी शीत, कभी बसंत तो कभी देखते ही देखते पतझड़ ! एक बार उस पर्देके ऊपर हमने समुद्री तूफानको उठते हुए और फिर शांत होते हुए भी देखा। उस तूफानमें पड़ी हुई मछलियोंके तड़पनेका दृश्य आसानीसे भूला नहीं जा सकता। साकुरा (cherry) और मोमो (peach) के फूलोंकी रंगीन बहार तो मनुष्यको उन्मत्त करनेवाली थी।

नृत्यमें चेहरे पर हाव-भाव बिलकुल नहीं थे। भाव प्रकट करनेका काम अंगोंकी मरोड़से, हाथके पंखोंसे और शरीरके कपड़ोंसे किया जाता था। संगीत उच्च कोटिका था। बीच-बीचमें तो अच्छा लगता था और कभी-कभी नीरस भी लगता था। 'पपेट-शो' और 'बेले' का यह एक मिश्रण-सा था।

जापानी प्रेक्षक यह सब बड़ी शान्तिके साथ देख या सुन रहे थे—और उसका आनन्द लूट रहे थे। 'वाह-वाह' 'बहुत अच्छे', 'क्या खूब', जैसे कोलाहलका यहां नाम न था।

नृत्यके बाद [illegible] पहाड़ी पर स्थित एक प्रख्यात मन्दिर देखने गये। जहां तक मुझे याद है इस मंदिरके पास ही एक छोटेसे उपवनमें कई पालतू हिरन उछल-कूद कर रहे थे और अपने स्वच्छन्द विहारसे प्रेक्षकोंका मनोरंजन कर रहे थे। क्योतोमें अनेक जगह घूम कर हम कोबे वापस आये। टोकियो और क्योतो शहर अलग हैं, लेकिन उनके नामका अर्थ एक ही है—राजनगर। यह क्योतो पुराना राजनगर था आजके टोक्यो या तोक्योका पुराना नाम एडो था।

भाई धर्मदास थानेवालेने अपने घर पर ओसाका और कोबेके चालीस-पचास भारतीयोंको इकट्ठा किया था। उनमें सिंधी, पंजाबी, सिक्ख, गुजराती आदि अनेक प्रकारके लोग थे, एक बोहरा भाई और एक महाराष्ट्रीय भी थे।

उन लोगोंने भारतकी स्थितिके संबधमें अनेक सवाल पूछे। काश्मीर, पाकिस्तान को मिलनेवाली अमरीकी सैनिक सहायता और स्वराज्यमें भी प्रचलित घूस-खोरी आदि अनेक प्रश्नों पर चर्चा हुई। फिर ऐसी चर्चामें हमेशा ही आनेवाला यह सवाल भी उठा कि जवाहरलाल नेहरूके बाद भारतकी धुराका वहन कौन करेगा ?

मैंने कहा कि बचपनसे ही ऐसे सवाल सुनता आया हूं। लोग कहते थे कि सर फिरोजशाह मेहता जैसा दूसरा नेता भारतको कहांसे मिलेगा ? फिर कहने लगे कि गोखले जैसा त्यागी, वक्ता और कुशल नेता अब मिलनेवाला नहीं है। लेकिन उनसे भी अधिक तेजस्वी मिले लोकमान्य। उनके बाद देशमें अन्धकार छा जायगा, ऐसा लोग मानते थे। लेकिन उनकी जगह महात्मा गांधी आये और दुनिया चकित हो गई। ऐसे नेता तो हजारों वर्षोंमें एकाध ही होते हैं ! ! स्वराज्य मिला और देशकी बागडोर जवाहरलालजीने संभाली। वे तन और मन, दोनोंसे स्वस्थ हैं। अभी कई वर्षों तक वे भारतका मार्ग-दर्शन करते रहेंगे और दुनियाकी राजनीति

पर प्रभाव डालते रहेंगे । वे थकेंगे तब तक कोई और खड़ा होगा ही, इस विषयमें मुझे शक नहीं है ।

एक पंजाबी भाईने कहा कि ऐसा आदमी कोई आसमानसे थोड़े ही टपकेगा ? आज भी कहीं तो काम करता ही होगा। लोग उसे जवाहरलालजीके उत्तराधिकारीके नाते शायद पहचानते भी होंगे ।

मैंने कहा कि ऐसे तो एकसे अधिक हैं, कौन आगे आयेगा कैसे कहा जाय ? लेकिन मैं मानता हूं कि जवाहरलालजी थकेंगे और निवृत्त होंगे उसके पहले भारतकी ही नहीं बल्कि सारी दुनियाकी राजनीतिक स्थिति बदल गई होगी । जीवन मूल्य ही बदल गये होंगे ।

एक भाईने पूछा, क्या आप यह सूचित करना चाहते हैं कि विनोबा भावे जवाहरलालजीका स्थान लेंगे ? मैंने कहा, ये दोनों अपने अपने ढंगके निराले हैं । विनोबा जवाहरलालजीका स्थान नहीं ले सकते । उनका खुदका स्वतन्त्र और स्वयंभू स्थान है । वे तो अकेले ही प्रयत्न करते रहेंगे और जनताको ऊंचा उठायेंगे ।

आजकी इस मजलिसमें एक जापानी प्रोफेसर भी शामिल हुए थे । वे यहां हिन्दी सिखानेका काम करते हैं । सावा-सान एक बार भारत हो आये हैं और दूसरी बार फिर जानेवाले हैं, ऐसा उनसे मालूम हुआ । [जैसा उन्होंने कहा था, वे दुबारा भारत आये थे, मुझसे मिले थे और मैंने उनके सफरकी थोड़ी व्यवस्था भी की थी ।]

भारतसे मैं अपने साथ दो 'गांधी-अलबम' ले गया था—एक गुरुजीको भेंट दिया और दूसरा कोबेके भारतीयोंको ।

दूसरे दिन हम कोबेसे ओसाका हो कर नारा पहुंचे । नारा जापानका सबसे पुराना और महत्त्वका संस्कार-धाम है । इतिहास, साहित्य, संगीत, स्थापत्य और धर्म—हरेक दृष्टिसे उसका अनोखा महत्त्व है । क्योतो और नारा दोनों जगह श्रीमती रमीला बहन अपने शिशिरको लेकर हमारे साथ घूमी । इससे बड़ा आराम रहा । ओसाकामें आज कई अखबारवाले मिले । उनके साथ वार्तालाप करके उन्हें एक सन्देश लिख दिया ।

नारा पहुंचते ही हम प्रख्यात होडियूजी मन्दिर देखने गये । यहांके मुख्य साधु शान्त, प्रसन्न और प्रभावशाली दिखे । ईमाई-सानने कहा कि ये हमारे गुरुजीके खास मित्र हैं । उनका नाम रियोकेन मायकी था । उन्होंने हमें मन्दिरके पुराने भित्ति-चित्रोंकी नकलें भेंटमें दीं । भारतीय चेहरोंको और वेशभूषाको स्वाभाविक जापानी रूप देनेवाले ये चित्र बहुत आकर्षक हैं । कलाके समन्वयमें कितना ऊंचा पहुंचा जा सकता है, इसकी कल्पना ये चित्र देते हैं । प्रतिकृतियां (नकलें) देखनेके बाद मूल भित्ति-चित्र देखनेकी मांग किये बिना कैसे रहा जाता ? लेकिन मालूम हुआ कि मन्दिर लकड़ीका होनेके कारण एक दुर्घटनामें जल गया था । मूल चित्रोंके

नष्ट होनेसे पहले तैयार की हुई ये प्रतिकृतियां ही अब उपलब्ध हैं। यह वृत्तान्त सुननेके बाद दुःखी मनके सामने इन प्रतिकृतियोंका महत्त्व बढ़ गया। मैंने वे चित्र संभाल कर रखे हैं।

एक जगह हमने एकके ऊपर एक ऐसा पांच छप्परवाला मन्दिर देखा। ऊपरका कलश नीचेकी शोभा पर कलगीके समान लग रहा था।

इस प्रदेशमें अवलोकितेश्वर भगवानकी भक्ति विशेष रूपसे होती है, ऐसा मालूम होता है। अवलोकितेश्वर भगवानके मुह पर शान्ति, कारुण्य और किंचित् विषादका भाव दिखाई देता है।

दूसरे एक शिन्टो मन्दिरका नाम था तेन्री क्यो-यानी स्वर्गीय विद्या अथवा वाणी। यह सारा मन्दिर गरीब लोगोंकी सेवामें बना है। इसलिए अधिक पवित्र माना जाता है। यहां पुजारियोंने हमें काले कोट जैसे दो झब्बे दिये जिनके ऊपर उनके इस मन्दिरके विषयमें कुछ लिखा हुआ था। इस संस्थामें काम करनेवाले कर्मचारी और मजदूर भी काम करते वक्त ऐसे ही कपड़े पहनते है। भक्तिका ऐसा ढिंढोरा मुझ पसन्द नही आया। अच्छा था कि कपड़ो पर लिखी बाते हम पढ़ नहीं सकते थे। हमारे लिए यह सभी आड़ी-तिरछी रेखाओंकी चित्रकारी जैसा ही था।

एक बार जापानके एक बादशाहने अपने सरदारों और प्रजाके बीच मतभेद हो जानेके कारण चलनेवाले झगड़ोंसे तंग आ कर एक साधुकी सलाह मांगी। साधुने कहा कि उपदेशसे एकताकी स्थापना नहीं हो सकती। इन लोगोंको कोई बड़ा और सर्वमान्य काम सौंप दें तो लोग झगड़ा भूल कर आपसमें सहयोग करने लगेंगे। साधु की सलाहके अनुसार सम्राटने वैरोचन बुद्ध भगवानकी ध्यानमें बैठी हुई तिरपन फुट ऊंची एक भव्य मूर्ति बनवाई और उसके लिए मन्दिरकी स्थापना की। इस राष्ट्रीय धर्म-कार्यके लिए लोगोंमें इतना उत्साह उत्पन्न हुआ कि सचमुच वे झगड़ा भूल गये। राष्ट्रमें हार्दिक एकताकी स्थापना हुई देख कर सम्राट सन्तुष्ट हुआ।

नारामें कोबे वापस आ कर हमने सो लकीसानके यहां खाना खाया और लम्बी यात्राके लिए ट्रेनमें बैठे। ईमाई-सान ओसाकासे आये थे। जापानी ट्रेनोंमें सोनेकी सुन्दर सुविधा होती है।

४. भीषण ज्वालामुखी और सौम्य दीपक

६ अप्रैल। आज हम अपना द्वीप छोड़ कर एक दूसरे द्वीप कियुशुमें जानेवाले थे। सुबह होनेसे पहले शिमोनोसेकी स्टेशनसे मोजी स्टेशन तक समुद्रके नीचेसे जानेवाली एक सुरंग द्वारा हमारी गाड़ीने यह दीपान्तर-यात्रा की। रेलकी यात्राके

लिए यह बहुत बड़ी सुविधा थी। ट्रेनसे जहाजमें और जहाजसे फिर उस पारकी ट्रेनमें इस तरहकी अदला-बदली कुछ भी नहीं करनी पड़ी। इतना ही नही बल्कि नींदमें भी कोई बाधा नही हुई। शिमोनोसेकीमें जापानका सबसे बड़ा लोहेका कारखाना है। संपूर्ण एशियामे इतना बड़ा लोहेका कारखाना शायद ही दूसरा हो।

हमें हाकाटा अथवा फुकुओका स्टेशनसे गाड़ी बदल कर कुमामोतो जाना था। बीचमें थोड़ासा समय मिलता था। उसका फायदा उठा कर हम शहरके एक उद्यान में बोधिसत्त्व निचिरेनकी एक बड़ी मूर्ति थी, वह देख आये। इन साधु निचिरेनके विषय कई चमत्कार बनाये जाते हैं। कहते हैं कि इनके हुकुमसे एक प्रचण्ड बवण्डर आया और जापानके ऊपर हमला करनेवाले चीनी जहाज समुद्रमें डूब गये ! ! यह सात सौ वर्ष पुरानी बात है।

हाकाटासे हम कुमामोतो आये। कियुशु द्वीपका यह एक महत्त्वका मध्यस्थ शहर है। यहीं गुरुजीने एक पहाड़ीके ऊपर शान्ति-स्तूप बनवाया है जिसके अन्दर भारत सरकार द्वारा मिले हुए भगवान बुद्धके शरीरके कुछ अवशेषोंकी आज ही स्थापना होगी। हाकाटा स्टेशनसे बहुत-से यात्री इस उत्सवके लिए आ रहे थे। इसलिए मानो विजय-प्रवेश कर रही हो, ऐसी धूमधामसे हमारी ट्रेन स्टेशन पर पहुंची। हमारा डेरा मात्सुनोई नामके सुन्दर जापानी होटलमें था। हमारे लिए दो स्वतन्त्र कमरे थे। एक दीवानखाना था और उसके सामने जापानी ढंगका सुन्दर बगीचा था। जापानी बगीचा यानी उसमें एक छोटा-सा तालाब, एक छोटा-सा पुल, थोड़े-से झाड़, सम्भव हो तो एक छोटा-सा प्रपात और इधर-उधर जाने-आनेके लिए सुन्दरतासे रखे हुए गोल चपटे पत्थर होते ही है। बगीचेके उस पार कई जापानी मजदूर काम कर रहे थे। उनके मजबूत गठे हुए शरीर और काम करनेकी उमंग देखते ही बनती थी।

पहुंचते ही अखबारवालोंने हमारे फोटो लिए और वहांके दैनिकोंमें छापनेके लिए मुलाकातें भी ली। यहां हमें तीन दिन रहना था और तीनों दिनोंका कार्यक्रम बड़ा व्यस्त था।

७ अप्रैलका दिन तो सदा याद रहेगा। इस दिन हम दुनियाका सबसे बड़े द्रोण (crater) वाला, धधकता हुआ ज्वालामुखी देख आये। इसका नाम 'आसो' है। और यह अखण्ड धुआं और ज्वाला फेंकता रहता है।

सुबह डट कर नाश्ता करके एक सुन्दर बड़ी बसमें साढ़े नौ बजे हम चल पड़े। पूरे दो घण्टेकी लम्बी यात्रा करके आसपासके प्रदेशकी शोभा निहारते हुए हम ज्वालामुखीकी तलहटीमें जा पहुंचे। इन दो घण्टोंमें दूर-दूरके छोटे-बड़े अनेक पहाड़ देखे। इनमेंसे एक पहाड़ीने मेरा ध्यान खास तौरसे खीचा। इसका आकार एक सुन्दर कछुए जैसा था। इस पहाड़ी पर लोगोंने बाड़ जैसी एक दीवार बनाई हुई थी। इसका क्या उपयोग होगा, यह कुछ समझमें नहीं आया। इसकी विशेषता तो

यह थी कि इस पहाड़ीके चारों ओर कोई रास्ता बनाना चाहता हो, इस तरहका इसका कुछ अनोखा पथरीला घाट था। इसी कारण वह कछुए जैसा लगता था। हमारे रास्तेका घुमाव भी ऐसा था कि इस पहाड़ीको हम कई ओरसे देख सके। रास्ता करीब-करीब पूरा होने आया तब हम एक छोटेसे अन्तिम गांवमें ठहरे। यहां खाना खाया। छोटे-छोटे बच्चोंको खेलते देखा। इसके बाद ही ज्वालामुखीके उस उजड़े हुए प्रदेशमें हमारी बसने प्रवेश किया।

एक बात तो लिखनी छूट ही जा रही थी। हमारी बसमें लोगोंको टिकट देनेके लिए एक बहन कन्डक्टर थी। जहां-जहां बसका स्टैंड आता वहां कोई उतरने या चढ़नेवाला हो या न हो पर वह बहन तो बसका दरवाजा खोल कर नीचे उतरती, एक क्षण ठहर कर वापस ऊपर चढ़ती और फिर दरवाजा बन्द कर लेती। उसकी इस नियम-निष्ठाको देख कर हमें बड़ा कुतूहल हुआ। हाथमें छोटा-सा लाउडस्पीकर ले कर यात्रियोंको सूचना देनेका काम भी उसीका था! बीच-बीचमें यात्रियोंके मनोरंजनके लिए वह सुन्दर-सुन्दर गीत भी गा कर सुनाती थी। उसका कण्ठ अच्छा था। कई राग तो भारतीय रागोंका स्मरण कराते थे। हमारे साथके कुछ दुभाषिये जापानियोंने इस बहनके द्वारा गाये गये लोक-गीतोंके अर्थ हमें समझाये। लोक-गीत अकसर करुण ही होते हैं और सामान्य प्रजाके सामान्य सुख-दुःखको अमर करते हैं। उस बहनका एक गीत साकुरा (फूलों) की बहारके विषयमें था। चारों ओर ये फूल खिले हों और बसमें इनका ही गीत गाया जाता हो तब यात्रा पूरी तरह काव्य-मय बन जाती है। एक जगह लोगोंने बससे उतर कर साकुराके फूलोंकी बहुतसी डालियां इकट्ठी कर ली और उन्हें बसमें जगह-जगह खोंस कर उसे पुष्पिताग्रा बना दिया।

लोग मौजमें आ गये। एकने सुझाया कि बसमें जब अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन जैसा ही है तो फिर हर आदमी अपने-अपने देशका गीत क्यों न सुनाये। सूचनाका अनादर नहीं हुआ और आसोके रास्तेकी हवामें अनेक देशोंके राग गूंज उठे।

जहां-जहां बस ठहरती वहां बच्चे तो इकट्ठे होते ही। जापानी बच्चे यानी छोटी-छोटी आंखें, उठे हुए गाल, उनके बीचमें छिपी हुई चपटी नाक, प्रसन्न हास्य-से खिले हुए दांत और भरे हुए हाथ-पैर। ऐसे बच्चोंको देखते ही ममता उमड़ पड़ती है। कोई भी बच्चा रोता हुआ या किसी भी तरह परेशान दिखाई नहीं दिया।

अब हम ज्वालामुखीकी तलहटीमें जा पहुंचे। यहां हमें बससे उतर कर आध घंटेकी कड़ी चढ़ाई चढ़नी थी। झाड़-झंखाड़का कहीं नाम भी न था। ऊबड़-खाबड़ प्रदेशमें किसी तरह रास्ता निकलते हुए सब लोग ऊपर चढ़ने लगे। सब मिल कर यात्री सौ सवासौके लगभग होंगे। मेरे साथ भिक्षु वातानावे और जापानी विद्यार्थी किमुरा थे। चढ़ते-चढ़ते और भी लोग मिलते जाते थे। यात्री पीछे मुड़ कर सारा

दृश्य देखते, अभी और कितना चढ़ना है इसका अन्दाजा लगाते और छातीमें नया श्वास भर कर फिर ऊपर चढ़ने लगते थे। छाछ और दहीके मटकोंके मुंह पर उफन कर निकलती हुई दूध-दहीकी सफेद धारियां जैसे चारों ओर दिखाई देती हैं अथवा जैसे शुरू-शुरूमें खाना सीखनेवाले बच्चोंके मुंहके आसपास दाल-भात चिपके होते हैं, वैसे ही इस बड़े ज्वालामुखीके मुहके आसपास दूर-दूर तक सफद और काले रंगकी राख जमी हुई थी। उसमेंसे हम रास्ता निकालते-निकालते ठेठ ऊपर तक जा पहुंचे। कई ओरसे उस द्रोणके भीतर झांका। ज्वालामुखीके भयानक मुहमें करीबन झांक कर देखना यह कोई साधारण अनुभव नही था। उस विशाल और टेढ़े-मेढ़े द्रोणमेंसे कितनी ही जगहोंसे सफेद, नीले और काले धुएंके बादल उठ रहे थे। बीच-बीचमें खीलोंके चटखनेके समान पत्थर भी उछल रहे थे। किसी-किसी जगह उस धुएंमेंसे ज्वाला भी फूट निकलती थी; तब उसका सौम्य ताम्र रंग ऐसा डरावना दिखाई देता था कि उसकी तुलनामें रातकी धधकती ज्वाला कही अच्छी कही जा सकती है।

मेरे साथ चलनेवाले भिक्षु वातानाबेके हाथमें भारतका तिरंगा झण्डा था। मुझे खुश करनेके लिए उन्होंने वह झण्डा मेरे हाथमें देनेके लिए आगे बढ़ाया। लेकिन इसके बदले मैंने दूसरे एक भाईके हाथसे लाल सूर्यके बिम्बवाले जापानी झण्डेको हाथमें लिया और वातानाबेके आसपास इकट्ठे हुए जापानी लोगोको समझाया कि इस जगह मेरे हाथमें अपने देशका झडा शोभा नही देता। मैं जापान-विजय करनेके लिए आया हुआ कोई आक्रमणकारी योद्धा नही हूं जो अभिमानसे अपना झडा ले कर इस भूमि पर फिरूं। हमारा तिरंगा झडा मेरे लिए प्राण-तुल्य अवश्य है। इसकी इज्जतकी खातिर भारतमें हम कितनी ही बार लड़े हैं। लेकिन यहा तो हमारी आवभगत करनेवाले और भारतके साथ प्रेम-सम्बन्ध जोड़नेवाले जापानियोंके हाथमें ही यह झंडा शोभा देता है। इसी प्रकार जापानका उत्कर्ष चाहनेवाले और जापानियोंकी दोस्तीकी इच्छा रखनेवाले मेरे हाथमें आपका चंड-प्रतापी सूर्यका झण्डा ही सुन्दर दिखाई देता है। मेरी इस विवेक-मीमांसासे आस-पासके सब लोग खुश हुए। एक भाईने धीरेसे कहा, आपने तो हमारे दिलोंको जीत लिया।

इसके बाद कई कैमरे बतखकी बोलीकी तरह क्लिक-क्लिक करने लगे। मैंने देखा कि जहा हम खड़े थे, उससे भी थोड़ा ऊचा एक शिखर बाईं ओर है। फिर वहां पहुंचे बिना कैसे वापस लौटते? यह सबसे ऊंची जगह थी, जाना जरा मुश्किल था, लेकिन इसीसे उसका दुगुना आकर्षण था। पैरोंको सभालते-संभालते उस शिखर पर पहुंचे। यहांसे पर्वतके द्रोणकी लम्बाई ज्यादा अच्छी तरह दिखाई देती थी और धुओंके बादल भी अधिक ऊंचे जाते हुए दिखाई देते थे।

उसी जगह बेहिसाब उमड़ी हुई अपनी भावनाओंसे मन परेशान होता है।

जिन्दगीका यह एक असाधारण सुन्दर अवसर है, इसलिए प्रत्येक क्षणका उत्तम-से-उत्तम उपयोग कर लो—इस तरह आंखोंको और हृदयको मन समझा रहा था। आगे और पीछे, दाएं और बाएं, ऊपर और नीचे, दसों दिशाओंमें आंखें तबीयत भर कर देखना चाहती हैं, कोई भी अंश अनदेखा न रह जाए ऐसी सावधानी रख कर देखना चाहती हैं और स्मृति-पट पर उनके अनेक चित्र अंकित कर लेती हैं। दूसरी ओर हृदय इस सारे प्रसंगकी गंभीरताको पहचान कर भक्ति-नम्र होता है और गहराईमें उतरता है।

दो-तीन साल पहले कुछ लोग यहां आये थे और यकायक ज्वालामुखीका गम्भीर विस्फोट हो जानेके कारण वे सभी लोग उस दुर्घटनामें वहां जल मरे थे। लेकिन यह जानते हुए भी क्या कोई मनुष्य ऐसी जगह जानेसे रुका है? खतरा कहां नही है? किसी वक्त जोखिम आएगी और घेर लेगी, इस डरसे क्या मनुष्य किसी भी कालमें ऐसे भव्य विश्व-रूप-दर्शनसे वंचित रहा है? जीवित-आशा, धनाशा, विजय-आशा और सुख-लालसा इन सबसे अधिक सार्वभौम जिज्ञासा और अदम्य कुतूहल ही बलवत्तर साबित हुए हैं। ईश्वर ज्ञान-स्वरूप है। ज्ञानमें वृद्धि करते-करते ही ईश्वरका साक्षात्कार हो सकेगा। ऐसी भव्यताके दर्शनसे ही दृष्टि दिव्य होती है। ऐसा 'ईश्वर-योग' निहारनेके लिए हर एक भक्तको ईश्वर 'दिव्य-चक्षु' देता ही है और जो भगवान दिव्य-चक्षु देता है वह हृदयकी समृद्धि भी देता है।

कहां भारतवर्ष और कहां निप्पोनका यह प्राची-द्वीपका प्रचण्ड ज्वालामुखी! यहां आ कर मैं कृतार्थ हुआ। एक क्षण भी ऐसा नही लगा कि पराये मुल्कमें हूं। जहां भाषा-भेद है वहां भले ही परायापन महसूस हो पर कुदरत तो सब जगह एक ही है। मैं हिमालयकी उत्तुंग हिम-राशिमें जो विश्वात्मैक्य अनुभव कर सका था, उसी विश्वात्मैक्यको इस रक्षा-पर्वतके शिखर पर धूम्र और ज्योतिके बादलोंके बीच अनुभव करनेमें मुझे जरा भी कठिनाई नही हुई। वह अनुभूति हृदयमें मुंह तक भर गई और तुरन्त ही ज्ञानेश्वरीकी ये दो पंक्तियां मुंहसे निकल पड़ी :

हे विश्वचि माझें घर, ऐसी जयाची मति स्थिर,
किं बहुना चराचर, आपणचि झाला।

अर्थात् यह अखिल विश्व ही मेरा घर है ऐसी जिसकी मति स्थिर है अथवा जो चराचरमें अपनेको ही व्याप्त देखता है वही, मेरा भक्त है।

मेरे लिए यात्रा कोई कुतूहल-तृप्तिका विषय नही है। यह तो विधाताके आद्य अवतारका प्रत्यक्ष दर्शन है। जिसके उद्धारके लिए भगवानने दस-चौबीस या अनन्त अवतार लिये, वही यह विश्व स्वयं भगवानका आद्य और विराट अवतार है। उसके साथ तादात्म्यका अनुभव करना यही तो सबसे बड़ी साधना है।

जिस तरह मूर्ति-पूजा और मानस-पूजा—यह द्विविध-पूजा भक्तोंको सूझी है उसी प्रकार पृथ्वी-पर्यटन और तारा-निरीक्षण ये भी दर्शन-भक्तिके दो विराट

प्रकार हैं। जैसे-जैसे मौका मिले वैसे-वैसे इन दोनोंकी उपासना करके मनुष्य अनुभवसमृद्ध होता है।

आसोके इस सर्वोच्च शिखर पर इससे निम्न विचार आ ही नहीं सकते। ज्वालामुखीकी अग्नि 'कालोऽस्मि लोक-क्षय-कृत् प्रवृद्धः' ऐसा कह सकती थी। लेकिन मुझे तो उसमें विश्व-कल्याण-कामना और उसके लिए धारण किया हुआ उसका संयम ही प्रतीत हुआ।

समाधिके बाद जिस तरह काल-क्रमसे व्युत्थान होता है उसी प्रकार हम ज्वालामुखीके द्रोण-दर्शनसे कृतार्थ होकर नीचे उतरने लगे। ऊपर बढ़ते हुए जो अनेक प्रकारकी चर्चाएं चल रही थीं वे सब अब बन्द हो गईं। हास्य रसके फव्वारे लोप हो गए। हरएकके मुंह पर प्रसन्न-गम्भीरता छाई हुई थी 'मन मस्त हुआ फिर क्यों डोले'? लेकिन यह स्थिति देर तक न टिकी। जैसे-जैसे हम उतरने लगे वैसे-वैसे जगह चौड़ी होती गई। यात्री अनेक धाराओंमें बिखर गये। फिर सबको एक-दूसरे के अनुभव सुननेकी सूझी। पुराने अनुभव ताजे होने लगे और लोग विनिमयानन्द-में मग्न हो गये।

नीचे आते ही कइयोंने चाय पी। मैंने चि० सरोजके दिये चाकलेटके टुकड़े खाये, और आजकी यह कृतार्थता किस प्रकार संग्रह करके रखी जाय, इसी चिंतामें बाकीका दिन बिताया।

जिस रास्तेसे गये थे उसी रास्ते वापस आये। फिर वही बच्चे दिखाई दिये। उमी कछुआ-पहाड़ीने हमारा स्वागत किया। उन्ही साकुरोंके वृक्षोंने अपने हाथमें फूल ले कर हमें पुष्पांजलिके आशीर्वाद दिये और अन्तमें हमने कुमामोतोंमें फिरसे प्रवेश किया। सुबह उठ कर जानेवाले हम वापसीमें वही नही थे। प्रत्येक व्यक्ति एक कीमती-से-कीमती अनुभवके भारसे दबा हुआ था और उससे प्रसन्न था। तब भला सन् १९५४ की यह सातवी अप्रैल कैसे भुलाई जा सकती है?

२

अगली सुबह स्तूपोत्सव होनेवाला था। उसके सम्मानमें कुमामोतो शहरके लोगोंने रातको जापानी दीपोंका एक जुलूस निकालनेका निश्चय किया था। देश-देशान्तरोंसे आये हुए हम प्रतिनिधि मेहमान भी उसमें भाग लेनेवाले थे। इस तरह-के उत्सवकी श्रीवृद्धि करनेका निमन्त्रण कौन छोड़ता?

जुलूसमें हजारों बच्चे एक-एक लकड़ीके सिरे पर बंधे हुए कागजके दीप लेकर चल रहे थे। उनके पीछे सुन्दर-सी बसमें बैठ कर हम मेहमान चले। हमें भी ऐसे ही दीप दिये गए थे। पीले कटहलके आकारके ये कागजी दीप वजनमें बिलकुल हलके होते हैं। इनकी तली पर लगाई हुई मोमबत्तीका प्रकाश कागजके कारण सौम्य रीतिसे फैल रहा था। सौम्य-प्रकाशके ये असंख्य गोले जब हवामें डोलते-डोलते चलते हैं तब उसका मन पर बड़ा खुशनुमा और जादुई असर होता है।

जुलूस शुरू होनेके स्थान पर हम समयसे पहुंच गये। अंधेरा होने लगा था, लेकिन शहरके रास्ते हमेशाकी तरह रंग-बिरंगे दीयोंसे प्रकाशित थे। रास्तों पर यदि पहले जमाने जैसा अंधेरा होता तो हमारे इन कागजी दीयोंका महत्त्व बढ़ जाता। खैर हमें तो कुमामोतो शहरकी शोभा भी देखनी ही थी। नगर सचमुच सुन्दर था। प्रमुख मार्ग और बाज़ार तो गन्धर्व-नगरीकी-सी शोभा दे रहे थे। हम सब बसमें बैठ गये थे और हमें मिले हुए दीपोंको हमने लकड़ीके द्वारा खिड़कीके बाहर लटका रखा था। भीतरकी मोमबत्तीके बुझते ही या खत्म होते ही तुरन्त कोई-न-कोई आ कर उसमें नई मोमबत्ती जला जाता था।

सदा शर्मीले और अलिप्त रहनेवाले भारतन् कुमारप्पा भी इस सारे वातावरणसे प्रभावित हुए और खुशीमें आ कर बच्चोंके साथ खिलवाड़ करने लगे।

घण्टों तक हम सारे शहरमें धीरे-धीरे घूमे। जहां-तहां लोग घरों और दुकानों से बाहर निकल कर जुलूसका अभिनन्दन कर रहे थे। चि० सरोजने मुझसे कहा: "इन बच्चोंका उत्साह अधिक या घंटों तक रास्ते पर पैदल चलनेका धीरज अधिक, यह कहना मुश्किल है। अच्छे-अच्छे कपड़े पहन कर इतने सारे बच्चोंका शान्ति और उत्साहके साथ दीयोंका जुलूस निकालना कोई छोटी-मोटी सिद्धि नहीं है।"

किसी भी देशकी दुकानोंकी अपेक्षा जापानके बाजारकी दुकानें अधिक सुन्दर, सजी हुई और आकर्षक मालूम होती हैं। हमारे लोगोंको तो केवल इसके लिए ही जापान जा कर यह कला सीख लेनी चाहिये। प्रत्येक वस्तु आकर्षक तरीकेसे सजा कर रखी हुई तो होती ही है। दुकानकी सर्व-सामान्य रचना भी ऐसी होती है कि जिससे सारी दुकानका व्यक्तित्व चमक उठता है। और जब जापानी ग्राहकोंकी टोलियां दुकानोंमें घुसती हैं तब ऐसा लगता है मानो वे भी दुकानकी शोभा बढ़ानेके लिए ही निमन्त्रित किये गये हैं। इस तरह दुकानकी सुन्दरतामें वे बिलकुल घुल-मिल जाते हैं। इस प्रजामें यह विशेषता किसने और कब पैदा की होगी? इतना लम्बा जुलूस सारे शहरमें घूमा लेकिन किसी भी जगह आवागमनमें न रुकावट हुई और न अव्यवस्था हुई। यह जुलूस भी हमारे लिए एक कीमती अनुभव था। सारे शहर-की भीड़में हम भी मिल गये। आखिर बड़ी देर बाद घर जा कर अपने कमरेमें पेट-पूजा करके हम निद्राधीन हुए। मौका मिलने पर मनुष्य कितना कीमती अनुभव एक ही दिनमें पचा सकता है, इसका अंदाज हमें उस दिन मिला।

५. बुद्ध-धातुकी स्थापना

आजका और अगला दोनों ही दिन विशेष महत्वके थे। ८ अप्रैलको कुमामोतो के पासकी पहाड़ी पर बनाये गये स्तूपमें भगवान बुद्धके अवशेषोंकी स्थापना होने-

वाली थी। देश-देशान्तरके शान्तिवादी इस प्रसंगका स्वागत करनेके लिए इकट्ठे हुए थे। इस स्थानसे बुद्ध भगवानकी सनातन वाणी 'न हि वेरेण वेराणि सम्मन्तीध कुदाचनं' सुन कर दूसरे ही दिन हमें हिरोशिमा जाना था। वहां लाखों अमर शहीदों को श्रद्धांजलि अर्पण करनी थी और इस बुद्ध-वचनका अनुभव करना था कि—'दुःखं शेते पराजितो।'

सुबह जल्दी उठ कर, नहा-धो कर नौ बजे हम बसमें बैठ कर निकले। स्तूपकी पहाड़ी पर पहुंच कर एक सौ चालीस सीढ़ियां चढ़े, तब कहीं उत्सवके लिए तैयार किये गये एक विशाल शामियानेमें स्थानापन्न हुए। उत्सवका प्रारम्भ होने ही वाला था कि इतनेमें एक केनेडियन अथवा अमरीकन यात्री हांफता-हांफता वहां आ पहुंचा और कहने लगा, "मैं टोकियोमें ही उपस्थित रहना चाहता था, लेकिन पासपोर्ट व वीसाकी कुछ गड़बड़ होनेके कारण देरसे निकल सका। आजके उत्सवमे भी कहीं देर न हो जाय, इस डरसे स्टेशनसे सीधा भागा आ रहा हूं।" मैंने उससे पूछा, "आपका सामान कहां है?" वह बोला—"इस पहाड़ीके नीचे एक बुढ़िया कुछ बेचने बैठी थी, उससे किस भाषामें बोलता? मेरा सफरका सन्दूक—जिसमें मेरा सब कुछ है—उसके सामने रख कर ऊपर भाग आया हूं। मेरे इशारोंसे वह जो समझी हो सो ठीक।"

मैंने पूछा, "आप उस बहनको पहचान भी सकेंगे? और वह भी पहचान लेगी क्या कि आपने ही वह सन्दूक उसके पास रखा था?" उसने कहा, "भगवान भरोसे रख आया हूं। मेरा विश्वास है कि मेरी श्रद्धा गलत साबित नहीं होगी।" उत्सवके बाद व्यवस्थापकोंमेंसे एकको मैंने यह बात बताई। उस भाईको अपना सन्दूक बिना किसी कठिनाईके सही-सलामत मिल गया।

अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूपका यह उत्सव शुरू हुआ। भव्य पेगोडाके सामने एक उच्च आसन पर गुरुजी सहित अनेक साधुगण विराजमान हुए। पासमें एक बड़ा ढोल लकड़ीकी घोड़ी पर रखा था। एक साध्वी बुढ़िया उसे ताल-बद्ध बजा रही थी जिससे चारों ओर उत्सव शुरू होनेकी खबर फैल जाए।

अनेक मन्त्र बोले गये। प्रारम्भिक धर्म-प्रवचन गाये गये। उसके बाद भारतके प्रतिनिधियोंने बुद्ध भगवानके अवशेषोंकी पिटारी (मंजूषा) जापानके बौद्ध-साधुओं-को अर्पण की। देनेवालोंमें प्रमुख थे—एक बौद्ध साधु, जिनके साथ डॉ० कालिदास नाग व दूसरे सज्जन भी उपस्थित थे। लेनेवालोंमें गुरुजी निचिदात्सु फूजीई और दूसरे अनेक जापानी बौद्ध साधु थे।

दो राष्ट्रोंके बीच हजारों वर्षके बाद होनेवाले इस पवित्र आदान-प्रदानका महत्त्व हम सब अपने-अपने मन पर अंकित कर रहे थे कि इतनेमें भौंरेकी तरह आवाज करता हुआ एक विमान आकाशमें आया और बहुत नीची उड़ान ले कर उसने स्तूप पर और आगेकी भीड़ पर पुष्प-वृष्टि की। इस अकल्पित पुष्प-वृष्टिसे

वहां एकत्रित हुए हजारों लोगोंके हृदय पुलकित हो गये । पुष्प-वर्षाके बाद रेशमकी लम्बी-लम्बी डोरियोंकी वर्षा हुई। आकाश-मार्गसे कोई सर्प उतरते हों ऐसे ये उलझे हुए गुच्छे-जैसे दिखाई दे रहे थे। उन डोरियों पर जापानी मन्त्रोंके छपे हुए अक्षर सुन्दर लग रहे थे।

बुद्धके अवशेष एक झरोखेके रास्ते स्तूपके अन्दर रखे गये। हम सब लोगोंने उन्हें धूप-दीप अर्पण किये। जगह-जगह फूलोंके ढेर सारे प्रसंगकी शोभा बढ़ा रहे थे। भेंटमें चढ़ाई हुई तरह-तरहकी वस्तुएं भी भक्ति बढ़ानेके लिए वहां सजा दी गई थी।

अब भाषणोंकी बारी आई। भारतकी ओरसे मुझे बोलना था। ऐसे मंगल-प्रसंग पर मैंने भारतकी राष्ट्रभाषामें ही बोलना पसन्द किया। भिक्षु मारुयामा-सान मेरे पास खड़े हो कर मेरे हिन्दीके हर वाक्यका जापानी अनुवाद कर रहे थे। सारी जापानी जनता भारतका सन्देश बड़े हर्षके साथ सुन रही थी। मारुयामाजी प्रसंगको शोभा देनेवाले उत्साहसे मेरे भाषणका अनुवाद कर रहे थे। मेरा भाषण पूरा होते ही हर्षविभोर मारुयामा मुझसे लिपट गये। वहांसे मैं अपने स्थान पर जा बैठा। यहां यूरोप व अमरीकासे आये हुए प्रतिनिधियोंको मैंने अपना भाषण अंग्रेजीमें संक्षेपमें समझाया। बेचारे विदेशी न हिन्दी जानते थे, न जापानी! आगे चल कर प्रबुद्ध एशियामें उनका स्थान कहां है यह वे समझ गये।

सबसे अधिक प्रभावशाली व्याख्यान गुरुजीका था। उसका सार मारुयामा सान मुझे बादमें बतानेवाले थे। लेकिन बेचारेको वक्त ही न मिला।

जापानी उत्सव भी अपने उत्सवोंकी तरह लम्बे चलते हैं। इसके बिना धर्म-वृत्तिको सन्तोष नहीं होता। इस उत्सवको देखनेके लिए आई हुई बहनोंमेंसे जो वृद्धा थी उनकी आंखोंसे आनन्दाश्रु टपक रहे थे और वे मुंहसे कोई न कोई मन्त्र भी बोलती जा रही थी। उत्सवके बाद पासके ही एक बड़े कमरेमें हमें ले जाया गया। वहां स्थानीय व्यक्तियों और साधुओं के साथ हमारा परिचय कराया गया। वहीं थोड़ा कुछ खा कर हम धीरे-धीरे नीचे उतरे। पूरा गांव-का-गांव उत्सव-विभोर था।

हम दो बजे होटलमें पहुंचे और तीन बजे कान्फरेन्समें। वहां बहुतसे भाषण हुए। जहां-तहां भारतन् कुमारप्पाकी ही मांग हो रही थी।

एक मजेदार प्रसंग यहां लिखने लायक है। मेरे जैसेको हिन्दीमें बोलता देख, उस अमरीकी भाईको सूझा कि वह स्पेनिशमें बोले! उसे विश्वास था कि यह भाषा यहां न कोई समझ सकेगा और न कोई अनुवाद ही कर सकेगा। उसने केवल विनोद के लिए ही स्पेनिशमें बोलना शुरू किया। उसे क्या पता था कि भारत तो सनातन कालसे भाषा-भक्त है! उन सज्जनके वाक्य पूरे होते ही बेचारा जापानी दुभाषिया

परेशानीसे इधर-उधर देखने लगा। इतनेमें कालिदास नाग खड़े हुए और धारा-वाही वाणीमें स्पेनिशका सुन्दर अंग्रेजी अनुवाद कर दिया। वह आश्चर्यचकित अमरीकन बड़ा खुश हुआ। उसकी आंखोंकी चमक देखने लायक थी। तभी चारों ओरसे तालियोंका अभिनन्दन सुनाई दिया।

दो बजे परिषद् खत्म हुई। उसमें भी मुझे भाषण देना ही पड़ा। उसके अलावा यहांकी आकाशवाणीके लिए दो प्रश्नोत्तरियां भी मेरे लिए रखी हुई थीं।

एक प्रश्नमें उन्होंने वहांके स्तूपके विषयमें मेरा अभिप्राय पूछा। जवाबमें मैंने कहा : "स्तूपोंका प्रारम्भ भारतसे ही हुआ है। छोटे-बड़े अनेक स्तूप भारत और नेपालमे मिलते हैं। लंका और ब्रह्मदेशमें कितने ही बड़े-बड़े स्तूप हैं। स्तूप बनाना हो तो उस पहाड़ीकी ऊंचाई, उसका घेरा आदि ध्यानमें रखना चाहिए और आस-पासके सारे स्वरूपके साथ वह मेल खा सके ऐसा होना चाहिये। इस कसौटीके अनुसार कुमामोतोका यह स्तूप बहुत ही सुन्दर है। उसमें सब तरहके परिमाणका ध्यान रखा गया है। यह तो हुई कलाकी दृष्टि! इस संबंधमें जापानी लोगोंसे कहनेको कुछ रहता ही नहीं है। आकृति और परिमाणकी रक्षा करनेकी बातमें आप लोग दुनियाका गुरु-स्थान ले सकते हैं। बुद्ध भगवानके शरीरधातु इसमें पहली बार रखे गये हैं। इसलिए हम सबके लिए यह भूमि आज सनाथ हुई। मुझे खुशी है कि आजके उत्सवके लिए मैं यहां उपस्थित रह सका। इस स्तूपके कारण निप्पोन और भारतका हृदय एक हो सकेगा।"

हमारे होटलमें इतने सारे लोग रहते थे और उन सबसे मिलनेके लिए इतने अधिक स्थानीय लोग आते थे कि मानो वह कोई अखण्ड चलता हुआ निजी सम्मेलन ही हो। इसमें कई महत्त्वकी बातें हो सकी।

बहुतसे जिम्मेदार जापानियोंने हमसे कहा कि भारतसे यदि आप यहांकी खेती सीखनेके लिए नौजवानोंको भेजें तो उनको उसकी तालीम देनेकी जिम्मेदारी लेनेको हम तैयार हैं। इसी तरह यदि आप भारतमें जापानी ढंगकी खेतीका प्रयोग करना चाहते हों तो हम अपनी ओरसे बहुतसे अनुभवी युवक किसानोंको भेजनेके लिए तैयार हैं।

दूसरे उद्योगों और उद्योग-कलाओंके विषयमें भी इसी तरहकी कोशिश करने की तत्परता उन्होंने बताई।

रातको मुख्य सम्मेलनकी कार्यतन्त्र-समिति (स्टीयरिंग कमेटी) बैठी। उसमें अधिकतर भारतन् कुमारप्पाने ही हिस्सा लिया।

दूसरे दिन यानी १० अप्रैलको हमें हिरोशिमा पहुंचना था। बड़े सवेरे चार बजे उठ कर हमने पांच बजे कुमामोतो छोड़ा। हाकाटा हो कर मोजीके पास सामुद्र-धुनि लांघ कर दोपहरको दो बजे हम हिरोशिमा पहुंचे। वह प्रसंग इतना अधिक भव्य था कि इसका वर्णन अलग प्रकरणमें ही करना होगा।

६. हिरोशिमाको श्रद्धांजलि

विश्व-शांति परिषद्के कारण हर जगह हमारा स्वागत उत्साहसे तो होता ही था; लेकिन हिरोशिमाने तो गजब ही कर दिया। इतनी भीड़ थी कि हम तो उसमें खो ही से गये। स्टेशनसे बाहर भीड़में रास्ता निकाल कर हम सब प्रतिनिधि बड़ी मुश्किलसे इकट्ठे हुए। यहां फूलोंके हार व गुच्छोंमें तो हम बिलकुल ढक ही गये। फिर सारी व्यवस्था ठीक हो जाने पर स्वागत-समितिने प्रत्येकके सामने बारी बारीसे ध्वनि-विस्तारक यंत्र (माईक्रोफोन) रखा। तब हम अपना संदेश उस विशाल भीड़के सामने रख सके। यहां अनुवाद कैसे हो सकता था? अखबारवालोंने हरएकके मुक्ता-फलोंका चयन किया और उनका जापानी अनुवाद करके दूसरे दिन सारे जापानको उनका हार पहना दिया।

स्वागतके ठंडे पड़ने पर हम सब एक साथ एक मंदिरमें गये। वहां पर मृतकों की शांतिके लिए जैसी विधि होती है वैसी कुछ विधि हुई। यह मंदिर था तो नया लेकिन उसकी भव्यतामें जरा भी कमी नहीं थी। इसके बाद हम उस खास स्थान पर गये जहां हिरोशिमाके शहीदोंका स्मारक बनाया गया था। इस स्मारकका आकार बैलगाड़ी पर लगाई हुई चटाईका-सा अथवा रेलकी सुरंगका-सा था। अनेक धर्मके लोगोंने वहां अपने-अपने ढंगसे श्राद्ध किया। अंग्रेजीमें ऐसी विधिको 'सर्विस' कहते हैं। प्रारम्भ ईसाई पादरियोंने हुआ यह सब प्रकारसे योग्य ही था। उन लोगोंकी गम्भीर मुख-मुद्रा, भरी हुई दाढ़ी, ऊंची टोपी, लम्बा झब्बा और गलेमें चमकता हुआ चांदीका क्रास यह सब कुछ बड़ा रुआबदार और गम्भीरतापूर्ण था। लेकिन मुख्य बात तो यह थी कि बौद्ध जापानके लाखों लोगोंको एक क्षणमें मटिया-मेट करनेवाला राष्ट्र खुदको ईसाई कहलवाता है, इसलिए यह श्राद्ध उन्हींके द्वारा प्रायश्चित रूपमें प्रारम्भ हो यही उचित था। शहीदोंके स्मारकके ऊपर भारतकी ओरसे पुष्प-गुच्छ अर्पण करते हुए मैने ईशोपनिषद्का पाठ किया। ओम् क्रतो स्मर; कृतं स्मर (हे पुरुषार्थ करनेवाले! तेरी की हुई करतूतें याद कर!) यह आर्ष चेतावनी बोलते हुए मनमें आया कि यदि पश्चिमकी सारी दुनिया इसे दोनों कानों सुने और समझे तो सचमुच दुनियाका उद्धार हो।

हमने सामने दिखाई देनेवाले हिरोशिमाके लोगोंके प्रति और उनके दारुण दुःख व बलिदानके प्रति सहानुभूति तो व्यक्त की लेकिन बादमें ध्यानमें आया कि उस हत्याकाण्डमेंसे बचा हुआ कोई भी अब इस शहरमें नहीं रहा है। एक पूरी पीढ़ी—बूढ़े, जवान, बच्चे, स्त्री और पुरुष सबके सब एक क्षणमें साफ हो गये। जो थोड़ेसे बचे, वे आज इतने सालोंके बाद भी अस्पतालोंमें पड़े-पड़े बचनेका अफसोस कर रहे हैं। और जो अच्छे हो गए उनकी आजीविकाका खयाल दूसरोंको ही करना पड़ता है। आज हिरोशिमामें जो हजारों-लाखों लोग बसते हैं वे सब वहां आसपास

से आ कर रहने लगे हैं। नये घर बना कर नये सिरेसे सारी ही प्रवृत्तियां चलाने वाले इन नये लोगों पर हिरोशिमाके शहीदोंके नाते सहानुभूति किस तरह जताते ? इसलिए सारे जापान राष्ट्रके प्रति ही हृदयकी भावना व्यक्त करें यही ठीक था। हिरोशिमाको तो नई संस्कृतिका ही प्रारम्भ करना चाहिए। मैंने तो कहा भी कि हिरोशिमा सिद्ध करता है कि संहार-शक्तिसे सजीवन होनेकी शक्ति अधिक प्रतापी और श्रेष्ठ है।

जहां यह स्मारक बना है वहां पासमें ही एक बौद्ध मंदिर बनाया गया है। वहां हम सबको लकड़ीके छोटेसे डिब्बेमें हिरोशिमाके भग्नावशेषोंके टुकड़े दिये गये। ईटका टुकड़ा, जले हुए मिट्टीके वर्तनोंके ठीकरें-ऐसी कोई न कोई चीज इन डिब्बोंमें रख कर देश-देशान्तरके लोगोंको बेची जाती हैं। महासंहारके अवशेषोंमेंसे भी आयका साधन बनानेवाली इस सेवा-भावी व्यापार वृत्तिकी जरूर कदर करनी चाहिये। वर्ना हमेशा आनेवाले संस्कार-यात्री (टूरिस्ट) इस तरहकी सुविधाके बिना हिरोशिमाकी यादगार कैसे प्राप्त कर सकते ?

जापानी लोगोंने सारे हिरोशिमाका और भी अच्छी तरह फिरसे निर्माण कर लिया है। सिर्फ जहां बम गिरा था उस स्थानकी एक इमारतका ढांचा स्मारकके तौर पर अब भी ज्योंका-त्यों संभाल कर रखा हुआ है।

दूसरी एक जगह हमने देखा कि एक मकान पूरा-का पूरा बच गया है, लेकिन उसके भीतरका सभी कुछ जल गया था। सो यहां तक कि लोहेकी चीजें गरम हो कर पिघल गई थी। कहीं किसी कमरेमें रहनेवाले लोगोंमें एक ही अदमी बच गया और बाकीके सब मर गये। इस तरहके चमत्कारोंकी बातें सुनते-सुनते हम विश्व-शांतिकी परिषदमें जा पहुंचे। अध्यक्षके स्थान पर एक बहन थी। यहां लोगोंमें— खास कर स्त्रियोंमें विशेष जाग्रति दिखाई दी। विश्व-शांति-परिषद्का एक अधिवेशन हिरोशिमामें हो यह सब तरहसे उचित ही था।

शामको सातसे नौ तक हम सब प्रतिनिधियोंके स्वागतका कार्यक्रम था। उसमें नृत्यका कार्यक्रम बड़ा ही सुन्दर रहा। उसके अन्तमें लोगोंने मुझे अपना अभिप्राय प्रकट करनेको कहा। मैंने कहा, "हमारे देशमें नृत्य-कला इतनी अधिक बढ़ी हुई है कि सामान्य तौरसे हम मानते हैं कि हमें दूसरे लोगोंसे सीखनेको कुछ खास नहीं होगा। लेकिन आपका आजका कार्यक्रम देख कर मुझे लगता है कि हमारे दोनों देशोंकी जनताके लिए परस्पर विनिमय करने योग्य बहुत कुछ है। खासकर नृत्यके बारेमें तो बहुत है।

ऐसे प्रसंगों पर खुश करनेके लिए मनचाहा बोलनेका रिवाज है। लेकिन उस कलामें प्रवीण नहीं हूं और नृत्य-शास्त्र तो मैं जरा भी नहीं जानता। फिर भी नृत्य देख बहुत है इसलिए मुझे जैसा लगा वैसा ही बोल दिया। रातको दस बजे होटल कैनानसोमें पहुंचे। वहां जापानी ढंगकी और सारी सुविधाएं तो उत्तम थीं

लेकिन शौच-गृहकी सुविधा अनुकूल नहीं थी। इसलिए दूसरे दिन हम बान शो-एन होटलमें रहने गये। वहां हमारे लिए एक सुन्दर झोंपड़ीके जैसा कमरा रखा गया था। वह हमें बहुत पसन्द आया।

दूसरे दिन सुबह फिरसे परिषद् शुरू हुई। खानेके लिए परिषद्का काम मुलतवी रखनेके बदले, हम जहां बैठे थे वहीं पुस्तक-जैसे आकारके लकड़ीके डिब्बेमें सेंडविचिज़ (डबलरोटीके तिकोन टुकड़ोंके बीचमें टमाटर या ककड़ी आदि रखते हैं।) और एक-एक फल दिया गया। लोग खाते जाते थे और भाषण सुनते जाते थे। कागजकी नलीसे नारंगीका रस पी रहे थे और आपसमें बातें भी कर रहे थे। खानेके डिब्बे लेनेसे पहले हमें याद रख कर कहना पड़ता था कि हम मांसाहारी नहीं हैं इसलिए हमें शुद्ध शाकाहारी डिब्बे ही दें।

दोपहरको हिरोशिमा विश्व-विद्यालय जानेका कार्यक्रम था। वहां मेरा एक भाषण गांधीजी और टैगोरके विषयमें रखा गया था। डॉ० कालिदास नाग एक बार रवीन्द्रनाथ ठाकुरके साथ इस देशमें आये थे। इसलिए उनका भाषण कविके संदेशके विषयमें था। कुमामोतोमें मिले हुए एक नए दुभाषिएने हमारी ठीक मदद की। इसे बतानेका कारण यह है कि पिछले दस दिनों तक परिषद्में जो जापानी भाई हमारे अंग्रेजी भाषणोंका अनुवाद जापानीमें करते थे और जापानी भाषणों-का सार हमें अंग्रेजीमें सुनाते थे उससे हम बिलकुल ऊब गए थे। बेचारेको कुछ आता ही नहीं था, शब्द भी तुरंत नहीं सूझते थे, इसलिए हर वाक्यके बीच-बीचमें अ—अ—अ—अ—करते जाते थे। आपसमें बातें करते वक्त तो मैंने उस भाई-का नाम ही अ—अ—अ—अ—रख दिया था! यद्यपि मैं जानता था कि ऐसा मजाक अतिथि-धर्ममें शोभा नहीं देता।

श्री कालिदास नागने अपने भाषणमें पुरानी चीजोंका जिस तरह जिक्र किया वह हममेंसे कुछको पसन्द नहीं आया। जापानी लोगोंको अगर कुछ बुरा भी लगे तब भी वह उनके चेहरेसे प्रकट नहीं होता। उनकी संस्कृतिकी यह विशेषता है।

हिरोशिमा विश्वविद्यालयके अध्यक्षने भाषणके प्रति आभार प्रदर्शित करते हुए हमें लकड़ीका एक-एक सुन्दर पगोड़ा भेंटमें दिया जो अभी भी मेरे कमरेमें शोभा दे रहा है और हिरोशिमाका स्मरण दिलाता रहता है। Nehru on Gandhiji पुस्तकका जापानी भाषान्तर भी उन्होंने हमें भेंटमें दिया।

इन अध्यक्षके कमरेमें हमने पत्थरमें खुदी हुई एक मूर्ति देखी जिसमें एक बालक और बालिका आमने-सामने खड़े होकर भेंट करनेकी तैयारीमें थे। मूर्तिकार-ने पूरे आत्म-विश्वाससे इसे गढ़ा था। एसी जीती-जागती कला-कृतियां सब जगह देखनेको नहीं मिलतीं।

शामको प्रथानुसार हमारी परिषद्के विषयवार तीन विभाग किये गये। धर्म-परायण लोग विश्व-शांतिकी स्थापनाके लिए क्या कर सकते हैं इस प्रश्नकी चर्चा

करनेवाले विभागमें हम पहुंचे। मैंने अपने भाषणमें कहा, "एक जमाना था जब कि धर्मके नाम पर आपसमें युद्ध चलते थे और उसे धर्म-युद्ध कहते थे। अब धर्मके नाम पर कोई लड़ाई नहीं छेड़ना यह ठीक है, लेकिन सारे ही धर्म और उनके पंथ परस्पर लड़ कर अप्रतिष्ठित और निर्वीर्य हो गये हैं। इसलिए धर्मोंको अब सबसे पहले अपने अंदर सर्व-धर्म-समभाव पैदा करना चाहिए।" लोगोंको मेरी यह बात पसन्द आई, लेकिन भारतके एक बौद्ध भिक्षुने सवाल उठाया, "हम आत्माको नहीं मानते, आप मानते हैं, फिर हम लोगोंमें समन्वय कैसे हो?" मैंने उसका उत्तर देना आवश्यक नही समझा। उससे सबको बड़ी राहत मिली। पाच बजे हिरोशिमाके गवर्नरकी ओरसे एक स्वागत था। उसमें हम गये।

स्वागतकी व्यवस्था बहुत ही अच्छी तथा कलापूर्ण थी। स्वाद-रसिकों, चटोरोंको तो उस दिन असाधारण तृप्ति मिली होगी। किसीने लिखा है कि भगवान जिनसे रूठता है उनको शाकाहारी, मद्यपान-निषेधी या विरोधी बनाता है और यदि अधिक नाराज हो तो मनुष्यको संन्यासी बना देता है! जीवनके श्रेष्ठ आदर्शकी इससे अधिक दिल्लगी और क्या हो सकती है!

अन्तिम दिन सुबह हिरोशिमासे ही बहुतसे लोगोंसे विदा लेनी थी। भिक्षु मारुयाममानने ऐसे कई लोगोंको बान-शो-एनमें एकत्र किया था। वहां हममेंसे कइयोंने सुन्दर बागमें छोटे-छोटे पुलों पर चल कर झरनों और प्रपातोंकी शोभा देखी। फिर लोगोंने हमारे फोटो लिये। इतनेमें समाचार मिले कि जिस हवाई जहाजसे हम टोकियो जानेवाले थे वह बिगड़ गया है। इसलिए हमें रेलगाड़ीसे जाना पड़ेगा। इस कारण ईमाई-सान टिकटें लेने स्टेशन गये और हम अपने हिंदी दुभाषिये भाई किमुराके साथ हिरोशिमाके चौड़े और सुन्दर बाजारमें चीजें खरीदनेके लिए निकले। मुख्य उद्देश्य तो बाजार देखनेका ही था। बाजारकी खूबी यह थी कि रास्तोंके ऊपर आमने-सामनेकी दुकानों तक कपड़े तान कर छाया की गयी थी। हमारे यहां भी सक्कर और शिकारपुर आदि शहरोंमें इस तरहसे रास्तों पर छाया की जाती है। लेकिन ये रास्ते बहुत संकरे होते हैं और दुकानें इतनी पास-पास होती है कि मानो एक-दूसरेके साथ शेकहैंड करना चाहती हों। हिरोशिमाके रास्ते तो इतने अधिक चौड़े थे कि वहां एकसे अधिक मोटरें एक साथ दौड़ सकती थी। बाजारमें बच्चोंका चित्रमय साहित्य बहुत ही आकर्षक था। लेकिन जिनको हवाई जहाजसे यात्रा करनी होती है उनको अपरिग्रह व्रत ही पालना पड़ता है। चीजें देखो, उनकी कद्र करो लेकिन साथ उठा कर न लाओ, यह आजके सफरका मूल-तत्त्व है, और पैसोंकी तंगीके दिनोंमें तो इस मूल-तत्त्वका कड़ाईसे पालन करना पड़ता है। बच्चोंकी किताबोंमें तो जापानी चित्र-कला सचमुच सोलह कलाओं सहित प्रगट होती है। हमारे यहां अभी भी अंग्रेजी कलाका अनुकरण होता है इसका दुःख जापानी किताबें देखनेके बाद और भी बढ़ जाता है।

हम स्टेशन पहुंचे और हमारे ईमाई-सान नदारद ! कहां खो गये राम जाने ! अब क्या करते ? अनजान मुल्कमें भाषा भी नही जानते थे। लेकिन हिंमत-के साथ विना टिकटके ही रेलगाड़ीमें जा बैठे। अपने पैसोंका हिसाब किया तो मालूम हुआ कि पासमें पूरे जापानी सिक्के नहीं है। खाने पर खर्च करें तो सोनेकी सुविधा छोड़नी पड़ती है ! और यदि सोनेकी सुविधाका आग्रह रखें तो भूखे पेट सोना पड़ता है ! चि० सरोजने और मैंने इस सारी मुसीबतको हंसीसे टाल दिया। सरोज कहने लगी कि ऐसा अनुभव न होता तो यात्रामें इतनी कमी ही रह जाती।

दो-चार स्टेशनके बाद कन्डक्टरने आ कर कहा कि हिरोशिमासे आपके लिए तार आ गया है, आप परेशान न हों। उसके बाद हमने अपने पासके पैसे खुल कर खर्च किये। हम तीन सौ येन खा गये और निश्चिन्त हो कर सोये। एक बात यहां कह देनी चाहिये : कोबे स्टेशन पर रसीला बहन साग-पूरी दे गई थी वे यहां बहुत काम आईं।

हमारा वह सारा दिन निरीक्षणमें गया। छोटी-बड़ी सुरंगें आतीं और चली जातीं। हर सुरंग कह रही थी : पश्याश्चर्याणि भारत ! (यहां भारत शब्द अर्जुनके लिए नही था। वह भरत-खण्डके समस्त निवासियोंके लिए लागू होता था)। समुद्र, गांव, घरोंके छप्पर, आसपासके बगीचे, आदर्श खेती, रंग-बिरंगे फूल और फूलसे भी अधिक प्रसन्न बच्चे—इस तरह यह सारा रास्ता अखण्ड चलते हुए पिकनिकके समान था। लोग हमें देख रहे थे, हम लोगोंको देख रहे थे और एक-दूसरेका मनोरंजन कर रहे थे ! फूजीयामा पहाड न देख सके इस एक अफसोसको छोड दें तो कह सकते हैं कि हमने पेट भर कर खाया, जी भर कर देखा और भरपूर सोये ! लोरियां गानेका काम तो रेलगाडी कर रही थी। आखिर १३ तारीखको बड़े सवेरे ही हम टोकियो स्टेशन पर पहुंचे। इस बार हमने पहलेसे ही अपने दूतावासके रणवीरसिंहजीके मेहमान बन कर रहना स्वीकार कर लिया था।

७. पुनरागमनाय च

अब तो टोकियो शहर हमारे लिए पूर्व-परिचित था। हम जैसे ही उतरे ड्राइवर इवाओका-सानने हमे तुरन्त पहचान लिया। इतनेमे श्री रणवीरसिंहजी भी आ गये। टिकटकी कथा स्टेशनवालोंसे कह कर हम श्री रणवीरसिंहजी के घर पहुंचे। वहां उनकी पत्नी खानम मिलीं। उन्होंने मारे रहनेकी व्यवस्था बड़ी सुन्दर कर रखी थी। उनका दो बरसका लड़का पोपो इतनी मीठी बातें करता था कि हमारे लिए खातिरदारीका सबसे बढ़िया नमूना तो वही था। एक होशियार जापानी लड़की उस बच्चेको संभालती थी और मेहमानोंकी सुविधाका भी खयाल

रखती थी। वह पूरा दिन हमने बातोंमें, चीजें खरीदनेमें और रणवीरसिंहजीने हमसे खासकर मिलनेके लिए पार्टीमें जिन लोगोंको बुलाया था उनसे विचार-विनिमय करनेमें बिताया। ये लोग जब पहले-पहल मिले थे, तब चूंकि हम नये थे, हमें जापानके विषयमें जानकारी देते थे। लेकिन अब तो ये लोग हमारे बारह-तेरह दिनके अनुभवका सार जाननेके लिए उत्सुक दिखाई दे रहे थे। रणवीरसिंह-जीको तत्त्व-ज्ञानमें बहुत रुचि थी। इसलिए अतिथियोंके जानेके बाद हम वार्तालाप में व्यस्त हो गये। भारतकी राजनीतिकी बातें तो बीच-बीचमें चलती ही थी। लेकिन ज्यादातर हम शुद्ध ज्ञानकी तत्त्वचर्चामें ही मग्न रहे।

१४ तारीख हमारे लिए अनेक कार्यक्रमोंसे व्यस्त साबित हुई। सोशलिस्ट पार्टीकी सदस्या श्रीमती कोराने World Government Associationके सामने मेरा एक व्याख्यान रखा था। ईमाई-सान भी हमारे साथ थे। उसी जगह उनका एक शाकाहारी मण्डल भी चलता था। मेरे व्याख्यानके बाद उन लोगोंके साथ हमारे खानेकी व्यवस्था थी। उन लोगोंने मुझे दूधिया कांचकी रकाबी पर गांधीजीका फोटो छपवा कर भेंटमें दिया। वे गांधीजीके शाकाहार और निसर्गोपचार-सम्बन्धी विचारोंसे प्रभावित हुए थे। ये लोग हमारी तरह दूधका उपयोग नहीं करते। इस दर्जे तक इन पर पश्चिमी शाकाहारका असर है। ये गुड़ या खांड भी नहीं लेते; यह इनकी खुदकी विशेषता है। हम भारतके शाकाहारी दूध-घी वगैरा लेते हैं, इस विषय पर मैंने उन्हें अपना दृष्टिकोण समझाया; लेकिन मैं नहीं मानता कि वह पूरे तौर पर उनके गले उतरा। हमारी दृष्टि जीव-दयाकी यानी अहिंसाकी है, जबकि पश्चिमके शाकाहारियोंकी दृष्टि मांस जैसा पदार्थ मनुष्य जाति की नैसर्गिक खुराक ही नहीं, इस सिद्धान्त पर आधारित है। मनुष्यके दांत न निकलें तब तक वह माताका दूध पिये यह ठीक है। लेकिन दांत निकलनेके बाद प्राणीके शरीरमेंसे उत्पन्न हुआ दूध मनुष्यको नहीं पीना चाहिये, ऐसा इनका आग्रह होता है। जापानी शाकाहारी खुराकमें खांडको क्यों टालते हैं यह मुझे वे ठीकसे न समझा सके। लेकिन यह चर्चा चल रही थी कि उसमेंसे एक नई ही बात निकल आयी। उन्होंने कहा कि हमारे लोगोंका स्वास्थ्य मत्स्याहारके बिना टिकता ही नहीं ऐसा अनुभव होनेसे हमने खुराकमें बीस फीसदी मत्स्याहारकी छूट रखी है। मैं तो चकित ही रह गया। दुग्धाहारकी हमारी छूटके विषयमें एतराज करनेवाले ये लोग मछली खानेको कैसे तैयार हो जाते हैं यह मैं किसी भी तरह समझ न सका। 'बहुरत्ना वसुन्धरा, और क्या ?

चर्चा और भोजनके बाद सारी भीड़ आंगनमें बैठी और वहां हम सब लोगोंका फोटो लिया गया। इस सारे समाजकी बातचीतमें और सह-भोजनमें हम सब एक कुटुंबके जैसी आत्मीयता महसूस कर रहे थे। इस समाजके संस्थापक श्री ओसावा सान उन दिनों कलकत्तेमें थे और वहांके जैन लोगोंके साथ मिल कर प्रचार कार्य

कर रहे थे।

इस मण्डलके सदस्योंसे बिदा लेकर हम मेजी (Meiji) मंदिरमें गये । यह राष्ट्रीय मंदिर एक विशाल उपवनमें बादशाही ढंग पर बनाया हुआ है। अन्दर मोटर आदि वाहनोंको नहीं जाने देते इसलिए हम वहां खूब घूम सके। दूसरे प्रेक्षकोंके भी दलके-दल घूम रहे थे। एक जगह बड़े मकानमें चित्र-संग्रहालय था। जापानके बादशाहोंके और राष्ट्रीय महत्त्वके ऐतिहासिक प्रसंगोंके चित्र अच्छे-अच्छे चित्रकारोंसे बनवा कर यहां लगाये गये थे। इन चित्रोंका ऐतिहासिक और कलात्मक महत्त्व इतना अधिक है कि जापान जानेवाला प्रत्येक संस्कार-यात्री इनका अलबम तो खरीदता ही है। भीमकाय वृक्षोंके तनोंको आकार देकर दरवाजों पर तोरण-के समान स्थान-स्थान पर सजा देना यह जापानी स्थापत्यकी विशेषता है। हमने मेजी मंदिर जी भर कर देखा। आते-जाते, भीतर-बाहर सब जगह साकुराके फूलों-की तो भरमार थी ही।

पानीसे भरी हुई खाईसे घिरे एक किलेके अन्दर बादशाहका महल था। बाहर से यह महल दिखाई भी नहीं देता था। जापानी लोग अपने राजाको ईश्वरका अंश अथवा विभूति मानते हैं। राजाके प्रति वफादारी यह जापानी मनुष्यका सर्वोपरि धर्म है। वे राजाके लिए मर मिटनेमें ही जीवनकी सर्वोच्च कृतार्थता मानते हैं। यह संस्कार जापानियोंकी रग-रगमें समाया हुआ है।

पिछले महायुद्धमें जब जापान हारा तब अमरीकी लोगोंने जापानके बादशाह-से इस तरहका इकरार लिखवा लिया कि वे ईश्वरीय अंश नहीं हैं और इस प्रकार राज्यकी सारी सत्ता प्रजाको दिला दी।

यहांसे हम जापानी पार्लमेंटका विशाल भवन देखने गये। इसे यहां 'डायट' कहते हैं। मैं नहीं मानता कि इंगलैंडकी पार्लमेंटका भवन भी इसकी तुलनामें ठहर सकता है। पार्लमेंटमें श्रीमती कोराने समाजवादी पक्षके कुछ सदस्योंको वार्तालाप-के लिए इकट्ठा किया था। श्रीमती कोराकी इच्छा थी कि भारतकी ओरसे कुछ जापानी कुटुम्बोंको निमन्त्रण दे कर उन्हें भारतमें बसाया जाय। भूदानोंमें इतनी जमीन मिलती है तो उसमेंसे थोड़ी जापानियोंको बसानेके लिए क्यों नहीं दी जा सकती? इस तरहकी बात उन्होंने छेड़ी। मैंने उन्हें विवेकके साथ कहा कि भारत-की जन-संख्या बहुत है। हमारे पास परती जमीन अधिक है ही नहीं कि जिस पर जापानियोंको बसाया जाय।

आखिरमें मैंने कहा कि समाजवादी लोगों पर मैं जरूर विश्वास रख सकता हूं। लेकिन हम यह कैसे भूलें कि एक समय जापानी राष्ट्र पूरा साम्राज्यवादी था? हमारे देशमें जापानियोंको बसानेकी बात लोगोंके गले उतारना बड़ा मुश्किल होगा। यदि आप हमारे यहां आ कर हमें खेती-बाड़ीके नये ढंग सिखायें तो हम आपको धन्यवाद देंगे। हमारे बच्चे आपके यहां आ कर तरह-तरहके गृह-उद्योग सीख

सकें तो हम आपका उपकार मानेंगे। मत्स्य-विद्या (fisheries) भी आपसे सीखने लायक है। इस प्रकार मैंने अपनी बात अत्यन्त मिठास और स्नेह-भावसे कही। जापानको आस्ट्रेलिया और साइबेरियामें बसनेके लिए जमीन मिलनी चाहिये इस विचारका मैं समर्थक हूं। इसे वे जानते थे। इसलिए वे हमारी दिक्कत आसानीसे समझ सके।

इस तरह सारा दिन महत्त्वकी बातोंमें व्यतीत करनेके बाद हम यथासमय इन्श्योरेन्स कम्पनीवाले श्री देसाईके यहां, जिन्होंने हमें खानेका निमन्त्रण दे रखा था, पहुंचे। मैं जब तक परदेश नहीं गया था तब तक यह नहीं समझ सका था कि लोग स्वदेशी भोजनके लिए इतना क्यों तरसते हैं। लकामें, ब्रह्मदेशमें और पूर्वी अफ्रीकामें हमें अधिकतर स्वदेशी ढंगका ही आहार मिलता था। इसलिए यहां पहली ही बार मैंने स्वदेशी और विदेशी भोजनके बीचका फर्क अनुभव किया। यद्यपि हमें जापानी लोगोंके यहा उत्तम-से-उत्तम खाना मिलता था फिर भी शरीर अपनी आदतोंको छोड़ता नही है। मैं तो भारतके सब प्रान्तोंमें रहा हूं और प्रत्येक जगहके शाकाहारी भोजनका इतना आदी हो गया हूं कि मुझे किसी जगह दिक्कत नही आती।

देसाईके यहां ही हमने तीन हजार येन दे कर सफरका जीवन-बीमा करवाया और तैयार हो कर हानेडा हवाई अड्डे पर पहुंचे। वहां अनेक लोग विदा देनेको इकट्ठे हुए थे। उनमें किसीके साथ विस्तारके साथ बात करना असंभव था। लेकिन जहां प्रेम और कृतज्ञता प्रदर्शित करनेका सवाल हो वहा भाषाके विस्तारकी जरूरत ही नही पड़ती। ईश्वरने मनुष्यको आंखें दे कर कृतार्थ किया है। दो भीगी आखें मनचाहा भाव पूरी तरह व्यक्त कर सकती हैं। मैंने सब लोगोंसे इतना तो कहा कि फिरसे आपके देशमें आये बिना तृप्ति होनेवाली नही है। गुबहवाले शाकाहारी मण्डलके लोग फूल और भेंट लेकर काफी बड़ी संख्यामें हमें विदा करने आये थे। गुरुजीके शिष्योंने पंखे बजाते हुए 'नम् म्यो हो रेंगे क्यो' से हमें विदा दी। आधी रात होने आई थी। विमान आकाशमें उड़ते ही टोकियोकी रत्न-नगरीका विस्तार हमारी आंखोके सामने आ गया। नीद आनेमें बड़ी देर लगी। आखें लगी ही थी कि इतनेमें हमने एक प्रचण्ड तूफानका अनुभव किया।

हम ओकीनावा द्वीप परसे गुजरे होंगे कि इतनेमें आकाशमें यकायक झंझावात शुरू हुआ —'झंझावात: सवृष्टिक:।' वर्षाकी झड़ी शुरू हुई और हमारा हवाई जहाज बादलोंसे घिर गया। पथरीली जमीन पर मोटर जिस तरह दौड़ती है उस तरह हमारा विमान हवामें खड़बड़ करता हुआ और डोलता हुआ चलने लगा। धक्के बढ़ने लगे। चालक (पायलट) ने कमर पर पेटी (belt) बांधनेकी सूचना देनेवाली बत्ती जलाई। सारे यात्री चौंक पड़े। लेकिन कोई कर ही क्या सकता था? क्या हो रहा है और क्या होनेवाला है इसकी कल्पना करते हुए अपने स्थान पर डटे

रहें, बस यही हमारा कर्तव्य था।

इतनेमें विमानके ऊपरका वायरलेसका तार तड़ाकसे टूट गया। उस तारके दोनों टुकड़े चाबुककी तरह विमानकी पीठ पर प्रहार करने लगे। यह आवाज सचमुच भयंकर थी। पायलटने तूफानसे बचनेके लिए विमानको हजार फुट ऊपर चढ़ाया। फिर भी कोई फर्क नहीं पड़ा। बिजली चमक रही थी, वर्षा हो रही थी और वायरलेसके टुकड़े फटाक-फटाक चाबुकके समान मार मार रहे थे। विमानके यात्रियोंका ध्यान रखनेवाली सेविका भी जो हर वक्त प्रसन्नतासे काम करती थी अब घबड़ा गई। उसका चेहरा पीला पड़ गया। यात्री स्तम्भित हो कर एक-दूसरेका मुंह देखने लगे।

इस तरह कोई दो घंटे निकल गये, फिर भी तूफान कम होनेके लक्षण दिखाई नही दिये।

इतनेमें विमानका एक पायलट अपने कमरेसे बाहर आया। मैंने उनसे पूछा : 'चाबुककी-सी आवाज आ रही है, यह क्या है?' उन्होंने कहा : यह तो वायरलेसका तार टूट गया है।' चिन्तातुर हो कर मैंने पूछा : 'तब तो हम अपनी हालत बाहर की दुनियाको किसी भी तरह नही समझा सकेंगे।' उन्होंने कहा, 'ऐसा तो नही है, विमानके पेटके नीचे दूसरा तार है। बात असलमें यह है कि हम इस क्षण ओकीनावा और हांगकांग दोनों जगह संदेश भेज रहे हैं। आजका तूफान सचमुच खराब है। जोखिम-जैसा तो नही है, लेकिन हमने इससे पहले ऐसा तूफान नहीं देखा।'

अब तो विमानके चारों ओर जोरोंकी बारिश शुरू हो गई। फट-फटकी तालबद्ध आवाज परेशानी पैदा करनेवाली न होती तो मैं उसे मजेदार ही कहता।

मैंने अनुभव किया है कि जोखिमके वक्त चि० सरोज बिलकुल भी परेशान नही होती। हम पास-पास बैठे तूफानकी प्रत्येक क्रियाका अवलोकन कर रहे थे और उसीकी बातें करते जा रहे थे। उसके बाद स्वाभाविक तौरसे जोखिम कितनी प्रकारकी हो सकती हैं, किस-किस तरह मृत्यु आ सकती है इनकी बातें हमने ठंडे दिमागसे—अथवा बंधे पेटसे—की। इन परसे फिर हम आत्माके अमरत्वकी बातों पर आ पहुंचे। न बातें खतम हुई और न तूफान ही बन्द हुआ। दो सौ तीन सौ मीलका यह तूफान हमने इस ओरसे उस ओर तक पूरा पार किया होगा। उसके बाद ही आखिर आकाशकी कालिमा बदली। बाईं ओर पौ फटनेका-सा आभास हुआ। फिर तो उषाका प्रकाश भी बादलोंकी आज्ञा लेकर हम तक आ पहुंचा। तूफान शांत हुआ, यात्रियोंके जीमें जी आया और हम सही-सलामत हांग-कांगके पासके काउलून हवाई अड्डे पर पहुंच गये।

हांगकांगसे ग्यारह बजे हमारा विमान फिरसे उड़नेवाला था इसलिए हमें मिलने आये हुए भाई शशिकांत नानावटीकी मोटरमें बैठ कर हम थोड़ा घूम आये। हांगकांग बन्दरगाह असाधारण सुन्दर है। अन्तर्राष्ट्रीय अड्डा होनेके कारण यहां

सब चीजें सस्ती मिलती हैं। भोगविलासका तो यह पीहर माना जाता है। हमने इधर-उधर घूम कर आस-पासका दृश्य देखा, नाश्ता किया और कुछ दूर 'टाइगर' नामका एक पैगोड़ा दिखाई दे रहा था उसके बारेमें बातें सुनीं और फिरसे विमान पर चढ़े।

बैंकाकमें हमारा विमान जरा बीमार हो गया, इसलिए उड़नेमें थोड़ी देर हुई। शामको रंगून पहुंचे। उस दिनकी रात भी हमें पहली बारकी तरह वहीं बितानी पड़ी। रास्तेमें बर्मी लोग रंग-पंचमीका उत्सव मना रहे थे। हवाई अड्डे पर हमें कोई लेने नहीं आया था इसलिए स्ट्रैंड होटलमें रात बिताई। फिर सुबह अच्छी तरह नहा-धोकर हम आगे बढ़े। हमारा विमान कलकत्ता पहुंचनेसे पहले पाकिस्तान (अब बंगला देश) की राजधानी ढाकामें रुका था। उसके बादकी हवा बड़ी खराब थी। कितने ही लोगोंको उससे तकलीफ हुई। आखिर हम दोपहरके बारह बजेके बाद कलकत्ता पहुंचे। कलकत्तामें चि० सरोज सीधी दिल्ली गई और मैं सर्वोदयके वार्षिक सम्मेलनके लिए बोधिगया पहुंचा। वहां मुझे श्री विनोबाके साथ जापानके अनुभवकी, बौद्ध जगतकी और धर्म-समन्वयकी बातें करनी थी।

इस तरह चौदह-पन्द्रह दिनमें एक महान संस्कृतिके प्रतिनिधि जापान देशकी यात्रा पूरी करके हम वापस आये। हमें मनुष्य-जातिके और खास कर एशियाके राष्ट्रोंके अनेक सवालोंका प्रत्यक्ष परिचय हुआ, दृष्टि व्यापक हुई और भारतके युग-कार्यका खयाल हमारे मनमें स्पष्ट हुआ।

हम लोगोंको सूर्योदयके इस देशके साथ परिचय बढ़ाना ही चाहिये। भारत और जापानके बीच केवल व्यापारी लेन-देन ही नहीं, बल्कि संस्कृतिका लेन-देन भी होना चाहिए और बढ़ना चाहिये।

यह जगत एक और अविभाज्य है। प्रत्येक देशके सवाल सारी मनुष्य-जातिके सवाल हैं। हम सब एक-दूसरेके हैं। सब मिल कर ही मनुष्य-जति बनती है। इस वस्तुका साक्षात्कार हमारे अंदर दृढ़ होना चाहिये।

दूसरी यात्रा—१९५७

१. तैयारी

मद्रास जाते हुए चलती ट्रेनमेंसे,

८-६-५७

दूसरी बार जापान जानेकी बात तय हो रही है। मेरी इच्छा तो वहां जाने-की थी ही; अब वहांके लोगोंका निमंत्रण भी आया है, इसलिए मैंने हां कर दी है। सन् १९५४में हम लोग एक बार जापान हो आये हैं। उस बार राजधानी टोकियो

से दक्षिणकी ओरका सारा जापान देश हमने देखा था। इस बार मैंने निमंत्रण भेजनेवालों पर यह इच्छा प्रकट की है कि उत्तरसे दक्षिण तकका सारा जापान देखनेकी सुविधा वे हमें कर दें। उत्तरकी तरफके होक्कायडो द्वीपमें मैं खास तौरसे घूमना चाहता हूं। इसका कारण यह है कि वह प्रदेश रमणीय जापानमें भी विशेष रमणीय है। लेकिन इसके अलावा एक खास बात यह है कि उस द्वीपमें जापानकी 'आयनु' नामकी आदिम जाति रहती है। यह जाति जापानियोंकी तरह पीले मंगोलवंशकी नहीं है, बल्कि यह लम्बे बालोंवाले काकेशियन वंशकी है। धीरे-धीरे ये लोग नष्ट होते जा रहे हैं। इसलिए इन लोगोंको देखनेकी मेरी खास इच्छा है।

तुम्हें याद होगा कि एक बार सीलोन-यात्राके विषयमें बताते हुए मैंने तुम्हें लंकाकी वेद्दा जातिकी जानकारी दी थी। यह जाति भी मिटती जा रही है। इन लोगोंके बारेमें मैंने जब पहली बार सुना था, तब इनकी संख्या बीस-तीस हजार बताई जाती थी। लेकिन बादमें सुना कि यह तीन-चार हजार ही रह गई है। अब तो कहते हैं कि सीलोनमें वेद्दा जातिके कुल सौ-दो सौ परिवार ही बचे हैं। सभ्यता-में आगे बढ़ हुए इस जमानेमें, जब कि जीनेकी कलाका सब तरहसे विकास हुआ है और मनुष्य अपनी सामाजिक जवाबदारी भी पहचानता है तब कोई जाति इस तरह नष्ट होती जाय और उसके लिए हम कुछ भी न कर सकें, तो मनमें बड़ा दुःख होता है।

[मेरी मांने अपनी आखिरी बीमारीमें काफी कष्ट उठानेके बाद एक दिन मुझसे कहा, 'दनु, तुम्हें और तुम्हारे पिताजीको इतनी मेहनत करते देख कर मुझे विश्वास हो गया था कि इस बीमारीसे मैं अच्छी हो जाऊंगी। पर अब लगता है कि तुम लोग मुझे बचा नहीं सकोगे। अवस्था हो जाने पर इस दुनियासे उठ जानेके अलावा कोई चारा भी नहीं है। लेकिन तुम लोगोंको छोड़ कर जानेका मन नहीं होता।' इतना कह कर वह रो पड़ी और एक लोक-गीतकी कड़ी गुनगुनाने लगी :

'सोडूनियां पिल्ले कशी जाऊं वना'।

अर्थात् इन बच्चोंको छोड़ कर किस तरह वनमें जाऊं।

'वेद्दा' अथवा 'आयनु' जैसी जातिका अस्तित्व हमारे बीचसे मिट जानेवाला है, ऐसा जब कुछ लोग बड़ी आसानीसे कहते हैं, तब मुझे न मालूम कैसी बेचैनी-सी होने लगती है। मानव-जातिके इन अपने ही भाई-बन्धुओंके विनाशको रोकनेका क्या कोई भी इलाज नहीं है ?]

खैर। और कुछ नहीं तो कम-से-कम इस जातिके लोगोंके दर्शन करूं, और उनके जीवन-क्रमको देख-परख कर जापानके लोगोंके साथ उसकी चर्चा करूं, ऐसी इच्छा पहली यात्राके समय भी मेरे मनमें थी। लेकिन अब जब उस प्रदेशको देखने-का मौका मिल रहा है, तब तुम साथ नहीं चल सकती, इसका मुझे सचमुच अफसोस है।

जब हम नये अनुभव प्राप्त करते हैं तब पुराने अनुभवोंको याद करके नये और पुरानोंकी तुलना करना बड़ा ही आनंददायी होता है। ऐसा करनेसे हमारा जीवन भी समृद्ध बनता है। इन पन्द्रह-बीस वर्षोंमें हमने न मालूम कितनी यात्राएं साथ-साथ की हैं। हिमालयकी तराईसे लेकर कन्याकुमारीके सागरसंगम तक और सिंधके मंचर सरोवरसे ले कर असमके उतने ही विशाल लबतक सरोवर तक हम कई बार घूमे हैं और जी भर कर हमने भारतका दर्शन किया है। इसी तरह अफ्रीका और यूरोपमें भी हम साथ-साथ घूमे हैं। मुझे स्वप्नमें भी यह खयाल नहीं था कि दुनियाकी कोई भी यात्रा मैं तुम्हारे बिना कर सकूंगा। लेकिन तुम्हारी तबीयतने धोखा दिया, इसका क्या इलाज ? खैर। कोई-न-कोई तो सफरमें मेरे साथ रहेगा ही। लेकिन हमने साथ-साथ रह कर जो यात्राएं की हैं, उनके संस्मरणोंकी पूंजी भला दूसरेके पास कहांसे हो सकती है।

मराठीमें एक कहावत है : 'दुधाची तहान ताकावर भागवावयाची'। दूधकी भूख छाछ पीकर मिटाना। इस न्यायके मुताबिक इस यात्रामें मैं जो कुछ देखूंगा, कहूंगा और सोचूंगा, उसका सब हाल तुम्हें बराबर लिखता रहूंगा। समय-समय पर वहांके अपने पते भी मैं तुमको लिखूंगा ही। फिर भी वहांके दो स्थायी पते तो तुम्हें दे देता हूं। वहांसे हम जहां भी हों वहां तुम्हारा पत्र तुरंत पहुंच जाय, ऐसी व्यवस्था करवा देंगे। पहला पता :—

Bhikhu Imai San,
Nipponzan Myohoji,
Kyogoku Nihonbashi,
Chuo-ku,
Tokyo, Japan

दूसरा पता :

C/o The Indian Embassy
Tokyo, Japan

आजादी मिली तबसे यह दूसरी सुविधा हमें आसानीसे मिल जाती है। मेरे पुराने पासपोर्टके सारे पन्ने भर गये हैं इसलिए नया पासपोर्ट बनवा लिया है और उसके आधार पर जहा-तहा जाना है, उन देशोंके वीसा भी ले लिय हैं।

अब हैजेका और चेचकका टीका लगवाना बाकी है। विदेशमें खर्चके लिए पैसे साथ ले जानेकी इजाजत भी सरकारसे लेनी पड़ती है और फिर उसके मुताबिक यात्री-हुण्डी (ट्रैवलर्स चैक) भी लेनी पड़ती है। यह सारी तैयारी अभी करनी है। सुना है कि दो सौ सत्तर रुपये तक साथ ले जानेके लिए सरकारकी इजाजत नहीं लेनी पड़ती। लेकिन इतनेसे हमारा काम नहीं चलेगा, इसलिए कुछ अधिक रकम साथ ले जाने की इजाजत तो लेनी ही पड़ेगी। आशा है कि इसमें कोई दिक्कत नहीं होगी।

चि० शरद और बच्चोंको मेरे सप्रेम शुभाशिष कहना। तुम्हारे लिए तो सदा मेरे सप्रेम शुभाशिष हैं ही। तुम्हारे माता-पिताने तुम्हें फूलका नाम दिया है और वह भी भारतके प्रतीक सरोजका। इसलिए तुम्हारे लिए तो फूल जैसे ही कोमल व ताजा शुभाशिष भेजने चाहिये। आजकल तो पत्र हवाई जहाजसे उड़ कर पहुंचते हैं, इसलिए फूलोंके आशीर्वाद भी बासी नही होंगे।

२. साथी

'सन्निधि', राजघाट
नई दिल्ली-१
१४-७-५७

कल चि० अवनीका ट्रंक-काल आया था। उन्होंने चि० मंजुको मेरे साथ भेजना तय किया है। इस बारेमें कल तुम्हें ट्रंक-कालमे बताया ही है। लेकिन सब बात विस्तारसे लिखू, यह अच्छा है।

चि० बालकी बड़ी इच्छा थी कि चि० रेवतीको मैं अपने साथ ले जाऊं। रेवती को उसके माता-पिताने कालेजकी शिक्षा दी, लेकिन उसे परदेश जानेका मौका अभी तक नहीं मिला। मैं कहा करता हूं कि देशाटनके बगैर शिक्षा पूरी नही होती। यात्राके द्वारा जो ज्ञान व संस्कार मिलते हैं वे कालेजकी शिक्षाकी अपेक्षा हजार गुने अधिक महत्त्वके होते हैं। इस कारण बालकी इच्छाका स्वागत करूं तो इसमें आश्चर्य ही क्या! बालने यह भी कहा कि "सरोजबेन आपके साथ जाती तब तो कोई सवाल ही न था। लेकिन जब वे नही जा रही हैं तब इस उमरमे आपके साथ घरका कोई हो तो अच्छा रहेगा।" मैं मानता हूं कि सफरमें मैं अपनी सार-संभाल ठीकसे रख सकता हूं। पश्चिमी अफ्रीकाकी और मिस्रकी सारी यात्रा मैंने अकेले ही की थी। फिर भी साथमे कोई हो तो अच्छा, यह सोच कर रेवतीको साथ ले जानेका तय किया है।

इसी बीचमें टोकियोसे भिक्षु मारुयामासानका पत्र आया—'आपके साथ एक-की जगह दो बहनें आयें तो हर्ज नही है।' इसलिए मैने अवनीको लिख दिया कि 'यदि बहुत देर न हुई हो और आप सब व्यवस्था कर सकें तो आपकी इच्छानुसार चि० मंजुको मैं अपने साथ ले जा सकता हूं।' वे राजी हो गये हैं। लेकिन मुझे डर है कि वीसा, स्वास्थ्य-प्रमाण-पत्र (हैल्थ सर्टिफिकेट) तथा विदेशी-मुद्रा आदिकी व्यवस्था करना आसान नहीं है। इसलिए मेरी कल्पनाके अनुसार मंजुका जाना संभव नहीं मालूम होता। फिर भी अवनीकी कार्य-शक्ति गजबकी है। दौड़-धूप करके सब ठीक-ठाक कर लेगा, ऐसा लगता है।

मैंने यह सोचा कि जब अवनीने इच्छा प्रकट की है और यदि व्यवस्था हो सकती है तो उसको पूछ ही लेना चाहिये। दूसरे मैंने यह भी सोचा कि दो बहनें साथमे होंगी तो एक-दूसरेके सहवाससे प्रसन्न रहेंगी। कोई भी अकेली रहेगी तो मुझे उसकी ओर ज्यादा ध्यान देना होगा। इसलिए मैं समझता हूं कि अवनी आखिरी वक्त भी मंजुकी तैयारी करा देगा और हम तीनों जापानकी यात्राको निकल पड़ेंगे।

साथमें मुझे जितने पैसे लेने हैं उसकी इजाजत लेनेके लिए बंबईमें रिजर्व-बैंकके श्री आयंगरसे मिलना होगा। मैं कलकत्ता इतवारको पहुंचूंगा, इसलिए वहां इस संबंधमें कुछ हो नहीं सकेगा। इस कठिनाईकी ओर चि० अमृतलालने मेरा ध्यान दिलाया। इसलिए बम्बई एक दिन पहले पहुंच कर सारी व्यवस्था वहीसे कर लेंगे। विदेशी व्यापारकी आजकी परिस्थितिके कारण हमारे देशकी फारेन एक्सचेजकी हालत अभी विषम है। इस कारण इन दिनों देशका पैसा परदेशमें ले जाना हितकर नही है।

यहांके एक बड़े अफसरने मुझसे कहा था—"आप तो राज्यसभाके सदस्य हैं, आपको विदेशी-मुद्रा मिलनेमें दिक्कत नही होनी चाहिए।" उनका यह कहना ठीक था। लेकिन राज्य-सभाके सदस्यका धर्म तो यह है कि वह स्वराज्य-सरकारकी नीतिका ज्यादा अच्छी तरह पालन करे। इसलिए अत्यंत आवश्यक पैसोंकी ही इजाजत लेनेका मेरा विचार है। यहांसे विदेश जा कर अनेक देशोंमें घूम-फिर कर वापस आनेके लिए हवाई जहाजकी टिकटें वगैरा लेनी होंगी। उनके पैसे यही एयर इंडिया इन्टरनेशनलको दे देने हैं। जापानमें मेरे अकेलेका खर्च तो वहाके लोग ही उठानेवाले हैं। इसलिए मुझे पैसोंकी खास दिक्कत नहीं होगी। लेकिन विदेश जायें और पासमें पूरे पैसे न हों और उस कारण किसी कठिनाईमे पड़ जाएं, यह शोभा नहीं देता। इसलिए दो-तीन हजार रुपयोंकी फारेन-एक्सचेंज ले कर जो रुपये वहां खर्च न हों वे वापस ला कर यहां जमा करा देनेका मेरा विचार है।

३. खिड़कीके बाहर

(वर्धा स्टेशन आनेवाला ही है)
दोपहरको १२ बजे
२०-७-५७

भुसावलमें पहले हमारा एन्जिन बिगड़ा। इसलिए गाड़ी बड़ी देर तक खड़ी रही। अब दूसरा एन्जिन हमें खींच रहा है। सुबह उठ कर श्री कुंदरकी पुस्तककी पांडुलिपि पढ़ी और पांच पन्नोंकी प्रस्तावना चि० रेवतीको लिखाई। कुछ बाकी रहे

हुए कामोंको भी पूरा किया। ट्रेनमें एक अमरीकी (मूल स्विस) क्वेकर दम्पती मिले। उनसे साढे नौ बजे तक बातें हुई। भारतमें मध्यम वर्गके कुटुम्बोंमें तलाक करी-बकरीब होता ही नही, यह जान कर उस बहनको बड़ा आश्चर्य हुआ।

सुबह खिड़कीके बाहर देखते हुए मैंने रेवतीसे कहा, "जब कोई ऐसा मन-मोहक और सुन्दर दृश्य दिखाई देता है तो उससे आनन्द-विभोर होना मनोजको खूब आता है। प्रकृति-रसिक साथीका साथमें होना एक अहोभाग्य ही है।" रेवती-ने अपने बचपनकी और खंडाला घाटमें खोपोलीके पास रहने व घूमने-फिरनेकी बातें बताई।

अभी वर्धा स्टेशन आने ही वाला है। वहां हम बरसों रहे हैं। तब कई बार पूज्य बापूजीसे मिलने भी जाया करते थे।

४. प्रस्थान

डमडम हवाई अड्डा
२१-७-५७

थोड़ी ही देरमें हवाई जहाज पर चढ कर हम भारतका आकाश छोड़नेवाले हैं! मैं लिखने लगा था कि 'भारतका किनारा छोड़नेवाले हैं', लेकिन न तो कलकत्ता समुद्रके किनारे है और न मेरी यात्रा ही समुद्री जहाजसे हो रही है।

दोपहरको करीब तीन बजे हम कलकत्ता पहुंचे। आम तौर पर इतनी देर नही होती। मैंने श्री सीतारामजीके यहां नहा-धो कर खाना खाया तथा वहां मिलने आये हुए जापानी लोगोंसे मिला। अपने लोग तो काफी मात्रामें आये ही थे।

वर्धा सेवाग्राममें मैंदा नामके एक जापानी प्रोफेसर काम करते हैं। वे भी यहां मिले। उनकी बहन सेवाग्राममें रहनेके लिए जापानसे आई हैं। उसे लेने वे वहां आये हैं। उस बहनने हमें 'गुलछड़ी'के सुन्दर फूल दिये। वे फूल ताजे, सुगंधित और बड़े सुन्दर थे। उनकी खुशबू यदि पत्रके द्वारा भेजी जा सकती तो कितना अच्छा होता!

हमारा जहाज बम्बईसे आ पहुंचा है। उसमें चि० मंजु आई है। उससे मिलने उसके पिता ठाकोरभाई और उसके भाई जयंती भाई वगैरा काफी लोग आये हैं। मंजुने मेरे नामका तुम्हारा पत्र दिया। बडी खुशी हुई। उसे आरामसे फिर पढ़ूंगा, वरना यह पत्र पूरा नहीं हो पायगा। मैं अभी-अभी एयर इंडिया इंटरनेशनलके जल-पानगृहमें स्वादिष्ट चॉकलेटवाला दूध पी आया हूं। ये लोग बड़े सज्जन हैं। यात्रियोंकी सब प्रकारसे सहायता करते हैं। मंजुके आते ही उसको उसके पिताजीसे मिलानेकी सुविधा भी मैं इन लोगोंकी मददसे कर सका।

बस अब अधिक लिखनेका समय नहीं है। न मालूम भारतका दर्शन अब फिर कब होगा?

५. वातावरण और उद्घावरणके बीच

हांगकांग छोड़नेके बाद
दोपहरको १ बजे
२२-७-५७

हांगकांग छोड़नेके बाद यह खत लिख रहा हूं।

कल रात करीब पौने दस बजे कलकत्तासे हमारा जहाज उड़ा। उसके बाद तुम्हारा खत आरामसे पढ़ा। फिर प्रार्थना की और सो गये। इन लोगोंने हम तीनों को बैठनेकी जगह पास-पास ही दी है। सुबह चार बजे बैंगकाक आया। वहांका हवाई-अड्डा परिचित था। कॉफी पी कर आंखोंसे नींद उड़ाई। और हांगकांगकी प्रतीक्षामें नीचेका देश देखते हुए आगे बढ़े।

अपने कमिश्नर श्री अडारकरको चि० सतीशका पत्र मिला ही नहीं था। इसलिए वे मिलने कैसे आते? मैंने हवाई-अड्डेसे उनको फोन किया तब उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। आखिरी वक्त दौड़ कर आना तो संभव था ही नहीं, क्योंकि हांगकांग शहर तो एक द्वीप पर बसा हुआ है और हवाई-अड्डा है खण्डस्थ भूमि काउलून नामकी जगह पर। मोटरसे आते हुए समुद्र पार करना पड़ता है। उसीमें आधा घंटा तो आसानीसे निकल जाता है।

हांगकांग पहुंचते ही तुम्हारी व्यवस्थाके अनुसार रेवतीने तुम्हारा एक खत मुझे दिया। अब हम उसी आकाश-खण्डमें आ पहुंचे हैं जहां तीन साल पहले टोकियोसे हांगकांग जाते हुए हम रातको दो बजेके बाद हवाई तूफानमें फंसे थे।

तुम्हें याद होगा उस समय हमारा हवाई-जहाज समुद्रके जहाजकी तरह डोल रहा था। वायरलेसका एक तार टूट कर जहाजकी पीठ पर फटाक्-फटाक् कोड़े मार रहा था। तूफानसे बच निकलनेके लिए सारथिने जहाज हजार-दो हजार फुट ऊपर ले जा कर देखा, लेकिन दो सौ मील तक तूफानने हमारा पीछा छोड़ा ही नहीं। तुम्हें यह भी याद होगा कि जब मैंने सारथिसे पूछा था तो उसने बताया था कि बेतार (वायरलेस) का एक ही तार टूटा है दूसरा सही-सलामत है। और यह कि वे ओकिनावा और हांगकांगके साथ बेतारसे बात कर रहे है। उन्होंने बताया था कि कोई खतरेवाली बात तो नहीं है, लेकिन ऐसा खराब तूफान हम पहली ही ही बार देख रहे हैं।

यात्री सब अवाक् रह गये थे। बेचारी एअर होस्टेस भी घबड़ा गई थी।

शान्त थे केवल सारथि, उसके साथी और हम। चाहे जैसा कठिन प्रसंग हो तो भी तुम घबड़ाती नही हो। मेरे लिए अपनी यात्राकी यह एक बड़ी विशेपता है। हम उस दिन आत्माकी अमरता, लड़ाईके सैनिकोंकी मनोवृत्ति वगैरा कई विषयों पर बातें कर रहे थे और खिड़कीके रास्ते अरुणोदयकी राह देख रहे थे।

उस दिनके अनुभवके बाद आजका आकाश और नीचेका समुद्र बिल्कुल ही शान्त -- सलोना समुद्र माफ करे तो—अलोना लग रहा था। मैंने चि० रेवतीको और मजुको पिछला सारा हाल बताया। हवा इतनी शान्त थी कि सामान्यतया विमानकी गति का जो अनुभव होता है वह भी आज नहीं हो रहा था। नीचेके समुद्र पर भी लहरियोंकी कोई खास लीला दिखाई नही दे रही थी।

हमारी बातें खतम होते ही मेरा मन अभी तक देखे हुए सागरोंके चित्रोंको ताजा करनेमें लग गया। समुद्री जहाज (स्टीमर) से समुद्रका जो दर्शन होता है वह प्रत्यक्ष है और विमानमेंसे जो होता है वह परोक्ष है—ऐसी एक भावना मेरे मनमे बैठ गई है। यद्यपि समुद्री जहाजसे तो पानीका दो सौ-तीन सौ मीलका विस्तार ही दिखाई देता है, जब कि विमानमेंसे हजारों मील तकका विस्तार एक साथ दिखाई देता है। इसमें चित्र-रूप दर्शनकी यह धन्यता होते हुए भी समुद्रकी लहरें इतने ऊंचेसे बिल्कुल निर्जीव-सी लगती हैं, यही मुझे नहीं रुचता है। दससे बीस हजार फुटकी ऊचाईसे समुद्रके किनारेकी प्रचण्ड लहरे इतनी गरीब-सी लगती है कि समुद्रके प्रति दया आ जाती है।

इस तरह देखें तो जब हवाई जहाजसे जमीन दिखाई देनी बंद हो जाती है और विमानके नीचे व आसपास क्षितिजके वलय तक केवल पानी-ही-पानी दिखाई देता है, तब अपने जगतके विषयमे तरह-तरहके विचार मनमे आते हैं। कही भी जमीन दिखाई न दे और जिसके पेटमे अपना यह विमान अथवा हम जी ही न सकें ऐसा पानीका विस्तार दिखाई दे तब जमीनवासीके नाते मेरा मन अस्वस्थ हो जाता है।

जब हम जमीन पर होते हैं तब हमे ऊपरका आकाश अबाध विस्तार और स्वतंत्रताका आश्वासन देता है। लेकिन यहां वही आकाश समुद्रके ऊपर रखे हुए एक डिब्बेके ढक्कन जैसा मालूम होता है और किसी तरहका आश्वासन तो देता ही नही है।

बंबईसे भावनगर जाते-जाते जो समुद्र दिखाई देता है वह तो घरका-सा ही लगता है। उसके प्रति आत्मीयता हो जानेसे वह भव्य नही लगता। अफ्रीकाके अमरसर (लेक विक्टोरिया) के ऊपर हो कर हम गये थे तब तो वह बिल्कुल उथला लगता था। मोम्बासासे लिंडी तक रुकते-रुकते अलग-अलग टुकड़ोंमे गये तब महासागर और महाद्वीप आपसमें शेकहेंड कर रहे हों, ऐसा लगता था। दारेस्सलामसे हम जंजीबार गये तब उड़े और उतर पड़े—ऐसा अनुभव आया था और इसलिए

यही लगता था कि मानो समुद्रका अपमान कर रहे हैं। गंगोत्रीमें गंगाके छोटेसे प्रवाहके दायें किनारे पर एक पैर और बायें पर दूसरा पैर रखनेसे जैसे उस प्रवाह-के प्रति आदर नही बढ़ता उसी प्रकार दारेस्सलामसे जंजीबार जाते हुए समुद्रके संबंधमें अनुभव होता है।

एडिस अबाबासे एडन जाते वक्त हम लोग आकाशमें ऐसी जगह पहुचे थे जहांसे एक ओर अफीकाका किनारा और दूसरी ओर एशियाका किनारा दिखाई देता था। वहां भी भूमिकी अपेक्षा जलका महत्त्व विशेष है ऐसा नही लगता था।

भूमिकी अल्पता पहले-पहल तभी ध्यानमें आई जब मैंने काहिरासे बम्बई जाते वक्त १८००० फुटकी ऊंचाईसे सारा सौराष्ट्र एक नजरमें देखा।

समुद्रकी भव्यता तो ईरानकी खाड़ीमें, भूमध्य सागरमें और लन्दनसे लिसबन जाने समय अटलांटिक महासागरमें दिखाई पडी। उसके बाद पश्चिमी अफ्रीका जाते वक्त दक्षिणके अटलांटिक महासागरने तो मेरा मन ही हर लिया!

लेकिन मेरी भक्ति तो यह महासागर ही पा सका है। न मालूम क्यों? उसकी विशेष गहराईसे? या उसके इतने बड़े विस्तारसे? या उसके मनमोहक सूर्योदय-से? यह कहना मुश्किल है। लेकिन प्रशात महासागर देखते ही मनमें यह भाव आता है कि मनुष्यको उसके सामने नम्र होना चाहिये।

इस पृथ्वी पर जमीनसे तीन गुना पानी है। उस पानीके अन्दर फैली हुई जीव-सृष्टिको हम गौण क्यों मानें? ऐसा मनमें आया पर वह टिका नहीं। हम लोगोंने आकाशके साथ जितनी दोस्ती कायम की है उतनी समुद्रके साथ अथवा उसकी गह-राईके साथ पैदा नही की है, यह तो कबूल करना ही होगा। हम सब वातावरणकी प्रजा हैं, उदावरणकी नही।

अभी ओकीनावा द्वीप आयेगा। जब जब यह द्वीप देखता हूं तब-तब इसकी प्रजाके लिए मनमें सहानुभूति जागृत होती है। अमरीकी लोगोंने इस द्वीपको हवाई जहाजका बड़ा सैनिक अड्डा बनाया है। नतीजा यह हुआ है कि वहांके लोग और उनका जीवन गौण व अपमानित बन गया है। यह जापानका ही एक हिस्सा होते हुए भी उससे अलग करा दिया गया है और वहां जबरदस्त सैनिक तैयारियां बढ़ाते ही जा रहे हैं।

प्रशान्त महासागरमें सैण्डविच द्वीप समूहमें हवाई नामका एक टापू है। उसके अन्दर होनोलूलूका ज्वालामुखी अखंड प्रज्वलित रहता है। लेकिन यह ज्वालामुखी इतना विस्फोटक नही है जितनी ओकीनावाकी आजकी सैनिक तैयारी है। किसीकी छातीके सामने पिस्तौल तान कर हम उसे कहें "तू स्वस्थ चित्तसे अपना काम करता रह।" उसी तरह अमरीकी लोग ओकीनावामें सैनिक तैयारी बढ़ाते हुए एशियाके लोगोंसे कहते हैं: "आपको अभयदान है, हम आपके जीवनमें दखल नहीं देना चाहते। आप चाहें तो हम मदद भी करेंगे।

मैं एक बार जापान हो आया हूं। वहांके लोगोंसे परिचय हुआ इसलिए इस बार उस परिचयको बढ़ानेकी उत्सुकता है। जब हम पहले गये थे तब अज्ञात प्रदेश देखनेकी उत्सुकता थी। वह इस बार नहीं है। लेकिन आत्मीयता बढ़ती जा रही है।

६. टोकियोमें—१

टोकियो,
२३-७-'५७

हम कल रात आठ बजेसे पहले ही टोकियोके हवाई अड्डे—हानेदा पहुंच गये। भारतके विदेश कार्यालयके सचिवालयसे मेरे आनेकी खबर यहां पहुंच गयी थी। इसलिए यहांके दूतावासके प्रथम सचिव श्री मल्लिक हमें मिलने आये थे। हम लोग जब इथियोपियाकी राजधानी एडिसअबाबा गये थे तब श्री मल्लिक हमें मिले थे, यह तुम्हें याद होगा। वहां वे अपने राजदूत सरदार संतसिंहजीके मातहत काम करते थे। पहले वे मेरा दाढ़ी देख कर जरा चकराये, लेकिन फिर उन्होंने सोचा कि भारतसे हवाई जहाज द्वारा आये हैं इसलिए और कौन हो सकते हैं? हवाई अड्डे पर दूतावासके लोगोंको सबसे पहले मिलने देते हैं इसलिए वे सर्व-प्रथम मिले। उसके बाद मिले—गुरुजीके पट्टशिष्य—हमारे आनन्द मारुयामासान। उनके साथ कई भक्त पंखों जैसे ढोलोंको बजाते हुए खड़े थे। कस्टमसे सामान छुड़ानेमें कोई कठिनाई नहीं हुई, लेकिन कुछ देर जरूर लगी। श्री टोकुओसान मासूई नामके एक भक्त है, वे हमें अपनी मोटरमें घर ले गये। किनोकुनिया नामका उनका एक बड़ा भण्डार (जनरल स्टोर) है। वह इतना अच्छा है कि अमरीकी लोग भी यहां सामान खरीदने आते हैं। उनके छोटे भाई सुमुमुसानके यहां हमारे ठहरनेकी व्यवस्था की गई थी। घर पहुंच कर नहाने-धोने व खानेमें ग्यारह बज गये। हवाई अड्डेसे घर आते वक्त बारह मीलका रास्ता टोकियो शहरके बीचसे तय करना पड़ा था। बारिशके कारण रास्ते चमक रहे थे। रास्ता किसी तरह खत्म ही नहीं हो रहा था।

यहा इतना कह दूं कि टोकियो अब दुनियाका सबसे बड़ा शहर बन गया है। इसका विस्तार लगभग नब्बे वर्गमील है। यदि मैं भूलता न होऊं तो यहाकी आबादी करीब अस्सी लाख है।

पिछले महायुद्धमें अत्यधिक संहार सहनेके बाद भी जैसे बर्लिन और लन्दन फिरसे सजीव हो उठे हैं वैसे ही टोकियोने भी शीघ्र पुनर्जीवन प्राप्त किया है और अमरीकाके शहरोंको भी मात करके दुनियामें प्रथम स्थान ग्रहण कर लिया है।

इससे न्यूयार्क अथवा वाशिंगटनवालोंके दिलों पर क्या बीतती होगी ?

हमारे मेजबान मासुई बन्धुओंकी वृद्धा मां—श्रीमती टोकुनोसानने हमारा बड़े भावसे स्वागत किया। वे इतनी शांत व प्रसन्न दिखाई देती हैं कि हमने उन्हें 'माताजी' कहना ही पसन्द किया। यहांकी भाषामे माताजीके लिए 'ओका-सान' शब्द है। उसमें 'का' अक्षरकी आवाज ऊंची चढानी होती है। खानेके लिए तो बहुत-सी चीजें तैयार की गई थीं। हम शाकाहारी हैं यह भी वे जानते थे। दूध-दहीकी इफरात थी और फलोंका तो क्या कहना, ढेरके-ढेर थे। उनकी अपनी ही उत्तम बेकरी है इसलिए डबल रोटीके विषयमें तो कहना ही क्या ?

इन बौद्ध भक्तोंके घरोंमें एक कमरा तो देव-घर और प्रार्थना-घरके लिए होता ही है। हम तीनों उस प्रार्थना-मंदिरमें ही सो गये। इतनी सुन्दर गाढ़ी नींद आई कि कोई छोटा-सा सपना भी पास फटक न सका।

सुबह हम Anti Atom Bomb and Hydrogen Bomb and for disarmament वाली परिषद्के दफ्तरमें गये। आन्तरराष्ट्रीय पूर्व तैयारीकी समितिमें (International Preparatory Committee) मे पहुंचते ही उसके एक मंत्री मि० मॉरो, जो आस्ट्रेलियासे आये हैं, खड़े हुए और उन्होने मेरा अभिनन्दन करते हुए बताया : "कल ही हमने आपको अपनी समितिका उप-प्रधान चुना है। आपसे पूछनेके लिए भी हम नही ठहरे !" इस सम्मानके लिए मैंने उनका आभार माना और कहा : "मैं जानता हूं कि भारतकी सरकार और भारत-राष्ट्र विश्व-शांतिके लिए जो कुछ कर रहा है उसीकी कदर करनेका आपका हेतु है।" उनसे मैंने यह भी कहा : "टोकियोमें रह कर उनके काम-काजमें मैं हिस्सा नही ले सकूंगा, क्योंकि मेरा कार्यक्रम जापानके सारे देशमें घूमनेका है। आन्तरराष्ट्रीय समितिमें बैठ कर काम करनेके महत्त्वको तो मैं स्वीकार करता हूं, लेकिन मैंने तो अपना समय सारे देशमें घूम कर जन-सम्पर्कके लिए देना निश्चित किया है। परिषद्के दिनोंमें तो मैं जरूर उपस्थित रहूंगा। आपकी पूर्व तैयारीमें मदद देनेके लिए भारतमे प० सुन्दरलाल आनेवाले हैं। वे पूरा समय आपके साथ रहेंगे।"

इसके बाद समितिमें एक गम्भीर प्रश्न पर चर्चा हुई।

जापानके हवाई अड्डे अमरीकाके अधिकारमे है। अणु-बमके लिए इनका उपयोग करना हो तो इन हवाई अड्डोंका काफी विस्तार करना होगा और आसपासकी खेतीकी जमीन भी फौजी कामके लिए इस्तेमाल करनी होगी। जापानी सरकार इस तरह जमीन देनेके लिए तैयार हो जाय यह यहांकी प्रजाके लिए असह्य है।

एक तो जापान छोटा देश है, इसके अलावा वहां चारों ओर पहाड़ ही पहाड़ हैं। जनसंख्या बेहिसाब बढ़ी हुई है। खेतीके लायक जमीनका क्षेत्रफल मुश्किलसे चालीस फी सदी है। इसलिए खेतीकी जमीनका दूसरी चीजोंमें उपयोग किया जाय इसे जापानी लोग कैसे सहन कर सकते हैं ? आजकल इसी सिलसिलेमें कहीं-कहीं

सत्याग्रह भी चल रहा है। समितिमें किसीने सवाल उठाया कि जब हम लोग इसी कामके लिए एकत्र हुए हैं तब हमें इस सत्याग्रहमें भाग लेना चाहिये या नहीं? कुछ लोग कहने लगे कि हम लोग इस देशके रहनेवाले नहीं हैं। यहांकी सरकारकी इजाजत ले कर मेहमानके नाते आये हैं। हमें यहांके सत्याग्रहमें भाग नहीं लेना चाहिये। इस विषयमें जब मेरा अभिप्राय पूछा गया तब मैंने कहा—सत्याग्रहमें हम भाग तो नहीं ले सकते। लेकिन जहां सत्याग्रह चल रहा हो, वहां निरीक्षक (observer) के नाते व्यक्तिगत रूपसे किसीको जाना हो तो हम उसे रोक नहीं सकते। इस तरह जानेवाला व्यक्ति पहलेसे ही जाहिर कर दे तो अच्छा कि वह तटस्थ हो कर केवल निरीक्षणके लिए ही जा रहा है।" मेरे इस अभिप्रायसे सब लोग सहमत हुए और प्रारम्भमें ही उठा हुआ एक मतभेद टल गया।

रिवाजके मुताबिक मैं अपने दूतावासमें तुरन्त ही गया। वहां मालूम हुआ कि हमारे राजदूत श्री झा कहीं सफर पर गये हुए हैं। लेकिन श्री मल्लिकने हमारी सारी व्यवस्था करनेकी तत्परता प्रकट की। मुझे तो इतनी ही सुविधा चाहिये थी कि दूतावासके पते पर मेरे नाम जो पत्र आवें वे मेरी यात्राके क्रमके अनुसार यथा-स्थान मुझे तुरन्त मिलते रहें। श्री मल्लिकने यह कार्य दफ्तरके एक जापानी कर्म-चारीको सौंप दिया।

आजके दिन टोकियोमें थोड़ा आराम करके कल हम विमान द्वारा सीधे उत्तर में बसे हुए होक्कायडो द्वीपके मुख्य शहर सप्पोरो जानेवाले है। हमारी सारी व्यवस्था करनेके लिए श्री ईमाईसान वहां कभीके पहुंच चुके हैं। मारुयामा आज रातको ट्रेनसे रवाना होंगे। गुरुजीकी तबीअत अच्छी रही तो वे खुद हमारे साथ विमानसे चलेंगे।

खा-पी कर डट कर सोया। बस, अभी उठा हूं। दोपहरके तीन बजे हैं। अब सुरंगमेंसे जानेवाली ट्रेनके द्वारा बाजार जायंगे वहां मेरी कर्णिका (hearing aid) के लिए बैटरियां लेनी हैं।

७. टोकियोमें—२

टोकियो
२४-७-'५७

मैंने सोचा कि एक बार सफरकी दौड़-धूप शुरू हो जाने पर यहांके नाटक अथवा नृत्य देखनेका समय नहीं मिलेगा। हमको होक्कायडो जानेसे पहले एक दिन मिलता है उसमें कुछ देख लें तो अच्छा। यहां 'काबूकी' नामके पुराने ढंग-के नाटक होते हैं। ये नाटक पुराने ढंगके होते हुए भी इतने अधिक लोकप्रिय हैं

कि टिकटोंके लिए हमेशा ही भीड़ लगी रहती है। फिर भला ऐन मौके पर हमें कहांसे टिकटें मिलतीं ? दिन बेकार न जाय इसलिए हमने जापानी सिनेमा कैसा होता है यही देखना तय किया। चि० मंजुको आश्चर्य हुआ कि 'काकासाहेब सिनेमा देखने जाएंगे !' मैंने उससे कहा, "भारतमें मैं शायद ही कभी सिनेमा देखता हूं' लेकिन परदेशमें जब थोड़े ही दिनोंमें सारा देश देखना है तब सामाजिक जीवनका कुछ अन्दाजा तो नाटक व सिनेमाके द्वारा ही मिल सकता है। इस देश की वर्तमान समयकी रसिकता व कलाकी अभिरुचि भी रंग-मंच पर आसानीसे परखी जा सकती है।" हम सिनेमा देखने गये। हमारे साथ एक बौद्ध साधुको भी जाना पड़ा। सामान्यतया साधु सिनेमा देखने नहीं जाते, लेकिन मेहमानोंके लिए जाना पड़े तो इलाज क्या ? फिर हमारे साथ बैठनेके बाद वे उसमें रस न लें यह जरूरी नहीं था। हमें वे बीच-बीचमें समझाते जाते थे। भली ओकासान भी हमारे साथ आयी थीं। सिनेमाकी कहानी मजेदार थी। अभिनय सुन्दर था। लेकिन मुझे लगा कि अभिनयके बारेमें सारी दुनियामें एक ही सर्वसामान्य ढंग (mannerism) बनता जा रहा है। इसलिए सिनेमामें हमें विशेष रस नहीं आया।

माताजी ओकासानने हमारे लिए अपने घर पर ही एक नृत्यका कार्यक्रम आयोजित किया था। लड़कियोंको नृत्य सिखानेवाली नृत्यमें पारंगत एक बहनको उन्होंने बुलाया था। ओकासानने वाद्य बजानेका काम अपने ऊपर लिया। उन्होंने कहा, "पिछले तीस वर्षोंसे मैंने यह वाद्य नहीं बजाया है। ये शिक्षिका बहन सादी पोशाकमें ही आपको नृत्य दिखायेंगी; उनका साथ मैं न दूं तो ठीक नहीं रहेगा।" नृत्य सुन्दर था। उसमें तरह-तरहके भाव व्यक्त हो रहे थे। उस शिक्षिकाका चेहरा सादा ही था, लेकिन जब नृत्य करती थी तो एकदम दमक उठता था। बहुतसे कलाकारोंमें यह खूबी होती है कि नृत्यके वक्त वे कुछ निराले ही दिखाई देने लगते हैं।

जैसे नृत्यको वाद्यका साथ होता है वैसे ही यहां जापानी पंखेका साथ भी होता है। पंखेको घड़ीमें बंद करना, घड़ीमें फैलाना और उसे अनेक प्रकारसे घुमाना, इसका अपना एक पूरा शास्त्र ही रचा हुआ है।

दूसरे दिन मेरी कर्णिका (hearing aid) के लिए बैटरी खरीदने हम सर्व-वस्तु-भंडार (departmental stores) में गये। तीन साल पहले हमने यह भंडार देखा ही था। इसलिए मेरे लिए इसमें कुछ नवीन नहीं था। लेकिन रेवती और मंजु तो इसे देख कर चकित ही रह गईं। प्रत्येक मंजिलको देखते हुए हम ठेठ ऊपर तक गये। अखण्ड चढ़ती-उतरती सीढ़ियोंकी घटमाल (रहेंट-माला) देखनेमें हम सबको बड़ा मजा आया। जहां बहनोंके लिए तैयार कपड़े बिकते हैं, उस विभागमें एक जगह जापानी स्त्रियोंके और दूसरी जगह अमरीकी स्त्रियोंके पुतले खड़े करके कपड़े किस तरह फिट होते हैं, इसका प्रदर्शन किया गया था। सैंकड़ों पुतलोंके

द्वारा इन लोगोंने मनुष्यके और कपड़ोंके सौन्दर्यकी कल्पना व्यक्त की थी। विकारोंको कैसे पोसा जाए इसकी कला आजके जमानेने खूब विकसित की है। बच्चोंके पुतले बड़े ही मनोरंजक थे। एकदम ऊपर जानेके बाद टोकियो शहरका विस्तार दिखाई देता है। वहां तक मैं नही गया, क्योंकि वहांके लिए लिफ्ट नही थी। छत पर लकड़ीके घोड़ों और हिंडोलोंके ऊपर बच्चे खेल रहे थे, वह मजा देखता हुआ मैं बैठा रहा। बच्चे अनजान लोगोंके प्रति अधिकतर लापरवाह होते है, फिर भी कई बच्चे काले कोट पर मेरी सफेद दाढ़ी कैसी जंचती है जरा झांककर देख ही लेते थे।

सर्व-वस्तु-भण्डारमें कर्णिकाकी बैटरी नहीं मिली। पर आश्चर्यकी बात तो यह थी कि भंडारकी एक वहनने मेरी पुरानी बैटरीके ऊपरके नम्बर वगैरा देख कर ऐसी बैटरी टोकियोंमे कहा मिल सकेगी यह एक निर्देशिका (directory) में से ढूंढ कर अचूक बता दिया। हमें किसी तरहकी दिक्कत नहीं हुई। इस विशाल नगरमें एक कोनेकी छोटीसी दुकानमें सीधे पहुच कर हमने वह बैंटरी खरीद ली। भिक्षु नासेमान साथ थे इसीलिए यह हम आसानीसे कर सके।

टोकियोमे और सारे जापान देशमें केवल जापानी भाषाका ही प्रयोग होता है। अंग्रेजी बिल्कुल नही चलती। रेलवे, तार-घर, डाक-घरके नाम और सरकारी दफ्तरोंमे भी कही अंग्रेजीका प्रयोग नहीं होता है। केवल स्टेशनोंके नाम और रास्तोंके नम्बर जापानीके साथ अंग्रेजीमें भी दिये गये हैं। इतना भी अमरीकाके राजनीतिक और आर्थिक प्रभावके कारण ही उन्हे मजबूरन चलाना पड़ता है।

आज भी हम पूर्व तैयारीकी समितिमे (Preparatory Committee) गये। वहां मुझसे प्रेसके लोग मिलने आनेवाले थे। वे समय पर नही आये। इसलिए उस बीचमें मैं P.E.N. क्लबकी मुख्य मंत्राणी योको मात्सुओका—Yoko Motsuoka से मिल लिया। उनके साथ एक सज्जन और थे। जिन्होने कई सवाल पूछ कर उसे एक मुलाकातका ही रूप दे दिया।

बादमें मालूम हुआ कि जो प्रेसवाले मुझसे मिलने आनेवाले थे वे आये थे और राह देख कर चले गये। मुझे किसीने बताया ही नही। दोनों पक्षोंको बड़ी निराशा हुई। पूर्व तैयारीकी समितिवाले बड़े नाराज हुए। इस भूलको सुधारनेके लिए बादमें प्रेसवालोंको हमारे निवास-स्थान किनोकुनियामे ही बुलाया गया। मुलाकात हुई। फोटो भी लिये गये। इन सबसे निवृत्त हो कर फिर हम सप्पोरो जानेके लिए हवाई अड्डे पर पहुंचे।

८. सप्पोरो जाते हुए

सप्पोरो जाते हुए,
२४-७-'५७

J.A.L, यानी 'जापान एयर लाइन्स' के एक विमानमें बैठ कर लोग सप्पोरो जानेके लिए निकले हैं। सप्पोरो होक्कायडोकी राजधानी है। (राजधानी शब्द ठीक नहीं लगता, मुख्य शहर अथवा कारभारधानी कहना चाहिये। संस्कार-धानी तो यह है ही)। इस द्वीपका क्षेत्रफल तीस हजार वर्गमीलसे अधिक है। इस आकड़ेसे तो हमें कोई मतलब नहीं है। लेकिन यदि समुद्री जहाजमें बैठ कर इस द्वीपकी प्रदक्षिणा की जाय तो डेढ़ हजार मीलकी समुद्री-यात्रा करनी होगी। यह कल्पना सचमुच आकर्षक है! होक्कायडो यानी 'उत्तर सागरकी तरफका प्रदेश।' चीनी भाषामें और जापानी भाषामें 'हाय' यानी समुद्र। यह शब्द होक्कायडोमें छिपा हुआ है। 'होकु' यानी उत्तर।

इसी द्वीपके उत्तरमें साघालिन टापू है जिसके विषयमें बचपनमें ही पढ़ता आया हूं। इस द्वीपका यह दुर्भाग्य है कि यह रूसी साइबेरियाके किनारे और जापानके उत्तरमें स्थित है। जापानी लोगोंने सबसे पहले साघालिन द्वीप पर बसना शुरू किया था, लेकिन प्राचीन समयमें जापानी राजसत्ता वहां ठीक तरहसे नहीं जम सकी। इसलिए रूसी मछियारे वहां पहुंच गये। आयनु लोगोंके विषयमें हमने कई बार चर्चा की है। उनको देखनेके बाद मैं उनके विषयमें अधिक लिखनेवाला हूं। ये आयनु लोग भी उत्तरकी ओर खिसकते-खिसकते इस साघालिन द्वीपमें पहुंच गये हैं। मेरे बचपनमें रूस और जापानके बीच युद्ध हुआ था (१९०५ में) तब साघालिन द्वीप पर रूसका राज्य था। जापानकी विजय हुई इसलिए जापानने रूस से आधा द्वीप ले लिया। फलतः जापानका खुराक प्राप्त करनेका प्रश्न कुछ आसान हुआ। पिछले महायुद्धमें जापानकी हार हुई इसमें फिरसे पूरा साघालिन द्वीप रूस के हाथमें चला गया। अब उत्तरी सरहदकी रक्षा करनेके लिए होक्कायडो द्वीपको सुदृढ़ किये बिना और कोई चारा ही नहीं है। इस द्वीपको हम अष्टावक्र कह सकते हैं। किनारा टेढ़ा-मेढ़ा, जहां-तहां पहाड़ और सरोवर भी सब तरहसे टेढ़े-मेढ़े।

इस द्वीपके विषयमें मैंने आयनु लोगोंकी एक दन्तकथा पढ़ी थी; जैसी याद है यहां लिख रहा हूं। स्त्री जातिके विषयमें ऐसी अनुदार बातें दुनियाके सभी देशोंमें और सभी लोगोंमें न मालूम क्यों प्रचलित हैं? भिन्न-भिन्न वंश और भिन्न-भिन्न जातियोंके लोग एक-दूसरेके विषयमें हलके ख्याल रखें यह तो समझमें आ सकता है, अनजान और पराये लोगोंके विषयमें तो गलतफहमी होती ही है, लेकिन स्त्री-पुरुष मिल कर ही समाज बनता है। प्रत्येक पुरुष किसी स्त्रीके पेटमें ही जन्म लेता है। उसका दूध पी कर बड़ा होता है और फिर किसी स्त्रीके सहारे ही गृह-संसार चलाता है। उसके इच्छित बच्चे भी उसी स्त्रीके द्वारा ही मिल सकते हैं।

इतना परस्परावलम्बन होते हुए भी पुरुप स्त्री जातिके विपयमें हलके विचार क्यों रखता होगा राम ही जाने !

आयनु लोगोंकी मान्यताके अनुसार भगवानने अपने देवी-देवताओंको अनेक देश रचनेका कार्य सौंपा। होक्कायडो द्वीपको बनानेका काम एक देवीको सौंपा गया। उसने गारा-ककड़-पत्थर आदिसे अपना काम उत्साहसे शुरू किया। लेकिन उसके साथ बातें करनेके लिए एक दूसरी देवी वहां आ पहुंची। जहां दो स्त्रियां मिलीं और बातोंका तांता चला। किसी तरह भी बातें खतम नही होती थीं। दिया हुआ वक्त पूरा हो चला। भगवानने पूछा : 'सौंपा हुआ काम पूरा हुआ ?' काम कहांसे पूरा होता। अब क्या उपाय ? भाड़में जाय द्वीप ? जैसे-तैसे कुछ कर-कराके देवीने उत्तर दिया—'हां जी, यह रहा द्वीप। बिलकुल तैयार।' इस तरह स्त्रियोंका बातूनी स्वभाव इस सारे प्रदेशके लिए हानिकारक सिद्ध हुआ !

आयनु पूर्वजोंका अभिप्राय चाहे जो रहा हो लेकिन यह प्रदेश बड़ा ही मनोहर है और यहा खनिजकी पैदावार भी कुछ कम नही है। हमें सप्पोरो शहर, ख़ुशीरो बन्दरगाह, आकान नामका कानन और हाकोदाते नामका दूसरा बन्दरगाह आदि सब देखना था। मैंने पढा था कि आकान-काननमें बड़े ही सुन्दर-सुन्दर सरोवर हैं और इसी प्रदेशमे आयनु लोग भी रहते हैं। इसलिए यह सारा प्रदेश देखनेकी बड़ी उत्कण्ठा थी।

मैं समझता हूं कि भविष्यमें शीघ्र ही इस द्वीपका महत्त्व काफी बढ़नेवाला है। केवल फौजी दृष्टिसे ही नही, बल्कि जापानकी समृद्धिकी दृष्टिसे भी। यहां सरोवरोंके किनारे गर्म पानीके चश्मे हैं जिसमें नहानेसे चमड़ीके कुछ रोग मिट जाते हैं। ठंडके दिनोंमे यहा लोग तंग बर्फीले पहाड़ी रास्तों पर फिसलने (ski-ing) का खेल खेलते है। इसके बाद ठंडके अन्तमें प्रसन्न हो कर फिर ग्रीष्मका आनन्द लूटते हैं।

गुरुजी फूजीई इस द्वीपमें तीन-चार स्तूप बना कर धर्म प्रचार और धर्म-संगठन बढ़ाना चाहते है। मैं भी मानता हूं कि उसके लिए यह भूमि अनुकूल है।

यह लो, देखते-ही-देखते सप्पोरो आ भी गया। तीन बजे टोकियो छोड़ा था। अब छह बजनेवाले है।

चि० रेवती और मंजुके बीच न मालूम क्या हंसी-मजाक चल रही है ! मुझे इतना वक्त मिला तभी यह पत्र पूरा कर सका।

६. सप्पोरो

सप्पोरो
२६-७-'५७ की रात्रि।

आखिर हमने सप्पोरो देख ही लिया !

तीन घंटेमें पाच सौ अड़तीस मीलका सफर करके सप्पोरोके हवाई अड्डे 'चितोसे' पर हम २४ तारीखकी शामको ही पहुंच गये। हर शहरके नामके साथ उसके हवाई अड्डेके अलग नामका भी ध्यान रखना पड़ता है। (अपवाद केवल बर्लिनका है, क्योंकि वहांका विराट हवाई-अड्डा शहरके बिलकुल बीचों-बीच है।) हवाई अड्डे मुख्य शहरसे पांच-पांच, दस-दस मील दूर होते हैं। लेकिन चितोसेसे सप्पोरो तो पूरा पच्चीस मील दूर है ! परन्तु जिस आनन्दके साथ हमने यह सफर किया उसका विचार करते हुए पच्चीसके बदले तीस मील भी होता तो हमें भारी नहीं पड़ता। जैसे ही हम पहुंचे स्वागतके लिए आयी हुई एक छोटी टोलीने हमें सप्पोरोकी नगरपालिका द्वारा भेजी गई एक बादशाही ठाठकी अमरीकन मोटरमें बिठाया और तुरन्त मोटरके रेडियोने सुन्दर जापानी संगीत शुरू किया। सारा रास्ता तारकोलका बना था। कई पहाड़ियों परसे चढ़ते-उतरते और घुमाव लेते हुए हमें जरा भी धक्के महसूस नहीं हुए। ऐसा लगता था कि मानो हम पानीमें तैर रहे हैं और बीच-बीचमें लहरोंके कारण ऊपर-नीचे हिलोरे भी लेते जा रहे है। जब अमरीकी लोगोंने जापानका फौजी कब्जा लिया तब उन्होंने यहां अच्छे रास्ते बनाये और कामचलाऊ मकान भी बनाये। शामका वक्त और यह मनमोहक प्रदेश ! हरी-भरी पृथ्वी पर तरह-तरहके फूल हमारा मनोरंजन कर रहे थे। साथ ही संस्कारी मधुर संगीतके कारण सारा आनन्द और भी मुखरित हो उठा था। ऐसा लगता था मानो हृदय ही उत्फुल्ल और रागमय हो गया है।

ईमाईसान हमें सप्पोरोकी सीमा पर मिले और हमें एक बड़ी दुकानके हॉलमें ले गये। वहां हमारा सार्वजनिक स्वागत हुआ। छोटी-बड़ी लड़कियोंने हमें फूलोंके गुच्छे दिये। नगरपालिकाके प्रमुख लोगोंने स्वागत भाषण किये। आभार मानते हुए मैं हिन्दीमें थोड़ा बोला। ईमाईसानने उसका जापानी अनुवाद किया। भारत और निप्पोनको स्नेह और मैत्रीमें जोड़नेवाला बौद्धधर्म है। उस धर्मका प्रचार करनेवाले अनेक लोगोंमेंसे गुरुजी निचिदात्सु फूजीईने विश्व-शांति और विश्व मैत्रीका काम अपने सिर पर लिया है। मैं उनके निमंत्रण पर यहां आया हूं— इत्यादि बातें संक्षेपमें कहीं। फिर हम एक सुन्दर जापानी होटलमें ठहरने गये।

उस होटलका निचला भाग इस तरह सजाया गया था मानो एक संग्रहालय ही हो। उसमें आयनु लोगोंके कपड़े, हथियार, वाद्य, मूर्ति व चित्र आदि बहुत कुछ था। इसके अलावा वहांके प्राचीन कालके अवशेष और बादशाहोंकी मूर्तियां वगैरा

भी थी। लेकिन यहा मैं उनका वर्णन नहीं करूंगा।

जापानी मकान भीतरमे सादे दिखाई देते हैं, लेकिन इतने सुघड़, कलापूर्ण और प्रमाणबद्ध होते हैं कि देखते ही चित्त प्रसन्न हो जाता है। सुनता हूं कि इन सादे मकानोंको बनाना भी कम खर्चीला नहीं होता। पश्चिमके होटलोंमें ऐशोआराम आदिकी सारी सुविधा होती है। लेकिन हम एशियावासियोंको यह जापानी रहन-सहन ही अधिक संतोष देता है। चटाईवाली जमीन पर मोटे-मोटे गद्दे बिछा कर लेटने पर स्वदेशी वातावरणमें ही रहनेका अनुभव होता है। गद्दियों जैसे नरम आसन पर चौकी जितनी ऊंची मेजके आसपास बैठ कर चाय पीना इतना सुन्दर लगता है कि मानो किसी धार्मिक अथवा सांस्कृतिक विधिमें बैठे हों!

सचमुच जापानी लोगोंने चाय पीनेकी विधिको अत्यधिक सांस्कृतिक महत्त्व दिया है। फूलोंकी रचना, बैठनेका ढंग, चाय परोसनेका तरीका, चाय पीते समय मिठाससे बोलनेकी भाषा और ढीले-ढीले 'कीमोनो'के आसपास लपेटनेकी 'आबी' की खूबियां--आदि सब मिल कर ऐसा अनुभव होता है मानो हमें जापानी बनानेकी या बननेकी दीक्षा ही मिल रही है। जब हम जापानी ढंगसे रहते हैं तब स्वाभावि रीतिसे यहांके लोगोंमें आत्मीयता जागृत होती है। यदि हमें यहांके लोगोंकी थोड़ी-सी भाषा भी आ जाय तो वह सोनेमें सुगंधके समान हो। मुझे इस जापानी रहन-सहनके ढगके प्रति सहज ही आकर्षण हो गया।

जापानी घरोंमें जहां-तहां निश्चित नापकी चटाइयां बिछी हुई होती है। यहां तक कि 'अमुक कमरा चार चटाई' जितना बड़ा है अथवा 'साढ़े पांच चटाई जितना बड़ा है' इत्यादि कह कर समझाते हैं।

पश्चिमके लोग जूते पहन कर सब जगह घूमते है। हमारे यहां लोग घरके दर-वाजे पर जूते उतार कर नगे पैर घरोंमें घूमते हैं। पर जापानियोंने बीचका सुन्दर रास्ता निकाला है। किसी भी घरमें जायें तो पहले घरभरके लोग अथवा नौकर आकर आपका स्वागत करेंगे और घरमें इस्तेमाल करनेकी खड़ाऊं सामने रखेंगे। अपने जूते निकाल कर इन खड़ाउंओंको पहननेके बाद ही घरमे प्रवेश किया जाता है। घरके अन्दर भी पाखानेके खड़ाऊं अलग होते है। वे दूसरी जगह नही ले जाये जाते।

नहानेके कमरोंमें कपड़े रखनेके लिए खूंटियां नही होतीं, लेकिन बेतकी अथवा ऐसी ही दूसरी प्रकारकी टोकरियां रखी होती है। एक टोकरीमें उतारे हुए व दूसरीमें नये पहननेके कपड़े रखे जाते हैं। नहानेके लिए लोटे अथवा प्यालोंकी जगह लकड़ीके बालिश्त-दो-बालिश्त चौड़े कटोरेका उपयोग होता है। उसे भर कर सिर पर पानी डालनेमें पूरी कसरत हो जाती है। आखिर मैंने तो प्यालोंके उस सरदार-को दोनों हाथोंसे ही उठाना पसन्द किया। उसमेंसे गरम-गरम पानी सिर पर डालनेमें बड़ा सुख मिलता था।

इनमेंसे कई वस्तुएं तो तुम जानती ही हो, लेकिन वर्णन करनेके रसमें मगन हो जाने पर एक चित्र पूरा करनेका मन हो ही जाता है। वहां कितने ही लोग तुमसे यह पत्र ले कर पढ़ेंगे। उनकी सुविधाके लिए विस्तारसे लिखूं तो तुम ऊबोगी नहीं इसका मुझे विश्वास है।

दूसरे दिन २५ तारीखकी सुबह एक ऊंची पहाड़ी पर एक बड़ा स्तूप बनानेका काम शुरू होनेवाला था। बहुतसे स्त्री-पुरुष वहां इकट्ठे हुए थे। अपने मारुयामासान इस उत्सवके पुरोहित थे। जहां स्तूप तैयार होनेवाला था वहां एक पुराना बहुत ही छोटा-सा कामचलाऊ स्तूप था। लोग उसके चारों ओर बैठ गये थे। सामनेकी ओर छोटे-छोटे बच्चे सज-धज कर बैठे थे। हम लोग बच्चोंके मस्तक पर अथवा दो भौंहोंके बीच बिन्दी लगाते हैं। कभी-कभी काजलकी बिन्दी भी लगा देते है। यहा इसके बदले दोनों भौंहोंके ऊपर लेकिन एक-दूसरेसे दूर नहीं ऐसी दो काली बिन्दियां लगानेका रिवाज है। इन लोगोंको जरूर यह बिन्दी सुन्दर लगती होगी। बच्चोंके सिर पर पुराने ढंगका सुनहरी मुकुट पहना देते है। सिरके आकारमें यह बहुत छोटा होता है इसलिए उसे कानके पाससे गलेके नीचे बांधना पड़ता है।

सारी विधि दो घंटे तक चली। तब तक ये बच्चे चुपचाप बैठे रहे, न कोई रोया और न कोई इधर-उधर दौडा ही। किसीने बातें भी नहीं कीं। केवल उन्हें भूख लगी तब उनकी माताओंने आ कर उनको खिला-पिला दिया। सचमुच जापानी बच्चोंका धैर्य प्रशंसनीय है। इन लोगोंको जनमघूटीमें ही अपनी भावनाओं पर काबू रखनेके संस्कार मिले होते हैं। यह तो इनकी सारी संस्कृतिकी विशेषता है।

पहाड़ी पर चढ़ना मेरे लिए आसान नहीं था। मोटर जहां तक जा सकी वहां तक उसीमें गये। उनकी परेशानी देख कर मैंने कहा कि आप चिन्ता न करें, बाकी चढ़ाई मैं चढ़ लूंगा। ईमाई-मानके मजबूत कंधों पर हाथ रख कर मैं चढ़ ही गया। विधिके अंतमें कुछ भाषण हुए। उसमें मुझे भी बोलना पड़ा। जापानकी इस यात्रा में मेरा यह सबसे पहला भाषण था। मनमें विचार आया कि इतनी दूर पूर्वमें और उत्तरमें आया हूं और ये लोग मुझे अपने उत्सवमें आदर व प्रेमके साथ बोलनेको कह रहे हैं, सचमुच यह भगवान और महात्मा गांधीका प्रताप है। हिन्दुस्तानमें मैं उत्तर में चौंतीस या पैंतीस अक्षांश तक ही गया हूं, लेकिन सप्पोरो तो तेतालीस अक्षांश पर बसा हुआ है। पूर्व दिशामें भी इतनी दूर इससे पहले नहीं आया था। यहांकी भाषा, यहांके रिवाज कुछ भी नहीं जानता हूं। फिर भी इन लोगोंसे, इनकी भावनाओं और महत्त्वाकांक्षाओंसे, पूरी-पूरी सहानुभूति रखता हूं और प्रेमके कारण तथा स्वतंत्रता, शांति और बन्धुत्वके आदर्शके कारण इन लोगोंके साथ मैं एक प्रकारका हार्दिक ऐक्य अनुभव करता हूं। ईश्वरके यहां न कोई स्थान दूर है और न कोई दृश्य पराया है। हम एक-दूसरेकी बोलचालकी भाषासे अनजान थे। लेकिन आंखों-के द्वारा एक-दूसरेके समक्ष आत्मीयताको और भावनाओंको सहज ही व्यक्त कर

सकते थे।

मेरी भाषा समझनेवाले यहां दो ही व्यक्ति थे। उनमेंसे ईमाईसान कहीं गये हुए थे इसलिए श्री मारुयामासानने मेरे भाषणका जापानी अनुवाद किया। सारी विधि पूरी होनेके बाद मैंने अपने जुड़वां दुर्बीनसे सप्पोरोका विस्तार देखा। पासकी पहाड़ी पर ठंडमें जब बरफ जम जाती है तब दूर-दूरसे लोग फिसलने (ski-ing) का खेल खेलने आते हैं। यह खेल सचमुच बड़ा रोमांचकारी होता है। सौ दो सौ फुट अथवा उससे भी अधिक ऊंचाईसे निर्भयतापूर्वक फिसल जाना और वह भी बैठ कर नहीं, लेकिन पांच-पांच फुटके तलेवाले जूते पहन कर खड़े-खड़े! इसका आनन्द और रोमांच अनोखा ही होता है।

सप्पोरोकी आबादी पांच लाखकी है उसमें सत्तर स्कूल और एकसे अधिक विश्वविद्यालय हैं।

स्तूपके उत्सवमें भाग ले कर हम नीचे उतरे। दोपहरके खानेके बाद थोडी नींद ली।

उस दिन फिर हमने आराम ही किया। शामको थोडा-सा शहरमें घूमे-फिरे। इस सुन्दर शहरकी रचना अमरीकी ढंगकी है। इसलिए जापानकी नगर-रचनासे अलग पड़ जाती है। हम जिस होटलमें ठहरे हुए थे उनके पीछे एक बड़ी इमारत थी। रातको वहां बड़ी देर तक दीये जलते थे। पूछने पर पता चला कि वह केश-कृन्तन महाविद्यालय है। इसमें नाइयोंको बाल काटनेकी कला सिखाई जाती है। यह अभ्यास-क्रम एक वर्षमें भी पूरा नहीं होता!

दूसरे दिन सुबह यानी २६ को हमने सप्पोरोका ठीकसे निरीक्षण किया। सबसे पहले एक शिन्टो मन्दिर देखा। इसमें मूर्ति नहीं होती; लेकिन बीचका कमरा पवित्र माना जाता है। इसमें पुजारी ही जा सकते हैं। भक्त लोग दरवाजेमेंसे ही अन्दर देख कर ताली बजा कर नमस्कार कर लेते हैं।

शिन्टो जापानियोंका राष्ट्रीय धर्म है। चीन और कोरियासे आए हुए बौद्ध धर्मकी इस शिन्टो धर्म पर कलम चढ़ाई गई। आगे चल कर राष्ट्रीय सरकारको यह बात न रुची। इसलिए दोनों धर्म बादशाहके हुक्मसे अलग-अलग कर दिये गये।

शिन्टो धर्ममें प्रकृतिकी पूजा तो है ही, लेकिन इसमें अधिकतर पूर्वजोंकी पूजा होती है। ऐसी भावनाके कारण ही जापानी लोग अपने सम्राटको दैवी पुरुष मानने लगे और राज-भक्ति व देश-भक्तिके बीच अभिन्नता सिद्ध कर सके। इस मन्दिरसे निकल कर हमने यहाका ज़ू-चिड़ियाघर, गवर्नरका प्रासाद, वानस्पत्यम् (बोटेनिकल गार्डन) और स्टेडियम-क्रीड़ांगण आदि देखे।

करीब चार वर्ष पहले यहांसे नजदीक ही एक ज्वालामुखी फट पड़ा था और उसने तीनसौ पचास फुटकी एक पहाड़ीकी भेंट दी थी इसका हाल सुना। उसके

बाद हम खेती-बाड़ी और पशु-पालनकी संस्था देखने गये। यहांकी गायें मजबूत और काफी दूध देनेवाली होती है। यह सब देख कर हम लगभग बारह बजे यहांके ग्राण्ड-होटलमें पहुंचे। नगरपालिकाकी ओरसे हमें यहां दावत दी गई थी। नगरके प्रतिष्ठित लोगोंके साथ खाना खा कर और बातें करके हम घर लौटे।

इस प्रदेशके बड़े-बड़े घरोंमें प्रयत्नपूर्वक ठिंगने कदके पेड़ रखे जाते हैं। ग्राण्ड होटलमें एक आलेमें रखा हुआ ऐसा एक पेड़—जिसे मैंने बालखिल्य नाम दिया है—तीन सौ साल पुराना है।

रातको हम ८-४० की ट्रेनसे खुशीरो जानेके लिए निकले। यहांसे एक जापानी बहन भी हमारे साथ शामिल हुई। उनका नाम श्रीमती याएको ईवामुरा था। ईमाईसानको होक्कयाडोमें प्रचार कार्यमें इन्होंने इतनी अधिक मदद की है कि ईमाईसान अपनेको उनके घरके कुटुम्बीजन जैसा ही मानते हैं। होक्कायडोके सारे सफरमें यह हमारे साथ घूमेंगी। इनके गांवका नाम ओतारु है।

अब तो होक्कायडोकी शिरोमणि शोभा आकन-काननमें पहुंच कर ही तुम्हें पत्र लिखूंगा। खुशीरोमें हम अधिक नहीं रहनेवाले है।

१०. 'खुश रहो'

आकनको,
२७-७-'५७

अब हमारी रेल-यात्रा शुरू होती है।

जापानी ट्रेनोंकी यह खासियत है कि आपको जहां जाना हो उसकी टिकट पहले खरीद लीजिये। यह टिकट किसी भी ट्रेनके लिए इस्तेमाल हो सकती है। यदि आपको जल्दी जाना हो तो थोड़े अधिक पैसे दे कर एक पूरक टिकट खरीद लीजिये जिससे आप एक्सप्रेसमें बैठ सकेंगे। नियम ऐसा है कि यदि यह एक्सप्रेस ट्रेन नियमित समयसे एक घंटेसे अधिक देरसे पहुंचे तो एक्सप्रेसके लिए दिए हुए अधिक पैसे आपको वापस मिल जायेंगे। इसी तरह यदि आपको सोते हुए जाना हो तो उसके लिए भी कुछ पैसे और दे कर पूरक टिकट ली जा सकती है। अपने देशकी अपेक्षा यहांकी रेल-यात्रा कुछ महंगी जरूर है, किन्तु यहांकी रेलोंमें सुविधा काफी होती है। तुम्हें याद होगा कि ट्रेनके साथ चलनेवाले यहांके रेल-कर्मचारियोंमें जरा भी मिजाज नहीं होता। हमारे यहां तो हमने अंग्रेजोंके समयका मिजाज और स्वराज्यके बादकी अपने कर्मचारियोंकी सज्जनता दोनोंका ही अनुभव किया है। राज्यकर्त्ताओंके मानसका प्रतिबिम्ब कर्मचारियों पर पड़ता ही है।

सप्पोरोसे खुशीरो तक लगभग बारह घंटेका रातका सफर था। यह प्रदेश

इतना अधिक उत्तरकी ओर है कि इन दिनों यहां सुबह चार बजे ही पौ फटती है। देशका सृष्टि-सौंदर्य देखनेके लिए निकले हुए हमारे जैसे तो रेलका सफर ही पसन्द करते हैं। वक्त बचानेका सवाल न होता तो यात्रीके नाते मैं विमानमें उड़ कर जाना पसन्द नही करता। सुबहके दो-तीन घंटे ट्रेनके दोनों ओर दौड़ती हुई कुदरतका और सुन्दर पहाड़ोंका जी भर कर ध्यान करते-करते हमने प्रार्थना की। उसके बाद हमने पेट भर तो नही, लेकिन कामचलाऊ नाश्ता किया और सात बजे खुशीरो पहुंचे। इस स्टेशनका नाम याद नही रहता था इसलिए मैंने इसे 'खुश रहो' नाम दिया। और इस बन्दरगाहकी बढ़ती हुई आबादी और समृद्धि देखते हुए 'खुश रहो' नाम सचमुच शोभा भी देता है।

इसी नामकी दक्षिणवाहिनी सरयू अथवा सरो-जा नदी इस शहरके पास ही समुद्रसे मिलती है। इस सुविधाको देख कर ही मनुष्य यहां काफी तादादमें बस गये हैं।

जबसे मैंने कन्याकुमारीकी शोभा देखी है, तबसे मुझे दक्षिणकी ओर गरजनेवाले समुद्रका विशेष आकर्षण है। लंकाके दक्षिणमें भी लगभग ऐसी ही शोभा है। पश्चिम अफ्रीकाके दक्षिणमें भी ऐसी ही छटा दिखाई देती है और इस समय यहां खुशीरोमें भी ऐसा ही सौंदर्य देख कर पुराने स्मरण ताजे हो आये।

गुरुजीके भक्तोंने यहां एक बड़ा स्तूप बनानेका काम अपने जिम्मे लिया है। प्रथम इसे देखने हम वहां गये। काम करनेवाले सारे ही भक्तिभावसे प्रेरित थे और देखरेख करनेवाले शहरके लोग भी धर्म समझ कर मुफ्तमें काम कर रहे थे। फिर काम सुन्दर हो और तेजीसे चले इसमें आश्चर्य ही क्या? बौद्ध साधु भी मजदूरोंमें मिल कर काम करनेको तैयार थे। यह दृश्य मुझे बड़ा ही अच्छा लगा। पुराने ढंगके स्तूपोंके अन्दर नये ढंगकी वैज्ञानिक सुविधा देख कर इस प्रजाकी व्यवहार-कुशलताके प्रति मनमें सम्मान उत्पन्न हुआ। इस स्तूपको देख कर हम उनके एक मंदिरमें गये। स्टेशन पर क्या और मंदिरमें क्या, हमारा स्वागत चमड़ेके पंखोंकी आवाजके साथ 'नम् म्यो हो रेंगे क्यों' वाले मन्त्रसे ही हुआ। यह मंत्र जापानी भाषाका है; चीनी लोग कहते हैं कि यह चीनी भी है। इसका अर्थ है—"सद्धर्म-पुण्डरीकका, बुद्ध भगवानके कल्याणकारी उपदेशका सर्वत्र विकास हो, विजय हो। उसीकी शरण हम लें।"

जापानके निचिरेन पंथके साधुओंके लिए और भक्तोंके लिए भी यह मंत्र धर्म-सर्वस्व है। पंखेनुमा ढोल बजा कर यह मंत्र बोलते हुए वे सब जगह घूमते हैं। इस मंदिरमें भक्त काफी संख्यामें इकट्ठे हुए थे। मुझे यहां थोड़ा बोलनेको कहा गया। वक्त थोड़ा, भाषाकी दिक्कत व दुभाषियेकी मार्फत बातें करना इसलिए मतलबकी मुख्य-मुख्य बातें छोटे-छोटे वाक्योंमें भारपूर्वक कहनी थीं। इसका असर वक्तृत्वपूर्ण व्याख्यानोंसे ज्यादा अच्छा होता है। इतनी दूरसे, बुद्ध भगवानकी पुण्यभूमिमें आया

हुआ और उसमें भी महात्मा गांधीके साथ रहा हुआ आदमी, उसके शब्द ध्यानपूर्वक और श्रद्धापूर्वक सुनने ही चाहिए—ऐसा अनुकूल मानस ले कर आये हुए लोगोंके सामने उदाहरणो और दलीलोंके विस्तारकी जरूरत नही होती। बालक जैसे मांका दूध पी कर उसे अनायास ही हजम कर लेता है, उसी तरह भक्त-हृदय, जिसके प्रति श्रद्धा होती है उसके वचन स्वीकार कर लेते है।

मैंने उन लोगोंसे कहा कि हमारे यहां मंदिरों, मस्जिदों और गिरजाघरोंके झगडे देख कर हम नये युगके लोग ईंट-चूना-पत्थरकी रचनाके प्रति उदासीन बन गये हैं। इसलिए मैं प्रथम आपके गुरुजीके स्तूप-निर्माणके प्रति उदासीन था। लेकिन जापानकी बात दूसरी है आप लोगोंको स्तूप जैसी चीज जीवित प्रेरणा दे सकती हैं। गुरुजी अपनी श्रद्धा आपमे भर सके हैं।

गुरुजी महात्मा गांधीसे मिले थे। दोनोंके बीच बड़े महत्त्वका धर्म-संवाद हुआ था। गुरुजी भी महात्मा गांधीकी तरह अहिंसाके द्वारा विश्वशांतिकी स्थापनाके लिए जूझ रहे हैं।

हमारे शास्त्रोंमें एक सुन्दर वचन है : धर्मो रक्षति रक्षितः—हम यदि धर्मका रक्षण व पालन करें तो धर्म भी हमारा रक्षण व पोषण करता ही है। हमारे यहां सेनाकी दृष्टिसे जो स्थान महत्त्वके गिने जाते थे वहां पुराने लोग या तो किले बना कर फौज रखते थे अथवा मंदिर बना कर भक्तोंको इकट्ठा करते थे। ऊंची पहाड़ीके ऊपर स्थित मंदिरका धर्म-निष्ठासे रक्षण करें तो सारे देशका रक्षण अपने आप ही हो जाता है। धर्म-रक्षण और देश-रक्षण दोनोंको एक करनेवाले धर्म-नेता जिस देशमें पनपते हैं उस देशका कल्याण ही है। होक्कायडोमें ऐसे चार स्तूप बन जावें और उनके प्रति निष्ठा रखनेवाले भक्त भी हों तो धर्मकी और देशकी रक्षा एक साथ ही होगी।

पश्चिमके लोगोंने विज्ञानकी उपासना करके अणु-बमका आविष्कार किया है। उसका प्रथम प्रयोग उन्होंने आपकी भूमि पर किया। यदि एशियाका हृदय एक हो तो आपका दुःख सो हमारा दुःख ऐसा हमें लगना ही चाहिये। एकका संकट यानी सबका संकट। जब हम ऐसा समझेंगे तभी बच सकेंगे। पश्चिमके लोगोंने जैसे विज्ञानकी उपासना की है वैसे ही हमें आत्म-शक्तिकी और धर्म-शक्तिकी उपासना करनी चाहिए। भगवान बुद्धने हमें निर्भयताका और विश्व-मैत्रीका संदेश दिया है। ढाई हजार वर्षसे हम यह संदेश सुनते आ रहे हैं। अब ऐसा जमाना आ गया है कि यदि हम इस संदेशको अमलमें नही लायेंगे तो मनुष्य-जाति टिकनेवाली नही है। इसलिए जिन लोगोंने यह उपदेश अपनाया है उन हम एशियावासियोंको विशेष प्रयत्न करना चाहिये। ऐसी कुछ बातें कह कर मैंने उन लोगोंसे बिदा ली।

जलपान कराये बिना ये लोग छोड़नेवाले नही थे। खास-खास लोगोंके साथ इधर-उधरकी बातें करते-करते हमने नाश्ता किया। इनमें हमारे बम्बईवाले

जापानी साधु वातानबेसानके एक सम्बन्धी किचिमात्सुसान भी थे। ये यहां ठेकेदारी का काम करते हैं। हमारे वातानबेसानके लिए यहां घरके लोगोंमें बड़ा आदर है। इसके बाद हम मोटरमें बैठ कर आकन् जानेके लिए निकले। थोड़ा नदीके किनारे, थोड़ा नदी पार करके रास्ता नापते हुए हम खुशीरोके बाहर पहुंचे। फिर तो जहां देखो वहीं हरी-भरी कुदरतकी शोभा दिखाई दे रही थी। मनुष्यकी आबादीका असर कम होने लगा और कुदरतका अनिर्बन्ध साम्राज्य दिखाई देने लगा। मनुष्योंके घरोंसे आगे निकल कर व खेतों और झाड़-झंखाड़ोंको पार करनेके बाद जंगलम प्रवेश करते हुए एक तरहकी राहत-सी मिलती है। कारण यह है कि मनुष्यकी दुनिया चाहे जितनी सुन्दर और संस्कारी हो, फिर भी उसमें अनिर्बन्ध आनन्द नहीं होता। वह आनन्द तो अरण्यमें ही मिलता है। पर यहां वनकी शोभा सोलह कलाओंसे प्रगट होते हुए भी पक्षियोंके दर्शन नहीं हुए और न ही उनका कलरव सुनाई दिया। इससे सभी कुछ सुनसान-सा लगता था। एक बजे तक हम आकन्में सरोवरके किनारे एक बड़े सुविधावाले और मनोहर यादोया (होटल) में डेरा डाल चुके थे।

यहांसे चिट्ठियां भेजनेकी सुविधा होती तो यह पत्र यहीं पूरा करके तुरन्त भेज देता। इसके बादके दो दिन तो अब पहाड़, जंगल, सरोवर और नदियोंकी मस्तीके ही होंगे। आजका दिन भी सागर, सरिता और सरोवर इन तीनोंके एक साथ दर्शनमें ही बीता।

११. आकन-कानन

बिहोरीसे हाकोदाते जाते हुए ट्रेनमें,
२६-७-५७

आजका पत्र मुझे सरोवरके वर्णनसे ही भरना है। अंग्रेज लोग तो इस प्रदेशका नाम Lake District ही रखते। यहांके लोग इसे आकन नेशनल पार्क कहते हैं। मै भी इसे आकन अरण्य कहनेवाला था लेकिन आकनके साथ कानन शब्द ठीक जंचता है इसलिए आकन-कानन नाम देना ही मैंने ठीक समझा।

हमने पूनामें जब पहली ही बार नौका-विहार किया था तबसे पानीके विस्तार के प्रति तुम्हारा आकर्षण मैं जानता हूं। हम कितनी जगह तालाबों, सरोवरों व नदियोंको देख कर खुश हुए हैं। भारतके दोनों ओरके किनारों पर बने हुए दो बड़े-से-बड़े सरोवरों—मंचर (सिन्ध) और लबतक (असम) में हम नौकामें बैठ कर कितना अधिक घूमे हैं!

अभी यहां जिन तीन-चार सरोवरोंको हमने देखा उस समय तुम हमारे साथ नहीं थी, इसका दुःख तुम्हें अधिक होगा या मुझे, उसकी चर्चामें उतरे बिना उन

सरोवरोंका वर्णन ही तुम्हें भेज देता हूं। उससे यहां तुम हमारे साथ ही हो ऐसा मान कर यह प्रदेश तुम देख सकोगी। इस पत्रके द्वारा कल्पनाकी आंखोंसे इस दृश्य-को देखनेके आनन्दमें तुम्हारा स्वाभाविक दुःख हलका होगा, ऐसा मैं मानता हूँ। हमने बहुत कुछ साथ-साथ देखा है और उसके आनन्दकी इतनी अधिक सुन्दर चर्चा भी की है कि यहांका वर्णन बिलकुल सादे शब्दोंमें लिखूं तो भी तुम मेरे हृदयके भाव आसानीसे समझ सकोगी। दूसरेकी भावनाओंके साथ एकरूप होनेकी अपनी समभाव-शक्तिकी मददसे तुम कल्पना-शक्तिकी पूर्णताको पहुंच ही सकती हो।

यहांके होटलोंमें हमारा यह होटल सबसे बढ़िया माना जाता है। इसके एक ओरसे आकन्को सरोवरके विस्तारकी झलक दिखाई देती है तो दूसरी ओर पासके छोटे-से उपवनमें वन-भोजनके लिए आये हुए जापानी युवक-युवतियोंका शोर-गुल आकर्षित करता है। इस स्थान पर जहां देखो वहां होटल-ही-होटल हैं। आजकल पिकनिकका खास मौसम होनेसे सभी होटल संस्कार-यात्रियों (Tourists) से भरे पड़े हैं। जगह-जगह आयनु लोगोंकी बनाई हुई वस्तुओंको बेचनेकी दुकानें हैं। यहां के जंगलोंमें रीछ और हिरण अधिक मात्रामें हैं। पर हमारे भाग्यमें उनके दर्शन नहीं थे। यहांके लोग जंगलकी एक विशेष लकड़ी ला कर उसके छोटे-बड़े टुकड़े कर लेते हैं। फिर उसे तराश कर उससे तरह-तरहके पैंतरोंवाले रीछ बनाते हैं।

मौका मिलते ही हमने सबसे पहले सरोवरके किनारे जाकर टिकटें ले ली और एक जहाजके आते ही उसमें जा बैठे। मैं एक छोटी-सी नावमें ही घूमना पसन्द करता, लेकिन थोड़े समयमें ज्यादा घूमना था। इसके अलावा जहाजमें जानेका एक और भी कारण था। इस सरोवरमें 'मारीमो' नामकी एक वनस्पति होती है। इसका आकार गेंद जैसा होता है। यह गेंद धीरे-धीरे बड़ा होता जाता है। कहते हैं कि टेनिसके गेंद जितना आकार धारण करनेमें इसे दो सौ साल लग जाते हैं! इस वनस्पतिकी खूबी यह है कि यदि हवा अच्छी हो तो ये हरे गेंद पानीमें काफी ऊपर तक आ जाते हैं। हवाका मिजाज जरा भी बिगड़ा कि तुरन्त ये मारीमो डुबकी लगा कर बिलकुल नीचे पहुंच जाते हैं। मारीमोके इन गेंदोंको देखनेके लिए जहाजमें दो-दो बैठकोंके बीच, पानी तक पहुंचनेवाला एक-एक पाइप लगा हुआ था। हमारे खयालसे तो हवा अच्छी थी। मजेकी धूप थी। जहाजमें बहुत-सी लड़कियां सुन्दर गाने भी गा रही थीं, लेकिन मारीमोका मन नहीं ललचाया। वे ऊपर आये ही नहीं! यह वनस्पति दुनियामें दूसरी जगह कहीं नहीं मिलती। जापानमें इतने सरोवर हैं लेकिन उन सबमें भी मारीमो नहीं हैं। यह सरोवर किसी भी जगह सौ फुटसे अधिक गहरा नही है, लेकिन इसका घेरा खासा १५ मीलका है। इसका आकार टेढ़े-मेढ़े त्रिकोण जैसा है और एक तरफ पूंछ-सी बढ़ी हुई है। जापानी भाषामें 'को' यानी सरोवर। यह सरोवर आकन-अरण्यमें है इसलिए इसे आकनको कहते हैं। यह नाम ही कितना काव्यमय है! एक जापानी गीत कहता है

कि आकनको यानी चिर यौवन। यह बासी अथवा वृद्ध होनेवाला नहीं है। इसका रक्षण करनेके लिए दोनों ओर ऊंचे-ऊंचे दो भव्य पर्वत हैं। कवि कहते हैं कि ये दोनों पहाड़ स्त्री-पुरुष हैं। पुरुष पहाड़का नाम है—'ओ आकान' और स्त्री पहाड़का नाम है 'मे आकान'।

पुरुष पहाड़ लगभग तीन तरफ सरोवरसे घिरा हुआ है। इन दो पहाड़ोंकी प्रेम-गोष्ठी कवियोंने सुनी है और अपने काव्योंमें अमर कर दी है। लैला और मजनू तो आखिर मनुष्य थे। लेकिन ये तो विशालकाय पर्वत-युगल हैं। इनका जीवन लाखों वर्षोंका है। इनका प्रेम संवाद भी इतना ही भव्य होना चाहिये।

सभी यात्री आंखें गड़ा-गड़ा कर मारीमो देखनेकी कोशिशमें व्यस्त थे। मैंने सोचा कि इस अध्रुव (अनिश्चित वस्तु) के पीछे समय खराब करना बेकार है। इतना काव्य सरोवरके रूपमें और उसके भाई-बन्धु पहाड़ोंके रूपमें स्थिरतासे फैला हुआ है, उसकी क्यों उपेक्षा करें? जहाजमें बैठ कर हम धीरे-धीरे उस पार गये। वहां थोड़ी देर ठहर कर आसपासकी वनश्री निहारी, एक छोटे-से टापूकी प्रदक्षिणा की और वापस लौटे। एक ओर सरोवरके बढ़े हुए पानीको मार्ग देनेके लिए एक परिवाह बनाया हुआ है। दूसरी ओर एक नदी इस सरोवरमें जन्म लेकर दूसरे सरोवरमें जा गिरती है और वहां बिना ठहरे रास्ता बनाती हुई समुद्रमें जा मिलती है। यहांके जंगलोंमें जो रीछ होते हैं वे सब तैरनेमें कुशल होते हैं। वे कभी-कभी अपनी मनचाही मछलियां खानेके लिए पानीमें उतरते भी हैं। हमारे जहाज ने लौटते हुए जब सीटी दी तब आसपासकी पहाड़ियोंने भी स्वागतम्-स्वागतम्की प्रतिध्वनि की। ये पहाड़ियां न तो संस्कृत जानती हैं और न उन्हें जापानी भाषा सीखनेकी ही परवाह है। इनकी भाषा तो प्रकृतिके पीछे पागल लोग ही समझते हैं। लेकिन दूसरोंको सिखानेकी उन्हें सख्त मनाही है!

अपनी और सरोवरकी प्रतिष्ठाको शोभा देनेवाली धीर-गम्भीर गतिसे हमारा जहाज चल रहा था। इतनेमें यन्त्रसे चलनेवाली एक छोटी-सी नाव अमरीकी निर्लज्जतासे पानी उड़ाती हुई हमसे आगे दौड़ गई। इतने वेगसे पानी काटनेमें एक तरहका उन्माद तो होता है लेकिन उसमें जीवनका काव्य जरा भी नहीं मिलता। "ये निकले और ये पहुंचे।" वापस लौटे और पलक मारते ही मूल स्थान पर आ धमके! इसमें मजा ही क्या आया?

सरोवरमें जो टापू थे उन पर खड़े रहने लायक भी समतल जमीन नहीं थी। जहां देखो वहीं पत्थरोंके ढेर और उनके बीच बढ़े हुए झाड़ोंका घना जंगल। कितने ही पेड़ोंके तनों पर लाल रंगके ठप्पे लगे हुए थे। मनुष्यने किसलिए यह तकलीफ की होगी यह कोई बता न सका।

पानीका विस्तार यानी शीतल शांति, प्रसन्नता और पावनता। मौजी और विलासी मनुष्य भी सरोवरकी पवित्रताको अधिक नहीं बिगाड़ सकता।

खुशीरो नदीका यहीं कहींसे उद्गम होता है और वह दक्षिणकी ओर सौ मील की यात्रा करके अपने आपको सागरकी गोदमें अर्पण कर देती है।

मनमें विचार आया कि जहाजमें बैठे हुए हम सब एक ही उद्देश्यसे इकट्ठे हुए हैं। फिर भी प्रत्येकका जीवन-प्रवाह भिन्न-भिन्न है। सरोवरकी शोभा देख कर सबकी आंखोंमें एक-सी प्रसन्नता छलक रही है, पर क्या हर आदमीके दिमागमें एक ही विचार चलता होगा? जैसे मैं अपने पुराने अनुभव ताजे कर रहा हूं क्या वैसे ही प्रत्येक व्यक्ति कर रहा होगा? इन सबमें कितनी विविधता होगी! इतने लोगोंके जीवनमें केवल इस घंटे-सवा घंटेकी जीवनानुभूति समान है। इसे छोड़ कर हम सबमें और क्या समानता हो सकती है? हमारी ही बात लें। मैं इस आकनको देख कर पहले देखे हुए देश-विदेशके अनेक सरोवरोंके साथ इसकी तुलना कर रहा हूं। मंजु अपने देखे हुए सरोवरको याद कर रही है और रेवतीको गोवा-की खाड़ीके मोड़में किए हुए नौका-विहारकी याद आ रही है। इस तरह आकनकोके आनन्दकी प्रत्येककी आवृत्ति भिन्न-भिन्न है। हम तीन तो एक भारतके ही रहने-वाले हैं। हमारे जीवनानंदमें अमुक साम्य भी होगा। पर इन जापानियोंको तो न मालूम कैसा आनन्द आ रहा होगा। इन सरोवरोंके विषयमें अपने कवियोंके रचे हुए स्तोत्र गा कर वे भावना-समृद्ध होते होंगे—जिस भावनाकी दुनिया मेरे लिए अनजान है और शायद सदाके लिए अनजान ही रहनेवाली है!

कितनी तरहके लोग प्रतिवर्ष यहां आ कर आनन्द प्राप्त करते हैं? इस सरो-वरको उनके विषयमें क्या लगता होगा?

बनारसमें असंख्य यात्री सैकड़ों वर्षोंसे आते हैं और जाते हैं। बनारसकी पवित्र भूमिको, गंगा माताके प्रवाहको और प्रवाह तक स्नानलोलुप यात्रियोंको लानेवाले गंगाके अनेकानेक घाटोंको क्या इन सबका स्मरण रहता होगा? एक साधुसे पूछने पर उसने कहा, "यहांके रास्तों पर घोड़ागाड़ी अथवा टमटम चला-कर आजीविका प्राप्त करनेवाले गाड़ीवालोंको यात्रियोंके बारेमें जितना लगता होगा गंगा माताको उतनी भावना भी आपके विषयमें नहीं उठती होगी।"

मैंने कहा, "साधु महाराज! जब आपने गंगाको माता कहा तभी आपने अपनी बातका खंडन कर दिया। माताके लिए तो बच्चा एक हो या असंख्य वे सब समान हैं। उसकी तुलना बाजारू गाड़ीवालेके साथ नहीं की जा सकती।"

तब क्या इस सरोवरको, यहां आनेवाले लहरी और गम्भीर, मस्त और दुःखी थके हुए और उत्साही, इन तमाम यात्रियोंका स्मरण रहता होगा? सरोवरको भले ही स्मरण न रहे, किसीको तो होना ही चाहिये। ईश्वरकी एकाध विभूति तो सर्व-साक्षी होगी ही। फिर यहाके लिए ऐसी विभूति यह सरोवर ही क्यों न हो। सरो-वरने जरा मुस्करा कर कहा, "यह काम सर्व-पिता आकाशका है।" मैंने आकाश-की ओर देखा। वहां न तो बादलोंकी खास रचना दिखाई दी न निखरा हुआ सूर्य-

प्रकाश। रेवतीने मेरा ध्यान खींचा कि पश्चिमकी ओर फटे हुए बादलोंमेंसे सूर्य-प्रकाशका विपुल प्रपात चमकीली वर्षाका दृश्य प्रकट कर रहा है। बीच-बीचमें जापानी संगीत अपनी ध्वनिकी गुंजारसे हमें आनन्दविभोर कर रहा था। लोग मारीमोकी गेंद न देख पानेकी बातें कर रहे थे, पर हम तो आकनकोकी ही यादमें मग्न थे।

हमने इस आकनकोका दर्शन चौबीस घंटेसे भी कम किया होगा। और जहाज-में बैठ कर नजरके जोरसे कल्पनाके जालमें जिस आनन्दको हमने पकड़ा उसमें अधिक-से-अधिक सवा घंटा गया होगा। लेकिन आकनकोकी याद तो जन्म भर रहेगी। जब कभी वह जागृत होगी उस समय एक मीठी अस्वस्थताका अनुभव होगा। लेकिन अन्तमें प्रकृतिके साथ ऐक्यसे उत्पन्न हुई आनन्ददायी शांति ही स्थायी रहेगी।

शामको देरसे मैंने आयनु लोगोंकी बस्ती देखनेका अवसर ढूंढ़ निकाला। उसके लिए मुख्य रास्ता छोड़ कर एक पगडंडीसे जंगलमें जरा भीतर जाना था। आयनु लोगोंके जीवनकी खोज-खबर लेनेका उत्साह रेवती व मंजुमें नहीं था। उनको अंधेरेमें ऊबड़-खावड़ रास्तेमें ले जाना मुझे पसन्द भी नहीं था। इसलिए होटलके पासकी एक दुकानकी चीजें देखने-खरीदनेके लिए उन्हें छोड़ कर ईमाई-सान और मैं आयनु लोगोंकी खोजमें निकले।

इनकी बस्तीके बीचों-बीच एक बड़ी झोंपड़ी थी। उसमें सारे गांवके आयनु लोग पूजा आदिके लिए इकट्ठे होते हैं। हमने वहां जा कर पुरोहित जैसे लगने-वाले एक सज्जनको अपना उद्देश्य बताया। वे उत्तरकी तरफकी जापानी भाषा जानते थे। यद्यपि आपसमें वे आयनु भाषा ही बोलते थे।

झोंपड़ीके बीचोंबीचमें एक चौकोर गड्ढा था। यह एक बुझी हुई धूनी थी। झोंपड़ीके एक किनारे घासके बनाये हुए एक विशेष प्रकारके चाबुक रखे हुए थे। ये इन लोगोंके देवता थे। झोंपड़ीके पीछेकी ओर खिड़की-जैसी एक खुली जगह थी। देवताओंके लिए नैवेद्य मुख्य दरवाजेसे भीतर नहीं लाया जाता; वह इस खिड़कीनुमा रास्तेसे ही भीतर लिया जाता है।

हमारा उद्देश्य मालूम होने पर पुरोहितजीने सारी बस्तीमें खबर की। फिर तो बहुतसे लोग हमें झोंपड़ीमें देखने आये। अपना कुतूहल पूरा होने पर वे लौट जाते थे। काफी राह देखनेके बाद कुछ स्त्री-पुरुष एक जगह जमा हुए। इनमेंसे कई स्त्रियोंको तो हमने दुकानों पर बैठ कर लकड़ीके रीछ आदि चीजें बेचते हुए देखा था। इन्हें देखनेके कौतूहलसे आये हुए यात्रियोंके आनन्दके लिए ये लोग दुकानों पर और नाचते वक्त पुरानी आयनु ढंगकी पोशाक ही पहनते हैं। इन कपड़ों परका कसीदा-काम इस कौमकी विशेषता है। घासकी बनी हुई एक डोरी माथेसे पीछे तक बांध कर ये लोग अपनी शोभा कुछ बढ़ा लेते हैं। नाच दिखानेकी

उनकी खास इच्छा नहीं थी। मैं भारतसे आया हूं, इस दलीलका उन पर क्या असर हो सकता था! लेकिन ईमाईसानने उन्हें समझा ही लिया। फिर तो उन्होंने दो-तीन तरहके नाच दिखाये। मैं वंश-शास्त्रकी दृष्टिसे उनके नाक, कान, आंखें, बाल और गालोंकी हड्डियोंको बड़े ध्यानसे देख रहा था।

पुरानी पीढ़ीके लोग मुंहके आसपास और ऊपर-नीचेके होठ नीले रंगमे गुदवा लेते हैं। हमारी अपनी अभिरुचिके अनुसार यह सब बड़ा भद्दा दिखाई देता है। अच्छा हुआ कि नृत्यमें भाग लेनेवाले किसी भी स्त्री-पुरुषने इस तरहके गोदने नहीं गुदवाये थे। उनके बीच कई दशाब्दियों तक रहे हुए एक मिशनरी रेवरण्ड वेचलर द्वारा लिखी हुई 'Ainu Life and Lore' नामक पुस्तक मैंने १९५४ में खरीदी थी। उसमें ऐसे गोदनोंके चित्र दिये हुए थे। यह रिवाज अभी लोप नही हुआ है, यह सिद्ध करनेके लिए ही मानो दूसरे दिन जो एक-दो आयनु मैंने देखे उनके नाकके नीचेका सारा मुंह नीला और काला दिखाई दे रहा था। नाचनेवाले लोगोंमें कइयों के मुंह बिलकुल मध्य-एशियाके लोगोंसे मिलते-जुलते थे। कइयोंके चेहरोंका रंग तो विलकुल गाजर जैसा था और कई लगभग जापानी जैसे लगते थे।

मैं जानता था कि यह जाति धीरे-धीरे निर्वंश होती जा रही है। इसीलिए अब ये जापानी बच्चोंको गोद लेकर उन्हें आयनु भाषा और रिवाज सिखा रहे हैं। जापानी लोगोंके साथ विवाह करनेमें दोनों पक्षोंको कोई खास आपत्ति नहीं है। इतने पर भी इस जातिकी विशेषता अब तक टिकी हुई है। जंगलमें जा कर रीछके बच्चोंको पकड़ कर उन्हें सिखानेमें ये लोग होशियार हैं। इन लोगोंका नाच देखनेके बाद हमने उन्हें एक हजार येन दे कर सन्तुष्ट किया। एक हजार येन यानी लगभग तेरह-चौदह रुपये। नृत्य पूरा होने पर वे सब लोग चले गये। फिर उनके नेता पुरोहितजीके साथ मैंने थोड़ा वार्तालाप किया। उनकी धार्मिक मान्यताएं, उनकी पूजाकी विधि और उनके विवाह-शादीके नियम आदिके बारेमें मैंने मुख्य-मुख्य सवाल पूछे। मैंने Ainu Life and Lore पुस्तक हाल ही में फिरसे पढ़ी थी इस कारण बहुत कुछ तो जानता था। फिर भी पूछ कर निश्चय कर लेना अच्छा है इस हेतुसे मैंने ये सवाल पूछे थे। पुरोहितजीने कहा कि आप पूछते हैं वैसे खास कड़े नियम अथवा बन्धन हमारे यहां नहीं हैं। लेकिन इस तरहके कुछ रिवाज तो जरूर हैं। ये रिवाज कोई तोड़े तो उसके लिए समाजकी ओरसे कोई सजा नहीं होती, बल्कि नापसन्दगी भी जाहिर नहीं की जाती। मैंने देखा कि यह जाति अधिकतर अलिप्त रहनेवाली है। फिर भी जापानके रीति-रिवाजका असर इस पर पड़ता जा रहा है।

इस जातिके विषयमें पहले मुझे जो चिन्ता हो रही थी वह अब कम हुई। मालूम होता है कि यह जाति एक दो पीढ़ीके अन्दर ही जापानी प्रजामें घुल-मिल जायगी। यदि मेरे जैसे यात्री कुतूहलसे आयनु जीवन और उनके प्राचीन रीति-रिवाजोंकी खोजमें यहां न आते और ये रिवाज कुतूहल-तृप्ति व कमाईका साधन

न बनते तो यह मिल जानेकी अथवा निमज्जनकी क्रिया कभी की पूरी हो गयी होती। यात्रियोंके कुतूहलका प्रभाव इन लोगों पर अच्छा नहीं होता, यह तो स्पष्ट था। हमारे यहांकी कई पिछड़ी हुई जातियोंके लोग 'साब पैसा दो, बख्शिश दो, कह कर जैसे गोरोंके पीछे पड़ते थे; बिलकुल वैसा तो नहीं लेकिन उससे मिलता-जुलता असर यहां भी स्पष्ट दिखाई दे रहा था। अब तो बहुत-से आयनु लोग शहरोंमें जाते हैं, मेहनत-मजूरी करते हैं और उद्योग-हुनर भी सीखते हैं।

आखिर आयनु जातिके विषयमें मेरा चिर-संचित कुतूहल तृप्त हुआ। ऐसा लगता था कि मानो सिरका एक बोझ हलका हुआ। सच पूछो तो इस बोझका कोई अर्थ नहीं था। अपना मजाक मैं खुद कर सकता था और कह सकता था : "मियां दुबले क्यों? तो कहने लगे कि शहरके अंदेशेसे!"

रातको बड़े आराममें सोये। दूसरे दिन दस बजे तक इधर-उधर चक्कर लगाये, दुकानोंमें सजायी हुई सुन्दर-सुन्दर चीजें देखी-भाली और आगेकी यात्राके बारेमें कुछ कल्पनाएं कीं। इसके बादकी यात्रामें ईमाईसानने स्वतंत्र मोटर किराये पर लेनेके बदले बसमें बैठ कर जाना ही पसन्द किया। मोटरके लिए रास्ता भी अच्छा नहीं था और बस बड़ी ही सुविधाजनक थी। इस सुन्दर यात्राका वर्णन इसके बादके पत्रके लिए सुरक्षित रख रहा हूं।

१२. मात्स्यु और खुशारो

हाकोदाते,
३१-७-'५७

आकनको जैसे ही दूसरे दो सुन्दर सरोवर देखनेका इरादा करके हमने ता० २८ को सुबह दस बजे आकनको छोड़ा। शाम तक हमें कवायु पहुंचना था। सीधे रास्तेसे जाते तो मात्स्यु सरोवर नहीं देख पाते। इसलिए लम्बा रास्ता पकड़ा और बस चलते ही रहे। यहांका प्रदेश काफी ऊंचाई पर है। पहाड़ तो यहां जितने चाहो उतने हैं और एकसे एक ऊंचे भी। वनश्रीका सबसे ज्यादा वैभव इसी जगह देखनेको मिलता है। लेकिन दिनभरके सफरमें न तो कोई पक्षी देखनेको मिला और न कोई रीछ अथवा हिरन! इस चीजके लिए अफसोस नहीं करेंगे, यह पहले ही तय कर लिया था। फिर भी आश्चर्यकी बात तो यह थी ही कि आखिर सारे पशु-पक्षी गये कहां? कोई बता नहीं सका।

बसमें बैठनेके बाद भी कुछ दूर तक आकनको सरोवर थोड़ा बहुत दिखाई दे रहा था। कहीं-कहीं बड़े-बड़े पेड़ोंके कारण सरोवरके दर्शन बराबर नहीं हो पाते थे। जब सरोवर ओझल होनेवाला ही था तब मैंने उसे कृतज्ञ आंखोंसे नमस्कार किया।

'पुनरागमनाय च' वाला मन्त्र प्रामाणिक तौर पर बोलनेकी हिम्मत नहीं हुई। जिंदगीके उत्तरार्द्धमें पूर्वसे भी पूर्व और उत्तरसे भी उत्तरकी ओर यहां तक मैं एक बार आ सका यही बड़ा अहोभाग्य है। आज भी हम कुछ और ज्यादा उत्तरमें ही जा रहे थे।

थोड़ा-सा पूर्वकी ओर जाने पर रास्तेसे ही मात्स्यु सरोवर दिखाई दे सकता था। इसलिए बड़े-बड़े पहाड़ोंको लांघ कर और घने-से-घने जंगलोंको पार कर टेशी-कांगा शहरके उस पार हम उस सरोवरकी खोजमें निकले। जिस स्थानसे सरोवर-का दृश्य सबसे सुन्दर दिखाई दे सकता था वहां जा कर हम सब बसमें नीचे उतरे लेकिन बड़ी ही निराशा हुई। चारों ओर कुहरेका क्षीरसागर फैला हुआ था। न आकाश दिखाई दे रहा था न पृथ्वी। फिर जंगल या सरोवर तो क्या दिखाई देते! गीतामें कहा है न कि सब स्थान जल-मग्न होने पर कुएं, गड्ढे और तालाबो का कोई भिन्न अस्तित्व नहीं रहता। बिलकुल वैसी ही स्थिति यहां दिखाई दे रही थी। बीच-बीचमें कुहरा कुछ हलका हो कर सरोवरकी सलवटोंके जैसी लहरोंका दर्शन करा देता था। लेकिन उससे इस बातका विषाद मनमें और भी ज्यादा बढ़ जाता था कि हम इतने सुन्दर दृश्यसे वंचित रहे। उस पर तुर्रा यह कि एक जापानी बहनने इस मात्स्यु सरोवरके दस-बीस रंगीन पोस्टकार्ड भी दिखाये! एक-से एक बढ़िया दृश्य! विस्तृत दृश्य एक साथ दिखानेके लिए उसमें एक-दो जुड़वां पोस्ट-कार्ड भी थे। डाकखानेके ढंगके नहीं, लेकिन लग्न-पत्रिकाके जैसे एक कोने पर जुड़े हुए। इन चित्रोंको देख कर जी और भी कुढ़ा और ऐसा लगा कि इससे तो ये सुन्दर फोटो न देखने वही अच्छा था! अज्ञानं परमं सुखम्! चित्र दिखानेवाली उस जापानी बहनको हमने धन्यवाद दिया और जो देखनेको नहीं मिला उसका दुःख करनेके बदले जो मिलनेवाला है उसकी कल्पना करनेमें ही अक्लमन्दी और सुख है, यह विचार करके हम पश्चिमकी ओर प्रवृत्त हुए। और करीब सवा तीन बजे कवायु पहुंचे।

रास्तेमें हमने एक ऊंचे पहाड़का टेढ़ा-मेढ़ा और और फटा हुआ द्रोण (क्रेटर) देखा। जंगलकी इस हरियालीके बीच इतना ही भाग वनस्पतिविहीन देख कर मनमें कुछ डर और दर्द पैदा होता था। कुछ आगे चल कर हमने दिशा बदली। वहां तो सफेद धुएंके बादल ऊपर जाते हुए दिखाई दिये। गंधककी गंध भी गजबकी थी। गन्धक शब्द गन्धसे ही आया है। इसलिए उसकी उग्रता कितनी थी यह कहने की जरूरत नहीं है।

जैसे ही हमारी बस ठहरी, यात्री कैमरा ले कर दौड़े। कई तो धुएंकी तरफ ही चढ़ने लगे और सब तरफसे फोटो लेने लगे। हम भी उनके पीछे-पीछे जाते, लेकिन चि० मंजुकी आंखकी हालत मैं जानता था, इसलिए मैंने उसे जानेसे मना किया। आज्ञा कठोर तो थी पर आवश्यक थी। उसकी निराशा जरा सुसह्य करनेके लिए

मैंने भी न जाना ही ठीक समझा। चि० रेवतीको भी रोक सकता था लेकिन उसका मन था। वह एक अनोखा अनुभव प्राप्त कर सके तो यह अच्छा ही है, यह सोच कर मैंने उसे तो जाने दिया। मंजुको मना किया था इससे उसने मान लिया था कि उसे भी इजाजत नहीं मिलेगी। अनपेक्षित इजाजत मिलते ही वह दौड़ पड़ी। गंधकके धुएंके बादलोंने उसका बड़े उत्साहसे स्वागत किया। उसे भी धुएंकी घबराहटके अनुभवका संतोष मिला। ऐसी जगह कब विस्फोट हो जाए यह कहा नहीं जा सकता। लेकिन बिना जोखिम उठाये जिन्दगीका आनन्द कैसे मिल सकता है?

तुम्हें याद होगा कि अफ्रीकाके एक अभयारण्यमें हिप्पोके झुण्डको पानीमें लोट-पोट होते हुए देखनेके लिए हम उस डबरेमें उतरे थे। यदि हिप्पो हमला कर दे तो तुम दौड कर कगार पर चढ़ नहीं सकोगी, इस डरसे मैंने पहले तो तुम्हें जानेमें मना किया था। लेकिन फिर मुझे ही लगा कि इस तरह जरा भी जोखिम न उठायें तो कैसे काम चल सकता है? इतनेमें कमलनयनने भी कहा: 'काकासाहब, सरोज बहनको भी [illegible] ले लें।' फिर हम किनारे तक गये और उन अहदी जानवरोंको हमने जलोत्सव मनाते हुए जी भर कर देखा था।

वहां यदि मैं रेवतीके साथ चला जाता तो इतनी चिंता नहीं होती। मनमें विचार आया कि यदि विस्फोट हो और उसमें रेवतीको कुछ हो जाए तो मुझे उसके बगैर स्वदेश लौटनेमें कैसा लगेगा? पर मुझे विश्वास है कि चाहे जितना बुरा लगता, फिर भी उसे जाने दिया इसके लिए मुझे अफसोस नहीं होता। जातिके रूपमें हम लोगोंको खतरा उठानेकी आदत डालनी ही चाहिए।

तीन साल पहले जब हम जापानके दक्षिणमें कुमामोतो गये थे, तब वहांसे आसोका ज्वालामुखी देखने गये थे। उसकी याद तुम्हें भी होगी। तब दुनियाका सबसे बड़ा जलता हुआ द्रोण देखनेका मौका मैं न खो दूं इस ख्यालसे तुमने मुझे द्रोणके मुंह तक जाने दिया था। यह बात भी मुझे यहां स्मरण हो आई।

अब हम कवायु पहुंच गये। एक सबसे सुन्दर, सुघड और स्वच्छ होटलमें हमने डेरा डाला और कुचारो अथवा खुशारो देखनेकी उत्कण्ठा बढ़ी। लेकिन हमारे मेज-बान व मार्गदर्शक—स्वामी ईमाईसान तो बरफ जैसे ठंडे दिखाई दिये। "देर हो गई है। सरोवर दूर है।" आदि अनेक दलीलें उन्होंने दी। सरोवर देखनेकी मेरी उत्कण्ठा तीव्र थी, लेकिन ईमाईसानकी मरजी न हो तो मेहमानोंको मेजबानकी असुविधाका विचार करना ही चाहिये, इस सिद्धान्तके अनुसार मैं ढीला पड़ गया। लेकिन ईश्वरने चि० मंजुको उत्साहके साथ हिम्मत भी दी। उसे आगे करके मैं भी दृढ़ हो गया। तब ईमाईसानको एक टैक्सी मंगानी ही पड़ी। सरोवर कुछ दूर तो था। हम टेढ़ा-मेढ़ा रास्ता पार करके सरोवरके किनारे पहुंचे। देखते ही मनमें खयाल आया कि यह पानीका सरोवर नहीं है; यहां तो विशुद्ध काव्यमय आकर्षण ही छलक रहा है! फिर अधिक कौन सोचता? तुरन्त ही हमने एक नाव

मंगानेका प्रस्ताव किया। यहां हमारी एक परीक्षा और होनेवाली थी। आकाश घिर आया। शाम हो चली थी। भरे हुए बादल पीछेके पहाड़ पर रात्रिके विश्रामके लिए उतरे। दाहिनी ओर दूर पहाड़ पर बारिश होती हुई दिखाई देती थी। एक-दो बूंदें हमारे सिर पर भी पड़ीं! ईमाईसानने कहा—'एक बार चल पड़े तो चालीस मिनटसे पहले वापस नहीं आ सकेंगे। काकासाहब भीगें और बीमार पड़ें तो सारा कार्यक्रम बिगड़ जायेगा। इस बड़े सरोवरमें तूफान भी आते हैं। मेरे जैसा मजबूत आदमी तो तैर कर किनारे पहुंच भी सकता है, लेकिन आप लोगोंका क्या होगा?' उनकी बात मान कर मैंने मंजुसे कहा: 'तब रहने दो न! लेकिन जब इसका उस पर कोई भी असर नहीं हुआ, तब आखिरी निर्णय मैंने अपने हाथमें ले कर कहा: 'चिंताकी कोई बात नहीं है। भीगेंगे तो घर जा कर कपड़े सुखा लेंगे। लेकिन इस सरोवरके उस पार तो जाना ही है।'

फिर मैंने बताया कि एक समय मैं भी अच्छा तैराक था, यद्यपि इस बातमें अब कोई अर्थ नहीं था। जवानीमें खूब तैर सकता था, इसलिए सरोवर मेरी दया थोड़े ही खानेवाला था! लहरें तो कहतीं कि हम दया खानेकी आदी नहीं है, हम तो मनुष्योंको भी खा जाती हैं। खैर, आखिर बेचारे ईमाईसान भी मान गये! तुरन्त ही पांच-छह लोग बैठ सकें इतनी बड़ी नावका इंजिन धक्-धक् करने लगा और हम चल पड़े। इस मौके पर यदि हम हार जाते तो सचमुच जीवनके आनन्दका एक स्वर्ण-अवसर खो बैठते।

सरोवरका पानी गहरा नीला और हरा था। ऐसे रंगको जेड (Jade) की उपमा दी जाती है। मैंने जेडके कीमती पत्थर कोई कम नहीं देखे हैं। उन सख्त पत्थरोंमेंसे कारीगरोंके बनाये हुए छोटे-छोटे बर्तन और मूर्तियां भी मैंने बहुत देखी हैं। जेडकी गहरी और हल्की छटाओंको मैं जानता था। फिर भी सरोवरके इस पानीके रंगको जेडकी उपमा देनेके लिए आज मैं तैयार नहीं होता।

देखते-ही-देखते हमारी नाव उत्तरकी तरफ बढ़ने लगी। आगे बाईं ओर नाकानोझीमाका बड़ा द्वीप दिखाई दिया। ऐसा लगता था मानो कोई पुराण-पुरुष तपस्या कर रहा हो। नाकानोझीमाका अर्थ होता है बीचका द्वीप। दक्षिणकी हवा थी। जब तक हमारी नौकाने गति नहीं पकड़ी तब तक उसकी ध्वजा फड़-फड़ करती हुई हमारे आगे-आगे चल रही थी। ऐसा लगता था मानो इंजिन काम नहीं कर रहा है, बल्कि हवा ही हमें धकेल रही है। थोड़ी देर बाद जब नावने गति पकड़ी तब पवनकी गति और नावके इंजिनकी गति दोनों एकसमान हो गई। तब ध्वजा ढीली हो कर नीचे लटकने लगी मानो हवा हो ही नहीं!

एक बार बम्बईसे रत्नागिरि जाते हुए हमारा जहाज तेज हवामें हवाकी ही दिशामें व उसीके वेगसे चल रहा था। इसलिए ऐसा लगता था मानो हवा थी ही नहीं। डेक पर खड़े-खड़े हम लोगोंको लग रहा था कि हम बिलकुल शान्त वाता-

वरणमें ही चल रहे हैं। लेकिन जब बन्दरगाह आया व जहाज ठहरा तब हवाके जोरसे कहीं उड़ न जाएं ऐसा डर लगने लगा।

ध्वजा क्यों ढीली पड़ी इसके बारेमें मैं साथकी बहनोंको समझा रहा था कि इतनेमें हवाको शायद दक्षिण-पश्चिमकी ओरसे गति मिली और हमारी ध्वजाकी पूंछ पूर्वकी ओर फड़फड़ाने लगी। जान कर लोग ही इन सारी खूबियोंका आनन्द उठा सकते हैं।

अब हम आधे रास्ते आ पहुंचे। पानीमें खुशीकी लहरें उठ रही थीं। उसका रंग कुछ ज्यादा गहरा होने लगा। जैसे-जैसे वह चमकता वैसे-वैसे उसका रंग और भी चैतन्यमय दिखाई देता।

काश्मीरमें झेलम नदीके उद्गमके पासके तालाबका पानी गहरा नीला है। उसकी शोभा कुछ और है। और आजके इस सरोवरके जेड रंगके पानीकी शोभा कुछ और है। वहां लगता था कि शायद किसीने तालाबमें नीले कपड़े धोये हैं या किसी रंगरेजने नीला रंग घोल दिया है। इस खुशारो सरोवरमें कृत्रिमताका शक जरा भी पैदा नहीं हो सकता। हम जैसे-जैसे आगे बढ़े वैसे-वैसे सामनेके पहाड़के जंगलके ऊंचे-ऊंचे पेड़ अधिक स्पष्ट दिखाई देने लगे। उनके बीच कुछ चट्टानें खिन्नतासे हृदयाविष्करण कर रही थी। लेकिन उनकी भाषा कौन समझता? पाषाणकी भाषा जापानी भी नही जानते और दो हजार वर्षसे इस ओर बसे हुए आयनु लोग भी नही जानते। फिर हम तो इतनी दूर भारतसे यहां आये हुए थे!

पहाड़ी प्रदेश महाराष्ट्रमें जन्मा हुआ होनेके कारण मै पहाड़ी पत्थरोंको आसानीसे पहचान लेता हूं। उनका भाव भी कुछ समझ लेता हूं। लेकिन उसे व्यक्त करनेकी मुझे मनाही है! मैंने अपनी जुड़वा दूरबीन एक ओर रख दी और तब मैं उस पहाड़ी खोहके साथ एकदिल हो सका। अन्तमें मैंने उसे हृदयसे नमस्कार किया!

बिल्कुल नजदीक जाने पर हमने देखा कि मनुष्यने सरोवरके चारों ओर एक रास्ता बनानेका सोचा है। इसे देख कर मुझे आनन्द भी हुआ और दुःख भी। अब इस सरोवरके एकान्तका हनन होगा, इसके चारों ओर मोटरें दौड़ेंगी, कैमरे कई ओरसे बतखोंकी तरह क्लिक-क्लिक करेंगे और प्रकृतिकी इस जलदेवी-को मनुष्यकी सेवा करनेवाली दासी बना देंगे! यह विषादका कारण था। आनन्द इसलिए था कि ऐसा करने पर भी मनुष्य-जातिको प्रकृति माताका अधिकसे अधिक दर्शन हो सकेगा, मनुष्यके जीवनकी कृत्रिमता कुछ कम होगी और किसी दिन उसे जीवन-धर्मकी दीक्षा भी मिलेगी। आखिर जहां देखो वहीं प्रकृतिकी जो छटा फैली हुई है, उसका कुछ तो ऐसा उपयोग होना ही चाहिए। प्रकृतिके साथ तादात्म्य अनुभव करनेके लिए वैराग्य बढ़ानेकी जरूरत नही है। तटस्थता प्राप्त होना ही काफ़ी है। बल्कि यही सच्ची साधना है।

हमारे देखे हुए तीनों सरोवरोंमेंसे यह सरोवर सबसे बड़ा है और मेरे खयाल-से सबसे गहरा भी। विचार आया कि इसके बीचके नाकाझीमा टापू पर क्या किसी साधुने तपस्या नहीं की होगी? प्रकृतिका इतिहास करीब एक लाख सालका तो है ही। इतने वर्षोंमें क्या एक भी आत्मवीर इस टापूमें नहीं पहुंचा होगा? पानीके इतने स्वच्छ और शीतल विस्तारमे विश्व-चैतन्यको अपनी छटाके साथ प्रकट होते देख कर किसी-न-किसी साधकको तो यहां अन्तर्मुख होनेकी प्रेरणा जरूर मिली होगी। उमने यहां कृतज्ञताके साथ इस पानीमें डुबकी लगा कर अद्वैतानन्दका अनुभव भी किया होगा।

वापस लौटनेसे पहले हम बाईं ओर यानी पश्चिमकी तरफ आगे बढ़े। अब हवा हमारी नावके बाईं ओर टकराने लगी। नाव डोलने लगी। साथ ही हमारे हृदय भी भीतर संगृहीत आनन्दसे डोलने लगे। तूफान तो नहीं था, लेकिन उमकी याद आ रही थी। वापस लौटते समय जरूर हवामें कुछ तूफानके आसार दिखाई देने लगे। अब हमारी ध्वजा जिस दिशामें फड़फड़ा रही थी उसी दिशामें हमारी नाव भी जा रही थी, इस कारण उनका परस्पर विरोध मिट गया। फलतः ध्वजा-का फड़फड़ाना तो कम हुआ, लेकिन उसका बदला हवाके साथ खेल करनेवाली लहरोंकी फुहारोंने लिया। लहरें नावकी नाक पर टकराती थी और उसमेंसे निकलते हुए पानीके उदार छींटे हमारा आश्रय ढूंढते थे। हम लोगोंमें मैं ही कुछ सुरक्षित था। मेरे सामने ईमाईसान बैठे थे और वे जापानी बहन भी थी। दाईं ओर रेवती थी और बाईं ओर नौका-विहारका आग्रह करनेवाली मंजु थी। पानीकी बूंदें उसके प्रति खास पक्षपात दिखावें तो इसमें आश्चर्य ही क्या!

यह छोटा-सा तूफान हमारे नौका-विहारका आनन्द बढ़ा रहा था। जोखिम तो कुछ थी ही नहीं, फिर भी मनमें तरह-तरहके विचार और पाप-शंकाएं उठने लगी। जोरकी आंधी आ जाय तो? लहरें दुगुने वेगसे उछलने लगें तो? और यदि सचमुच यही जल-समाधि लेनेका हम सबके भाग्यमें लिखा हो, तो डूबते-डूबते हर आदमीके मनमें कैसे विचार आयेंगे?

मुझे अपने बारेमें तो विश्वास था कि मैं अकेला होता तो तूफानके साथ अद्वैतानन्दका ही अनुभव करता। तुम साथमें होती तो भी इसमें फर्क नहीं पड़ता। लेकिन जब दूसरे साथी साथमें होते हैं तब उनका विचार पहले आता है। कल्पना जाग्रत हुई और दोनों बहनोंके दो-दो बच्चे नजरके सामने घूमने लगे। चारों बच्चे मानो मुझसे पूछ रहे थे : 'आपको किसने कहा था कि ऐसे पागलपनको बढ़ावा दें? आपने ईमाईसानका कहना क्यों नहीं माना? हमारा विचार भी नहीं किया?'

लेकिन यह तो केवल मेरी कल्पनाका दृश्य था। वह आखिर कहां तक टिकता? सरोवरकी छोटी-छोटी लहरें भी पानीकी बच्चियां ही थीं। वे आनन्द और मौजकी किलकारियां भरने लगी। अशुभकी कल्पना पानीमें डूब गई और

केवल 'जीवन' का तरलानन्द ही तैरने लगा।

जब वापस किनारे पहुंचे तब हमारा जीवन कितना भरा-पूरा-सा लगता था ! केवल पौन घंटेके इस सफरमें इतना अनुभव, इतना आनन्द और इतनी आत्मीयता प्राप्त करके हम सचमुच समृद्ध बन गये थे। दुनियाके प्रति हमारा सद्भाव बढ़ गया था। जो भी मानव दिखाई देता, उसे हम मानो दिलसे भेंटने लगे। और हमें लेनेके लिए आई हुई टैक्सीमें बैठ कर एक गहरे संतोषके साथ मुकाम पर जा पहुंचे।

जीवनके अंतमें भी यदि इसी तरह मुकाम पर पहुंच सके तो समझो कि सच-मुच जीत गये !

जापानमें जा कर एकके बाद एक इन तीनों सरोवरोंको देख सकनेकी आत्म-तृप्तिके साथ हम निद्रादेवीके अधीन हुए। किंतु आजका यह अनुभव तो हमेशा ही जागता रहेगा।

इसके बादकी यात्राका वर्णन दूसरे पत्रमें शुरू करना ही ठीक होगा। इसलिए यहीं 'मुनिशम्' कहता हूं और सरोवरके आनन्दसे भरा हुआ शुभ आशिष भेज रहा हूं।

१३. उत्तर जापानके पहाड़ी प्रदेशमें

हाकोदाते,
३०-७-'५७

जापान आनेसे पहले ही मैंने श्री ईमाईसानको लिख दिया था कि इस बार मैं होटलोंमें रहना नहीं चाहता, मुझे जापानी लोगोंके घरोंमें रह कर उनका जीवन नजदीकसे देखना है। इसमें हमें कुछ असुविधा भी उठानी पड़े तो कोई बात नहीं है। अधिक असुविधा तो हमारे मेजबानोंको ही होगी। हमारे लिए तो आत्मीयता के विकासका आनन्द छोटी-बड़ी सारी असुविधाओंसे अधिक महत्त्वका होगा।

मेरी इस इच्छाके अनुसार टोकियोमें हमें मासुई बन्धुओंके घरमें ठहराया गया था। लेकिन सुदूर होक्कायडोमें ऐसा करना अशक्य था। यह प्रदेश गरम चश्मोंके लिए प्रख्यात है। इसलिए यहां लोग चश्मोंके समीपवर्ती होटलोंमें रहनेके लिए ही जाते हैं। बहुतसे अच्छे-अच्छे जापानी होटलोंमें रहनेके बाद मुझे लगा कि यह अनुभव भी लेने लायक था। होटल चलानेवाले भाई-बहनोंका जापानी शिष्टा-चार हमें जापानी संस्कृतिकी खुशबूका अनुभव कराता है। सपूर्ण घरकी निर्माण-कला, कमरोंकी सुघड़ता व सजावट आदि सब कुछ सूक्ष्मतासे समझने लायक होता है।

एक पौराणिक कथा है कि पाण्डवोंके जमानेमें मयासुर चीनमें जा कर वहांका एक राजप्रासाद उठा लाया था। यानी राजमहल बनानेकी वहांकी कला सीख कर उसने उसे इन्द्रप्रस्थ और हस्तिनापुरमें दाखिल किया—जहां जमीन हो वहां पानी-का भास हो और जहां पानी हो वहां जमीन जैसा लगे, ऐसी करामात उसने कर दिखाई थी। पुराणोंमें वर्णित और विस्मृत वे प्राचीन दिन तो गये। मेरे ख्यालसे तो अब असमके अथवा पश्चिमी हिन्दुस्तानके किसी उत्साही शिल्पीको जापान जा कर उनके घरोंका अध्ययन करना चाहिये और जरूरी हेरफेर करके उस पद्धतिको अपने यहां दाखिल करना चाहिये। असमके कितने ही घरोंमें लकड़ीके चौखटमें घास अथवा बेंतके डंठल जमा कर उनकी दीवारें बनाई जाती हैं। दोनों ओर मिट्टीसे लीप कर सफेदी कर देते हैं तब दीवारें और भी सुन्दर लगने लगती हैं। उन लोगोंको जापानी ढंग अपनानेमें जरा भी दिक्कत नहीं होगी।

केवायुसे (२९-७) सुबह नहा-धो कर निकलते-निकलते दस बज गये। यहांके लोगोंको हमारी पोशाकके बारेमें इतना कुतूहल था कि सब जगह हमारे फोटो लिये जाते थे। इसके अलावा, दो जापानी बहनोंने तो चि० मंजु और रेवतीसे हमारे कपड़े पहनना सीख कर उस पोशाकमें अपने फोटो भी खिंचवाये! मेरी दाढ़ी भी इन लोगोंको बड़ी मजेदार लगती है। हमारे बीच यह एक कहावत ही बन गई है कि 'साड़ीसे और दाढ़ीसे' हम भारतीय हैं यह जापानी लोग आसानीसे पहचान लेते हैं।

आगेका रास्ता भी बहुत सुन्दर था। चढ़ाई तो थी ही। टैक्सीमें बैठ कर धीरे-धीरे पहाड़ चढ़े। पूरे समय खुशारो सरोवरका साथ रहा। नाकाझीमा द्वीप दूर-दूर जाने लगा। दूसरे छोटे-छोटे टापू भी बीच-बीचमें लुकाछिपीका खेल खेलने लगे। जैसे-जैसे ऊपर चढ़ते गये वैसे-वैसे सरोवरका पूरा विस्तार और दूर-दूर पहाड़ों-को मिला कर एक अखण्ड, विशाल और विशालतर दृश्य होता गया। नीचे जो वृक्ष सरोवरके दर्शनमें विघ्नरूप थे, वे ही अब हमारी उन्नति (ऊंचाई) की वजहसे पैरों तले जा रहे थे और सारे प्रदेशकी शोभा बढ़ानेमें उन्होंने मदद की है, इस भावनासे संतुष्ट दिखाई दे रहे थे।

आखिर हम इस प्रदेशके ठीक सिर पर पहुंच गये। हमारे देशमें जब हम किसी पहाड़के ऊपर पहुंचते हैं। तब वहां किसी बड़े पत्थर पर सिंदूर लगा हुआ देखते हैं। चढ़ाई चढ़नेका पुरुषार्थ सफल हुआ इसकी कृतज्ञता व्यक्त करनेके लिए गाड़ीवाले ऐसी जगह नारियल भी फोड़ते हैं। नारियलकी जटाओंका ढेर देख कर लोगोंकी बढ़ती श्रद्धाका अनुमान लगाया जा सकता है।

यहां हम बिहोरोकी चढ़ाई चढ़े तब वहां सबसे ऊंची जगह पर हमने एक चौरस-पत्थरका ऊंचा स्तंभ देखा। उस पर जापानीमें 'बिहोरो घाट' लिखा भी था। यह लिपि चित्र जैसी होनेके कारण पत्थरकी शोभा भी बढ़ाती थी। यहांसे खुशारो

सरोवरका आखिरी और रमणीयतम दर्शन होता था। इस सरोवरकी ओर पीठ करके स्तंभके चारों ओर हम पांचों खड़े हो गये और वहीं मिले एक फोटोग्राफर-से हमने अपना फोटो खिचवाया। बादलोंने भी विचार किया कि इतनी सुन्दर पृथ्वीके ऊपरका आकाश बिलकुल नीला व फीका रहे तो यह बुरी बात होगी। इसलिए बीच-बीचमें सफेद बादल आकाशमें फैल गये और उन्होंने हमारे फोटोकी शोभा बढ़ाई। सचमुच इससे फोटो खिल उठा। उन बादलोंको मैंने कृतज्ञतापूर्वक अनेक धन्यवाद दिये। शायद उनके भारसे ही बादल धीरे-धीरे नीचे झुकने लगे।

बिहोरोकी वह ऊंचाई, वहांसे देखा हुआ सरोवरका दृश्य और उस प्रकृति-सौंदर्यके बीचमें बैठ कर किया हुआ वनभोजन—नाश्ता यह सब आसानीसे नहीं भुलाया जा सकता।

अब हमारी टैक्सीके भाग्यमें धीरे-धीरे उतरना ही था। आसपासके गांवोंके रास्ते, सुन्दर-सुन्दर बाड़ियां, उनमेंसे झांकते हुए रंग-बिरंगे फूल—सब हमारे आनन्दको पूर्णता प्रदान कर रहे थे।

डेढ बजे हम लोग बिहोरो स्टेशन पहुंचे और वहां हाकोदाते जानेवाली ट्रेनका इन्तजार करने लगे। पर हमें अधिक राह नहीं देखनी पड़ी। धूपसे बचनेके लिए हम स्टेशनके पुलकी छाया ढूंढ रहे थे, इतनेमें ही ट्रेन आ पहुंची।

अब हमें होक्कायडोका लगभग सारा द्वीप बेधकर, बिच्छूके डंक-जैसे टेढ़े-मेढ़े दक्षिणी होक्कायडोमें प्रवेश करना था और ठेठ दक्षिणमें हाकोदाते बन्दरगाह तक पहुंचना था। ट्रेनकी इस एक ही यात्रामें हमने होक्कायडो द्वीपका सारा पूर्वी भाग, आंखें थकने और अंधेरा होने तक, जी भर कर देखा। फिर हमने ट्रेनमें ही खाना खाया और आठ-नौ बजे तृतीय श्रेणीके सोनेके डिब्बेमें पहुंच गये। यहां तीन मंजिल-वाले एक कमरेमें हम टिके, जिसमें छह बिस्तर बिछे थे। सप्पोरोसे हमारे साथ आई हुई स्नेही बहन श्रीमती याएको ईवामुरा रास्तेमें ओतारू-स्टेशन पर उतरने-वाली थीं (यह स्थान सप्पोरोके पूर्वोत्तरमें है), इसलिए सोनेसे पहले उन्होंने हमसे विदा ली। उन्होंने हमें सुन्दर-सुन्दर आयनु खिलौने दिये। हमने उनसे कहा कि ये खिलौने हमारे यहांके लोगोंको बहुत पसन्द आयेंगे। लेकिन हमें तो खास उनका सौम्य एवं संस्कारी साथ हमेशा ही याद रहेगा। यात्रामें ये बहन हमारी सुविधाका भी थोड़ा-बहुत ख्याल तो रखती ही थी, लेकिन उनका भक्त-हृदय साधु ईमाई-सानको किसी भी तरहकी तकलीफ न हो इसका पूरी तरहसे ध्यान रखता था।

१४. हाकोदाते

ता० ३० को सुबह छह बजे हम हाकोदाते पहुंचे। स्टेशनसे मुकाम पर पहुचने के लिए काफी लम्बा रास्ता काटना पड़ा। इस तरह हम इस बन्दरगाहका बड़ा भाग सहज ही देख सके। समुद्रके किनारे नावें और जहाज काफी बड़ी संख्यामें खड़े थे। हवामें जहां जाओ वहीं मछलीकी गन्ध फैली हुई थी। गन्धककी गन्ध अधिक उग्र होती है अथवा मछलीकी, यह कहना मुश्किल है। भाग्यसे जहां हमें रहना था वहां यह गन्ध नही पहुंचती थी। हम जहां ठहरे थे वह आधा घर था और आधा होटल। यहां ःमें हर तरहकी सुविधा देनेके लिए गृहपति विशेष प्रयत्नशील थे। इतने लम्बे सफरके बाद आरामकी जरूरत तो थी ही। चि० मंजुने अपनी डायरीमें जो लिखा है, उसके दो वाक्य यहां दे रहा हूं : "आज कोई खास प्रोगाम नहीं था। दोपहरके बाद ही बाहर जाना था। घर अवनिभाईको अथवा और किसीको पत्र लिखनेका मन भी नहीं था। लेकिन श्री काकासाहेबने मुझे और रेवती बहनको लिखनेके लिए आमने-सामने जबरदस्ती बिठा ही दिया। फिर तो कोई चारा ही न था। मैंने पूज्य मातुश्रीको तथा प्रदीपको पत्र लिखे।"

इन दोनोंकी पत्र लिखनेकी स्वतन्त्रतामें बाधा न पहुंचे इसलिए मैं उनके पत्रोंको देखना टालता हूं। लेकिन यात्रामें चौबीस घंटे तरह-तरहके नये अनुभव लेते हुए और आनन्दका आदान-प्रदान करते हुए आत्मीयता इतनी बढ़ जाती है कि उन्हें मिले हुए और उनके लिखे हुए पत्र मुझे दिखाये बिना इनसे रहा ही नही जाता। और मैं तो स्वभावका शिक्षक ठहरा! उनके पत्र पढ़नेके बाद एकाध शब्द सुझाये विना मैं कैसे रह सकता हूं? मंजुको एक अत्यन्त प्रेमालु और अनुभवी सास मिलनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ है। सासने मंजुके दोनों बच्चोंको संभाल कर उसे निश्चित कर दिया है। वह तो उल्टे घर बैठे ही मंजुकी ही हर तरफसे चिन्ता करती है। जापानसे भेजे हुए मंजुके पत्रोंसे उसकी सासको तसल्ली मिलती है। सासके पत्रोंमें निश्चिन्तताके ऐसे उद्‌गार पढ़ कर मंजु बड़ी खुश होती है। मुझे भी संतोष होता है।

रेवतीके दोनों बच्चोंकी जिम्मेदारी उसकी मांने ली है। मांकी मददके लिए रेवतीकी बहन हेमावती भी दिल्ली जा कर रहती है। फिर भला रेवती क्यों चिंता करने लगी? लेकिन बालका पत्र न मिलने पर वह बिलकुल मुरझा जाती है। तब मुझे बालके बचावमें जितनी दलीलें सूझती हैं, उतनी सब उसके सामने रखनी पड़ती हैं। उसे समझता हूं कि बालने तो काफी खत लिखे होंगे, लेकिन डाकखानेकी गफलतमे यदि वे हमें न मिलें तो इसमें उसकी क्या गलती?

खैर। अब मैं अपनी बात कहूं? कलकत्ता और हांगकांगके बाद मुझे तुम्हारा एक भी पत्र नहीं मिला था। जापानमें पैर रखनेके बाद आज पहली बार तुम्हारा

१६ तारीखका पत्र मिला है। बड़ी खुशी हुई। तुम्हारे पत्रमे चि० बाल, दीपक तथा सिद्धार्थके और मंजुके घरके व उसके बच्चोंके समाचार होते ही हैं। इसलिए तुम्हारा पत्र हम तीनोंको एक साथ ही प्रसन्न कर देता है। हमारे तीनोंके अप्रकट आशीर्वाद व धन्यवाद सुगन्धकी तरह तुम्हारी ओर बह रहे हैं।

मंजु और रेवतीको तो मैंने घर पत्र लिखनेको बिठा दिया है। इसलिए आज पहली बार तुम्हें अपने हाथसे पत्र लिख रहा हूं। यह भी मेरे लिए एक आनन्दकी बात है। इसे शायद तुम नहीं समझ सकोगी। अपने हाथसे लिखनेका मेरा आलस्य तुम जानती ही हो। लेकिन इसीलिए जब कभी अपने हाथसे लिख पाता हूं, तब विशेष संतोष होता है। और यहां तो वक्त भी काफी मिला।

हाकोदातेमें और यहां आसपास देखने लायक काफी है। लेकिन हमने इन पाच दिनोंमे इतना अधिक देखा-भाला है कि अब उसमे वृद्धिकी और गुंजायश ही नहीं रह गई है। इस द्वीपमें सप्पोरोके बाद यही बड़ा शहर है। आबादी ढाई लाख के करीब है। इस शहरके उत्तरमें सत्तर मील दूर 'ओनुमा' नामका एक सरोवर है। उसका घरा इक्कीस मीलका है। शोभाकी दृष्टिसे यह सरोवर भी अप्रतिम गिना जाता है। वहां बरफ कम पड़ती है, इस कारण बारहों महीने उसके आसपास घूमनेका आनन्द उठाया जा सकता है।

(देरसे आओमोरी जाते हुए जहाजमें)

इतने बड़े शहरमें आनेके बाद अखबारवाले मुलाकात लिये बिना कैसे रहते? तीन बजे हम नगरपालिकाके दफ्तरमें गये। वहां यहांके डिप्टी मेयरसे मिले। (मेयर विदेश गये हुए हैं)। यहांके दीवानखानेमें जापानके और होक्कायडोके बड़े-बड़े वैज्ञानिक नक्शे थे। इन्हें देख कर मेरी घुमक्कड़ अन्तरात्मा प्रसन्न हुई। थोड़ा समय मिलते ही मैंने रेवती और मंजुको इन नक्शोंकी मददसे काफी चीजें समझा दी।

यहांसे हम पहाड़ीके एक स्तूप पर गये। ऊपर पहुंचना इतना आसान नहीं था। यहां भी भक्तगण काफी संख्यामें एकत्र हुए थे। कैमरेवाले भी स्वधर्म समझ कर हाजिर थे। मैंने अपने प्रवचनमें भगवान बुद्धके विषयमे, तमाम वासनाओंके उन्नयनके विषयमें और विश्वशांतिके लिए त्याग और बलिदानकी आवश्यकताके विषयमें थोड़ा कहा। कितने ही भक्त पैदल ही ऊपर आये थे। उनको हांफते देख कर मैंने कहा—"आरोहणम् तु सायासम्। किसी भी समाजको, राष्ट्रको अथवा व्यक्तिको जब चढ़ना होता है तब बड़ा भारी पुरुषार्थ करना पड़ता है।" गिरनेका रास्ता तो हमेशा ही आसान होता है। अन्तमें मैंने कहा कि मन पर यह पाठ अंकित करनेके लिए ही ये सारे स्तूप ऊंची पहाड़ीके ऊपर बनाये जाते हैं। इस अन्तिम वाक्यका जब ईमाईसानने जापानीमें अनुवाद किया, तब यह स्तूप बनवानेवाले और वहां पूजाके लिए आनेवाले सारे भक्तोंकी मुखमुद्रा पर अंकित धन्यता देखने लायक थी।

साढ़े चार बजे नगरपिताओंकी ओरसे हमारा स्वागत था। इसके साथ खानेकी बढ़िया व्यवस्था तो होती ही है। यहां भी स्तूपके विषयमें, गुरुजीके कार्यके सम्बन्धमें और ईमाईसान भारत व निप्पोनके बीच एक कड़ीके समान हैं, इस बारे में मैंने थोड़ा-बहुत कहा। मेरे भाषणोंका जापानी अनुवाद ईमाईसान बहुत अच्छा करते थे, लेकिन उस नगरके प्रतिष्ठित लोग जो कुछ बोले उसका हिन्दी अनुवाद करना मारुयामासानके लिए सरल नहीं था। खैर। भाव तो हम समझ ही गये। 'धर्मो रक्षति रक्षितः' वाली मेरी दलील इन लोगोंको बहुत अच्छी लगी।

पौने छह बजे हमने हाकोदाते छोड़ा। सब तरहकी सुन्दर सुविधावाला यह बढ़िया जहाज हमें साढ़े चार घंटेके समुद्री सफरके बाद आओमोरी बन्दरगाह पहुंचा देगा। वहांसे ट्रेन पकड कर हम सुबह तक सेन्डाई पहुंच जाएंगे।

होक्कायडोमें विताये हुए पांच दिनोंका और वहां लूटे हुए आनन्दका जब मैं विचार करता हूं तब ईश्वरके प्रति हृदय भक्तिसे नम्र हो जाता है। भगवानने इतनी जीवन-समृद्धि प्रदान की है, उसका मैं उदारतासे वितरण करूं तभी वह सफल हुई कही जायगी। नहीं तो —गीताकी भाषामें— मैं चोर ठहराया जाऊंगा। मेरा विश्वास है कि होक्कायडो द्वीपका महत्त्व भविष्यमें जल्दी ही बहुत बढ़नेवाला है।

एक तरफ मैं ऐसे गंभीर विचारोंमें डूबा रहता हूं और उधर मंजु व रेवतीके मुख आनन्द और उल्लासमें खिले ही रहते हैं। दोनोंकी खासी दोस्ती जम गई है। सारे दिन हंसती रहती है। हंसनेके लिए उन्हें इतनी बातें कहांसे मिल जाती है यह तो वे ही जानें। लेकिन जब चित्त प्रसन्न हो तब कारणकी जरूरत भी क्या? इस जहाज पर लोग टोलियोंमें जमा हो कर इन दोनोंकी साड़ियों व इनकी आंखोंको देखते हैं और एक-दूसरेको इशारोंसे बताते हैं। जापानी लोगोंकी छोटी-छोटी आंखोंका तुम्हें खयाल है ही। उन्हें हमारी आंखें कैसी लगती होंगी?

इन चार घंटोंके सफरके लिए भी ईमाईसानने हमारे लिए Sleeping berths (बिस्तरोंकी) व्यवस्था की है। सचमुच ईमाईसान बड़े ही प्रेमालु और चतुर व्यक्ति हैं। पहलेसे ही सोच कर सारी चीजोंकी व्यवस्था कर लेते हैं। एक भी चीज भूलते नहीं हैं। प्रत्येककी खुराकका भी बारीकीसे ध्यान रखते हैं। खुद तो त्यागी व सहनशील भिक्षु हैं, लेकिन दूसरोंकी सुविधाका विचार किसी स्नेहमयी माताकी कोमलतासे करते हैं। अब यदि हम आरामसे सोनेका आनन्द लेनेकी सोचते तो बढ़ते हुए अंधेरेमें बन्दरगाहकी शोभा देखना रह जाता। जहाजमेंसे समुद्रका पानी सुन्दर दिखाई दे रहा था। लेकिन पतवारके साथ जब पानी उछल कर चमकता था तब उसमें फीरोजी रंगकी नीलिमा दिखाई देती थी। इस ओर रेवतीने मेरा ध्यान खींचा। बड़ी देर तक समुद्रकी शोभा देखी और कुछ खाये बिना ही थोड़ा-बहुत सो लिया। जहाजके संगीतने हमारे लिए लोरियोंका काम किया।

१५. भव्यताका पीहर : निक्को

नागाओका
१-८-'५७

आज तो मुझे बड़े उत्साहसे उभरते हुए आनन्दको समेट कर खूब लिखना है। निक्को यानी जापानका प्राकृतिक सौंदर्य-धाम, पुरानी और नई मानवीय कलाका संग्रहालय, बौद्धोंका एक धर्म-क्षेत्र और सब तरहसे भव्यताका पीहर। आज मुझे इसी निक्कोके विषयमें लिखना है। निक्कोकी बड़ाई मेरे जैसा करे इसमें आश्चर्य ही क्या ? पश्चिमके लोग बड़ाई करें तो वह भी समझा जा सकता है। लेकिन जापानी खुद कहते हैं, उनकी यह कहावत ही है : "निक्को न देखें तब तक केक्को न कहें।" "केक्को" यानी तृप्त होना। निक्कोके अनुभव और आनन्दके विषयमें जी भर कर लिखूं उससे पहले पिछले पत्रके सिलसिलेमें रही हुई कुछ बातें पहले लिख डालता हूं, जिससे फिर वे बीचमें टांग न अड़ायें।

अब तक का सारा सफर उत्तरी द्वीपमें किया था। अब हमने होनशुमें प्रवेश किया है। यह जापानका मुख्य द्वीप है। जिस जमानेमें होक्कायडोको येड्डो अथवा येज्जो कहते थे, उस जमानेमें इस होनशु द्वीपको ही निप्पोन कहते थे। अब निप्पोन अथवा निहोन यानी चार मुख्य द्वीप और उनके छोटे-छोटे हजारों टापू मिल कर बना हुआ जापानियोंका सारा प्रदेश।

जब तीन साल पहले हम आये थे तब होनशुका दक्षिणी भाग और कियुशु द्वीप हमने देखा था। चौथा द्वीप शिकोकु भी जरूर आकर्षक होगा, लेकिन वहां अधिक लोग नहीं जाते हैं इसलिए वह बेचारा हमेशा ही बिना प्रशंसाके रह जाता है। पिछली बार हमने जो स्थान देखे थे उन्हें छोड़ कर इस बार नये स्थान देखना तय किया है। हमारे पास काफी समय होता तो हाकोदातेसे आओमोरी आते ही हम तोवाडाका सुन्दर सरोवर और उसके आसपासके अरण्यकी शोभा देखनेका अवसर नहीं छोड़ते। पर उपाय क्या ! हमें तो रातों-रात चोरकी तरह, जहाजसे सीधे स्टेशन जा कर द्वितीय श्रेणीके सोनेके डिब्बेमें (जहां हमारी जगह नियुक्त थी) जा कर सो जाना पड़ा। ३१ को सुबह सात बजे हम सेंडाई स्टेशन पहुंच गये। इतिहास अथवा सौंदर्यकी दृष्टिसे सेन्डाईका महत्त्व कम नहीं है। हम चाहते तो यहां भी आसपास काफी घूम सकते थे, लेकिन हमें निक्को पहुंचनेकी जल्दी थी। दूसरा एक संतोष यह भी था कि जहां जायेंगे वहां प्रकृति-सौंदर्य एक-सा ही बिखरा हुआ मिलेगा। खुशीकी बात है कि इस देशमें प्रकृतिका प्रसाद और मनुष्यका पुरुषार्थ दोनों मानों एक-दूसरे पर मुग्ध हों इस तरह अपनी हर तरहकी कलाका विस्तार करते हैं। सेन्डाईमें हमने गाड़ी बदली और उत्सुनोमिया गये। जहां देखो वहीं पहाड़की शोभा, नदियोंकी उछल-कूद, परिश्रमी किसानोंकी प्रसन्नतासे की हुई

खेती और प्रत्येक दृश्य पर अंधकारका पर्दा डाल कर नया दृश्य दिखानेवाली रेलवे की सुरंगें—सब मिल कर चित्तरूपी सागरको बिलोते ही रहते थे। कभी-कभी आनन्द भी थक कर कहता: "जरा ठहरो तो! बिलोये हुए मक्खनको एकत्र तो कर लेने दो।" लेकिन जापानमें ऐसा मौका या इतना आराम हमें मिलना कहां सम्भव था!

हमें उत्सुनोमियासे निक्को ले जानेके लिए एक मोटर तैयार थी। निक्कोका एक शब्दमें वर्णन करना असम्भव है। जैसे दीवाली यानी अनेक त्यौहारोंका सम्मेलन, वैसे ही निक्को सैर-सपाटे और 'पिकनिक' का महापर्व ही समझो!

निक्को पहुंचते हुए उसका मंगलाचरण बीस-पच्चीस मीलके राज-वन-पथसे ही शुरु हो जाता है। वहां पहुंचने पर मोटरसे सुन्दर चालीस मीलका सर्पाकार रास्ता चढ़ना पड़ता है। उस ऊँचाईसे उन्नतिके उत्सवकी खुशी मनानेका और विशालसे विशालतर सृष्टि देखनेका आनन्द प्राप्त होता है। ऊपर पहुंचनेके बाद चार हजार फुटकी ऊंचाई पर चुझेन्जी सरोवरका चमकता हुआ विस्तार दिखाई देता है। वहांसे मानो सोनेकी खानमें उतरते हों इस तरह एक तलघरमें उतरते हैं। यहां एक अद्भुत प्रपात और उसीके परिवारके बाल-बच्चोंका दर्शन होता है। सरोवरके किनारे भिन्न-भिन्न कालमें बनाये हुए बौद्ध मंदिरका स्थापत्य, आस-पासके बगीचे, उसके बाद दो पहाड़ियोंके शिखरोंको जोड़नेवाली रोप-ट्रॉली (रस्से के आधार पर लटकनेवाला वाहन) का चमत्कार और अन्तमें इतनी ऊँचाईसे कुछ ही पलोंमें तलहटी तक ले जानेवाली रोम-हर्षण ट्राम—इतनी विविधता सिरमें चक्कर लानेके लिए काफी है। लेकिन निक्कोका मुख्य आकर्षण तो अभी बाकी ही है! यह सारा प्रदेश अनेक पहाड़ियों, अनेक सरोवरों और उनके बीच खेलती-कूदती व डग-डग पर नाचती हुई छोटी-मोटी नदियोंके जालसे भरा पड़ा है। ऐसे प्राकृतिक उत्सवमें मनुष्यके लगाये हुए वृक्ष, बनाये हुए मंदिर, तोरण-स्तम्भ व विशालकाय द्वीप और भीतर व बाहर फैली हुई रंग-बिरंगी चित्रकला आदि विभिन्न प्रकारके आकर्षणोंकी भी यहां कमी नहीं है। यह सब देखने, अनुभव करने और आनन्द लेनेमें मेरे जैसे रसिकको भी अपच होने लगता है। डेढ़ दिनमें जो मिला उसे हजम करनेमें न मालूम कितना समय लगेगा। लेकिन यदि इसे तुरन्त ही न लिख डालूं तो माराका सारा ही रह जायगा। इसलिए किसी भी तरह इसकी फुटकर जानकारी यहांसे लिख कर भेज देना चाहता हूं।

और सच कहूं तो यह हृदयमें भरा हुआ अनुभवानन्द तुम्हारे सामने न उड़ेलूं तब तक उसकी अकुलाहट या बेचैनी कम न होगी। जैसे मनुष्यको पैसे अपनी जेब में सुरक्षित नहीं लगते, लेकिन उन्हें बैंकमें जमा करके वह निश्चितता अनुभव करता है, उसी तरह मुझे लगता है कि यह सारा अनुभवानन्द इस पत्रके द्वारा तुम्हें भेज दूं तो आगेकी यात्राके लिए हलका हो सकूंगा।

अब पहले बाईस मील लम्बे उस राज-वन-पथकी बात कह दूं। रावलपिंडीसे श्रीनगर जाते हुए अंतिम दो दिनोंमें रास्तेके दोनों ओर हमने सफेदा (poplar) के पेड़ देखे थे। तब लगता था कि ऐसी शोभा दुनियामें और कहीं नहीं हो सकती। पर यहां तो डेढ़-डेढ़ सौ फुट ऊंचे बीस-तीस हजार सीडरके पेड़ बड़े-बड़े राजपुरुषों की तरह रास्तेके दोनों ओर खड़े हैं। पेड़ समझते होंगे कि वे हमारा बादशाही स्वागत करनेके लिए ही खड़े हैं। लेकिन हमें लगता है कि इनके सामने हम कितने तुच्छ प्राणी हैं!

सीडरका पेड़ यों भी बहुत ऊंचा, सीधा, फिर भी घेरवाला और शानदार होता है और उस पर यदि किसी तरह भी खतम न होनेवाली उनकी पंक्तियां रास्तेके दोनों ओर खड़ी हों तो मनुष्यकी भावनाकी क्या स्थिति हो! यदि कोई सारा दिन उनके बीच चलता ही रहे तो भी उनका पार नही पा सकता। हम तो मोटरमें वेगसे जा रहे थे, फिर भी हमारा धीरज खतम हो गया।

ईसवी सन् १६२५ के आसपास यहांके एक गवर्नरने इस वन-वीथीकी कल्पना की होगी। बीस वर्षकी मेहनतसे चालीस हजार पेड लगाये गये। जो पेड़ कमजोर हों अथवा मर जायें उनकी जगह दूसरे लगाते जाना; आंधी-तूफान आये और लगाये हुए पेड़ोंका नाश कर दे तो उन्हें फिरसे लगाना—इस प्रकार करते-करते इन महावृक्षोंकी यह सेना यहां कायम हो सकी है। मध्यकालीन युगमें हर किसी आदमीको इस रास्तेसे जानेकी इजाजत नही थी। आजकल तो इतना चौड़ा रास्ता भी मोटर आदि वाहनोंके लिए संकरा साबित हुआ है। इसलिए बीच-बीचमें इस वीथीके बाहर समानान्तर नये रास्ते बनाये गये है, जिनसे गुजरते हुए छाती पर पड़ा हुआ मानसिक दबाव कुछ हलका होता है और यह आश्वासन मिलता है कि आकाश लुप्त नही हो गया है।

इस राज-वन-वीथीके खतम होने पर हम निक्को पहुंच। जापानमे सारे ही शहर सुघड़ और आकर्षक होते है। दुकानोंकी सजावट तो जापानियोंकी खास कला ही है। मैंने सोचा था कि निक्को जा कर तुरन्त किसी होटलमें आराम करेंगे, लेकिन ईमाईसानकी योजना कुछ और ही थी। एक दुकानके अन्दर हमारा सामान उतार कर हमें सीधे सरोवर पर ले जानेका उनका इरादा था।

प्रारम्भ मे ही हमने लाल रंगका एक कमानीदार पुल देखा। उसके नीचे नदी कलरव करती हुई दौड़ रही थी और अपने ठंडे जलमें पैर धोनेका निमंत्रण दे रही थी। मालूम हुआ कि इस पवित्र पुल परसे किसीको जाने नहीं देते। यह पुल तो मंदिरोंके लिए बादशाही भेंट लानेवाले गर्वनर या राज्[illegible]गोंके लिए ही है। यहाके पुराण कहते हैं कि एक पुजारीको इस ओरके एक पहाड़ पर पचरंगी बादल दिखाई दिये। वह उस ओर चला। वहां जाते हुए रास्तेमें एक नदी पड़ी। पुरोहितने बौद्ध सूत्रोंमेंस मंत्रोंका उच्चारण किया, त्योंही वहां दो सर्प प्रगट हुए—एक लाल और

दूसरा नीला। उन्होंने आमने-सामनेसे आ कर अपना ही एक पुल बना दिया। ऐसे विचित्र और सजीव पुलको इस्तेमाल करनेकी पुरोहितकी हिम्मत न पड़ी। उसने एक किसानकी मददसे पुल पर घास बिछाई और उस पार गया।

यह पौराणिक कथा नहीं होती तो भी इस पुलकी और आसपासकी शोभा देखनेके लिए हम थोड़ा समय यहां रुके बिना नही रहते।

अब हम धीरे-धीरे पहाड़ पर चढ़ने लगे। किसी भी स्थान पर प्रकृतिके सौंदर्य में फीकापन न था। किसी जगह सुन्दर पत्तियोंका आकर्षण था तो किसी जगह तितलियोंका, किसी जगह झरनोंका नाद हमें रोक लेता था तो किसी जगह ऊपर के बादल हमारा ध्यान खीच कर गर्दनमें दर्द पैदा कर देते थे! सारा रास्ता अंग्रेजीके कई ज़ेड(Z)-अक्षरोंके आकारका था। हर मोड़ पर उसका क्रमांक और ऊँचाई लिखी हुई थी। ऐसे मोड़ोंका मुख्य लाभ यह है कि बार-बार दिशा बदल जानेसे आप आगे-पीछे दोनों ओर देख सकते है। अत: वनश्रीका एक भी पार्श्व नजर से चूकता नहीं। जैसे-जैसे ऊपर जाते हैं वैसे-वैसे हवा अधिक स्फूर्तिदायी होनेसे उत्साह बढ़ाती जाती है; और नजरके लिए प्रकृतिका विस्तार जितना बढ़ता जाता है उतना ही सृष्टिके साथ हमारे तादात्म्यका विस्तार बढ़नेसे नशा भी चढ़ता जाता है। उन्नति और विस्तार इन दोनोंका प्रमाण इस प्रकार अच्छी तरह सुरक्षित रहता है। इसीसे मनुष्यमें विश्व-रूप-दर्शनकी योग्यता आती है। गीतामें भगवान् ने अर्जुनसे कहा है कि तुम अपने रोजके चर्म-चक्षुसे मेरे विश्व-रूपका दर्शन नहीं कर सकते। तुम्हें दिव्य-चक्षु देता हूं। इसी तरह यहां प्रकृति भी हमें कहती है—"मेरा विस्तार यदि दो आंखोंसे कण्ठ तक पान करना हो तो उसके लिए मेरे उन्नत शिखर हाजिर है और वहा आपके फेफड़ोंके लिए विरल-तरल प्राणवायुकी भी व्यवस्था है।" हमे ऊपर पहुंचनेकी जरा भी जल्दी नही थी, क्योंकि हर मोड़ पर एक-से-एक नया दर्शन-सुख मिल रहा था।

लेकिन जैसे ही हम ऊपर पहुंचे उन्नति-क्रमका यह सारा अनुभव एक क्षणमें चमकते हुए सरोवरके विस्तारमें डूब गया। ऐसा लगा मानो जन्मान्तर करके हमने एक नई दुनियामें प्रवेश किया हो। हम चार हजार फुटकी ऊंचाई पर पहुंचे थे, फिर भी सरोवरके आसपास पहाड़ियोंकी कमी न थी। ईमाईमान कहने लगे कि जरा आराम करके आसपासके बौद्ध मंदिर देखने चलेंगे। हम नजदीकके एक आराम-गृहमें पहुंचे। इस आराम-गृहको चलानेवाला कुटुम्ब गुरुजीके भक्तोंमेंसे एक था। आराम-गृह सरोवर के किनारे पर होनेके कारण वहांसे दृश्य बहुत सुन्दर दिखाई देता था। चि० मंजु जुड़वा दूरबीन ले कर आराम-गृहके छोटेसे बगीचेमें पहुंच गई और रेवती नावोंको निहारनेमें मग्न हो गई। इस तरह उन्हें दुहरा लाभ मिला। प्रकृतिकी शोभा तो उन्हें जी भर कर पीनेको मिली ही, साथ ही स्वागतमें आई हुई जापानी चाय पीनेके संकटसे वे बच गईं। उन्हें विश्वास था कि तीनों प्यालोंकी कड़वी

चाय मैं खुशीसे अकेला ही खाली कर दूंगा। भक्तोंके साथ बातचीत करके मैं भी बगीचेमें जा पहुंचा। मैंने भी चमकते हुए पानीकी लहरें—नहीं यह शब्द कुछ कड़ा है—पानीकी सलवटें और उसकी बदलती हुई आकृतियां देखीं। इतनेमें ईमाई-सानने एक सुन्दर कीमती कार्डबोर्ड मेरे सामने रख कर भारतीय रोशनाईमें भीगी हुई एक कूची मेरे हाथमें दे दी। गृहपत्निके लिए उस पर मैंने नागरी अक्षरोंमें "नम् म्यो हो रेंगे क्यो" लिख कर उसके नीचे सत्य और अहिंसाकी विजयकी कामना व्यक्त की। मेरी यह स्वाक्षरी प्राप्त करके भक्त लोग बड़े खुश हुए और उनकी सरोवरकी तरह झिलमिलाती और भक्तिमें गीली आंखें देख कर मैं भी प्रसन्न हुआ।

यहांसे हम बौद्ध मंदिर देखने गये। यहां जापानकी उत्तमसे उत्तम कारीगरी देखनेको मिलती है। मंदिर-कलाका दर्शन प्रवेश-द्वारसे ही शुरू हो जाता है। फिर अन्दरका बगीचा, उसके छोटे-बड़े पेड़, बीच-बीचमें सजाये हुए पत्थरके दीपक, सीढ़ियोंसे ले कर ठेठ छप्पर तक औचित्यसे उभरते हुए मंदिर, मूर्ति, चित्र और वर्तन—इस सारी समृद्धिका कोई ठिकाना था! एक बड़ा चौकोर अथवा गोल पत्थर ले कर उसमें आमने-सामने दो आर-पार छेद करके भीतर रखे हुए दीयेका प्रकाश चारों दिशाओंमें जा सके ऐसी व्यवस्थावाले जापानी दीपक हमने तीन वर्ष पहले भी देखे थे। प्रवेश-द्वारके सामने जैसे दोनों ओर खम्भे होते है और उनके सिर पर पत्थरकी टोपी होती है, उसी तरह इस पत्थरके दीपक पर भी एक टोपी होती है। जापानकी यह खासियत उत्तरसे दक्षिण तक सभी जगह देखनेको मिलती है। जिस तरह पत्थरको खोद कर ऐसे दीपक बनाते है, उसी तरह कांसेके भी बनाते हैं। यहां तो एक सूबेदारने अपने प्रांतकी तीन वर्षकी आमदनी खर्च करके लोहेके दो ऊंचे-ऊंचे दीपक बनवा कर निक्कोके एक मंदिरको चढाये हैं। उस जमानेमें जापानमें लोहा दुर्लभ था।

एक जगह एक बड़ा चिकना पत्थर देखा, जो शायद आकाशसे गिरी हुई उल्का का होगा। इसे यहीं देखा था या और कहीं, यह याद नहीं आ रहा है।

मूर्तियोंमें भगवान बुद्धकी अथवा बोधिसत्त्वोंकी मूर्तिया अलग-अलग है। ये शांत, प्रसन्न और भीमकाय होते हुए भी सौम्य दिखाई देती है, जब कि भगवान बुद्धके शिष्योंकी मूर्तियोंमे अनेक प्रकार होते हैं। इन्द्र, विरोचन आदि देव-दानवोंकी व द्वारपालोंकी मूर्तियां तो उग्र और कभी-कभी विकराल भी होती हैं।

एक-एक मंदिर यानी धार्मिक कलाका संग्रहालय। मंदिरके पुजारी और वहां रहनेवाले साधु धीर-गम्भीर व स्वमानका महत्त्व जाननेवाले दिखाई दिये। हमारे यहां तो कई मंदिरोंमें पुजारी दक्षिणा मांग कर हैरान करेंगे, यह डर लगा रहता है। यहांके मंदिर समृद्धिमें हमारे यहांके मंदिरोंसे कम नहीं हैं। हमारे पुजारी कब समझेंगे कि 'बिन मांगे मोती मिले मांगे मिले न भीख'?

यहां एक मंदिरके बगीचेमें कितने ही पेड़ोंकी डाली-डालीमें कपड़े और कागज-के चिथड़े बंधे दिखाई दिये। मानो किसी मध्यकालीन शूरवीरके शरीरका कण-कण घायल हो गया हो। कुतूहलसे उन चिथड़ोंका अर्थ पूछने पर एक मजेदार रिवाज जाननेको मिला। जो प्रणयी-युगल विवाहका निश्चय करने पर भी घरके या बाहरके विघ्नोंके कारण तुरन्त विवाह नहीं कर सकते, वे इस पेड़के नीचे आ कर प्रार्थना करते हैं और शादीके बाद भेंटके रूपमें ये चिथड़े डालों पर बांध जाते है। ऐसे चढ़ाये हुए इतने सारे चिथड़े यहां देख कर श्रद्धा कहती थी कि यहांकी प्रार्थना जरूर सफल होती होगी।

(यहां कोई यह अभद्र शंका न करे कि प्रार्थना करनेके बाद भी जो तुरन्त शादी न कर सके हों ऐसे युगलोंकी संख्या जाननेका साधन आपके पास कहां है?)

उन प्रणयोत्सव असंख्य युगलोंके प्रति मनमें समभाव ला कर हमने उन पेड़ोंकी ओर आदरसे देखा।

मालूम हुआ कि पासके एक सरोवरका बढ़ा हुआ पानी दौड़ कर दो छलांगोंमें ही अपने चुझेन्जी सरोवरसे मिलता है। जो प्रतिग्रह स्वीकार करता है, उसे दान देना ही पड़ता है। इसलिए चुझेन्जी सरोवरने पचीस फुट चौड़े एक परिवाहके द्वारा बढ़े हुए पानीको छोड़नेकी व्यवस्था की है। सरोवर देखनेके लिए हमें जितनी ऊंचाई चढ़नी पड़ी उतनी ही ऊंचाई उतरनेकी जिम्मेदारी इस परिवाहके सिर आ पड़ी है। 'जीवन' को भला डर किस बात का? उसे मौका मिलते ही उसने पहली ही कूद तीन सौ फुटकी मारी! उसके बाद ऐसे ही छोटे-बड़े प्रपातोंका पानी इकट्ठा करके और खेलते-कूदते उसने आगे जाना पसन्द किया। यही कूद प्रख्यात 'केगोन प्रपात' है। इसकी शोभा देखनेके लिए देश-विदेशके असंख्य लोग यहां इकट्ठे होते है।

जापानी लोगोंकी विज्ञान-विद्या और कला-रसिकताके संयोगसे इस तालाबके दुहरे दर्शनकी सुन्दर-से-सुन्दर सुविधा की गई है। सरोवरके किनारेसे एक रास्ता हमें एक सुरंगके मुंहकी ओर ले जाता है। हम कोलारकी सोनेकी खान देखने गये थे। वहां एक लिफ्ट जैसा झूला अथवा कमरा बिजलीकी मददसे पृथ्वीके पेटमें ले जाता है। वैसी ही यहांकी व्यवस्था है। टिकट खरीद कर हमने जैसे ही उस लिफ्ट में प्रवेश किया कि घर-ररर घर-ररर करती वह नीचे पहुंच गई। अब पहाड़ीसे बाहरकी ओर निकलनेके लिए एक सुरंग पार करनी थी; उतना चल कर हम एक प्लेटफार्म—मंच पर पहुंच गये। वहांसे नाहन प्रपातकी पहली झलक दिखाई दी। एकदम नजदीकसे उसकी शोभा देखनेकी गर्जनाका अनुभव करनेके बाद हमने दाई ओर देखा। वहां हाथीकी सूंड़की तरह लटकता हुआ केगोन प्रपात दिखाई दिया। इस सुन्दरताको दूसरी कोई उपमा देना कठिन है। हाथीकी सूंड़ ऊपरसे चौड़ी और नीचेसे संकरी होती है। यह दृश्य उससे बिलकुल उलटा था। लेकिन हाथीके गण्ड-

स्थलसे जिस ठाठसे सूंड़ लटकती है, उसी शानसे यह प्रपात ऊपरसे नीचे गिरता है।

इतना पराक्रम करनेके बाद अनेक आकार धारण करता हुआ इसका पानी नीचे कूदता जाता है और सारी घाटीको अपनी चहल-पहलसे निनादित करता रहता है। आसपासकी वनश्री भी इस भव्यताको बढ़ाती है। केगोन प्रपातका उसके बाल-बच्चोंके साथ निरीक्षण करनेके लिए यह स्थान जिसने पसन्द किया होगा, वह स्वभावसे जरूर बड़ा रसिक कवि होना चाहिए। उसका कृतज्ञतापूर्वक तपण किये बिना यह स्थान छोड़ना मुश्किल था।

इस स्थानमें एक ही कमी थी; वह यह कि सीढ़ियोंसे प्रपातका निरीक्षण करते हुए जिसमेंसे यह प्रपात निकलता है उस सरोवरका दर्शन यहांसे नहीं होता। यह कमी दूर करनेके लिए अपने निसर्ग-प्रेमी कविने दूसरा एक स्थान पसन्द किया। इतना ही नहीं, लेकिन वहां जानेके लिए विज्ञानकी मदद लेकर एक काव्यमय उपाय भी ढूंढ़ निकाला। उसका विवरण भी यहां देने लायक है।

हमने पिम्मे सुरंगमे प्रवेश किया और बिजलीके झूलेमें बैठ कर ऊपर पहुंचे। वहांसे एक पहाड़ीके सिरेसे दूसरी पहाड़ीके सिरे तक लोहेके तारोंके बने रस्से बंधे हुए थे। उनके आधारसे आने-जानेवाले दो कमरे इन पर टंगे हुए थे। बिजली-की मददसे एक कमरा इस पारसे उस पार पहुंचे तब तक उस पारका कमरा इस किनारे आ जाता है। हम ऐसे एक कमरेमे बैठ कर चले। आधे रास्ते जाने पर नीचे खाईमे देखनेसे कोई डर न होने पर भी स्वाभाविक ही मनमें विचार आया कि रस्सा टूट जाय तो? हवाई जहाजमें उड़नेकी आदत होनेसे इस विचारका कोई महत्त्व नही था। नीचे ऊंचे पेड़ोंका घना जमघट देख कर मनको थोड़ा आश्वासन भी मिला कि यदि कमरा टूट पड़े तो भी उसका और हमारा चूरा-चूरा शायद नही होगा। ये सारे पेड़ अपने आपको मिटा कर भी हमें जिला सकेंगे।

उस पार पहुंचने पर चुझेन्जी सरोवर, उसमेंसे गिरता हुआ केगोन प्रपात और आसपासका विस्तीर्ण प्रदेश एक साथ दृष्टिगोचर होने पर प्रकृतिका समस्त सौंदर्य अपने स्वच्छ व शुद्ध रूपमें दिखाई देने लगा।

हृदयसे उद्‌गार निकले 'धन्य-धन्य!' लेकिन आंखे कहती थी कि 'हम तो जिह्वारहित है, कुछ कह ही क्या सकती हैं!' शामका वक्त भी हो रहा था, इस-लिए हमने तुरन्त ही लौटनेकी तैयारी की। आने-जानेके लिए इस बिजलीकी ट्राम-की बात पहले आई है वह ट्राम एक प्राइवेट (खानगी) कम्पनीकी है। देर हो जाने-से आजके लिए वह बन्द हो जाएगी, इस डरके मारे भी हमे जल्दी करनी पड़ी। हम ट्रामके स्टेशन पर पहुंचे तब नीचेसे ऊपर आई हुई ट्राम नीचे जानेकी तैयारीमें ही थी। हमे बहुत ठहरना नही पड़ा। इस ट्रामकी उतराई इतनी कड़ी थी कि इसके मुकाबलेमें उटकमण्ड, दार्जिलिंग अथवा शिमलाकी पहाड़ी ट्रेन कुछ भी नहीं

है। स्विटजरलैंडमें हम कोहसे 'रॉशेर द नेय' गये थे। उस पहाड़ी रेलवेको देख-कर इस चढ़ाईकी कुछ कल्पना आ सकती है। उससे भी अधिक अच्छी कल्पना बैकवर्ड क्लासेज़ कमीशनके दिनोंमें हमें पश्चिम हिमालयमे जो अनुभव मिला था उससे आ सकेगी। लेकिन उसका वर्णन करने बैठूं तो यही रात हो जाएगी और हम वक्तसे होटल नहीं पहुंच सकेंगे। यह रास्ता बारह सौ मीटरका है और इसकी चढ़ाई अधिकसे अधिक सैंतीस अंश जितनी कठिन है। इसमें एक पुल है जो दो सौ मीटरका है। सारी घाटीकी मनमोहक शोभा निहार कर हम नीचे पहुंचे। वहां मोटर हमारी राह देख ही रही थी।

होटल पहुंच कर खाया-पिया। अब तो स्वप्न-सृष्टिके ऊपर राज्य करने जितना भी मस्तिष्कमें अवकाश नहीं था। फिर दूसरे दिन निक्कोके मंदिर और उसके आसपासके ऊंचे-ऊंचे वृक्ष देखने ही थे। वहां काफी पैदल चलना व चढ़ना था। इसके लिए भी मनकी तैयारी करनी थी। इसलिए सवेरे तक ऐसे डट कर सोये कि मानो दुनियाका लोप ही हो गया हो।

दूसरे दिन पहली अगस्त थी। कितनी ही बातें इस तारीखके साथ याद आईं। लोकमान्य तिलकका अवसान और राष्ट्रव्यापी सत्याग्रहका प्रारम्भ इसी दिन हुआ था। इसलिए सुबहकी प्रार्थनाके बाद मैंने मंजु और रेवतीको इस दिनका माहात्म्य समझाया। मंजुने कहा कि उसका जन्मदिन भी इसी महीनेमें है। यहांके होटलवाले भी गुरुजीके भक्त थे, इसलिए उनसे भी थोड़ी बातें कीं। आठ बजे हम उस पवित्र लाल पुलके पास पहुंच गये। आज मोटरका उपयोग करना सम्भव नहीं था। चढ़ाई-उतराई भी काफी थी। इसलिए मुझे कभी ईमाईसानके और कभी मंजु अथवा रेवतीके कन्धोंका सहारा लेना पड़ता था। और कभी-कभी तो सीढ़ियां चढ़ते अथवा उतरते हुए मैं दोनोंके कन्धोंका एक साथ उपयोग करता था। अच्छा हुआ कि उस समय कोई फोटोग्राफर नहीं था, जो इस दृश्यके फोटो लेकर मुझे शर्मिन्दा करता!

निक्कोके मंदिरोंका जी भर कर वर्णन करूं ऐसा विचार था, लेकिन अब लगता है कि वह होना मुश्किल है। जापानके राजपुरुष, पुरोहित और भावुक लोगोंने मिल कर सदियों तक अपनी भक्ति, अभिरुचि, कला-रसिकता और समूचे जीवनकी संस्कारिता जिसमें डाली है और प्रकृतिकी भव्यतामें किसी तरहकी आंच आने बिना जिसकी वृद्धि की है, उसका वर्णन कहां तक करूं? यहांके मंदिरोंकी रंगीन तस्वीरोंकी किताब तुम्हारे समक्ष रख कर प्रत्यक्ष समझाने बैठूं तभी मुझे संतोष होगा। एक-एक मंदिरके तरह-तरहके छप्परोंका वर्णन करूं तो उसीमें एक अलग पत्र पूरा हो सकता है। हमारे मंदिरोंमें जैसे सारी कला शिखरों पर और उसके नीचेकी दीवारों पर खर्च की जाती है, वैसे ही जापानी लोग बाहरके, भीतरके और आसपासके प्रवेश-द्वारों पर ही सारी कला उंडेल देते हैं। ये द्वार और इन

द्वारोंके छप्पर इतने ऊंचे, चौड़े और मोटे होते हैं कि उनका भार सहन करनेके लिए मोटे-मोटे खम्भोंका आश्रय लेना पड़ता है। ये खम्भे अपने आसपास चाहे जितनी कारीगरीका समावेश कर सकते हैं। कहते हैं कि प्रवेश-द्वारकी यह कला जापानी लोग चीन देशसे लाये हैं। जो भी हो, इन्होंने उसमें अपना व्यक्तित्व उंडेल कर उसे पूरी अपनी बना ली है। प्रवेश-द्वारके साथ द्वारपाल तो होते ही हैं। दोनों ओरकी दीवारों पर पशु-पक्षी खोदे हुए और चित्रित किये हुए दिखाई पड़ते हैं। अशुभ कुछ न सुनने, न देखने और न बोलनेका व्रत लेनेवाले बन्दर मूलतः यहांके स्थापत्य मेंसे ही लिए हुए हैं। पूज्य बापूजीने इन बन्दरोंको अपना गुरु बनाया इसलिए भारतीय चित्रकारोंने भी उन्हें हमारे देशमें लोकप्रिय बनाया है। इन मंदिरोंका इतिहास सुनने बैठें तो जापानका लगभग एक हजार वर्षका इतिहास आंखोंके सामने थोड़ा-बहुत प्रत्यक्ष हो जाता है। एक जगह एक कांसेका बड़ा स्तंभ खड़ा है। उसके ऊपरकी छोटी-छोटी घंटियां भक्तोंको निमंत्रित करती हैं और भूत-पिशाचों को भगा देती हैं। उसके पास कांसेके दो बड़े दीपक हैं। उन्हें तीन शहरोंके रेशम-के व्यापारियोंकी पंचायतोंने यहां अर्पण किया है। रेशमके व्यापारियोंकी जाति ऊंची नहीं मानी जाती थी, इसलिए ये दीपक भीतरी आंगनमें नहीं रखे गये हैं ! ! इन मंदिरोंके बीचमें एक सुन्दर मकान है, जिसमें पुरानेसे पुराने धर्म-ग्रन्थोंका संग्रह किया हुआ है।

कई मंदिरोंमें भीतरके दीवानखाने इतने विशाल हैं कि उन्हें भरनेके लिए न मालूम कितनी दूर-दूरसे साधुओंको लाना पड़ता होगा ! मंदिरोंके बीच अथवा झाडियोंके अन्दर कुछ राजाओं और सरदारोंकी सुन्दर कब्रें भी बनी हुई हैं। लेकिन उन्हें इधर-उधर छिपा कर रखा हो, ऐसा ही लगता है।

इन्हीं दिनों—यानी तीस-चालीस वर्ष पहले—यहां एक बड़ा संग्रहालय बनाया गया है। इसकी वजहसे भेंटमें चढ़ाई हुई छोटी-बड़ी महत्त्वकी और अद्वितीय चीजें एक जगह रखनेकी और उनका अभ्यास करनेकी सुविधा हो गई है।

इतनी सारी भव्यताकी संसृष्टि देखनेके बाद कहना पड़ता है कि इन ऊंची-नीची पहाड़ियों पर उगे हुए पुराण-पुरुषों जैसे भव्यतर वृक्षोंके सामने मानवी भव्यता केवल वामनावतारके समान है। ये सारे वृक्ष बुजुर्गोंकी तरह आशीर्वाद दे कर वात्सल्य भावसे उसे पोस रहे थे।

गौतम बुद्धने तपस्या करके मानव-हितका चिंतन किया और इस गहरी तपस्या-के परिणामस्वरूप उन्हें जो सत्य प्राप्त हुआ, उसका चालीस वर्ष तक गया और बनारसके बीचके प्रदेशके लोगोंमें प्रचार करके कई तरहसे उन्होंने उसे मानवके सामने स्पष्ट किया। उनके इस सत्यकी और संकल्प-शक्तिकी कितनी अमोघ तेजस्वी शक्ति थी कि उनके स्वप्नमें भी न हो इतने विस्तीर्ण भू-खण्डमें, युगों तक, अनेक वंशके असंख्य लोगोंने अनेक भाषाओंमें उसका प्रचार किया और उसके द्वारा अनेक-

विध जीवनोंका उद्धार किया ! आज जब हम एक कानसे सुनी हुई बातें दूसरे कानसे निकाल देते हैं और किसी भी विचारका—वहबासी हो गया इसी कारण—अनादर करते हैं, तब दूसरी ओर आजीवन कष्ट उठा कर भारतका धर्मज्ञान चीनमें ले जानेवालोंकी, वहांसे उसे कोरियामें दाखिल करनेवालोंकी ओर उन दोनों देशों में विशेष रूपसे जा कर उसे अपने देशमें ले आनेवाले जापानी बौद्धोंकी श्रद्धा कितनी अजरामर होगी कि हजारों वर्ष तक एकके बाद एक कितने ही युगोंने उसके पीछे अपना जीवन-सर्वस्व खर्च कर दिया। क्या कवि और क्या कलाकार, क्या गायक और क्या चित्रकार. क्या वैराग्यशील साधु और क्या उत्सवप्रिय गृहस्थाश्रमी, सबने एक सादे और ठोस उपदेशका शृंगार करनेमें, उसे हृदयंगम करनेमें और पीढ़ी-दर-पीढ़ी उसका विकास करनेमें कृतार्थता मानी है !

इस तरह निक्कोका संस्कार-वैभव देख कर हम दोपहरको यहांसे चले, और एक बहुत ही सुविधाजनक और सुन्दर ट्राममें बैठ कर सत्तर मीलका सफर करके टोकियो पहुंचे। यहां अधिक नही ठहरना था, इसलिए हम अपने पुराने मुकाम पर भी नहीं गये; एक भक्त दुकानदारके यहां खाना खा कर सीधे स्टेशन पहुंच गये। हमें शाम तक नागाओकाकी शांत व सुन्दर जगह पर पहुंच कर ड़ेढ़ दिनका आराम करना था। टोकियोमें दुकानदारकी लड़की सुमीकोसानने हमें प्रेमपूर्वक खाना खिलाया।

टोकियो पहुंचते ही हमे सबसे बड़ी खुशी तो घरसे आये हुए पत्रोंको देख कर हुई। तारीख २२, २३ व २४ के तुम्हारे पत्रोंका जवाब तो पहले लिख चुका हूं। अभी जो तुम्हारे तीन पत्र मिले उनमेंसे एक टाइप किया हुआ था। टाइपिंग बहुत अच्छा है, लेकिन मैं मानता हूं कि बीमारीकी ऐसी हालतमें तुम्हें मुद्रा-लेखनकी हलकी मेहनत भी नहीं करनी चाहिए।

चि० अवनिके दो पत्र आये हैं। एक मंजुके नाम और एक मेरे नाम। मंजु और अवनि एक-दूसरेमें इतने ओत-प्रोत हैं कि दोनोंके प्रति मेरे मनमें एक साथ ही वात्सल्य-भाव जाग्रत होता है।

पं० सुन्दरलालजी टोकियो पहुच गये हैं। अब परिषद्की तैयारीकी समितिमें मेरा स्थान वे लेंगे। रामेश्वरीजी पांचवी या छठीको आएंगी।

अनुभव बताता है कि ईमाईसानके पते पर लिखे हुए पत्र हमें शीघ्र मिलते हैं। इसलिए यदि अवनि दिल्लीसे वापस आ गये हों तो उन्हें फोन पर कहना कि ईमाईसानके पते पर ही पत्र लिखें।

चि० बालका एक पत्र मिला। रेवती अब प्रसन्न है। उसने सिद्धार्थका वजन तो लिखा, लेकिन यह ठीक है या कम यह किस तरह मालूम हो ? तुम्हारे पत्रमें डॉ० शरदबहनका यह अभिप्राय कि साढ़े बारह पौंड वजन ठीक है पढ़ कर रेवती खुश हो गई।

चि० बसन्तको स्कूलमें चरखा चलाना होता है और उसमें उसे खूब रुचि है, यह जान कर प्रसन्नता हुई। उसकी एटलसमें हमारी यात्राके स्थान उसे बताना और कहना कि जैसे यूरोपके पश्चिममें ब्रिटेनके द्वीप हैं, वैसे एशियाके पूर्वमें जापानके द्वीप हैं। इन दोनों देशोंकी प्रजा चतुर और पुरुषार्थी है।

ईमाईसान हमारी पूरी देखभाल करते हैं और हर जगहकी थोड़े शब्दोंमें जरूरी जानकारी भी देते रहते हैं। कल हम एक सुरंगमेंसे गुजर रहे थे। तुरंत ही उन्होंने आ कर कहा—"यह हमारे देशकी सबसे बड़ी सुरंग है।"

जापान देश ही ऐसा है कि एक सुरंगमेंसे पार होते ही समुद्र दिखाई देने लगता है। उसके किनारे एक-दो शहर और गांव, थोड़ी-सी बढ़िया खेती, कुछ बगीचे—फिरसे पहाड़ और सुरंगें—इस तरह मानो हम प्रकृतिके चित्रोंकी मंजूषा (एलबम) के पन्ने ही पलटते रहते हैं।

इस प्रकार यहांके सब दिन आनन्दसे बीत रहे हैं। चि० मजु और रेवती दोनों खुश हैं। यात्रामें एक-दूसरेको बनानेकी, चर्चा करनेकी और विनोदकी बातें इतनी होती हैं कि अब हमारे बीच खुल कर बातें करनेमें किसीको कोई संकोच नहीं रहा है।

जिस तरह पार्थिव-पूजाके अन्तमें मानस-पूजाकी बारी आती है और वह पार्थिव-पूजाके जितनी ही उत्कट बन जाती है, उसी तरह अठारह-बीस वर्ष तक साथमें सफर करनेके बाद अब तुम मेरे पत्र पढ़ कर यात्राका मानसिक आनन्द उत्कट रीतिसे प्राप्त कर सकोगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

तीन बजे हम टोकियोके मुख्य रेलवे स्टेशन उएनो (Ueno) से चले थे। अब शामको सवा पांच बजे नागाओका आ पहुंचे हैं। यहां हमें खाना बहुत अच्छा मिला। यहां मच्छरदानीका उपयोग करना पड़ा।

हमने यहा खूब आराम किया। आतिशबाजीका दिन होते हुए भी हम उसे देखने नही गये और न उसका हमें कोई अफसोस ही रहा।

१६. नागाओकाकी जलचरी

नागाओका
३-८-'५७

निक्कोके दो दिनके मधुर लेकिन कठिन और उत्तेजक परिश्रमके बाद डेढ़ दिनका आराम लेनेके हम पूरे-पूरे हकदार थे। इसलिए टोकियोमें अधिक न रह कर हम नागाओका आ गये। यहांका होटल बड़ी अच्छी जगह पर बना हुआ है। जापानी लोग घर बनाते वक्त आसपासकी पहाड़ियोंकी शोभा, पवनकी दिशा, दूर

और पासके पेड़, पानीका प्रवाह और उसके ऊपरके पुल आदिका विचार करके घर कैसे बनाना, उसका मुंह किस ओर रखना, यह सब निश्चित करते हैं। फिर प्राकृतिक शोभा लानेके लिए आंगनमें जगह-जगह गोल-मटोल पत्थरोंको सजा देते हैं। कहीं उनके ऊपर तो कहीं उनके बीचसे चलनेके लिए पगडण्डियां भी बना देते हैं। पेड़ोंकी डालें भी सारी शोभामें खप सकें इसी तरह उगानी चाहिए। अमुक पेड़ोंको नंगा नहीं रहने देते हैं। तनों और डालियोंको घास लपेट कर उसके ऊपर तार बांध देते हैं। कितना परिश्रम केवल इस शोभाके लिए उठाते हैं! इस पुरुषार्थ का उनके जीवन पर भी असर होता है और जीवन अनायास ही विवेकपूर्ण बन जाता है। स्त्रियोंके रीति-रिवाजोंमे यह खास तौरसे दिखाई देता है।

नागाओकाके जिस होटलमें हम रहते हैं वह एक बुढ़ियाने तीस वर्ष पहले खोला था। बुड्ढी मां, जिन्हें सब ओबासान कहते है, अब नब्बे वर्षकी हो गई हैं। उनकी लड़की अब दो-तीन होटल चलाती है। जिसमें हम रहते है यह होटल तो छोटा है, लेकिन यहां हमारे खाने-पीनेकी व्यवस्था ज्यादा अच्छी तरह रखी जाती है।

डेढ़ दिन तक हम नहाने, खाने और सोनेके अलावा कुछ न करते तो भी काम चल जाता। लेकिन यहा भी जापानके दो महत्त्वपूर्ण अखबारोंके प्रतिनिधि मिलने आये। मैंने भी बचपनसे अनेक बार वृत्त-विवेचकका—यानी अखबारके संपादकका काम किया है इसलिए पत्र-प्रतिनिधियोंके प्रति मेरे मनमें सहानुभूति रहती है। अनजाने देशमें भाषाकी दिक्कतके कारण जन-सम्पर्क साधना कठिन होता है। पत्र-प्रतिनिधियों द्वारा यह कठिनाई बहुत-कुछ दूर हो जाती है। इसलिए ऐसा मौका मिले तो मैं छोड़ता नहीं। ये लोग कुछ महत्त्वके सवाल पूछते हैं और जानेसे पहले फोटो लेना नही भूलते। जापानमें करीब सबके पास कैमरा होता ही है। कोई भी आदमी, लड़का अथवा लड़की बिना कैमरेके शायद ही बाहर निकलते होंगे। यहां कैमरे सस्ते भी बहुत मिलते हैं। दूसरी अगस्तको पत्र-प्रतिनिधियोंके साथ हुई बातें चाहे जितनी महत्त्वकी हों, फिर भी पत्रमे उनका पूरा विवरण लिखनेका मन नही हो रहा है। क्योंकि इसके बाद हम जिस जलचरी (Aquarium) को देखने गये थे, उसका वर्णन मुझे विस्तारसे देना है।

दोपहरमें किये हुए आरामका आलस्य हटानेके लिए ईमाईसानने हमें समुद्रके किनारे ले जाना तय किया। वहां देखनेका क्या है, यह उन्होंने हमें पहलेसे नहीं बताया था। किनारे पर पहुंचनेके बाद उन्होंने टिकटें खरीदी। मैंने सोचा कि स्टीम लांचमें बैठ कर थोड़ी देर सैर करनी होगी। लेकिन निकला कुछ और ही और वह भी बहुत मजेदार।

यहां समुद्रके किनारे एक खास तरहकी जलचरी (Aquarium) है। सोचा था उससे वह कही अधिक बड़ी और आकर्षक निकली।

सबसे पहले एक गहरे हौजमें विराजमान एक बतखने हमारा स्वागत किया। स्वागत-समितिके अध्यक्षको शोभा देनेवाला उसका रोब था। उस हौजमें पानीके अन्दर छह बड़े-बड़े कछुए थे। अपनी पीठकी ढालके अभिमानमें वे कूर्मगतिमें इधर-उधर घूम रहे थे। इतने बड़े कछुएकी पीठ हमारे यहां काफी ऊंची गुम्बद जैसी होती है। लेकिन इन कछुओंकी पीठ कुछ सपाट मालूम हुई। और उतना ही उनका रोब कम था।

इसके आगे समुद्रके अन्दर एक जाली ऊपरसे नीचे तक लटका कर उसका कुछ हिस्सा तालाब जैसा बनाया हुआ है। इसमें बहुत-सी बड़ी-बड़ी मछलियां तैर रही थीं, दौड़ लगा रही थीं और सिर नीचा करके पूंछसे पानी उछाल रही थी। उनकी यह गति और खेल खास देखने लायक थे। व्हेल नामके मत्स्येश्वर भी विशाल समुद्र में इसी तरह पानीकी पिचकारियां छोड़ते हैं।

किनारेके पास भी पानी काफी गहरा था। उसमें लोहेकी जालीसे बनाया एक हौज लकड़ीके सहारे लटक रहा था। इस जालीदार हौजमें छोटी-छोटी मछलियां निर्भयतासे नाच रही थीं। वे जालीसे रक्षित न होती तो मत्स्य-न्यायके अनुसार बड़ी मछलियोंने उन्हें कभीका हड़प कर लिया होता। इस तरहके दो-तीन हौज अथवा जल-कमरोंके अन्दर रहनेवाली मछलियोंका खेल देख कर हम बाईं ओरके एक बड़े झोंपड़ेमें पहुंचे। मद्रासके समुद्र-तटकी और बम्बईके मैरीन-ड्राइवकी जलचरियोंके समान इस जगह काचके बड़े-बड़े हौजोंमे, हवा-पानी और प्रकाशकी सुविधा रख कर, तरह-तरहकी मछलियां रखी हुई थी। मद्रास तथा बम्बईमें जल-चरोंकी जितनी विविधता है उतनी तो यहां नहीं होगी। लेकिन यहां हमने कितने ही नई तरहके जलचर देखे जो हमारे यहा नहीं हैं।

पहले जैसी बात होती तो इन सबके नाम, इनका स्वभाव, इनकी विशेषताएं, समुद्रकी कितनी गहराईमें ये मिलती हैं, हाथमें पकड़ते समय बिजली जैसा धक्का देनेवाली कहां-कहां हैं वगैरा सब बातें मैं विस्तारसे जान लेता। लेकिन अब तो इस तरहके ज्ञानमें वृद्धि करनेकी बात सूझती नहीं। मछलियोंका रंग, आकार और उनकी अनेक तरहकी मत्स्यगति देख कर मेरी कलात्मा संतोष मान लेती है। और मेरी सहानुभूति उनके जीवनमें प्रवेश करके उनका जीवनानन्द समझने और प्राप्त करनेके लिए उत्सुक हो उठती है। बौद्धिक ज्ञानानन्दने अब अद्वैतानन्दका हार्दिक सुख भोगना ही पसन्द किया है।

इस तरह चारों ओर घूम कर अनेक प्रकारकी मछलियां, घोंघे समुद्री सर्प, अर्णवाश्व (Sea-horses) और भयानक 'ऑक्टोपस' देख कर हमारा मन भर गया। इस जलचरीको देखनेके लिए जापानी लड़के-लड़कियोंके झुण्डके झुण्ड उमड़ रहे थे। उन्हें भी हमने इतने ही कुतूहलसे देखा और आगे चल कर किनारेके दक्षिण की ओर पहुंचे। वहां बड़ी मछलियोंको छोटी मछलियां खिलानेका खेल देखनेकी

इच्छा रखनेवाले लोगोंके लिए एक भाईने एक दुकान खोल रखी है। हमारे मेजबानने वहांसे थोड़ी मरी हुई मछलियां खरीदी। इन मछलियोंको वे एकके बाद एक पानीमें फेंकते जाते थे और उन्हें खानेके लिए प्रतिस्पर्धा करनेवाली बडी मछलियोंकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट कर रहे थे। बड़ी मछलियां छोटी मछलियों को अपने विकराल दांतोंमें पकड़ कर झटसे चट कर जाती हैं; यह खेल आकर्षक तो है, लेकिन हमें वह रुचिकर नहीं लगा।

शामके पांच बजनेवाले थे। कितने ही बच्चे, युवक व युवतियां तैरनेकी तंग पोशाक पहन कर इधर-उधर घूम रहे थे। बहुतसे पानीमें कूद रहे थे। कुछ नाव चला रहे थे। थोड़ेसे इस चमकते पानीमें तैर रहे थे और कुछ तो पानीमे तैरते हुए एक-दो लकड़ीके पटियों पर एक पैरसे खड़े हो कर अपना तोल संभाल रहे थे। समुद्रकी लहरोंके साथ डोलते हुए पटियों पर इस तरह संतुलन साधना (surfing) आसान नही होता, लेकिन इसीमें इसका आनन्द है।

ये सारे लोग तो अपने देशमें, अपने गांवमें, अपने समाजमें अपनी ही भाषा बोलते हुए जीवनका आनन्द ले रहे थे। और हम दूर देशसे आये हुए अनजान लोग उनके विषयमें तरह-तरहकी कल्पना करते हुए उन्हें निहार रहे थे।

जापानी लोगोंकी शारीरिक शक्ति, प्राणशक्ति और उनके परिश्रमी स्वभाव की ओर मेरा ध्यान गया। कद्दावर रूसी लोगोके साथ भिड़ कर जो उनको एक बार हरा सके थे और विषम प्रसंगों पर भी जो हिम्मत नही हारे थे, ऐसे ये सारे लोग केवल देशनेता नही हैं, बल्कि स्वाभाविक जीवन जीनेवाली सामान्य प्रजा ही है—इस विचारसे इन लोगोंके प्रति मनमें आदर उत्पन्न हुआ।

इन लोगोंकी किंचित् छोटी आंखें, रीछके जैसे मोटे व काले-काले बाल, कुछ बैठी हुई नाक और इस कारण ऊपर उठे हुए गाल—यह सब मेरे निरीक्षणका विषय था। और इन लोगोंको मंजु व रेवतीकी रंगीन साड़ियां और मेरी सफेद दाढ़ी देख कर कुतूहल होता था; इतना ही नहीं, मौका ढूंढ़ कर वे हमारे फोटो भी लेते थे।

मछलियां देखनेके लिए हमें टिकट खरीदनी पड़ी थी, पर लोगोंका दर्शन प्राप्त करनेके लिए हमें कुछ नहीं देना पड़ा। लेकिन हमारे फोटो लेनेके लिए तो इन बेचारोंको हमारी इजाजत लेनी ही पड़ती थी। शामके इस अनुभवके बाद मनमें निश्चय हुआ कि कुतूहल सचमुच जीवनानन्दका एक बड़े ही महत्त्वका और सार्वभौम पहलू है।

वापस लौटते समय हम होटलकी मालकिन ओबासानसे मिले। इनका एक दूसरा बड़ा होटल हमने देखा। काफी बड़ा विस्तार था। इसमें सब तरहकी सुविधाएं थीं। लेकिन इसका सामुदायिक स्नानागार देख कर तो हम चकित ही रह गये। सचमुच ये मां-बेटी बड़ी चतुर होटल संचालिकाएं हैं।

हमने यह होटल छोड़ा तब ओबासानने हम सबको एक-एक नहानेका सुन्दर तौलिया भेंटमें दिया। यहांका यह रिवाज ही है। और कुछ नहीं तो एकाध पंखा ही सही, परन्तु देंगे जरूर। तौलिएके ऊपर शायद होटलका नाम बुना हुआ होगा, लेकिन हमारे लिए तो यह बुनावट सुन्दर चित्र जैसी ही है।

जापानकी इस यात्रामें हमें यहांके लोक-जीवनकी और राष्ट्रीय जीवनकी हर रोज नित-नई झाकियां देखनेको मिलीं इसलिए प्रत्येक दिनका अनुभव अपना एक अलग महत्त्व रखता है।

यहां हम एक साथ डेढ़ दिन रहनेवाले थे, इसलिए अपने कपड़े धोबीको दे सके। वे अच्छी तरह धुल कर आ गये, इसलिए हमारी आगेकी चिंता कम हुई। लम्बी यात्राका यात्री इस चीजके महत्त्वको तुरन्त समझ सकता है।

यहां एक बात और लिखने लायक है। जापानमें इतने घूमे, लेकिन किसी भी जगह चोरीका डर नहीं दिखाई दिया। होटलमें चीजें चाहे जहां रखें, फिर भी किसीके उठा ले जानेका डर नहीं था।

हमारे इस होटलमें पहुंचते ही ईमाईसानके द्वारा व्यस्वथापिका बहनने कहा : "आपके पास पैसे अथवा कोई कीमती वस्तु हो तो हमारे पास रख दीजिये। हम संभालेंगे और जब आप जायेंगे तब आपको वापस दे देंगे।" यह सुन कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। तब उन लोगोंने बताया कि हमारे यहां भी कोई डर तो नहीं है, लेकिन कुछ वर्षों पहले एक बार किसीकी कोई चीज हमारे यहांसे खो गई थी। हमें नाज्जुब तो जरूर हुआ, पर तबसे हमने नियम बना लिया है कि यदि कोई विदेशी हमारे यहां आवे तो हमें इतनी सावधानी रखनी होगी। मैंने कहा : "हमारे पास जापानी सिक्के तो हैं ही नहीं। हमारा सारा व्यवहार ईमाईसानके हाथमें है। मेरे पास जो यात्री-हुण्डिया (Traveller's Cheques) हैं, उनका यहा कोई उपयोग नहीं कर सकता। फिर भी पोर्टफोलियो साथ ले कर फिरूं इसकी अपेक्षा इसे कोई संभाले यह अच्छा ही है। इसलिए इसे आपको सौंप देता हूं।"

१७. जापानी सत्याग्रह

नागाओका,
३-८-'५७

समय-समय पर जापानमें ईमाईसानके साथ अथवा दूसरे लोगोंके साथ बातें करते हुए यहांकी राजनीतिक परिस्थितिके विषयमें जा कुछ सुना है और सोचा है, उसे यहां देना लाभदायक होगा।

आज सुबह नहा-धो कर हम नागाओका छोड़ेंगे। आजका रात्रिवास ईहारामें

एक झेन-पन्थी बौद्ध मंदिरमें होनेवाला है।

अमरीकाकी राजनीति तो बिलकुल नवीनतम होती है। लेकिन उसका मानस अभी पुराना ही है।

अमरीकाने तय किया कि अपने जवानोंकी फौज जापानमें रख कर यहांके लोगोंको सदाके लिए दबा कर रखनेमें बुद्धिमानी नहीं है। यह नीति अंतमें महंगी भी पड़ेगी। फौज तो जापानी लोगोंकी ही रखनी चाहिए। समय आने पर जहां जरूरत होगी वहा इन लोगोंका उपयोग कर सकते हैं। जापान पर अपना अधिकार सैनिक हवाई जहाजोंके द्वारा ही सुदृढ़ करना चाहिए और सिर्फ वही एक विभाग अमरीकियोंके हाथमें रखना चाहिए।

एटम बमका उपयोग कर सकें इतने बड़े हवाई जहाज चलाने हों तो उनके लिए हवाई अड्डे भी बड़े चाहिए। इतने बड़े हवाई अड्डे बनानेके लिए और पुराने छोटे अड्डोंको बड़ा करनेके लिए लोगोंकी कुछ और जमीन पर कब्जा करना होगा। फिर भले ही इसके कारण खेतीका नाश हो या किसी लोकबस्तीको नष्ट-भ्रष्ट ही करना पड़े।

उनकी यह नई नीति ध्यानमे आते ही जापानी प्रजाकी आत्मा उबल उठी। सरकारको असहाय समझ कर कुछ युवक, विद्यार्थी, मजदूर और थोड़े साधु इकट्ठे हुए और उन्होंने अपनी सरकारके खिलाफ सत्याग्रह करनेका निश्चय किया।

अमरीका भले ही भड़कानेकी कोशिश करे अथवा कानून और शांति रखनेके लिए सरकार चाहे जितनी दमन-नीतिका उपयोग करे या हिंसात्मक कदम उठावे, फिर भी प्रतिहिंसा नही करेंगे, अत्याचार नही करेंगे और सारा दमन निर्भयतासे व अहिंसक वृत्तिसे सहन करेंगे ऐसा इन लोगोंने निश्चय किया। और उसके अनुसार मर्यादाका पालन भी उन्होंने किया। गत अक्तूबरमें यह सत्याग्रह शुरू हुआ था। पहले दिन कुछ लोग मारे गए और हजारसे भी अधिक सत्याग्रही युवक घायल हो कर अस्पतालमें पहुचे।

पीछे रहे हुए युवकोंमें कई साम्यवादी थे। पहले दिनके अनुभवके बाद इन सत्याग्रहियोंकी एक समिति विचार करनेके लिए बैठी। इसने तय किया कि सरकार पर अहिंसाका असर नही होता। इसलिए यह नीति छोड़ कर अब हिंसाका आश्रय लेना चाहिए।

यह बात अस्पतालमें पड़े हुए शुद्ध सत्याग्रहियोंके कानोंमें पड़ी। उन्होंने इस नई नीतिका खण्डन करके संदेश भेजा कि "हिंसा तो हम भी कर सकते थे। हम लोगोंने विचारपूर्वक अहिंसक प्रतिकारकी नीतिको स्वीकार किया है। इसमें हेर-फेर नही हो सकता। एक दिनमें ही श्रद्धा खो बैठें तो उसका कोई अर्थ नही है। पहले दिनका बलिदान व्यर्थ नही जाना चाहिए।

इसका अच्छा असर हुआ और लोगोंने अहिंसक प्रतिकारका सत्याग्रह चालू

रखा।

एक तो सत्याग्रह और वह भी अहिंसक रीतिसे करनेवाले स्वदेशके ही बन्धु। उन पर हथियार चलाना पुलिसको बड़ा अखरा। हुकुमका अनादर तो नहीं हो सकता और हुकुमका पालन करें तो हत्यारों जैसा बर्ताव करना होगा, इससे बेचैन हो कर एक सिपाहीने आत्महत्या कर ली! जिसके आधार पर राज्य चलता है, उस पुलिसका ऐसा रुख देख कर सरकार भी चेती। नये प्रधानमंत्री कीशीको लगा कि इस तरह राज्यका अधिकार अपने हाथमें टिक नहीं सकेगा। लोकमतका ऐसा प्रवाह देख कर उन्होंने प्रजाकी भावनाको मान दिया और हवाई अड्डोंके लिए लोगोंकी जमीन पर कब्जा करनेकी नीति रद्द कर दी।

इस तरह सत्याग्रहकी—जापानी भूमि पर गांधी-मार्गके पहले प्रयोगकी—शानदार विजय हुई। जिनके निमंत्रणसे हम जापानमें आये थे, वे हमारे निचिरेन-पन्थी गुरुजी निच्चिदात्सु फूजीई इस सत्याग्रहमें शामिल हुए थे। ये एक आध्यात्मिक वीर हैं। तपस्या और सेवाके द्वारा ये और भी तेजस्वी बने हैं। ये राजनीतिसे अलिप्त रहना [illegible] नहीं समझते है। ये किसी भी वर्तमान पक्षके साथ मिले हुए नही हैं। ये स्वतंत्र रूपमें विचार करते हैं और श्रद्धाके आधार पर निश्चित किए हुए विचारोंका जोर-शोरमें प्रचार करते हैं।

पहले ये राष्ट्रवादी थे। अपने धर्म पर और अपने राष्ट्र पर अटूट श्रद्धा होनेसे ये काफी प्रमाणमें साम्राज्यवादी भी थे। हिन्दुस्तानमें आ कर ये गांधीजीके आश्रम में रहे थे। गांधीजीके साथ उन्होंने विचार-विनिमय भी किया था। फिर उन्होंने गांधीजीके सत्याग्रह-मार्गका अध्ययन व चिंतन किया। आखिरी महायुद्धके बाद उनकी आंखें खुलीं और गांधीजीका मार्ग उनके गले उतरा। बादमें वे इस सत्याग्रह-में शामिल हुए, इसमें आश्चर्य ही क्या?

उनकी शिष्य-शाखाओंका काफी बड़ा विस्तार है। उनके प्रमुख शिष्य एकके बाद गाधीजीके वर्धा आश्रममें रहते आये हैं। उनके एक शिष्य स्वामी ईमाईसानको मैंने श्री विनोबाके पास भेजा था। वहां उन्हें भूमिदान व ग्रामदानका प्रत्यक्ष कार्य देखनेका अवसर मिला। भारतकी और जापानकी स्थिति अलग-अलग है। इसे अच्छी तरह समझ कर जापानमें सर्वोदयका प्रारम्भ किस तरह करना चाहिए, इसका वे गहराईसे विचार कर रहे हैं। किसी एक जिलेको चुन कर वहां आश्रम-की स्थापना करके श्रमदानकी ओर लोगोंको झुकाने, स्तूप बना कर लोगोंको धर्म-जीवनके प्रति जाग्रत करने और उनमे नव-जीवनका संचार हो इस हेतुसे कार्यक्रमों-की योजना करनेका उनका विचार है।

आज जापानके नेताओंमें एकवाक्यता नहीं है। एक पक्ष तो मानता है कि दुनियामें जो अनेक गुट (Blocks) हैं, उनमेंसे किसी एकके साथ सांठ-गांठ किये बिना छुटकारा नही है। रूस पड़ोसमें है। चीन भी पड़ोसमें है। इन लोगोंका

पुराना वैर कैसे भुलाया जा सकता है? इन लोगों पर कैसे विश्वास रखा जाए? इसलिए भलाई इसीमें है कि हम अमरीकाकी मदद लें। अमरीकाको जितने चाहिए उतने सैनिक अड्डे दें और अमरीकाकी नीति अपनाएं यही जापानके जीनेका एक-मात्र उपाय है। दूसरा पक्ष कहता है कि अमरीकाकी मदद जितनी मिले उतनी लेनी चाहिए, लेकिन अमरीकाको हवाई अड्डे नहीं देने चाहिए। जितना संभव हो उतना अमरीकाका प्रभाव कम करना चाहिए। ऐसा करनेसे ही जापानकी स्वतंत्रता सुरक्षित रहेगी।

इन दो विचारोंके बीच जापानका मानस झूल रहा है। इनके सिवा भारतके असरसे कुछ प्रभावित हुआ एक तीसरा पक्षभी कुछ-कुछ अपना सिर ऊंचा कर रहा है। वह कहता है: "रूस अथवा अमरीकाके गुटमें मिलनेकी कोई जरूरत नहीं है। ऐसा करना आत्महत्याके समान है। हमने साम्राज्यवादी नीति छोड़ दी है। हमें बड़ी सेनाकी आवश्यकता ही क्या है? देशमें शांति रहे, लोगोंको पुलिसका रक्षण मिले, इसके लिए आवश्यकतानुसार सेना रखना ही काफी है। पड़ोसियोंके प्रति हम सद्भाव रखेंगे। एक-दूसरेकी मदद करेंगे। किसीमें भी भ्रममें आकर शत्रुता नहीं करेंगे। आत्म-विश्वासके साथ राष्ट्रका विकास करते रहेंगे। हम आन्तरिक शक्ति और आतरिक श्रद्धा बढ़ायें, यही महत्त्वका काम है।"

इस नई नीतिके पीछे जो श्रद्धा है, जो निर्भयता है और जो दूरदर्शिता है, वह आध्यात्मिक तेजमेंसे ही प्रकट हो सकती है। इस नीतिके लोगोंके गले उतरनेमें कुछ समय लगेगा, लेकिन एक बार जब यह जड़ पकड़ लेगी तब शुद्ध विचार अपने आप ही फैलेंगे। दुनियाकी परिस्थिति ही ऐसी है कि यह विचार जापान के गले अपने आप ही उतरेगा। यदि ऐसा हो जाये तो भारत और जापान मिल कर दुनियाकी और खास कर एशियाई राष्ट्रोंकी उत्तम सेवा कर सकेंगे। और यदि चीन भी इस नीतिको पसन्द करे, तो दुनियाकी परिस्थिति पर हम एशियावासी काफी सात्त्विक अंकुश पा सकेंगे।

१८. सीमोभ्रुका सागर-दर्शन

ईहारा,
३-८'५७

नागाओकाके आरामके बाद हमारा कुतूहल हमें शुझुओकाके जिले (prefecture) में घूमने ले आया। एक टैक्सी करके हम साढ़े नौ बजे चले। यामाडाया होटलकी व्यवस्थापिका और उस होटलकी संस्थापिका, उसकी नब्बे वर्षकी बूढ़ी मांसे विदा ले कर हम निकले। कितनी ही सुरगें हमने पार कीं। एक जगह तो एक

से एक सटी हुई समामान्तर तीन सुरंगें हमने देखीं। दो सुरंगें तो आने-जानेके लिए अलग-अलग होंगी और तीसरी सुरंग शायद रेलके लिए होगी।

हमने होक्कायडो छोड़ा तबसे हम मानो जापानके पूर्वी किनारे पर ही सफर कर रहे हैं। इसलिए दो सुरंगोंके बीचमें प्रशान्त महासागरका दर्शन हो ही जाता है।

मैं नहीं मानता कि इतना बड़ा प्रशान्त महासागर आजके जैसा ही सदा बिलकुल शान्त रहता होगा। सरोवरके जितनी लहरें भी यहां दिखाई नहीं देतीं! ऐसा मालूम होता है मानो पवन अन्यमनस्क हो कर शायद कहीं चरने चल दिया है!

टैक्सीको काफी दौड़ा कर हम सीमीझु आये। उद्योगके कारखानोंका यह दृश्य भीषण ही कहा जा सकता था। लेकिन स्वामी ईमाईसानने हमें यहां बहुत सुन्दर सागर-किनारा दिखानेका वचन दिया था। यहां शराबका कारखाना चलानेवाले एक सज्जनकी ओरसे हमें दोपहरके खानेकी दावत थी। हम उनके कारखानेमें गये। इसमें शकरकंद, खजूर, मकई वगैरा बहुतसी चीजोंसे शराब बनाई जाती है। खजूरकी गुठलीका [illegible] रूपमें ये लोग उपयोग क्यों नहीं करते, इसका आश्चर्य व्यक्त करके मैंने कारखानेके मालिकको सुझाया कि आप इन गुठलियोंका तो कई तरहसे उपयोग कर सकते हैं। और कुछ नहीं तो इमलीके बीजकी तरह ही खजूरकी गुठलीका चूरा करके साइज़िंगके लिए कपड़ोंकी मिलोंमें इसका उपयोग हो सकता है।

गर्मियोंमें कारखाना एक महीना बन्द रख कर सारे यंत्रोंकी सफाई कराते हैं। आजकल ऐसी ही छुट्टी होनेसे हम यह कारखाना चलता हुआ नहीं देख सके। फिर भी कारखानेमें सब जगह घूम कर शराब बनानेकी क्रिया समझ ली।

खाने बैठे हम इन लोगोंके आतिथ्य-सत्कारकी गहराई समझ सके। हमारे लिए तो शाकाहारी भोजन था ही। लेकिन हमारा साथ देनेके लिए कारखानेके मालिक और दूसरे कार्यकर्ताओंने भी उस दिन शाकाहारी भोजन ही किया। भोजन हमें पूरा रुचिकर लगे इसके लिए मालिकने अपने रसोइयेको शाकाहारी व्यंजन सीखनेके लिए खास तौरसे टोकियो भेजा था। उसने उस दिन खास तौरसे समोसे बनाये थे! मैने उन्हें बताया कि इन समोसोंका आकार हमने अपने यहांके तालाबोंमें होनेवालों सिंघाड़ोंसे लिया है। उन्होंने हमें बड़े स्नेहसे विदा दी। हम अपनी टैक्सीमें बैठ कर फिरसे चल पड़े।

हम जहां ठहरे थे वहां सूरतके पासके हजीराके जैसा दृश्य था। यहां समुद्रने रेत फेंक-फेंक कर दस हजार वर्षकी मेहनतसे एक टीला बनाया है। उस पर चीड़ (Pine) के पेड़ उगे हुए थे। इस किनारेकी शोभाकी यही विशेषता थी। इन पेड़ोंके नीचे रेतमें थोड़ा आराम करके हम समुद्रकी तरंगोंकी मुलाकातके लिए गये। वहां चि० रेवतीकी समुद्री आत्मा तरंगोंकी मौज लेनेके लिए उत्सुक हुई। उसने

इसके लिए इजाजत मांगी। पानीकी गहराईका अन्दाज लगाना मुश्किल होनेके कारण मैंने उसे घुटने तकके पानीमें ही जानेकी इजाजत दी। उसीमें वह कितनी नाची-कूदी! रेशमकी साड़ी बिलकुल भीग गई, इस ओर उसका ध्यान ही नहीं गया।

समुद्रके इस किनारे शंख वगैरा कुछ नही थे। सिर्फ टेढ़े-मेढ़े और हजारों वर्षों के घर्षणसे छोटे व चिकने बने हुए पत्थर यहां-वहां बिखरे पड़े थे। उनमेंसे एक अर्धचन्द्राकार पत्थर इस स्थानकी स्मृतिके रूपमें मैंने उठा लिया।

समुद्रका पानी क्षितिज तक फैला हुआ था। हमारा मद्रासका समुद्र अपनी भव्यताके लिए पख्यात है। यहां क्षितिजकी रेखा उस्तरेकी धार जैसी पैनी नहीं थी। लेकिन मानो हलके कुहरेने क्षितिजकी रेखाको जान-बूझ कर जरा अस्पष्ट कर दिया हो, ऐसी काव्यमय दिखाई देती थी। सारा दृश्य ही स्वप्निल था। समुद्रमें यदि थोड़ी भी तरगें होतीं तो इस दृश्यको मैं उर्मिल कहता! इतना अधिक काव्य यहां लहरा रहा था। आसपासके पहाड़, रेतके विस्तारमें खड़े पेड, उनके बीचकी दो-तीन दुकानें और जिन पर जापानी अक्षरोंमें लेख खुदे हुए हैं ऐसे ऊंचे पत्थर—सारा ही दृश्य रोमांचकारी था।

यहां लानेके लिए ईमाईसानको हम धन्यवाद दे रहे थे, तभी उन्होंने इस स्थान के बारेमें एक पौराणिक कथा सुनाई।

"इस स्थानका नाम मीहो है। प्राचीन कालमें एक धीवर यहां मछलियां पकड़ने आया था। सुबहसे शाम तक जाल डाल कर बैठा रहा, लेकिन कोई मछली हाथ न लगी। उसने सोचा कि खाली हाथ घर क्या जाऊं। पूर्णिमाकी रात है, समुद्रके किनारे रात बिताऊं तो चित्तकी खिन्नता दूर होगी। चांदनीकी शोभा देखता हुआ वह रेतमें बैठ गया। इतनेमें आकाशसे अप्सराओंने झटपट कपडे उतार कर समुद्र-स्नानके लिए पानीमें प्रवेश किया। मनुष्य जैसे घोड़ा दौड़ाता है उसी तरह परियोंने उछलती तरंगों पर अश्वारोहण किया और जी भर कर जल-विहार किया। इसी बीच धीवरने एक अप्सराके वस्त्र उठा कर छिपा दिये।

"परियां कपड़ोंके बिना आकाशमें उड नहीं सकतीं। जल-विहारसे तृप्त हो कर एक-एक अप्सराने अपनी-अपनी साड़ी सुन्दरतासे लपेट कर आकाश मार्गसे गमन किया। धीवरने जिसका वस्त्र छिपाया था वह घबड़ाई। बिना वस्त्रोंके आकाशमें कैसे उड़ा जाय और पृथ्वी पर भी कैसे घूमा जाय! अकुलाकर वह बोल उठी—'अब मैं क्या करूं? मेरे वस्त्र यहांसे कहां गये?'

"धीवरने आगे आ कर कहा—'देवी, घबराइये नहीं। आपके वस्त्र मैं जरूर ला दूंगा लेकिन एक शर्त है। कहते हैं कि स्वर्गकी परियां और अप्सराएं अद्भुत नृत्य करना जानती हैं। वह नृत्य देखनेकी मेरी बड़ी इच्छा है।"

"परीने कृतज्ञतासे धीवरकी ओर देख कर कहा कि हमारे वस्त्रोंमें ही हमारा नृत्य शोभा देता है। धीवरने छिपाये हुए कपड़े ला दिये। परीने कलायुक्त ढंगसे वे

वस्त्र पहन लिये और पौ फटने तक धीवरको कई प्रकारके स्वर्गीय नृत्य दिखाये। समुद्रमें उषाकी लाली फैले उससे पहले ही परीने धीवरसे बिदा ली और स्वर्गका मार्ग पकड़ा।"

इस स्थानके उपयुक्त ही हमने यह पौराणिक लोकवार्ता सुनी। इतनेमें ही यहांके स्थानीय नेता श्री मोचीझुकी तीन छोटे-छोटे तौलिये ले आये। ये हमारे साथ ही यहां आये थे। प्रत्येक तौलिये पर यहाका समुद्री किनारा, फूजीयामा पर्वत और आकाशमें उड़ती हुई एक परी चित्रित थी। हम तीनोंको इस स्थानके स्मृतिचिह्नके रूपमें उन्होंने ये तीन तौलिये भेंटमें दिये और साथमें यहांके दृश्योंके रंगीन फोटो भी दिये।

परीकी नजरसे सारा समुद्री किनारा नजर भर कर देखनेके बाद हम तीसरे पहर यहांसे चले और शाममे पहले ईहारा पहुंच गये। नौ हजार मनुष्योंकी आबादी वाला यह एक छोटासा गाव है। यहां नारंगी बहुत होती हैं। नारंगीसे शरबत तैयार करनेका एक कारखाना देख कर हम यहांके एक-दो किसानोंके घर भी देख आये। अंदर जा कर उनके घरकी पूरी रचना देखी। यहां गांव गांवमें बिजली है। हर घरमें रेडियो तो है ही। प्रत्येक किसान-कुटुम्बके पास लगभग पांच एकड़ जमीन होगी। घर-घरमें हमने गाय भी देखी। लोग हर तरहसे सुखी दिखाई दिये। उत्सवमें काम आनेवाले तरह-तरहके मुखौटे (masks) हर घरमें होते है। यह एक धार्मिक रिवाज मालूम होता है।

इन किसानोंके घर देख कर जापानके लोकजीवनके विषयमें अच्छी जानकारी मिली। प्राथमिक शिक्षा सारे जापानमें अनिवार्य है। इतना ही नहीं, बल्कि उसके पीछे प्रचुर धन व्यय करके उसे उत्तम-से-उत्तम बनानेका यहांके नेताओंका विचार है। हमने देखा कि जापानके प्राथमिक स्कूलोंके मकान हमारे हाईस्कूलके मकानोंसे हर तरहसे बढ़े-चढ़े हैं।

रात्रि-विश्रामके लिए हम एक ध्यानपन्थी झेन बौद्ध मंदिरमें आ पहुंचे। दिन-भरकी थकान उतार कर हमने खाना खाया और इस परी-पुराणको लिख कर हम निद्राधीन हुए।

१९. इंजोनियरिंगके पुरुषार्थका प्रतीक

युई,
५-८-'५७

यह तो मैं कह ही चुका हूं कि हमारी यात्राका क्रम काफी विचारपूर्वक गढ़ा हुआ है। कहीं बौद्ध-स्तूप बनानेकी तैयारी देखनी थी, तो कहीं मंदिरके भक्तोंसे

मिलना था और उनके साथ आजकी जागतिक परिस्थितिके बारेमें धर्मचर्चा भी करनी थी। होक्कायडोमें सरोवरों और जंगलोंसे बना हुआ 'नेशनल पार्क' देखा और नौका-विहारका आनन्द लिया। इसीके साथ प्राचीन आयनु लोगोंके जीवन-क्रमका निरीक्षण भी किया। उसके बादके दो दिन यहांके प्राचीन वैभव और प्राचीन कलाको आकण्ठ पान करनेमें बीते। साथ ही हम यहांकी नैसर्गिक भव्यतामें भी निमज्जन कर सके। तुरन्त ही दूसरे दिन हमने समुद्र और समुद्री प्रजाके दर्शन किये और स्नानानन्द मनाते हुए लोगोंका कुतूहल देखा। इसी बीच एकाध दिन गांवके लोगोकी खेती व उनका ग्रामजीवन देखा, तो किसी दिन गांवके छोटे-मोटे उद्योग भी देखे। और इस सिलसिलेमें हमने एक ओर कई दिन तक लगातार जापानी होटलोंमें वास किया, तो दूसरी ओर बीच-बीचमें व्यक्तिगत घरों व मंदिरों का आतिथ्य-सत्कार भी स्वीकार किया।

आज हम इन सब चीजोंसे भिन्न आधुनिक जापानके वैज्ञानिक इंजीनियरिंग-पुरुपार्थका प्रतीक साकुमा बांध देखने गये थे। उसका वर्णन करना है। लेकिन उससे पहले ईहाराके मंदिरके विषयमें थोड़ा-सा कह दूं।

जिस कलायुक्त और प्रशस्त मंदिरमें हमने तीसरी तारीखकी रात बिताई थी, उस मंदिरका एक पुजारी साधु उसी मंदिरमें रहता है और ईहारामें आनेवाले अतिथि-अभ्यागतोंका आदर-सत्कार भी करता है। इस तरह यह मंदिर ध्यान-पूजा की जगह होनेके साथ साथ अतिथिशाला भी है। मंदिरका और पुजारीका खर्च गांवके लोग खुद ही चलाते हैं। अतिथि खुदके खाने-रहनेका खर्च देनेके लिए बंधे हुए नही हैं। अपने आप समझ कर वे जो दे दें सो सही।

चौथी तारीखको हम सुबह उठ कर तैयार हुए उस बीच मंदिरके आगनमें गांवके लड़के-लड़कियां कवायद और कसरतके लिए शिक्षकोंके साथ एकत्र हो गये थे। छहके घंटे बजते ही पुजारीने रेडियो चालू कर दिया। रेडियोंमेंसे सुन्दर मीठे संगीतके साथ साथ कवायदके हुक्म भी तेज आवाजमें निकल रहे थे। उन हुक्मोंके अनुसार उत्साह और स्फूर्तिके साथ कवायद कर रहे थे। कवायदकी ऐसी व्यवस्था यहां सभी जगह है। इससे सारे प्रदेशमें एक ही समय कवायद-शिक्षकके बिना भी बच्चे शारीरिक व्यायाम कर सकते हैं।

इस गांवके मुखियाके साथ बातें करनेमें यहांके बारेमें नीचे लिखी जानकारी मिली।

गांवमें कुल तेरह सौ साठ घर हैं। उनमें किसानोंके घर एक हजार है। खेती और चायके अलावा दूसरी आमदनी नारंगीके बगीचोंसे होती है। मनुष्यकी औसत उम्र चौंसठ वर्षकी है। अधिकसे अधिक आयु छियानवे तककी है। मुझे नही लगता कि हमारे देशमें इतने बढ़िया आंकड़े कही भी मिल सकते हैं। हमारे यहांकी औसत आयु तो पैंतीसके आसपास होगी। प्राथमिक पाठशालामें तेरह सौ विद्यार्थी पढ़ते

हैं, यानी हर घरसे एक बच्चा तो स्कूल जाता ही है। लेकिन मुझे अधिक खुशी तो यह जान कर हुई कि मिडिल स्कूलमें सात सौ लड़के पढ़ते हैं! गांवके नेताओंको इस तरह आंकड़ोंमें बातें करते देख कर मैंने उनसे पूछा कि आपके यहां पुरुष और स्त्रियों की संख्या किस अनुपातमें है। सामान्य तौरसे यह बराबर होनी चाहिये। लेकिन यहां पैंतालीस फीसदी पुरुष और पचपन फीसदी स्त्रियां हैं। इस सवालकी गहराईमें जानेका समय नहीं था। मेरे खयालसे पुरुष काफी संख्यामें शहरोंमें रहने चले जाते होंगे।

o o o

हमारे यहां जैसे भाटगर, हीराकुंड और भाखड़ा-नांगलके बांध हैं, वैसे ही यहां छोटे पैमाने पर लेकिन जापानके लिए बड़े-से-बड़ा एक साकुमा (Sakuma) बांध तेन्र्यु नदी पर बना हुआ है। इसे देखनेके लिए हम सुबह सवा सात बजे ईहारासे चले। ट्रेनमें करीब दो घंटे बिता कर हम हमामात्सु स्टेशन पहुंचे। वहां हमारे पूर्व-परिचित भाई मोचीझुकी मिले। हमारी परिचित टैक्सीके साथ वे तैयार खड़े थे। उस टैक्सीमें बैठ कर हमने पूरे दो घंटे पहाडोंके बीचकी घाटियोंको पार करते करते तेन्र्यु नदीके साथ-साथ मोटरका सफर किया। भारतमें साथ की हुई अपनी किसी उत्तम-से-उत्तम यात्राके मुकाबलेका यह दृश्य था। मेरी और तुम्हारी दोनोंकी आखोंमें यह दृश्य देखने पर भी तबीअत भरी नहीं। चारों ओर हरियाली ही हरियाली दिखाई दे रही थी। अधिकतर चीडकेऊंचे-ऊंचे पेड़ कनारबन्द खड़े थे, इन्होंने पहाड़ चढ़नेकी होड़ लगा रखी थी! यहांकी नदी तो मानो नागिनी तिस्ताका ही अवतार थी। हिमालयकी किसी भी नदीकी सहेलीके रूपमें यह शोभा दे सकती थी। इसके घुमावोंको देख कर इसे नागिनी या सर्पिणी चाहे जो नाम दिये जा सकते हैं। यह नदी पहाड़ोंके बीचमें मार्ग निकालती हुई आगे बढ़ती है। फिर भी यह शैलजा नहीं बल्कि सरोजा है। सुवा अथवा सुवातो नामके एक सरोवरमेंसे निकल कर यही दक्षिण-पूर्वकी ओर बहती है। रास्तेमें और पाच-सात नदियोंका पानी अपनेमें समेट कर अन्तमें वह पूर्वी प्रशान्त महासागरमें जा मिलती है। यह नदी जापानकी भाग्यलक्ष्मी सिद्ध होनेवाली है। इस नदी पर एक सौ पचास मीटर ऊंचा, ऊपर दो सौ चौरानवे मीटर चौड़ा और पाच खिड़कियोंवाला एक विशाल बांध बांधा गया है। जापानमें जो बड़े-बड़े बांध बांधे गये हैं, उनमें इसका भी स्थान है। शायद यही सबसे बड़ा बांध हो।

इसकी एक-एक खिड़कीका ऊपर-नीचे होनेवाला दरवाजा बारह मीटर चौड़ा, चौदह मीटर ऊंचा और वजनमें एक टनका है। बांधका रोका हुआ पानी जब काबूसे बाहर हो जाता है, तब ये पांच अथवा उनमेंसे कुछ दरवाजे थोड़े-थोड़े ऊंचे खींच दिये जाते हैं। इस तरह नदीके प्रवाहको चाहे जब काबूमें लाया जा सकता है।

बांधसे रोके हुए पानीका जब चारों ओर उपयोग होगा तब आजसे बीस हजार एकड़ अधिक जमीन सींची जा सकेगी और उपजाऊ बन जायगी। आजकल तो इस बांधका उपयोग बिजली पैदा करनेके लिए ही होता है।

इसकी पूरी कल्पना इस प्रकार है: तेन्र्यु नदी एक जगह एक बड़े पहाड़की आधी प्रदक्षिणा करके आगे दौड़ती है। इसलिए ऊपर बांध बांध कर पानीके स्तर-को खूब ऊंचा उठा दिया गया है। फिर, उस पहाड़मेसे दो बड़ी-बड़ी एक सौ सैतालीस मीटर लम्बी सुरंगें खोद कर उसके द्वारा पानीको एकदम नीचे ले गये हैं। पानीको नीचे नदीके प्रवाहमें छोड़नेसे पहले बड़ी-बड़ी टर्बाइनें रख कर इस पानीसे चक्राकार गति पैदा की गयी है। उस गतिसे बिजली पैदा करके एक ओर उत्तरमें टोकियो तक और दूसरी ओर दक्षिणमें नागोया तक पहुंचा दी गई है। इन केन्द्रोंके द्वारा यंत्र चलानेके लिए जगह-जगह यह बिजली वितरित की गई है। साकुमा बिजली-घरमें कुल साढ़े तीन लाख किलोवाट बिजली तैयार होती है। यानी हर साल एक सौ चौतीस करोड़ किलोवाट बिजली वह पैदा कर सकता है। इस पावर-हाउस तक जाते हुए रास्तेमें यंत्रोंके द्वारा पहाड़ोंमें जो विशाल और अद्भुत काम किये गये हैं, उन्हें देख कर मनुष्यने प्रकृति पर कितना प्रभुत्व प्राप्त किया है, इसका पूरा खयाल आता है।

मोटरसे जाते हुए एक जगह हम ठीक रास्ता नहीं मिला इसलिए हम नदीके एक ओरकी सुरंग लांघ कर सामने पहुंचे। फिर हमें भूल सुधारनेके लिए नदीके पाट-की ओर उतर कर उस पार चढ़ना पड़ा। इसमें मोटर चलानेवालेकी अथवा अपनी भाषामें कहूं तो तैलवाहनके सारथिकी पूरी परीक्षा हुई। बीचमें एक-दो जगह हमें पैदल भी चलना पड़ा। इस तरह इस घाटीमें कहीं-कहीं पैदल चल कर हमें जो ज्यादा समय बिताना पड़ा वह बड़ा लाभप्रद साबित हुआ। इससे हम घाटीकी और प्रवाहकी शोभा तो अच्छी तरह देख ही सके; बड़े-बड़े यंत्र मनुष्यके इशारेसे कैसे मिट्टी खोदते हैं, बड़े-बड़े राक्षसी हाथोंमें मिट्टीके ढेरको उठा कर मालगाड़ीके डिब्बोंमें कैसे भरते हैं और उसे ले जा कर कैसे बिछा देते हैं, आदि सारी लीला भी हम बारीकीसे देख सके।

आखिरमें हम इस सारे प्रोजेक्टके दफ्तरमें पहुंचे। वहां हमने थोड़ा आराम किया और जिला-समिति द्वारा आयोजित सरकारी भोज स्वीकार किया। यहां हमारे साथ खाना खानेके लिए निमंत्रित किये हुए अनेक अधिकारियों और पत्र-प्रतिनिधियोंके साथ बातें हुईं। 'आसाही' अखबारके प्रतिनिधि भाई यामामुराने सवाल पूछा कि "पिछले महायुद्धके विषयमें आपका क्या अभिप्राय है?" (पिछले महायुद्धमें भारत पराधीन होनेके कारण इंग्लैडके पक्षमें था। जापानका पराभव हुआ और इसलिए युद्धके अन्तमें उसे जो दण्ड देना पड़ा था उसका अमुक भाग भारतके हिस्सेमें भी आया था। लेकिन उस काफी बड़ी रकमको भारतने छोड़

दिया। इस तरह भारतने जापानके साथ दोस्ती कायम की और उसे दृढ़ किया) मैंने उनसे कहा—"मेरी दृष्टिसे पिछले महायुद्धमें किसीकी भी जीत नहीं हुई। दोनों ही पक्षोंने भारी हार खाई है। यदि ऐसा न होता तो आज विजयी राष्ट्र इतने भयभीत क्यों नजर आते?" इसके बाद मैंने उन्हें बम्बईके अपने एक व्याख्यानमें काममें ली गई उपमा थोड़ेमें सुनाई—"दो जबरदस्त सांप बड़े जोर-शोरमें आपसमें लड़े। दोनोंने जोर-जोरसे सिर पछाड़े। और इस घातक युद्धके अंतमें दोनों ही मर गये। फर्क केवल इतना ही था कि एक सांपसे दूसरा सांप आधा घंटा बाद मरा और इससे वह लड़ाईमें विजयी माना गया! पर विजयका लाभ तो उसे कुछ मिला ही नहीं!!"

आमंत्रित व्यक्तियोंमेंसे एक प्रख्यात सोशलिस्ट लेखिका इस वार्तालापमें उपस्थित थी। उन्हें यह किस्सा बड़ा अच्छा लगा।

खानेके बाद सारे प्रोजेक्टके चीफ इलैक्ट्रिकल इंजीनियर केइझो ओकुनोसान (Keizo Okunosan) हमें वहांका सारा पुरुषार्थ दिखाने ले गये। ये जितने चतुर थे उतने ही [illegible] भी थे। सारी चीजें विस्तारमें समझाने के लिए काफी उत्सुक थे, लेकिन अंग्रेजी भाषा पर उनका काबू नहींके बराबर था। हां, हमारी बातें वे काफी समझ लेते थे। जापानी लोग हमारे लोगोंकी तरह विदेशी भाषा पर काबू पानेके लिए अपना जीवन बरबाद नहीं करते। उन्हें किसी विदेशी सरकारकी सेवा तो करनी नहीं थी और न विदेशी प्रजासे शाबाशी ही प्राप्त करनी थी!

हमारा रास्ता एक सुरंगमेंसे हो कर जाता था। उस सुरंगकी एक शाखा टेकरीके एक ओर ले जाती थी, जहांसे सारे बांधका दूरसे पूरा दर्शन हो जाता था। फिर इंजीनियर साहब हमें उस प्रसिद्ध बांधके ऊपर ले गये और उन्नीस सौ तिरपन से आज तक कामकी प्रगति कैसे होती गई, यह उन्होंने हमें समझाया। बांधके ठीक मध्यमें ले जा कर उन्होंने हमारे फोटो लिवाये। बांधके फलस्वरूप बन हुए गहरे तालाबका पानी पहाड़को बेधकर दो सुरंगोंद्वारा उस पार कैसे जाता है यह उन्होंने समझाया। फिर लौटते हुए पावर हाऊसके यंत्रोंका रहस्य भी बताया। वे हमें पावर हाऊसके तलघरमें भी ले गये। यहांकी लिफ्ट पांच मंजिल ऊपर और पांच मंजिल जमीनके पेटमें भी ले जा सकती है। एक घंटे तक हमने यह सब ध्यानपूर्वक देखा। उसके बाद वे हमें कारखानेके सुन्दर बगीचेमें ले गये। वहां सारी योजनाका काफी बड़ा नमूना (model) रखा हुआ था; वह बताया। मॉडेलकी मददसे मैंने यह सब रेवती और मंजुको विस्तारमें समझा दिया। इसी बीच हमारे ईमाईसान यंत्रोंके मध्य कहीं खो गये। उन्हें ढूढ़ा और भाई ओकुनोको अनेकानेक हार्दिक धन्यवाद दिये। उन्हें भारत आनेका निमंत्रण दे कर हमने उनसे विदा ली। भाई ओकुनो अपने लोगोंके साथ जिस प्रेमसे बातें करते थे और उन लोगोंकी आंखोंमें जो प्रेमादर दिखाई देता था, उससे हमें विश्वास हो गया कि यह सारी संस्था सुन्दर

ढंगसे चल रही है। मैंने उनसे पूछा कि सब मिल कर कितने लोग उनके मातहत काम करते हैं? पहले तो वे मेरा सवाल ही नही समझ पाये। लेकिन बादमें उन्होंने विभागानुसार इतनी अधिक जानकारी दी कि उन सबका जोड़ तो मैं भूल ही गया।

इस तरह एक प्रचण्ड पराक्रमको अच्छी तरह देखनेका संतोष जीमे होनेसे वापिस लौटते हुए हम प्रकृतिकी शोभा और भी रुचिसे देख सके।

यहांके पहाड़ोंमे एक ही प्रदेशमें पेड़ोंकी विविधता नहीं होती। जहां जो पेड़ उगते हैं वहा सब जगह बस वे ही दिखाई देते हैं। एक जगह तो सारे चीड़ ही चीड़के पेड़ थे। कही-कही इन चीड़के पेड़ोंके पैर खुले दिखाई देते हैं। चि० रेवतीको सूझा कि जैसे एक तरहके फ्रॉक पहन कर कतारबन्द खड़ी हुई बालाओंके खुले पैर शोभा देते हैं, वैसे ही इन बाल-वृक्षोंके पतले तने भी शोभा दे रहे हैं।

बीच-बीचमे मनुष्योने पेड़ोंको काट कर पहाड़ी खेती की है। यह खेती स्वयं तो सुन्दर होती ही है, लेकिन इससे आसपासकी भव्यताको कही भी आंच नही आती।

तेन्र्यु नदी हमारी तिस्ताकी ही तरह पहाड़ोंमें फंसी हुई है, इसलिए उसमेंसे नहरें निकालना और उसके किनारे खेती करना लगभग असम्भव है। आसपासके पहाड़ोंमेंसे चली आनेवाली छोटी-छोटी अनेक नदियोंका पानी खीचना तो इसे आता है लेकिन देनेका नाम नही लेती। इसीलिए तो इसे साकुमा बांधसे बंध जाना पड़ा!!

मनुष्यका इतना जबरदस्त पुरुषार्थ देख कर और उसके विषयमे कदरके साथ गहरा चिंतन करने पर भी जब सारे दिनके अनुभवोंको जोड़ने बैठे, तब लगा कि जिस प्रकृतिके बीच मनुष्यने इतना पराक्रम किया है उस प्रकृतिकी समृद्ध शोभा और भव्यताको ही मुख्य स्थान देना होगा।

सुबहसे शाम तक अधिकाश समय पहाड़ोंके बीच ही बितानेसे मेरे पैर गिर्यारोहणके लिए छटपटाने लगे। यदि जवानीके दिन होते तो मै मोटरको लात मार कर कूद पड़ता और एकके बाद एक पहाड़ चढ़ कर शिखरोंको जीतनेका आनन्द प्राप्त करता। लेकिन वृद्ध मनुष्यकी ऐसी अभिलाषा दरिद्रके मनोरथकी भांति ही विफल हो जाती है। फर्क इतना ही है कि मैं अपने जमानेमे जिन-जिन पहाड़ोंके शिखरों पर पहुंचा था और 'पादस्पर्शम् क्षमस्व मे' ऐसी जिनकी प्रार्थना की थी, उन सबको याद करके उनका स्मरणानन्द जरूर ले सकता था।

दोपहरको मैंने हमें खाना खिलानेवाले लोगोंसे कहा भी कि मैं तो सह्याद्रिका बालक हूं। बचपनसे ही पहाड़ोंके बीच पला हूं। हिमालय जैसे मेरी तपोभूमि है वैसे ही क्रीड़ाभूमि भी है। यहां चारों ओर आपके ये सब पहाड़ देख कर मेरी पार्वतीय आत्मा ऐसा ही आनन्द अनुभव कर रही है जैसे वह स्वदेशमे हो।

हमारे लोगोंको जापानके पहाड़ोंका खास अध्ययन करना चाहिये। यहा कितने ही जीवित ज्वालामुखी हैं। ये धूम्रपानके रसियेकी तरह अखण्ड धुआं उगलते ही

रहते हैं। इसके अलावा यहांके भूकम्प, जहां-तहां बहनेवाले गरम पानीके चश्मे और उनका अच्छे-से-अच्छा होनेवाला उपयोग यह सब गहरे अध्ययनका विषय है। हमारे युवकोंको यहां आ कर भूगर्भशास्त्र, भूकम्प-विज्ञान और खनिज-विद्या अच्छी तरह सीख लेनी चाहिये। इन लोगोंने यहांकी नदियोंका पूरा उपयोग किया है, ऐसा तो नहीं कह सकते। लेकिन यह देश छोटा और तंग है। दोनों ओर महा-सागर है और जगह-जगह पहाड़ हैं। इसलिए यहां नदियोंका माहात्म्य कम है। सरोवरोंका उपयोग ये लोग करते ही हैं। उसमें खास बात यह है कि उनके किनारे बस कर ये जीवनका आनन्द भी प्राप्त करते हैं।

यहांकी प्रजा नाटे कदकी है। इसीलिए शायद इन्होंने सौ-दो-सौ फुट ऊंचे बढ़नेवाले महावृक्षोंको भी ठिगना बनानेकी कलाका विकास किया है। सैकड़ों घरों म [illegible]में बालखिल्य वृक्ष संभाल कर लगाये जाते हैं। इन ठिगने वृक्षोंकी उमर पूछें तो कई पचास वर्षके होते हैं और बहुतसे तो दो सौ-तीन सौ वर्ष पुराने होते हैं। लेकिन इनकी ऊंचाई दो-तीन फुटकी ही होती है। एक छोटेसे बर्तनमें ही ये अपनी जिन्दगी बिताते हैं। वृक्षोंको इस तरह छोटे करनेमें इन लोगोंको क्या आनन्द मिलता है, यह तो वे ही जानें! हम तो उनकी लगन और उनका ज्ञान देख कर केवल आश्चर्य ही कर सकते हैं। उनकी यह कला हमारे देशमें दाखिल करनेकी इच्छा मुझे तो नहीं होती।

इन पेड़ोंको ऐसे वामनावतारसे सन्तोष होता है या बेचैनी, यह पूछनेके लिए किस पत्र-प्रतिनिधिको उनके पास भेजें? हमारे पुराणोंमें अंगूठे जितने ऊंचे साठ हजार बालखिल्य ऋषियोंका वर्णन आता है। वे सब तेजस्वी सूर्योपासक थे। इन ठिगने पेड़ोंका जीवन वे शायद समझ सकें!

वापस लौटनेमें थोड़ी देर हो गई। हमें हामामात्सु स्टेशन जा कर शामको ५-१०की ट्रेन पकड़नी थी। हमें डर था कि शायद हम इस ट्रेनको वक्त नहीं पकड़ सकेंगे। इसलिए हमने हामामात्सुका रास्ता छोड़ कर वहांसे दो स्टेशन आगे ईवातो जाना तय किया। वहां ट्रेन ५-२० पर पहुचती थी। इस युक्तिसे हम गाड़ी आनेसे पन्द्रह मिनट पहले ही वहां पहुंच गये। यह समय हमने स्टेशनके पासकी चायकी दुकान पर बिताया। वहां हमने कुछ खाया और लोगोके रीति-रिवाजका निरीक्षण भी किया।

२०. भाई मोचीझुकी यूई

शामको ७-१० पर हम यूई पहुंचे। वहां हम गुरुजीके भक्त श्री मोचीझुकीके यहां ठहरे। मैंने सुबह स्नान नहीं किया था। इसलिए यहां नहानेकी इच्छा प्रकट

की। नहानेके लिए सड़क लांघ कर भाई मोचीझुकीके ही एक दूसरे घरमें जाना पड़ा। अंधेरेमें करदीप (टॉर्च) ले कर आते-जाते मनमें बिचार आया कि मैंने बिना सोचे-समझे गृहपतिको व्यर्थ ही परेशान किया। श्री मोचीझुकीके यहां जापानी रहन-सहन, जापानी चित्रकला और मूर्तिकला तथा जापानी रीति-रिवाज वगैरा अच्छी तरह देखनेको मिले। तकलीफ केवल इतनी ही थी कि खानेके लिए उन्होंने बेहिसाब व्यंजन तैयार कर रखे थे। यह विचार आता था कि कही ये लोग हमें बकासुर तो नही समझ बैठे हैं।

एक अच्छा-सा मजाक यहां लिखने लायक है। खानेके समय इन लोगोंने जान-बूझ कर हंसीके लिए कद्दूके एक टुकड़ेको मछलीके जैसा काट कर उस पर आंखें, दुम वगैरा यथारीति बना कर हमारे सामने रखा। घरकी स्त्रियोंका इशारा पा कर ईमाईसानने कहा: "काकासाहेब, आज तो आपको यह मछली खानी ही पड़ेगी।" मैंने टुकड़ा हाथमें लिया और कहा—"कबूल है, खाऊंगा।" चि० रेवतीने उस मछलीकी पूंछका एक टुकड़ा तोड़ा और चख कर कहा—"कद्दू है तो मीठा लेकिन ठीकसे पका नही है।" इस कारण इस निरामिष निर्दोष मत्स्याहारसे भी मैं बच ही गया!!

दूसरे दिन सुबह हम यूईकी स्थानीय पाठशाला देखने गये। थोड़ी-थोड़ी बारिश हो रही थी। छुट्टियां होनेसे पहले विद्यार्थी बाहर गये हुए थे। फिर भी चूंकि भाई मोचीझुकी स्थानीय नगरपालिकाके शिक्षा-विभागके अध्यक्ष थे, इसलिए उन्होंने काफी संख्यामें लड़के-लड़कियोंको इकट्ठा कर लिया था। शिक्षक तो सब थे ही। मुझे वहां छोटासा भाषण भी देना था। ईमाईसानने कार्यक्रम इस प्रकार बना रखा था कि प्रारम्भमें वे हमारे विषयमें, गांधीजीके विषयमें और दूसरी कुछ आवश्यक बातोंके विषयमें जापानीमें विस्तारसे बोलें। फिर मैं हिन्दीमें बोलूं और वे उसका अक्षरशः टीका-सहित अनुवाद करें और आखिरमें स्वयं उपसंहार करें।

मुझे आज सर्वोदयके विषयमें बोलना था, क्योंकि ये विद्यार्थी प्राथमिक पाठ-शालाके नही, मिडिल स्कूलके थे। मैंने देखा कि लड़के सब आगे बैठे थे और लड़कियां पीछे। 'पिछड़ी हुई जातिको आगे आने देना'—सर्वोदयके इस बुनियादी सिद्धांतको समझानेके लिए मुझे एक उदाहरण सूझा। मैंने कहा—"भारतमें भी पुरुष आगे बैठें और स्त्रियां पीछे बैठें ऐसा ही पहले रिवाज था। लेकिन अब हम इसे बदलते जा रहे है। सभाकी व्यवस्थाको बिना बिगाड़े यदि आप पीछे जा सकें और लड़कियोंको आगे बैठने दें तो मुझे खुशी होगी। शर्त इतनी ही है कि यह परिवर्तन तीन मिनटके भीतर हो जाना चाहिए।" मेरी इस आखिरी शर्तसे लड़कोंको जोश चढ़ा। वे फौरन उठे और देखते-ही-देखते ठीक डेढ़ मिनटमें उन्होंने मेरी सुझाई हुई व्यवस्था कर दिखाई। जरा भी गड़बड़ नहीं हुई। मैंने उनको शाबाशी दी और फिर सर्वोदय व अन्त्योदयकी बात समझाई। उसके बाद मैंने कहा कि "एशिया

खण्डमें नये युगका प्रारंभ हुआ है। अब हम एक-दूसरेको यूरोपीय लोगोंके द्वारा नहीं बल्कि सीधे ही पहचानना चाहते हैं। जिस तरह आपके देशका नाम जापान नहीं बल्कि निप्पोन अथवा निहोन है, उसी तरह हमारे देशका नाम इण्डिया नहीं बल्कि भारत है। हम इन्हीं नामोंका उपयोग क्यों न करें? हम एशियावासियों-को—खास कर निप्पोन और भारतके लोगोंको दुनियासे युद्धको बिलकुल खत्म कर देना है।" मेरी बातें शिक्षकोंने बड़े उत्साहसे सुनी। बच्चोंको उन्होंने नक्शेकी सहायतासे वे सब समझा दी।

वापस घर आ कर खाना खा कर हम कोफू जानेके लिए निकले। बीचमें कुछ घंटे निकाल कर हमें मिनोबू भी जाना था। घरसे चलते समय हमारे मेजबानोंने हमें सुन्दर रूमाल भेंटमें दिये और अपने साथ फोटो भी खिचवाये।

जापानका लोक-जीवन बारीकीसे देखने पर विश्वास हो जाता है कि यहांकी भाषा, पहनावा और रिवाज चाहे जितने भिन्न हों, लेकिन मनुष्यका हृदय, उसकी अभिलाषाएं और उसके आनन्दके विषय सब जगह एकसे ही होते हैं। भेदके तत्त्व काफी छिछले और अस्थाई होते हैं; जबकि एकताके तत्त्व जीवन-व्यापी गहरे और स्थायी होते हैं।

कल कोफूमें मेरे हाथसे एक स्तूपकी आधार-शिला रखी जानेवाली है। कल ही गुरुजीका जन्म-दिन भी है। इसलिए हमारी जापान-यात्रामें यह दिन हमारे लिए और यहांके लोगोंके लिए बड़े महत्त्वका है।

२१. जापानकी प्रजाकी विशेषता

हमारा देश जापानसे कई गुणा बड़ा है। हमारी जनसंख्या इतनी विशाल है कि कई तो उसके आंकड़े सुन कर ही आतंकित हो जायें। हमारे यहा जिस परिमाण-में बिजली पैदा हो सकती है और जितनी आगे चल कर उपयोगमें आएगी, उसके मुकाबलेमें छोटेसे जापानकी प्रवृत्तियां और उसके आंकड़े अधिक नही कहे जा सकते। लेकिन इस छोटेसे देशने स्वतन्त्र होनेके कारण पिछले सौ वर्षोंमें जो उन्नति की है, वहां तक पहुंचनेमें हमे कुछ समय लगेगा।

हमें स्वतंत्र हुए दस वर्ष हो चले हैं। हमारे देशकी प्राकृतिक समृद्धि कम नहीं है। अकेले लोहेका ही हिसाब लगावें तो आजकी यांत्रिक संस्कृतिके आधाररूप इस खनिज पदार्थकी कुल मात्रा और उसकी गुणवत्ता (quality) दुनियाके किसी भी देशसे कम नहीं है। हमारे यहांका लोहा उत्तम प्रकारका है और काफी परिमाणमें भी है। औद्योगिक प्रगतिके लिए जापानको जितने वर्ष लगे उतने हमें नहीं लगेंगे। यदि हम निश्चय कर लें तो कुछ ही समयमें हम अद्भुत प्रगति करके दुनियाकी

अगली पंक्तिमें आ सकते हैं। हमारी जनता समझदार और संस्कारी है। हमारा सामाजिक संगठन, जिसके असंख्य दोषोंसे हम चाहे जितने परेशान होते हों, दुनियाके दूसरे देशोंसे किसी भी तरह घटिया अथवा निराशाजनक नहीं है।

हमें तो केवल अपने लोगोंकी मानसिक तैयारी करनेमें ही देर लगेगी। "जैसा मानस वैसा मनुष्य," इसे हम भुला नही सकते। दूसरी एक महत्त्वकी बात यह है कि जापानी लोग जितना काम कर सकते हैं उतना हमारे लोग नही कर सकते। ये लोग जब काममें जुट जाते हैं तब राक्षसकी तरह काम करते हैं। अपने शरीर पर ये दया नही दिखाते। उनके मुकाबलेमें हमारे यहांके लोग आरामतलब है। सम्भव हो तो हम मेहनतसे वचना पसन्द करते हैं। अब हमें यह स्वभाव बदलना चाहिये। सबसे अधिक पिछड़े हुए माने जानेवाले अफ्रीकावासी भी जबरदस्त काम करनेवाले हैं। इस तरहकी परिश्रमी दुनिया हमारे आसपास फैली हुई है, इसलिए हमारा क्षीणवीर्य रहना या होना चल नहीं सकता। जापानी लोगोंकी कार्यशक्ति और सहन-शक्ति ये दोनों ही इनकी बड़ीसे बड़ी पूंजी हैं। चाहे जैसे संकट आयें, कष्ट उठाने पड़े और दुःखमें दिन बिताने पड़ें, फिर भी ये लोग हिम्मत नही हारते। इतना ही नही, किन्तु वे मुख पर दुःखकी रेखाएं भी प्रकट नही होने देते। और इनका यह स्वभाव ठेठ बचपनसे ही बन जाता है। जापानके बच्चे अपनी माकी पीठ पर बंधे-बंधे घूमते हैं तभीसे धीरजका पाठ सीखते रहते हैं। मां काम करती जाती हैं और पीठ परका बच्चा अपना भारी सिर हिलाता हुआ सारी दुनियाका निरीक्षण करता रहता है। वह मानता है कि जिंदगी तो ऐसी ही होती है।

जापानके प्रजाजनोंकी एक दूसरी महत्त्वकी विशेषता यह है कि वे बड़े हंसमुख हैं। वे हमेशा खुश रहते हैं और आसपासके लोगोंको खुश रखते हैं। उनके दांत तो मानो हंसनेके लिए ही बने हैं। लेकिन एक दोष इन लोगोंमें आ गया है। ये लोग अपने दांतोंको अच्छी तरह नहीं रख सकते। इसलिए दन्त-चिकित्सकोंका काम यहां दिन-प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। दांत घिस जायें अथवा सड़ जाएं तो वे तुरंत उन पर सोनेका पतरा चढ़वा लेते हैं। अपने सुवर्ण दांतोंसे यहांके स्त्री-पुरुष जब हंसते हैं तब उनका चेहरा प्रसन्न होने पर भी हमें प्रसन्न नहीं कर सकता। इतने अधिक कमजोर दांतोंसे इस प्रजाका काम कैसे चलेगा, ऐसी चिंता मनमें पैदा होने लगती है। यूरोपकी तथा जापानकी प्रजाके मुकाबलेमें हमारे दांत काफी अच्छे हैं। हमें उनको संभालना भी आता है। अपनी यह विशेषता हमें बड़ी हिफाजतसे टिकानी चाहिये। किसी भी प्रजाके लक्षणोंकी पहचान वहांके गांवोंकी प्रजामें ही हो सकती है। इस छोटेसे देशमें जमीन थोड़ी है। खेतीके लायक जमीन तो और भी कम है। लेकिन जनसंख्या बढ़ती ही जा रही है। इसलिए यह देश कृषि-प्रधान अथवा गांवोंका देश नही कहा जा सकता। शहर बढ़ते जा रहे हैं। साथ ही साथ शिक्षा और विज्ञान भी बढ़ता जा रहा है। यहां खेतीकी मानी जानेवाली पैदावार

सचमुच केवल खेतीकी ही नहीं होती। इस उद्योग-प्रधान प्रजाकी महत्त्वाकांक्षा पिछले महायुद्धमें कुचल भले ही गई हो, लेकिन अब फिरसे वह जाग्रत हुई है। बढ़ते हुए उद्योग-धन्धोंका अपना माल बेचनेके लिए इन्हें नये-नये बाजार तैयार करने होंगे। मालको सस्ता बनाना और उसे आकर्षक रीतिसे कैसे बेचना इस कलामें ये लोग यूरोप व अमरीकासे कहीं आगे बढ़े हुए हैं।

ऐसी प्रजासे बहुत कुछ सीखा जा सकता है। हमारे युवक यहां आ कर इनके बीच रहें और इनके जितना काम करें तभी वे योग्य बन सकेंगे। कुछ चतुर व मेहनती जापानी युवकोंको अपनी संस्थाओंमें हमें रखना चाहिये। इस तरह स्वभाव व आदतोंका विवेकपूर्वक आदान-प्रदान हो सकता है। इसमें काफी विवेकसे काम लेना होगा। इसीमें हमारे चरित्रकी कसौटी है और तभी हम जापानके जितने आगे बढ़ सकेंगे।

उद्योगिता और सर्वसहिष्णु प्रसन्नताके साथ इनकी तीसरी एक विशेषता अनुशासन अथवा तंत्रनिष्ठा है। किसीको काम सौंपा तो वह ठीकसे करेगा ही इसका विश्वास रखा जा सकता है। इसलिए सामान्यतया इन लोगोंको किसी भी काममें अपना दिमाग लगानेकी आदत कम होती है, लेकिन यह कमी ढंक जाती है। सूचना देनेमें यदि आपने भूल की हो तो आपका काम आप जानें। दी हुई सूचनाके मुताबिक ये काम बराबर कर देंगे। इसलिए इन्हें विश्वासपूर्वक काम सौंपा जा सकता है।

हर जगह मधुर स्वागत स्वीकार करनेके बाद विदाई लेनेके लिए यात्रीके पैर तुरंत आगे नहीं बढ़ते। लेकिन इसका क्या इलाज? यूई छोड़ते हुए हमें भी दुःख हुआ। गृहपतिकी मा और पत्नी दोनों ही लोक-संस्कृतिकी उत्तम प्रतिनिधि थी। घरका बहुतसा काम वे अपने आप ही करती थी। दक्षताके साथ वे सारी जगह स्वच्छ और व्यवस्थित रखती थी। बच्चोंका ठीक पालन करतीं और पतिको प्रसन्न रखती थी। वे इस बातका पूरा ध्यान रखती हैं कि मेहमानोंको जरा भी यह न लगे कि उनकी वजहसे घरके लोगोंको किसी भी तरहकी विशेष मेहनत करनी पड़ती है। इसीका नाम संस्कृति है। सब जगह सुव्यवस्था रखना, प्रसन्नता फैलाना और उसके लिए जो कष्ट उठाने पड़ें उनमें जीवनका आनन्द मानना यह कोई छोटी-मोटी साधना नहीं है।

किसी भी देशकी संस्कृति उसके शानदार शहरोंमें नहीं मिलती। वह छोटे-बड़े गांवोंमें और कस्बोंमें संतोषसे चलनेवाले गृहस्थाश्रममें ही दिखाई देती है। इसलिए ऐसी मेहमानदारीसे दूर होते समय थोड़ा-बहुत दुःख होता ही है।

सुबहसे आकाश अनमना-सा दिखाई दे रहा था। जिसके लिए मैं छटपटा रहा था वह फूजियामाका शिखर आखिर चौथी तारीखकी शामको दिखाई तो दिया, लेकिन उसके सिर पर बर्फका मुकुट नहीं था। तीन साल पहले भी हमें फूजियामाके दर्शन नहीं हुए थे। इस बार भी हवा अच्छी न होनेसे इस पर्वतोत्तमके दर्शन

दुर्लभ हो रहे थे और जब हुए भी तो बिना मुकुटके ! बड़ी भारी निराशा हुई। मेरे साथ सहानुभूति दिखानेके लिए ही यदि आकाश आंसू गिरा रहा हो तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं !

इस प्रदेशमें वर्षाकी कोई अलग ऋतु नहीं होती। जब जीमें आये वर्षा होने लगती है। आजकी बारिश आसपासकी खेतीके लिए लाभदायक है, इसलिए किसान खुश हैं।

२२. तपोभूमिका वैभव

कोफू,
७-८-'५७

यूईमे कोफू जाते हुए रास्तेमें मिनोबू आता है। यदि हम यह स्थान न देखते तो बड़े ही घाटेमें रहते। दो ट्रेनोंके द्वारा उपलब्ध डेढ़ दो घंटेमें हमने एक उत्तमसे उत्तम संस्कार-यात्रा पूरी की। इतने समयमें ही सब देखना था, इसलिए पहलेसे ही सब व्यवस्था विचारपूर्वक कर रखी थी; वरना यह संभव नहीं था।

निचिरेन-पंथके मूल संस्थापक महात्मा निचिरेनको अब सब बोधिसत्त्व कहते हैं। उनकी साधना और उनका प्रचार दोनों ही बड़े उग्र थे। अनेक तरहकी जोखिम उठा कर, राजकर्ताओंको नाराज करके और विरोधियोंको अपने सख्त प्रचारसे व्याकुल करके उन्होंने धर्मशुद्धिका काम किया और जापानकी राष्ट्रीय संस्कृतिको बौद्ध धर्मके शुद्धसे शुद्ध संस्कार दिये। साढ़े सात सौ वर्ष पहले उन्होंने जो किया उसका असर जापानमें आज भी सब जगह दिखाई देता है। इन निचिरेन बोधि-सत्त्वको संकटके समय मिनोबूके जंगलोंमें अज्ञातवासमें रहना पड़ा था। इस स्थान-मे उन्होंने नौ वर्ष तक अपने शिष्योंके द्वारा धर्म-प्रचारका कार्य चलाया। इसलिए इसमें जरा भी आश्चर्यकी बात नहीं है कि निचिरेन-पंथके लोग इस स्थानको अपना मदीना समझें। आज यह स्थान धार्मिक कला व धार्मिक वैभवका एक बहुत बड़ा केन्द्र बन गया है। निचिरेन-पंथके बड़े-बड़े मुखिया यहां रहते हैं और सब केन्द्रोंकी व्यवस्था संभालते हैं।

गुरुजी चिचिदात्सु फूजीई भी इसी पंथके एक धार्मिक मुखिया है। लेकिन उनका वैभवमें विश्वास नहीं है। धर्मके चैतन्यको जाग्रत व प्रज्ज्वलित रखना, लोगोंमें जागृति पैदा करना, सादगीमें रहना, हमेशा घूमते रहना और वैभव व आरामसे दूर रहना यही उनका स्वभाव दिखाई देता है। जब उन्होंने धर्मकार्यके लिए अपना जीवन अर्पण करनेका संकल्प किया, तब उस संकल्पको दृढ़ करनेके लिए अपने दोनों हाथोंके बाहुओंको (तीन-चार इंचके व्यासके वर्तुलमें) जलती हुई

मोमबत्तीसे दागा था। आज भी उनकी बाहुओंकी चमड़ी पर उसके निशान दिखाई देते हैं। उनके शिष्य भी जब धर्मकार्यके लिए अपना जीवन अर्पण करते हैं तब इसी तरह अग्निदीक्षा लेना पसंद करते हैं। दीक्षा-पद्धतिका यह आवश्यक अंग नहीं है। सब भिक्षु शिष्य ऐसा करते ही हों, सो भी नहीं। लेकिन ईमाईसान, मारुयामासान, सातोसान वगैराकी बाहुओं पर तो ऐसे निशान हैं। धीरे-धीरे गुरुजी और उनके शिष्योंका कार्य निचिरेन-पंथके अंदर भी अलग-सा पड़ रहा है।

धर्म-जागृति और विश्वशांतिके लिए गुरुजीको इस तरह उत्कट कार्य करते देख कर निचिरेन-पंथके मुखियोंको भान हुआ कि उन्हें भी कुछ करना चाहिए। समय-समय पर अपीलके पत्रक प्रकाशित करना और अपना अभिप्राय जाहिर करते रहना वगैरा कुछ काम उन्होने हाथमें लिये हैं। उनके पास काफी साधन-सम्पत्ति व सब तरहकी सुविधाएं हैं, इसलिए वे बहुत काम कर सकते हैं। लेकिन उसमें प्राणोंका संचार करना आसान नही है।

मिनोबू मंदिरके साधुओंको गुरुजीने खुद खबर दी थी, इसलिए यहां हमारा आतिथ्य-सत्कार अच्छी तरहसे हुआ। हमारी पूरी व्यवस्था एक अल्प वयकी साध्वी स्त्रीने की थी। बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियां दोनों ही पूरा सिर घुटा लेते हैं और एक ही तरहकी पोशाक पहनते हैं। इसलिए अमुक व्यक्ति पुरुष है या स्त्री यह पहचाननेमें कई बार कठिनाई होती है और कभी-कभी तो भूल भी हो जाती है।

स्टेशनसे हमने मोटर ली और मिनोबू शहर पार करके पहाड़ी प्रदेशके जंगलमें प्रवेश किया। वहां पहाड़ीके ऊपर मंदिर, मठ, बगीचे और दूसरी कई छोटी-बड़ी इमारतें मिल कर एक बड़ा शाही किला ही दिखाई देता है। यहां हमारे लिए भोजनकी पूरी तैयारी की गई थी। लेकिन हमारे पास इतना समय नही था, इस लिए धन्यवादपूर्वक इनकार करना पड़ा। मोटरसे जितना चढ़ सकते थे उतना चढ़नेके बाद बाकी सब जगह हमें पैदल ही घूमना था।

इस मठमें बड़े-बड़े दीवानखानोंसे भी बड़े कमरे हैं। दीवालों और पर्दोंकी कारीगरी अप्रतिम है। लकड़ीको खोद कर दीवारके ऊपरका भाग सजाया जाता है। इतना ज्यादा घूमे और इतना ज्यादा देखा कि आखें भी थक गयी। मुख्य मंदिरोंका वैभव तो बादशाही दरबारोंको भी फीका करनेवाला था। मूर्तियां, चमकते हुए झूमर और जरीके कपड़ोंकी कलगिया यानी मनुष्यकी श्रद्धाभक्ति व दानवृत्ति जो भी कुछ ले आवे और चढ़ावे वह सब यहां सुन्दर तरीकेसे सजाया हुआ था। हमारे यहां तो मंदिरोंमें बहुतसी चीजें चाहे जैसी पडी रहती हैं।

इस वैभवके बीच छोटे-बडे साधु बड़े टीमटामके साथ प्रसन्नता व गम्भीरतासे रहते थे और विचरते थे। एक जगह जरा ऊंचाई पर एक मंदिर था। निचिरेन बोधिसत्त्वकी अस्थियां वहां रखी हुई थी। ये लोग अस्थिको 'शरीर' अथवा 'शारीर' कहते हैं। यहांके आसपासके पहाड़ भी सुगढ़ दिखाई देते हैं। सब जगह घूमनेके

लिए रास्ते बनाये हुए हैं। केवल काव्यमय जीवन बिताना हो और 'धार्मिक' वातावरणका लाभ उठाना हो, तो इससे अधिक सुन्दर स्थान मिलना कठिन है। धार्मिक-कला और कला-धर्म ऐसी जगह ही पनप सकते हैं।

यह सब देख कर और पंथके अनुयायियोंकी श्रद्धाकी कदर करके हम कोफू देखनेके लिए आगे चले।

२३. कोफूका स्तूपोत्सव

कोफूका स्टेशन काफी बड़ा है। जैसे ही हम एक प्लेटफार्म पर उतरे वैसे ही दूसरे प्लेटफार्म पर गुरुजीकी गाड़ी आयी। वे स्वयं तीसरे दर्जेमें बैठे थे। जो लोग हमारे स्वागतमें चमड़ेके पखे बजाते हुए 'नम् म्यो हो रेंगे क्यो' का घोष कर रहे थे, वे सब गुरुजीके स्वागतके लिए दूसरे प्लेटफार्मकी ओर दौड़े।

इसके बाद हमारा एक बड़ा जुलूस निकाला गया। लोगोंने शहरमें छोटे-बड़े सभी मार्गोंको सजाया था। जैसे हमारे यहां जहां-तहां आम या अशोक वृक्षकी डालियां सजाते हैं, वैसे यहां जंगलमें बासकी कोमल-कोमल डालिया लाकर रास्तों पर सजा दी गई थी। इन डालियोंकी सजावट बहुत सुन्दर थी।

हम कोफूके सबसे बड़े होटल 'तोकीवा'में ठहराये गये थे। इस होटलमें हर कमरेका अलग-अलग नाम है और हर कमरेमें अलग-अलग टेलीफोन भी है। हमारे कमरेका नाम 'मिकुई' था। ईमाईसानने बताया कि जापानके बादशाह जब एक बार कोफू आये थे तब वे इसी होटलमें और इसी 'मिकुई' में ठहरे थे। यह मालूम होनेके बाद हमें अपना महत्त्व अधिक अच्छी तरह समझमें आया! गुरुजी इस होटलमें थोड़ासा ठहर कर दूसरी जगह रहने चले गये। उस रात्रिको इसी होटलमें गुरुजी और हमारे स्वागतके लिए एक बड़े भोजका आयोजन किया गया था। लेकिन लोगोंने उसे रद्द करके दूसरे दिन अंगूरके एक बड़े बगीचेमें एक क्लबकी इमारतमें और भी बड़े पैमाने पर उसका आयोजन किया। उस दिन रातको होटल में केवल शहरके ही बीस-तीस चुने हुए लोगोंके साथ खानेकी व्यवस्था रखी गई। कोफू शहर और यामानाची जिला (Prefecture) की ओरसे हमारा यह संयुक्त स्वागत था।

सोनेसे पहले मैंने श्रीमती रामेश्वरीजीके लिए टोकियो ट्रंक-काल किया, लेकिन वे अभी वहां नहीं पहुंची थीं। कलकत्तेसे तो वे समयमें निकली थीं, लेकिन हवा अच्छी न होनेके कारण उनका विमान रास्तेमें कहीं अटक गया होगा। अब वे दूसरे दिन दो बजे टोकियो पहुंचनेवाली थी।

यह तो लिखना भूल ही गया कि कोफू पहुंचते ही तुम्हारे चार पत्र मिले—एक

२६ का, दो २६ के और एक ३०का। इतने पत्र पढ़ने पर मानो थोड़े समयके लिए उड़ कर स्वदेश पहुंच गये हों ऐसा ही लगता था।

ट्रंक-काल करनेके बावजूद जब चीनकी यात्राका निश्चय न हो सका, तो ईमाईसानने सुझाया कि आप जापानको ही अधिक समय दीजिये; और ज्यादा भाग-दौड़ न करके निश्चिततासे एक जगह बैठ कर सब लोगोंसे मिलिये और जो भी कुछ अध्ययन-चिंतन करना हो वह कीजिये।

यहां जो लोग कोबेसे आये थे उनका आग्रह देख कर हमने तय किया कि नागासाकीके दो दिनोंमेंसे एक दिन कोबेको दें। लेकिन फिरसे सोचने पर यह तय हुआ कि नागासाकीका एक दिन कम करनेकी बजाय कोबेसे टोकियो हवाई जहाज मे जा कर समय बचा लिया जाय।

दूसरे दिन छह अगस्तको गुरुजीका जन्म-दिवस था। इस अवसर का लाभ उठा कर कोफूके भक्तोंने उसी दिन एक ऊंची पहाड़ी पर विश्वशांतिके लिए आयोजित स्तूपकी आधार शिला मेरे हाथसे रखनेका आयोजन किया था। पहाड़ी पर पहुंचने के लिए कई रास्ते थे। हर रास्तेसे लोगोंके झुण्डके झुण्ड ऊपर जाते दिखाई दे रहे थे। मोटर इस पहाड़ी पर नही चढ सकती थी और मेरे लिए भी इस पर पैदल चढ़ना मुश्किल था। इसलिए वे लोग मुझे ऊपर ले जानेके लिए बासकी बनाई हुई एक डोली ले आये। कितने ही शिष्यों और भक्तोंने बारी-बारीसे डोली उठाई। इस तरह भारतसे आये हुए काकासाहेब पहाड़के शिखर पर पहुंचे! इसमे अभिमानके शिखर पर पहुंचनेके लिए तो जरा भी गुजाइश नही है। उलटे, मैं तो अपंगताकी लाचारीकी शर्मसे पानी-पानी हो गया!

पहाड़ीका प्रसग पवित्र और गम्भीर था। स्थान पूजाके लिए सजाया हुआ था। आये हुए मेहमानोंके लिए शामियाने लगे हुए थे। पहाड़ीका शिखर होनेसे यह जगह सकरी और ऊची-नीची थी। आये हुए मेहमानोंमे एक ब्रह्मी-जर्मन मिश्र वंश के ऊंचे कदवाले बौद्ध साधु भी थे। उनकी ऊचाई और भड़कीले रगके चीवरमें वे सबसे अलग दिखाई दे रहे थे। भक्तोमें स्त्रियोंकी संख्या पुरुषोंसे कम नही थी। बच्चोंके उत्साहका तो कहना ही क्या?

यहाँ गुरुजी और दूसरे कई लोगोंके भाषण हुए। हम भाषा नही समझते थे, फिर भी गुरुजीका वक्तृत्व जोरदार और प्रभावशाली था इतना जरूर देख सके। आधार-शिला रखनेसे पहले मेरा मुख्य भाषण हुआ, जिसका जापानी अनुवाद लोगोंने बड़े हर्षसे सुना। मैंने कहा: "भारतमें छोटे-बड़े कई स्तूप हैं, लेकिन आज वे लगभग खंडहर हो गये हैं। स्तूपोंके प्रति जीवित श्रद्धा मैंने ब्रह्मदेशमें और यहां निप्पोनमें देखी। गुरुजीकी और जापानके असंख्य भक्तोंकी ऐसी अटूट श्रद्धा देख कर मैं इन स्तूपोंका महत्त्व समझ सका हूं।

"मैं यह भी देख सका हूं कि भारतमें या ब्रह्मदेशमें जैसे भगवान बुद्धकी अस्थि

(शारीर धातु) स्तूपोंमें होती है, वैसे यहांके स्तूपोंमें न होनेसे इतनी कमी मानी जाती थी। लेकिन तीन वर्ष पहले कुमामोतोमें जिस स्तूपकी स्थापना हुई उसमें रखनेके लिए भारत-सरकारकी ओरसे भगवान बुद्धके अवशेष प्राप्त होनेसे यह कमी दूर हो गई है। मानों अब यह सारा देश सनाथ हो गया। अब तो भारतके लोग भी यहां यात्राके लिए आने लगेंगे। जिस भूमिमें शाक्यमुनि भगवान बुद्धके अवशेष हैं वह हमारे लिए पुण्य-भूमि है। अब हम इस भूमिको स्वदेश-जैसी ही मानेंगे।

"असंख्य लोगोंकी भक्ति केन्द्रित करनेकी शक्ति इन स्तूपोंमें होती है। ये स्तूप लोगोंकी देशभक्ति और धर्मनिष्ठा दोनोंको एकत्र करनेका काम करते हैं। धार्मिक श्रद्धासे यदि ऐसे स्तूपोंकी रक्षा करें, तो देशकी रक्षा अपने आप हो सकती है

"जैसे हम पुण्य-पुरुषोंके फूल स्तूपोंमें आदरपूर्वक संग्रह करके रखते हैं, वैसे ही भगवान बुद्धकी पवित्र वाणीका संग्रह भी स्तूपोंमें हो सकता है। धर्मग्रंथ हमारी आध्यात्मिक पूंजी हैं। उनकी रक्षा भी ऐसे ही स्थानोंमें होनी चाहिए।

"यह स्थान निप्पोन देशके लगभग मध्यमें है। यहांसे धर्मके संस्कार दीर्घकाल तक चारों ओर फैलें और विश्वशांति तथा विश्वबन्धुत्वके गुरुजीके उपदेश सफल हों। आजके जमानेमें भगवान बुद्धका विश्वकार्य महात्मा गांधीने भारतमें चलाया। उनके द्वारा भारतमें धर्मश्रद्धा जाग्रत हुई और उसने अपना चमत्कार सारी दुनिया-को दिखाया। युद्ध बंद हों, राष्ट्रोंके बीच व जातियोंके बीच विग्रह टलें और न्याय, स्वतंत्रता, समता व बन्धुताकी स्थापना शांतिके ही मार्गसे हो, इसके लिए गांधी-जीने भारतको तैयार किया।

न हि वेरेण वेराणि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेण च सम्मन्ति एस धम्मो सनन्तनो॥

यह बुद्ध-वाणी भारतमें फिरसे जाग्रत हुई।

"गुरुजी गांधीजीसे मिले थे। दोनोंकी श्रद्धा एक ही तरहकी है। आजके पुण्य-प्रसंग पर मेहमानके नाते भगवान बुद्धकी जन्मभूमिका कोई व्यक्ति मिले तो अच्छा, यह समझ कर आपने मुझे यहां आमंत्रित किया है। मैं गांधीजीका एक तुच्छ सेवक हूं, इसलिए भी आपका मन मुझे बुलानेका हुआ यह मैं जानता हूं। गुरुजीके बहुत-से शिष्य गांधीजीके आश्रममें रह चुके हैं। इसलिए उनका और मेरा आत्मीय सम्बन्ध भी बना है। वे भारतमें जो काम करते हैं वह मेरा ही काम है ऐसा मुझे लगता है। भारतके यात्री जब इस देशमें आएंगे और इस स्तूपकी आधारशिला पर नागरी लिपि व हिन्दी भाषामें लिखा हुआ लेख पढ़ेंगे, तब यह देख सकेंगे कि निप्पोन और भारतके बीच हृदयका कितना अधिक ऐक्य सधता जा रहा है। एशिया अब फिरसे जागृत हुआ है। इस जागृतिमें निप्पोनने कोई कम हाथ नहीं बंटाया है। अब हमें एक-दूसरेकी मददसे और भगवान बुद्धके आशीर्वादसे सारे

विश्वमें शांतिकी स्थापना करनी है, जीवमात्रका दुःख दूर करना है और सबके सुखसे सुखी होना है। एक बड़े युगकार्यका हम प्रारम्भ कर रहे हैं। तथागत भगवान बुद्धके आशीर्वाद हम सबको प्रेरणा दें, यही आज हमारी प्रार्थना है।"

भाषणके बाद हम सबने कई बार प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करते-करते गुरुजी कागजकी रंग-बिरंगी पंखुड़ियां बीच-बीचमें उड़ा रहे थे। उन्हें लेनेके लिए बच्चे होड़ लगा रहे थे। कई वृद्धाएं पैरोंमें ताकत हो या न हो फिर भी आग्रहपूर्वक प्रदक्षिणा कर रही थीं। उनकी यह श्रद्धा देख कर उनके प्रति मनमें सम्मान पैदा होता था।

पहाड़ी परसे जुडवां दूरबीनके द्वारा आसपासका प्रदेश देखे बिना तो कैसे रहा जाता? लेकिन अब नीचे उतर कर घरका रास्ता लेनेका सवाल था। भक्त स्वयंसेवक मुबहकी डोली मेरे पास ले आये। लेकिन मैंने बैठनेसे साफ इनकार कर दिया। जिन सुन्दर अंगूरके बगीचोंमें हो कर हम ऊपर आए थे, उनकी मुलाकात लेता-लेता मैं नीचे उतरा। अंगूरकी बेलें, उनके कंगूरेवाले पत्ते और जहां-तहां लटकते हुए अंगूरके गुच्छे—यह सब इतना काव्यमय लगता था कि रेवती सीधी उतरती ही नहीं थी। वह तो इन बगीचोंमें घुमकर छोटे-छोटे गुच्छोंकी शोभा नजदीकमें निहारती थी। मैं ईमाईसानके कंधेका सहारा ले कर उतर रहा था। एक तो पगडंडी पहले ही तंग थी, उस पर बारिशके कारण फिसलन भी हो गई थी। कई जगह तो दो आदमी एक साथ चल भी नहीं सकते थे। बीच-बीचमें जल्दी जानेवालोंके लिए रास्ता भी छोड़ना पड़ता था। इस तरह कई दिक्कतें थीं। लेकिन इसीमें मजा भी था। पहाड़ीके नीचे हम रेलवे लाइन तक पहुंचे तब ईमाईसानका एक युवक भतीजा सामनेसे आया। अपने काकाको देख कर उसने प्रसन्न स्मित किया। थे तो काका ही, लेकिन साधु बने हुए! आत्मीय होते हुए भी पराये। नजदीक होते हुए भी दूर! प्रेमका ही रूपान्तर आदरमें हो गया था। उसकी आंखोंमें ये सब भावनाएं स्पष्ट दिखाई देती थीं। उसकी ओर मेरा ध्यान गया देख कर ईमाईसानने मुझसे कहा: "यह मेरा भतीजा है। थोड़ी देरके लिए मेरे घर चलेंगे क्या, ऐसा मुझसे पूछ रहा है।"

हम रेलवे लाइन लांघ कर हमारे इन्तजारमें खड़ी मोटरमें बैठे और सब प्रलोभनोंको छोड़ कर सीधे होटल गये। इसका मुख्य कारण यह था कि पहाड़ी उतरते-उतरते मेरे घुटनोंकी पूरी कसौटी हुई थी। लोग कहते हैं कि चढ़ना मुश्किल होता है, लेकिन मेरा अनुभव है कि चढ़ना आसान है। कड़ी उतराई तो हड्डी-हड्डीको ढीला कर देती है।

होटल पहुंचते ही तुम्हारा तारीख २७ की रातका लिखा हुआ पत्र मिला। यहांके अखबारोंमें यह समाचार भी पढ़ा कि पं० जवाहरलालजी पार्लमेंटके द्वारा बिल पास करा कर डाकखानेकी हड़ताल गैरकानूनी ठहरानेवाले है। इस कदमके

विषयमें और उससे हमारे कर्मचारियों पर होनेवाले असरके विषयमें विचार करने का मेरा काम नहीं था। मेरे लिए तो तुम्हारे पत्र अब समय पर मिलेंगे इतना भरोसा ही कामका था और संतोष देनेवाला था।

खाया-पीया और घुटने-सहित सारे शरीरको दोपहरका जरूरी आराम दिया। शरीर तो झट मान गया, लेकिन घुटने तो चि० रेवती और मंजु दोनोंसे काफी खुशामद करवानेके बाद ही राजी हुए। ये घुटने यदि हड़ताल कर देते और शरीर को खड़ा ही न होने देते, तो मैं क्या कर सकता था?

शामको शहरके बाहर एक विशाल द्राक्ष-मण्डपके नीचेसे हम गुजरे। वहां एक बहुत बड़ा क्लब था। यही शहर और जिलेकी ओरसे एक बड़ा स्वागत-समारम्भ रखा गया था। दोपहरको पहाड़ पर स्तूपके विषयमें बोला था। शामको निहोनके आतिथ्यके विषयमें और गुरुजी फूजीईके विषयमें बोला। यही उचित भी था। मारुयामासान तो खुश हो गये। भाषणके बाद मैंने गुरुजीको भारत-सरकार द्वारा छपवाई गई 'Way of Buddha' नामक कीमती पुस्तक भेंटमें दी और गुरु-जीके नाम लिखा हुआ तुम्हारा पत्र भी दिया। तुम्हें स्वप्नमें भी ख्याल न होगा कि तुम्हारे पत्रकी यहांके भक्तोंने कितनी कद्र की! ईमाईसानने तुम्हारा पत्र सारे जन-समुदायके सामने प्रथम मूल हिन्दीमें पढ़ कर सुनाया और फिर उसका जापानी में अनुवाद भी किया। अब सब लोग मेरे पीछे बैठी हुई रेवती व मंजुकी ओर देखने लगे। इसलिए उनका परिचय देते हुए मैंने कहा कि चि० सरोजकी गैर-हाजिरीमें ये दो बहनें उसका काम करती हैं। हिन्दीसे जापानीमें अनुवाद करनेका ईमाईसानको काफी मुहावरा हो गया है। मारुयामासान तो हिन्दी भूल-से गये हैं। उनकी अपेक्षा तो कलवाला युवक तासागान ज्यादा अच्छी हिन्दी बोलता है।

गुरुजीके विषयमें यहां मैं जो बोला उसका उल्लेख मेरे पत्रोंमें बीच-बीचमें आता ही है। मैंने यहां खास बात यह कही कि गुरुजी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा रखनेवाले व्यक्ति नहीं हैं। वे तो धर्म-पुरुष हैं। जो मनुष्य धर्मका रहस्य जानता है, उसमें यदि धर्मतेज हो तो वह राजनीतिक परिस्थितिमें अलग नहीं रह सकता। गुरुजी निप्पोनके किसी भी राजनीतिक दलमें शामिल नहीं हैं। उन्हें जो बात लोकहितकी और मानवहितकी दिखाई देती है उसीका वे प्रचार करते हैं। अभी तक उन्होंने देशकी और धर्मकी काफी सेवा की है। लेकिन इसके बाद उनके द्वारा और भी अधिक सेवा होनेवाली है। उनके रास्ते पर चलनेसे ही इस देशका भला होनेवाला है, इस विषयमें मुझे जरा भी शक नहीं है।

स्वागत-समारोह पूरा करके हम वापस आये। एक बार फिर टोकियो ट्रंक-काल किया और वहांकी सारी खबरें जान लीं।

सुबह जल्दी उठ कर तुम्हें यह पत्र लिखा रहा हूं। जहां बैठा हूं वहांसे दाहिनी ओर दूर-दूर तक पहाड़ियां दिखाई दे रही हैं। बाईं ओर एक बड़ा मकान अपने

खम्भेकी ओर हमारा ध्यान खीच रहा है। हमारी खिड़कीके नीचेके तालाबमें लाल मछलियोंकी लीला निहारता हुआ यह पत्र लिखा रहा हूं। उसी तालाबके किनारे पत्थरका हूबहू बनाया हुआ एक बड़ा मेंढकराज मेरी ओर ताक रहा है और मानो मेरी बातें ध्यानपूर्वक सुन रहा है।

तुम्हारे पत्र फिरसे ध्यानपूर्वक पढ़े। तुम्हारा खून सुधर रहा है यह जान कर संतोष हुआ। वजन बढ़ नहीं रहा है इतना काफी है। घटानेकी जरूरत नही है। डॉक्टर जसावालाकी चिकित्सा पूरी करनेके बाद जरूरत हो तो दूसरी दवा की जा सकती है।

तुम्हे करेलेका रस पीना पड़ता है, यह पढ़ कर प्रथम तो मुझे बड़ा मजा आया। कैसा मुह करके पीती होगी, यह देखनेको मैं वहां नहीं हूं इसका बुरा भी लगा। पर अब तुम्हारे प्रति सहानुभूति महसूस हो रही है। तुम्हारे ३० तारीखके पत्रसे लगता है कि अब तुम्हें कच्चे करेलोका रस धीरे-धीरे भाने लगेगा। यदि वे तुम्हे मेरे जैसे ही भाने लगे तब तो मुझे करेले छोड़ने ही पड़ेंगे। दुनियाका बैलेंस भी तो टिकना चाहिए न?

चि० अवनिके पत्र आते है, किन्तु वे संक्षिप्त होते है। अवनिका पत्र न आवे तो मजु उस बेचारेकी खबर ले लेती है। इधर बालका पत्र न आये तो रेवती तुरन्त उदास हो जाती है। तब मुझे बालका बचाव करना पड़ता है।

गरीब मुसलमानोंमे शादीके वक्त पतिको पत्नीके सम्मुख वचन देना पड़ता है: "पानीका मटका कबूल। लकड़ीका गट्ठा कबूल।" पर्दानशीन पत्नी घरका सब काम तो कर सकती है, लेकिन बाहर जा कर न लकड़ी बीन सकती है और न पानी ला सकती है। अपनी पत्नियोंको यात्रा पर भेजते समय आजके पतियोंको तो 'रोज का एक पत्र कबूल' ऐसा वचन देना चाहिए!

एक बात तो लिखनी रही जा रही थी। कोफू शहरके बाहर जहां स्वागत-समारोह होनेवाला था वहा हम काफी पहले पहुंच गये इससे बागमे जरा घूमे। वहां हमने तरह तरहके बुत (पुतले) देखे और एक जगह ग्रामोफोनका संगीत सुनने को ठहर गये। वही पासमे एक बड़ा सार्वजनिक स्नानागार था। उसके दोनों ओर दो दरवाजे थे। एकसे स्त्रिया अन्दर जाती थी और दूसरसे पुरुष। एक बड़े, चौड़े परन्तु छिछले हौजमे गरम पानी बह रहा था। उसके एक किनारे पुरुष नहा रहे थे और दूसरे किनारे स्त्रिया। भीतर जाकर ये लोग सारे कपड़े उतार कर नहाने उतरते है। केवल पुरुष या केवल स्त्रियां ही इस तरह नहाएं तो वह भी हमारी दृष्टिसे विचित्र है। लेकिन पुरुष व स्त्रियां दोनों ही हौजमें आमने-सामने इस तरह नहाएं, यह तो हमारी कल्पनामें भी नही आ सकता! यहाके लोगोंको इसका जरा भी क्षोभ नहीं होता। सार्वजनिक स्नानागारकी बाहरी दीवार पर भीतरके हौजका चित्र था, जिससे भीतरकी व्यवस्थाका पूरा-पूरा खयाल आ सके।

आज दोपहरको हम कोफूसे नागासाकी जानेके लिए निकलेंगे। सफर लम्बा है। कल पहुंचेंगे। वहांका बाढ़-संकट अब दूर हो गया है। पिछली बार हमने शहीद शहर हिरोशिमा देखा था। इस बार नागासाकी देखना है।

२४. नागासाकीका श्राद्ध

नागासाकी,
९-८-'५७

कोफूसे नागासाकीका रास्ता पूरे अट्ठाईस घंटेका है। कोफूमें जिस प्रकार ६ तारीखका महत्त्व था उसी तरह यहां ८ अगस्तको इस शहर पर पड़े हुए एटम-बमका द्वादश वार्षिक श्राद्ध था। इसके उपलक्ष्यमें होनेवाली कान्फरेंसमें हमें हाजिर रहना था। इसीलिए हमने यह लम्बा सफर बीचमें कहीं रुके बिना ही पूरा कर लिया। शुरूमें फूजी स्टेशन तक हमें तीसरे दर्जेमें जाना पड़ा। सच्ची यात्रा तो यही होती है, क्योंकि तीसरे दर्जेमें ही सामान्य जनताके दर्शन होते हैं। लोगोंके रीति-रिवाज व बोल-चालका कुछ खयाल आता है। बच्चोंकी लीला देखनेको मिलती है और मानवताकी सार्वभौम एकताका अनुभव होता है। लेकिन बिलकुल थका हुआ शरीर जब लम्बा हो कर नीदके लिए तरसता हो और नीद मिलनेकी कोई सुविधा या आशा न हो, तब मानवताके आकर्षणको मुलतवी रखना पड़ता है। फूजी स्टेशन अब आता ही होगा इसी उम्मीदमें किसी तरह समय बिताया। फूजी पर हमें गाड़ी बदलनी थी। स्टेशन पहुंचने पर मालूम हुआ कि दूसरी गाड़ीमें अभी एक घंटेकी देर है।

इस प्रदेशमें स्टेशन-मास्टरका कमरा ही ऊंची श्रेणीके यात्रियोंका प्रतीक्षालय होता है। एक तरहसे यह अच्छा ही है। स्टेशन-मास्टर खुद मेहमानोंकी ओर ध्यान दे सकता है और मन हो तो चायके लिए भी निमंत्रित कर सकता है। इतनी तपस्याके बाद जब प्रथम श्रेणीका वातानुकूलित (एयर कन्डीशन्ड) डिब्बा मिला तब शरीर और मन दोनों प्रसन्न हो गये। फिर मैंने तो सौंदर्य-सृष्टिमें विहार करनेके बदले स्वप्नसृष्टिमें डूब जाना ही पसन्द किया!

होन्शुसे द्वीपान्तर करके क्यूशु द्वीपमें प्रवेश करनेके लिए भी गाड़ी नहीं बदलनी पड़ती। स्टीमरमें बैठनेका या पुल लांघनेका सवाल भी नहीं था। तीन साल पहले कुमामोतो और आसो पहुंचनेके लिए हम इसी रास्ते गए थे। मैंने मंजु और रेवतीको समझाया कि इस द्वीपसे उस द्वीप तकका रेलका रास्ता समुद्रकी तलहटी-में एक सुरंग खोद कर जोड़ा हुआ है। लेकिन यह द्वीपान्तर-यात्रा रातको होनेके कारण उसमें किसी तरहका कुतूहल अनुभव नहीं होता।

इस क्यूशु द्वीपमें थोड़े ही दिनों पहले प्रचण्ड झंझावात आया था, जिससे इस प्रदेशको बाढ़-संकट भुगतना पड़ा था। उसके दृश्य अब सामने आने लगे थे। कहीं-कहीं बरसातके कारण पहाड़ियां धंस गई थी व उनके पत्थर बड़ी दूर-दूर तक फैल गये थे। पानीके बहावके साथ जो घास वह आयी थी वह बीच-बीचमे तारोंके खम्भोंके चारों ओर अटकी पड़ी थी। तारके खम्भे गिर न पड़ें इसलिए उनको थामनेके लिए उनके सिरसे नीचे जमीन तक जो टेढ़े तार तने रहते हैं, उनके आस-पास भी घास-फूस इकट्ठा हो गया था। मानो छोटीसी झोंपड़ी अथवा पिरामिड हो। बाढ़का पानी कहां तक चढ़ गया था, इसका अंदाज लगानेके लिए यह घास-फूस उपयोगी था। किसी नदीका पात्र कुछ नरम होगा इसलिए उसकी मिट्टी धुल-कर वह गई थी और प्रवाहमें एक नया ही प्रपात पैदा हो गया था! मिट्टीके घुल कर बह जानेसे कई जगह तारोंको खम्भोंका आधार ही नही रह गया था। बिजलीके तारोंको सहारा देनेके बदले फांसी पर चढ़े हुए मनुष्यकी तरह तारका ही आधार ले कर लटके हुए इन खम्भोंको देख कर और कही-कही तो तारको ही नीचे खींच कर खम्भोंको जमीन पर सोता हुआ देख कर दया ही आती थी। मीलों तक ऐसा दृश्य देख कर बड़ा दुःख हुआ। फिर भी इसमें आनंद इस बातका था कि लोग बिना घबडाये तेजीसे काममें लग कर इस परिस्थितिको सुधार रहे थे। धानके खेतोंमे पानीके साथ-साथ रेत और मिट्टी बिछ गई थी। इससे जो नुकसान हुआ उसका तो कोई इलाज ही नही था।

हम चार बजे नागासाकी पहुंचे। जापानके दूसरे शहर समतल भूमि पर बसे हुए हैं। लेकिन यह नागासाकी तो कई पहाड़ियों पर ऊंचा-नीचा बसा हुआ है। बड़े-बड़े रास्तोंको भी चढ़ते-उतरते देख कर मुझे पुर्तगालकी राजधानी लिसबन शहर याद आया।

स्टेशन पर जो भिक्षु लेने आये थे वे हमें श्री हासेगावा (डाइरेक्टर, सिविल इंजीनियरिंग) के यहा ले गये। गृहपति घर पर नहीं थे। बाढ़-संकटके निवारणके लिए सरकारकी ओरसे जो काम चल रहा था उसीकी देखरेखके लिए वे गये हुए थे। उनकी प्रेमालु पत्नीने हमारा स्वागत किया। नहा-धो कर हमने उनके यहां खाना खाया। श्रीमती हासेगावाने रेवती और मजुको अपने घरकी व्यवस्थाकी पूरी जानकारी दी। कुटुम्बियोंके फोटो दिखाये, कपड़े व कांचके बर्तन दिखाये और कई चीजें भेंटमें भी दी। दो घंटेमें इस बहनने हमारी दोनों बहनोंके दिल जीत लिये; और यह सब भाषाका सहारा लिये बिना ही! आंखोंकी भाषा सार्वभौम होती है। इस घरमें हमारा मुकाम थोड़ी देरके लिए ही था। दूसरी एक जगह गुरुजीके एक भक्तके यहां हमारे रहनेकी व्यवस्था की गई थी।

श्रीमती हासेगावासे विदा ले कर हम एन्टी-एटमबम-कान्फरेन्समें गये। यह सम्मेलन इन्टरनेशनल कल्चरल हालमें रखा गया था। वहां हजार डेढ़ हजार

लोगोंके सामने जिलेके गवर्नर और नागासाकी शहरके प्रतिष्ठित सेठ वगैरा बड़े-बड़े लोगोंके भाषण हुए। मैं भारतसे इतनी दूर आया हुआ मेहमान, खास तौर पर इस सम्मेलनके लिए और दूसरे दिनके श्राद्धके लिए, नागासाकी आया था। इसलिए लोगोंका मेरे भाषणके प्रति विशेष आकर्षण होना स्वाभाविक था। मैंने भारतकी जनताकी सहानुभूति प्रकट की और भारत-सरकारकी अन्तर्राष्ट्रीय नीति स्पष्ट की। लोगोंको मेरा भाषण बहुत पसन्द आया। उस दिन और दूसरे दिन भी कई लोगोंने इस भाषणके लिए मेरा अभिनन्दन किया। मेरे भाषणमें मुख्य बात यह थी "हिरोशिमा और नागासाकी पर जो घातक बम गिरे, वे सचमुच एशियाके हृदय पर ही पड़े हैं। उस समय हम सबने अनुभव किया कि पश्चिमकी घातक नीतिसे कोई सुरक्षित नहीं है। उन दो बमोंके धड़ाके सचमुच ही एशियाई संगठनके लिए उत्तमसे उत्तम व्याख्यान थे। मैंने देखा है कि इन तहस-नहस हुए शहरोंको जापानने देखते ही देखते फिरसे खड़ा कर दिया है। लेकिन अमरीकाकी जो साख टूटी सो अभी भी जुड़ी नहीं है। अमरीकाके ये दो प्रयोग उसे बड़े महंगे पड़े हैं। जैसे ईसामसीह क्रूस पर चढ़ कर दुनियाके तारणहार बने, वैसे ही हिरोशिमा और नागासाकी बमकी बलि चढ़ कर एशियाके जगावनहार बने हैं। इसलिए स्वतंत्र होते ही भारतने एशियाके तमाम राष्ट्रोंके प्रतिनिधियोंको इकट्ठा करके उनके सामने एक नवीन नीति प्रस्तुत की है कि लड़ाईखोर राष्ट्रोंके किसी भी गुटमें हम शामिल नहीं होंगे। हम सबके साथ मित्रता रखेंगे, लेकिन किसी भी युद्धमें सम्मिलित नहीं होंगे। एटम-बमके केवल प्रयोगोंसे ही कैसा नुकसान होता है यह हमने बिकिनीमें देखा है। इसलिए इस खतरेसे सारी दुनियाको आगाह करनेके लिए और ऐसे सर्वविनाशकारी प्रयोगोंको बन्द करानेके लिए हम सब प्रयत्नशील हैं। भारत-सरकार, भारतकी सारी जनता और हमारे सब राजनीतिक दल इस नीतिके बारेमें एकमत हैं। जापानने जो कष्ट सहन किया वह अब किसीको भी न सहना पड़े, ऐसी सुरक्षित स्थिति सारी दुनियाके लिए पैदा करनी है।"

इन्टरनेशनल कल्चरल हालमें प्रवेश करते ही सम्मेलनके प्रतिनिधिके नाते हमें रेशममें बने हुए सुन्दर पीले फूल लगानेको दिये गये थे। जब हम सम्मेलनसे बाहर निकले तब ये फूल हमसे वापस ले लिये गये! तुम्हें तो मालूम ही है कि ऐसी चीजें बच्चोंको खूब अच्छी लगती हैं, इसलिए मैं उनके लिए इन्हें सभाल कर रखता हूं। फूल जब वापस मांगे गये तब मुझे जरा विचित्र लगा। लेकिन बादमें यही रिवाज ठीक लगा। सार्वजनिक पैसे बेकार क्यों खोये जायें? ये फूल या तो दूसरी सभामें काम आ सकेंगे अथवा किराये पर लाये गए हों तो वापस दे कर थोड़े खर्चेमें एक सभा सम्पन्न करनेका संतोष मिल सकेगा।

नागासाकी शहर इन बारह वर्षोंमें बहुत विकसित हो गया है। इसलिए इसमें देखने योग्य चीजें काफी बढ़ती जा रही हैं। यहां पाच-सात मंजिलवाले एक बड़े

मकानमें आयोजित संग्राम-संग्रहालय और उसके आसपासका बगीचा ये दोनों खास तौर पर देखने लायक हैं। वक्तके अनुसार जितना देखा जा सकता था उतना देख-कर हम गुरुजीके भक्तके यहां गये। भक्तका नाम था सोजाबुरोसान त्सूजी (Soza-burosan Tsuji)। यह घर एक पहाड़ी पर कल्पनासे कहीं अधिक ऊंचाई पर निकला। लगातार दो-तीन दिनकी थकान चढ़ी होनेसे मुझे यह चढ़ाई कड़ी लगी। फिर भी वहां पहुंचने पर घरके सब लोगोंका मीठा स्वभाव देख कर मैं अपनी थकान भूल गया। उन लोगोंने हमें घरकी ऊपरकी मंजिलमें ठहरानेकी व्यवस्था की थी। मेरी थकानकी बात सुन कर उन्होंने तुरन्त कहा कि आप कहें तो आपकी रहनेकी सुविधा नीचे कर दें और हम ऊपर चले जायें। लेकिन मैंने तुरन्त मना कर दिया (यद्यपि स्नान, शौच आदिकी सब व्यवस्था नीचे होनेसे नीचे रहनेमें ही सुविधा थी)। ऐन मौके पर व्यवस्था बदलनेसे सभीको दिक्कत होती है, इसका मुझे अच्छी तरह अनुभव है।

इतनी ऊंची जगह रात बिताई इसका हमें अवश्य लाभ मिला। रातको शहर-के दीयोंकी सुन्दरता बड़े विस्तारमें दिखाई पड़ती थी। इस तरहका दृश्य मेरे लिए नया नहीं था। हवाई जहाजमें बम्बई, काहिरा, बर्लिन, टोकियो जैसे शहर जिन्होंने रातको देखे हों उनको शहरी निशा-प्रदीपोंका नशा कैसा होता है यह कहनेकी जरूरत नहीं। फिर भी वह तो उड़ता हुआ दृश्य ठहरा---विशाल, लेकिन अस्थायी। किसी एक दृश्यको देखो कि इतनेमें वह कुछ और ही रूप धारण कर लेता है; और वह अपनी कला प्रकट कर सके इससे पहले वहां कोई तीसरा ही दृश्य सामने आ जाता है। स्थायी रूपमें ध्यान करनेकी गुंजाइश उसमें नहीं होती। लेकिन सिंहगढ़ से चौदह-पन्द्रह मील दूर पूनाके निशा-रत्न जिन्होंने देखे हैं—आंखोंसे देखे हों या दूरबीनसे—उन्हें आकाशके तारे झलमल-झलमल टिमटिमाते क्यों हैं यह समझाना नहीं पड़ेगा।

आजकलकी खगोल-शास्त्रकी यानी ज्योतिषकी किताबोंमें तारा-नगरों (star-cities) का वर्णन आता है। ऐसे तारा-नगर हमारे विश्वमें एक-दूसरेसे काफी दूर-दूर बसते हैं। विराट दूरबीनकी आंखोंसे अब तक दो सौ तारा-नगर देखे जा सके हैं। यह हमारी आजकी मर्यादा है। ऐसे तारा-नगरोंके साथ हमारे बड़े-बड़े शहरोंके विद्युत्-द्वीपोंकी तुलना करें, तो सारी पृथ्वी पर करीब एक हजार बड़े तारा-नगर गिनाये जा सकते है।

विश्वपतिके तारा-नगर चाहे जितने कल्पनातीत बड़े हों, फिर भी उन सबमें एक सफेद रंगकी ही चमक है। लाल या नीले रंगका शक कहीं-कहीं जरूर पैदा होता है, लेकिन उनमें उस रंगकी छटा है यह कहना मुश्किल होता है। मनुष्यने आजकल अपनी तारा-नगरियोंमें कई तरहके चमकते हुए रंग पैदा किये हैं। उनकी अनेक आकृतियां बनाई है और उनके फव्वारे भी उड़ाये हैं! इतने विशाल विश्वमें

ईश्वरको रंगकी विविधता प्रकट करनेकी क्यों नहीं सूझी, यह एक आश्चर्य ही है।

नागासाकी कोई खास बड़ा शहर नहीं है। यहांके दीये रंग-बिरंगे और उज्ज्वल होने पर भी भड़कीले दिखाई नहीं दिये।

चामुण्डा पहाड़ीसे मैसूरकी शोभा अनोखी दिखाई देती है। मैं तो उसे अप्रतिम ही कहूंगा। लेकिन वह एक समतल मैदान पर फैली हुई शोभा है। नागासाकीकी विशेषता यह है कि शहर ऊंची-नीची पहाड़ियों पर बसा हुआ होनेके कारण उसके रातके दीये टेढ़े पर्देकी तरह फैले हुए दिखाई देते हैं। कुछ पास तो कुछ दूर। उनमें रंगोंकी मोहक पुष्प-छटा तो है ही।

इस सारे दृश्यसे कुछ ऊंचे और कुछ अलग दीयोंका एक गुच्छा खिला हुआ था। पूछनेसे मालूम हुआ कि वहां मिजाजी लोगोंका एक जलपान-गृह है। अपनी प्रतिष्ठा और वैभव भोगनेको तो उन्हें कोई मना नहीं करता। लेकिन सबसे अलग हो कर जनसाधारणसे घृणा करनेकी ऐसी वृत्ति किसे अच्छी लग सकती है?

रातको दीयोंको जलाते हुए देर तक जगनेकी होड़में शहरी लोगोंके सामने हम कहां तक टिक सकते थे? हमने उन नगर-तारोंको जी भर कर देखा और अपने समय पर आरामसे सो गये। सुबहके फीके अंधेरेमें वही दृश्य मैंने फिरसे देखा। रातके वैभवके मरसिया गाते हुए कुछ दीये वहां दिखाई दिये। उनके साथ अब किसकी सहानुभूति हो सकती थी!

सुबह हुई। आकाशमें सुन्दर आकृतियोंमें बिखरे हुए बादल बोल उठे: 'अरे जरा ऊपर तो देखो!' मंत्रमुग्ध वह दृश्य देखने लायक था। पूर्वगिरिके शिखर पर चंदोवेके समान फैले हुए वे बादल कुछ ऐसी उधेड़-बुनमें पड़े थे कि इस चमकते हुए लाल रंगका नारंगी रंग कैसे बनाया जाय? आखिर लाल रंगको नारंगी होनेमें बहुत देर न लगी। किन्तु बीचमें उसने कुछ क्षणके लिए सिंदूरी रंग भी धारण किया। फिर उस नारंगीका गिनी गोल्ड यानी पाउंडका सोना बना। उसीका देखते ही देखते शुद्ध सोना बन गया। लेकिन वह अधिक नहीं टिका। यह सोना रंगमें फीका होने पर भी चमकमें ज्यादा उज्ज्वल था और इसलिए और भी अधिक ध्यान खींचता था। हम रंग-परिवर्तनकी ये खूबियां देख रहे थे, इतनेमें उगाने ललकारा: 'रहने दो यह सब खेल। दिनकर महाराज स्वयं पधार रहे हैं।' आकाशके बादल भी आखिर दरबारके अनुभवी मुतसद्दी (युक्ति-प्रयुक्ति जाननेवाला कुशल अधिकारी या राजनीतिज्ञ) ठहरे! गम्भीर मुंह रख कर चाहे जैसा रंग धारण करने अथवा छोड़नेमें उन्हें कोई कठिनाई नहीं होती। जमते हुए कुहरेमेंसे भी सूर्यनारायणकी कांति खिल उठे इसलिए वे चमकते हुए बादल तुरन्त श्याम वर्णके बन गये और पहाड़की गहरी हरियालीके साथ होड़ करने लगे। दिनके उगते ही कल्पनाकी सृष्टि अस्त हो जाती है और व्यवहारकी सृष्टि सामने आ खड़ी होती है। हम उठे और नया दिन शुरू किया।

आजका मुख्य कार्यक्रम शहरमें अनेक जगह मनाये जानेवाले श्राद्ध-दिनके उत्सवमेंसे एक-दो जगह हाजिर रहनेका था। उसी बीच नागासाकी छोड़नेसे पहले कुछ समय निकाल कर शहरके प्रेक्षणीय स्थान भी देखने थे। इसमें मेरी एक कठिनाईका ध्यान भी रखना था। सुबह नहा-धो कर नाश्ता करके एक बार नीचे उतरनेके बाद दोपहरको फिर ऊपर चढ़ना मेरे लिए मुश्किल था। इसलिए कुछ कार्यक्रम छोड़ कर जरा जल्दी खाना खा कर मैं नीचे उतरना चाहता था। इसी सोच-विचारमें थे कि इतनेमें यह समस्या कुछ और ही ढंगसे सुलझ गई। सरकार-की जिला-समितिने हमें एक सुन्दर होटलमें दोपहरको खानेके लिए आमंत्रित किया। इसलिए करीब दस बजे हम अपना सामान ले कर और मेजबानोंकी बिदा ले कर नीचे उतरे। हमारे सिर पर छाता लगा कर हमारे मेजबान ठेठ नीचे मोटर तक हमें छोड़ने आये। यदि हमारे बीच कोई सामान्य भाषा होती तो हम एक-दूसरेके साथ बहुतसी बातें कर सकते। उसके अभावमें स्नेही आंखोंसे देखना, थोड़ा-सा हंसना और बार-बार नमस्कार करना बस यही हो सकता था! सुबह या शामको जब घरके सब लोग पूजाके लिए इकट्ठे होते थे तब हम भी उनके साथ आग्रहपूर्वक शामिल होते थे। यह भी हमारे बीच स्नेह-बन्धनका एक साधन बनता।

सरकारी अफसर और नगर-पिता जहां शहीदोंको पुष्प-गुच्छ अर्पण करनेवाले थे, उस महत्त्वकी श्राद्धविधिमें भाग लेनेका हमें निमंत्रण था। कार्यक्रम यह था कि दोपहरको ठीक ग्यारह बज कर दो मिनट पर (जिस क्षण बारह वर्ष पहले नागा-साकीके ऊपर बम पड़ा था उसी क्षण) शहीदोंको पुष्पहार अर्पण करके शांतिके कबूतर उड़ाये जायें। कई शामियाने लगे हुए थे। लगभग सारा गांव ही उलट पड़ा था। पहले लड़कियोंने वृन्द-वादनके साथ शांति-सूक्त गाये। नेताओंके भाषण हुए। फिर गवर्नरने सबसे पहले पुष्प-गुच्छ अर्पण किया। अर्पण किये जानेवाले गुच्छ चाहे जैसे नहीं रखे जाते थे। एक आड़े लम्बे टेबिलमें एक सीधमें बड़े-बड़े छेद किए हुए थे। जो जाता वह अपना गुच्छा क्रमके अनुसार टेबिलके छेदमें खोंस देता। भारतके प्रतिनिधि होनेके नाते मुझे शहीदोंको पुष्प-गुच्छ अर्पण करनेके लिए कहा गया था। मैंने भी अपना पुष्प-गुच्छ अर्पण किया। पक्षपाती फोटोग्राफर वहां काफी बड़ी संख्यामें उपस्थित थे और उन्होंने उस वक्तका मेरा फोटो भी लिया। यह सारी विधि पूरी करनेके बाद खानेके लिए हम एक सुन्दर होटलमें गये। वहां नगरके कई प्रसिद्ध व सम्मानित लोग आये थे।

लिखना भूल गया कि नगरके जिस उपवनमें श्राद्ध-विधि हुई थी, वहां नागा-साकीके एक प्रतिभाशाली मूर्तिकारने मानवताकी एक प्रचण्ड मूर्ति खड़ी की है। एक हाथ ऊपर करके घातक कर्म बन्द करनेका मानो आदेश दे रहा हो ऐसा वह पाषाणका पुतला है। इस पुतलेके विषयमें और इसके मूर्तिकारके विषयमें

जानकारी प्राप्त करनेका मैंने काफी प्रयत्न किया, लेकिन उसमें मैं सफल नहीं हुआ।

फुकुओका हाकाटा

खाना खा कर हम स्टेशन गये। वहांसे एक बजेकी ट्रेन पकड़ कर छह बजे हम फुकुओका पहुंचे। जापानी होटलमें जगह नहीं मिली थी इसलिए हम एक पाश्चात्य ढंगकी इम्पीरियल होटलकी सातवीं मंजिल पर ठहरे। यहां भी सब सुविधाएं जैसी चाहिये वैसी थीं। केवल लड़कियोंका कमरा मेरे कमरेसे काफी दूर था। टबमें गरम पानी भर-कर खूब अच्छी तरह नहाये। जापानके विषयमें कुछ अच्छी किताबें देखनेके लिए मैं वहांके कार्यालयमें गया। पर जाना व्यर्थ हुआ। आज ईमाईसानके सिरका एक बोझा कम था। इस होटलके सब नौकर अंग्रेजी समझते थे। इसलिए जो चाहिये वह हम मांग सकते थे और समझा सकते थे। यह सुविधा देख कर वे निश्चिन्त हो कर शहरमें गये और अपना काफी काम निपटा आये।

१०-८-'५७

यहां बड़े आरामसे रात बिता कर दूसरे दिन हम शहर देखने निकले। तुम्हें याद होगा कि तीन वर्ष पहले यही शहर हमने आध-पौन घंटेमें देखा था। उस समय निचिरेन बोधिसत्त्वकी विशाल मूर्ति देख कर हम विशेष प्रभावित हुए थे। वही मूर्ति मुझे फिर ध्यानपूर्वक देखनी थी और रेवती तथा मंजुको दिखानी थी।

हाकाटा और फुकुओका ये एक ही शहरके दो नाम हैं। विस्तारसे जानना हो तो शहरके एक विभागको हाकाटा और दूसरेको फुकुओका कहते हैं। पिछले महा-युद्धमें यह सारा शहर मटियामेट हो गया था। उसके बाद यहां शहरके प्रमुख भाग-में अमरीकन ढंगके मकान बनाये गये है।

निचिरेन बोधिसत्त्वकी मूर्ति बहुत ही बड़ी और भव्य है। जिस ऊंचे चबूतरे पर यह मूर्ति रखी गई है उसकी दीवार पर निचिरेनके जीवनके महत्त्वपूर्ण प्रसंगों-के चित्रोंकी पत्थरके खुदाईकामकी तख्तियां लगाई हुई हैं। वे सब हमने बड़े ध्यानसे देखी। फिर हमने मूर्तिकी प्रदक्षिणा की, बगीचोंके पेड़ देखे, प्रार्थना करते हुए भक्तोंको देखा। साढ़े सात सौ वर्ष पहले चीन और जापानके राजनीतिक नेता कैसे थे और बौद्ध धर्मका असर किस तरह फैल रहा था, यह सब जाननेके बाद ही भगवान निचिरेनके कार्यका अन्दाज आ सकता है। इस विषयमें विस्तारसे ही लिखना होगा। जब जगह घूम-फिर कर युनिवर्सिटीके मकान देखते हुए हम होटल वापस आये।

२५. घातकताके सामने आस्तिकता

नागासाकी,
६-८-'५७

नागासाकीका नाम पुराने रूमी-जापानी युद्धके समय पहले-पहल सुना था। इसी बन्दरगाहमें जापानके एडमिरल टोगोने अपनी नौसेनाको गुप्त रीतिसे सुरक्षित रख कर रूसी नौसेनाको हैरतमें डाल दिया था और अन्तमें पासकी ही सुशीमा खाड़ीमें एक ही समुद्री लड़ाईमें सारी रूसी नौसेनाको डुबो दिया था! इतना ही नहीं, उनके घायल समुद्री सारंग (एडमिरल) को पकड़ कर और अच्छा करके रूसको वापस सौंप दिया था।

नागासाकी अर्थात् जापानकी नाक। सारे राष्ट्रके अभिमानका स्थान। बारह वर्ष पहले इसी बन्दरगाह पर अमरीकाने ९ अगस्तको बम फेंका था और करीब-करीब सारे शहरको ही नष्ट कर दिया था। इसी तरह अमरीकाने हिरोशिमा पर भी एटम-बम फेंका था। हिरोशिमामें तो बमके एक ही धड़ाकेसे ढाई लाख लोग मारे गए थे। नागासाकी शहर पहाड़के दोनों ओर बसा हुआ होनेके कारण उसका एक तरफका हिस्सा बच गया। पहाड़के जिस ओर बम पड़ा था वहां पचास या पचहत्तर हजार लोग मारे गए थे। जिस विज्ञानकी मददसे जापान इतना आगे बढ़ा था उसी विज्ञानने एक क्षणमें जापानका पराभव किया। उस समयके एक जापानी नेताने कहा था कि बहादुरी अथवा युद्ध-कौशलमें हम नहीं हारे हैं। विज्ञानकी प्रगतिमें हम कुछ कच्चे थे, इसीलिए विज्ञानके हाथों हमारा पराभव हुआ।

मेरे बचपनमें जब चीन और जापानका युद्ध हुआ था तब लड़ाई शुरू होनेसे पहले ही जापानके एडमिरल टोगोने चीनका एक बडा जहाज डुबो दिया था। इसी तरह इस युद्धमें भी जापानने पर्लहार्बरमें अमरीकाकी नौसेना पर अचानक हमला करके अमरीकाको जबरदस्त नुकसान पहुंचाया था। अमरीका इस घातकी हमलेको कैसे भूल सकता था? इसलिए लगभग युद्धके अन्तमें जब जापानकी हार स्वीकार करके शरण जानेकी तैयारी थी तभी अमरीकाने जापानके ऊपर ये दो बम गिराये थे। इस तरह धोखेका बदला इस घातकी कृत्यसे चुकाया गया।

हिरोशिमा और नागासाकी शहरोंकी सामान्य जनताका यह अमानुषिक संहार देख कर सारी दुनिया स्तम्भित रह गई। पुराने समयमें तो नियम था कि सेनाएं लड़ें, आमने-सामने संहार करें, लेकिन साधारण नागरिक जनता (civil population) का नाश नहीं किया जा सकता। पर आजके युद्ध धर्म-युद्ध नहीं रहे। शत्रु यानी शत्रु, उसमें सामान्य नागरिक, स्त्री-बच्चे सभी आ गये। फिर भी इस तरह बम फेंक कर शहरके तमाम लोगोंको मौतके घाट उतार देना यह एकदम नया और अकल्पित अमानुषिक कृत्य था।

अमरीकाके इस कृत्यसे एशियाके लोगोंकी आस्था जड़से हिल गई। जापानकी शक्ति खतम हो रही थी। जापान पराभव स्वीकार करके युद्धमेंसे निकल जाना चाहता था, वह किस शर्त पर युद्धसे हटे इसकी बातचीत चल रही थी। इसी बीच केवल अपनी शक्ति आजमाने और जापानी प्रजाको भयभीत करनेके लिए अमरीका ने यह राक्षसी कदम उठाया था !

एशियाके लोगोंको लगा कि जिस प्रकार किसी नई दवाका असर जांचनेके लिए मनुष्य उस दवाको पहले किसी जानवरको दे कर देखता है, जिस तरह गिनि पिग्ज़ पर नये-नये रसायन आजमाये जाते हैं, बिलकुल उसी तरह अमरीकाने अपने अणु-बम एशियाई राष्ट्रों पर आजमाये हैं। जर्मनी गोरे लोगोंका राष्ट्र था, इस-लिए उस पर ये घातकी बम नहीं आजमाये गये। इन दो शहरोंको ध्वस्त करने-वाले इन बमोंने एशियाके संगठनमें जितनी मदद की है उतनी किसी भी घटनाने नहीं की। गोरे लोग दूसरे गोरे दुश्मनोंको तो मनुष्य-जातिके ही मानते हैं, किन्तु उनके लिए अफ्रीका अथवा एशिया आदिके देशोंके लोग बिलकुल निम्न कोटिके मनुष्य होते हैं। इसीलिए बिना किसी संकोचके उनको इतनी बड़ी संख्यामें मार डाला गया—ठीक वैसे ही जैसे कि आजकल डी० डी० टी० से मच्छरोंको मारा जाता है !!

पौराणिक कथा याद करनी हो तो जनमेजय राजाने नाग लोगोंका निकन्दन करनेके लिए एक सर्पसत्र चलाया था। उस सत्रमें शत्रुको केवल हरानेका उद्देश्य नही था, बल्कि उन्हें बिलकुल खतम कर देनेकी नीति थी। अपने राजाका ऐसा युद्ध-ज्वर देख कर और यह अमानुषिक संकल्प सुन कर मनुष्य-जाति पर विश्वास रखनेवाला एक आस्तिक ऋषि वहां पहुंचा और उसने सर्वसंहारकारी युद्धको एक-दम बन्द करवाया।

आज इसी तरहके एक आस्तिक ऋषिका कार्य करनेके लिए राष्ट्रोंके प्रति-निधि हम सब यहां इकट्ठे हुए हैं। सर्व संहारकारी शस्त्रोंका हमेशाके लिए बहिष्कार हो यह हम सुझाना चाहते हैं। पर ऐसे सुझावके पीछे उन आस्तिक ऋषि-का तपस्तेज हमारे पास कहां है ?

तीन वर्ष पहले जब मैं इस देशमें आया था तब मैंने हिरोशिमा जा कर उन निर्दोष मृतक लोगोंको श्रद्धांजलि अर्पण की थी। अबकी बार आठ-नौ अगस्तको नागासाकीके बलिदानका द्वादश वार्षिक श्राद्ध करनेके लिए उपस्थित रहा हूं।

२६. धर्म-धानी कोबे

हाकाटा
१०-८-५७

गुरुजी निचिदात्सु फूजीईके सम्पर्कमें आये मुझे काफी वर्ष हो गये। उनके शिष्योंके साथ भी मेरा व्यक्तिगत सम्बन्ध बढ़ता ही जा रहा है। मानो मैं उनका एक बड़ा भाई होऊं इस तरह वे मेरे प्रति आत्मीयता रखते हैं। फिर भी मैं इन लोगोंके परात्पर गुरु निचिरेनके विषयमें अभी तक पूरी जानकारी प्राप्त नहीं कर पाया हूं। इस विषयमें थोड़ा-बहुत जो पढ़ा है वह भी अंग्रेजोंने जापानके बौद्ध पंथोंका वर्णन करते हुए जो कुछ गलत-सलत लिखा है बस उतना ही पढ़ा है। गुरुजी खुद हिन्दी और अंग्रेजी दोनों ही नहीं बोल सकते हैं। उनके शिष्य भी हिन्दीमें तो पूरे वाचा-संयमी ही हैं!

इतने लोग भक्तिके साथ जिसका नाम साढ़े सात सौ वर्षोंसे लेते आए हैं उसकी विभूति विशेष तो होनी ही चाहिए। विदेशियोंने भी जिसका वर्णन असहिष्णु और उत्पातीके नामसे किया है, उसमें कुछ-न-कुछ तेज तो जरूर होगा ही। भगवान श्रीकृष्ण, श्री शंकराचार्य, मार्टिन लूथर, इगनेशियस लोयला, मुहम्मद पैगम्बर आदि सभी इस तरहके उत्पाती थे। ये लोग अपने समयमें न खुद चैनसे बैठे और न दूसरे किसीको उन्होंने सुखसे सोने दिया। गांधीजीको भी उनकी अहिंसक मिठासके बावजूद उत्पातियोंकी पंक्तिमें ही बिठाना चाहिये। बैठाना कैसा? खड़ा करना चाहिए; जो बैठे वह उत्पाती कैसे हुआ?

साढ़े सात सौ वर्ष पहले हुए निचिरेनको जापानके लोग आज बोधिसत्त्वकी तरह पूजते हैं। (बोधिसत्त्व यानी बुद्ध बननेकी योग्यता और आकांक्षा रखनेवाले साधनावीर जीव) निचिरेनका कहना था कि बौद्धोंमें स्थविरवादी और महायानी—ये जो भेद पड़े हैं वे योग्य नहीं हैं। सद्धर्म-पुण्डरीक स्तोत्रमें जिस धर्मका उपदेश हुआ है वही एकमात्र मार्ग है। लोग बुद्धको छोड़ कर अमिताभके दर्शनके लिए बोधिसत्त्वोंकी पूजा करते हैं यह गलत है। केवल शाक्य मुनिकी ही पूजा करनी चाहिए। ये शाक्य मुनि भी अमुक हजार वर्ष पहले भारतमें जन्मे हुए ऐतिहासिक सिद्धार्थ गौतम नहीं, किन्तु सनातन कालसे सद्धर्मका उपदेश करनेवाले शाक्य मुनि।

जिन्दगीमें सत्य और धर्मके रास्ते पर चलना ही कल्याणका मार्ग है। उस धर्मकी शरण जाना यही सच्चा पंथ है। इसीलिए ये लोग सर्वकालके तमाम बुद्धोंको नमस्कार करते हैं और फिर सद्धर्म-पुण्डरीक सूत्रम दिए हुए सच्चे धर्मको नमस्कार करनेके लिए व उसकी शरण जानेके लिए 'नम् म्यो हो रेंगें क्यो' मंत्र बोलते हैं।

निचिरेन जिस तरह साधु थे उसी तरह राजनीतिक परिस्थिति जाननेवाले एक राष्ट्र-पुरुष भी थे। उनकी बड़ी इच्छा थी कि जापानकी सरकार यहांके मत-मतान्तरों और पंथोंको तोड़ कर सारे देशको धर्मके आधार पर एक कर दे। जापान में बौद्ध धर्म चीनसे आया है। इसलिए वहांके साधु यहां आते थे और यहांके साधु सच्चा धर्म उसके सच्चे स्वरूपमें समझनेके लिए चीन जाते थे। बलवान और संस्कृति-सम्पन्न चीन देशके सामने सूर्योदयका निप्पोन देश किसी भी गिनतीमें नही था। फिर भी जापानी लोगोंने चीन और कोरियासे बौद्ध धर्म ला कर उसे अपनी विशेषता प्रकट करनेवाला एक नया रूप दिया।

निचिरेनकी प्रखर प्रवृत्तिसे उस वक्तकी जापानकी सरकार और भिन्न-भिन्न पंथोंके लोग बड़े परेशान थे। एक बार तो निचिरेनका सिर उड़ा देनेकी सजा भी दी गई थी, लेकिन उसमेंसे वे बच गये। उन्होंने एक बार चेतावनी दी थी कि जापानकी धर्मश्रद्धा ढीली हो गई है और लोगोंमें पक्ष बन गए हैं, इस कारण विदेशी सेना आ कर जापान पर आक्रमण करेगी। उनकी यह भविष्यवाणी बीस वर्षके अन्दर सच्ची साबित हुई और जापान बड़ी मुश्किलसे बचा।

कल हम फुकुओका अथवा हाकाटामें आ गये हैं। अभी यहांके सार्वजनिक उद्यानमें निचिरेन बोधिसत्त्वकी खड़ी भव्य मूर्ति देख आये। बाकी जो समय मिला उसमें भगवान निचिरेनके विषयमें थोड़ा लिख कर यह पत्र तुम्हें भेज रहा हूं।

कोबे,
११-८-'५७

कल यह पत्र हाकाटासे नहीं भेज सका। हमने दोपहरको बारह बजे हाकाटा छोड़ा और विमान-मार्गसे ढाई बजे इटामी पहुचे। विमानमें सेण्डविचका एक-एक डिब्बा हमें दिया गया। उसमें कई तरहके सेण्डविच थे। स्ट्रावेरी जेमके, आडूके, ककड़ीके, टमाटरके और गाजरके। मुंह पोंछनेके लिए डिब्बेमें कागजका एक छोटा व कुछ गीला तौलिया भी रखा हुआ था। चीज अच्छी थी। इस्तेमाल करनेके बाद भी यह कागज फटा नहीं। कोबे व ओसाका इन दो शहरोंके बीचमें इटामी बसा हुआ है। वहांसे हम श्री टाकुडो फूजी (Takudo Fuji) नामक भक्तके यहां आये हैं। तुम्हें याद होगा कि तीन वर्ष पहले जब हम कोबे आये थे तब हम एक गुजरानी भाई धर्मदास थानावालाके यहां ठहरे थे। कोबेमें रहनेवाले करीब चालीस पैंतालीस भारतीय उनके यहां इकट्ठे हुए थे। विदेशमें आ कर अपने देशवासियोंके घरोंमें रहना मेरी नीतिके विरुद्ध है। जहां जावें वहां अपने देशके लोगोंसे मिलना और उनके अनुभव जानना यह दूसरी बात है—जरूरी भी है। लेकिन जिस देशमें जाएं वहां उन्हीके घरोंमें रहें तभी वहांकी संस्कृतिके साथ परिचय होता है,

आत्मीयता बनती है और आगे चल कर इसमेंसे महत्त्वके और बड़े सुन्दर परिणाम निकल सकते हैं।

इस बार गुरुजीके भक्त और कोबेके प्रतिष्ठित नागरिक श्री टाकुडो फूजीके निमंत्रणसे हम यहां आये हैं, इसलिए उन्हींके घर पर रहनेकी व्यवस्था है। भाई फूजीका घर विशाल, सुघड़ और सुन्दर है। आसपासका छोटा-सा बगीचा भी जापानी कलाका उत्तम नमूना है। जापानकी अमीराना सादगी हमें यहां देखनेको मिली। भाषाके अभावमें घरके लोगोंके साथ बातचीत करना मुश्किल था, फिर भी हमारे बीच कोई संकोच नहीं था।

कोबेमें जापानका सबसे बड़ा स्तूप बननेवाला है। भाई फूजी इस स्तूप-समिति के अध्यक्ष हैं। इस समितिकी ओरसे एक बड़े वस्तुभण्डार (stores) में हमारे सम्मानमें एक बड़ी दावत दी गई थी। साठ सत्तर लोगोंको बुलाया गया था। कोबे में रहनेवाले बहुतसे भारतीय भाइयोंको भी इसमें निमंत्रण था। हमारे काउन्सल श्री सुब्रह्मण्यम, भाई थापर और भारतीय मण्डलके अध्यक्ष वगैरा कई लोग थे। साहित्यिक भाई बंशी तो थे ही। श्री दुर्लभजी खेताणीने मेरे विषयमें उनको पत्र लिखा था। भोजन-समारम्भमें जो जापानी आए थे उनमेंसे दोके ही नाम याद हैं। कोबे विश्वविद्यालयके प्रेसिडेंट डॉ० योशीमोटो कोबायाशी और दूसरे कोबे विश्व-विद्यालयके विदेशी-विद्या (फॉरेन स्टडीज़) के भूतपूर्व अध्यक्ष प्रो० किन्जी कानेडा थे। ये नाम इसलिए याद रहे कि वे दोनों बहुत अच्छा बोले थे। श्री कोबायाशीने मेरे भाषणकी और मेरे मिशनकी कदर की थी। प्रोफेसर कानेडा सुन्दर अंग्रेजी बोलते थे इसलिए उनके साथ तो सीधी बहुतसी बातें हो सकीं। कोबायाशीने अपने भाषणके अन्तमें जापानी कविताकी एक दो पंक्तिया गाई। उसका परिणाम यह हुआ कि एक-दूसरे सज्जनको भी कविता गा कर सुनानेका जोश चढ़ा। उन्होंने अपनी नाकको फुला-फुला कर गीत सुनाये।

खानेसे पहले और बादमे अनगिनत फोटो भी लिये गये।

भाई फूजीकी एक लड़की इस मंगल प्रसंगके उपलक्ष्यमें जापानकी राष्ट्रीय ढंगकी पोशाक पहन कर आई थी। चि० मजु कहती है कि 'घरके कई लोगोंकी कई घंटोंकी मेहनतसे ये बहनजी सज पाई थी।'

मेरे भाषणमें धर्म-जागृतिके लिए गुरुजीने स्तूप बनानेका जो कार्य शुरू किया है उसका उल्लेख आना तो स्वाभाविक ही था। पहाड़ीके ऊपरवाले स्तूपके स्थान तक मैं जा सकूंगा ऐसी उम्मीद इन लोगोंको नहीं थी। लेकिन मैंने कहा कि मुझे तो वह स्थान देखना ही है। पहाड़ी पर चढ़ना कठिन होगा तो धीरे-धीरे चढ़ लूंगा। मेरा इतना उत्साह देख कर भाई फूजीने चढ़ाईकी सारी व्यवस्था करनेका जिम्मा लिया। भारतीय भाइयोंने भी इच्छा प्रकट की कि हम भी अपने-अपने वाहन ले कर आएंगे। पर दिक्कत यह थी कि कोई भी मोटर इस कड़ी चढ़ाई पर चढ़ नहीं सकती

थी। श्री फूजी ऊनी धागेकी एक बड़ी कंपनीके डायरेक्टर थे। अतः अनुकूल व्यवस्था करनेकी शक्ति उनमें थी। अंतमें यह तय हुआ कि एक जीप पहले हमें ऊपर ले जाएगी और फिर वही वापस आ कर औरोंको भी ले जाएगी।

खानेके विषयमें बताना तो रह ही गया। जापानमें चीनी रसोई स्वादके लिए प्रख्यात है, इसलिए इस बड़ी दावतमे खास चीनी रसोइयोंको बुला कर उनके ढंगके व्यंजन बनवाये गये थे। हम शाकाहारियोंके लिए विशेष मेहनत की गई थी। एकके बाद एक स्वादिष्ट व्यंजन आते ही जाते थे। थोड़ा-थोड़ा करके भी हर आदमीने इतना खाया कि बेचैनी होने लगी, फिर भी व्यंजन तो खतम ही नहीं हुए। तरह-तरहके मशरूम, कितने ही प्रकारके चावल, स्वादिष्ट सी-वीड्स यानी समुद्रमें मिलनेवाले सब्जीके प्रकार, सिंघाड़े और सोयाबीन थे। एक सोयाबीनसे ही कई तरहकी चीजें बनाई गई थीं। समुद्र-स्नानके समय एकके बाद एक आनेवाली लहरोंसे जिस तरह तबीयत घबड़ाने लगती है वैसी ही हमारी स्थिति हुई। भूरे कद्दुओंको, जिनसे पेठेकी मिठाई बनती है, पेटमें अनेक मसाले भर कर पकाते हैं; फिर सारा भीतरी भाग खरोंच-खरोंच कर खाया जाता है। वह भी यहां मौजूद था। आठ बजे खानेको पहुंचे थे सो वह साढ़े दस तक चला और घर आते-आते तो ग्यारह बज गये।

आज सुबह नौ बजे हम मोटरमें बैठ कर पहाड़ीकी तलहटी तक पहुंचे। वहांसे जीपमें बैठ कर ऊपर गए। चढ़ाई काफी कड़ी थी। बीच-बीचमें रास्ता पिछली रातको और सुबह ही ठीक किया गया हो ऐसा स्पष्ट दिखाई दे रहा था। हमारे साथ भाई वंशी, उनकी पत्नी कान्ताबहन तथा उनकी लड़की कुंजबाला थी। तीनोंको बढ़िया जापानी बोलना आता था। इस कारण बड़ी सुविधा रही। ऊपर पहुंच कर देखा कि वहां पहाड़ीको खोद कर आवश्यकतानुसार एक मैदान तैयार किया जा रहा था। पास ही एक जगह पहाड़ीका शिखर शिव-लिंगकी तरह रख कर उसके आसपास रास्ता बना दिया गया था। एक तरफ कोबे और दूसरी तरफ ओसाका इन दोनों शहरोंकी यहांसे खासी अच्छी झांकी मिलती थी और सामने, दूर, विशाल समुद्र फैला हुआ था।

इस स्थानसे प्रभावित होनेके कारण उसके प्रति मेरी श्रद्धा बढ़ी और वहां बोलते हुए मैंने कहा : "मैं देख रहा हूं कि यह स्थान जापानकी भावी धर्म-प्रेरणाका केन्द्र बनेगा। समुद्रके जहाज दूरसे ही इस स्तूपको देख सकेंगे और अंगुली बता कर एक-दूसरेका ध्यान इस ओर खींचेंगे। हो सके तो इस पहाड़ी पर एक दीप स्तम्भ बनाना चाहिए, जिससे दूर-दूरके जहाजोंको मालूम हो सके कि वे कोबेके स्तूपके आसपास ही कहीं हैं। भले ही टोकियो जापानकी राजधानी हो, नारा भले ही जापानका साहित्यिक और सांस्कृतिक केन्द्र हो, लेकिन कोबे तो जापानकी धर्म-धानी बननेवाला है।"

यह एकान्त तो कहांसे मिलता ? फिर भी जरा एक ओर जा कर बैठा। सृष्टि के इस सौंदर्यको कुछ देर निहारा और फिर अन्तर्मुख हो कर मनमें प्रार्थना की कि इतने सब सज्जनोंके शुभ संकल्प यथासमय सिद्ध हों।

स्तूपकी जगह देख कर हम नीचे उतरे और भाई वंशीके यहां खाना खाने गये। वहां आये हुए लोगोंके साथ काफी बातें हुईं।

वहांसे श्री फूजीके यहां होते हुए हम हवाई अड्डेके लिए निकले। श्री फूजी ने हम तीनोंको एक-एक कीमोनो (जापानी पोशाक) भेंटमें दिया। शामको करीब चार बजे तक हम टोकियो पहुंच गये।

कोबेसे टोकियो आते हुए रास्तेमें बहुत कुछ देखनेको मिला। बाईं ओर जापानकी पहाड़ी भूमि व उसके बीचके छोटे-मोटे शहर और दाहिनी ओर बड़ी दूर तक प्रशान्त महासागर। सभी कुछ बड़ा भव्य और काव्यमय था। लेकिन स्मृतिमें अंकित किया हुआ तो बस एक ही चित्र है और वह है जापानके पितामह फूजीयामा पहाड़के शिखरका दृश्य। क्या ही अद्‌भुत है उसकी गौरवोन्नत शोभा ! मैंने अक्सर देखा है कि प्रकृतिको जिस शिखरकी प्रतिष्ठा बढ़ानी होती है उसे जरा नीचे जा कर चारों ओरसे बादल आ घेरते हैं, जिससे हमें यही भास हो कि यह शिखर पृथ्वीके आधार पर यहां नहीं खड़ा हुआ है, यह तो एक स्वर्गीय विमान ही है। पृथ्वी पर अनुग्रह करनेके लिए ही यह उसके इतने पास आ गया है। इस शिखरके दर्शनका वर्णन उसकी प्रतिष्ठा रखनेके खातिर भी एक अलग पत्रमें ही लिखना होगा। इसके बादका पत्र इसे ही अर्पित होगा।

मेरा इस पहाड़के प्रति प्रेम और पक्षपात तुम जानती ही हो। तीन वर्ष पहले फूजीयामाके दर्शनके लिए हमने कितनी परेशानी उठाई थी यह भी तुम्हें याद होगा। इसलिए फूजीयामाके शिखरके दर्शनसे हमें कितना आनन्द हुआ, यह तुम समझ सकोगी।

२७. फूजीयामाके दर्शन

टोकियो,
१३-८-'५७

सारे ही पहाड़ उन्नतिके प्रतीक होते हैं। ये स्वयं तो ऊपर उठे हुए होते ही हैं, साथ ही देखनेवालेको भी ऊपर चढ़नेका निमंत्रण देते रहते हैं। ऋषि कहेंगे कि पहाड़ निमंत्रण नहीं, दीक्षा देते हैं। पुराणकार कहते है कि प्राचीन कालमें पहाड़ोंके पंख होते थे और वे आकाशमें उड़ कर चाहे जहां बैठते थे।

आकाशसे गिरा हुआ एक कंकर भी बढ़ कर एक पर्वत बन जाता था। कहा

जाता है कि श्रीनगर (काश्मीर) का हरि पर्वत और शंकराचार्यकी पहाड़ी इसी तरह कंकरसे बढ़ कर बड़े पहाड़ बन गए हैं। पैदल या किसी भी वाहनमें बैठ कर जब हम सफर करते हैं तब लगता है कि मानो पर्वत भी हमारे साथ ही साथ धीरे-धीरे आगे चल रहे हैं। नदी दौड़ती है, पहाड़ स्थिर रहता है। फिर भी मनुष्यको इन दोनोंका साथ तो मिलता ही रहता है।

ये पहाड़ कभी तो दो प्रदेशोंके बीचमें सीमा बना देते हैं और कभी तम्बूके खम्भेकी तरह सारे प्रदेशको एक उन्नत-उत्तुंग केन्द्र प्रदान करते हैं। स्पेन, पुर्तगाल और फ्रांसके बीचमे यदि पिरिनीज़ पर्वत न होता तो वह एक ही देश माना जाता। इंग्लैंड व स्काटलैंडके बीच भी विभाग करनेवाला एक पहाड़ है ही। स्वीडन व नार्वेके बीचमें भी ऐसा ही है। हमारा हिमालय तो भारत और चीनके बीचकी एक सनातन और भव्य सीमा है। लेकिन आबू और अरावली पर्वत पूरी सीमाएं नहीं बनाते। कच्छका पनामा, सौराष्ट्रका गिरनार तथा चोटीला और बड़ोदाके पासका पावागढ़ आदि कई पहाड़ तो गोपुरकी तरह ऊंचाई धारण करके अपने आशीर्वाद-से आसपासके प्रदेशका रक्षण करते है।

सभी पहाड़ोंका समान आकर्षण होते हुए भी कुछ पहाड़ तो मेरे मन पर चिरस्वप्नकी तरह छाये रहते हैं। हिमालयके उस पारका कैलास हम भारतीयोंके लिए एक चिरस्वप्न ही है। उसे तो चिरस्वप्न न कहते हुए सनातन स्थिर स्वप्न ही कहना चाहिए। इस पहाडके दर्शनकी हमारी आकांक्षा उतनी ही पुरानी है जितनी हमारी संस्कृति। नन्दा देवी, नन्दा कोटा व त्रिशूल वगैरा हिमालयके शिखर मनको इसी तरह पागल कर देते हैं। फिर, उनके दर्शन न हों तब तक शांति नही मिलती। कांचनजंगा भी ऐसा ही एक पहाड है। सिक्किमकी राजधानी गंगटोक जा कर काफी दिनों तक रोज सुबह उसका दर्शन किया तब कहीं दिलका वह नशा उतरा।

ऐसा ही एक और पहाड़, जिसकी मुझे धुन लग गई थी, था पूर्व अफ्रीकाका किलिमान्जारो। बचपनमें पहाड़ीके नाम रटते हुए उसका नाम बड़ा मजेदार लगता था। बादमें अफ्रीका जा कर आए हुए लोगोंसे उसके विषयमें सुना भी। फिर तो किलिमान्जारोके साथ-साथ मनमें मेरु और रुएनझोरीका आकर्षण भी जुड़ गया। आखिर एक दिन नैरोबीसे काफी दूरसे ही उसके अस्पष्ट गुलाबी दर्शन हुए। पर इससे तो उसकी भूख और भी अधिक बढ़ गयी। जब उसके पास जा कर उसके दर्शन किये तब मैं एक मद्यमत्त मनुष्यकी तरह ही काव्यमत्त बन गया था। मैंने उसकी प्रदक्षिणा भी की। उसके विषयमें जो कुछ उपलब्ध था वह सब पढ डाला। अपनी पुस्तकमें उसके विषयमें लिखा तब कही उसका भूत मेरे मनसे उतरा।

जापान तो पहाड़ी मुल्क ही ठहरा। यहां भला पहाड़ोंकी क्या कमी! एकसे एक सुन्दर पहाड़ोंकी शरणमें जो समतल भूमि इधर-उधर फैली हुई है, उसी पर

यहांकी प्रजा अपना गुजर चलाती आई है।

ऐसे इस पहाड़ी प्रदेशमें भी एक पहाड़ अपनी गर्वोन्नतिके कारण सबसे बिल-कुल अलग खड़ा है। इसीका नाम फूजीयामा है। फूजी यानी एकाकी, अद्वितीय और यदि यह फूजी नाम यहांके आदिवासी आयनु लोगोंका रखा हुआ हो तो उसका अर्थ होता है अग्निदेवी। जैसे हमारा ध्यानमूर्ति पहाड़ कैलास है, वैसे ही जापानियोंका फूजीयामा। यह पहाड़ सब तरहसे बड़ा व्यवस्थित है। चारों ओर एक समान फैला हुआ है और इसका ऊंचा मस्तक तो बड़ा ही मनोहर है। कैलास और किलिमांजारोकी तरह इसके मस्तक पर भी श्वेत हिममुकुट है। जापानमें जहां देखो वही इस पहाड़के चित्र और प्रतीक दिखाई देते हैं। पर्दों पर और बर्तनों पर, पंखों पर और कागजोंके दीपों पर फूजीयामाके चित्र तो होते ही हैं।

जापानकी यात्रा करें और फूजीयामाके दर्शन न करें यह तो एक असंभव-सी बात है। फिर भी जब मैं सन् १९५४में जापान आया था, तब अनेक प्रयत्न करने पर भी हमें फजीयामाके दर्शन नहीं हो सके थे। उस समय हवा इतनी धुंधली थी कि आंखें व कल्पना दोनोंने उसे देखनेके प्रयत्नकी पराकाष्ठा कर डाली, तो भी विश्वा-काशमें अथवा हृदयाकाशमें फूजीयामाकी आकृति दिखाई नहीं दी। हमने ठेठ दक्षिणमें कुमामोतोसे आसो जा कर वहांका अद्भुत ज्वालामुखी पर्वत देखा, नारा व क्योटोकी संस्कृति देखी और हिरोशिमाका सर्वनाशी कुरुक्षेत्र भी देखा। लेकिन जापान आया था यह कहनेसे पहले मेरा मन ही मुझे पूछ बैठता कि तुमने फूजी-यामा कहां देखा है?

इस बार जब निप्पोनकी यात्रा तय हुई तब मैंने श्री ईमाईसानको लिखा कि अबकी ये दो चीजें तो टाली ही नहीं जा सकतीं : एक तो फूजीयामाके दर्शन करना और दूसरी नागासाकीके सर्वनाश और पुनर्जीवनको निहारना। मैंने यह भी लिख दिया था कि पिछली बार हमने टोकियोसे दक्षिणमें जा कर आधा निप्पोन देखा था। इस बार उत्तरका होक्कायडो द्वीप जरूर देखना है।

इस संकल्पके अनुसार टोकियो आते ही प्रथम हम उत्तरमें गये। होक्कायडोके पहाड़, नदी और सरोवर देखे। नये स्तूपोंके संकल्पित स्थान देखे और तब फिर हम धीरे-धीरे दक्षिणकी ओर उतरे। फूजीयामाके दर्शनकी उत्कण्ठा तो बढती ही गई। लेकिन इस बार भी उसके दर्शन दुर्लभ ही रहे। भाग्यके साथ हवा भी प्रतिकूल हो तब और क्या हो सकता था? लेकिन एक दिन अगस्तकी तीन या चार तारीखके करीब श्री ईमाईसानने ट्रेनसे ही फूजीयामाके दर्शन कराये। हवा बिलकुल स्वच्छ थी। फूजीयामाकी आकृति आकाशमें बिल्कुल कोर कर गढ़ी गई हो ऐसी दिखाई दे रही थी। रंग गहरा हरा था। लेकिन उसके सिर पर बरफका नामोनिशान भी नहीं था। एक ही क्षणमें धन्यता और निराशा दोनोंका एक साथ ही अनुभव हुआ। वर्षोंसे जिसके दर्शनकी रटन लगी हुई थी वह फूजीयामा दिखाई तो दिया!

लेकिन कैसा ? बिलकुल कोरा, हिम-शून्य ! तुरन्त ही किलिमांजारोके पासका मेरु पहाड़ याद आया। अपने मनको काफी समझाया कि बरफ न हो तो न सही, पर फूजीयामा तो आखिर फूजीयामा ही है। वह देखो कितना ऊंचा, गठीला और बिलकुल वरदानके समान दिखाई दे रहा है ! आंखोंने तो उसके शिखरकी छविको अपने भीतर उतार लिया। पर यह बावला मन कहने लगा : "सब ठीक है, पर बरफ कहां है ? फूजीयामा भी कहीं बिना बरफके हो सकता है ? खैर। चाहे जो हो लेकिन वह तो दृष्टिके सामने ही खड़ा था। ईमाईसानने बताया कि अभी आगे दो-तीन बार और फूजीयामाके दर्शन होंगे। मैंने उनसे पूछा कि क्या दो-तीन दिनमें उसके सिर पर बरफ दिखाई देनेकी कोई सम्भावना है ? उन्होंने कहा, "उसके मस्तकके द्रोणमें तो बरफ होगा ही, लेकिन वह नीचेसे दिखाई नहीं दे सकता।"

तुरंत ही मुझे कालिदासका एक वचन याद आया, जिसमें उन्होंने पहाड़के शिखर पर बरफका होना एक दोष ही बताया है और आश्वासन देते हुए कहा है कि इस दुनियामें नितांत सुन्दर वस्तु हो ही कैसे सकती है ? कहीं तो कमी रहेगी ही। मनमें आया कि यदि आज कालिदास यहा होते तो वे कहते कि धन्य है आजका दिन कि जब मैंने बिना बरफका फूजीयामा देखा ! लेकिन मैं तो कालिदास नहीं हूं। मुझे तो काका ही रहना है। बिना बरफका फूजीयामा मेरे ध्यानका फूजीयामा नही है। इसलिए मैं तो अधन्य ही हूं।

इतनी उधेड़-बुनके बाद मैंने अपने मनको समझाया कि जो नही है उसका अफसोस करनेके बदले जो है उसका आनन्द लूटनेका अवसर क्यों खोता है ? आखिर मेरे मनकी खिन्नता दूर हुई और तब कहीं वह फूजीयामाकी वीत-हिम शोभा निहारने और उसकी कदर करनेके लिए तैयार हुआ।

हमने चलती ट्रेनमें जितनी बार दर्शन हो सके उतनी बार फूजीयामाके दर्शन किये और संतोष माना। उसके बाद फिर फूजीयामाके दर्शन हुए ही नही। मेरे जैसे कृतघ्नको दर्शन दे भी कौन ? फूजीयामाको जरूर कुछ ऐसा ही लगा होगा। एक बार तो हम फूजी नामके एक जंक्शन पर भी उतरे। कोबेमें फूजी नामके एक भाईके घर पर भी रहे, लेकिन फिर भी फूजी-दर्शनकी पूरी तृप्ति नही हुई सो नही हुई। आखिर मेरी फूजीभक्ति कुछ परिपक्व हुई और केवल हिम-वेष्टित शिखर देखनेकी धुन दूर हुई। और तब कोबेसे टोकियो आते हुए विमानसे फूजीयामाके शिखरके अद्‌भुत दर्शन हुए ! विमानके यात्री उत्कण्ठामें कुछ देखने लगे। इसलिए हमने भी उधर देखा। समुद्र परके पहाड़ोंको वेध कर खुले आकाशमें फूजीयामाका मस्तक विराजमान था। जमीनमें देखने पर फूजीयामाके द्रोणकी कोर दिखाई नही देती। विमानमें इतनी ऊंचाई पर आनेके बाद इस द्रोणकी खुरदरी कोर कुछ स्पष्ट हुई। बिना कहे ही आंखोंका भाव बोल उठा : "आज सचमुच कुछ अद्‌भुत देखा !"

हवाई जहाजकी खिड़कीसे नीचे चमकता हुआ समुद्र दिखाई दे रहा था।

उससे जरा आगे कुहरे और बादलोंका एक पर्दा-सा बना हुआ था। उस पर्देके ऊपर खुले स्वच्छ आकाशमें फूजीयामाका शिखर इस प्रकार शोभा दे रहा था, मानो वह सीधा आकाशसे ही उतरा हो औरउसका पृथ्वीके साथ कोई सम्बन्ध ही न हो। इतने में मारुयामासान दौड़े-दौड़े आए और हमें बताने लगे कि वह देखो उधर फूजीयामा दिखाई दे रहा है। मैंने कहा : "मैं तो कभीका उसे ही देख रहा हूं। इतनी ऊंचाईसे फूजीयामाका शिखर देखनेको मिले यह कोई सामान्य आनन्दका प्रसंग नहीं है।"

सचमुच फूजीयामा निप्पोन देशके गौरवका एक प्रतीक है।निप्पोनके अभिमान का यह आश्रय-स्थान है। यह केवल पत्थरसे बना हुआ और बरफसे ढंका हुआ पार्थिव शिखर ही नहीं है, अपितु निप्पोनके सांस्कृतिक हृदयका अभिमानी देवता है। जब तक यह शिखर है तब तक इस जातिको अपने भाग्यके विषयमे निराश होनेका कोई कारण नही है। जापानकी संस्कृतिमें जो कुछ उच्च, उदात्त भव्य और स्थायी है, उसकी दीक्षा देनेके लिए यह शिखर सब तरहसे समर्थ है।

२८. विराट सम्मेलन

टोकियो,
१२-८-'५७

कल शामको हम हानेडा-टोकियो पहुंचे। वहांसे हम सीधे किनोकुनियावाले अपने पुराने गृहपति मामुई बन्धुओंके वहां रहने गये। यहांसे तुरन्त ही टोकियो स्टेडियममें जा कर शांति-परिषद्में भाग लेना था। वहां पहुंचते ही मालूम हुआ कि भारतीय-प्रतिनिधि-मण्डलकी अग्रणी श्रीमती रामेश्वरीजी परिषद्में नहीं आनेवाली है। सारे दिन कई जगह जाना पड़ा इसमें वे थक गई थी। इसलिए भारतकी ओरसे बोलनेका काम मेरे जिम्मे आ पड़ा। उसके बारेमें कहनेसे पहले कुछ प्राथमिक बातें बता दूं।

तारीख २३ व २४ जुलाईको जब मैं इन्टरनेशनल प्रीपेरेटरी कमेटीमें गया तब उन लोगोंकी अपेक्षा थी कि उसी समयसे मैं परिषद्के कार्यमें भारतकी ओरसे रस लूंगा। इसी आशासे उन लोगोंने मुझे अपनी समितिका उपाध्यक्ष चुना था। अध्यक्ष प्रो० काओरु यासुई थे। ये निप्पोन विश्वविद्यालयमें राजनीति विभागके अध्यक्ष हैं। ये उत्साही, गम्भीर तथा अपने कार्यमें चतुर हैं। आस्ट्रेलियाके श्री विलियम मॉरो जनरल सेक्रेटरी थे। ये भी मंजे हुए कार्यकर्ता हैं। चीन, रूस आदि के प्रतिनिधि उत्साहसे काम कर रहे थे। उसी वक्त मैंने उनसे कहा था कि जागतिक परिषद् शुरू होगी तभी मैं उसमें भाग ले सकूंगा। मुझे निप्पोनमें सर्वत्र घूम कर जन-सम्पर्क बढ़ाना है; परिषद्के कार्यसे जन-सम्पर्कका कार्य मुझे अपने लिए

अधिक महत्त्वका लगता है और जिनका मेहमान बन कर मैं आया हूं वे भी यही चाहते हैं कि निप्पोनमें सब जगह घूम कर मैं उनकी प्रवृत्तियोंका निरीक्षण करूं और भारतकी ओरसे उन्हें प्रोत्साहन दूं। मैंने यह भी बताया कि भारतके प्रतिनिधि मेरी इस भूमिकाको जानते हैं और इसीसे उन्होंने पं० सुन्दरलालजीको भेजनेका विचार किया है। वे आते ही पूरे समय आपके साथ रहेंगे।

यह सफाई सुननेके बाद समितिके सदस्योंने मुझे मुक्त कर दिया। पं० सुन्दरलालजी आते ही प्राथमिक तैयारीकी समितिमें और व्यवस्था समिति (Steering committee) में कार्य करने लगे।

८ अगस्तको नागासाकीकी शाखा-परिषद्में भाग लेनेके बाद कोबे हो कर मैं ११ की शामको टोकियो पहुंचा। तब तक भारतके सब प्रतिनिधि आ पहुंचे थे। बारहको मुख्य परिषद् शुरू होनेवाली थी। मैं अंतरंगका सदस्य मिट कर मानो बाहरका सदस्य बन गया था। यदि मैं अन्दर घुसनेका जरा भी प्रयत्न करता तो वह मेरे लिए आसान था, लेकिन मेरे कानकी दिक्कतका मुझे खयाल था। जापानी सदस्योंके साथ भाषाकी कठिनाई, चीनी और रूसी प्रतिनिधियोंके साथ मिलने-जुलनेमें भी यही दिक्कत और कानसे सुनता हूं कम। इन असुविधाओंके कारण बड़ी-बड़ी समितियोंमें काम करना एक परेशानी ही हो जाती। मुख्य नीतिके विषय में मेरा मतभेद था ही नहीं। कई सदस्योंके साथ बातचीत करते हुए मैं समझ गया था कि परिषद्में जागतिक लोकमत उग्रतासे व्यक्त करना और यू० एन० ओ० (U.N.O.) के ऊपर दबाव डाल कर उसके द्वारा कार्य कराना इतना ही इस परिषद्का उद्देश्य है।

जून मासके दूसरे सप्ताहमें कोलम्बोमें जो जागतिक शांति परिषद् हुई थी, उसमें अनेक देशोंके प्रतिनिधियोंके साथ चर्चा करके शांतिवादियोंका रुख मैंने जान लिया था। मैं मानता था कि जब यू० एन० ओ० की शक्ति दूसरी तरह खर्च हो रही है और उसमें अमरीका, रूस, ब्रिटेन आदिकी सरकारोंकी शक्ति और नीति ही प्रमुखतासे कार्य कर रही है, तब उसके सदस्यों पर असर डालनेका प्रयत्न विशेष सहायक नहीं होगा। दुनियाकी छोटी-बड़ी सरकारोंकी मर्यादाएं समझ कर यदि हम जागतिक जनताकी शक्ति जाग्रत करें और उस प्रयत्नमें स्वेच्छासे त्याग-पूर्वक कष्ट उठाएं, तभी एक नई नैतिक शक्ति उत्पन्न होगी। उसके बलसे हम भिन्न-भिन्न सरकारों पर प्रभाव डाल सकेंगे, यह मेरी भूमिका थी। दुनियाके लोग शांति चाहते हैं, एटम-बमसे व्याकुल हैं, वगैरा लोकमत तो हमने कई बार प्रकट किया है। उसमें कोई नवीनता नहीं है। अलग-अलग देशोंमें एकत्र हो कर उन्हीं प्रस्तावोंको पास करें तो हम स्थानीय लोक-जागृतिमें मददगार हो सकते हैं, लेकिन उससे प्रगति होनेवाली नहीं है। उल्टे ऐसी छाप पड़ेगी कि जगतकी जनताका अभिप्राय निर्वीर्य है, और उसके पीछे कार्यकारी बल नहीं है। इसलिए हमें जनता-

की ओरसे कोई कार्यक्रम बनाना चाहिये और उसे हर देशमें बारहों महीने चलाना चाहिये। इस तरहकी भूमिका व नीति कोलम्बोमें प्रतिनिधियोंके सामने मैंने रखी थी।

मैंने देखा कि रूस और चीनके प्रतिनिधि असलमें अपनी-अपनी सरकारके ही प्रतिनिधि थे। भारतकी नीति सब तरहसे अनुकूल और स्पष्ट थी, इसलिए भारत-सरकार पर दबाव डालनेका सवाल ही नहीं था। भारत सरकार सत्याग्रहका रास्ता स्वीकार करे और अमरीकाकी मदद लेनेसे इनकार कर दे, इस तरहका सुझाव राजाजीने दिया था। भारत सरकारको यह मान्य नही था। कोलम्बोमें दिया हुआ मेरा सुझाव कुछ अधिक व्यापक था और अमलमें लानेके लिए अधिक सुविधाजनक था।

भारत जैसा एक देश अमरीकाकी मदद लेनेसे इनकार करे तो उससे जागतिक परिस्थिति पर जो असर होगा उसके बजाय बहुतसे शांतिवादी राष्ट्र एकमत हो कर अमरीका, रूस व ब्रिटेन इन तीनों एटम-शस्त्रोंका प्रयोग करनेवाले राष्ट्रों-से मदद लेना बन्द करें, तो एक बड़ी प्रभावशाली परिस्थिति निर्माण हो सकती है। ऐसा हो तो फिर जागतिक जनताके अभिप्रायकी उपेक्षा नहीं हो सकेगी। यह मेरे सुझावका सार था।

लेकिन भारतके प्रतिनिधि ही इस भूमिकाको स्वीकार करनेके लिए तैयार नही थे। गांधीजीका नाम लेना, उनके अहिंसक प्रतिकारके सिद्धान्तोंका बखान करना और साथ ही रूसकी नीतिको प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सहारा देना, बस इतना ही भारतके प्रतिनिधियोंको सूझता था।

कोलम्बोके अनुभवोंके बाद टोकियोमें मेरा उत्साह काफी ढीला पड़ गया था। जापानके प्रतिनिधि मेरी भूमिका समझें या उसे स्वीकार करें ऐसा सम्भव नही था, इसलिए जापानने बारह वर्षोंमें जो कष्ट झेले उनके लिए उसके प्रति सहानुभूति दिखाना और एटम-बमके विरुद्ध व जागतिक युद्धोंके विरुद्ध लोकमत व्यक्त करना इतना ही काम बाकी रह जाता था। बस, इस हद तक परिषद्में भाग ले कर संतोष मानना ऐसा मैंने अपने मनमें तय कर लिया था। और इसी भूमिकाके अनु-सार परिषद्में मैं दो-तीन बार बोला। यहां हरएक भाषणका भाषांतर सारी श्रोता-मंडलीके लिए जापानीमें होता था और बाकी लोगोंके लिए अंग्रेजी, रूसी, फ्रेंच, चीनी वगैरा भाषाओंमें अनुवाद होते थे। ये अनुवाद जिस भाषामें सुनना हो उसी भाषाकी कर्णिका (Hearing aid) पहननेसे लोगोंको वह सुनाई देता था। जो अपना भाषण पहलेसे लिख कर छपा लेता उसका प्रचार अधिक होता था। संचालक लोग जिस वस्तुको महत्व दें उतना भाग रिपोर्टमें दाखिल हो जाता है। इस प्रकार इन परिषदोंकी रचना होती है। अनेक देशोके विभिन्न भाषा-भाषी प्रतिनिधि इकट्ठे होते हैं, तब कोई भी प्रतिनिधि विशेष कुछ कर ही नही सकता।

समितियोंमें जरूर थोड़ी-बहुत चर्चा हो जाती है। सामान्यतया जागतिक विचारके अमुक नेता जो दृष्टि प्रदान करते हैं उसके अनुकूल प्रस्ताव ही ऐसी परिषदोंमें पास होते हैं। आग्रही सदस्य प्रस्तावोंकी भाषामें थोड़ा-सा हेर-फेर करा सकते हैं। कई प्रस्ताव महत्त्वके भी होते हैं। जिन्हें पूरे वर्ष प्रचार करना होता है उनके लिए ये प्रस्ताव और उनकी शब्द-रचना सबसे अधिक महत्त्वकी होती है।

ग्यारहकी शामको भिन्न-भिन्न देशोंके प्रतिनिधियोंका स्वागत और उनके परिचयका ही काम था। उसके बाद नृत्य, नाट्य आदि रंजनात्मक कार्यक्रम रखा गया था। वह बहुत ही आकर्षक था।

शामकी परिषद्‌में मैं अकेला ही गया था। मंजु और रेवती घर पर ही रह गई थी। रंजनात्मक कार्यक्रमके लिए मैंने उन्हें टेलीफोन द्वारा बुलानेका प्रयत्न किया, लेकिन वह सफल नहीं हुआ। टोकियो यानी स्थानोंके बीच बहुत बड़े अंतर-वाला नगर। एक जगहसे दूसरी जगह जानेमें काफी वक्त लगता है। अकेले बैठ कर रंजनात्मक कार्यक्रमका आनन्द लेनेकी इच्छा नहीं हुई, इसलिए यह सब छोड़ कर मैं मुकाम पर गया। विदेशमें मनोरंजनके लिए रातको जागना और फिर दूसरे दिनके कार्यक्रमके लिए तैयार रहना यह मुझे पुसा नहीं सकता था।

इसके बाद मुख्य परिषद् शुरू होनेवाली थी।

जागतिक परिषद्‌का कार्य वैसे तो ६ तारीखसे शुरू हुआ, लेकिन परिषद्‌का विधिवत् प्रारम्भ आज १२ को हो रहा है। इसके लिए जो स्थान पसन्द किया गया है वह टोकियो जैसे दुनियाके प्रथम पंक्तिके शहरके लिए भी बड़ा भव्य कहा जा सकता है। यह स्थान टोकियो जिमनेशियम (Tokyo Gymnasium) नामसे प्रख्यात है। हजारों लोगोंका इसमें आसानीसे समावेश हो जाता है। सभा-मंच लम्बाई व चौड़ाईमें इतना बड़ा है कि परिषद्‌की सुविधाके लिए पीछे एक खास पर्दा लगाया गया है। युद्धमें विश्वास रखनेवाले और जागतिक युद्धोंकी नीति बनानेवाले लोग इस परिषद्‌में आते, तो उनको विश्वास हो जाता कि दुनियाके लोग युद्धसे सचमुच कितने परेशान हैं और शांतिकी कितनी तीव्र आकांक्षा रखते हैं।

केवल प्रतिनिधियोंकी ही गणना करें तो निप्पोनके ही प्रतिनिधि करीब चार हजार थे। बाहरसे आये हुए प्रतिनिधियोंमें छब्बीस देश और दस आन्तर-राष्ट्रीय संस्थाएं शामिल हुई थी। भारत, चीन व निप्पोनके दक्षिणमें आये हुए आस्ट्रेलिया के प्रतिनिधि सबसे अधिक संख्यामें थे। इन तीनों देशोंमेंसे प्रत्येक देशके प्रतिनिधि एक दर्जनसे अधिक थे, जब कि रूसके व अमरीकाके मिल कर एक दर्जन होते थे। कोरिया व मंगोलियासे पांच-पांच आवें इसमें आश्चर्य नहीं। लेकिन मिस्रसे छह प्रतिनिधि आये थे, यह विशेष ध्यान आकृष्ट करनेवाली बात थी। इंग्लैंड व फ्रांस-से चार-चार आये; ये अपेक्षासे कम नहीं थे। लंकाने तीन भेजे थे, यह उसके लिए शोभाकी बात थी।

दूसरे ढंगसे जांचें तो इन करीब सौ गैर-जापानी प्रतिनिधियोंमेंसे सोलह तो अलग-अलग धर्मोंके प्रतिनिधि थे। चौदह थे लेखक व पत्रकार, दस थे समाज-सेवक। शांतिकार्यको ही जिन्होंने अपना जीवन अर्पण किया है ऐसे आठ प्रतिनिधि थे। खास ध्यान खीचनेवाली आठकी संख्या थी—विज्ञान-शास्त्रियोंकी। मजदूर-दलके नौ थे। जब कि व्यापारियोंके प्रतिनिधि कुल तीन थे। डॉक्टरोंमेंसे सात थे, तो वकीलोंमेंसे दो। थोड़े-बहुत कुछ और भी थे। विदेशोंसे आनेवालोंमें स्त्रियोंकी पंद्रहकी संख्या नगण्य नहीं कही जा सकती।

सम्मेलनका सबसे पहला खुला अधिवेशन (Plenary session) आज १२ अगस्तको सवेरे साढ़े नौ बजे शुरू हुआ। समय-समय पर अध्यक्षका काम करनेके लिए इकहत्तर सदस्योंको चुना गया था। उनमें छत्तीस जापानी थे और पैंतीस बाहरके थे।

आज तो संदेश-वाचन और प्रास्ताविक भाषण—यही दो मुख्य काम थे। उसके बाद सारी परिषद्के पांच विभाग किये गये। आये हुए लोगोंको नीचेके दलों में बांटा गया : स्त्रियोंका मंडल, धार्मिकोंका मंडल, विद्यार्थियोंका मंडल, युवकोंका मंडल, एटम-बमसे पीड़ित लोगोंका मंडल, नगरपालिकाओंका मंडल, व्यापारियों-का व कारखानेवालोंका मंडल और मजदूरोंका मंडल।

आज सुबह दस बजे कार्य शुरू हुआ। हम विदेशसे आये हुए प्रतिनिधि अपने-अपने देशके अनुसार नियत किये गये स्थान पर बैठे। प्रत्येक भाषणका अंग्रेजी अनुवाद कान पर चढाई हुई बिजलीकी कर्णिकाके द्वारा बराबर सुनाई देता था। लेकिन अगर कोई प्रतिनिधि मूलतः अंग्रेजीमें बोलने लगता तो उसका भाषण हमारी कर्णिकामें सुनाई नहीं देता था!

लोगोंके चेहरे मुझे याद नहीं रहते। यह कठिनाई भारत जितना तंग करती है उसकी अपेक्षा विदेशमें और भी अधिक तंग करती है। अमुक चेहरा जापानी नहीं है, यूरोपीय है इतना ही पहचाना जाता था। यूरोपीय और अमरीकाके बीच तो भेद होता ही नहीं। जिनके साथ दस दिन पहले विस्तारसे खूब चर्चा की हो और उनके दृष्टिकोणकी कदर भी की हो, वही सज्जन फिरसे मिलें और उन्हें मैं पहचान न सकूं तब बड़ी ही परेशानी महसूस होती है। फिर लज्जाके कारण किसी से मिलनेका उत्साह भी नहीं रहता। स्वदेशमें तुम साथ रहती हो और बताती रहती हो कि अमुक सज्जन अमुक समय पर मिले थे तब तो सब ठीक चलता है। एक बार नाम जानने पर तो पुरानी चर्चा आदि सभी बातें याद आ जाती हैं। बातोंकी या प्रसंगोंकी स्मरणशक्ति जरा भी कम नहीं हुई है। केवल चेहरे भर याद नहीं रहते। इसलिए सामनेवाला आदमी भी परेशान होता है। अपनी यह स्थिति मैं अब लोगोंको पहलेसे ही समझा देता हूं, जिससे गलतफहमी न हो। इस तरह गलतफहमी तो नहीं होती, लेकिन पूर्व-परिचयकी प्रतीतिके कारण जो सहानुभूति

होती है उसके अभावमें बातचीत जमती नहीं। इसलिए मैंने अब तय किया है कि किसी भी सभा या समितिमें जानेका मोह नहीं रखना चाहिए। चीनमें जानेका निश्चय हुआ है सो वहां हो आऊंगा। फिर तो घर बैठे कोई मिलने जाएं, इतनेसे ही संतोष मानना होगा।

इस तरह एक दो इन्द्रियां हमेशाके लिए छुट्टी पर जाना चाहती हैं। जब आन्तर्राष्ट्रीय वृत्ति पूरे जोरसे खिल रही है, उसी वक्त लोक-समुदायसे मिलने-जुलनेकी शक्ति कम हो रही है, इसका बड़ा भारी दुःख होना चाहिए। लेकिन मुझे वैसा नहीं होता। भगवान जिस परिस्थितिमें रखे वह स्थिति केवल लाचारीसे स्वीकार करूं—ऐसा अरसिक भी मैं नहीं हूं। भगवानके लीला-नाटकका यह भी एक उतना ही रसपूर्ण अंक है यह मैं जानता हूं। इसलिए इस नई उत्पन्न हुई अलिप्तताका स्वागत करनेके लिए मन तैयार हो गया है। दूसरा एक और भी कारण है। चिंतन द्वारा हो या उत्कट सहानुभूति द्वारा हो, पर अमुक वातावरणमें पहुंचनेके बाद वहांका मुख्य मानस मैं बिलकुल सही पकड़ सकता हूं। इसलिए हवा से ही मुझे जो चाहिए वह सब मिल जाता है। इस कारण भी मन भरा-भरा और सन्तुष्ट रहता है।

परिषद्के जो पांच विभाग अथवा कमीशन तय हुए हैं उसमेंसे मैंने धार्मिक कमीशनमें जाना पसन्द किया है। मुझसे कहा गया है कि वहां मुझे अध्यक्षके नाते पांच-दस मिनट बोलना पड़ेगा। हम अंग्रेजीमें बोलें तो उसका जापानी अनुवाद करनेवाले भाई या बहन जो पास हों वे बराबर समझ सकें इतनी धीमी गतिसे बोलना होता है। एक वाक्यका अनुवाद पूरा हो जाने पर दूसरा बोला जाता है। इसमें लाभ यह है कि हमें विचार करनेका समय मिल जाता है। भाषा मनमें व्यवस्थित बैठ सकती है और सुननेवालेको भी सुनी हुई बात समझ कर उस पर चिंतन करनेका मौका मिलता है। एक-एक वाक्य यानी एक-एक मुद्दा। बेकारका विस्तार करनेके लिए अवकाश नहीं रहता। चिल्ला-चिल्ला कर लम्बी वक्तृता झाड़नेवाले लोगोंको अनुभव होता है कि उसका यहां बिल्कुल भी उपयोग नहीं है।

डॉ० जैक्स (Dr. jacks), सुन्दरलालजी वगैरा इसी विभागमें थे। ये विभाग चर्चाके लिए टोकियोमें अलग-अलग जगह भिन्न-भिन्न मकानोंमें इकट्ठे होते थे। इस तरह तीन दिन अलग-अलग बैठ कर आखिरी दो दिन फिरसे टोकियो जिमनेजियममें एकत्र होनेका कार्यक्रम है।

विराट सम्मेलनमें एक इटेलियन बहन अध्यक्षके पद पर थीं। उसके बाद श्रीमती रामेश्वरजीने यह स्थान लिया। उन्हें जब कहीं और जाना पड़ा तब एक भाई अध्यक्ष हुए।

दोपहरको रामेश्वरीजीने सब भारतीय प्रतिनिधियोंको विचार-विनिमय करनेके लिए अपने होटलमें बुलाया था। खाते-खाते सब बातें हुईं। शाकाहारी लोगोंको

खिलानेकी व्यवस्था अच्छी नहीं थी। फिर भी मुझे प्रतिव्यक्ति चार सौ येन खर्च करने पड़े !

दोपहरके कार्यक्रममें विशेष रस नहीं आया। शामको सवा सात बजे टोकियो के गवर्नर श्री सेई ईचीरो यासुईकी ओरसे फुकागावा महलमें विदेशके सब प्रतिनिधियोंको खानेका निमंत्रण था। भोजनके बाद जापानी नृत्य व संगीतका सुन्दर कार्यक्रम था। सब सदस्योंको परिषद्के स्थानसे फुकागावा तक अनेक बसोंमें बिठा कर ले गये। अन्तर इतना अधिक था कि बसके सफरमें भी करीब एक घंटा लगा। इस तरह हम टोकियोका बाकी बड़ा भाग और उसके रंग-बिरंग दीये अच्छी तरह देख सके। सभी कुछ देखनेमें आनन्द आता था, इसलिए ऊबनेकी तो नौबत ही नही आई।

गवर्नरके यहांका भोजन सुन्दर था। उसमें शाकाहारी व्यंजन कौनसे हैं यह पूछ कर अथवा ढूंढ़ कर लेने थे। खाते-खाते लोगोंके साथ बातें भी करनी थी। 'बूफे' भोजन-व्यवस्थाका एक लाभ यह है कि अन्न जूठनमें बेकार नही जाता और घूमते-फिरते खाना खानेमे आदमी अधिक लोगोंके साथ बातें कर सकता है।

भोजनके बाद नृत्यके और अभिनयके जो कार्यक्रम हुए वे सचमुच निप्पोनकी कलाके उत्कृष्ट नमूने थे। तीन वर्ष पहले हमने कोबेसे क्योटो जा कर डोरेमिको थियेटरमें जो नृत्य देखे थे वे बड़े पैमाने पर थे। वहां गेशा नर्तकियोंने मुह पर इतना अधिक रंग लगाया था कि उन चमकते चेहरों पर भावोंके प्रदर्शनका सवाल ही नहीं उठता था। नर्तकियां हाथ-पैरके संचालनसे और कपड़े व पंखोंके द्वारा ही भाव व्यक्त करती थी, क्योंकि उस नृत्यका व्याकरण 'पपेट शो' जैसा ही था।

यहांके नृत्यमें होंठ, आंख और चेहरे सब पर तरह-तरहके भाव उभर रहे थे। एक नर्तकीने तो बहुत ही सुन्दर भावपूर्ण नृत्य किया। प्रेक्षकोंने उसका तालियोंसे स्वागत किया। उसने उस सत्कारको ऐसे सुन्दर-मधुर स्मितसे स्वीकार किया कि वह स्वीकृति ही भावप्रदर्शनका एक उत्कृष्ट नमूना साबित हुई। यहांके इस कार्यक्रमकी पृष्ठभूमि बिलकुल सादी थी, लेकिन नृत्यके प्रकार क्योटोसे हजार गुने अधिक अच्छे थे। क्योटोके थियेटरमें रंगभूमिकी खूबीमें विज्ञानका पूरे तौरसे उपयोग किया हुआ था। वहांके पर्देके पीछेके प्रकाशके द्वारा और मचकी सजावटके द्वारा शरद्, हेमन्त व वसन्त आदि ऋतुओंकी शोभा एकके बाद एक अप्रतिम तरीकेसे दिखाई गई थी। समुद्रका विस्तार, उसमें यकायक उठा हुआ तूफान, घबड़ाई हुई मछलियां और सब शात होने पर स्थापित अद्भुत शांति—यह सब देख कर हम बहुत ही खुश हुए थे। उसमें साकुरा (चेरी) पुष्पोंकी और मोमो (पीच) पुष्पोंकी बहार भी कितनी सुन्दर थी ! गवर्नरके यहां तो रंगभूमि जैसा कुछ था ही नही। नर्तकियां और नर्तक अपने हाव-भाव और कपड़ोंकी शोभा पर ही सारा आधार रखते थे।

नर्तकियोंके सिर पर जो लाल रंगका मुकुट था, उसे मैंने मशरूमके सिरकी उपमा दी। वह रेवतीको जरा भी अच्छी नहीं लगी। वह कहने लगी, "इतने सुन्दर शृंगारको आप कैसी उपमा दे रहे हैं?" मैंने कहा, "हीनोपमाका दोष मैं स्वीकार करता हूं, लेकिन यह बताओ कि उपमा सोलह आने सही बैठती है या नहीं। आकार हूबहू मशरूम जैसा ही है न?"

उसके बाद ऐसे अनेक मुकुट एक रस्सीमें बांध कर इधर-उधर फेंकनेका कार्य-क्रम हुआ। फिर रंगीन कागजोंकी लम्बी-सर्पाकृतिवाली डोरियां इधर-उधर उछाली गईं: उनकी सुन्दरताका किन शब्दोंमें वर्णन करूं? हम तो अवाक् हो कर देखते ही रहे। संगीत भी उत्कृष्ट था। सारा कार्यक्रम पूरा होने पर स्वागतवाले अधिकारियोंसे विदा ले कर हम जिस तरह आये थे उसी तरह फिरसे बसमें बैठ कर दस बजे घर लौटे।

घर आते ही तुम्हारे सात पत्र एक साथ मिले! दावत पर दावत रही। चि० रेवतीके लिए बालके तीन पत्र हैं! इसलिए वह भी खिल गई है। अब तो पहले पत्र पढ़ेंगे। शुनिशम्!

२६. विश्व-सम्मेलन और उसके पश्चात्

टोकियो,
१३-८'५७

कल रातको तुम्हारे तथा चि० बालके पत्र पढ़ते-पढ़ते जरा देर हुई। तुम्हारे आखिरी पत्र पर थाईलैंडके टिकट और बैंगकॉककी छाप देख कर बड़ा ही आश्चर्य हुआ। हम चीन नहीं जानेवाले हैं ऐसा मेरे आखिरी पत्रमें अनुमान करके तुम कहीं हमें बैंगकॉक तक लेने तो नहीं आ गईं? ऐसा विचार—भले विनोदमें ही सही—मनमें एक क्षणके लिए तो आ ही गया। पत्र खोलने पर मालूम हुआ कि डाककी हड़तालके कारण बम्बईसे पत्र जानेमें कहीं देर न हो इस डरसे तुम्हें बैंगकॉक जाने-वाले एक भाईके हाथ ये पत्र भेजनेकी सूझी!

सुबह वक्तसे तैयार हो कर हम साढ़े आठ बजे 'नाकानो' नामक सार्वजनिक हालमें पहुंचे। वहां हमारी इस परिषद्के धार्मिकों (Religionists) की विभागीय परिषद् थी। 'रिलिजनिस्ट' यह कोई बहुत अच्छा शब्द नहीं है। लेकिन निप्पोनमें इसीका उपयोग होता है, इसलिए मैंने इसका अनुवाद 'धार्मिक' शब्दसे किया है। इसके अध्यक्षके तौर पर मैं पांच-सात मिनट बोला। मैंने कहा: "एक वक्त था जब समाजमें धर्मका बोलबाला था। अब यह स्थान विज्ञानने ले लिया है। विज्ञानका परिणाम स्पष्ट दिखाई देता है। यह तत्त्व बड़ा ही समर्थ है। इसके मुकाबिलेमें आज

धर्म फीके, संकुचित मनके और निस्तेज दिखाई देते हैं। विज्ञानकी सहायतासे दुनिया एटम-बम तक आ पहुंची है। इससे मनुष्य-जातिका अस्तित्व ही खतरेमें पड़ गया है। अब धर्मोंको अपनी नैतिक शक्तिका उपयोग करके दुनियाको बचाना चाहिए। धर्म दुनियाकी इस प्रकारकी सेवा कर सकें उससे पहले उन्हें अपनी ही सेवा यानी आत्मशुद्धि करनी चाहिए।

"धर्मके ठेकेदार धर्मके प्राणकी उपेक्षा करके धर्मके बाह्य आकारको अधिक महत्त्व देने लगे हैं और भीतर ही भीतर लड़-झगड़ कर हंसीके पात्र बनते जा रहे हैं।

"पश्चिमकी प्रतिष्ठाके कारण ईसाई धर्मकी प्रतिष्ठा भी खूब बढ़ी। उसके मिशनरी दुनियामें सब जगह फैल गए। साम्राज्यशाहीके हस्तक बन कर उन्होंने अपनी कीमती सेवाका महत्त्व घटा लिया। अब हम कहने लगे हैं कि ईसाई धर्मकी कसौटी हो चुकी। यह धर्म हीनसत्त्व साबित हुआ है। ऐसी टीका करनेवालोंको विचार करना चाहिए कि दूसरे कौनसे धर्म पूरे खरे उतरे हैं। अब तो सभी धर्मोंको अन्तर्मुख हो कर आत्मशुद्धि करनी चाहिए और धर्मतेज प्रगट करके दुनियाको विज्ञानका सदुपयोग करनेकी बात समझानी चाहिए। इसके लिए धर्मके ठेकेदारोंको एक ओर हटा कर धर्मको संकुचिततासे बचाना चाहिए।

"आज हम अणु-बमके प्रयोगको व उपयोगको जरूर बुरा कहें; युद्धके द्वारा मनुष्यका कल्याण नही होनेवाला है, इसकी भी घोषणा करें। यह सब जरूरी है। लेकिन हमारा मुख्य कार्य धार्मिक विधि और रूढ़ियोंमें फंसे हुए धर्मके प्राणको बचाना है। तभी सब धर्मोंके बीच सहकार हो सकेगा और धर्म समाजके जीवन पर अच्छा प्रभाव डाल सकेंगे।"

मेरे बाद जो एक दो जापानी बोले, उन्हें मेरा भाषण बहुत पसन्द आया। मैं नही मानता कि परिषद्के मुख्य संचालकोंको मेरा रुख अच्छा लगा होगा। अणु-शस्त्रोंके विरुद्ध बोलने और अधिकसे अधिक युद्धके विरुद्ध बोलनेके अतिरिक्त प्रत्यक्ष कुछ करनेकी अथवा आत्मशुद्धिकी बात करें तो वह उन्हें पसन्द नही आती।

जरा थकान महसूस हो रही थी इसलिए दोपहरको मैंने परिषद्में जाना मुलतवी रखा। उसके बदले पत्र लिखे और अखबारवालोंको मुलाकात दी। इसमें एक बात लिखने योग्य है। पिछला महायुद्ध शुरू हुआ तब मारुयामासान आश्रम-जीवनका अनुभव लेनेके लिए सेवाग्राममें बापूजीके पास आ कर रहे थे। युद्ध शुरू होता है तब सरकार शत्रुपक्षके लोगोंको देशमें आजाद नही रहने देती। उन्हें या तो लश्करी जेल (Concentration Camp) में बंद कर देती है अथवा देश-निकाला दे देती है। इस नियमके अनुसार भारतकी अंग्रेज सरकारने मारुयामासानको पहले तो जेलमें बन्द किया और फिर देशके बाहर भेज दिया। इस बात परसे कुछ जापानी अखबारवाले मुझसे पूछने लगे कि भारतके स्वातंत्र्य-संग्राममें मारुयामासान

का कितना हिस्सा था ? मैंने उन्हें ऊपरकी तफसील दी और कहा कि मैं तो इतना ही जानता हूं। इसके अलावा कुछ और हो तो मारुयामासानसे ही पूछिये।

१४-८-'५७

तीन-चार दिनसे चि० रेवती यहींसे स्वदेश वापस जानेकी बातें कर रही था। मैंने उस बातको महत्त्व नही दिया। परसों जब बालके पत्र आये तब मैंने मान लिया था कि अब वह वापस जानेकी बात भूल जाएगी। लेकिन देखता हूं कि पत्रों-का तो उलटा ही असर हुआ है और उसका तुरन्त घर जानेका आग्रह बढ़ गया है। मैंने उसे अपना अभिप्राय बताया कि "इतनी दूर इतना खर्च करके आने पर उसका पूरा लाभ न उठाना और लौटनेकी उतावली करना उचित नहीं है। मेरी इजाजत ही जरूरी हो तो वह मिलनेवाली नही है। लेकिन तुम्हें मैं रोकूंगा नहीं। जाना हो तो खुशीसे जा सकती हो, मैं सब सुविधा कर दूंगा। निप्पोन तो चाहे जब फिरसे आया जा सकता है, किन्तु चीनमें घूमने और देखनेका ऐसा मौका आसानीसे नही मिलेगा। इसलिए दो-तीन दिन ठीक विचार करके जो निर्णय करना हो सो कर लो।" मेरा ऐसा तटस्थ रुख देख कर वह दुविधामें पड़ गई। मैंने अपना रुख तो नहीं बदला, लेकिन वह प्रसन्न रहे इसके लिए उसकी ओर अधिक ध्यान देना तय किया है।

आज मैं राष्ट्रोंके बीचका वैरभाव और उनकी तनातनी कैसे दूर हो (Reduction of tensions between nations) उसका विचार करनेवाली समितिमें जा कर बैठा। निप्पोनी भाषणोंका अंग्रेजी अनुवाद करनेवाला एक जापानी युवक मेरे पास ही बैठा था। उसी काममें मदद करनेवाली एक जापानी बहन भी वहां चाय पीती हुई काम कर रही थी। अनुवादक महोदय चतुर दिखाई दिये। जापानी का अधूरा वाक्य सुनते ही उसका अंग्रेजी अनुवाद माइक (ध्वनि-विस्तारक यन्त्र) में बोल जाते थे। फिर जब वाक्य पूरा होता था तब बड़ी कुशलतासे अंग्रेजी वाक्य भी पूरा करते थे। विस्तारको काट-छांट कर मतलबकी बातें थोड़ेसे शब्दोंमें कहना और वक्ताकी गतिके साथ मेल रखना इस खूबीको वे निपुणतासे निभा रहे थे।

आज मंजु व रेवती परिषद्में आनेके बदले हमारे दूतावासके प्रथम मंत्री श्री हेजमाडीके यहां उनकी पत्नीसे मिलने गई है। हेजमाडीकी पत्नी सगुणा रेवतीकी सहेली है। तीनों मिल कर बाजार गई और अच्छी-अच्छी चीजें खरीद लाई। उसके बाद श्री हेजमाडी मुझे मिलने आये। और रातको अपने वहां खानेका निमंत्रण दे गए।

दोपहरको अखबारवाले आए थे। उन्होंने बहुतसे महत्त्वके प्रश्न पूछे। मैंने उन्हें विस्तारसे जवाब दिया।

शामको हम टोकियोका विश्वविख्यात बाजार—गिंजा देखने गए। बंबईमें जैसे फोर्टका विस्तार है, दिल्लीमें जैसे कनाट सर्कस है, उसी तरह टोकियोका यह

गिंजा है। रातको हरएक दुकानमें नीचेसे ऊपर तक रंग-बिरंगे दीयोंकी एकसी दीपावली पूरे वर्ष रहती है। निप्पोनका पूरा वैभव इस एक बाजारमें दिखाई दे जाता है। धनवान लोग, रसिक लोग, विलासी लोग और उस-उस क्षेत्रके मर्मज्ञ यहां इधर-उधर घूमते हुए देखे जा सकते हैं। यह सारा ठाठ-बाट कलायुक्त ढंगसे फैला हुआ देख कर मनुष्यका दिमाग चकरा जाय तो कोई आश्चर्य नही। सब जगह पैदल घूम कर यह महोत्सव देखा और वहांसे हम श्री हेजमाडीके यहां खाना खाने गए।

सगुणा बहनने हमारे साथ हमारे मेजबान मारुयामासान और तास्सेसान, इन दोनोंको भी भोजनके लिए बुलाया था। ईमाईसान किसी कामसे दूसरी जगह गये थे। सगुणा बहन कला-रसिक और स्वतः कलाकार है। उनकी कसीदाकारी व चित्रकारी तो सुन्दर थी ही, लेकिन उन्होंने एक जापानी ढंगकी गुड़िया भी बनायी थी। वह इतनी सुन्दर बनी थी कि जापानी भी उसकी सराहना करें। गुड़ियोंको जापानी पोशाक पहनाना कोई सरल कार्य नहीं है। उसमें बहुतसी बातोंका ध्यान रखना पड़ता है।

स्वदेशी ढंगका भोजन विदेशमें एक बड़े ही सुख व आनन्दका विषय होता है। श्री हेजमाडीने मिस्र, इंडोनेशिया वगैरा दो-चार देशोंके प्रतिनिधियोंको भी खानेके लिए बुलाया था। इसलिए खानेसे पहले और बादमें भी बातोंका खूब रंग जमा। मिस्रके दूतावासके श्री सेल्विन और श्रीमती सेल्विनके साथ मेरी महत्त्वपूर्ण बातें हुई। विचारोंके लेन-देनमें उन दोनोंको खूब रस आया।

बर्माके उस पारकी दुनियाके विषयमें हम बहुत ही कम जानते हैं। उन लोगोंका जीवन, उनका मानस, उनकी समस्याएं—इनमेंसे हमारे लोग कुछ भी नहीं जानते, यह बहुत बड़ी कमी है। चि० सतीश इन लोगोंके देशमें दो वर्ष रह आया है इसलिए वह बहुत कुछ जानता है। यूरोपके लोग उनके अपने महाद्वीपके लोगोंके विषयमें परस्पर जितना जानते हैं उतना भी यदि हम एशियावासी एक-दूसरेके देशोंके विषयमें न जानें, तो एशियाकी आत्मा किस प्रकार प्रकट होगी ?

हमारे साथ आये हुए मारुयामा और तास्सेकी हेजमाडीके अरविन्दके साथ देखते ही देखते दोस्ती हो गई। वे आपसमें जापानीमें बोलने लगे। बातें करते हुए वे पासके एक कमरेमें टेलीविजन देखनेमें तल्लीन हो गए। तास्सेको टेलीविजन देखने का बड़ा ही शौक है।

गिंजा जाते समय हम भूगर्भ-रेलगाड़ीमें बैठे थे, यह लिखना तो मैं भूल ही गया। लन्दनमें हम ऐसी ही रेलगाड़ीमें बैठे थे, लेकिन उससे मुझे जापानकी यह भूगर्भ-रेल अधिक अच्छी लगी। यहांके स्टेशन भी बड़े शानदार है।

जापानी गुड़ियाके विषयमें मैंने लिखा ही है। गुड़िया इस देशकी विशेषता हैं। होक्कायडोसे नागासाकी तक जहां-जहां हम गए, शहरोंमें या गावोंमें, वहां हर घरमें तरह-तरहकी छोटी-बड़ी सुन्दर गुड़ियां होती ही थी। एक दिन मैंने अपने

गृहपतिसे कहा कि निप्पोनमें जमीन थोड़ी है और जनसंख्या अधिक, यह बात सच है। लेकिन यदि निप्पोनकी तमाम गुड़ियोंकी गणना की जाए तो मनुष्योंकी संख्या-से उनकी संख्या दस-बीस गुनी अधिक निकलेगी। कुदरत मनुष्यको बनाती है और मनुष्य अपनी कला आजमा कर तरह-तरहकी गुड़ियां बनाता है। यह अच्छी होड़ है!

१५-८-'५७

आज सुबह परिषद्में पहले दो दिन अलग-अलग विभागोंमे जो काम हुए उनका ब्यौरा दिया गया। यह सब सुननेमें दोपहरका एक बज गया। खाना खा कर हम लोग किताबें खरीदने निकले। निप्पोनके विषयमें अंग्रेजीमें उपलब्ध साहित्य देखा। विदेशियोंकी लिखी हुई बहुत-सी किताबें यहांके बाजारमें नहीं मिलतीं। देशाटनके रसिक संस्कार-यात्रियोंको रुचिकर हों ऐसी ही पुस्तकें यहां थीं। रेवती व मंजुको पुष्प-रचनाकी कला व घरके कमरे सजानेके विषयकी ही खास किताबें चाहिए थीं। तीन वर्ष पहले खरीदी गई किताबोंमेंसे मैं बहुत कम पढ़ सका था। इसलिए इस बार अधिक खरीदनेका मन नही था। फिर भी प्रवास, साहित्य और भाषाके विषयकी साठ-सत्तर रुपयोंकी किताबें तो खरीद ही ली। ये किताबें खरीदते वक्त एक अनुभव मिला। इन किताबोंमेसे एक किताब ऊपरसे कुछ खराब थी। उनके पास उसकी दूसरी प्रति नही थी। मैंने कहा कि "कोई बात नही, जैसी है वैसी ही दे दें।" उन लोगोंने साफ मना कर दिया। उन्होंने कहा "कल तक इसकी अच्छी प्रति हम आपको पहुंचा देंगे। ऐसी मैली-कुचैली किताब हम आपके देशमें कैसे जाने दें?"

अपने बचपनमें मैंने जापानियोंके बारेमें काफी भला-बुरा सुना था: 'बताएंगे एक माल भेजेंगे दूसरा' वगैरा-वगैरा। उस समयकी यह टीका या तो गलत होगी अथवा उस बदनामीको धो डालनेका इस देशने निश्चय किया होगा। चाहे जो हो, दोनों बारकी यात्राओंमें इन लोगोंके विषयमें हमारा अनुभव हर तरहसे अच्छा ही रहा।

रातको हम निप्पोनका प्रख्यात काबूकी शैलीका नाटक देखने गये। यह नाट्य-प्रकार मूलतः चीनका है। जापानी वहांसे इसे लाये व इसमें अपने ढंगसे हेर-फेर करके इसे राष्ट्रीय रूप दिया। ये नाटक पुराने ढंगके होने पर भी बड़े लोकप्रिय हैं।

हमने नाटक देखना तो तय किया, लेकिन उसमें एक दिक्कत खड़ी हुई। आज भारतका 'स्वतंत्रता-दिवस' है। इसलिए आज हमारे प्रतिनिधि-मण्डलने जापानी मेहमानोंको आमंत्रित करके यह उत्सव मनाना तय किया। विदेशमें ऐसे उत्सवों में भाग लेना और भी महत्त्वपूर्ण होता है। इसलिए उसे टाला नहीं जा सकता था। दोनोंमेंसे किसे अधिक महत्त्व दिया जाय? हमने दोनोंको ही साधनेका निश्चय किया। काबूकी नाटक खासा चार-साढ़े चार घंटे चलता है। बहुतसे लोग बीचमें

ही पासके ढाबेमें जा कर खाना खा आते हैं और फिर वापस आ कर आगेका नाटक देखते हैं। हमने थोड़ी देर नाटक देखा और फिर स्वतंत्रता-दिवसके उत्सवमें गये। वहां मुझे बोलना था। स्वातंत्र्य-गीत गानेमें रेवती और मजुने भाग लिया। यह उत्सव अच्छी तरह पूरा करके हम फिरसे नाटकमें पहुंचे। खाना भी हमने नाट्य-गृहके भोजनालयमें ही खाया।

स्वतंत्रता-दिवसके उत्सवमें मैंने अपने छोटेसे भाषणमें आजादीका इतिहास बताया। उसमें १९०५ के रूसी-जापानी युद्धका एशिया पर कैसा अच्छा असर हुआ और उस समयके हम युवकोंको उससे कैसी प्रेरणा मिली, इसका भी मैंने उल्लेख किया। भारतकी पताकाका विश्व-संदेश भी मैंने थोड़ेमें समझाया। हमारा श्वेत रंग विश्वशांतिका प्रतीक है। उसके ऊपरका अशोक-चक्र न्याय, सदाचार व बन्धुत्वका धर्मचक्र है और अभयदानका द्योतक भी है, आदि कुछ बातें मैंने वहां स्पष्ट की।

चार घंटेके नाटकके विषयमें थोड़ेमें लिखना मुश्किल है। पुरुषका पार्ट स्त्रीको देनेमें अभिनयमें जरूरतसे ज्यादा कोमलता आ जाती है। और रसभंग भी होता है। यह कठिनाई दूर करनेके लिए और इस परिस्थितिसे लाभ उठानेके लिए इस ओरके नाटककार कभी-कभी नाटकमें प्रसंग ही ऐसा उपस्थित करते हैं कि यह सब स्वाभाविक मालूम हो। उदाहरणके लिए, कोई लड़की पुरुष-वेषमें किसी मठमें मे दाखिल हुई। उसने तपस्या शुरू की। एक बार उसे जानकी जोखिम भी उठानी पड़ी। उसमें उसने अमुक बहादुरी भी दिखाई। अन्तमें लोगोंके सामने वह अपने असली स्त्री-रूपमें प्रकट हुई, वगैरा। ऐसे कथानकमें कोई लड़की पुरुषका वेष बनाये, यह सब तरहसे उचित जान पड़ता है। इसमें रसभंग होनेके बदले रसका उत्कर्ष ही होता है। हमारे देखे हुए नाटकमें विषादका वातावरण कुछ अधिक था।

नाट्य-गृहका रंगमंच तो हमारे यहांके रंगमंचोंसे तीन गुना अधिक बड़ा होगा। एक बार तो सारे रंगमचको ही गोल घुमा कर पीछेका हिस्सा आगे लाया गया था। दिन अथवा रात,मंदिर, मठ या श्मशान और भिन्न-भिन्न ऋतुओंमें कुदरत-की बदलती हुई शोभा आदि सभी चीजें उच्च अभिरुचिके साथ हूबहू दिखाई गई थी। अभिनय-कला सुन्दर थी। साथियोंने बताया कि बीचमें उठ कर आपने एक सुन्दर दृश्य खोया। खैर, हमने तो जो देखा उसीसे हमें बहुत संतोष हुआ। हमें केवल जापानी कलाके कुछ नमूने ही देखने थे।

अब तो जापानके छोड़नेके दिन नजदीक आ रहे हैं। इतने दिन जिनके साथ बिताये, उनसे एक बार तो अलग होना ही होगा। बादमें न मालूम फिर कब मिलें! मिलेंगे यह उम्मीद भी कैसे रखें?—इस तरहके मिश्रभाव मनमें उठने लगे हैं।

३०. विदा

टोकियो,
१६-८-'५७

कितना अजीब और दुःखदायी! इस बार जब निप्पोनकी यात्राके लिए निकला तब भारतन् कुमारप्पा गए और अब यह प्रवास पूरा कर रहा हूं तब देवदास गांधीकी मृत्युके समाचार मिले! प्रथम तो समाचार उड़ते-उड़ते ही सुने। किसी तरह भी विश्वास नहीं होता था। हालमें ही तो वे मिले थे। उनकी लड़कीके विवाहमें हमने उन्हें देखा था। ताराका अभिनन्दन किया था। वहीं राजाजीके साथ बातें हुई थीं। देवदासने खुद बड़े आग्रहसे हमें मिठाई खिलाई थी और आज उनके जानेके समाचार सुन रहा हूं!

देवदास बीमारीमें मद्रास जरूर गये थे, लेकिन उसके बाद तो अच्छे हो कर उन्होने कामकाज संभाल लिया था और बड़े उत्साहसे सब काम करते थे।

अशुभ समाचार सुने और एकदम १९१५ में शांतिनिकेतनमें बालक देवदासको मैं पहले-पहल मिला था उस समयका उनका सारा जीवन आंखोके सामने घूम गया। कविवर रवीन्द्रकी शिक्षण-संस्थाको केवल बाहरसे नही बल्कि अन्दर रह कर देखने-के हेतुसे मैं वहां गया था। गांधीजीके फिनिक्स सेटलमेंटवाले कुटुम्बियोंके साथ मैं वहां अनायास ही घुल-मिल गया था। उस व्यापक कुटुम्बमें गांधीजीके तीन पुत्र मणिलाल, रामदास और देवदास भी थे। श्री मगनलाल गाधी उस परिवारके प्रमुख व्यक्ति थे। इतनी छोटी उमरमें भी देवदासकी तेजस्विता और तत्त्वनिष्ठा निखर पड़ती थी। उस समय भी प्रभुदास, केशू और कृष्णदास देवदाससे प्रेरणा लेते थे। सब बुजुर्गोकी आज्ञा पालन करने पर भी देवदास अपनी स्वतंत्रता नहीं खोते थे। वे श्री एन्ड्रूज़ व पियर्सनसे जितना मिल सके उतना ग्रहण कर लेते थे। देवदासके गुलाबी चेहरेसे और उनकी आंखोंकी खुमारीसे मैं कल्पना कर सकता था कि बापूजी अपनी युवावस्थामें कैसे दिखाई देते होंगे। बादमें जब बापूजीने अहमदाबादमें आश्रम खोला और मैं वहा रहने गया तब देवदासको मैं संस्कृत पढ़ाता था। पूज्य बापूजीके सिद्धान्तोंका और उनके आग्रही स्वभावका देवदासको बचपन से ही परिचय होनेके कारण उन्हें हर बातका स्पष्टीकरण करनेकी आदत थी। एक दिन उन्होंने आश्रमकी सभामें कहा : "मैं नहीं मानता कि मैं यहां एक आश्रमवासी के नाते रहता हूं। आश्रम-जीवन अच्छा है, लेकिन मैं तो यहां अपने माता-पिताके साथ उनके पुत्रके नाते ही रहता हूं।" आश्रमकी प्रार्थनामें देवदासके भजन अत्यन्त मधुर और असर करनेवाले होते थे। पूज्य बापूजी उन दिनों सारा दिन दर्जीका काम करते थे और देवदासको भी यह हुनर सिखाते थे। अपनी सारी शिक्षा देवदास ने अपनी कल्पनाके अनुसार और अपने प्रयत्नसे ही प्राप्त की थी। जेलमें जवाहर

लालजीने भी देवदासको थोड़ा पढ़ाया था। लेकिन खास तौरसे तो मद्रासमें राजाजीने ही देवदासकी शिक्षामें पूरा रस लिया था।

एक बार बापूजीके सेक्रेटरीका काम करनेका देवदासने विचार किया। मैंने कहा कि बड़े आदमीके लड़केको पिताके मंत्री बननेका प्रयत्न नहीं करना चाहिए। जिधर देखो उधर अप्रिय बनना पड़ता है और गलतफहमीका तो पार ही नहीं रहता। 'हिन्दुस्तान टाइम्स' कैसे शुरू हुआ और उसके द्वारा देवदासने अपने आपको एक पत्रकारके रूपमें कैसे तैयार किया, उसका भी सारा चित्र आंखोंके सामने खिंच गया। बापूजीकी तत्त्व-जिज्ञासा और आसपासके सब लोगोंको जीत लेने की कला देवदासने अच्छी तरह सीख ली थी और उनकी व्यवहार-कुशलताको तो चरम सीमा पर पहुंचा लिया था।

गांधी-स्मारक-निधिको तो मानो शनिकी दशा ही लग गई है। इस निधिकी स्थापना हुई तभी वल्लभभाई गए। फिर दादा साहेब, उसके बाद बाला साहेब और अब देवदास तो असमयमें ही चल बसे।

देवदासके बच्चे तो आखिर अपनी-अपनी कार्यशक्ति बढ़ानेमें लग ही जायेंगे, लेकिन चि० लक्ष्मीके बारेमें बहुत विचार आ रहे हैं। अभी-अभी मैंने और मारु-यामासानने लक्ष्मीको तार भेजा है।

आज जागतिक परिषद्का आखिरी दिन है। सब समितियोंके बने हुए प्रस्ताव कुछ घटा-बढ़ा कर आज परिषद्की ओरसे पास हुए। एक प्रस्तावमें ओकीनावाका उल्लेख हटा देनेका प्रयत्न बहुतसे अमरीकी प्रतिनिधियोंकी ओरसे हुआ। यह मुझे जरा भी पसंद नहीं आया। इसलिए आखिरी दिनके अपने भाषणमें मैंने ओकीनावाका खास उल्लेख किया। मैंने कहा: "हमें भूलना नहीं चाहिए कि यह जागतिक परिषद् टोकियोमें की गई, इसमें एक बड़ी विशेषता है। एटम-बमके कारण सबसे अधिक कष्ट जापानियोंने सहे हैं। हिरोशिमा और नागासाकीके जैसा नुकसान और किसी का नहीं हुआ है। जापानी लोगोंकी भावना हमारे प्रस्तावमें व्यक्त न हो तो मैं तो उन प्रस्तावोंको निर्जीव समझूंगा। ओकीनावाका उल्लेख भला क्यों निकाल दिया जाए? उस अभागे द्वीपमें जो ८०,००० जापानी बसते हैं उन्हें अपने राष्ट्रसे जबर-दस्ती अलग किया गया है। वहांके युद्धके अड्डोंका विस्तार करनेके लिए प्रजाकी खेती नष्ट की जा रही है। इस भयंकर अन्यायके बारेमें हमारा पुण्य-प्रकोप व्यक्त होना ही चाहिए।"

इस प्रकार थोडा बोल कर मैंने अपना भाषण पूरा किया और अपनी जगह आ बैठा। तब ओकीनावाके एक-दो प्रतिनिधियोंने आ कर मेरे भाषणके लिए मेरा अभिनन्दन किया और भीगी आंखोंसे अपनी कृतज्ञता व्यक्त की। उन्होंने कहा कि "भारत जैसे दूर देशसे आ कर भी आप हमारा दुःख समझ सके हैं।" मैंने इतना ही कहा: "विमान मार्गसे आते-जाते आपका द्वीप दो-एक बार देखा है। तबसे इस

द्वीपके प्रति हमारी सहानुभूति जाग्रत हुई है और यदि विश्वशांतिका अर्थ विश्व-बन्धुत्व होता हो तो हमें एक-दूसरेका दुःख अपने दुःखके जैसा ही लगना चाहिए।"

उन्होंने आग्रह किया कि "हम ओकीनावाके बीसेक प्रतिनिधि उधर बैठे हैं वहां आप हमारे बीच चलिए। हम आपके साथ एक फोटो खिचवाना चाहते हैं।" मैं उनके बीच बैठ कर आ गया। सच्ची सहानुभूति हो तो दुनियाकी किसी भी प्रजाके साथ हृदयकी एकता स्थापित हो सकती है।

० ० ०

दोपहरको सरकारी रेडियो-विभागके लोग हमारे निवास-स्थान पर आये और मुझसे प्रश्न पूछ कर उनके जवाब रिकार्ड करके ले गये। उनके प्रश्नोंमेंसे एक मुझे याद है: "युद्धोंमें आणविक शस्त्रोंका उपयोग होता है और उन शस्त्रोंके प्रयोग भी चल रहे हैं। उनके विरुद्ध जापानी प्रजाकी अकुलाहटके विषयमें आपको क्या लगता है?" मैने उत्तर दिया: "चार हफ्तेसे मैं निप्पोनमें घूम रहा हूं। निप्पोनकी प्रजा शांति चाहती है। आणविक शस्त्रोंका व्यवहार बन्द होना ही चाहिए, ऐसा वह एक स्वरसे पुकार रही है, यह मैं स्पष्ट देख सका हूं। दुःख इतना ही है कि उस पुकार का असर जापानकी लोकतांत्रिक सरकार पर जितना होना चाहिए था उतना नहीं दिखाई दिया।"

"निप्पोनके लोगोंका रहन-सहन आपको कैसा लगा।" इस सवालके उत्तरमे मैंने कहा, "इस देशकी सुघड़ता और कलात्मकता मुझे बहुत भायी है। मैं भी एशियावासी हूं। जापानी ढंगसे रहते हुए मुझे ऐसा नही लगा कि परदेशमें आया हूं।"

निप्पोन आया हूं तबसे गुरुजीसे दो-तीन बार ही मिलना हुआ है। परिषद्में जरूर रोज मिलते थे, लेकिन उसे तो मुंह देखी मुलाकात ही कह सकते है। एक-दूसरेको देख कर हसे, नमस्ते की और चले! निप्पोन छोड़नेसे पहले मुझे उनसे खास मिलना था और बहुत-सी बातें उन्हें खानगीमें कहनी थी। इसके लिए आज शामको हम उनके निवासस्थान पर गये थे। हमारा भोजन भी वहीं था, इसलिए खाते-खाते आरामसे सब बातें हो सकी।

मैंने उनसे कहा: "पिछले पचास-साठ वर्षोंसे भारतमें भगवान बुद्धके प्रति जो भक्तिकी भावना जाग्रत हुई है और बौद्धधर्मके प्रति शिक्षित लोगोंमे जो आदर उत्पन्न हुआ है उसमें अधिकसे अधिक असर थेरवादका यानी हीनयानका है। लंका और बर्मा केसाथ संपर्क होनेके कारण थेरवादसे हम अधिकसे अधिक परिचित है। उन लोगोंमें हिन्दू-समाजके प्रति सहानुभूति कम है। मेरे बौद्ध मित्र साधुचरित पं० धर्मानन्दजी कोसम्बीने लंकामें ही दीक्षा ली थी और पालि-त्रिपिटकोंका गहरा अध्ययन किया था। महायानी शांतिदेवाचार्यका बोधिचर्यावतार उनका प्रिय ग्रन्थ था। इससे स्पष्ट होता है कि उन्हें महायानके प्रति भी आदर था। अब आपने हमारे देशमें राजगिर,

कलकत्ता, बम्बई वगैरा स्थानोंसे सद्धर्मपुण्डरीकके द्वारा महायानका प्रचार चलाया है। उसका मैं स्वागत करता हूं। विनोबाकी और मेरी यह खास इच्छा है कि सब लोग महायान व हीनयानके भेद भूल कर बौद्धधर्म, जैनधर्म और वेदान्तका समन्वय करें और उसके द्वारा धर्मकी पुनर्जागृति करनेका प्रयत्न करें।

"ईमाईसान जैसे आपके शिष्य हिन्दी जानते हैं और सुन्दर काम कर रहे हैं। प्रत्यक्ष परिचयसे मैं कह सकता हूं कि ईमाईसान एक अनुभवी तथा गम्भीर व्यक्ति हैं। कामका विस्तार कैसे करना इसका उन्हें खयाल है। ईमाईसानको कुछ दिन अपने साथ यात्रामें रखनेकी मैंने श्री विनोबासे सिफारिश की थी। उसके अनुसार उनके साथ घूम कर ईमाईसानने भूदान और ग्रामदानका रहस्य समझ लिया है। विनोबा पर उनका अच्छा असर हुआ है। उनके द्वारा निप्पोनकी और भारतकी बहुत महत्त्वकी सेवा होनेवाली है। अभी तक आपने राजगिरमें स्तूप बनानेका और अनेक जगह मंदिरोंको सुचारु रूपसे चलानेका काम किया है। उसके साथ अब साहित्यका प्रचार भी करना चाहिए। इसके लिए भारतमें आनेवाले आपके शिष्योंको हिन्दीका उत्तम ज्ञान होना चाहिए। यदि वे हिन्दीमें अस्खलित बोल न सके या लिख न सकें, तो धर्मकार्यमें उतनी कमी रहेगी।"

आखिरमें मैंने कहा : "भारतमें अब राजनीतिक और सामाजिक कारणोंकी वजहसे बहुतसे लोग काफी संख्यामें बौद्ध-धर्मकी दीक्षा ले रहे हैं। किसीके साथ वैर न करनेके शाक्यमुनिके उपदेशको यदि वे स्वीकार करें, तो खुद उनका और भारतका कल्याण ही होगा। लेकिन इन्हीं दिनों एक-दो जगह हिन्दू और बौद्धोंके बीच झगड़े होनेके समाचार मिले हैं। ऐसे समय खूब संभल कर चलनेकी जरूरत है। आज भारत सरकार और भारतकी प्रजा बौद्ध-धर्मके प्रति आदर और अनुकूलता रखती है। यह सद्भाव ही हमारी सबसे बड़ी पूंजी है। यह पूंजी खोनेके बदले उसे बढ़ानेकी ओर हमारा प्रयत्न होना चाहिए। धर्मको यदि हम राजनीतिक पक्ष-विपक्षमें फंसने देंगे तो उसमें दुर्गन्ध पैदा होने लगेगी और हमारा महान कार्य देखते ही देखते नष्ट हो जाएगा।"

गुरुजीने मेरी बात ध्यानसे सुनी और अन्तमें इतना ही बोले : "महात्माजीने मुझे बहुतसी सूचनाएं दी थी और कई बातोंके बारेमें चेताया भी था। उनका महत्त्व अब समझमें आ रहा है। अब मैं अपनी सारी शक्ति विश्वशांतिके लिए ही लगानेवाला हूं। अमुक धर्म या अमुक पंथका आग्रह रख कर कुछ नही करूंगा।"

हम जिनके यहां रहते हैं वे लोग आजकल बाहर गए हुए हैं। इसलिए हमारे लिए खाना पकानेका काम सुमिकोसान नामकी एक लड़की करती है। नागासाकी जानेसे पहले टोकियोमें जिन भक्तके यहां हमने दो घंटे बिताए थे उन्हींकी यह लड़की है। यह साधारण ठीक पढ़ी हुई है और धर्मके प्रति श्रद्धा रखती है। सुमिको-सानका नाम मैंने सुमित्रा रखा और रामायणकी सुमित्राके विषयमें उसे थोड़ी

जानकारी दी। इसका कुछ दिनोंमें ही विवाह होनेवाला है। मैंने उससे विनोदमें कहा कि विवाहसे पहले तुम अपने पतिसे वचन ले लेना कि वे तुम्हें भारत ले जावें तो ही तुम उनसे विवाह करोगी। मैंने जब उससे पूछा कि "सुमित्रा नाम तुम्हें पसन्द है?" तब वह हंस कर बोली कि "यदि भारत आई तो इस नामको धारण कर लूंगी।" टोकियोसे निकलनेके पहले उसने मेरे हस्ताक्षर मांगे। मैंने उसे एक गुजराती कविकी दो पंक्तियोंका अनुवाद करके लिख दिया।

अब तो आखिर जागतिक परिषद् पूरी हुई। साथ ही हमारा जापान-भ्रमण भी पूरा हुआ। अब केवल पी० ई० एन० वालोंसे मिलना और भारतके राजदूत श्री झाके यहां भोजन करना शेष है।

१७-८-'५७

आज यहांका अन्तिम दिन है। आधी रातसे पहले ही हम टोकियो छोड़कर उड़ चलेंगे। उड़नेसे पहले आजके कार्यक्रमका कुछ हाल लिख दूं। उसके बादकी बातें सबेरे हांगकांग आनेसे पहले ही लिख डालूंगा। यह पत्र वहींसे रवाना होगा।

सुबहका सारा समय तो सामान बांधनेमें ही गया। इस यात्रामें भी मैंने पहलेसे ही निश्चित कर लिया था कि मैं सामान संभालने, बांधने या खोलनेकी ओर बिलकुल भी ध्यान नहीं दूंगा। बहनोंको जो सूझे सो ठीक। हवाई जहाजकी यात्रा में जितना सामान साथ लिया जा सकता है उतना साथ ले कर बाकीका सामान दो पेटियोंमें बन्द करके समुद्रसे भेजनेके लिए ईमाईसानको सौंप दिया है।

दोपहरको भारतीय मण्डलके सभी सदस्योंका भारतीय राजदूत श्री झाके यहां खाना था। श्री झासे मैं आज पहली बार ही मिला। वे बहुत ही मिलनसार और मीठे स्वभावके हैं। आये हुए सब लोगोंके साथ परिचय हो जानेके बाद श्री झा और मैं बगीचेमें जा कर बैठे और बातोंमें लग गये। सबसे पहले मैंने उनके बगीचेकी प्रशंसा की। हमारे यहां मकानके पीछे सुन्दर घास उगा कर तृणस्थली (लॉन) रखनेका रिवाज है। यहां भी वैसी ही तृणस्थली रख कर उसके आसपास जापानी ढंगका बगीचा लगाया हुआ है। दो अभिरुचियोंका ऐसा मेल अत्यंत सुविधाजनक और आनंददायी था। इधरसे उधर यदि चक्कर लगाने हों तो तृणस्थलीका उपयोग कीजिए, और यदि प्रकृतिके साथ गुफ्तगू करनी हो तो जापानी बगीचा सेवामें हाजिर है!

दो संस्कृतियोंका ऐसा सुभग मिश्रण बहुतसे लोगोंको अनुकरणीय लग सकता है। लेकिन जरा सोचने पर मुझे लगा कि इसमें जापानी बगीचेको कुछ गौण स्थान प्राप्त होता है यह ठीक नहीं है। मेरा यही भाव अनायास ही मेरे ऊपरके वाक्यमें आ गया है: "बगीचा सेवामें हाजिर!" मैं तो मानता हूं कि एक संस्कृतिकी चीज दूसरी संस्कृतिमें सम्मिलित करते समय इतना विवेक तो रखना ही चाहिए कि

किसीकी भी प्रतिष्ठा कम न हो।

श्री झासे निप्पोनकी शिक्षा-पद्धतिके विषयमें बहुत कुछ जाननेको मिला। उन्होंने इसका गहरा अध्ययन किया है। जापानी स्वभावके विषयमें चर्चा करते हुए उन्होंने बताया कि यह प्रजा बड़ी विवेकशील है। इसीलिए प्रत्येक प्रसंग पर अपना पूरा-पूरा असर डालनेमें ये लोग सफल होते हैं। श्री झाके यहांका स्नेह-सम्मेलन बड़ा ही अच्छा रहा। इस प्रसंग पर बुलाये हुए जापानी भाइयोंके परिचय में मुझे बड़ी खुशी हुई। वे लोग अंग्रेजी जानते थे, इसलिए खुल कर बातें भी हो सकी। उनमेंसे एक सज्जनके साथ मेरा बीस-पच्चीस दिन पुराना परिचय होनेके कारण उन्होंने पी० ई० एन० क्लबके लोगोंसे मिलनेके लिए मुझे 'सैयोकेन' जलपान-गृहमें ले जानेकी जिम्मेदारी उठाई। यह उपाहार-गृह मारुनोउची नामकी एक विशाल इमारतकी नवी मंजिल पर था। वहां पी० ई० एन० की प्रधान मंत्राणी श्रीमती योका मात्सुओकासानने दो साहित्यकारोंको मुझसे मिलनेके लिए बुलाया था। एक थे कवि शिम्पेई कुमानोसान और दूसरे थे कथाकार जून टाकामीसान। जापानी तरी चाय पीते-पीते हमने बहुतसी बातें कीं। श्री झाके यहां खानेके बाद और कुछ खानेकी गुंजाइश भी नही थी। वे दो सज्जन भी तीन बजे कुछ खाने के लिए उत्सुक नही दिखाई दिये। मैं अंग्रेजीमें बोल रहा था। और श्रीमती योका मात्सुओसानका उसका अनुवाद करके समझा रही थी। बातें तो बहुत हुई लेकिन उसमेंसे कुछ खास निष्पन्न नही हुआ।

कभी-कभी भाषाकी कठिनाईके कारण हम पूछते हैं एक बात और जवाब मिलता है किसी दूसरी बातका। एक-दो किताबोंके विषयमें उन्होंने सिफारिश की; उनके नाम मैंने लिख लिए: Bunsho Rokiju, Edited by Hokiichi Hanawa. यह एक विशाल लेख-संग्रह है, इतना ही मैं याद रख सका हूं। दूसरे ग्रन्थका नाम था Koji-Ki. महाराष्ट्रके 'बखर'के समान यह एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है। ये लोग उसे गद्य महाकाव्य मानते हैं। श्रीमती मात्सुओसानकी आत्मकथा मैंने खरीद ली।

पी० ई० एन० वालोंसे मिल कर जब मैं घर आया तो कलके जापानी रेडियो-वाले आभार-प्रदर्शनका एक पत्र और एक सुन्दर भेंट ले कर आये। पूछने पर उन्होंने बताया कि उस पैकेटमे सिगरेट रखनेका एक चांदीका डिब्बा है, जिस पर सुन्दर कलाका काम है। मैंने बताया कि मुझे बीड़ी-तम्बाकूका व्यसन नही है। मेरा बड़ा लड़का जरूर इसका शौकीन है। उसे यह डिब्बा दू तो वह खुश होगा। लेकिन तम्बाकूका विरोध करनेवाला मै ऐसी चीज लू और अपने लड़केको दू, यह शोभा नही देता। वे समझ गये। पहलेसे पूछा नही इस 'अविवेक' के लिए उन्होंने क्षमा मागी और वापस जा कर वे एक सुन्दर लकड़ीकी तश्तरी (ट्रे) ले आये। मैंने उन्हें धन्यवाद दिया और उसे ले लिया।

यात्रा पर जानेवाले मनुष्यकी सुविधा-असुविधाका जिनको खयाल होता है; वे ही यांत्रियोंको जाते वक्त अपने यहां खानेके लिए पहलेसे निमंत्रण दे रखते हैं। श्री हेजमाडीने हमसे कहा कि आप अपना सब समान बांध कर दूतावासके एक कर्मचारीको सौंप दें और फिर आप तीनों हमारे यहां खानेके लिए आ जाएं। आखिर तक हम बातें करेंगे और फिर मैं आपको अपनी मोटरमें हानेडा तक पहुंचा आऊंगा।

इतना सुविधाजनक निमंत्रण और वह भी इतने सज्जन व रसिक लोगोंसे मिला हुआ! फिर भला उसे कौन छोडता?

हमने उनके यहां जा कर बड़े आरामसे खाना खाया। बाहरके और कोई नहीं थे इसलिए खूब बातें हुई और हम आरामसे हानेडा पहुंच गये। यह रास्ता भी ऐसा था कि टोकियो शहरके पुराने भागका बहुतसा हिस्सा हम फिरसे देख सके। पुरानी बड़ी-बड़ी दीवारें, पुराने ढंगके दरवाजे और पुराने ही किस्मके घर देख कर मुझे वड़ा आश्चर्य हुआ। पिछले महायुद्धमें शत्रुने इस शहरको पूरा तहस-नहस कर दिया था, फिर भी उसका यह पुराना हिस्सा साबुत रह गया, यह एक आश्चर्यकी ही बात थी।

हम हवाई अड्डे पर पहुंचे। वहां ईमाईसान, तास्सेसान, सुमीकोसान और दूसरे बहुतसे लोग हमें विदाई देनेके लिए एकत्रित हुए थे। जब तक साथ रह सकते थे तब तक साथ रहे और उसके बाद वे सब नजदीकके एक पुल पर चढ़ गये। वहां पंक्तिबद्ध खड़े हो कर चमड़ेके पंखे बजाते-बजाते उन्होंने हमें अन्तिम विदा दी। मुझे विश्वास है कि उनके हृदय भी हमारे जैसे ही भारी हो गये थे। करीब एक महीनेकी मधुर मेहमानी चख कर हमने एक समर्थ, संस्कारी और बहुत ही प्रेमालु प्रजासे विदा ली। किन्तु उनका प्रेम और उनकी हमारे प्रति आत्मीयताकी कीमती और भारी भेंट हमने अपने साथ रख ली। इसका हवाई अड्डे पर वजन करनेकी जरूरत नहीं थी, वरना हमारा हवाई सफर वहीं रुक जाता। साढ़े ग्यारह हो गये। बारहका घंटा बजते ही दिन बदलता है। पर उससे पहले ही हमने जापानकी धरती छोड़ दी और दक्षिणकी ओर प्रयाण किया। जब तक टोकियोके दीये दिखाई देते रहे तब तक हमारी आंखें जहाजकी खिड़कीसे ही चिपकी रहीं। मध्यरात्रि हो जाने पर भी हृदयकी मीठी अस्वस्थताके कारण नींद नहीं आई। आखिर जब शरीर बिलकुल थक गया, तब निद्रादेवीने अधिकार किया और हमें स्वप्न-सृष्टिमें पहुंचा दिया।

ईश्वरकी बड़ी कृपा है कि मैं दो बार एशियाके इस अद्भुत देशका दर्शन कर सका। पहली बार तुम साथ थीं। दूसरी बार जो देखा-जाना, अनुभव किया और सोचा उसकी तफसील पत्रोंके द्वारा बारंबार भेज कर इस यात्राका खयाल तुम्हें दे सका हूं। इसलिए मैं तो कहूंगा कि जापानके "हमने दो बार दर्शन किये।" फर्क

केवल इतना ही है कि पहली यात्रा तुमने खुद मेरे साथ की थी और यह दूसरी यात्रा, मानस-यात्रा होनेके कारण, तुमने मेरे द्वारा की है। हम सब आशा रखते हैं कि भारतके लोग प्रतिवर्ष अधिकसे अधिक संख्यामें निप्पोन देशमें आयेंगे और निप्पोनके लोग भी ज्यादासे ज्यादा संख्यामें बुद्ध भगवानकी जन्मभूमि व पुण्यभूमि भारतमें आयेंगे और इन दो प्रजाओंका सहयोग दुनियाके लिए कल्याणकारी सिद्ध होगा।

३१. निप्पोन : वर्तमान और भावी

कोबे (जापान),
१०-८-'५७

मेरे उस भाषणकी दो नकलें और दूसरे एक-दो पत्रोंकी नकलें, जो तुमने (सतीश भाईने) टोकियोके हमारे दूतावासकी मारफत भेजीं, मिलीं। लेकिन उनमें तुम्हारा अथवा चि० चन्दनका पत्र क्यों नहीं है? तुम अर्थशास्त्री हो, फिर भी शब्दोंकी बचत करनेकी तो तुम्हारी आदत नही थी। बहुत करके तुम्हारा समय-दारिद्रय ही इसका कारण होगा।

चि० सरोज तो रोज एक पत्र भेजती है। उन पत्रोंमें सब लोगोंके समाचार काफी विस्तारमें होते हैं। उसकी तबीयत अब सुधरने लगी है।

चि० मंजु अवनि मेहताकी पत्नी है यह तुम जानते हो, लेकिन तुम्हें यह नही मालूम होगा कि वह हमारे कान्ति और जयन्ती मेहताकी बहन भी है। छोटे बच्चोंको छोड़ कर इतने दिनका और लम्बा सफर करना ठीक है या नही, ऐसी उधेड़-बुन उसके मनमें चल रही थी और वह निर्णय नही कर पा रही थी। तब उसकी सासने उसे डपट कर कहा : "बड़ी आई है बच्चोंकी चिंता करनेवाली! घरमें जैसे हम कोई हैं ही नहीं! कहती हूं कि बिलकुल निश्चिन्त हो कर चली जा। दूर-दूरके देश देखनेका यह मौका मिला है, उसे खोना नही चाहिए।" मंजुको उसकी सासके सुन्दर और मधुर पत्र मिलते रहते हैं। उसकी सास तो मानो साक्षात मां ही है।

चि० राजा और कुमार मजे मे होंगे। चि० शैलाके सुन्दर-सुन्दर पत्र आते होंगे।

पूरी यात्रामें हमारी तबीयत खूब अच्छी रही। हमारे खाने-पीनेकी, घूमने-फिरनेकी और सोने-उठनेकी व्यवस्था उत्तम है। समुद्रकी मछलियां खानेको हम तैयार नही हैं, लेकिन समुद्रमें पैदा होनेवाली चित्र-विचित्र वनस्पतियोंकी साग-भाजी मुझे भाने लगी है। इस तरह हमारी यात्रा खूब अच्छी चल रही है। निप्पोनके ठेठ उत्तरसे ठीक दक्षिण तकका सारा मुल्क हमने जी भर कर देखा। इस बार चार आंखें और मेरी मददमें हैं। राजाओंको चारचक्षु कहते हैं। मैं इस नये अर्थमें

चार-चक्षु अथवा षट्चक्षु बन गया हूं। कोई भी बात षट्कर्णी होती है तो वह छिपी न रह कर सारी दुनियामें फैल जाती है। तब षट्चक्षु दर्शन कहां तक पहुंचेगा, यह विचारणीय है। हम तीनोकी तबीयत उत्तम है। चि० रेवतीको शक होने लगा है कि उसका वजन कम बतानेवाले कांटे शायद ठीक ही हों!

मैंने देखा है कि निप्पोनमें इतनी कम जमीन पर इतनी लोक-संख्या निभानेके लिए इन लोगोंको छोटे-बड़े अनेक उद्योग बढ़ाने पड़े हैं। परिणाम यह हुआ है कि इस देशके गांव बड़ी तेजीसे शहरोंका रूप धारण करने लगे हैं। गांवमें बिजली पहुंच जाए, हर तरहकी सुघड़ता हो और लोगोंको पुस्तकालय, संग्रहालय (म्यूज़ियम), नाट्यगृह आदिकी सुविधाएं मिलें, यह तो मैं चाहता हूं। लेकिन खेतीके साथ का और जानवरोंके साथका सम्बन्ध हमेशा कायम रहना चाहिए। बस्ती बहुत घनी नहीं होनी चाहिए यह मेरा आदर्श है। निप्पोनमें अब शहरी संस्कृतिके गुण-दोष आने लगे हैं। जापानी इतिहास और साहित्यका विचार करते हुए मुझे तो लगता है कि इस जातिके स्वभावमें शहरी जीवन और ग्रामीण जीवन दोनोंका मिश्रण है। इस राष्ट्रीय पूंजीके भरोसे ही इस देशने पिछले सौ वर्षोंमें इतनी प्रगति की है। ये लोग यदि पूरे-पूरे शहरी बन जाएं तो इनकी अमुक शक्ति नष्ट हो जायगी। फिर तो जिसे मैं 'प्रवाल संस्कृति' कहता हूं वही बढ़ सकती है।

प्रवाल संस्कृति—यह एक नया शब्द मैंने गढ़ा है। इसकी कल्पना भी नई है। इसीलिए इसे जरा समझा दूं।

समुद्रमें प्रवालके कीड़े बहुत ही छोटे होते हैं. लेकिन वे करोड़ोंकी संख्यामें होते हैं। इसलिए परस्पर सहकारके द्वारा वे बड़े-बड़े घर बनाते हैं। पेड़ और उनकी शाखा-प्रशाखाओं जैसे उनके सफेद और लाल घर हम संग्रहालयोंमें देखते हैं। ये स्पंजके आकारके होते हैं। ये समुद्रकी तलहटीसे घर बांधना शुरू करते हैं और ऊपर बढ़ते-बढ़ते समुद्रकी सतह तक पहुंच जाते हैं। तब उनके सिरका एक अंगूठी जैसा गोल टापू बन जाता है, जिसे अंग्रेजीमें 'एटॉल' कहते है। (यह सब तुम तो जानते हो। लेकिन चि० चन्दन यह पत्र राजा और कुमारको पढ़ कर सुनायेगी। उनकी सुविधाके लिए यह जरा विस्तारसे लिखा है।) इस अंगूठी जैसे द्वीपके अन्दर जो समुद्रका हिस्सा रहता वह धीरे-धीरे मीठे पानीका सरोवर बन जाता है। फिर पक्षी आते हैं और इस द्वीप पर वनस्पतिके बीज गिरा देते हैं। इस तरह द्वीप पर जंगल बढ़नेके बाद मनुष्य और जानवर भी यहां आ बसते हैं।

इस तरह अंगूठी जैसे द्वीप बनानेका धंधा ये प्रवालके कीड़े करते हैं। समुद्रसे कैल्शियम प्राप्त करना, उसे ले कर समुद्रकी तलहटीसे बड़े-बड़े प्रवालीय पेड़ तैयार करना और फिर उनका विस्तार करना यही इन कीड़ोंका जीवन है। विस्तार बढ़ानेके अलावा और कोई भी विविधता या जीवनानन्द ये लोग नहीं जानते। उनकी मेहनतका लाभ भले ही फिर कोई दूसरी संस्कृति उठाये। ऐसी इन प्रवालके

कीड़ोंकी केवल विस्तार-परायण, विविधता-शून्य और आनन्द-विहीन लेकिन सुघड़ संस्कृतिको मैं प्रवाल-संस्कृति कहता हूं। तुम्हे संस्कृतिकी वह पंक्ति याद होगी—"अति-विस्तार विस्तीर्णम् तद् भवेत न चिरायुषम्।" किसी वस्तुका अनुपातसे अधिक अमर्याद विस्तार बढ़े तब उस वस्तुकी आयु कम होती ही है। पश्चिममें जितनी हद तक प्रवाल संस्कृति विकसित हुई है उस हद तक उसकी आयु घटी है। यदि यह संस्कृति समय रहनेसे चेत जाए व सुधर जाए तो अच्छा; नहीं तो उस पर ऊपरवाला नियम लागू होगा ही। चीन या अमरीका जैसे विशाल देशोंकी बात और है, लेकिन ब्रिटेन या जापान जैसी द्वीपी (इन्सुलर) संस्कृतिके लिए अति-विस्तार घातक साबित होगा।

द्वीपी प्रजामें आत्म-विश्वास, उद्योगिता और महत्त्वाकांक्षा बढ़े तो उसका विकास बहुत जल्दी और अद्‌भुत रीतिसे होता है। ब्रिटेन और निप्पोन उसके उत्तम नमूने हैं। लेकिन उसके लिए प्रजा एकजीव होनी चाहिए। हमारे यहां लंकाकी प्रजा चाहे तो ऐसा ही सामर्थ्य प्राप्त कर सकती है। लेकिन उसकी बात अभी रहने दे।

तीन वर्ष पहले हम जापान आये थे तब क्वेकर बहन श्रीमती ग्लेडिस ओवेन हमारे साथ ही रही थीं। हमारे बीच काफी बातचीत हुई थी। एक दिन किसीको मेरा परिचय देते हुए उन्होंने कहा : 'Kaka Saheb is world-minded.' तुरन्त ही उन्होंने उसे और स्पष्ट कर दिया : 'Not worldly-minded, but world-minded. उनकी बात बिना संकोच या अभिमानके मैं स्वीकार करनेको तैयार हूं। मैं विश्वप्रेमी हूं। जहां जाता हूं वहांके लोगोंके सुख-दुःखके साथ समरस होनेमें मुझे कठिनाई नहीं होती। प्रत्येक प्रजाकी आकांक्षा मैं समझ सकता हूं और उसे अपने मनमें इष्टरूप भी दे सकता हूं। फिर उस प्रजाको ऐसा रूप स्वीकार करनेमें और अपनानेमें स्वाभाविक रूपसे कोई कठिनाई नही होती।

खैर! इस प्रदेशमें हर जगह मैं आत्मीयतासे हिलमिल सका हूं, यद्यपि लोगोंके साथका मेरा सम्पर्क भाषाकी असुविधाके कारण केवल भिक्षु ईमाईसानकी मारफत ही सधा है। हमारे यहां लगभग सब जगह अंग्रेजी जाननेवाले लोग मिलते हैं। यहां ऐसा नहीं है। भले-भले लोग अंग्रेजी नहीं जानते। जो अंग्रेजी जाननेका दावा करते हैं, उनमेंसे कइयोंकी अंग्रेजी हमारे लिए जापानी भाषाके जैसी ही अगम्य है।[1]

ईश्वरकी यह कितनी बड़ी कृपा है कि हृदयकी भाषा आंखोंके द्वारा व्यक्त हो सकती है। हम यदि जानवरोंके प्रति प्रेम करें तो वे भी हमारी आंखोंसे ही यह

१. मुझे विश्वास हो गया है कि अंग्रेजीके द्वारा जापानकी प्रजा, उसका हृदय, उसकी विचार-प्रणाली अथवा संस्कृति इनमेंसे कुछ भी अच्छी तरह जाना नही जा सकता।

पहचान लेते हैं। फिर मनुष्य तो आखिर मनुष्य ही ठहरा।

यहांका प्राकृतिक सौंदर्य, प्रजाका पुरुषार्थ, लोक-जीवनकी रसिकता, सारे समाजकी रग-रगमें समाई हुई तंत्रनिष्ठा, बौद्धधर्म द्वारा चीन, कोरिया व जापान तीनों देशोंकी संस्कृतिके साथ समरस हो कर धारण किया हुआ नित्य नूतन स्वरूप—इन सबका अध्ययन व चिंतन करते समय मैं तल्लीन हो जाता हूं।

किसी भी प्रजाके जीवनके भाग्यके पलटे तो आते ही रहते हैं। यह पुरुषार्थी और स्वाभिमानी प्रजा आज अमरीकाके प्रभावसे दबी हुई है। लेकिन यह स्थिति हमेशा टिकनेवाली नहीं है। यह प्रजा यदि गलत रास्ते न जाय तो इसके भाग्यकी कोई सीमा नहीं है।

गूढ़ चिंतनकी आदत इस प्रजाको भले ही न हो, फिर भी कोई चीज सूझे या गले उतरे कि तुरन्त उसे आत्मसात् करनेकी जबरदस्त शक्ति इसमें है। द्वीपी प्रजाका स्वभाव ही ऐसा होता है कि वह विश्वप्रेमका आदर्श सरलतासे नहीं अपना सकती। लेकिन यदि यह आदर्श उसके गले उतरे और उससे सध जाय, तो उसके हाथों युगकार्य अवश्य सम्पन्न हो सकता है। बौद्ध-धर्म और ख्रिस्ती धर्म, दोनों मूलमें ही विश्वप्रेमी हैं। इस प्रजाको उस उत्तराधिकारकी मदद पूरी तरहसे मिल सकती है। लेकिन कठिनाई यह है कि कलामे क्या और जीवनमें क्या, यह प्रजा आकृति-पूजक (worshipper of form) है। इनकी समाज-व्यवस्था इनकी तंत्र-निष्ठा (डिसीप्लिन), इनके बगीचे और चित्रकला वे सब आकृति-पूजामेंसे ही विकसित हुए हैं। अब यह चीज समझमें आने जैसी है कि आकृति-परायण प्रजा सहज ही अनुकरणशील बन जाती है और उसमें असाधारण सफलता भी प्राप्त करती है।

इतिहास-विधाताकी कृपा होगी और यदि इस प्रजामें युगानुकूल नवजीवन जाग्रत होगा, तो वह आकृतिका बंधन छोड़ कर जीवन-परायण, आत्म-परायण और विश्वात्मैक्य-परायण हो सकेगी। इनके बीच फैला हुआ महायान बौद्ध-धर्म यदि नवजीवन धारण करे, तो जापानी संस्कृतिको नवचैतन्य प्रदान कर सकेगा।

भोग-विलासकी उपासना करनेवाले शहरी लोग समयमें नहीं चेते तो वे संस्कृति-विहीन हो जायेंगे और यदि ऐसा हुआ तो इस प्रजाको फिरसे जीवन प्राप्त करनेमें बड़ी कठिनाई होगी। कठिनाई क्या—बिलकुल क-ख-ग से ही प्रारम्भ करना होगा।

अभी टोकियो शहरमें बसमें जाते हुए एक सज्जनके साथ बातें हुईं। मैंने कहा : "टोकियो अब दुनियाका सबसे बड़ा शहर हो गया है। न्यूयार्क, वाशिंगटन, लंदन और बर्लिनसे भी बड़ा। इसके लिए जापानी लोग जरूर गर्व कर सकते हैं। लेकिन मुझे यह चिह्न अच्छा नहीं दिखाई देता।" मेरे सहयात्रीने आश्चर्य करते हुए कहा, "आपको यह क्यों नहीपसन्द आता ?" मैंने कहा : "ऐसे शहर आसपासके गांवोंके

सेवक अथवा रक्षक होनेके बदले उनके भक्षक ही बन जाते हैं। इनके जीवनका फिर कोई खास उद्देश्य नहीं रहता। केवल बढ़ते जाना बस इतना ही ये जानते हैं। सुख-विलासमें पड़े रहने पर भी वे जीवनका सच्चा आनन्द खो बैठते हैं। उनका मानस भी विकृत हो जाता है। विस्तारके साथ सत्ताका लोभ जाग्रत होता है और बढ़ता जाता है। वे शान्ति या संतोषका अनुभव तो कर ही नही सकते।"

एक तरफ तो ऐसे विस्तारको मै भला-बुरा कहता हूं और दूसरी तरफ मनमें कामना करता हूं कि जापानकी यात्रा पूरी होते ही अनन्त आकाशके नीचे अनन्त सागरका विस्तार देखूंगा और हवाई जहाजके जैसे छोटेसे घेरेमें अनेक देशोंके बड़े-बड़े लोगोंको एक साथ यात्रा करते हुए देख कर अनन्त शक्ति और अनंत संकल्प-वाले विराट मानवका दर्शन भी करूंगा !

समझमें नही आता कि बुद्धि क्या सोचती है और हृदय क्या चाहता है !

तीसरासे छठी यात्रा (१९६२-१९७२)

३२. सूर्योदयका देश, सर्वोदयकी दिशामें

करीब साठ बरस हुए होंगे जापानके बारेमें हम कुछ-न-कुछ सुनते आये ही हैं। यूं देखा जाए तो उसके पहले ही, जब चीन और जापानका युद्ध हुआ और युद्ध जाहिर होनेके पहले ही एडमिरल टोगोने चीनके तीन बड़े जहाजमें एक जहाज डुबो दिया, तबसे (सन् १८९४ से) मैंने जापानके बारेमें सुना था।

बात ऐसी थी कि युद्ध जाहिर होनेके पहले शत्रुता शुरू करना लश्करी गुनाह था इसलिए लश्करी न्यायालयने एडमिरल टोगोको देहान्त दण्ड फरमाया। जापानकी यह कानूननिष्ठा देख कर दुनिया चकित हुई। बादमें सारे देशके हजारों और लाखों लोगोने हस्ताक्षर करके बादशाहके पास क्षमाके लिए अरजी की और टोगोको जीवनदान मिला।

इसी एडमिरल टोगोने रूस जापान युद्धमें (सन् १९०४) रूसका सारा पूरा बेड़ा सुशिमाकी सामुद्रधुनिमें डुबो दिया—केवल दरियाई सुरंगके द्वारा !

हम कॉलेजमें पढ़ते थे तब यह सुशिमाका युद्ध, यालू नदीके किनारे हुई लड़ाई, पोर्टआर्थरकी जीत और मुकडेनका भीषण युद्ध—सबके बारेमें सुनते-सुनते हमारी छाती गर्वसे फूल उठती थी। गर्व इस बातका कि यह छोटे नाटे एशियाई—जापानी लोग यूरोपके बहादुरसे बहादुर, भीमकाय रूसी काझाक वीरोंको हरा सके थे। एशियाके लिए पहली बार हम आशाकी किरण देख सके थे।

जापानके चन्द नवयुवक, अपनी उस समयकी दकियानूसी सरकारकी मनाही होते हुए भी, यूरोपकी यात्रा करे और पश्चिमकी राजनीति, अर्थनीति, पश्चिमका विज्ञान, युद्धकला और यन्त्रोद्योगका रहस्य सीख कर वापस आये।

इन नवयुवकोंने ऐसा क्यों किया? इसलिए कि परदेशोंके लिए अपने दरवाजे बन्द रखनेकी नीतिमें जापान हार गया था। अमेरिकाका दरियासारंग कॉमाडोर पेरी अपना जहाज ले कर जापानके बन्दरगाहमें घुसा और तोपें चला कर जापानकी भूमि पर विजयी वीरकी हैसियतसे उसने अपना पांव रखा। इस बातको सवा सौ बरस भी नही हुए होंगे। जिस पश्चिमी विद्याके कारण हम हार गये, उसी विद्यामें प्रवीण हुए बिना देशकी रक्षा हो नहीं सकती, ऐसे विश्वाससे जापानी चन्द नवयुवक यूरोप गये और वहाकी विद्या ले आये। तबसे अंग्रेज लोगोंके मनमें जापानके बारेमें शिष्य-वात्सल्य-सा जागा। असल बात यह थी कि रूसके झारके मनमें अंग्रेजोंसे भारतका राज्य छीन लेनेकी बात थी। इसलिए अंग्रेजोंने अफगानके अमीर से दोस्ती बढ़ाई। ईरानके शाहको करजा दे-देकर अनुकूल बनाया। और जापानको प्रोत्साहन दे कर रूसके लिए एक दुश्मन खड़ा कर दिया। जापानी लोग भी रूसके खिलाफ मनमें जलते थे क्योंकि चीनमे जीता हुआ पोर्टआर्थरका बन्दरगाह रूसने केवल धमका कर, जापानसे वापस ले लिया था। और जापानके उत्तरमें जो सेघालीन (Seghalin) टापू है, वहां मछलीकी उपज अच्छी होती है यह देख कर उसे भी रूसने अपने हाथमें ले लिया था। सेघालीनका टापू ले लेना, जापानके पेट पर प्रहार करने जैसा था। रूसी-जापानी युद्धके अन्तमे पोर्टआर्थर जापानको वापस मिला। आधा सेघालीन टापू मिला। और सबसे बड़ी बात जापानकी कीर्ति फैली कि पश्चिमी विद्यामें प्रवीण और वीरकर्ममे अद्वितीय यह एशियाका छोटा देश है। बादमें जब हमने सुना कि जापानके लोग बौद्धधर्मी हैं तब तो उनके साथ हमारी आत्मीयता भी हम महसूस करने लगे। लेकिन हमारी आत्मीयताको पूछता था कौन! स्वयं जापानी लोग अपनेको अन्य एशियाई राष्ट्रोंसे अलग मानने लगे; और उनमें पश्चिमका साम्राज्यवाद भी घुस गया।

देखते-देखते सुन्दर और सस्ता जापानी माल, अंग्रेजोंके प्रोत्साहनसे, भारतमे आने लगा, और हम समझ गये कि अगर हमने भारतमे स्वदेशीकी वृत्ति नहीं जगाई, तो पूर्व और पश्चिम दोनों ओरसे हम पूरे-पूरे लुट जानेवाले है।

इस तरह जापानके बारेमें हम हमेशा यहां कुछ सुनते रहे। पिछले दो महा-युद्धोंमें जापानने अंग्रेजोंकी और अमरीकाकी दुश्मनी की। यकायक अमरीकाके पर्लहार्बर पर हमला करके जापानने अमरीकाको चकित किया और अमरीकाकी दुश्मनी मोल ली।

उसके बादका इतिहास आजके सब लोग जानते ही हैं। जिस पश्चिमी विज्ञानने बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें जापानको लोकोत्तर प्रतिष्ठा दी उसी विज्ञानने

जापानको तबाह भी किया। आणविक बमका सबसे पहला प्रयोग अमरीकाने जापानके दो बड़े शहरों पर किया। और उसके बाद जापानको जीत कर उस देश पर अपना कब्जा जमा दिया। और जब जापानको मुक्त किया तब जापानके संविधान में यह शर्त रखी कि जापान बड़ी फौज न रखे, और युद्धकी तैयारी भी न करे। अमरीकाने जापानको मुक्त तो किया लेकिन जापानके कई हवाई अड्डे अपने हाथमें रख लिये। और इस तरह इस बातका मजबूत प्रबन्ध किया कि जापान कभी अपना सिर ऊंचा न कर सके।'

अब इतिहास विधाताकी लीला ही ऐसी विचित्र है कि चीनने रूसकी मददसे, कायापलट की और आठ राष्ट्रोंकी तात्रेदारीसे मुक्त होते हुए साम्यवादका स्वीकार किया।

जैसा सम्बन्ध अंग्रेजोंके साथ भारतका था, वैसा ही, उस्ताद और शागिदका सम्बन्ध चीनका अमरीकाके साथ था। अमरीकाने अगर लोभी और अदूर दृष्टि नही रखी होती तो चीन अमरीकाके प्रति हमेशा कृतज्ञ रहता। और इतना बड़ा राष्ट्र अमरीकाका दोस्त बन कर रहता। अमरीकाको यह न सूझा और चीन रूसका शिष्य और दोस्त बन गया।

अब अमरीकाके हितके लिए यह जरूरी हो गया कि जापानको साम्यवादी रूस और चीनके खिलाफ मजबूत किया जाए। ऐसी कोशिशें चल रही है। लेकिन जापानमें एक नया पक्ष सिर ऊंचा करने लगा है जो कहता है कि युद्धकला इतनी बढ़ी है कि जो भी राष्ट्र युद्ध करना चाहेगा, उसका अंतमें सत्यानास ही होगा।

जबसे भारत स्वतंत्र हुआ है तबसे वह चीख-चीख कर कह रहा है कि अब जो भी युद्ध होगा जागतिक युद्ध ही होगा। और उसके अन्तमे जीत किसीकी भी नही होगी। होगा समस्त मानवजातिका सत्यानास।

जागतिक युद्धका यह खतरा सबके ध्यानमें आ गया है। लेकिन युद्धके इस खतरेसे भी बढ़ कर दूसरा एक सूक्ष्म किन्तु जबरदस्त खतरा दिख पड़ता है, युद्धकी तैयारीका। रूस, अमरीका और अब फ्रांस और इंग्लैंड भी अणुबम्ब तैयार करने लगे हैं। इनके नये-नये प्रयोग किये बिना युद्धकलामें प्रगति हो नही सकती। और आणविक बमके ऐसे प्रयोगोसे दुनियाका सारा वायुमण्डल ही जहरीला—विषाक्त हो रहा है। रूस और अमरीका ये जो प्रयोग चला रहे है इनका बुरा असर सबसे पहले होगा जापान पर। इसलिए यहांकी प्रजा काफी घबराई है, और "No more Hiroshima" "No more war" जैसे आंदोलन जोरोंसे चला रही हैं। हर साल एक जागतिक सम्मेलन करती ही है।

मैं सन् १९४५ में और १९५७ में—दो दफे जापान आया तब ऐसे ही दो सम्मेलनोंके प्रसंगसे लाभ उठा कर मुझे बुलाया था, हालांकि ऐसे सम्मेलनोंमें मैंने विशेष भाग नही लिया।

अबकी बार 'गुरुजी' निचिदात्सु फूजीईने मुझे खास आमन्त्रण दे कर बुलाया ताकि लोगोंसे चार बातोंकी चर्चा विस्तारसे हो सके। गुरुजीका संकल्प है कि विश्वशान्तिके लिए इस देशमें २०-२५ शान्तिस्तूप बनवा लें। आजकलका मानस इस बात पर विश्वास नही कर सकता कि ईंट-चूने और सिमेंट द्वारा छोटे-बड़े स्तूप बनवानेसे युद्ध टल सकता है। लेकिन बौद्धोंका मुख्य धर्मग्रन्थ है "सद्धर्म पुण्डरीक सुत्त"। स्तूप बनवानेमे क्या-क्या लाभ होते हैं सो उसमें बताया है। वही प्रेरणा गुरुजीमें काम कर रही है। और सचमुच बड़ा स्तूप खड़ा करनेमे लोग दर्शन-पूजन करने आते हैं और वे शान्तिकी प्रेरणा दृढ करते ही हैं। इस पर जब हजारों लोग श्रद्धा धारण करके, श्रमदानके द्वारा और सामग्रीदानके द्वारा स्तूप तैयार करते हैं तब वह सारा स्तूप श्रद्धामूर्ति बनता है।

जापानमें करीब अस्सी फीसदी प्रजा बौद्ध है। उनके लिए स्तूपोंकी परम्परा जीवित वस्तु है।

अब गुरुजीने विश्वशान्तिकी सिद्धिके लिए सर्वोदयका कार्यक्रम अपनाया है। योशिवारामें एक सर्वोदय आश्रम भी स्थापित किया है। 'विश्वशान्तिके लिए सर्वोदय' यह सूत्र हर किसीको जंच सके ऐसा है। इसीलिए इसी विषयका विवेचन मैं ज्यादातर करूं, यह है इनकी अपेक्षा।

साथ-साथ गांधीजीकी अहिंसा और विश्वमैत्रीकी नीतिको जवाहरलालजीने जो non alignment का रूप दिया है, उसका रहस्य भी यहांके लोग जानना चाहते है। युद्धके बाद जापान अमरीकाके अधिकारके नीचे आया। उस अधिकारसे जापान अभी पूरा मुक्त नही हुआ है। साम्यवादी चीन और रूसके डरके कारण अमरीका अब चाहता है कि जापान अपनी फौज बढ़ावे। यह है अमरीकाकी नई नीति। इस बारेमें भी यहांकी प्रजा चिन्तित है। क्योंकि दुनियाका अनुभव है कि जब हम 'युद्ध टालनेके लिए' फौज बढ़ाते हैं तब, एक तरह से, युद्धको आमन्त्रण ही देते हैं।

फौज न बढावें तो देशकी रक्षा कैसे की जाए ? इसका जवाब है शान्तिसेना। इसके बारेमें भी ये लोग मेरे विचार जानना चाहते हैं क्योंकि इनके 'सर्वोदय' मासिकने शान्तिसेनाकी चर्चा उठाई है। लेकिन जापानकी परिस्थिति देखते और भारतमें शान्तिसेनाका काम अत्यल्प हुआ है, इस कारण भी मैं यहां उसकी चर्चा ज्यादा नही कर सकूंगा। केवल तात्त्विक चर्चा चाहे जितनी बढा सकूंगा लेकिन उसका असर विशेष नहीं होगा। शान्तिसेनाकी चर्चा इन लोगोंने शुरू की उसी समय फौजकी मददमें भारतने गोवाको मुक्त किया। इसका आश्चर्य और आघात हो यह, यहांके लोगोंके लिए स्वाभाविक था। मैंने इस बारेमें एक लेख लिख कर, उसका जापानी अनुवाद दिल्लीसे भेजा ही था। इससे इनको सन्तोष तो हुआ लेकिन अधिक समझनेका कुतूहल जागा। इसके लिए भी इन लोगोंने मुझे जापान बुलाया।

यहां आ कर देखता हूं तो अखबारवालोंने छाप दिया कि "Dr. K. Kalelkar Saheb जवाहरलालजी नेहरूके प्रतिनिधि (envoy) हो कर जापान आ रहे हैं। गोवामें भारत सरकारने जो कारंवाई की, उसे समझानेके लिए। फलां-फलां शहरोंमें उनका व्याख्यान होगा !" "अब मुझे हर स्थान पर, सबसे पहले, कहना पड़ता है कि मैं जवाहरलालजीका प्रतिनिधि नहीं हूं, न उन्होंने मुझे यहां भेजा है। वे जानते हैं कि जापानका आमन्त्रण मैंने मन्जूर किया है और इन-इन बातों पर मैं चर्चा करनेवाला हूं। इससे अधिक उनका सम्बन्ध नहीं है।

ऐसी ही कुछ गलतफहमी एक दफे पहले हुई थी जब मैं अमरीका जाते, ब्रुसेल्समें एक जागतिक प्रदर्शनी देखने ठहरा था। भारतने उस प्रदर्शनीमें भाग नहीं लिया था इसलिए जब लोगोंने अखबारमें पढ़ा कि नेहरूके एक 'प्रतिनिधि' खास प्रदर्शनीके लिए आ रहे हैं, तब वे पूछने लगे। तब मैंने कहा कि 'मैं एक नागरिकके नाते अमरीका जा रहा हूं। मैं किसीका प्रतिनिधि नहीं हूं और, विनोद करते मैंने कहा कि नेहरूजी मेरे प्रतिनिधि हैं क्योंकि मेरे जैसे करोड़ों नागरिकोंके वोट पा कर वे हमारा राज्य चलाते है !'

दो दफे इस देशमें आया था इसका वर्णन तो एक किताबमें मैं दे चुका हूं। अब इस यात्राका तीन सप्ताहका वर्णन यहां प्रस्तुत है।

३३. यामागा

अबकी बार यामागा ही हमारा क्यूशु टापूका पहला मुकाम था। सन् १९५४ और १९५७ में हम फुकुओका (हाकाटा) ठहर कर बोधिसत्व निचिरेनकी मूर्तिका दर्शन कर सके थे और वहांके बगीचेमें घूम सके थे। अबकी बार उस शहरमें ठहरे बिना, मोटर ले कर हम सीधे यामागा ही पहुंचे। सब दृष्टिसे यामागाको ही हम जापानका प्रतिनिधि स्थान कह सकते हैं। यहांके लोगोंने ही कहा "हमारे यहां कुछ नहीं, लेकिन शान्ति है।" वे क्या जानें कि आजकी दुनियामें यही चीज कहीं नहीं मिलेगी और उसीके लिए मानवजाति लालायित है। यामागाके लोग खेती भी करते हैं और दुकान खोल कर तिजारत भी करते हैं। मीलों तक हम खेतो और पहाड़के दृश्य देख सके थे।

ता० १६ की सुबह गरम झरनेके स्नानका आनन्द ले कर हम स्वागत-सभाकी ओर चले। जीपोंमें ही वहां जा सकते थे। गुरुजीका वहां आश्रम है। वहां एक शान्तिस्तूप और सर्वोदय केन्द्र स्थापित करनेकी उनकी उम्मीद भी है। बड़े उत्साहसे गुरुजीने उस पहाड़ी परसे दूर-दूरका दृश्य हमें दिखाया और कहा, "यामागाकी सारी जनता श्रद्धालु है। हमारे काममें उनका

पूरा सहयोग है। बहुत-सी जमीन लोगोंने इस कामके लिए बहुत कम दाममें दे दी है।" यह सब देख कर हम स्वागत सभाके स्थान पर पहुंचे। वहां सैकड़ों लडके-लड़कियां हाथमें भारतके तिरंगे झंडे ले कर धूपमें खड़े तप करते थे। मुझे यह बहुत अखरा कि बड़े-बड़े लोग तो शामियानेमें बैठें और बच्चे धूपमें खड़े रहें। स्वागतके दो-तीन भाषणके बाद मेरी बारी आई। मैंने कहा "धूप, ठण्डी और बारिश सहन करनेकी आदत बच्चोंको होनी चाहिए, यह मैं मानता हूं लेकिन उनको यह सिखानेका अच्छा तरीका यह होता कि हम भी धूपमें ही बैठ जाते। विश्वशान्तिकी बात छेड़ते मैंने कहा कि मां-बापोंका प्रथम कर्तव्य है कि इन बच्चों को युद्धसे बचावें। जीवन-परिवर्तन और समाज-परिवर्तनके बिना यह होनेका नहीं। इसी लिए हम सर्वोदय चाहते हैं। इत्यादि। इसी सभाके सिलसिलेमे यहांके नगरपतिकी ओरसे हमें दो सुन्दर भेंट मिलीं। एक है कागजका बनाया हुआ. घर का छोटा-सा कलापूर्ण नमूना और दूसरा है पिंजड़ेमें बैठा हुआ एक पक्षी। वह भी कागजका। ऐसी सुन्दर चीजें हम हवाई जहाजमें भारत नहीं ला सकेंगे। गुरुजीके आश्रममें ही इनको छोड़ जायेंगे।

दक्षिण जापानमें परदेशके लोग बहुत कम आते हैं और यामागा जैसे छोटे शहर में आयेगा कौन? इसलिए यहांके लोगोंको सार्वजनिक मेहमानका उत्साह बहुत होता है। हमारे खातिर शामको एक खासा भोज था, जिसमें पचासके करीब लोग इकट्ठा हुए थे। जापानमें भोजके वक्त शराबका व्यवहार होता ही है। जब हम परदेश जाते हैं, वहांके लोगोंकी टीका-टिप्पणी नहीं करते। अपने आचार-व्यवहारको शुद्ध रख कर ही संतोष मानते हैं।

रातको सातसे नौ तक टाउन हॉलमें भाषण थे। गुरुजी एक घण्टा बोले। मुझे भी कुछ समय लेना ही पड़ा। सर्वोदय, शान्ति सेना और सर्वोदयपात्रकी बातें की भारतमें मैं दान पात्रकी बात अकसर नहीं करता यहांके लोगोंके लिए यह नई चीज है। गुरुजी ऐसे भी चाहते हैं कि जिस तरह गांधीजीने स्वराजके लिए हरेकको सूत कातनेका रास्ता बताया वैसे ही सर्वोदय और शान्तिसेनाके लिए सब कर सकें ऐसा कुछ बताना चाहिए।

दूसरे दिन यामागा छोड़ते वहांकी नदी हमने देखी—पता नहीं क्यों, यहांके लोगोंमें हमारे जैसी नदी-भक्ति नहीं है। किकुची नदी देख कर मुझे जो प्रसन्नता हुई वह यहांके लोगोंके मुख पर देखना चाहता था।

मोटरसे, एक घंटेमें हम कुमामोतो पहुंचे, जहां १९५८ में शान्ति स्तूपके उद्घाटनके लिए हम आये थे। यहां भी एक सेवा-परायण शीरा नदी बहती है उसका दर्शन किया। सबसे पहले हम शहरको लांघ कर स्तूपकी पहाड़ी पर पहुंचे। वहां स्तूपकी प्रदक्षिणा करके आसपासका दृश्य देखा। दृश्यमें खास था कुमामोतो का किला, जो धार्मिक राजा कातोक्योमसानने बनवाया था। वह बोधिसत्व

निचिरेनके भक्त थे। कोरिया लड़ने गये थे तब वहांसे दो राजकुमारोंको ले आए। राजाकी धार्मिकता देख कर वे दोनों भी निचिरेनके भक्त और साधु बन गये। उनकी समाधि भी वहीं है।

मंदिरमें खा-पी कर काफी आराम किया और दोपहरके दो बजेके करीब रेल-के रास्ते, साढ़े पांच बजे कागोशीमा पहुचे। इस शहरका वर्णन तो अलग लेखमें करना ही ठीक होगा।

३४. साकुराजीमाकी अध्यक्षता

जापान देश चार बड़े टापुओंका और असंख्य छोटे-छोटे टापुओंका बना है। इनमेंसे मुख्य बेट तो होन्शु है, जिस पर जापानकी मध्यकालीन और आधुनिक संस्कृति खिली है।

इस होन्शुके उत्तरमें होक्कायडो है जिसे खास देखनेके लिए हम १९५७ की हमारी दूसरी यात्रामें गये थे। और वहांके विशाल जंगल, अच्छोद सरोवर और आदिवासी आयनुओंका जीवन भी हम देख आये थे।

जापानका सबसे दक्षिणी टापू क्यूशु अपना विशेष महत्त्व रखता है। प्राकृतिक दृश्यमें इस टापूके मध्यमें जो जाग्रत ज्वालामुखी है—आसो—उसका नाम लेना पड़ेगा। इस ज्वालामुखीका द्रोण अथवा मुख—Crater—सारी दुनियामें सबसे बड़ा है। चालीस-बयालीस मीलके घेरावेका अपना राक्षसी मुख खुला रख कर, आसो राख, पत्थर, धुआं, और ज्वाला उगलता ही रहता है। कभी-कभी जोरसे इन सब आग्नेय वस्तुओंको फेंकता जाता है, और कुछ समयके लिए महाप्रलयका नजारा पेश करता है।

यह हुई कुदरतकी लीला। इसी क्यूशुमें मनुष्यने अपने परिश्रमसे खेतीका काम चरम सीमा तक पहुंचा दिया है।

और अगर ऐतिहासिक महत्त्वकी कोई बातें क्यूशुके साथ जोड़ देनी हों तो एक है इसके उत्तरकी सुत्षिमाकी सामुद्रधुनी, जहां सन् १९०४ में एक ही दरियाई लड़ाईमें जापानने रूसका बाल्टिक बेड़ा तोड़ कर समुद्रके रसातल तक पहुचा दिया था। और इसी द्वीपके बाजू पर वह दुर्दैवी शहर, नागासाकी बसा हुआ है जिसका आधेसे ज्यादा हिस्सा अमरीकाने पिछले महायुद्धमें, एक ही बमके द्वारा जमीन-दोज कर दिया था।

इस दक्षिणी द्वीपमें हम पहली बार भी आये थे और दूसरी बार भी। लेकिन अबकी बार ही इस द्वीपके किनारे-किनारे हम उलटी परिक्रमा कर सके है और इसके करीब दक्षिणी सिरे तक पहुंच गए हैं।

कागोशीमाके जिस जापानी होटलमें हम ठहरे हैं उसका नाम है इवासाको तानिसो। इस शहरका यह सबसे बड़ा और आकर्षक होटल है। इसे हम 'बादशाही इसलिए भी कह सकते है कि जब जापानके बादशाह कागोशीमा आये थे तब वे इसीमें ठहरे थे।

कल शामको स्टेशन पर ही अखबारवालोंने हमें घेर लिया, फोटो खींचे और कुछ प्रश्न भी पूछे। रातको हमारे यहांके मेजबानने शहरके गणमान्य लोगोंको हमारे स्वागतके लिए दावत दी थी, जिसमें सारा खाना ठंडा हो जाए तब तक भाषण चले। खाना कब तक चला कहना मुश्किल है, क्योंकि खानेके साथका सम्भाषण दुभाषीयेके द्वारा हो नही सकता था। इसलिए व्याख्यान समाप्त करके हम जल्दी अपने कमरेमें चले आये।

१८-५-६२—आज सुबह नहा-धो कर हम कमरेके बरामदेमें बैठ कर सामने के जापानी बगीचेकी शोभा देख रहे है और यहांके बन्दरगाहके उस पार जो छोटा सा द्वीप या प्रायद्वीप है उसके ज्वालामुखीका भी दर्शन कर रहे हैं।

कागोशीमा बन्दरगाहकी शोभा जापानमें भी असाधारण कही जा सकती है। क्यूशू टापूने दक्षिणकी और सत्सूमा और ओसुमी ऐसे दो प्रायद्वीपके हाथ समुद्रमे बढ़ाये हैं और उन दो हाथोंके बीच एक विशाल सरोवरके जैसा उपसागर तैयार किया है, जिसे कहते हैं, कागोशीमाका उपसागर। मेरा बस चलता तो मैं इस सारे उपसागरको साकुराजीमाका उपसागर कहता। क्योंकि साकुराजीमाका ज्वालामुखी इस सारे उपसागरके मध्यमे एक टापू खड़ा करके उस पर अध्यक्षकी अदामें विराजमान है। उसे देखते ही वेदवचन याद आया—'यो अस्य अध्यक्ष: परमे व्योमन्'— जो इसका अध्यक्ष ऊंचे आकाशमे खड़ा है।

इस देशके नक्शेका अध्ययन करते साकुराजीमाकी ओर ध्यान गया ही था। लेकिन कल हवामें कुहरा इतना था कि न समुद्र दीख पड़ा, न उसके मध्यका पहाड़। रातको अनेक बार उठ कर दर्शनकी कोशिश की, लेकिन अंधेरेमें कागोशीमाके रंग-बिरंगे द्वीपके सिवाय कुछ भी दिखाई न दिया।

सुबह हुई और आकाश खुल गया। और पुष्पद्वीप साकुराजीमाकी आकृति स्पष्ट दिखाई दी। कल स्टेशनके प्रतीक्षालयमें ही कागोशीमा और साकुराजीमाका एक बड़ा चित्र प्रकाशित देखा था। और उसमे ज्वालामुखीका काला धुआं उमड़-उमड़ कर बल खाता हुआ निकल रहा था। आज ज्वालामुखीका द्राण शान्त है। दृश्यरसिक आंखोंको कुछ निराशा तो हुई लेकिन शान्तिका असर ही अधिक प्रभावी साबित हुआ।'

मेरा भाव ताड़ कर हमारे साथी ईसाईसानने कहा—'धुएंके स्फोटका दृश्य तो अच्छा होता लेकिन लोगोंके लिए तो वह कष्टप्रद ही होता है'।

मैं कहने जा रहा था कि आपकी बात बिल्कुल सही है कि इतनेमें दाहिनी ओर

के एक बड़े कारखानेकी ऊंची चिमनी (धुआंदान) ने कते कमाल करके कहा, 'धुआं ही देखना है न ? लीजिए चाहे इतना धुआं उगल सकता हूं।' और सचमुच उसने किसी फूलदानीमें गुच्छे फैलते हैं और उभर आते हैं उसी तरह अपने धुएंका विस्तार फैला दिया। केवल नयनानन्दका ही ख्याल करें तो धुएंका यह फव्वारा कम जीवन्त या आकर्षक नहीं था। अगर यही फव्वारा इस पहाड़के सिर पर दीख पड़ता तो न जाने हमने उसके कितने स्तोत्र गाए होते। इसका दोष इतना ही था कि धुआदान आदमीका बनाया हुआ था। काव्यसे दुश्मनी रखनेवाले कारखानेका वह स्मारक था और धुआ भट्टी जलानेके प्रारम्भमें निकल रहा था। और खास तो यह कि इसमें कोई उत्पात होनेकी सम्भावना नहीं थी। जब तक दिल ऊंचा-नीचा न हो, अद्भुत रस जम नहीं सकता।

अब तो दिन काफी बढ़ गया। कारखानेके धुआंदानसे धुआं निकलना बन्द हो गया। शायद हमने उसकी कदर नहीं की इसलिए वह विरस हो गया होगा। और समुद्रने प्रकट हो कर कहा, "छोड़ दो उस ज्वालामुखीको और उस कल-कारखानेको। मैं हूं सनातन जीवनविस्तार। मेरा ध्यान करो और सुबहके इस सारे चिन्तन को शान्त रसमें डुबो दो। आज तुम्हें यहांसे उत्तर-पूर्व जाना है न ? काफी अरसे तक मेरा विविध दर्शन कर सकोगे। कोकुबुके बाद ही तुम्हें फिरसे पहाड़ देखनेको मिलेंगे।"

सुबहकी शान्तिका अनुभव हजम करनेके बाद मनमें संकल्प उठा कि यहां बैठे-बैठे वक्त जाया क्यों करें ? काश मोटरमें बैठ कर हम शहर कुछ देख आ सकते लेकिन रातके हमारे मेजबानको केवल याद करनेमें सहूलियत थोड़े ही पैदा होने वाली थी ! जितना मिला, उसीमें सन्तोष मानना चाहिए।

इतनेमें भाई डा० सात्सुशीता मोटर ले कर आये। पूछने लगे, "थोड़ा कुछ घूम कर स्टेशन चलेंगे ?" संकल्पसिद्धिके आनन्दके साथ हमने उनकी बात मन्जूर कर ली और क्या गजब ! होटलके बाहर निकल कर दाहिनी ओर मुड़ते ही एक सुन्दर रास्ता हमें एक उपवनकी टेकरी पर ले चला। जहां देखें पेड़, पेड़ और पेड़ ! रास्ते में न था कोई मकान, न वाहन, न लोगोंकी चहल-पहल। शान्ति इतनी गाढ़ी थी कि उसमेंसे रास्ता निकालने मानो मोटरको कुछ प्रयास करना पड़ता था। सर्पाकार रास्तेसे टेकरीके ऊपर पहुंच गये। वहां हमारे-जैसे चन्द लोग सामनेका दृश्य पी रहे थे। हमने क्या देखा ? कागोशीमा शहरका विस्तार। उसके बाद वही उपसागर। और दोनोंको आशीर्वाद देनेवाला साकुराजीमा। मानो कहता था—"नदेव मे रूपम् इदम् प्रपश्य।" वहांकी दो-तीन दूरबीनोंको ता ताला लगा था। लेकिन सारा दृश्य इतना नजदीक और उज्ज्वल था कि उसे देख कर आनन्दविभोर हो गए। सचमुच इस दृश्यको देखे बिना हमारी कागोशीमाकी यात्रा पूर्ण नहीं होती।

लौटते समय किसी स्कूलके बच्चोंको ले कर कई बसें हमें मिलीं। बच्चे हमको

आश्चर्यसे देखते चले। साड़ी और दाढ़ी दोनों यहांके लिए अजीब चीजें हैं। टेकरी परसे उतरनेका हमारा रास्ता अलग था। कई पहाड़ी घर रास्तेको चिपक कर खड़े थे।

श्री इमाईसानने यहांका पुराना इतिहास शुरू किया। जब लेखनकला भी नही थी तबकी यह जनश्रुति थी। जापानी लोग यहां दक्षिणसे आये और यहांसे सूर्योदयके उगमस्थानको ढूढ़ने पूरबकी ओर चले। उन्हें आसोका ज्वालामुखी मिला। उनके मनमें अग्नि भी सूर्यका ही प्रतीक था। ज्वालामुखीको वे आमो यानी पूर्वज कहने लगे। निप्पोनका अर्थ होता है हानीमोतो यानी सूर्यका उगमस्थान। यहांसे ये लोग होनूशूमें पहुंचे। वहां बड़े-बड़े राज्य स्थापित किये और जापानी सामन्तशाही संस्कृतिका विस्तार किया।

प्रवास वर्णनमें ऐसे इतिहासक्रमको जगह नही होती। इतना कहना काफी है कि राजत्वको ये लोग तेनो कहते थे। राजाके हाथमें अधिकार कम! वह युद्ध भी नही करता था। सारी सत्ता क्षत्रिय सरदारोंके हाथमें थी।

ऐसी राज्य-व्यवस्थामें जब क्रान्ति हुई और आधुनिक युगका प्रारम्भ हुआ, तब क्रान्तिकारी वीर दक्षिणसे क्यूशुसे ही उत्तरकी तरफ गये थे। उनके एक भीम-काय बलवान नेता साइगो ताकामोरीका जन्म इसी कागोशीमामें हुआ था। इनका नाम हम सुन रहे थे इतनेमें उन्हींकी एक विशाल मूर्ति दाहिनी ओर दीख पड़ी। उसका दर्शन करके हमने कागोशीमासे विदाई ली।

३५. मैं शरमाया

ता० २८ मार्चकी सुबह हम पालमसे निकले और उसी रात मध्यरात्रिके पहले हानेदा (जापानकी राजधानी तोक्योका हवाई अड्डा) पर पहुचे। हमारे मेजबान श्री तात्सुमारु सुगीयामासानने इण्टर नेशनल हाउसमें रहनेका हम सभोंका प्रबंध किया था। जाते ही उन्होंने हमें एक बड़ा लिफाफा दिया, जिसमें हमारा कार्यक्रम, लोगोंको देनेके लिए हमारे Visiting Cards, रातके अंधेरेमें घड़ी देखनेके लिए एक सुन्दर टॉर्च (जिस पर मेरा नाम छपा हुआ था।) और समय-समय पर खर्च करनेके लिए जापानके येनके करन्सी नोट्स; इतनी चीजें थीं। मैंने पूछा, 'ये येनके नोट किसलिए हैं?' जवाब मिला, 'मेहमानोंके लिए पॉकेट मनी!'

एक दिन इण्टरनेशनल हाउसमें रहे। अनेक पुराने और नये स्नेहियोंसे मिले और स्थानिक सहूलियतके लिए दूसरे दिन एक जापानी ढंगके स्वदेशी होटलमें ठहरने गये। स्थानांतर करते हमारा सारा असबाब कमरेमेंसे नीचे कार्यालयमें पहुंचा दिया। सुगीयामाजीने कहा "आपका सारा असबाब जापानी होटलमें पहुंच

जाएगा। आप चिंता न करें।" मैंने वह प्यारी टॉर्च (करदीपिका) अपने पोर्ट-फोलियोमें रख दी। उसका एक मुंह खुला था। मान लिया कि सारा सामान संभाल कर ले जाएंगे।

शामको देखा तो पोर्टफोलियोमेंसे (जिसका मुंह खुला था) टॉर्च गायब। बड़ा दुःख हुआ ! मैं अपनी चीजें अकसर संभाल कर रखता हूं। टॉर्च ऊपर ही रख दी थी यह मेरी गलती थी। इसीका मुझे बड़ा दुःख हुआ।

चि० सरोजने कहा "आप चिंता न करें। मैं तो रातको उठती नहीं हूं मेरी टॉर्च आप लीजिए।" मैंने ली, दूसरा चारा ही नही था। दूसरे दिन सुबह हमारी पार्टीके सुशीलजी मिले। मैंने उनसे टॉर्चकी बात की और कहा "मुझे ठीक याद है कि मैंने वह पोर्टफोलियोमे रखी थी। और स्थानांतरमें वह गायब हुई है। या तो कही गिर गई या कोई उठा कर ले गया।" मनमें हुआ कि इतनी अच्छी सुन्दर चीज, किसीका भी मन ललचा सकता है।

मेरी बात सुनते ही सुशीलजीने कहा "कोई उठा तो ले नही जा सकता। इस देशमें ऐसा कभी नही हुआ। जरूर आपकी टॉर्च कही गिर गयी होगी। किसीके हाथ आ जाएगी तो जरूर वह आपको दे जाएगा। उस पर आपका नाम भी छपा हुआ है। जरूर आपको वह किसी दिन मिल जाएगी।"

मैं मिलनेकी बात सोच ही नही रहा था। मैं सुशीलजीका जवाब सुनते ही शरमसे पानी-पानी हो गया कि क्यों मैंने मनमें इस शंकाको स्थान दिया कि किसीने टॉर्च उठा ली होगी ? क्यों मेरे मुंहसे यहांके लोगोंके प्रति अश्रद्धाके वचन निकले ?

सुशीलजीने अपनी पुरानी यात्राके जापान, ब्रिटेन और अमेरिकाके मीठे अनुभव कहे कि खोई हुई चीज हाथ आते ही मालिकको ढूंढ़नेकी कोशिश कितनी की जाती है। लोग तकलीफ उठाते हैं और अपने जेबसे खर्च भी करते हैं।

मुझे बड़ा दुःख हुआ। हमारे देशमें ऐसा मीठा अनुभव शायद ही हो सकता है। प्राचीन कालके दिन अब नही रहे। किसी समय भारतीयोंकी ऐसी ही इज्जत थी। आज देशका आर्थिक दुर्दैव इतना बढ़ गया है कि नैतिकता भी दुर्मिल होने लगी है। चीज़ खुली पड़ी हो तो उसे उठा कर अपनानेवाला आदमी कहीं न कहींसे आ ही जायेगा। यह हालत दुःखकी है ही लेकिन मैं शरमिंदा हुआ इस बात पर कि मैं स्वयं सामान्य जनताकी नीति पर आसानीसे शक लानेवाला हीन आदमी बन गया हूं।

परदेशमें और स्वदेशमें भी लोगोके अच्छे अनुभव मुझे कभी नहीं हुए सो नहीं। लेकिन ज्यादातर शंकाकी नजरसे देखनेकी ही परिस्थिति है इस निर्णय पर जब मैं पहुंच गया हूं तब किस मुंहसे मैं कहूं कि मानवताके प्रति मैं विश्वासी और आस्तिक हूं। अनेक व्याख्यानोंमें मैंने जोर-जोरसे कहा है कि "ईश्वर पर विश्वास रखना आस्तिकताका सच्चा लक्षण नहीं है। रूढ़िके कारण भी मनुष्य अपनेको ईश्वर-निष्ठ

बताता है। मानवता पर विश्वास रखना यही आस्तिकता है," जो मैं सुशीलजीमें देख सका और अपनेमें उसका अभाव देखा। यही था शर्मिंदा होनेका मेरा कारण।

बात तो वही पर पूरी हुई। मैंने सुगीयामाको पता लगने नही दिया कि मैंने टॉर्च खोई है। (वर्ना वे तुरन्त दूसरी खरीद लाते।)

हम तोक्योसे सुदूर दक्षिण फुकुओका पहुंचे। वहांसे अनेक स्थान पर जा कर बीस दिनके बाद फिरसे तोक्यो आये। मनमें आशा भी नही थी कि सुशीलजीके कहे अनुसार टॉर्च मिलेगी। दरियाफ्त करने जाऊं तो सुगीयामाजीको पता चल जाय। जापान यात्रा करीब पूरी होने आयी थी। सवाल टॉर्च पानेका नही था। मेरे मनमें हीनभाव आसानीसे उगा यही शरम मुझे अस्वस्थ करती थी।

मन कहने लगा कि हम इण्टर नेशनल हाऊस गए और वहां हमें टॉर्च मिली ऐसा किस्सा तो उपन्यासोंमें—लघुकथामें ही बनता है। टॉर्च मिलनेकी भी आशा भी मैंने मनमें नहीं रखी थी। लेकिन सुशीलजीके शब्द भी कानोंमें गूंज रहे थे कि टॉर्च किसीके हाथमें आ जाए तो वह छः महीनेके बाद भी मिलेगी। इतनी श्रद्धा मुझे अच्छी लगती थी लेकिन उसका सेवन करनेके लिए मै तैयार नही था। एक छोटी-सी चीज गयी तो गयी, उसके पीछे चिंतनका खर्चा क्यो करें ? ऐसा भी मै अपने मनको समझाता था।

हम इण्टरनेशनल हाऊस पहुचे। हमारे कमरेका ताला और नम्बर पूछा और चाबी हाथमें लेते व्यवस्थापकसे दरियाफ्त किया कि काकासाहेब कालेलकरके नाम से कोई डाक है ? उसने तुरन्त दो सौ आठ नंबरके खानेमेंसे एक खत दे दिया। और दूसरा लिफाफा स्वयं खोल कर वही टॉर्च मेरे हाथमें दे दी। मेरी आखे आन्नदसे गीली हो गई। टॉर्च तो एक छोटी-सी चीज थी लेकिन सुशीलजीकी श्रद्धा सही निकली और उपन्यासकी सुखान्तिका पूरी हो गई इसका आनन्द आंखोंमें उभर आया।

कमरेमें जा कर खत खोला। दिल्लीसे चि० कुसुमका था। वहांका सारी-पूरी जानकारी उसमें थी। और अपनी ओरसे उसने लिखा था कि "भारतमें आप कोई बड़ी रकम ले जा नही सके हैं सो तो मैं जानती हूं। मेरे लिए आप कोई चीज खरीदिए नही, लेकिन जापानी लोगोंसे आपको तरह-तरहकी चीजें भेंटमें मिलनेवाली हैं ही। उनमेंसे मेरे लिए कोई चीज आप ले आवें तो मुझे खुशी होगी। भले वह चीज छोटी हो।"

यह पढ़ते ही मैंने मनमें कहा, बिल्कुल छोटी चीज लेकिन मेरे मन बहुत महत्त्व की तो यह करदीपिका है। दूसरा कोई चीज चि० कुसुमको दूं या न दूं यह टॉर्च तो चि० कुसुमकी ही हो गई। उस टॉर्चमें बेटरी बदलनेकी बात नहो है। घरमें जहां बिजली बहती है वही पर लगानेसे इस टॉर्चमें बिजलीकी शक्ति भर जाती है। चीज कायमी है। और जब चि० कुसुमको सारा किस्सा सुनाऊंगा तब उसके मनमें

भी यह चीज कीमती साबित होगी ।

सन्निधि पहुंचते ही टॉर्च मैंने कुसुमके हाथमें रख दी और उसको सारा किस्सा सुनाया। वह रही लोभी। कानसे सुन कर उसे संतोष नही हुआ। कहने लगी, सारा किस्सा मुझे लिखाइये तो कलम और अंगुलियां भी राजी होंगी और आपका और मेरा आनन्द पाठकों तक पहुंच जाएगा।

क्या यह लिखवाना जरूरी है कि उसकी बात मैंने मान ली ?

३६. प्रकृति-निर्मित स्तूप

फूजीयामा अथवा फूजीसाङ् जापानका एक अद्भुत पहाड है। सारा जापान देश पहाडी मुल्क है। तथापि वहां भी इसके जैसा सब तरफसे एक-सा दीखनेवाला सुहावना और सर्वतोभद्र पहाड़ जापानमें दूसरा कोई नहीं है। जानकार लोगोंका कहना है कि सुन्दरतामें इसकी बराबरी कर सके ऐसा दुनियाभरमें दूसरा एक ही पहाड है। (यह दूसरा पहाड़ कोटोपैक्सी (Cotopaxi) दक्षिण अमेरीकाके इक्वे-डोर देशमें है। फूजी पहाडकी ऊंचाई १२४०० फुट है जबकि कोटोपैक्सीकी ऊंचाई १९४०० फुट है।

फूजीसाङ शान्त हुआ माना जाएगा; जबकि कोटोपैक्सी दुनियाके जिन्दा जलनेवाले ज्वालामुखियोंमें श्रेष्ठ माना जाता है। प्रशांत महासागरके उत्तर-पश्चिम छोर पर फूजी है तो पूर्व-मध्यमें कोटोपैक्सी है। सौंदर्यमें दोनों समान हैं। बारह हजार चार सौ फुट ऊंचे इस पहाड़के सिर पर एक पुराने ज्वालामुखीका द्रोण-दोना Crater है।

मैं पहली बार जापान गया था (ई० स० १९५४) तब सब तरहकी कोशिशोंके बावजूद फूजीयामाके दर्शन नही हुए थे। हवा खराब थी। जहां-तहां बादल फैले थे।

जापानमें अनेकानेक भव्य पहाड उस समय मैं देख सका था। परंतु फूजीयामा के दर्शनके बिना जापान-यात्रा सफल कैसे हो ? पर मेरी तपश्चर्या पूरी नही हुई होगी इसलिए उस समय दर्शन नहीं हुए। उसके बाद तीन चार बार मैं जापान गया था और हर बार उस पर्वतराजने दर्शन देनेकी कृपा की थी। सन १९५८ में तो हवाई जहाजमें बैठ कर फूजीयामासे भी ज्यादा ऊंचाई पर उड़ कर फूजीयामाके द्रोणके और उस द्रोणकी करवत जैसी किनारीके दर्शन किये थे। वह दृश्य तो मैं कभी भी भूल नही सकूंगा।

जापानकी राजधानी टोकियोसे फूजीयामा बहुत दूर नही है। उसके आस-पास अत्यंत सुहावने और आतिथ्यशील पांच सरोवर हैं। आसपासकी भूमिने आजके जमानेमें भी अपनी काव्यमय शोभा खोयी नही है।

जापान जानेसे पहले फूजीयामाके वर्णन पढ़े थे। इसलिए वहां क्या देखनेको मिलेगा इसकी कल्पना तो मनमें थी ही। केवल दर्शनानंद मिलेगा। ऐसी अपेक्षासे ही वहां गया था। परंतु प्रत्यक्ष दर्शन होने पर आनंदका परिवर्तन समाधि-दर्शन की दिशामें हुआ।

कभी-कभी आसपासका आकाश स्वच्छ होता है और कुछ सफेद बादल फूजी-यामाके शिखर तक ऊंचे न जा कर अत्यंत आदरसे आधे रास्ते तक जा कर सिरको घेर लेते हैं। ऐसे समय बादलोंमेंसे उभरा हुआ शिखर हमारी सृष्टिका नहीं किन्तु मानो स्वर्गसे उतर आया हो ऐसा भास होता है।

एक बार, मात्र उसे एक ही बार, एक स्थानसे मैंने जब फूजीसाङके दर्शन किए और भावमग्न होकर सामनेकी आकृतिका चिंतन करने लगा तब मुझे लगा कि यह पहाड़ नहीं है परंतु कुदरतने बुद्ध भगवानके सर्व-कल्याणकारी धर्मकी विजय-पताकाके तौर पर यह एक स्तूप यहां खड़ा किया है।

मेरा हृदय जितना सनातनी हिन्दू है उतना ही बौद्ध भी है। गौतम बुद्धका मैंने परशुराम, राम और श्रीकृष्णके बादके आजके युगके चालू अवतारके तौर पर स्वीकार किया है।

मेरा हृदय कभी वेदान्तशिरोमणि भगवान याज्ञवल्क्यका उपदेश सुनता है, कभी मैं ठेठ छुटपनका शिव-उपासक बनता हूं और पार्वतीकी नजरसे पहाड़ोंमें शिवजीके दर्शन करता हूं। तो कभी श्री कृष्णकी गीता-ध्वनि दुनियाके हरएक देश के वातावरणमें सुनता हूं। आज एक शान्त सरोवरके किनारे बैठकर फूजीयामा-रूप स्तूपका संदेश सुन कर मैं गुनगुनाने लगा—

सब्ब पापस्स अकरणम्
कुसलस्स उपसंपदा।
सचित परियोदपनम्।
एतं बुद्धान सासनम्॥

सचमुच, यह फूजी पर्वत भगवान बुद्धका शासन है और अपने चित्तको दबा कर काबूमें लानेका उपदेश करता है।

परंतु सब प्रकारसे सोचने पर लगता है कि यह पर्वत निप्पोन (जापान) के सांस्कृतिक हृदयका अभिमानी देवता है और वह जापानी जातिके पुरुषार्थी भाग्य-का प्रतीक है।[1]

१. मूल गुजरातीसे।

३७. सुदूर जापानसे—१

आखिर कल (२८-७-७२) मध्य रात्रिके समय जापानकी भूमि पर पांव रखे। श्रीपाद कहेंगे 'पहली ही बार रखे'। मेरे लिये तो यह छठी बार है।

तोक्यो कबका दुनियाका एक सबसे बड़ा शहर बन गया है। फिर भी उसका न केवल विस्तार बल्कि अन्दरके मकान भी दिन-ब-दिन बढ़ते जाते हैं। मनुष्यकी मेहनत बढ़ती है। संगठन अधिक कुशल बनते जाते हैं। और साथ-साथ रहन-सहन भी अधिक खर्चीला हो कर 'अब परिस्थितिका मुकाबला किस तरह करें' इस बातकी चिंता भी बढ़ती जाती है।

मानव-जातिके कई हितचिंतक इस तरहकी चिंतासे अकुला कर कहते हैं कि 'संतोष ही हरएक संस्कृतिका एक महत्त्वका तत्त्व होना चाहिए।' जबकि दूसरे कई लोग कहते हैं कि 'भले आप हमें उत्पाती मानें। किन्तु हम पुरुषार्थमें माननेवाले हैं। पुरुषार्थके साथ जो अस्वस्थता आती है वह अनिवार्य है। जीवनके रसमें वह वृद्धि ही करती है। सृष्टिको उत्पन्न करते, उसे चलाते और उसमें उत्पात उत्पन्न करते जब भगवान कभी ऊबते नही (उल्टे उनका रस बढ़ता ही जाता है) तब, हम उनके अंश आराम प्रेमी बने यह कैसे शोभा दे?'

३१-७-७२

इस देश पर अमरीकाका असर अधिक है। हम अमरीकी लोगोंको westerners कहते हैं। अमरीकी लोग जापानियोंको Westerners कह सकते हैं। क्या यह बात ध्यानमें आती है? एक दिन अवश्य उगेगा जब रहन-सहनके मामलोंमें भी अमरीकी लोगोंको जापानियोंसे सीखनेकी आवश्यकता महसूस होगी।

हम दो दिन पहले यहां आ पहुंचे इससे एक बड़ा लाभ हुआ। किसी सार्वजनिक कार्यक्रमसे प्रारम्भ करनेके बदले दो दिन एक स्नेहार्द दंपतिके संपर्कमें बिता सके। हम रहते तो हैं गुरुजीके मेहमानके तौर पर San Baocho नामक एक सुंदर अद्यतन होटलमें। किन्तु श्री कोजी और श्रीमती काज्वे ओकामोतो—इस दंपतिसे हमारा पुराना परिचय है। चि० सरोज और काज्वे एक-दूसरेकी सखियां हैं या बहनें, कहना मुश्किल होगा। चि० सरोजके कारण ही इस दपतिके साथ मेरा संबंध बढ़ा। हमारे नरेशका तो इस दंपतिके साथ रोजका घरेलू संबंध है।

सातवीं जुलाईको कोजी और काज्वेकी शादीके पच्चीस साल पूरे होते थे। इस असाधारण भाग्यका उत्सव हमारे साथ ही मनाया जाय यह सोच कर उन्होंने उनतीस तारीख पसंद की। कितनी अद्भुत आत्मीयता! उनके पंद्रह-सोलह अत्यंत नजदीकके स्नेहियों और तीन-चार संबंधियोंको उन्होंने इस खानगी उत्सव में हिस्सा लेनेके लिए निमंत्रित किया। हम लोग मानो स्नेही और संबंधियोंके बीचके। इतनी आत्मीयता हम सबने अनुभव की।

कल सर्वोदयको माननेवाले यहांके स्नेहियोंसे मिलनेका कार्यक्रम था। उसमें कोजी ओकामोतो सेक्रेटरीके तौर पर हिस्सा ले ही रहे थे। सभा उन्हींके घर पर हुई। मैंने वहां गांधीजी और सर्वोदय शब्दकी उत्पत्तिके बारेमें विस्तारसे बताया। मुझे कहना पड़ा कि भारतमें गांधीवादी तो सभी हैं किन्तु सर्वोदयमें पूर्णरूपसे मानवाले इनेगिने ही हैं। हालांकि सभी देश अपने-अपने गलत रास्ते पर चल कर पछतानेवाले हैं और बादमें सर्वोदयकी ओर ही आनेवाले हैं। सर्वोदय जब मानवजातिके जीवनका स्वाभाविक धर्म होगा तब सरकार जैसी संस्थाकी उपयोगिता कम हो जाएगी।

लोग मानते हैं कि गांधीका भारत सर्वोदयवादी ही है।

एक भाईने सवाल पूछा : "गांधीजी यदि होते तो वे पाकिस्तानके खिलाफ भारतको युद्ध करने देते ? आप इस युद्धका समर्थन करते हैं ? सर्वोदयवालोंने क्या किया ?"

मैंने कहा : 'गांधीजीके जमानेमें भी पूरा देश उनकी सूचनाओंके अनुसार थोड़े ही चलता था ? देशका विभाजन मंजूर करके स्वराज्य लेनेके लिए गांधीजी कतई तैयार न थे। अंग्रेजोंसे उन्होंने कहा था कि अपने जीते जी वे देशके टुकड़े कतई होने नहीं देंगे। फिर भी बीस-बीस साल तक गांधीजीके साथ जिन्होंने काम किया ऐसे उनके उत्तमोत्तम साथियोंने 'अंग्रेजोंको हटाना हो तो विभाजनका स्वीकार किये बिना चारा ही नहीं' यों तय किया और स्वराज्य पा लिया। गांधीजीने कहा : "देशके विभाजनका तो मैं स्वीकार नहीं करता। किन्तु 'इन सब साथियोंसे मैं अधिक अकलका आदमी हूं' इस तरहका दावा मैं किस तरह कर सकता हूं। मैंने सब तरहकी जाखिमोंकी बातें उनसे की और फिर उन्हें जो उचित मालूम हो वह करने दिया। आज भी मुझे विभाजन पसंद नहीं है किन्तु मैं किसीको रोकूंगा नहीं।"

मैंने कहा : 'सरकारकी मददके बिना यदि हम सर्वोदयकी स्थापना कर पायें तो यह नई संस्कृति सारी दुनियामें फैला सकेंगे। अमरीकी लेखक थोरोने जो कहा कि That Government is best which governs the least" यह अहिंसक संस्कृतिका सिद्धांत है। अगर हम यह बात समझ लें तो भले मुट्ठी भर भारतीय मुट्ठीभर जापानी मिल कर, एक हृदय बन कर हम काम कर सकेंगे—

(इस दिनकी सभामें हम पंद्रह लोग थे।)

३८. सुदूर जापानसे—२

आज ता० १० को दोपहरके बाद हम होन्दो आ पहुंचे।

ता० ५ अगस्तको भारतीय दूतावासकी मोटरकारमें हम तोक्योमें खूब घूमे।

मुझ पर विशेष असर हुआ तोक्योके विख्यात टावर पर जा कर आसपासका विस्तीर्ण प्रदेश देखनेका। ऐसे ऊंचे टावर दुनियामें बहुत कम होते हैं। (चि० सरोज और मैं १९५८ मे यूरोप गये थे तब पेरिसके जगविख्यात टावर ईफल पर गये थे उसकी याद आयी।) टोक्यो टावरकी ऊंचाई ३३३ मीटर है। यह १९५८ के अंतमें तैयार हुआ था। जापानी विज्ञान-सायन्सके बारेमें पश्चिमके चेले हैं सही, परंतु शिष्यात् इच्छेत् पराजयम् इस न्यायसे हरएक बाबतमें पश्चिमको मात करें ऐसे हुए हैं।

५ की रातको हम अपने दूतावासके श्री अर्जुनभाई आसरानीके यहां भोजनके लिए गये थे। ऐसे भोजोंकी व्यवस्था इसलिए की जाती है कि जिनसे मिलना हो ऐसे लोगोंके साथ आरामसे बात हो सके। ऐसे लोगोंमें एक थे प्रोफेसर नाकामुरा। वे संस्कृत, पाली, वगैरा भाषाओंमें निष्णात हैं। (संस्कृतमें वे भाषण भी दे सकते हैं।) यह सज्जन एशियाके लोगोंको भारतीय संस्कृतिका महत्त्व समझाते हैं। दूसरे भाई मिले वे थे प्रो० दोई। वे हिन्दीमें निष्णात हैं। (मैंने उनसे उनका नाम पूछा तो हंसते-हंसत कहने लगे, "मेरा नाम है सदाशिव दुबे।") इस भाईने यहां हिन्दीका वातावरण अच्छा जमाया है।

परंतु उस दिन हमसे खास मिली वह थीं एक जापानी विदूषी 'चीएनाकाने'। यह महिला Anthropology और Sociology की भारी विद्वान् हैं। (Anthropology इतिहासपूर्वकालीन मनुष्य जातिकी सामाजिक स्थितिका वर्णन करता है। सारी दुनियामें इस विद्याकी प्रतिष्ठा बढ़ती जा रही है। Sociology यानी समाजविज्ञान। इस विषयमे एशियाके राष्ट्रोंके बारेमें आजकल बहुत संशोधन चल रहा है।) इस बहनने भारत, चीन और जापानके सामाजिक आदर्शोंकी तुलना करने वाली एक किताब हाल ही में लिखी है। इस बहनके साथ अनेक विषयोंकी चर्चा हुई। तब वह बहन कहने लगी कि 'जीवन-विषयक सभी विषयोंमें आपको इतना गहरा रस है यह मैं यदि पहले जानती तो अपनी किताब ला कर आपको भेंट करती। मैंने माना था होंगे कोई धार्मिक और तात्त्विक चर्चा करने-वाले वृद्ध पुरुष !"

यात्रा-वर्णन आगे चलाऊं इसके पहले एक बात यहा दर्ज कर लूं। हम जापान आये हैं एक बौद्ध भिक्षुके निमंत्रण पर, उसके मेहमान हो कर। परंतु क्या टोक्योमें, क्या नागासाकीमें और क्या आज पहुंचे हैं उस होन्दोमें, रहते हैं उत्तमोत्तम बादशाही ठाठके होटलोंमें। मैं नहीं मानता कि जापानके बादशाहके मेहमान हो कर आये होते तो भी इससे बढ़ कर सुविधाओं और वैभवका हमने उपयोग किया होता। और खूबी यह कि हम चारों एक-सी सुविधाओंसे लाभ उठाते हैं। हरएक होटलमें योरोप-अमरीका जैसी पश्चिमके ढंगकी सुविधाओंके अलावा जापानी खासियतका भी अनुभव करते हैं। मसलन्, होटलोंमें पहुंचते ही मुंह, सिर, गला

पसीनेसे परेशान हुआ हो उसे आराम देनेके लिए गरम या ठंडा गीला छोटा-सा नैपकिन मिलेगा ही। गरमीके दिनोंमें तथा गरम प्रदेशोंमें इस सुविधासे चित्त तुरंत प्रसन्न होता है। हमारे यहां घर-घर यह सुविधाजनक रिवाज शुरू होना चाहिए।

मैं पिछली बार जापान गया था वह कुकुओकाके भाई सुगीयामासाङका मेहमान हो कर। व्यापार-हुनरमें वह भाई कुशल हैं। अतिथिशील तो हैं ही। अभी-अभी अपने बेटेके साथ दिल्लीमें हमसे मिले थे। यहां भी हमसे तोक्योमें मिले। छः अगस्तको उन्होंने हम सबको तोक्योमें अनेक जगहकी सैर करायी। विदा होते समय उन्होंने कहा, "आप हमारे क्यूशु टापूमें खूब घूमेंगे परंतु हमारा कुकुओका शहर आपके कार्यक्रममें नहीं है इसलिए हमारे लिए अत्यंत नजदीकका शहर (जहां आप जानेवाले हैं।) यामागामें मैं आपसे मिलूंगा।"

जापानमें जिन कुछ लोगोंका परिचय मैं अत्यंत महत्त्वका मानता हूं उनमें सुगीयामा हैं। उनके केवल आतिथ्यसे मुग्ध हो कर नहीं परंतु उनकी कार्यकुशलता और व्यापक आंतरराष्ट्रीय दृष्टिके कारण। उनके चारित्र्यके बारेमें मुझे विशेष आदर है।

जबसे हम जापान आने लगे हैं तबसे एक अत्यंत काबिल, कार्यकुशल कंपनीके मालिकके कुटुम्बके साथ हमारा परिचय हुआ है। उस कंपनीका नाम है कीनो-कुनिया। गुरुजीके भक्त होनेसे उनके मेहमानोंको सब तरहकी सुविधाएं देनेमें उस कुटुम्बको बहुत आनंद होता है। उनका उल्लेख मैंने अपनी किताबमें किया ही है। इस बार भी उनकी मेहमान-नवाजीका अनुभव जगह-जगह करते हैं।

अभी छः बजे हमारा सार्वजनिक स्वागत होगा। कल यहांके स्तूपका उद्‌घाटन है।

० ० ०

कल रात एक मजेदार होटलमें रहे। सुबह सबसे ऊपरकी मंजिल पर घूमनेवाली भूमि पर नाश्ता करते हुए बारी-बारीसे सब दिशाओंका पहाड़ी दृश्य देख सके।

इसके पहले भी हम जब ओसाका ज्वालामुखी देखने आये थे तब इसी होटलमें ठहर कर हमने सुबह इसी प्रकार आसोके विशाल द्रोणका सब दिशाओंसे निरीक्षण किया था। मैं तो सब भूल गया था। चि० सरोजने याद दिलाया। इसलिए आधा ध्यान नाश्तेमें और आधा ध्यान बैठे हुए स्थानसे नये-नये कौनसे पहाड़ दीखेंगे इसकी अपेक्षामें लगा था। यही आजका मजा था।

यहांकी व्यवस्था ऐसी है कि सात मंजिलोंका बड़ा मकान है। उसकी दो-तीन ओर, जैसे हाथ फैलाये हों, उसी मकानकी छः मंजिलोंकी शाखाएं हैं। सातवीं मंजिल पर खाने-पीनेकी सब वस्तुएं रखी हैं। वह सब स्थिर है। उसके आसपास बरामदेके रूपमें अंगूठी है जिस पर खाने-पीनेके लिए टेबल-कुर्सियां रखी होती हैं।

यह अंगूठी बहुत ही धीरे-धीरे गोल-गोल घूमती है। उस अंगूठीके बाहरकी खिडकियां स्थिर हैं। इसलिए अंगूठी घूमती जाय त्यों नयी-नयी खिड़कियोंसे नये-नये पहाड दीख पडते हैं। किसी भी स्थान पर आसपासका दृश्य न दीख पडे ऐसा नहीं है। बीचकी दुकानोंके दरवाजे भी बदलते जाएं परन्तु सेवा करनेवालोंको या लेनेवालोंको जरा भी कठिनाई नहीं होती।

ऐसे काव्यमय स्थान पर मरजीमें आये सो खाते जाते थे और प्रसन्न आंखोंसे विशाल द्रोणके दूरके और नजदीकके पहाड़ोंको देखते जाते थे।

जापान देशकी खूबी यह है कि पहाड सख्त हो या सौम्य उस पर वृक्षोंकी भीड तो लगी ही रहती है। जहां वृक्षोंको स्थान न हो वहां ऊंची-ऊंची घासकी भीड़ होती है।

जहां नई-नई चट्टान टूटी हो और वह भी दीवालकी तरह खडी हो वहां अमुक समय तक वह हिस्सा खुला दीखेगा, मानों किसी सैनिकका लडाईमें अंग विच्छेद हुआ हो।

जख्मी सैनिकको देख कर दयाका भाव नहीं उठता, बल्कि आदर और उपकारबद्धता ही मनमें पैदा होते हैं। यहां भी ऐसे थोडे जख्मी पहाड देख कर वही हिस्सा देखते रहनेका मन होता है। अन्यत्र सर्वत्र वनस्पति-सृष्टिकी समृद्धि देख कर आंखें तृप्त होती हैं इसलिए वहां ध्यान नहीं लगता।

अब इस आसो पहाडके बारेमें जरा विस्तारसे समझाऊंगा। आज जिसे आसो पर्वत कहते हैं वह ऊंचे-ऊंचे पांच शिखर हैं। उनमेंसे एक शिखरके प्रदेशमें जिंदा ज्वालामुखी धुआं फेंकता है और उसी धुएंमेंसे निकलनेवाला गंधक अपना पीला रंग जहां-तहां फैलाता है। यही है इन ज्वालामुखियोंकी भव्यता, यानी उन पांच शिखरोंकी ऊंचाई और उन्होंने आसपास फैलाई हुई शुद्ध श्वेत या काली राखके शिखर और घाटियां।

परंतु मूल आसो पहाड तो कल्पनातीत बडा था। उसका घेर तीनसौ मीलसे भी ज्यादा होगा। इतना विशाल शिखरोंका वर्तुल और उसके समतल द्रोणमें तीन गांव और तीन कस्बे बसे हुए हैं। जगह-जगह सुन्दर खेती भी होती है।

जब प्राणी-सृष्टि पैदा हुई नही थी, वनस्पतिको भी हरा प्राण फैलानेकी सूझी नही थी, उस समय तीन सौ मीलके घेरेका यह विशाल द्रोण जब धधकता होगा तब पृथ्वीके आसपास क्या चंद्र घूमता होगा या चंद्र पृथ्वीसे अलग हुआ ही नही होगा ?

आखिर तो बुध, शुक्र, पृथ्वी, मंगल आदि सब ग्रह मूलमें सूर्यके ही अंश हैं। आज जैसे सूर्य धधकता है वैसे सूर्यसे अलग हुए ये सब ग्रह प्रारंभमें तपतपाते ही होंगे। बादमें वे धीरे-धीरे ठंडे पडे। फिर भी अमुक उष्णता उन्होंने अपने पेटमें संग्रह कर रखी होगी। उसका थोड़ा नमूना इस ज्वालामुखीके द्वारा ऊपर झांक

कर सूर्यमालाके करोड़ों वर्षके इतिहासकी कल्पना कराता है। (पृथ्वीसे अलग हुआ चंद्र बिलकुल ठंडा तो है ही, परंतु वहां सांस लेने जितनी भी हवा नहीं है।)

खैर। इस पृथ्वी पर अनेक ज्वालामुखी होंगे। हमारे छुटपनमें हम योरोपका भूगोल पढते थे तब इटलीके विसूवियसका वर्णन पढ कर और चित्र देख कर चकित हो जाते थे। ऐसा ही एक ज्वालामुखी जापानमें देखनेको मिलेगा इस कल्पनासे मन उत्तेजित होता था। बादमें तो उसके अनेक बार दर्शन किये। इस बार मैंने अपने मेजबान भिक्षु निचिदात्सू फूजीईजीसे कहा कि, "मेरे साथ श्रीपाद जोशी पहली ही बार जापान आये हैं उन्हें आसो और फूजीयामाका दर्शन कराना ही है।" और हंसते-हंसते मैंने आगे कहा, "श्रीपाद इस ज्वालामुखीको अपनी और मेरी दोनोंकी आंखोंसे देखना चाहते हैं।"

हमारे सौभाग्यसे कलका और आजका दोनों दिन सब तरहसे अनुकूल था। न तो कुहरा था, न बारिशकी बौछार। बारिशने इतना आतिथ्य संभाला था कि आसपास पानीकी वर्षा कर धूलको उडने नही देती थी और हम जहां जाते, आकाश स्वच्छ, धूप मीठी और पवन उत्साहको बढानेवाला था।

इस प्रकार घूमते-घूमते हम पहुंचे सेन सूईक्योके स्तूप और मंदिरके पास। वहां भोजन कर, आराम कर माउन्ट आसोका जिंदा ज्वालामुखी देखने निकल पडे। प्रथम सोचा था कि नीचेसे करीब ऊपर तक ले जानेवाले रोप-वेका उपयोग करेंगे। इस रास्ते जाते तो ऊंचे रस्सेमें लटकनेवाले पलनेमें बैठ कर हम ऊपर पहुंच जाते। परंतु ठेठ ऊपर तक नही। बाकीका कठिन हिस्सा करीब डेढ सौ सीढियां चढ कर जाना पडता। हमारे मेजबानोंको यह ठीक नहीं लगा। उन्होंने ठेठ ऊपर तक ले जानेवाला कारका लंबा रास्ता पसंद किया। फलतः हम आसोकी घाटीके अनेक दृश्य अनेक बाजुओंसे देखते-देखते और बीचमें हमारी पूर्वपरिचित कूर्म टेकरीको नमस्कार करके शिखर तक पहुंचे। (कूर्म टेकरीको देखते ही मेरी सनातनी आत्माने नमः कूर्मावताराय कह कर नमस्कार किया।)

वह टेकरी जितनी सुहावनी है उतना ही उसके सिरका छोटा-सा सर्वतोभद्र द्रोण सुहावना है।

जिस अंतिम दृश्यको देखने यहां तक हम आये अब उसके पास पहुंच गये। धुआं देखते ही पुरानी परिचित आंखें गंधककी शोभा देखने लगीं। श्रीपाद तो एकदम घाटीके किनारे-किनारे दौड़ते हुए सामनेके किनारे पहुंच गये, और दोनों बाजुएं देखनेका पुण्य-साभिमान हमें समझाने लगे।

बस देखते ही रहो, देखते ही रहो। बड़े-बड़े कारखानोंमें हम राखके ढेर देखते हैं। भगवानके इस ज्वालामुखी कारखानेमें राखके पहाड फैले हुए हैं। कितने ही युगों और कल्पों तक ऊपर फेंकी हुई राख यहां आराम करती होगी।

एक ओर राखकी घाटी टूटी हुई थी यानी वर्ष प्रति वर्ष या दस-दस वर्ष पर

बनते हुए राखके स्तर दो ओरसे खुले पडे थे। मैं यदि ज्वालामुखीका भूस्तरशास्त्री होता तो एक-एक टेकरी कितने लाख बरस पुरानी है, यह बाकायदा हिसाब करके, जान सकता। जिस देशका इतिहास पुराना हो, वहां जगह-जगह अत्यन्त प्राचीन यानी आठ-दस हजार बरस पुरानी वस्तुओंको इकट्ठा कर संग्रहालय बनाया जाता है। उसे देख कर, मनुष्यजातिने धीरे-धीरे प्रगति करके संस्कृतिका विकास कैसे किया इसकी कल्पना की जा सकती है। आज देखा हुआ संग्रहालय मानवी संस्कृति का नहीं, परंतु विश्वके निर्माताकी करोडों वर्षकी लीलाका संग्रहालय था। ज्यों-ज्यों देखते जाते थे, भक्तिनम्र हो कर अपनी तुच्छताका विचार करते जाते थे।

मुझे आश्चर्य नही होता कि यही तुच्छता असह्य होनेसे उद्दाम बनती है और विश्वविधाताका ही इनकार करती है। विज्ञानके उस विभागका जब मैंने अध्ययन किया और विज्ञानवेत्ता भगवानका इनकार क्यों करते होंगे इसका आश्चर्य करने लगा तब यकायक सूझा कि इनकार भी भक्तिका एक विचित्र प्रकार ही है। 'मैं नहीं समझ सकता' ऐसा कहनेकी बजाय 'ऐसा बनानेवाला कोई हो ही नहीं सकता' ऐसा कह दना। यह कितना ही विचित्र हो तो भी समझनेवाला क्यों न समझे कि यह भी एक भक्तिका ही प्रकार है!

आसोके दर्शनसे वह पुराना विचार ताजा हुआ और विज्ञानवेत्ताओंकी ओरसे विश्वविधाताके चरणोंमें उनकी भक्ति अर्पित की।

जीवनकी तरह यात्रा भी रुक नहीं सकती। आसोका दर्शनचिंतन अघा कर करते-करते हमने गुरुजीका जन्मस्थान देख कर आंकामिजुमें हाकुउनसानसो होटल में रैनबसेरा किया। वहांसे चामागा आ कर यहांके शान्तिस्तूपके उद्घाटनमें हम शरीक हुए। रैनबसेरेके लिए यामीओके कानका होटलमें आये हैं। मैं लिखाता हूं और आकाशके बादल वृद्धोंका हास्य करते हुए कहते हैं—"ठीक लिखा, ठीक लिखा। तुम्हारे बाद भी कई लोग आयेंगे और वे भी अपना आनंद व्यक्त करनेके लिए कल्पनाएं दौडायेंगे।"

यामागाका स्तूप बनानेमें एक भिक्षुणी ग्योसेन कावाने खास हिस्सा लिया है। उसका और उस स्तूपकी रचनामें अपना श्रम देनेवाले कुशल लोगोंका हम सबने अभिनंदन किया।

यात्राका आनंद

दो शब्द

जीव-सृष्टिके भी स्थावर और जंगम जैसे प्रधान भेद हैं। इनमें वनस्पति स्थावर है। वृक्ष जहां बोये जाते हैं, वहीं उगते हैं। जमीनसे ये अपना पोषण-तत्त्व पाते हैं, और ऊपरसे सूर्य-प्रकाश, उष्णता आदि जरूरी आहार भी। लेकिन, स्थानान्तर करना उनका अपना स्वभाव नहीं है। अपनी जड़ें भूमिमें दूर-दूर फैला कर और ऊपर शाखाओंका विस्तार कर जीवन-संग्रह करना वनस्पतिके लिए स्वाभाविक है; लेकिन यह सब एक ही स्थान पर रह कर।

ऐसी स्थावर वनस्पति-सृष्टि भी हवा और पशु-पक्षियोंकी सहायतासे अपने बीजको दूर-दूर भेजती है और इस तरह स्थानान्तरका लाभ प्राप्त करती है। बड़े-बड़े जंगल भी धीरे-धीरे दूर-दूरकी मुसाफिरी करते हैं। इसके उदाहरण काफी पाये गये हैं। स्थानान्तरके बिना जीव-सृष्टिको संतोष ही नहीं होता। स्थानान्तर करनेके लिए पशुओंने पांव पाये, पक्षियोंने पैर और पंख दोनों पाये। इसके बाद मनुष्यने हाथ-पांवकी मददके लिए घोड़े आदि जानवरोंको लिया तथा गाड़ी, पालकी आदि साधन भी ढूंढ़ निकाले। पानीके जहाजको भी इसीमें शुमार करना चाहिये। फिर आई रेलगाड़ियां, मोटरें, स्टीमरें आदि और अब आये हैं तरह-तरहके विमान। आज मनुष्यके स्थानान्तरके लिए जो जेट और रॉकेट भी उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं।

साधन कुछ भी हो, मुख्य बात है दूर-दूर जा कर अनुभव पानेकी अदम्य प्रेरणा। जब तक मनुष्यका जीवन शिकारीका था अथवा गोपालका था, तब तक जीना और घूमना दोनों एक ही क्रिया थी। जीवन-यात्रा सचमुच यात्रा ही थी। पश्चात् मनुष्यने हल चला कर और जमीनको उपजाऊ बना कर एक ही जगह रहनेवाला कृषि-जीवन पसंद किया, साथ ही गोपालन करके घी-दूध आदि पौष्टिक आहार भी प्राप्त किया। इस तरह मनुष्य तरह-तरहकी वनस्पतियों और पशुओंकी मददमें एक तरहसे स्थावर-सा हो गया। यद्यपि झोंपड़ी, घर, बड़े-बड़े प्रासाद, ग्राम, नगर आदि वस्तुका निर्माण कर मनुष्य गृहस्थ और ग्रामस्थ हो गया, तथापि उसकी स्थानान्तरकी प्रेरणा क्षीण नहीं हुई। फिर, पशुओंकी पीठ पर माल लाद कर वह तिजारतके लिए निकला, उसने किश्तियों और जहाजोंसे देश-देशान्तरकी यात्राएं शुरू कीं। फौजोंको साथ ले कर दिग्विजयके विचारसे पृथ्वीके सभी खंडोंको पादाक्रांत किया और इसी क्रममें बड़े-बड़े महासागरोंको भी रौंद डाला।

इतनी महत्त्वाकांक्षा जिनके पास नहीं थी, वे तीर्थ-स्थानोंके दर्शनको चले। वहां जा कर स्नान-पान, दान और गानका पुण्य प्राप्त करनेके लिए उन्होंने धर्म-यात्रा शुरूकी। स्थान-स्थान पर संतों और सत्पुरुषोंका दर्शन करना, सत्संग करना और धर्म-प्रचार करना यह उद्देश्य भी साथ-साथ रहा और इनमें जो निवृत्तिमार्गी थे, वे भी परिव्राजक हो कर चलने लगे। चलना सबके लिए है ही। जो लोग स्वभावके वेदांती कवि होते हैं, उनको तो सृष्टि-निरीक्षणमें भी भगवान्‌का दर्शन होता है। एक संत कविने यहां तक कह डाला कि रामकृष्ण आदि अवतार इस कालके हैं, आधुनिक हैं। भगवान्‌का आद्यावतार तो यह सारा विश्व ही है। भगवान्‌ने अपनेसे ही विश्वको पैदा किया और उसीमें प्रवेश भी किया। इसीलिए, भगवान्‌के अनेक नामोंमें विश्व और विष्णु ये प्रधान नाम हैं। विष्णुका दर्शन विश्वके द्वारा करनेके लिए यात्रा करते रहना यही एक उत्तम जीवन-साधना है।

पहाड़, नदियां, सरोवर, समुद्र, सूर्योदय, सूर्यास्त, आकाशके बादल और आकाशमें उड़नेवाले पक्षी, बड़े-बड़े जंगल तथा उनमें रहनेवाले जंगली पशु-पक्षी आदि सभी चीजें मनुष्यको आकृष्ट करती हैं। फिर, पानीमें रहनेवाली जलचर सृष्टिकी तो एक अलग ही लुभावनी दुनिया है।

इस सारी सृष्टिमें मनुष्य अपना संचार चलाता है। ध्यान-चिंतनमें सामाजिक और जागतिक जीवन तक फैली हुई मनुष्यकी जीवन-साधना समझनेके लिए प्रवास, मुसाफिरी और यात्राके जैसा उत्तम साधन दूसरा नहीं हैं। साहित्य तो जीवनकी छायामात्र है। कभी-कभी उसमें कल्पना-विलास पाया जाता है। वह भी काव्यमय जीवनकी छाया ही होती है। यात्रानन्द ही जीवनानंदका प्रधान हिस्सा है। इसीलिए मनुष्यको यात्राके आनंदके साथ यात्राका वर्णन पढ़नेका इतना शौक होता है। साहित्यका प्रचार करनेवाले कहते हैं कि उपन्यासोंके बाद अधिक-से-अधिक चावसे यात्राके वर्णन हम लोग पढ़ते हैं। यात्राके वर्णन पढ़नेमे पाठकोंको तो आनन्द मिलता ही है, लेकिन उससे भी अधिक आनन्द मिलता है यात्रा पूरी करनेवालोंको और वही आनन्द दूसरोंको देनेके लिए उसका वर्णन लिखनेमें लेखकको मिलता है। प्राचीन कालसे दुनियाके सब समाजोंमें यह रिवाज प्रचलित है कि यात्रा कर वापस आये हुए लोगोंके मुंहसे उनकी यात्राका वर्णन सुनना। इसमें सुननेवालेको जितना आनन्द आता है, उससे दुगुना आनन्द मिलता है सुनानेवालोंको। कभी-कभी सुनानेवाला सुननेवालोंके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता है कि 'आपने मुझे अपना यात्रानन्द दुगुना करनेमे मदद की।'

प्रस्तुत पुस्तकमें यात्राके जो वर्णन दिये गये हैं, इसी वृत्तिसे लिखे गये है। बचपनसे ही भगवान्‌ने मुझे छोटी-बड़ी यात्राएं करनेके मौके दिये और जबसे मैं लिखने लगा, मैंने ऐसी यात्राओंके वर्णन लिखनेमें ही अपनी लेखन-कलाकी कृतार्थता मानी है। सुदीर्घ जीवनमें मैंने तरह-तरहकी यात्राएं की हैं। इन यात्राओंसे ही

मेरा जीवन भरा हुआ है। उसका अल्पमात्र ही मैं शब्दबद्ध कर सका हूं। हिमालय-का प्रवास, ब्रह्मदेशका प्रवास, पूर्व आफ्रिकामें पहली बार व्यतीत किये हुए ढाई महीने और तीन बारकी जापान-यात्राओंमेंसे पहली दो यात्राओंका वर्णन, हिन्द महासागरमें योरोपीय जहाजोंके रास्ते संतरीका काम करनेवाले 'शर्कराद्वीप' 'मॉरिशसकी मुलाकात' आदि मेरे अनेक ग्रंथ प्रकाशित हुए हैं। भारतकी लोक-माता नदियोंकी जीवन-लीला भी एक तरहसे प्रवास-वर्णन ही है। और, जब मैंने अपने बचपनके संस्मरण लिखे, तब वे भी यात्रीकी वृत्तिसे ही लिख कर मैंने उन्हें नाम दिया—'स्मरण-यात्रा'। न जाने, ऐसे कितने ग्रन्थ अब भी लिखनेको मेरे भाग्यमें हैं।

मैंने बहुत-सा लिखा है—गुजरातीमें, कुछ थोड़ा लिखा है अपनी जन्मभाषा मराठीमें और अब चंद साल हुए, जो कुछ लिखना होता है, हिन्दीमें ही लिखता हूं।

ऐसे ही अपने कई प्रवास-वर्णनोंको इकट्ठा करके अपनी यात्राका आनन्द पाठकों तक पहुंचानेका प्रयत्न मैंने इस संग्रहमें किया है। बिहार-राष्ट्रभाषा-परिषद्के सुयोग्य निदेशक साहित्यसेवी डॉ० भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव'ने चाहा कि उनकी ग्रंथमालामें प्रकाशित करनेके लिए मैं अपने कुछ लेख उन्हें दे दूं। मैं न तो कोई बड़ा विद्वान् हूं, न साहित्य-सेवा मेरी जीवन-निष्ठा है। महात्माजीकी प्रेरणा-से जीवनमें दो ही कार्य करता आया हूं—अध्यापन और समाज-सेवा। यही है मेरी जीवन-निष्ठा और इसी कार्यकी पूर्तिके लिए जो लिखना पड़ता है, वही लिखता हूं। मैं मानता हूं कि यात्राका वर्णन लिखते समय अपने निरीक्षण, परीक्षण, चिंतन और तुलना सबका निचोड़ उसमें आ जाता है। जहां मनुष्य चलता रहता है, वहां हर तरहकी विविधता तो आनी ही चाहिए। यात्रा-वर्णनमें प्रकृतिका निरीक्षण और मानवका पुरुषार्थ दोनोंका मिश्रण हो ही जाता है। इसीलिए, यात्रा-वर्णनमें लेखक का जीवन और व्यक्तित्व ही स्वाभाविक ढंगसे प्रतिबिम्बित होता है। केवल लेखकका ही नहीं, उसके जमानेके (और पूर्वकालके भी) मानवी समाजके पुरुषार्थ-का प्रतिबिम्ब भी उसमें समाविष्ट हो जाता है।

'यात्राका आनन्द'में सम्पूर्ण देशका सम्पूर्ण वर्णन कहांसे आये? यहां तो लेखक आपको थोड़ा हिमालयका भ्रमण करायेगा, कभी आसामके पूर्व-प्रदेशमें ले जायेगा, तो कभी पश्चिम भारतका परिचय करायेगा। दक्षिण भारतके दो ही लेख इसमें आ सके हैं, लेकिन आधेसे अधिक ग्रंथ सन् १९५८ ई०में की हुई यूरोप-अमरीका-की यात्रासे भरा हुआ है।

यूरोपके द्वार पर ईजिप्टका दर्शन कर हम इटली जाते हैं, वहां दो तरहके साम्राज्यकी सांस्कृतिक राजधानी रोमका दर्शन करके फिर स्विटजरलैंड और जर्मनीकी सैर करते हैं। उसके बाद ब्रुसेल्सकी विश्व-प्रदर्शनीमें विश्वका चित्र देख-

कर इंग्लैंड हो कर अमेरिका पहुंचते हैं और वहांसे जमेका, ट्रिनिडाड और ब्रिटिश गियाना और सुरिनाम (डच गियाना) हो कर हम अपने देश लौटते हैं।

यह यात्रा मैंने किसलिए की थी ?

ईजिप्ट दुनियाकी पुरानी संस्कृतिका केन्द्र था और आज नवोदित इसलामी अरब राष्ट्रोंका केन्द्र है।

रोमने संसारको साम्राज्यवाद दिया और आज भी कैथोलिक ईसाई दुनियाका सबसे बड़ा प्रभाव केन्द्र वही है।

जर्मनीने हमारी वैदिक विद्या और अमरवाणी संस्कृत-साहित्यका नये ढंगसे अध्ययन करनेकी ओर हमें प्रेरित किया। जर्मनीमें आज समस्त यूरोपकी शक्ति निहित है। हिटलरकी महत्त्वाकांक्षाके कारण भले ही उस देशके दो टुकड़े हुए हों, फिर भी उस देशका पुरुषार्थ कभी क्षीण होनेवाला नहीं है।

अमेरिका तो आज दुनियाका नेतृत्व कर रहा है और साम्यवादी विचारके प्रयोगको चुनौती दे रहा है। उसका प्रभाव हमारे देश पर अभी-अभी शुरू हुआ है और अब या तो हम अमेरिकाके पूरे-पूरे शिष्य बन जायेंगे या दुनियाका नैतिक नेतृत्व हमारे पास आ जाएगा। तीसरा विकल्प है नहीं।

लेकिन, ये सारे देश और संस्कृतिके महान केन्द्र मेरी यात्राके बीचकी मंजिल ही थे, अंतिम लक्ष्य तो ऊपर बताये हुए चार छोटेसे प्रदेश-मात्र थे। क्योंकि, भारतके चंद दुर्दैवी लोग, सौ-सवा सौ बरस हुए, लाचारीवश वहीं जा कर बस गए हैं और अब यूरोप, अमेरिका और अफ्रीकाके निवासियोंके साथ रह कर ईश्वरके एक नये अंतर्राष्ट्रीय प्रयोगमें सम्मिलित हुए हैं। भारतीय संस्कृतिके भविष्यकी कसौटी वहीं पर होनेवाली है। भारतके लोग जहां पर भी जा कर बसे, उन्होंने अपनी अद्भुत जीवन-शक्ति प्रकट की है। गोरे लोगोंके सामने हम नम्र हो कर भी जी सके, इसमें हमारी नेत्रवृत्तिने हमें भरपूर सहायता दी है। किन्तु, अब सर्वत्र काले लोगोंकी जागृतिके सामने हम कैसे टिक सकते हैं, यही है सबसे बड़ा सवाल।

महात्मा गांधीकी प्रेरणासे भारतकी आत्मशक्ति संगठित हो सकी और स्वराज्य देख सकी। अब देखना है कि आधुनिक विश्वमें भारत अपने लिए कौन-सा स्थान प्राप्त करता है।

भारतकी प्राचीन संस्कृति, आजका उसका स्वरूप और भविष्यकी उसकी आकांक्षाएं, इन्हीं सबका चिन्तन इस अव्यवस्थित और खण्डित प्रवास-वर्णनोंमें आप पायेंगे। अगर इन चिन्तनोंको पाठकोंके हृदयमें स्थान मिला, तो यह निबन्ध-माला कृतार्थ होगी। यात्राका आनन्द ही भारतका जीवनानन्द है और भारतीय संस्कृतिकी सफलता और कृतार्थता भी उसीके अंतर्गत है।

हिन्दी-जगत्के चरणोंमें यह एक नम्र सेवा-पुष्प अर्पित है।[1]

काका कालेलकर

१. एशियामें भारतका स्थान

दो महीनेकी पूर्व एशियाकी संस्कार-समृद्ध यात्राके बाद भारत लौटा हूं। निप्पोन, जापान, चीन, थाई-स्याम, काम्बोज आदि एशियाई देशोंके साथ आत्मीयता की घनिष्ठता अनुभव करते हुए भी भारत-भूमि पर पांव रखते ही जो आनन्द, जो संतोष, जो समाधान प्राप्त हुआ, वह कुछ अनोखा ही था। जिस भूमिने मुझे जन्म दिया, हर तरहका पोषण दिया, बपौतीके तौर पर अद्‌भुत समृद्धि-संस्कृति दी और स्वदेशवासियोंकी तथा उनके द्वारा विश्वकी सेवा करनेका मौका दिया; और शेष आयु पूर्ण करनेके बाद जो मुझे प्रेमसे अपनी मिट्टीमें और अपने जलमें स्थान देनेवाली है, उस भूमिका दर्शन, उसके वायुका स्पर्श और उसके अन्न-जलका आस्वाद पाते ही सब तरह की धन्यताका और कृतार्थताका अनुभव हुआ और भारत-भूमिके प्रति कृतज्ञतासे हृदय भर आया।

आजतक कहता आया हूं कि जिस जननीने मुझे जन्मभूमि दी, उस जननीका चिरऋणी हूं। आज मनके भाव कहते हैं कि जिस जन्मभूमिने मुझे विश्वमें स्थान दिया और विश्वात्मैक्यका आदर्श सिखाया, उस जन्मभूमिके उपकारसे कभी उऋण नही हो सकूंगा।

जिस तरह जीवनका अधिकांश महाराष्ट्रके बाहर रह कर मैंने महाराष्ट्रकी ही अनन्य निष्ठासे सेवा की है, उसी तरह दुनियाके अनेक देशोंके साथ हार्दिक प्रेम और आत्मिक ऐक्य की साधना करके मैंने भारतकी ही भक्ति की है।

भारतका अगर पूर्ण साक्षात्कार करना है, तो भारत-पुत्रको चाहिए कि वह अपनी जिन्दगीमें किसी समय भारतसे बाहर जा कर विशाल मानव-परिवारका साक्षात्कार करे। केवल आंखोंका फोटो देख कर जिस तरह समस्त चेहरेका ख्याल नहीं आता, उसी तरह केवल भारतका दर्शन करनेसे भारतमाताका और उसकी विभूति और संस्कृतिका सच्चा और पूरा ख्याल नहीं आता। आज तक हमें ऐसे अधूरे दर्शनसे सतोष मानना पड़ा था और उसीको सम्पूर्ण दर्शन हम मानते भी आये। लेकिन सत्यका अपूर्ण दर्शन अपूर्ण ही होता है।

किसी जमानेमें भारतके सपूत देश-देशांतरको जाते थे। दस-बीस बरस या

---

१. 'यात्राके आनन्द' ग्रंथके कई लेख ग्रंथावलीके पहले खण्ड 'प्रवास-भारत'में छप चुके हैं। सं०

ज्यादा उन देशोंमें रह कर ज्ञान और संस्कारोंका आदान-प्रदान करते थे। परदेश-के जिज्ञासु और पराक्रमी यात्रियोंका भारतमें स्वागत करते थे और उनके सामने अपने सब ज्ञान और कौशल्यकी विरासत नैवेद्यके रूपमें धरते थे। उन दिनों भारतीयोंका हृदय संकुचित नहीं था। लेन-देनकी क्षमता भारतने नहीं खोई थी। देश-देशांतरके लोगोंको अपने बीच देख कर पहले-पहले भारतीय अभिमान नहीं करते थे। यवनाचार्योंसे भी हम कुछ सीख सकते हैं, ऐसा अनुभव उन्होंने कृतज्ञता से लिख रखा है। भारतके लोग जहां जाते थे, वहां शादियां भी करते थे और एक एक देशमें अपने एक-एक वंशकी स्थापना भी करते थे।

बादमें जब, सकारण हो या अकारण, भारतीयोंमें अभिमान जगा, तब वे कहने लगे, "ज्ञान, धर्म, सदाचार और चरित्रकी दीक्षा दुनियाके सब लोग भारत के संस्कार-स्वामियोंसे ही प्राप्त कर सकते हैं—एतद्देश प्रसूतस्य सकाशाद् अग्र-जन्यनः, स्वं स्वं चरित्र शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः।"

जिस तरह लोग आज ब्रिटेन, अमेरिका या जर्मनी जा कर शिक्षा, कौशल्य प्रतिष्ठा पाते है, उसी तरह किसी समय लोग भारतमें आ कर सब कुछ पाते होंगे लेकिन, इस बातका अभिमानके साथ जिक्र करनेकी आवश्यकता नही थी। अभिमान चाहे जितना स्वाभाविक और सहज हो, क्षम्य भी हो, तो भी उससे लाभ या उन्नति नहीं होती और मुख्य बात तो यह है कि अभिमानके कारण हम अपनी जितनी योग्यता मानते हैं, उतनी वास्तवमें कभी-कभी होती भी नहीं। भगवान्ने इस दुनियामें किसी भी व्यक्तिको, समाजको, राष्ट्रको या वंशको सर्वश्रेष्ठ नही बनाया है। किसी एक पहलूमें किसीकी महत्ता होती है, तो दूसरे पहलूमें दूसरेकी महत्ता होती है। जिनको हम देते हैं, उनसे हम काफी सीखते भी हैं।

हमने देखा है कि जब भारतके लोग सुदूरपूर्वमें जा कर वहांके लोगोंसे कहते हैं, 'धर्मसे ले कर भाषा तक सब बातें आप लोगोंने भारतीयोंसे ही ली हैं। भारत आपका विद्यागुरु था।' तब वहांके लोगोंको बुरा लगता है। जब हमारे दूसरे लोग उनसे कहते हैं कि 'आप और हम प्राचीन कालसे भाई-भाई हैं, हमारा परिवार एक ही है। कई बातोंमें आपने अपना प्रावीण्य सिद्ध किया है। हम आपसे लेने आये हैं, सीखने आये हैं।' तब वे नम्रतासे स्वयं कहते हैं, 'हमने भारतसे बहुत कुछ लिया है। आप हमारे बड़े भाई हैं।'

अभी-अभी संस्कार-यात्राके मिशन पर गये हुए एक भारतीयने चीनमें जा कर कहा कि हम सब भाई-भाई हैं। लेकिन, जिस विद्याका मैं प्रतिनिधि हूं, उस विद्याके बारेमें हम भारतीय आपके बड़े भाई हैं। आप हमसे बहुत कुछ सीख सकते हैं। तब वहांके लोगोंने उनकी बात चुपके-से सुन तो ली, लेकिन किसीको भी अच्छा नहीं लगा।

निप्पोन, कोरिया, चीन, कम्बोडिया, स्याम आदि सब बौद्ध देशोंमें भारतके

लिए भक्तिभाव है। भारतको वे पुण्यभूमि कहते हैं; क्योंकि भारतमें शाक्य-मुनिका—बुद्ध भगवान्‌का—जन्म हुआ और बौद्ध धर्मका उदय हुआ। मैं उनसे कहता रहा कि 'बौद्ध धर्मको अपना कर आप लोगोंने उसे अपना एक निजी रूप दिया। बौद्ध धर्मके इस विकासका हमें आदरके साथ अभ्यास करना है। बौद्ध धर्मकी भारतीय आवृत्तिको जानना हमारे लिए बसकी बात नहीं है। आप लोगोंने उसका जो विकास किया है, उसे समझनेके बाद ही बौद्ध धर्मके समृद्ध रूपको हम पहचान सकेंगे।' गंगोत्रीका माहात्मय कुछ भी हो, गंगाका आशीर्वाद तो गंगोत्रीसे ले कर गंगासागर तक जो प्रवाह बहता है, उसीसे उसकी नाप हो सकती है। मैं तो यह भी माननेको तैयार नहीं हूं कि गंगोत्रीकी गंगा और वेदकालका आर्य धर्म ही परम शुद्ध गिने जाएं। मूल स्रोतके बाद जो कुछ भी बढ़ावा होता है, वह सब भ्रष्टाचार ही है, ऐसा मानना अभिमानका पोषक भले हो, सत्यके लिए बहुत कुछ बाधक हो जाता है। कई दफे मूल कल्पना अस्पष्ट और अस्वच्छ भी होती है। अनुभव बढ़नेसे उसमें विविधता और परिष्कार भी आ सकते हैं। जीवन-समृद्धि तो अनुभवसे ही बढ़ती है।

आज हम देखते है कि कलामें, स्थापत्यमें, उद्योग-हुनरोंमें, बहादुरीमें और प्रतिकूल परिस्थितिमें भी जीवन-निर्वाह करके प्रगति करनेमें, दूसरी जातियां हमसे कम नहीं हैं। कई बातोंमें हमसे आगे बढ़ी हैं।

हम लोगोंने मजबूरन अंग्रेजी भाषा सीखी। यूरोप-अमेरिकाका असर अपने पर होने दिया। आज भी हम उन्हींके शिष्य रहनेकी कोशिशमें हैं और सुदूर पूर्वमें जो हमारे एशियाई भाई हैं, उनके साथ परिचय बढ़ानेका महत्त्व नहीं समझते। अंग्रेजी भाषाके जरिए हम पश्चिमका ज्ञान-विज्ञान, और कौशल्य जरूर ले सकते हैं। लेकिन, अपने जीवनको व्यक्त करनेका जरिया भारतीय न रख कर अंग्रेजी रखनेसे हम अपनी प्रजासे द्रोह कर रहे हैं और राष्ट्रीय सामर्थ्य क्षीण कर रहे हैं। चीनमें और निप्पोनमें घरका सारा और अंतरराष्ट्रीय काम बहुत सा वहांकी राष्ट्रीय भाषामें होता है। इसलिए, वहांकी प्रजा जोरोंसे प्रगति कर रही है। वहांके बड़े-बड़े अध्यापक और राष्ट्रनेता अंग्रेजी अच्छी तरहसे समझ भी नहीं सकते। अंग्रेजीमें बोलना तो उनके लिए दुश्वार ही है। उन्हें इस बातकी शर्म नहीं है। विशाल चीन देशमें अनेक भाषाएं चलती हैं। पेकिंगकी चीनी भाषा अलग है, केण्टनकी अलग है और सिक्कियांगकी अलग। लोग एक-दूसरेकी भाषा बहुत मुश्किलसे समझ पाते हैं। तो भी उन्होंने विदेशी भाषाका सहारा नहीं लिया। यही कारण है कि वहां पिछड़ेपनका कृत्रिम शाप किसी स्थान या जा पर उतरा नहीं है।

हम लोगोंको काफी संख्यामें अपने पड़ोसी देशोंकी यात्रा करनी चाहिए और वहां काफी अरसे तक रह कर उन देशोंका अच्छा परिचय पाना चाहिए।

२. सांस्कृतिक उपनिवेशोंकी स्वतन्त्र प्रतिभा

काम्बोज अथवा कम्बोडियामें ईसाकी १२वीं शताब्दीके दिनोंमें जो प्रचण्ड मंदिर बनाये गये, उन्हें देखनेके लिए देश-देशान्तरके लोगोंका तांता लगा हुआ रहता है। ख्मेर वंश या जातिके लोगोंने देखा कि लकड़ीके बनाये हुए घर और मंदिर युद्धके दिनोंमें जलाये जाते हैं, इसलिए भारतके स्थपित और मूर्तिकारोंकी मददसे शिलाके मंदिर और मूर्तियां बनाई गईं। इतना प्रचण्ड काम शायद ही दुनियामें और कही देखनेको मिलेगा। और, कालकी दिल्लगी भी ऐसी कि ये सारे मंदिर रेतके नीचे दब गये थे। किसीको पता भी नही था कि यहां ऐसा विशाल स्थापत्य है। फ्रेंच-सरकारने इस प्रदेश पर कब्जा करके बादमें संशोधन चलाया। इन मंदिरोमें देव-दानवोंका समुद्र-मन्थन, रामायण-महाभारतके युद्ध-प्रसंग, दरियाई सफरके अनुभव, श्रीकृष्णकी जीवन-लीला, शैवोंकी और बौद्धोंकी मूर्तियां आदि सब कुछ हैं। निप्पोन और चीनमें जो बौद्ध कलाका विकास हो रहा है, वह देख कर हमें आनन्द होता है कि भारतीय संस्कृति कहां-कहां तक फैली हुई थी।

इस बात पर गौरव करनेके दिन अब पूरे हुए कि भारतीय संस्कृतिका अमर इतने दूर-दूर तक पहुंचा हुआ था। सच्चे संशोधकोंका लक्ष्य अब इस बात पर जाना चाहिए कि स्थानिक प्रतिभा और प्रादेशिक संस्कृतिने भारतीय परम्परामें क्या क्या परिवर्तन किये, किस उद्देश्यसे किये और अपनी तरफसे कौन-कौन-सी बातें उन्होंने उसमें मिला दी।

ऐसे मिलानसे जो संमिश्र संस्कृति पैदा हुई, उसकी खासियत और उसकी खुशबू कैसी थी और उसमेंसे अब भारतमें भारतीय संस्कृतिमें हम क्या-क्या ले सकते हैं—इसका खयाल हमें करना चाहिए। इसी खोजमें हमें अग्रसर होना चाहिये। भारतीय सस्कृतिकी वृद्धिके लिए इस दिशाकी खोज बहुत ही हितकर होगी।

३. अफ्रीकाका आकर्षण

यह बात नहीं कि मैंने समुद्रकी यात्रा बिलकुल नहीं की थी। करांची, मांडवी, द्वारका, वेरावल, बम्बई, अलीबाग, हरणै, रत्नागिरि, मालवण, वेंगुर्ला, मुरगाव, कारवार, तदडी, कुमटा, मंगलूर, तुतिकोरिन, कोलंबो तकका किनारा जहाजमें बैठ कर मैंने देखा है और ऊपर लिखे हुए बंदर भी देखे हैं। पूरबकी ओर कलकत्तेसे रंगून भी हो आया हूं। लेकिन एक साथ सात-आठ दिनका सफर और वह भी हिन्द महासागरको सीधा लांघ कर अफ्रीकाके किनारे तकका सफर

मेरे लिए एक नया अनुभव था।

समुद्र-यात्रा आजकल इतनी सर्वसामान्य हुई है और हर साल इतने अमीर और गरीब समुद्र-यात्रा करते हैं कि अब इसमें नवीनता कुछ नहीं रही—अद्भुतता की तो बात ही दूर। समुद्र-यात्रामें और हवाई यात्रामें अब जमीनसे अधिक खतरा भी नहीं रहा है। शायद हम कह सकते हैं कि जमीन पर मोटरके और रेलगाड़ियोंके जितने हादसे होते हैं, उतने शायद जहाजों पर या विमानोंके नहीं होते हैं।

जहां नवीनता भी नहीं और खतरा भी नहीं, ऐसी यात्राका बयान हम क्यों लिखें? और अगर लिखा भी, तो उसे पढ़ेगा कौन? बम्बई और पूनाके बीच सृष्टि-सौन्दर्यकी भव्यता कुछ कम नहीं है। लेकिन, लोग उस रास्ते दिन-रात आते-जाते हैं; इसलिए उस भव्यताको देखनेकी उनकी नजर ही मर गई है।

लेकिन, जिसका हृदय जिन्दा है, वह तो कुदरतके हरेक नजारेको बच्चोंकी ताजी नजरसे देखेगा। सूरज अपनी जगह पर लाखों और करोड़ों वर्षसे है, इसलिए क्या दुनियाके कवियोंने सूर्योदय और सूर्यास्तके वर्णन नही किये हैं? और मेरे जैसे लेखकोंने तो मध्याह्नके सूर्यका भी, उतने ही उत्साहसे वर्णन किया है।

हरेक जीनेवालेके लिए जीवन नई चीज है और उमंगके साथ यात्रा करनेवालोके लिए उनकी यात्रा भी एक नई ही चीज है।

पूर्व अफ्रीकाका आकर्षण बहुत पुराना नही है। वहां पर भूमध्यरेखा है, नील नदीके अनेक स्रोतोंमेसे एक स्रोतका उद्गम वहां है, वहां पर बड़े-बड़े सरोवर हैं, जिसमें मगर और हिपोपॉटमस आदि प्राणी देखनेके काबिल होते हैं। ईस्ट अफ्रीका सिंह और हाथीका निजी घर है। हाथीदांतका व्यापार वहां बहुत चलता है इत्यादि बातें बचपनसे सुनी थी। कुछ दिन पहले वहांके लौंगके व्यापारकी बातें अखबारोंमें आई थीं और एक मित्र वहां हो भी आये थे। केनिया और किलिमांजारो—इन दो पहाड़ोंके बारेमें भी पढ़ा था। लेकिन, पूर्व अफ्रीका जानेका संकल्प बना एमील लुडविगका नाईल नदीका जीवन-चरित्र पढ़ने पर। क्या जीवंत किताब लिखी है उसने! कैसे ज्वलंत चित्र खींचे हैं उसने उस प्रदेशके! मेरे मनसे नदियां केवल पानीका बहाव नहीं हैं—ये जीवनके प्रतीक, जीवंत व्यक्तियां है। नदियोंको देखो, उनके जीवन-कार्यका अध्ययन करो। हरेक नदीका कुछ स्वभाव-सा बंधा हुआ होता है। उसका अपना एक मिशन होता है। उसके प्रवाहमें जीनेवाली मछलियों-की और उसके किनारे रहनेवाले पशु-पक्षियोंकी वह माता है ही; इतना ही नहीं उसे दिन-रात छेड़नेवाले और उस पर अपना अंक जमानेवाले, उसके किनारेके मनुष्य प्राणियोंकी भी वह माता है।

और, उत्तरवाहिनी नील नदी तो एक इतिहास-पूर्वकालीन भव्य संस्कृतिकी माता है। भूमिति जैसे तर्क-कर्कश गणित-शास्त्रको उसीने प्रेरणा दी। (नाईल नदी

में हर साल बाढ़ें आतीं हैं और उसका जल दोनों ओर फैल कर सारे प्रदेशको जल-मग्न बना देता है। गांव-के-गांव बह जाते हैं। खेतके बांध टिक नहीं पाते और इतनी कीमती खाद ऊपरसे आ कर दोनों ओर फैल जाती है कि पानी उतर जानेके बाद धान्य बोना और यथासमय फसल काट लेना—इतना ही मनुष्यका काम रहता है। किस किसानकी कितनी जमीन थी, इसका हिसाब गांवकी किताबोंमें ही रह सकता है। हर साल नई जमीन बनती है। उसके टुकड़े करना और हरेकके लिए इसके हिसाबसे जमीनका टुकड़ा बांट देना सरकारका वार्षिक काम था। किसानको किसी साल जमीनका गोल टुकड़ा मिलेगा, तो किसी साल तिकोन। किसी साल लंबचौरस, तो किसी साल बिलकुल टेढ़ा-मेढ़ा। ऐसी हालतमें हरेक किसानको उसके रकबेकी जमीन देना जरूरी था। इतना ही नहीं, किन्तु प्रजाकीय संतोषके लिए सबको सिद्ध कर देना पड़ता था कि किसीको कम या ज्यादा जमीन नहीं मिली है। इस आवश्यकताके कारण भूमितिशास्त्रका उदय हुआ और यूक्लिड जैसे मेधावीने उसे तर्कबुद्धिके विकासका साधन बनाया।) जिस भूमितिका ईजिप्त के लोगोंने विकास किया पिरामिड बांधनेके लिए, वैसा हमारे पूर्वजोंने इसका उपयोग किया था यज्ञकी वेदी और स्थंडिल आदि बनानेके लिए।

ईजिप्त, यानी मिश्र देशकी भव्य संस्कृति जिस नदीकी बदौलत है, उस नदीके मूलकी वन्य संस्कृति हमारे लिए उतनी ही पवित्र और श्रद्धाभाजन है, जितनी कि आर्य संस्कृतिका पोषण करनेवाली गंगाके उद्गम स्थानकी वन्य संस्कृति। अगर गंगोत्रीके दर्शनसे जीवन कृतार्थ होता है, तो नीलोत्रीके दर्शनसे भी हमारा नव-जीवन कृतार्थ और समृद्ध होना चाहिए। लुडविगने एक जबरदस्त प्रेरणा हृदयमें जगा दी कि नीलोत्रीका दर्शन करना ही चाहिए।

नित्य नये-नये स्थानोंके दर्शन किये बिना जिया ही नहीं जाता था भूगोलवेत्ता नारदसे। जिस तरह तितली एक फूलसे दूसरे फूल पर जा कर असंख्य वनस्पतिको 'सफल' बनाती है, उसी तरह एक देशसे दूसरे देशको जा कर सांस्कृतिक ज्ञानका विनिमय कर, अनेक संस्कृतियोंको समृद्ध करते थे। भूगोलवेत्ताकी यह परम्परा परशुरामने भी चलाई थी और हलधर बलरामने भी। त्रिखंड यात्रा करनेवाले तपस्वी दत्तात्रेय भी हमारे पुराने भौगोलिकोंमेंसे एक थे। उन्हींका नाम धारण करनेके कारण मुझमें भी देश-दर्शनकी अदम्य लालसा बचपनसे पैदा हुई है। उसने मुझसे निश्चय करवाया कि नीलोत्रीका दर्शन करना ही है।

और, अफ्रीकाके उस भूमि-भाग पर पिछली शताब्दीमें एक अद्भुत और इतिहास-भव्य त्रिवेणी-संगम हुआ है। भोले अफ्रीकावासी लोगोंके घर पर 'बिल्लीके जैसे घर-घरका परिचय पानेवाली' गोरी प्रजा जा पहुंची और उनके पीछे-पीछे एशिया-निवासी अरब, हिन्दी और कुछ चीनी भी पहुंच गये। एक देशमें रहनेवाले लोगोंका जिस तरह नाता बंध जाता है उसी तरह एक समुद्रके किनारे पर बसने-

वाले पुरुषार्थी लोगोंका भी नाता बना रहा है। जिस समुद्रको यूरोपियन लोगों-ने अरबी समुद्रका नाम दिया, जिसे हमारे पूर्वज पश्चिम सागर कहते थे, उसी समुद्रको ग्रीक और रोमन लोग एरिथ्रियन सी कहते थे। उस समुद्रका पंचांग प्लिनि नामके एक विद्वान्ने बनाया था। 'पेरिप्लस ऑफ् द एरिथ्रियन सी'के नाम से आज वह इतिहासवेत्ताओंमें मशहूर है। साठ या सत्तर कंडिकाके उस छोटेसे ग्रंथमें अफ्रीकाके पूर्व किनारेसे लेकर अरबस्तान, ईरान, हिन्दुस्तानके दोनों किनारे और बर्मा तकके मुख्य-मुख्य बंदरोंका जिक्र है। हमारे लोगोंने समुद्र-यात्रा का निषेध करके अपने पुरुषार्थको ही कुंठित किया। वैसा निषेध होते हुए भी जो लोग यात्रा करते रहे, उन्होंने कुछ भी लिख करके नही रखा। अब स्वराज्य-जागृतिके दिनोंमें, जितना भी हो सके, हमारी भाषामें विश्ववर्णन लिखा जाना चाहिए।

इस पश्चिमसागर या या एरिथ्रियन-सी के किनारे रहनेवाली सब जातियोंके बीच समुद्रायण संबंध स्थापित करना हमारा काम है। भौम संबंधसे समुद्र संबंध अधिक व्यापक और अधिक आत्मीय हो सकता है। क्योंकि, जमीन पर दीवारें खड़ी हो सकती हैं, समुद्र पर नहीं। एक देशमें रहनेवाले लोग वर्ण, वंश, भाषा आदि भेद खड़े कर विभक्त हो सकते हैं लेकिन, समुद्रका नाता कुछ और ही है। अफ्रीकाके दक्षिण सिरेसे आस्ट्रेलियाके दक्षिण सिरे तक, यानी केपटाउनसे आलबनी तकके हिन्दी महासागरका जो किनारा है, वह सब हमारी बंधुताका और निःस्वार्थ सेवाका क्षेत्र बन जाए, यही आदेश है वरुण भगवान्का।

ऐसा करते हम एशियावासी, अफ्रीका-निवासी और यूरोप-निवासी तीन महाप्रजाओंका महात्रिवेणी-संगम साध सकेंगे और दुनियाके इतिहासमें एक नये सात्त्विक अध्यायका प्रारंभ कर सकेंगे।

४. पश्चिम अफ्रीकासे

[श्रीकाका साहेब योरप और अफ्रीकाकी यात्रा कर रहे थे। यूरोपकी यात्रा समाप्त करके वे पश्चिम अफ्रीका गये। वहांसे जो पत्र आये थे उनमेंसे एकका कुछ हिस्सा नीचे दिया जा रहा है। —संपादक]

आक्रा (पश्चिम अफ्रीका) २३-१०-१९५२

चि० सरोज,

...कल तो आराम किया। शामको आंधी और पानीके कारण घूमने नहीं जा सका। भाई रूपचंद मजेदार आदमी हैं। चीन, जापान, आस्ट्रेलिया आदि देशोंमें बरसों रहे हैं। उनकी चेलाराम फर्म गोरे लोगोंको हरीफ जैसी लगती है।

लोगोंमें बहुत प्रिय हैं। उनकी कई शाखाएं भी हैं। मेरी सुविधा प्रेमसे और ध्यान से रखते हैं।

आज यहांकी सोशियल वेलफेयर प्रवृत्ति देखनेमें सारा दिन बिताया। बीचमें ग्यारहसे बारह तक प्रधान मंत्री (Dr. Nkruma) से मिला। कई बातें हुईं। सूडानको जितना स्वराज दिया गया है, उससे कम हम क्यों लें, यह उनकी भूमिका है। मैंने उनको भूमि-दानकी प्रवृत्तिके बारेमें विस्तृत रूपसे कहा और यह भी कहा कि वह 'जागतिक प्रवृत्ति' होनेवाली है।

सोशियल वेलफेयर प्रवृत्तिके सिलसिलेसे भी गोरे अमलदारोंसे मिला। एकसे बढ़कर एक निकले। प्रथम मिले डेप्यूटी डायरेक्टर (Peter du Soutoy) निष्कपट और रंगरूपसे भी गुलाबी आदमी है। उनके सहकारी (Russel Prosser) बड़े उत्सुक (Earnest) हैं, और अफ्रीकन लोगोंको दिलो जानसे चाहनेवाले हैं। Mass literacy (जनसाक्षरता) का काम, नवजवानोंकी मुफ्तकी मददसे, करना असंभव है, ऐसा माननेवाली सरकारको उन्होंने हरा दिया और अद्भुत काम करके बताया। यह काम अब तेजीसे बढ़ रहा है। मैं इस आदमी पर खुश हूं।

लेकिन, मेरा दिल चुराया जॉन हेमिल्टनने। उसकी ऊंचाई कितनी है, बताऊं? पूरे छह फुट और आठ इंच! मुझे सिर ऊंचा करके उनसे बातें करनी पड़ती हैं! उनका गुस्सा बाद करूं, तो आदमी निरा कुंदन है। मिलते ही 'सलाम मिस्टर कालेलकर' कह कर उन्होंने यह बता दिया कि वे हिन्दुस्तानमें रहे हैं। पठानोंके बीच पेशावरमें रहे थे। घायल हो कर देहरादूनकी फौजी अस्पतालमें बारह महीने बिताये हैं। इलाहाबादमें भी रहे हैं। आजकल (Deiinquent) बच्चोंको तालीम दे रहे हैं। बच्चे उन पर खुश हैं। मैं उनकी वह वसाहत देख आया।

अपनी अंग्रेज-जातिके गुण और दोषोंका वर्णन समान निष्कपटतासे करते हैं। यहांकी सरकारके बारेमें उतनी ही निर्भयतासे बातें कीं। लोकस्वभावके गुण-दोष और आगेकी जिम्मेदारियोंके बारेमें भी। उनकी भूमिकाके एक-दो दोष मैंने उनको बताये। बात समझते ही उन्होंने उसे स्वीकार किया। हिन्दुस्तानको चाहिए कि ऐसे आदमीका संग्रह करे। मुझसे पूछा, 'क्या हमारे घर खाना खाओगे? मेरी ख्वाहिश है कि हमारे खानदानके साथ आपका परिचय हो।' मैंने फौरन् 'हां' कह दिया। अब गोल्डकोस्टका भ्रमण पूरा करनेके बाद चार रोज यहां आकर रहूंगा, तब उनके घर खाना खानेके लिए जाऊंगा।

आज रातको खेती और Natural resources के प्रधान मि० हेफर्डके यहां खाना खानेके लिए जाऊंगा।

यहांके प्रधान मंत्रीने मुझसे भूमिदान-यज्ञ संबंधी साहित्य मांगा है। विनोबा को ही लिखूंगा। अंग्रेजीमें उल्था करके भेजना पड़ेगा।

लिखनेका तो बहुत कुछ है लेकिन समय कहांसे निकालूं ?

—काकाके सप्रेम शुभाशिष।

५. मेरी अफ्रीका-यात्रा

इस सितम्बरमें मैं यूरोपकी यात्राके लिए गया था, वहां मुझसे पूछा गया कि हमारे इंडियन काउन्सिल ऑफ् कल्चरल रिलेन्शन्स (संस्कृति-संपर्क-साधक भारतीय मंडल) की ओरसे गुडविल-मिशनके तौर पर मैत्री-स्थापनके लिए यानी मित्र-लाभके कार्यके लिए मैं पश्चिम अफ्रीका जा सकता हूं या नहीं।

दो साल पहले मैं पूर्व अफ्रीका हो आया था। दो-ढाई महीने खूब घूम कर उस प्रदेशका निरीक्षण किया, और वहांके अंग्रेज राज्यकर्ताओं, अफ्रीकन प्रजाजन और तिजारतके लिए वहां बसे हुए भारतवासियोंकी हालत भी देखी थी। यही कारण था कि मुझे इस बार पश्चिम अफ्रीकामें जा कर वहांके लोगोंको और राज्यकर्ता अंग्रेजोंको भारतके सद्भाव-सन्देश सुनानेका काम सौंपा गया।

मैं एक ही महीना दे सकता था, इसलिए मुझे गम्बिया और सियरा लीयोन जैसे दो छोटे प्रदेश छोड़ देने पड़े और गोल्डकोस्ट और नायजीरिया इन दो देशोंका ही भ्रमण करनेसे संतोष मानना पड़ा। पश्चिम अफ्रीकामें फ्रेंच लोगोंका भी राज्य है। वहांकी प्रजा और राज्य-व्यवस्था देखना कम जरूरी नही है। लेकिन, इस वक्त सिर्फ पश्चिमी ब्रिटिश आफ्रिका ही देखनेकी बात थी।

इन दोनों देशोंमें शिक्षाका प्रचार अच्छा हुआ है, और लोक-जागृति भी ठीक हुई है। भारतके स्वतंत्र होनेके कारण यहांकी जनतामें भी स्वातंत्र्य-प्राप्तिका उत्साह बढ़ गया। और इन दोनों देशोंके नेताओंने गांधीजीके मार्गका अनुसरण करनेका संकल्प किया।

पश्चिम अफ्रीकाका मामला भी कुछ अलग है। दक्षिण अफ्रीकामें और पूर्व अफ्रीकामें आबोहवा अच्छी होनेसे वहां अंग्रेज लोग जा कर बस सके। उनकी जड़ें वहांकी भूमिमें पहुंच गई हैं। पश्चिमी अफ्रीकामें ऐसा नही है। पहले यहांकी आबोहवा गोरे लोगोंके लिए इतनी प्रतिकूल थी कि उस भूमिको 'सफेद लोगोंकी श्मशानभूमि' कहा जाता था। पुर्तगाली, डच, फ्रेंच, अंग्रेज आदि लोग वहां जाते थे सही, लेकिन भली-बुरी तिजारत करके तुरंत लौटते थे। सोना, हाथीदांत और नीग्रो गुलामोंकी तिजारतसे पश्चिमके लोगोंने अच्छा लाभ उठाया। और फिर, वहां अपना राज्य भी जमाया।

अपना राज्य जमानेके बाद वहांकी जनताको शिक्षा देनेका, वहांकी आबोहवा

सुधारनेका और वहांकी भूमिसे खेती और खनिज संपत्ति बढ़ानेका गोरे लोगोंने अच्छा प्रयत्न किया है।

गोल्डकोस्ट और नायजीरिया दोनों देशोंमें कोकोकी खेती बहुत ही बढ़ गई है। इनके बीजमेंसे कोका नामका उत्कृष्ट पेय तैयार होता है और चाकलेट बनानेमें भी ये काम आते हैं। पिछले दो युद्धोंके बीचके कालमें कोकोकी मांग दुनियामें और खास कर अमेरिकामें बहुत ही बढ़ी। तबसे इन दो देशोंकी आमदनी एकदम बढ़ गई है। अब तो गोल्डकोस्टको कोकोकोष्ट कहना चाहिए। इस प्रदेशका असली नाम घाना है। यहांकी प्रजाकी जागृतिमें कोकोकी उपज भी एक महत्त्वका कारण है।

विटामिन 'ए' देनेवाला लाल पामका तेल भी इसी प्रदेशमें तैयार होता है। हिन्दुस्तानके स्वतंत्र होनेके बाद अंग्रेजोंके हाथमें जो प्रदेश बाकी रहे हैं, उनमें नायजीरिया सबसे बड़ा मुल्क कहा जा सकता है। गोल्डकोस्ट इससे कुछ छोटा है। वहांके लोग भी अंग्रेजी शिक्षा पा कर अच्छी प्रगति कर रहे हैं।

जिस तरह इन दो देशोंको नेता अच्छे मिले, उसी तरह वहां राज्य करनेवाले अफसर भी इन लोगोंके सद्भाग्यसे उदारवृत्तिके मिले हैं। नतीजा यह हुआ कि थोड़ी-सी प्रजा-जागृति होते ही उसे दबानेकी कोशिश न करते हुए राज्यकर्ताओंने प्रजाको स्वतंत्रताके कुछ अधिकार दे दिए, और इसका फल भी बहुत अच्छा हुआ। लोगोंमें असंतोष, निराशा और द्वेष बढ़नेकी जगह आत्मविश्वास और रचनात्मक बुद्धिका उदय हुआ। नेता लोग अब कॉमनवेल्थके सदस्य होनेकी महत्त्वाकांक्षा रखते हुए अपना राज्य सभालनेमें दत्तचित हैं।

मैं जहां भी गया, सब अंग्रेजोंसे मैंने एक ही बात सुनी कि हिन्दुस्तानकी हालत अलग थी। हिन्दुस्तानके पास अपनी एक पुरानी संस्कृति थी, उसका इतिहास भी बहुत पुराना है। स्वराज्य चलानेके लिए हिन्दुस्तानके पास काफी अनुभव है। हिन्दुस्तान छोड़ कर अंग्रेज चले गए, उसके पहले वहांकी सरकारके बहुतसे अमलदार देशी ही थे। इस वास्ते हिन्दुस्तानको अपना राज्य चलानेमें कोई कठिनाई नहीं थी। यहां पर ये अफ्रीकावाले अभी-अभी शिक्षा पा रहे हैं। इनके पास न तो अनुभव है, न राज्य चलानेके लिए काफी आदमी भी। ऐसी हालतमें इन्हें जो अधिकार मिले हैं, उन्हें हजम करनेमें बहुत देर लगेगी, और ये लोग तो आजसे पूर्ण स्वराज्यकी मांग कर रहे हैं।

मैं इनसे कहता कि आपने जो कुछ भी अधिकार इन्हें दिए, उसका अच्छा फल आप देख ही रहे हैं। इन लोगोंमें आपके प्रति कुछ सद्भाव जाग्रत हुआ है। आप इन्हें एक बार कह दीजिए कि सारे अधिकार आपके ही हैं, जब जी चाहे ले सकते हैं। तब ये लोग धीरे-धीरे अधिकार तो लेंगे, लेकिन आपके शिष्य बन कर रहेंगे। आपसे मदद मांगेंगे और आपके प्रति इनका सद्भाव इतना बढ़ेगा कि इनकी बदौलत

आपकी कॉमनवेल्थ बड़ी मजबूत बनेगी।

इस प्रदेशमें मलेरिया, स्लीपिंग सिकनेस आदि अनेक बीमारियां फैली हुई हैं। मलेरियाका इलाज तो कुनैन जैसी दवाइयोंसे हो सकता है, मच्छरका नाश करनेके लिए कई दवाइयां भी निकली हैं, लेकिन स्लीपिंग सिकनेस जैसे रोगोंका इलाज अभी तक पूरा हाथमें नहीं आया। टीट्सी नामकी एक मक्खीके कारण यह बीमारी फैलती है, इतना तो ध्यानमें आ गया है। इस मक्खीके कारण मनुष्यों और जानवरों में रोग फैलता है और बड़ा नुकसान होता है। जानवर इतने कम हैं कि पश्चिमी अफ्रीकामें दूध मिलना भी दुश्वार है। खेतीके लिए यंत्र ही चलाने पड़ते है। इस मक्खीके नाशका उपाय अब ढूंढ़ा जा रहा है। यह बेचारी मक्खी रोग पैदा नहीं करती, लेकिन स्वयं रोगका शिकार बन कर औरोंको वही बीमारी दे देती है।

पश्चिमी अफ्रीका अब पहले जैसा कठिन मुल्क नहीं रहा। जिस तरह पूर्व अफ्रीकामें लाखों हिन्दी लोग जा कर बसे हैं, उसी तरह पश्चिमी अफ्रीकामें हमारे लोग जा कर बस नहीं सके हैं। चन्द सिन्धी भाई जगह-जगह फैले हुए हैं सही और तिजारतके जरिए वहांके लोगों की अच्छी सेवा कर रहे हैं।

जिस तरह सिन्धी लोग पश्चिमी अफ्रीकामें तिजारत करते हैं, उसी तरह वहां पुराने जमानेसे लेबनानकी तरफके सीरियन लोग भी तिजारत करते हैं। कहते हैं कि इनका स्वभाव हमारे मारवाड़ी भाइयोंके जैसा है। इनकी तादाद यहा बहुत है।

गोल्डकोस्ट और नायजीरिया दोनों देशोंमे हम जैसे-जैसे उत्तरकी तरफ जाते हैं, वैसे-वैसे लोगोंमें इस्लामका प्रचार पाया जाता है।

अफ्रीकाका सारा उत्तरी किनारा—अलकाहिरा यानी कायरोसे टेन्जियर तक का सारा किनारा—इस्लामका क्षेत्र है। मिस्र, लीबिया, टयूनिस, अलजीरिया, मोरक्को ये सब देश इस्लामको माननेवाले हैं। ईजिप्त (मिस्र)के पश्चिममें और बाकी देशोंके दक्षिणमें सहाराकी मरुभूमि है। उसे लांघ कर इस्लाम दक्षिणकी ओर फैलता जाता है। इस्लामके कारण यहांके लोगोंमें सदाचार और धर्मनिष्ठा अच्छी पाई जाती है। तिजारतमें भी ये लोग अनुभवी हैं।

पश्चिमी अफ्रीकाके दक्षिणी किनारे पर अटलांटिक महासागरकी लहरें खेलती रहती हैं। उस दरियाई रास्तेसे आ कर गोरे लोगोंने वहां अपना राज्य जमाया। साथ-साथ ईसाई धर्मका प्रचार भी चलाया। फलत: गोल्डकोस्ट और नाइजीरिया दोनों देशोंमें उत्तरकी ओर इस्लाम और दक्षिणकी ओर क्रिश्चियनिटी, ऐसा पाया जाता है।

एक खूबीकी बात मैंने वहां पर देखी। जिस तरह हमारे देशमें केरलकी ओर पिताकी संपत्ति उसके पुत्रको न मिल कर उसकी बहनके लड़केको मिलती है, उसी तरह पश्चिमी अफ्रीकामें भी सब अधिकार लड़केके पास न जाते हुए बहनके लड़के

के पास जाते हैं। समाजशास्त्रका अध्ययन करनेवाले लोग कहते हैं कि स्त्री-स्वातंत्र्यका यह स्वाभाविक परिणाम है।

जो हो, अफ्रीकामे अब प्रजा जाग्रत हो रही है। वहांके लोग हिन्दुस्तानकी ओर सद्भावसे देख रहे हैं और हम भी अपने इस कर्तव्यको मानते हैं कि हम दुनियाभरमें स्वतत्रता, समता और खास करके बंधुताका वायुमंडल फैलाएं। जिस तरह मैं पश्चिमी अफ्रीका हो आया, उसी तरह पश्चिमी अफ्रीकाके दो लोकनेता मंत्री हिन्दुस्तानमें आये हैं। हिन्दुस्तानकी संस्कृतिका अध्ययन करके और बधुताका संदेश ले कर वे अपने देशमें चले जायेंगे। सम्राट् अशोकके बाद यह पहला ही वक्त है, जब भारतवर्ष दुनियाके सब देशोके प्रति बंधुताका संदेश भेज रहा है।

पश्चिमी अफ्रीकामें इस तरह उत्साहका वातावरण है। लेकिन, अफ्रीकाके दूसरे हिस्सोंमे हालत दिन-ब-दिन बिगड़ रही है। दक्षिण अफ्रीकामें डॉ० मलानकी नीतिके कारण असतोष फैल रहा है और वहांके अफ्रीकी लोगोंके साथ अब हमारे हिन्दी भाई भी अन्यायका प्रतिकार करनेके लिए सत्याग्रह कर रहे हैं। पूर्व अफ्रीकामें तो हिंसाका वायुमंडल पैदा हुआ है। साथ-साथ दमन-नीतिका भी प्रयोग हो रहा है। एक ही ब्रिटिश-राज्यमें इस तरह भिन्न-भिन्न नीति चलती देख कर आश्चर्य और दुःख होता है।

दक्षिणी और पूर्वी अफ्रीकाके गोरे लोग कहते हैं कि 'पश्चिमी अफ्रीकामें सरकार की उदार नीतिके कारण सारा मामला बिगड़ रहा है। अफ्रीकी लोगोंमे जहां देखें, हदसे ज्यादा महत्त्वाकांक्षा बढ़ रही है। जहां भी ब्रिटिश-राज्य हो, सारे अफ्रीकामें एक-सी नीति होती, तो यह नौबत नही आती।' उदार वृत्तिके लोग कहते हैं कि 'जो भलाई और दीर्घदर्शिता पश्चिमी अफ्रीकामें बरती जाती है, वही अगर सारे अफ्रीकामें बरती गई होती, तो कहीं भी कठिनाई पैदा नहीं होती। एक-सी नीति अच्छी है सही, लेकिन वह उदारवृत्तिकी होनी चाहिए। जब एशियाकी जनता जागृत हुई है, तब अफ्रीकाकी जनता कैसे सोई हुई रह सकती है? नये जमानेको पहचान कर पश्चिमी अफ्रीकाका रुख अगर सब जगह अख्तियार किया जाए तो अंग्रेजोंका भी भला होगा और अफ्रीकी लोगोंकी भी अच्छी प्रगति होगी।'

जो हो, हम भारतीयोंका कर्तव्य है कि हम अपने अफ्रीकाके पड़ोसियोंको हर तरहसे अपनाएं; उन्हें जैसो बन सके, मदद करते जाएं और उनके आत्मविश्वास मे उन्हें बढ़ावा दें। ऐसा करनेसे ही वे लोग बन्धुताके सिद्धांतके हामी बनेंगे और दुनियामें न्याययुक्त शांतिकी स्थापनामें मददगार होंगे।

जनवरी, १९५३

९. हिरोशिमाका संदेश

हिरोशिमा और नागासाकी इन दो जापानी शहरोंका नाश अमरीकाने अभूतपूर्व-अश्रुतपूर्व अमानुषतासे किया, वह मानों मैंने ही किया, ऐसी शर्म मैं हमेशा महसूस करता आया था। अमरीका भले गलत रास्ते चला हो, लेकिन अन्तमें हम सब मिल कर एक ही मानव-जाति हैं। इसलिए कोई भी आदमी जब कोई हीन कर्म करता है, तब उसमें मेरा भी हाथ है, ऐसा भाव मेरे दिलमें हमेशा रहा है। इस वास्ते हिरोशिमा जाते समय पाव और दिल भारी हो गये थे। अस्पष्ट रूपसे यही महसूस करता था कि किस मुंहसे मैं वहांके लोगोंसे मिलूंगा।

फिर भी, हिरोशिमा देखे बिना जापानकी भूमि न छोड़नेका अपना संकल्प तो मैंने जापानकी भूमि पर पांव रखते ही वहांके मित्रोंसे कहा था। मैंने कहा: फूजीयान पर्वत और हिरोशिमा तो खास देखने ही हैं। बाकीके स्थान चाहे देखूं या न देखूं। इनमें फुजीयामा या फुजीसान तो मैं बिना देखे ही लौट आया। मित्रोंने कहा कि ट्रेनमेंसे वह आसानीसे दिखाई देगा। मैंने ट्रेनमें उस दिशाकी ओर आखें तान कर देखा। हाथमें नक्शा रख कर हर क्षण किस कोनेमें देखनेसे हिमाच्छादित शिखर दिखाई देंगे, इसका हिसाब भी लगाया था। लेकिन बादलोंने निराश किया।

लेकिन उस निराशामें मुझे ज्यादा दिन नही रहना पड़ा। क्योंकि, दक्षिणकी ओर कुमामोतो देखने गये थे, तब वहांसे करीब ही एक आसो नामक जिन्दा ज्वालामुखी हमने देखा। इतना ही नही, किन्तु बससे यात्रा करके उसके द्रोण—crater—में आखिरके शिखर पर चढ़ कर उसके मुह पर दृष्टि डाली थी। और, उसने हमारी कुतूहलपूर्ण आंखोंको अपने धुएंका स्वाद भी चखाया था। हिमधवल फुजी भले देख न सके, लेकिन धूम्रधूसर आसो देखा, इसका संतोष मिला।

बादमें हम हिरोशिमा गये। उसके पहले हम जापानकी पुरानी राजधानियां क्योतो और नारा दोनों देख आये थे। वहांकी पुरानी संस्कृति और लकड़ीके प्रासाद और मंदिर देख आये थे। जापानी नृत्य, जापानी संगीत, जापानकी पुरानी और नई चित्रकला आदि सबका कम-ओ-बेश आस्वाद भी लिया था। इससे जापानके प्रति दिलमें काफी प्रेम और आत्मीयता पैदा हुई थी। इसीलिए, हिरोशिमा जाते समय चित्त गमगीन हुआ। हिरोशिमाके लोगोंने इस प्रलयकारी विनाशमेंसे निकले हुए ठीकरे और रोड़े इकट्ठा करके देश-विदेशके यात्रियोंको हिरोशिमा पर किए गये अत्याचारकी याददाश्तके तौर पर भेंट देनेका रिवाज शुरू किया था। हिन्दुस्तानमें मैंने ऐसे चन्द टुकड़े देखे थे। वैसे ठीकरे, ककड़ और रोड़ोंका एक विशाल विस्तार देखनेको मिलेगा, जिसके अन्दर चन्द लोग बड़ी कठिनाईमें अपनी आजीविका चलाते होंगे, इस तरहका कोई दृश्य देखनेकी उम्मीद थी। पिछले महायुद्धके साथ

जिनका बहुत ही निकट संबंध आया था, ऐसे यूरोपके तीन सबसे बड़े शहर अभी-अभी देख कर आया था—पेरिस, बर्लिन और लंदन। तीनोंके तीन प्रकारके संदेश अब भी मनमें ही हैं। अपनी नाकका भोग दे कर बचा हुआ पेरिस, अपनी आधी जनता बमोंसे तबाह होने पर भी फिरसे सिर ऊंचा करनेवाला बर्लिन और आंखों के सामने विनाशको देखते हुए भी विजयके स्वप्नमें रहनेवाला लंदन—तीनोंका दर्शन इतिहासके परायणसे भी अधिक समृद्ध था। इन ताजे संस्कारोंका सेवन करते-करते ही हिरोशिमामें पांव रखा और वहां देखा कि विनाशके चिह्न शायद ही कहीं दिखाई देते हैं। हम पुराणोंमें पढ़ते हैं कि महाभारतके युद्धके अन्तमें अठारह अक्षौहिणी सेना गारत हुई और दस-बीस लोग ही बचे। हिरोशिमाकी हालत इससे भी बदतर थी। हिरोशिमाके लाखों नागरिकोंमेंसे शायद ही सौ-दो सौ बच पाये होंगे। इस पर नौ-दस साल भी नहीं बीते, आज वही हिरोशिमा लाखों नये जापानी नागरिकोंसे फूला हुआ है।

हम स्टेशनसे बाहर आये और हमारा स्वागत शुरू हुआ। फूलोंके बड़े-बड़े गुच्छे हाथमें ले कर हमारा स्वागत करनेवाले फूल जैसे बालक और बालिकाए हमारे सामने प्रसन्नवदन खड़े हुए। नगरपिताओंने हाथमें 'माइक' ले कर अपनी भाषामें हमारा बाकायदा स्वागत किया और जुलूसके आकारमें हम समस्त नागरिकोंके संयुक्त श्राद्धके समान एक कब्रिस्तानके पास पहुंचे। हमारे यहां पुरानी पद्धतिकी जो गाड़ियां होती हैं, उनके छप्परके जैसे आकारके इस कब्रिस्तानके इर्द-गिर्द कई मकान टूटी हुई हालतमें जैसे-के-तैसे खास संरक्षित रखे गये हैं। इसलिए वायुमंडल असाधारण तौरसे गमगीन था। तीस-चालीस भिन्न-भिन्न देशोंके हम प्रतिनिधि भाषा-भेद, वंश-भेद और सांस्कृतिक भेदोंके बावजूद यहां एकहृदय हुए थे। रोमन कैथॉलिक, प्रोटेस्टेन्ट, बौद्ध, इस्लामी, हिंदू—हरएक पद्धतिकी प्रार्थना हमने की। मृतकोंकी स्मृति पर फूल चढ़ाये और इस संहारके स्मारकके तौर पर बनाये हुए एक नये बौद्धमंदिरमें हम जा पहुंचे। इसमें भगवान् बुद्धकी मूर्ति काफी बड़ी है। चेहरे पर विषादयुक्त शांति है। वहां पहुंचते ही मनमें अनेक ऊर्मियोंका तूफान शुरू हुआ। किसीके भी साथ बातें करनेकी इच्छा न हुई। मनुष्यने इतना बड़ा संहार किया और फिर भी उससे बिना कुछ नसीहत लिये उसी स्थान पर उसी तरहकी नई नगरी मनुष्यने उत्पन्न की। वही सिनेमा-नाट्यगृह, वही नटियां, वही लिपस्टिक और वही अविरत उद्योग देख कर मनमें संतोष नहीं हुआ। मनमें एक ऐसा विचार आया कि अनुभवमें सयाना बन कर आदमी अगर नया प्रस्थान करे और वही गलतियां उसी ढंगसे दुहराता जाय तो पशु-पक्षी और मनुष्यके बीच क्या फर्क है? लेकिन, यह खयाल अधिक समय तक नहीं रहा। हिरोशिमाकी पूरी आबादी साफ हो गई। उसी स्थान पर अब नये लोग आ कर बसे हैं और ऐसे ढंगसे अपनी जीवनयात्रा चलाते हैं, मानो कुछ हुआ ही नहीं। क्या इन्हें अपने सगे-संबंधी,

इष्ट-मित्र और हितकर्ताओंका विरह सालता न होगा ? लेकिन जापानकी जनता संयमी है। उसने एक तरहसे चित्तविजय हासिल की है। मनमें ज्वालामुखी सुलगता हो, तो भी चेहरे पर शांति और प्रसन्नता रखनेकी कलामें जापानके छोटे बच्चे भी प्रवीण है। इनके बीच गमगीन होनेका मुझे कौन-सा अधिकार है, यह खयाल मनमें पैदा हुआ और मैं हिरोशिमाके लोगोंके बीच हिलमिल सका।

वहांके नगरपिताओंने हमारे सम्मानमें खाना दिया था। एक जगह पर हमें नृत्य भी दिखाया गया। हिरोशिमाकी यूनिवर्सिटीके अध्यक्षने डॉ० कालिदास नाग को और मुझको रवीन्द्रनाथ ठाकुर और गांधीजी पर व्याख्यान देनेके लिए निमंत्रित किया था। वहां खास कुछ अध्यापक और कुछ विद्यार्थियोंको ही बुलाया गया था। अध्यक्षके कमरेमें किसी मशहूर मूर्त्तिकारकी एक युगलमूर्ति थी। यौवन तक पहुंची हुई एक बाला एक कुमारके सामने निर्व्याज भावसे खड़ी है और वह कुमार भी दुनियाके छल-प्रपंचसे अनजान होनेके कारण शुद्ध प्रेमकी नजरसे उस बालाको निहारता है। ऐसा यह एक मुग्ध दृश्य था। शृंगार कहें, तो शृंगार, वात्सल्य कहें, तो वात्सल्य, दोनोंको मुग्धाभावमें डुबो कर युगलमूर्ति बनाई गई थी। मेरी नजर उस मूर्ति परसे किसी तरहसे हटनेके लिए राजी न हुई।

वहां हमने क्या-क्या कहा, उसका बयान और कहीं दूंगा। लेकिन, हिरोशिमा के नगरपिताओने जब मेरे पास ही हिरोशिमाके लिए सन्देश मांगा, तब जो मैंने कहा, वही यहां लिखना चाहता हूं। मैने कहा कि हिरोशिमाके लिए भारतवर्षका संदेश है, वह तो मैं बादमें बताऊंगा। लेकिन हिरोशिमाने जो संदेश मुझे दिया, वह मेरी रायमें उतना ही महत्त्वका है। वही आपके सामने पेश करता हूं।

मानव-जातिने जिसकी कल्पना भी नहीं की थी, ऐसा कल्पांत एक अमरीकी बमने यहां किया। और, मानव-जातिकी नश्वरता और क्षुद्रता सारी दुनियाको बताई। इस बात पर नौ-दस साल भी नही बीते होंगे कि आपने यहां एक जीती-जागती नई नगरीकी स्थापना की और उसके द्वारा संहारका तिरस्कार किया, यह मेरी रायमें एक बहुत बड़ी बात है। संहार चाहे उतना भीषण क्यों न हो, उसका तड़िद्घोष चाहे दसों दिशाओंको भी फाड़ डाले, फिर भी उसका अन्त है और उसकी जगह पर प्रसन्नवदनसे गूंजनेवाली और कल्लोल करनेवाली चैतन्यमयी शान्तिकी स्थापना हो सकती है। यह बताता है कि मृत्युसे भी जीवन श्रेष्ठ है। सर्व-संहारसे भी सर्जन श्रेष्ठ है और अभावमे आत्मा ही परम सत्य है। निर्वाण अभावात्मक नही, भावात्मक है। निर्वाण विनाशका पर्याय नही है, बल्कि सत्ता और सत्त्वका सर्वोच्च रूप है। उसका साक्षात्कार मैं यहां कर सका। यही हिरोशिमाका संदेश मैं भारतके लोगोंको सुनाऊंगा और उससे जो आस्तिकता मेरे दिलमें समृद्ध हुई है, उसके द्वारा भारतका संदेश मैं जापानको सुनाऊंगा।

जब एशिया पर अंधेरा छाया हुआ था और यूरोपके पांवोंके तले एशिया दास

बन कर लौटता था, तब ऐसे निराशाके समय जापानने अपनी अस्मिताका तेज प्रकट किया और सारे एशियाको आशा दिलाई कि पूर्वमें सूर्योदय हो सकता है। तबसे जापानने उत्तरोत्तर उत्कर्ष ही साधा है। यूरोपसे उसकी तमाम विद्याए सीख कर उसके अन्दर खुद उत्कर्षके शिखर तक पहुंचा। और चाहे विज्ञान हो या अर्थशास्त्र, यंत्रविद्याका कौशल हो या संगठित जीवनकी महत्ता, हरएक क्षेत्रमें जापानने मानव-जातिको आश्चर्यचकित बनानेवाला उत्कर्ष कर दिखाया। लेकिन, ईश्वरकी अतर्क्य रचनाके अनुसार उस पश्चिमकी संस्कृतिकी विकलता भी आपने देख ली। अब उस अनुभवकी पूर्णताको पहुंचनेके बाद आप नये प्रस्थानके लिए योग्य बने हैं। मनुष्य महज शरीर नहीं है, किन्तु उसमें बसनेवाली आत्मा है। उसकी शक्ति अदम्य है, यह पहचान कर उसके अंदर नये-नये प्रयोग करके न केवल एशियाका बल्कि सारी दुनिया नेतृत्व करनेका भाग्य आप लोगोंका है। You are a nation of destiny—आपका देश भाग्यदेवीका लाड़ला है। अब नये रास्तेसे चल सकते हैं और जिस प्रकार आपने पश्चिमका अनुकरण करके एक दफा उस पर मात कर दिखाया, उसी प्रकार अब पूर्वकी आत्मिक शक्ति प्रकट करके पश्चिमको नई दिशा क्यों न दें?

आज सुबह यहांके कुछ युवकोंने मुझसे संदेश मांगा था। मैंने उनको लिख कर दिया : Pray, do not belong to the past. Your energies are intended to build brilliant future—(भूतकालके अंकित न बनें। आपको जो अक्षुण्ण शक्ति मिली है, वह उज्ज्वलतर भविष्यकी रचना करनेके लिए मिली है, इस बात-को मत भूलिएगा। भारत आपसे इससे दूसरी आशा नहीं रखता)।[1]

जुलाई, १९५४ ई०

७. सुप्रभातम्

ढाई-तीन महीनेका सफर करके सही सलामत भारत लौटा हूं। मेरी अनुपस्थितिमें जिन्होंने नियमित-रूपसे 'मंगलप्रभात' को चलाया, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करना मेरा प्रथम काम है। उसके बाद ही 'मंगलप्रभात' के पाठकोंको 'सुप्रभातम्' कह सकता हूं। अंग्रेजीमें Good morning, good Night बोलनेका रिवाज है। इसका स्वदेशी अनुवाद किसीने मेरे पास मांगा। तब मैंने 'सुप्रभातम्' और 'सुनिशम्' जैसे दो उद्गारवाची संस्कृत-अव्यय बना कर दिये थे। संस्कृत इसलिए बनाये कि भारतमें हर जगह पर हर भाषामें आसानीसे चल सकते हैं।

१. गुजरातीसे अनूदित।

यूं देखा जाय, तो सुप्रभातम् मेरी ईजाद नहीं है। संस्कृत-साहित्यमें मैंने उसे देखा है।)

मिस्र (ईजिप्त), इटली, जर्मनी, बेल्जियम, ब्रिटेन, जमैका, त्रिनिदाद, ब्रिटिश गियाना, डच गियाना (सूरीनाम) और युनाइटेड स्टेट्स (अमेरिका) इतने देशोंका सफर करके विविध और उत्कट अनुभव और प्रेमकी समृद्धि ले कर वापस लौट सका, यह सचमुच भाग्य-विधाताकी असीम कृपा है। पुरानी दुनिया और नई दुनियाके तरह-तरहके लोग, चित्र-विचित्र इतिहास, अजीबोगरीब रस्म-रिवाज और मैं समझ न सकूं, ऐसी बोलियां। उन सबके बीच मैंने एक-सा मानव-हृदय पाया और अनुभवमूलक विश्वास दृढ़ हुआ कि दुनियाकी विविधता आंतरिक एकताको खुशबूदार और रोचक बनानेके लिए ही है।

जहां जाता हूं, वहांके लोगोंके साथ हृदयका ऐक्य अनुभव करता हूं, उनके सुख-दुःख मेरे ही सुख-दुःख बनते हैं, उनकी महत्त्वाकांक्षाओंके साथ मेरा भी हृदय फूल उठता है, उनकी कठिनाइयां और परेशानियां देख कर मैं भी चिंतित और अस्वस्थ हो जाता हूं और इसीलिए तटस्थभावसे नहीं, किन्तु आत्मीय भावसे हर पहलूकी खूबी समझ कर उनकी मीमांसा भी अपने हृदयमें कर सकता हूं। यह तो मैं परमात्माकी सबसे बड़ी नियामत मानता हूं।

ईजिप्तमें नवजीवनका संचार हो रहा है और अरब-जाति अपना विशाल संगठन करके अपनी स्वतन्त्रता अबाधित रखनेकी तरह-तरहकी कोशिशें कर रही है।

इटलीकी राजधानी रोम तो सब तरहकी पश्चिमी संस्कृतियोंका एक समय का मूल स्रोत और आज उन सबका मुरब्बा है। मध्यकालीन रोमन-साम्राज्य और ईसाई जगद्गुरु पोपका धर्म-साम्राज्य इसी शहरमें विकसित हुआ। स्थापत्य, मूर्ति-विधान, संगीत, चित्रकला, साहित्य और संस्कृतिके हरएक पहलूका संवर्धन यहां होता आया है। इसी शहरमें आज भारतकी संस्कृतिका अध्ययन भी निष्ठा-भक्तिसे चल रहा है।

जर्मनी तो यूरोपका एक महाराष्ट्र ही है। इस प्रदेशने शायद कभी दीर्घ शान्ति का अनुभव नहीं किया है। मनुष्यका प्राण एक भयंकर जातिको कैसे अस्वस्थ कर सकता है, उसका जर्मनी एक उत्तम उदाहरण है।

बेल्जियम है तो छोटा-सा देश, लेकिन उसका वैभव कम नहीं है। मेरे जैसे को तो बेल्जियमका नाम सुनते ही अफ्रीकाका कांगो देश और वहा पर बेल्जियम-के राजा लियोपोल्डके हस्तकोंने जो अमानुषी व्यवहार किया, उसीका स्मरण होता है। बेल्जियमके बड़े शहर ब्रुसेल्समें हमने अन्तराष्ट्रीय नुमाइश और प्रदर्शनी देखी, जिसका नमूना शायद ही दुनियामें दूसरा हो सके। रशिया और अमरीका इन दोनों प्रमुख राष्ट्रोंने अपनी संस्कृति, अपनी प्रगति और अपना बुद्धि-वैभव करोड़ों रुपये

खर्च करके यहां दुनियाके सामने धरा था। और, दोनोंके बीच चलती होड़को देख कर दुनिया चकित हुई थी।

जिन्होंने अंग्रेजी-साहित्य पढ़ा है और ब्रिटिश राज्यकालका अनुभव किया है, उनके लिए विलायत तो चिर-परिचित भूमि है। वहां पर चंद मित्रोंसे मिलना था। लन्दनमें एक बड़े दरियाई साम्राज्यका अस्त और अभिनव कॉमनवेल्थका उदय देखने को मिलता है। लेकिन, यह परिवर्तन अभी तक पूरा-पूरा स्पष्ट रूप धारण नहीं कर सका।

मैंने आजतक भारतके बाहर-अनेक देशोंका दो-दो दफे सफर किया है। सिलोन (लंका, ब्रह्मदेश, जापान, ईजिप्त, पूर्व-अफ्रीका, जर्मनी, ब्रिटेन, इन देशोंमें दो-दो दफे गया हूं। चीन, थाईलैण्ड, कम्बोडिया भी देख लिए। लेकिन, आजतक पश्चिम गोलार्द्धमें प्रवेश नहीं किया था, सो इस बार किया। इस देशके आदिम निवासी रेड इण्डियन, कॅरिब, आरावाक आदि जातियोंकी बात तो अब सोचने लायक नही रही। लेकिन, इस नई दुनियामें बहुत-से यूरोपवासी, थोड़े अफ्रीकावासी और कुछ एशिया निवासी जा कर बसे हैं। उनके नये-नये जीवन-प्रयोग देखनेका मौका मिल सका। कुदरतकी समृद्धिसे मनुष्य कितना लाभ उठा सकता है, यह देखनेके लिए अमरीका ही जाना पड़ता है। कायाकल्प करनेसे कहते हैं, बूढ़ा आदमी जवान बनता है तो एक कवि-कल्पना ही मालूम होती है। लेकिन स्थानान्तर करनेसे प्राचीन और अनुभव-वृद्ध जातियां भी कैसे जवान बन सकती हैं और अनुभवके अभावमें कैसी भयानक भूलें भी कर सकती हैं यह देखना हो तो अमरीकामें ही ढूंढ़ना होगा।

न्यूयॉर्क जाते ही वहांके पचास-पचास, सौ-सौ मंजिलोंके गगनचुम्बी मकान देखनेको मिले। देखते ही अनुभव हुआ कि मानवप्राणी प्रवालकीटकके जैसा एक तुच्छ कीट ही है।

प्रवालके कीट होते हैं बहुत छोटे, लेकिन समुद्रकी तलहटीसे प्रवालके चूनेके अपने वृक्षके जैसे मकान हजारों फुट बांधते-बांधते समुद्रकी सतह तक ले आते हैं, जिनके, आगे जा कर बड़े टापू बन जाते हैं। उनके इन घरोंका विराट् विस्तार देख कर उन कीटोंके आकारकी तुच्छता पूरी-पूरी प्रकट होती है।

पृथ्वी-पर्यटनका इतना अनुभव लेनेके बाद ही मैं वेस्टइंडीज और कॅरेबियन प्रदेश में जा सका, जहांका वंश-समन्वयका प्रयोग अगर बुद्धिपूर्वक हुआ, तो दुनियाका चकित करनेकी गंजाइश उसमें है। उस प्रदेशमें एक मास व्यतीत करके मैं अमरीका लौटा और वहां काले नीग्रो अमरीकन और योरपसे आए हुए गोरे अमरीकन दोनों के सहजीवनसे उत्पन्न होनेवाले नये-नये सवालोंको मैं बिल्कुल नजदीकसे देख सका और नीग्रो अमरीकनोंके कई समर्थ नेताओंसे भी मिल सका।

वहां पर जागतिक परिस्थितिका और मनुष्य-जातिने अपने दोषोंके कारण पैदा किये हुए यक्ष-प्रश्नोंकी चर्चा भी अनेक पुरुषोंसे कर सका। इस अनुभवके बल

पर भारतके अनेकानेक महत्त्वके सवाल हल करनेकी व्यापक दृष्टि खुल गई, यही सबसे महत्त्वका लाभ मानता हूं।

२ सितम्बर, १९५८ ई०

८. घाना देश क्या है?

जिस कॉमनवेल्थ परिवारके हम एक सदस्य हैं उसमें अभी तारीख ५-६ मार्चको एक नये सदस्यका प्रवेश हुआ जिसका स्वागत मैंने 'मंगल प्रभात'[1] के द्वारा किया ही है। 'इंडिया' का जिस तरह हमने 'भारत' किया वैसे ही गोल्ड-कोस्टका इन लोगोंने नाम बदल कर 'घाना' बना दिया। गोल्डकोस्ट कोई अफ्रीकी नाम नहीं था, वहांके लोग उस नामके प्रति कोई आदर या उत्साह भी नहीं रख सकते थे। जब घाना एक समृद्धिशाली साम्राज्य था, उसने आसपासके प्रदेशमें संस्कृति और समृद्धि फैलानेका काम कमसे कम एक हजार बरस तक किया था।

इस घाना साम्राज्यकी राजधानी घाना या घनाटा नामकी नगरी थी। बादमें उसका नाम हुआ वलाटा।

अंग्रेज लोगोंके साहित्यमें, और बोलनेमें, भी कभी-कभी टिम्बक्टू शहरका नाम आता है। टिम्बक्टू शहर सहारा मरु प्रदेशके किनारे पर और इस वलाटाके पास है। वहां पर प्राचीन कालमें एक विश्वविद्यालय था। घानाकी स्थापना सन् ३०० ई०के करीब हुई। यहांका राजकुटुम्ब कभी बरबर तो कभी नीग्रो वंशका था। दोनों जातियां साथ-साथ रहती थीं। आजकल अंग्रेजी जाननेवाले लोग, अफ्रीकाके सब लोगोंको और अफ्रीकासे अमरीका जा कर बसे हुए लोगोंको नीग्रो कहते हैं जैसे हम अफ्रीकाके सब लोगोंको हब्शी कहते थे। हालांकि हब्शी लोग तो ईजिप्ट या मिस्र देशके सुदूर दक्षिणमें सिर्फ एथियोपियामें ही रहते हैं। एथियोपियाको आजकल अबीसिनिया भी कहते हैं। यह एक स्वतंत्र राज्य है और वहांका बादशाह ईसाई है।

असलमें नीग्रो नाम नाइगर नदी परसे आया है। यह नाइगर नदी पश्चिमी अफ्रीकामें बहती हुई नाइजेरियामें प्रवेश करती है और दक्षिणकी ओर मुड़ कर अटलांटिक महासागरसे मिलती है। घाना साम्राज्यकी खास नदी तो शायद व्होल्टा ही है। जिसका उगम दो शाखाओंमें हुआ है—सफेद व्होल्टा और काली व्होल्टा। घाना नगरीके बाद मेल्ले नगरी राजधानी हुई और उसके बाद नाइगरके किनारे कीगाओ नगरी राजधानी हुई। घाना, आशान्टी और फान्टे तीनोंका

१. लेखक द्वारा संपादित और गांधी हिन्दुस्तानी साहित्य सभा, राजघाट, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित पत्रिका।

इतिहास मिल करके गोल्डकोस्टका इतिहास होता है।

इस घाना नामसे पश्चिमी अफ्रीकाके, सब अफ्रीकी जातियोंकी स्वातंत्र्य-प्रियता जाग्रत होती है। और इस नाममें इस सारे प्रदेशको एक करनेकी मंत्र जैसी शक्ति भी है। इस घाना परसे ही गोरोंका चलाया हुआ सुवर्णके लिए गिनी शब्द आया है। इस राज्यके दक्षिणमें जो समुद्र है, उसे आज भी गल्फ आफ गिनी कहते हैं। इसी प्रदेशसे जो सोना यूरोपमें जाता था, उसके सिक्केको भी अंग्रेज लोग गिनी कहने लगे। आज हमारे देशमें भी हम गिनी गोल्डको पहचानते हैं।

घाना साम्राज्यकी संस्कृति अपने जमानेमें यूरोपकी संस्कृतिसे कुछ उच्चतर थी। उन्होंने अच्छी-अच्छी इमारतें बांधी थी। न्यायका राज था। साहित्यमें कविता और इतिहास ग्रन्थ थे। साहित्य अक्सर अरबी भाषाका था। जिसमें कृषि, वैद्यक और विज्ञानकी किताबें भी पाई जाती थी। टिम्बक्टूके विश्वविद्यालयमें १००० विद्यार्थी पढ़ते थे और स्पेनसे ले कर ईजिप्ट तक सांस्कृतिक सम्बन्ध रखते थे।

आखिरकार पुर्तगाली लोगोंने और मोरक्कोके राजाने इस साम्राज्यका नाश किया। आज पश्चिमी सस्कृतिका केन्द्र है आचीमोटा जहां गोल्डकोस्टके करीब-करीब सबके सब नेता तैयार हुए हैं। आचीमोटामें मैं एक ही दिन रह सका।

जिन लोगोंको गुलामीमें दिन काटने पड़े, तरह-तरहके कष्ट और अपमान सहन करने पड़े उनके लिए अपना आत्मविश्वास फिरसे प्राप्त करनेके लिए प्राचीन गौरवकी स्मृति बहुत काम आती है। यह स्मृति सिर्फ स्वाभिमानको ही नहीं बढ़ाती, करीब-करीब मरे हुए दिलमें नया प्राण फूंकनेकी मन्त्र-शक्ति उसमें होती है और बिखरे हुए दलोंको एकत्र करनेकी कीमिया भी उसमें होती है। पश्चिमी अफ्रीकाके बाशिंदोंके लिए घानाके गौरवकी स्मृति कमसे कम एक-दो पुश्तके लिए जरूर प्रेरणा देगी और बादमें यहांकी प्रजा ऐसा कुछ पुरुषार्थ करके दिखायेगी कि फिर वह घानाके अपने नये गौरवसे पुराने गौरवको देखते-देखते फीका कर देगी। पुराना घाना साम्राज्य था। आइन्दाका घाना लोकराज्य होगा और हम भगवानसे प्रार्थना करें कि यह उस युगकी शान्तिकी और मानवताकी मांगको पूर्ण करनेमें सहायक बनें।

१२ मार्च, १९५७,

९. योरप-यात्राका मनन

एक तरुण मित्र अभी योरपकी यात्रा पूरी करके भारत लौट रहे हैं। उनके खतमेंसे चंद दिलचस्प बातें पाठकोंकी जानकारीके लिए दी जाती हैं। पत्र-लेखक-

को ख्वाबमें भी खयाल नहीं होगा कि उनके मंतव्यको इस तरह प्रकाशित किया जाएगा।

"आप जैसोंकी अनुभवी दृष्टि मेरे पास होती, तो जो देखा, उसे अधिक अच्छी तरहसे समझ सकता। आप लिखते हैं कि यहांके गिरजाघर और बड़े-बड़े मकान निरी जड़ वस्तुएं नहीं हैं। उनके पीछे मानव-जातिका पुरुषार्थ, उसके हृदयकी विशालता और उसकी उच्च आकांक्षाएं भरी हुई हैं। मैं तो यह कुछ नहीं देख सका। मैं तो इन मकानोंमें मनुष्यकी शोषणवृत्ति और आत्मश्लाघा (आत्मस्तुति) ही देख सका। बार-बार इन चीजोंको देखा, हर दफे यही भावनाएं मनमें उठीं।

"स्कैंडिनेवियाके देश देख कर तुरन्त वापस लौटना चाहता था। लेकिन, सन् १९२३ ई० तक लक्जम्बर्गमें अन्तर्राष्ट्रीय खदान मजदूर फेडरेशनकी कॉन्फरेन्स थी, उसके लिए रुक गया।

"योरपमें कुल चार महीने मैं रहा। इंगलैंड, स्कॉटलैंड, नॉर्वे, स्वीडन, डेन-मार्क, जर्मनी, स्विट्जरलैंड, आस्ट्रिया, इटली, फ्रान्स, लक्जेम्बर्ग, बेल्जियम और हॉलैंड इस तरह ग्यारह देश देखे। इनमें भी इंगलैंड और स्विट्जरलैंडमे काफी रहा। नॉर्वे, स्वीडन और स्विट्जरलैंड ये तीन देश मुझे विशेष अच्छे लगे। नॉर्वे, स्वीडन और डेनमार्ककी Social Services (सामाजिक सेवा-व्यवस्था) अच्छी है। वहांकी जनता संतोषी और सुखी दीख पड़ी। जर्मनीकी प्रजा बड़ी मेहनती और गंभीर प्रकृतिकी है। बाकी फ्रांस, वेल्जियम, हालैंड आदि देशोंकी जनता बड़ी विलासी है। यहांका जीवन भी महंगा है। अनुपातमें नॉर्वे, स्वीडन, डेनमार्कका जीवन सस्ता है। सामाजिक असमानता कम है। अत्यन्त गरीब और अत्यन्त धनी देखनेको नहीं मिलते। आम प्रजा सुखी भी है और स्वच्छ भी।

"जब-जब कला और स्थापत्यके नमूने देखता था, तब-तब आप बहुत याद आते थे। मेरी रायमें आप सरीखे लोगोंको योरप एक दफे देखना ही चाहिए। ऊपर-ऊपरकी बातें देखनेसे यहांकी कई चीजें अच्छी नहीं लगती हैं। लेकिन, गहरे उतर कर देखें, तो यहांसे सबक लेने लायक चीजें बहुत हैं। हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे देशके कई लोग यहांकी शराबकी, तम्बाकूकी और Sexual Promiscuity (व्यभिचार) की बातें देख कर झट अपना अभिप्राय बना लेते हैं। और क्या कहूं, चंद लोग इसी चीजको देखनेके लिए और उसका मजा चखनेके लिए यहां आते हैं। हमारे देशके रूढ़िग्रस्त विचारके लोग जब यहां इन चीजोंको देखते हैं, तब इन सब बातों पर मुंहसे गालियां देते हैं और मनमें इन्हीं पर लट्टू होते हैं।

"यहांके लोगोंकी दो चीजें मुझे बहुत अच्छी लगीं। प्रामाणिकता तो इन लोगोंके खूनमें और हड्डीमें घुस गई है—यह जब देखता हूं, तब मेरा मन कहता है कि जिस तरह अनहद समृद्धि देशके नैतिक पतनका कारण बनती है, उसी तरह अतिशय गरीबी भी देशको नैतिक दृष्टिसे गिराती है। मैं पहलेसे इस चीजको

मानता तो था, लेकिन यहां आनेके बाद मेरा विचार दृढ़ हुआ।•

"आप ऐसा न समझें कि मैं विलास और अतिशय समृद्धिका पक्षपाती हूं। मुझे इतना ही कहना है कि हमारे देशमें आजकी हालतमें हमें इस विचारका प्रचार नहीं करना चाहिए कि समृद्धिसे अवश्यमेव नैतिक पतन होता है। हमें अपने देशमें समृद्धि और सम्पत्ति बढ़ानी चाहिए। लेकिन, साथ-साथ इसकी भी सावधानी रखनी चाहिए कि वह संपत्ति और समृद्धि सबको समान रूपसे मिले।

यंत्रोंको किस हदतक स्वीकार करना चाहिए, इसका भी स्वतंत्र अध्ययन होना चाहिए। इसके लिए आप जैसे विचारशील गांधीवादियोंको योरप-अमरीकाकी यात्रा करनी चाहिए। खास करके स्केन्डिनेविया और स्विट्जरलैंडकी।

"दूसरी जो चीज मुझे इन यूरोपियन देशोंमें बहुत भायी, वह है इन लोगोंका कौटुंबिक जीवन। हमारे यहां चन्द लोग मानते हैं कि योरपमें गृहजीवन जैसी कोई चीज है ही नहीं। जब कभी कोई कहता था कि In Europe everybody is busy with everybody else's wife, तब मैं यहां आनेके पहले भी उस चीजको नहीं मानता था। लेकिन, यहां आनेके बाद पूरा-पूरा सबूत मिल गया कि यहांके लोग हमसे भी अधिक अपनी पत्नी और बच्चोंके प्रति ममता रखते हैं। और पति-पत्नी दोनों पूर्ण रूपसे स्वतंत्र होनेके कारण उनका यह दाम्पत्य प्रेम खूब ही उमदा दीख पड़ता है। मैं यह नहीं कहना चाहता कि यहां पर गंदगी बिलकुल है ही नहीं। लेकिन, यहां और देशोंकी अपेक्षा दाम्पत्य-प्रेमकी भावना तनिक भी कम नहीं है।

"आवश्यकता पड़ने पर लग्न-विच्छेदकी प्रथाका मैं पक्षपाती हूं। मैं मानता हूं कि अगर पति-पत्नीकी न बने, तो उन्हें विवाह-संबंधका अन्त करनेका अधिकार होना चाहिए। ऐसा रहने पर ही देशकी नैतिक भावनाकी पूरी नाप मिल सकती है। पूरी-पूरी इजाजत (छुट्टी) होते हुए भी जिस देशमें कम-से-कम विवाह-विच्छेद होते हैं, उस देशकी नैतिक भावनाकी मैं इज्जत कर सकता हूं।

"यहां एक तीसरा विचार भी मेरे मनमें बहुत कुछ जग उठा है। और, वह है संतति-नियमनका। मैं मानता हूं कि हमारे देशमें इस प्रश्नका हल किसी-न-किसी दिन करना ही पड़ेगा। ब्रह्मचर्यके द्वारा या कृत्रिम साधनोंके द्वारा प्रजोत्पत्तिका नियमन करना ही पड़ेगा। मुझे लगता है कि बापूजीके अनुयायियोंकी ओरसे इसका भी कुछ स्पष्ट मार्ग-दर्शन होना चाहिए। Aesthetically I am very much against contraceptives, but then the national problem can not be left to some people's likes and dislikes या तो safe periods के बारेमें गहरा संशोधन करके लोगोंमें उसका प्रचार करना चाहिए या contraceptivesके बारेमें फिरसे सोचना चाहिए।

"मेरी इस सारी यात्राके दरम्यान मेरी नजरके सामने हमारे देशकी दरिद्रता और उसका नैतिक अधःपतन ही रहे हैं। देशका राजनीतिक वायुमंडल बिलकुल

बिगड़ गया है। कांग्रेसके लिए मनमें अब कुछ भी श्रद्धा नहीं रही, लेकिन दूसरा भी कोई सहारा नहीं मिलता। ऐसी स्थितिमें अपने जीवन-सिद्धांत और सामान्य प्रजा-की सेवा इन दोनोंको दृढ़तामें पकड़ कर रहें, तो खैरियत है।

"नियमित वासरी (डायरी) लिखनेकी, वर्जिश करनेकी और नियमित सूत कातनेकी आदत टूट गई है, इसका मुझे बुरा लगता है। फिरसे प्रयत्न करना है। मनमें खयाल आता है कि किसी आश्रममें या मिलिटरी कैम्पमें जा कर रहूं, तो नियमितता आ जायेगी।"

० ० ० ०

ऊपर लिखी हुई सब बातें सोचने लायक हैं। सैंकड़ों बरसों तक हम दुनियासे अलिप्त रहे। दुनियाका असर हम पर होता रहा, किन्तु हमने दुनियाको पहचानने की कोई खास कोशिश नहीं की। परतंत्रताके कारण हमारा जीवन भी परदानशीन के जैसा था। अब हम खुली दुनियामें अपना स्थान पा चुके हैं। अब हमारे नव-युवकोंको, दुनियाको, उसकी हालतको और उसके भविष्यको समझ लेना चाहिए। और, आजके युगधर्मकी कसौटी पर हमारी बढ़ती हुई संस्कृतिके आदर्शोंको कस कर देखना चाहिए। संस्कृति एक बहती गंगा है। वह अपनी गंगोत्रीका ध्यान करे जरूर। लेकिन, उसे न वापस जाना है, न ठहर कर, रुक कर तालाब या सरोवर बनना है। उसे तो अनेक नदियोंके साथ सागर तक पहुंचना है और पहुंचनेके बाद भी बहते ही रहना है।

दुनियामें बड़े-बड़े गिरजाघर, मंदिर, मस्जिद, मकबरे, म्यूजियम, पिरामिड्स आदि स्थापत्यके अद्भुत नमूने पाये जाते हैं। इनके बनानेवाले राजा, पोप या धनिक लोगोंके उद्देश्यकी या उनके जीवनकी क्षुद्रताकी ओर हमें नहीं देखना है। जिन कल्पकोंने इन स्थापत्य-कृतियोंकी कल्पना की, जिन कारीगरोंने इनको रूप दिया, और जिन असंख्य आंखोंने इन चीजोंकी कदर की, उनकी सहृदयता उनकी उत्तुंग भावना और उनके विभूतियोगका भी खयाल करना है।

१०. चीनका पत्र—१

[पू० काका साहेब तारीख १७ अगस्त, १९५७ को जापानका दूसरा दौरा पूरा करके चीन गये। चीनकी अपनी यात्रा पूरी करके वे दो-तीन दिनके लिए बैंकॉक जा कर तारीख २० सितम्बरको भारत वापस पहुंचे। —संपादक]

केण्टन, २३-८-१९५७

चि०...

कल दोपहरको केण्टन पहुंचे। रास्तेमें हांगकांगकी अंग्रेजी सरहद पार करके चीनी प्रदेशमें प्रवेश करनेकी विधि भी पूरी की।

यहां एक आलीशान होटलकी दसवीं मंजिल पर ठहरे हैं। यहांसे केण्टनकी नदी दूर तक दिखाई देती है। उसका नाम है मोती (Perl) नदी। चीनीमें उसे चूंच्यां (मोती नदी) कहते हैं।

हम नहा-धो कर नये-ताजे बन कर घूमने निकले। एक सुन्दर बगीचेमें काव्य-मय पुलोंके और दरख्तोंके बीच एक तालाब है। उसके किनारे मेंहदीके झाड़ोंके साथ weeping willows की बड़ी कतार है। चीनमें और जापानमे ये पेड़ बहुत लोकप्रिय हैं, ऐसा लगा। हम गये थे एक बड़ा Swimming Pool (तैरनेका तालाब) देखने। उसका पानी रोज बदलते हैं। वहां चार तालाब थे। सबसे बड़े तालाबमें स्पर्द्धाएं हुआ करती हैं। उसके दो तरफ स्टेडियमकी तरह लोगोंके बैठने-के 'घाट' थे। हम घरसे स्नान करके निकले थे, फिर भी तैरनेकी तीव्र इच्छा सारे शरीरमें दौड़ने लगी। किंतु उसको रोकना ही ठीक समझा।

चीनके अन्य स्थानोंकी तुलनामे जाड़ोंके दिनोंमें केण्टन ज्यादा गरम रहता है। इसलिए, आसपासके अनेक शहरोंके शौकीन लोग जाड़ोंमें यहां उमड़ पड़ते हैं। उन दिनों तैरनेकी स्पर्द्धाएं हुआ करती हैं।

मोटरमें बैठ कर हम पहाड़की चोटी पर पहुंचे। वहां अनेक मंजिलोंका एक संग्रहालय है और सन्-यत्-सेन मेमोरियल कॉलम। उस ऊंचे स्तम्भके नीचे सन्-सत्-सेन हॉल है। सन्-सत्-सेन चीन देशके गाधी थे। उनका जन्म और शिक्षण इसी प्रान्तमें हुआ।

आज सारी सुबह बहुत-कुछ देखा। एक प्रसिद्ध बौद्ध पगोडा, जिसे Flower Pagoda कहते हैं, देखा। वह नौ मंजिला ऊंचा है। उसके नीचे तीन बुद्ध हैं। बीच-में शाक्यमुनि, एक तरफ अमिताभ, तीसरेका नाम नही मिला। आसपास भक्तोंकी और भिक्षुओंकी दस-दस मूर्तियां थीं। हरएक मूर्त्तिमें उत्तम व्यक्तित्व था। उसके बाद गये सन्-सन्-सेन हॉल देखने। पांच हजार लोग बैठ सकें और आवाज सब जगह सुनाई दे ऐसी व्यवस्था की है। ऊपरके गहरे नीले रगके कवेलू आकाश-के साथ अच्छी दोस्ती कर रहे थे।

फिर, बहत्तर हुतात्माओंका स्मारक देखने गये। दुनियाभरमें जहां भी चीनी लोग बसे हैं, वहांसे निधि इकट्ठा करके स्वतन्त्रता देवीकी मूर्त्तिके नीचे यह स्मारक खड़ा किया गया है। आदर उत्पन्न करानेवाला यह स्मारक है।

फिर, किसानोंके लिए पहले-पहल जो क्रान्तिकारी संस्था राष्ट्रीय नेताओंने चलाई थी, सो हमने देखी। आज वह संग्रहालयके रूपमें भक्तिभावके साथ रखी गई है। पहले यह मकान एक कॉन्फ्यूशियन मन्दिर था।

कल सुबह आठ बजे केण्टन छोड़ेंगे और तीन दिन और तीन रातका लगातार प्रवास करके पेकिंग पहुंचेंगे। हम सब सकुशल हैं।

—काकाके शुभाशिष

११. चीनका पत्र—२

पेकिंग, २७ अगस्त, १९५७

चि०···

आखिर हम चीनकी राजधानी पेकिंग आ पहुंचे हैं। पेकिंग होटलमें हमें ठहराया गया है। अन्दर आते ही सुनहरी नक्काशीवाले ऊंचे-ऊंचे स्तम्भ देख कर मैंने पूछा, 'किसी राजप्रासादको ले कर यह होटल बनाया गया है क्या ?' जवाब मिला, 'नही जी, अन्दरके बड़े दावतखाने (Banquet hall) की शोभा संभालनेके लिए इनको खास बनाया है।' हमारे कमरे चौथी मंजिल पर हैं। हमारे प्रति-निधि-मडलकी मददमे तीन मोटरें और दुभाषिये हैं। उनमेंसे च् नामकी एक कॉलेजकी लड़की है, जो माताजी रामेश्वरीजीकी सेवामें रहती है।

कल हम यहांका पुराना राजप्रासाद देखने गये। उसमें अब एक संग्रहालय (Museum) रखा है। यहांका सब कुछ बड़े पैमाने पर है। राजप्रासादमें प्रवेश करते ही पांच-पांच पुलोंकी दो कतारें पार करनी पड़ती हैं। निप्पोनमे और यहां भी बिना पुलका बाग नहीं मिलेगा। हर एक बागमे तालाब, पुल और छोटा-सा प्रपात तो होना ही चाहिए। Weeping willows के पेड़ भी होते हैं। जंगलके पत्थरोंकी भी यहांके लोग बड़ी सुन्दर तरहसे रचना करते हैं। राजमहलके सामने-का रास्ता इतना चौड़ा और विशाल है कि दुनिया-भरमे कही भी ऐसा रास्ता मैंने नही देखा। टोकियो, बर्लिन, लंदन या परिस—किसी भी जगह इतने चौड़े रास्ते देखनेको नही मिले।

केण्टनसे पेकिंग आते चीनकी दो-तीन बड़ी नदियां पार कीं। उनके मोड़ और पानीके रंग सदाके लिए ध्यानमें रहेंगे।

केण्टनमें खानपानकी तरफ मैंने ठीक ध्यान नही दिया। तेलमें बनी हुई चीनी खुराक मैंने खाई। थी बड़ी स्वादिष्ट, लेकिन अनुकूल न आई। दो-एक दिनसे मेरा पुराना दर्द शुरू हो गया है। जैसे दर्दके साथ ही सिक्किमकी यात्रा हमने की थी, उसी तरह यहांकी भी करूंगा। (निप्पोनमें तबीयत बहुत अच्छी रही थी, यहां थकान लगती है।) थकान हो, तब कोई भी कार्यक्रम छोड़ कर मैं आराम कर लेता हूं।

आज हम एक बौद्ध मन्दिर देख आये। एक मन्दिरके पीछे दूसरा, उसके पीछे तीसरा और उसके पीछे चौथा। आखरी मन्दिरमे तिब्बतकी बौद्ध Encyclo-paedia—तंजूरकी पोथियां थी—जिन्हें हमने सिक्किमके महाराजके गोम्पामें देखा था। इस मन्दिरकी मैत्रेयी बुद्धकी मूर्त्ति पूरे साठ फुट ऊंची होगी।

हमारा प्रतिनिधि-मंडल आज रातको यहांसे निकला। मेरी तबीयत ठीक नही थी। इसलिए मैं नही गया। दो दिन आराम मिलनेसे फिर ताजा हो जाऊंगा।

नानकिंग, १ सितम्बर, १९५७

सुबह आठके पहले पेकिंग छोड़ कर, चार घंटोंका विमानी सफर करके और चीनके उपजाऊ खेत, ऊंचे-ऊंचे पहाड़ और अति विशाल सरोवर देखनेके बाद ठीक दोपहरको हम नानकिंग पहुंचे। विमानी अड्डेसे हमारे होटल तक—पांच-दस मील हम नानकिंग शहरमेंसे गुजरे। सब-के-सब रास्ते सीधे, चौड़े और सज्जनोंके हृदय जैसे वक्रताविहीन देख कर विचार आया कि क्या इस शहरकी रचना सत्पुरुषोंने ही की होगी ? इन रास्तोंका मैंने नाम रखा है 'पंचपथ'। रास्तेके दोनों किनारे पर पैदल चलनेवालों (पदयात्रियों)के लिए चौड़े रास्ते हैं। उनको लग-कर मोटर आदि वाहनोंके लिए सामान्य, लेकिन अच्छे राजमार्ग हैं, और बीचमें बहुत चौड़ा रास्ता है—सीधे दूर-दूर जानेवाले वाहनोंके लिए। इन पंचपथके बीच वृक्षोंकी चार सुन्दर कतारें देख कर इतना आनन्द और संतोष होता है कि जगत्में कहीं तो मनपसन्द रास्ते दूर मीलों तक जाते देखनेको मिले !

नानकिंग शहर इतिहास-प्रसिद्ध राजधानी तो है ही। इसके अलावा संस्कृति-समृद्ध नागरिकताका धाम भी है। अब हमारा कार्यक्रम। कल रातको हम शंघाई पहुंचेंगे जो चीनका सबसे बड़ा शहर है। पश्चिमके लोगोंका उस पर वरदहस्त था। वहां तीन दिन रह कर हम सीआन जायेंगे।

सम्राट् हर्षवर्धनके समयमें भारतमें आये हुए चीनी प्रवासी त्रिपिटिकाचार्य सुयेनचांगकी समाधि वहीं है। उन यात्रावीरको श्रद्धांजलि अर्पण करके हम सात तारीखको पेकिंग वापस पहुचेंगे। वहां चार दिन रह कर केण्टन। तारीख १३ को हांगकांग। वहांसे तारीख १७ को बैंकांक और तारीख १८ तक कलकत्ता।

कल अपने राजदूत श्री रतन नेहरूके यहां चायकी दावत थी। वहां श्री नेहरू-जी, चीनके विज्ञान-प्रगतिके मन्त्री, एक मजदूर नेता और मैं मिल कर बातें कर रहे थे। शाकुन्तल नाटककी चर्चा हुई। चलचित्रोंकी बातें हुईं, हमें प्रवास कहां-कहां करना चाहिए, उसकी बातें हुईं और फिर तिब्बतकी नदी सान्पो, जो भारत आ कर ब्रह्मपुत्र बनती है, उसकी हमने बातें कीं। श्री रतन नेहरूजी बडे जानकार हैं और मैं तो ब्रह्मपुत्रका भक्त हूं ही। हमारी बातें खूब चली। और, वे चीनी सज्जन बड़े ध्यानपूर्वक सारी बातचीत सुनते रहे। उन्होंने कई सवाल पूछे और अपना संतोष व्यक्त किया। शिक्षामन्त्री अंग्रेजी उत्तम बोलते हैं। उनके साथ भी अच्छी बातें हुईं। साहित्य-सर्जन, बौद्धधर्म, समन्वय—इन चीजों पर मैं काफी जोर देता हूं। बौद्धधर्मके बारेमें मेरी दृष्टि इन कम्युनिस्ट लोगोंके लिए नई है। मैं उनसे कहता हूं कि आज मैं आपके साथ इसके बारेमें चर्चा करना नहीं चाहता। एक नया विचार आपके सामने सिर्फ रखना चाहता हूं। ध्यानसे सुन लें, इतना काफी है। उस विचारमें अगर कोई तथ्य होगा, तो वह अपने-आप उगेगा। ऐसी मेरी प्रस्तावनाके बाद वे सचमुच ध्यानसे बातें सुन लेते हैं।

यहांके कार्यशाली समर्थ लोगोंके साथ बातें करनेके बाद चीनी क्रान्तिके बारे में मेरी कल्पना स्पष्ट हुई। मनुष्य-जातिके स्वभाव, पुरुपार्थ और भविष्यके बारेमें मेरे विचार दृढ़ हो रहे हैं। कोई भी न तो पूरे देवताई पुरुष हैं, न कोई पूरे राक्षसी। अपने-अपने आग्रहके कारण दूसरोंको यथार्थ रूपसे समझनेकी शक्ति खो वैठते हैं। और बस। To understand all is to excuse all, यही बात सच लगती है।

कल नानकिंग पहुंचनेके बाद हमारा पहला प्रिय और पवित्र कर्तव्य था डॉ० सन्-यत्-सेनकी समाधि पर जा कर पुष्पवलय अर्पण करनेका। (पुष्पमाला तो गले में पहनानेकी होती है। अंग्रेजीमें जिसे रीथ (Wreath) कहते हैं, उसे पुष्पमाला या हार तो नहीं कह सकते, कंकण या केयूर शब्द भी नही चलेंगे। इसलिए, अभी नया शब्द—पुष्पवलय—बनाया है। वह ठीक लगता है।)

डॉ० सन्-यत्-सेनकी समाधि शहरके बाहर एक ऊंचे पहाड़के किनारे अच्छी ऊंचाई पर है। इतनी ऊंचाई पर—३००-३२५—सीढ़ियां चढ़नेकी शक्ति न मेरी थी और न रामेश्वरीजीकी। स्वागत-समितिके प्रमुख भी इतना चढ सकें, ऐसा न था। इसलिए, यहांके लोग वेंतके तीन झंपन (यह हिमालयका गढ़वाली शब्द है) लाये थे। उसमें बैठ कर ऊपर जा कर दूरबीनमें आसपासका रमणीय प्रदेश देखा। डॉ० सन्-यत्-सेनने प्रजाको जो तीन सिद्धात दिए, वह रत्नत्रयी पत्थर पर कुरेदी हुई देखी। ऊपर सन्-यत्-सेनकी एक भव्य मूर्ति खड़ी की थी, वहां माताजीने और मैंने सबकी ओरसे पुष्पवलय अर्पण किया। कुछ क्षण सन्-यत्-सेन-का ध्यान किया। मूर्तिके पीछेके कमरेमें सन्-यत्-सेनकी सच्ची समाधि देखी।

पेरिसमें नेपोलियनकी समाधिके आसपास कठरेके सामने खड़े रह कर सिर नीचा करके समाधि देखनेकी व्यवस्था हमने देखी थी, सो तुझे याद होगा। यहां भी ऐसी ही व्यवस्था है। यहां सादगी और भव्यता ज्यादा है। नेपोलियन झंझावात जैसी प्राकृतिक शक्तिके प्रतिनिधि थे। जब सन्-यत्-सेन एक अनुभवमूर्ति, चिंतन-वीर, कर्मयोगी थे। नेपोलियनका दवदवा ज्यादा था, इसमें शंका नहीं। किन्तु, वह केवल दुर्दान्त सामर्थ्यमूर्ति थे। राष्ट्रभक्तिके वल पर उन्होंने भले-बुरे विविध पराक्रम किये; जबकि सन्-यत्-सेनने यूरोपसे भी विराट प्रजाको उज्ज्वलतम आदर्श दे कर एक बनाया। नेपोलियनका काम राजसिक था। डॉ० सन्-यत्-सेन का काम सात्त्विक। नेपोलियन खुद कहता था, 'चंगेज खान, कुबलाय खान या तैमूरलंग जैसोंको जंगली कहना गलत है। मैं तो उनका अनुकरण करना ठीक समझता हूं।'

डॉ० सन्-यत्-सेनकी समाधि पर एक सुन्दर वचन कुरेदा है, जिसका अनुवाद हमें बताया गया—Righteousness is universal, जिसका अनुवाद मै अपने ढंगसे तो करूंगा—धर्मो विजयतेतराम्। न्यायपरायणता, सज्जनता, चारित्र्य, सदाचार, सत्पुरुषधर्म इन सब चीजोंको हम धर्मके नामसे पहचानते हैं। उसका राज्य मनुष्यमात्रके हृदयमें—सारे विश्वमे फैला हुआ है। और, यथासमय उसीका

सामर्थ्य सफल होता है। सत्यको, न्यायको, धर्मको असंख्य बार कुचल डालने पर भी वह अमरतत्त्व अपना सिर ऊंचा किये बिना नहीं रहेगा। इस भावको व्यक्त करनेके लिए संस्कृतमें क्रियापदमें तराम् प्रत्यय लगाया जाता है। हम संक्षिप्तमें कहते हैं— सत्यमेव जयते। यही है सबसे बुलन्द श्रद्धा। यह श्रद्धा जिससे चिपके, वही है सच्चा आस्तिक।

पूंजीवादी हो या समाजवादी हो, खुदके निश्चयके अनुसार करनेके लिए विरोधियोंको दबाता है। उसमें भी राज्य करनेवालोंमें धीरज कम होनेसे वे किसी भी तरीकेसे अपनी इष्टसिद्धि साधते हैं। किसीको ज्यादा क्रूर कहना अन्यायी, अत्याचारी कहना यह तो हरेकके पक्षपातका विषय है।

मैं मानता हूं कि दुनियाकी तमाम प्रजाओंकी तरह चीनकी प्रजा भी शान्ति ही चाहती है। उद्यम द्वारा अपनी उन्नति करती है। कष्ट सहन करनेमें शूरी है, और संख्याबलके सहारे जो चाहे, सो पराक्रम कर सकती है। इस प्रजा पर बौद्धधर्मका गहरा असर है। अलबत्ता कई साम्यवादी बौद्धधर्मको लामाओंका और भिक्षुओंका धर्म कहते हैं। अगर हिन्दू धर्मको कोई मात्र पुरोहित, बाबा और संन्यासीका धर्म कहे, तो उसमें जितना सत्य हो, उतना ही सत्य ऊपरके वचनमें है। मैंने किसीसे कहा कि बौद्धधर्म अगर आम प्रजाका धर्म न होता, तो इतने साधुओंको प्रजा क्यों पालती? और इतने भव्य मन्दिर बनवानेका उत्साह कहांसे आता?

शांघाई, ३ सितम्बर, १९५७

चीन देशके सबसे बड़े और अन्तरराष्ट्रीय महत्त्वके शहर—शांघाईमें कल रातको आये। इस शहरकी बस्ती साठ लाखसे ज्यादाकी है। आज शांघाई मेन्शनकी १७वीं मंजिल पर जा कर वहांसे सारा शहर—खासकरके हुआंग-पु नदी देखी। सुचाउ नदी जहां हुआंग-पु नदीसे मिलती है, वहीं संगम पर यह भीमकाय मकान खड़ा है। यहां परसों तक रह कर तारीख ६ को मीआन जायेंगे।

—काकाके सप्रेम शुभाशिष

१२. भारत और जापानकी दोस्ती

चीन, भारत और जापान ये तीन देश आज एशियाका विशेष प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

इन देशोंमेंसे जापानने सबसे पहले पश्चिमकी यन्त्रविद्या और तिजारतका ढंग अपनाया। शुरू-शुरूमें अमेरिका और ब्रिटेन दोनोंकी ओरसे इस छोटेसे प्राणवान देशको विशेष मदद मिली। यहां तक कि वह चीन और एशियासे लड़ सका

और दोनों युद्धोंमें विजय पा सका। तबसे दुनियामें जापान (निप्पोन) का बोल-बाला है। पिछले युद्धमें जापानने अमेरिकाको बुरी तरहसे छेड़ा, जिसका फल उसे भुगतना पड़ा और आज भी भुगतना पड़ रहा है।

ऐसा होते हुए भी जापान एक शक्तिशाली राष्ट्र है। यन्त्र-विद्यामें, हाथ-कारीगरीमें और तिजारतमें आज भी उसका लोहा माना जाता है। जहाज बनानेकी कलामें जापानने युद्धोत्तर कालमें—इन दस-बारह बरसोंमें—बहुत कुछ प्रगति की है।

स्वतन्त्र भारत बड़ी तेजीसे अनेक यन्त्रोद्योग बढ़ा रहा है। बढ़ाये बिना चारा ही नहीं। थोड़े ही दिनोंमें भारत भी जापानके जैसा यन्त्र-विद्यामें प्रवीण बन जाएगा, इसमें कोई शक नहीं। जापानने अपनी प्रगतिके लिए जितने दिन लिये और जिस क्रमसे वह बढ़ा, उतने दिन हमें नहीं लेने पड़ेंगे। हमारा विकासक्रम ही अलग होगा।

तो भी हम जापानसे बहुत-कुछ सीख सकते हैं और सहयोग तो बहुत-कुछ कर सकते हैं। ब्रिटेन, जर्मनी, चेकोस्लोवाकिया, अमेरिका आदि देशोंसे हम हर तरह की मदद ले ही रहे हैं। जहांसे मिले थोड़ी-थोड़ी लेनी चाहिए। लेकिन हमारा जापानसे सहयोग अधिक महत्त्वका साबित होगा। भारतकी अन्तर्राष्ट्रीय नीति जापानने पूर्णतया अपनायी नहीं; लेकिन थोड़े ही समयमें उसे वह अपनानी पड़ेगी और तब उसका अमेरिकाके साथका संबंध ज्यादा स्वच्छ भी होगा।

ऐसी हालतमें हमें समझना चाहिए कि जापान और भारतका सम्बन्ध केवल भारत सरकार और निप्पोनी सरकार तक सीमित नहीं रहना चाहिए। हमारे समाजनेता और वहांके समाज-नेता आपसमें मिलें, विद्यार्थियोंका आना-जाना बढ़े, साहित्यिक और सांस्कृतिक आदान-प्रदान रोजमर्राकी चीज बन जाय।

हम लोगोंको अभीसे पाठशालाओंमें और कॉलेजोंमें जापानका राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक इतिहास पढ़ाना शुरू करना चाहिए। महायान बौद्ध धर्मका जापानमें जो विकास हुआ है, उसकी जानकारी भी हमारे लोगोंको होनी चाहिए। जापानी साहित्यके महत्त्वके हिस्सेका अनुवाद भारतीय भाषाओंमें अभीसे शुरू करना चाहिए।

और जिस तरह हम अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन, रशियन या पुर्तगाली भाषाका अध्ययन करनेका महत्त्व कबूल करते हैं, अथवा जिस तरह अरबी-फारसी साहित्य-का आस्वाद भारतके चंद लोग लेते आये हैं, उसी तरह जापानी भाषाका भी अध्ययन जोरोंसे शुरू करना चाहिए। देशमें भारत और जापानकी दोस्ती बढ़ाने-वाली संस्थाएं कहीं-कहीं काम कर रही हैं। उनकी शाखाएं जगह-जगह खोलनी चाहिए और जो थोड़े जापानी लोग हमारे देशमें आते-जाते हैं, उनसे संपर्क भी बढ़ाना चाहिए। देशके नवयुवकोंका और नवयुवतियोंका यह काम है। भारतका

भाग्य जितना उज्ज्वल है, उतना ही हमारे लोगोंका पुरुषार्थ भी जोरोंसे बढ़ना चाहिए।

समाजके आंतरिक दोष दूर करनेका इलाज दोषोंका नाम ले कर रोनेसे नहीं होगा। महत्वाकांक्षा और पुरुषार्थ बढ़ानेसे सारा वायुमण्डल देखते-देखते साफ हो जायेगा। बहती हवा ही स्वच्छ रहती है।
२५ जनवरी १९५८

१३. हवाई जहाजसे

[तारीख ६ जून, १९५८ ई०की रातको हवाई जहाजसे श्री काकासाहेबने अपनी पश्चिमकी विदेश-यात्राके लिए प्रयाण किया। वहां अपने काममें बहुत व्यस्त होते हुए भी, सौभाग्यसे, वे अपनी यात्राका वर्णन विस्तारसे लिख भेजनेके लिए समय निकाल सके।]

अरबस्तानके ऊपरके अन्तरिक्षमे
७-६-१९५८

प्रिय बाल,

कलका सारा दिन बम्बईमें काममें बीता। सान्ताक्रूज हवाई अड्डे पर श्री जयरामदास दौलतराम खास मिलने आये थे। उनके साथ गांधीजीके समग्र साहित्य के प्रकाशनके बारेमें बहुत बातें कीं। हवाई अड्डे परके हमारे भारतीय कर्मचारियों का विनय और सहायवृत्ति देख कर खुशी होती है। कस्टमका काम अल्पावधिमें ही पूरा हो गया, इसलिए मैंने वहीं, पंखेके नीचे दस मिनट नींद भी ली।

रातको साढ़े ग्यारह बजे निकले, यानी ६ जूनको निकले, ऐसा ही कहना पड़ेगा। विमानमेंसे रातको जमीन परका या दरिया परका कुछ भी दिखाई देना असम्भव ही था। केवल विमानके पंखेके पीछे जो ज्वाला निकलती है, उसकी लीला थोड़ी बहुत देख कर और हाथ-पैरोंको किसी तरह मना कर हम सो गये। सोनेके पहले हाथ पैर unscrew (अलग) करके तहखानेमें रख देनेकी सुविधा होती तो, कितना अच्छा होता! सुबह उठते ही आतिथेया (Hostess) से मांग कर फिरसे पहन लिये होते। त्रिपाद कैमेराके लिए जैसा यह सम्भव होता है, वैसा आदमीके लिये भी होता, तो कितना अच्छा होता! फिर ऐसे हटाये-जुटाये जा सकने वाले पैर लम्बे और छोटे भी किये जा सकते। रणमें ऊंटके समान लम्बे कर लिये, और समुद्र पार करना हो तब हाथ-पैरको डांड़का रूप दे दिया!

एक नींद पल्ले पड़ी और खिड़कीमेंसे आकाश देखनेका मन हुआ। हम विमान की बाईं बाजू पर बैठे हैं। हमारे आसनकी संख्या ग्यारह और बारह है। उसके

बादका नम्बर तेरहके बजाय चौदह है। सुशिक्षित लोगोंके पश्चिमी वहम अब अन्तर्राष्ट्रीय बनने लगे हैं। किसी भी हवाई जहाजमें तेरहवां क्रमांक नहीं मिलेगा, क्योंकि वह अशुभ गिना जाता है।

खिड़कीमेंसे झांका, तो वहां दक्षिण-पश्चिमकी तरफ हमारा वृश्चिक आरामसे लम्बा हो कर लेटा हुआ दिखाई दिया। मियांकी टांगकी तरह वृश्चिकका डंक तो ऊपर ही था। वृश्चिकके थोड़े ही ऊपर एक ग्रह चमकता था। गुरु होगा या अन्य कोई।

हमारे पीछे चन्दामामा अपनी अमीवृष्टिकी फुहार ऊपरसे बरसा रहा था। नीचेके बादलोंमेंसे कितनी किरणें समुद्र तक पहुंचेंगी, यह जानना मुश्किल था।

पश्चिम सागर पार करनेके बाद हम अरबस्तानके पश्चिम सिरे पर आ गये होंगे। पिछली बार एडनसे कराची जाते अरबस्तानका दक्षिणी भाग देखा था। उस समय पहाड़ और रेगिस्तानके बीच क्षीणकाय नदीकी एकाध लकीर, उस नदी के किनारेके थोड़े-से हरे वृक्ष और शायद ही सिर ऊंचा करनेवाले कुछ गांव दिखाई दिये थे। बाकी सब पत्थर और रेत। वह दृश्य इतना भीषण था कि मानो महा-देवका रुद्रावतार।

इस बार सुबह होते ही अरबस्तानकी रेत दिखने लगी। अरुणोदय हुआ और रेतने ताम्रवर्ण धारण किया। उसके बाद हमारी दाहिनी तरफसे सूर्य भगवान् प्रकट हुए और रेतकी नक्शकारी शोभा दिखाई देने लगी। नक्शकारी, काहेकी, रेत-की स्थायी बनी हुई लहरें।

लहरें कहते ही हमारे खयालमें पानीकी लहरें आती हैं। लेकिन, कुदरतमें तो लहरें त्रिविध होती है। अंतरिक्षमें बादलोंकी लहरें, समुद्रमें पानीकी लहरें और रेगिस्तानमें रेतकी लहरें। हरएककी शोभा अनोखी। बादलोंकी लहरें क्षण-क्षणमें रूप और आकार बदलती रहती हैं और फिर भी उसमें शांति होती है। बिजलीने उनके बीच अपनी धुनकी चलाना शुरू किया, तो फिर बात अलग है। बादलोंकी लहरें और समुद्रकी लहरें, वास्तवमें देखें, तो वायुदेवकी किंकरी हैं। जैसे वह दौड़ाए, वैसे दौड़ती हैं।

रेतकी लहरें भी वायुदेवकी ही प्रजा है। लेकिन, उनका काम वायुकी लीला अंकित कर रखनेका होता है, इसलिए प्रमाणमें वे स्थायी होती हैं। समुद्रके किनारे भाटाके बाद, रेतमें लहरोंकी नक्काशी अंकित होती है, लेकिन वह बहुत अस्पष्ट और पतली होती है। अरबस्तानके मध्यमें रेतकी नक्काशी सैकड़ों मीलों तक फैली हुई होती है। उसका श्मशान-गांभीर्य डरावना होते हुए भी अशुभ नहीं मालूम होता। यह नक्काशी मैंने इस बार जी भर कर देख ली। फिर लगा कि उसके भीतरकी सारी बातें दूरबीनसे देख लूं। लेकिन, इतनेमें रेतकी नक्काशी गायब हो गई और उसकी जगह पर वीरान टेकरियां दिखने लगीं। उनकी अपनी शोभा तो

होती ही है। उनके माथे पर सूर्यकिरण पहुंच जानेके कारण उनकी छायाएं पश्चिम-की ओर फैलने लगीं और उन छायाओंकी लम्बाइयों परसे टेकरियां कितनी ऊंची होंगी, उसका खयाल आने लगा। इन टेकरियोंके बीच न मिले कोई नदी, सरोवर, अरण्यया रणद्वीप (Oasis)। इस विस्तारको देख कर मुझे अपने चन्द्र परके, दूरबीनमेंसे, दिखनेवाले पहाड़ याद आये। ज्योतिष-शास्त्रका रसिया, मैं तो अरबस्तानको चन्द्रलोक ही कहना पसन्द करूं। कवियोंका या पौराणिकोंका चन्द्र-लोक नहीं, बल्कि दूरबीनकी आंखसे दिखनेवाला निर्जीव चन्द्रलोक।

अरे! ये क्या? क्या हम लाल समुद्रके किनारे पहुंचनेवाले हैं? चन्द्रलोकके माथे परसे उड़ते-उड़ते हम रोटी, कॉफी, संतरेका नाश्ता कर रहे हैं। इतनेमें मालूम होता है कि एशियाका सिरा भी आ गया। लाल समुद्र यानी एशिया और अफ्रीकाके बीचकी खारी लकीर। उसमें लाल रंग कही भी नही मिलेगा। यह तो ठीक, लेकिन विमानकी ऊंचाई परसे हमेशा गरीब, दीन दिखनेवाली लहरें भी नही हैं! पूरा समुद्र रेगिस्तानके समीप ही निश्चेतन दिखाई देता है। अच्छा हुआ कि उसके संकरे माथे परसे हम देखते-देखते निकल गये और अब अफ्रीकाके आकाश में विहार कर रहे हैं। लेकिन, मुझे शक हो रहा है कि अबतक देखा हुआ लाल समुद्र सच्चा लाल समुद्र नहीं है, लेकिन सिनाई द्वीपकल्पके पूर्वमें आई हुई उसकी आक्यावबवाली शाखा है। पश्चिमी शाखा अब आएगी। बीच-बीचमें छोटी-बड़ी नदियोंके सूखे हुए पाट किसी प्राचीन संस्कृतिके अवशेषोंके समान, कल्पना-शक्ति को छेड़ रहे हैं। इसका मतलब यह हुआ कि हम अभी एशियाई आकाशमें ही हैं। स्वदेशका पक्षपात रखनेवालेको स्वखण्डके प्रति भी आत्मीयता रखनी चाहिए। लेकिन, हमारा पड़ोसी धर्म अफ्रीकाको भी पराया खंड माननेको तैयार नही है। हम तो इससे भी आगे बढ़ कर—'स्वदेशो भुवनत्रयम्' माननेवाले हैं।

खैर, लाल समुद्रके पश्चिम तरफके स्वेजवाले उत्तर सिरेके माथे पर हम आये हुए हैं। अब हम सचमुच अफ्रीकाके आकाशमें प्रवेश करेंगे। इसलिए, यह एशियाई पत्र यहीं पर पूरा करता हूं। इस समय मेरी भारतीय घड़ीमें पौने दस बजे हैं। लेकिन स्थानिक हिसाबसे सवा सात ही बजे हैं। इसलिए, वास्तवमें कोई ज्यादा देर नही हुई है। जमीन पर पैर रखनेके बाद ही घड़ीको कहूंगा कि स्थानिक सत्य-के लिए ढाई घंटे वापस घूमो। काश कि जिन्दगीमें भी इसी तरह वापस घूमनेका अवसर होता!

० ० ०

एशियाई खंड पूरा करनेके बाद, यानी सीनाई द्वीपकल्प पार करनेके बाद, धरती का रूप बदल गया, और जहां-तहां पानीके रेलों-धाराओंके कारण बननेवाले छोटे-बड़े दर्रे दिखने लगे। सारे प्रदेशका पानी इन दर्रों द्वारा लाल समुद्रको मिलता है और उसके साथ जमीन और उसका कस भी घिसते जा रहे हैं। इन दर्रोंकी

नक्काशी भी इतनी ऊंचाईसे, भाने जैसी है । बीचमें तो टेकरियां ऐसी दिखीं, मानों सिरके बाल संवार कर उनकी त्रिवेणी गूंथी गई हो ।

कुछ थोड़े आगे गये और छिछले दर्रोंके बीच थोड़े पेड़ दिखाई देने लगे । पेड़ोंकी मामूली हस्ती भी, हरे रंगके कारण, जीवनका ख्याल करा देती है और मनमें धन्यताका भाव पैदा करती है । मनुष्य तो स्वभावसे ही जीवन-परायण है । जीवन का थोड़ा बहुत सूचन भी उसको प्रसन्न करता है ।

अब तो हमारी पहली यात्रा पूरी होने आई । बड़े-बड़े बगीचे दिखने लगे । हरे रंगका विस्तार देख कर इतना समाधान हुआ कि गीताकी पंक्ति याद आई—'इदानीमस्मि संवृत्तः सचेताः प्रकृतिं गतः ।' अब मनुष्योंकी बस्तियां दिखने लगीं । सफेद-सफेद शहर और उनके इर्दगिर्दकी वाडियां दृष्टिगोचर हुईं और देखते-देखते हम ईजिप्तकी राजधानी काहिरा पहुंच गये ।

एक बात कहनेकी रह जाती थी । सुएजवाले सिरेके समुद्रमें दो जहाज दक्षिण तरफ जाते हमने देखे । पहला जहाज पूरे वेगसे जाता होगा; क्योंकि उसके पीछे फेनकी पूंछ ([illegible]) दिखाई देती थी । दूसरा जहाज शायद लंगर डाल कर पड़ा होगा अथवा आरामसे जाता होगा । पश्चिमके लिए सुएजकी नहर और लाल समुद्र—बहुत ही महत्त्वके थे । इंग्लैंडके हाथमेंसे हिन्दुस्तान छूट गया और सुएज पर ईजिप्तका काबू मजबूत हो गया । ये दो घटनाएं दुनियाके इतिहासमें सार्वभौम महत्त्व रखती हैं ।[1]

—काकाके सप्रेम शुभाशिष ।

१४. केचूरका प्रपात

(ब्रिटिश गियानाकी राजधानी जॉर्ज टाउनसे लिखा हुआ पत्र)

आज हमने ब्रिटिश गियानाका अद्भुत-से अद्भुत प्राकृतिक दृश्य देखा । जिस तरह भारतमें गेरसप्पाके पासका जोगका प्रपात सबसे ऊंचा और अद्भुत रमणीय है, उसी तरह ब्रिटिश गियानामें पोटारो नदीका केचूर (Kaictaur) का प्रपात है । इस प्रपातकी ऊंचाई कुल ८२२ फुटकी है । हमारे यहांका राजा प्रपात जिस प्रकार ऊपरसे तलहटी तक सीधा कूद पड़ता है । उसी प्रकार यह प्रपात ७४९ फुट सीधा कूद पड़ता है । बारिश जब अच्छी होती है तब इसकी चौड़ाई खासी ४०० फुटकी होती है । जोगके चार प्रपात जिसने भिन्न-भिन्न समय पर चार या पांच बार देखे हैं ऐसा मैं कहता हूं कि केचूरका प्रपात न देखता, तो जीवनके एक बड़े आनन्दसे हाथ धो बैठता ।

१. गुजरातीसे अनूदित

जोगके प्रपातका जल ऊपरसे एक तरफ रोक कर, एक बाजू ले जा कर उसमें से बिजली पैदा करनेकी योजना अमलमें लाई गई है, तो भी प्रपातकी शोभामें या भव्यतामें थोड़ी भी कमी पैदा नही हुई। इतना ही नहीं, बल्कि अगर चाहें, तो ऊपरका पानी छोड़ कर, प्रतिकूल ऋतुमें भी, हम लोगोंको चंद घंटोंके लिए उन्मत बना सकते हैं और उसकी मेघ गंभीर गर्जना भी सुन या सुना सकते हैं।

यहांके केचूर-प्रपातमेंसे भी बिजली तैयार करनेको सोचा गया है। लेकिन यहां ऊपरसे पानी रोक कर मोड़नेकी योजना नहीं है। प्रपात जहां कूद कर आ धमकता है, वहीं पर एक बड़ा बांध बांध कर पानी रोका जाएगा और वहांसे यह पानी एक तरफ ले जा कर तीन मीलके बाद ८१ फुटकी गहराई जहां आती है, वहां छोड़ कर उसमेंसे बिजली पैदा की जाएगी। इस बिजलीका उपयोग करनेकी सुविधा बारटिका (Bartika) शहरमें हो सकेगी ऐसा मेरा खयाल है। जहां एसेक्विबो नदीसे माझारुनी और कुयुनी ये दो बड़ी नदियां मिलती हैं, वहां यह शहर बसा हुआ है। मेरे ख्यालसे दिन-ब-दिन इस शहरका महत्त्व बहुत, यानी बहुत ही बढ़ने वाला है। इस शहरके दक्षिण-पूर्वमें मेकेन्झी नामका बॉक्साइट शहर है। उसका महत्त्व भी बहुत बढ़नेवाला है। क्योंकि, यहांका बॉक्साइट विदेश भेजनेके बदले स्थानिक कारखाने खड़े करके अल्युमिनियम यहीं पर तैयार करनेको सोचा गया है।

लेकिन हम यह प्रपात देखने किस तरह गये और और क्या-क्या देखा, वही यहा मुख्यतया कहनेका विचार है।

ब्रिटिश गियानामें सवा आठ सौ फुट ऊंचाईका एक अद्भुत प्रपात है, इतना तो मैं जानता ही था; लेकिन हमारा प्रवास समुद्र-किनारेके ही प्रदेशोंमें होनेवाला था। इसलिए केचूर जानेकी आशा मैंने मनमें उगने ही नहीं दी थी। लेकिन यहांके गवर्नर श्री जेक्वेके यहां रातके भोजनके समय बातें करते-करते जब केचूरका जिक्र आया, तब मैंने कहा कि, 'अफसोस है कि इस देशमें आ कर भी यह अद्भुत प्रपात मैं देख नहीं पाऊंगा।' जेक्वेने कहा, ऐसा बिल्कुल नहीं है। आप चाहें, तो सुबह विमानमें बैठ कर, इत्मीनानसे प्रपात देख कर, दुपहरमें खानेके वक्त पर वापस आ सकते हैं। जिस समुद्री आकाशयानमें आपने एसेक्विबो नदी पार की थी, वही समुद्री आकाशयान आपको यहांसे ले जा कर, प्रपातके सिरके पास पोटारो नदीमें उतार सकेगा।'

मेरे जैसे कुदरत-प्रेमी घुमक्कड़को इससे अधिक प्रोत्साहनकी क्या जरूरत थी? घर आ कर मित्रोंके साथ चर्चा की। उन्होंने कहा कि एक रास्ता है। उसके अनुसार व्यवस्था करनेकी पूरी कोशिश करेंगे।

हम जॉर्जटाउनसे घूमते-घूमते सवा सौ मील न्यू ॲम्स्टरडम पहुंच गये थे। वहांसे ४५ मील कोरंटाइन (Courentyne) नदीके किनारे स्केलडन (Skeldon)

हो कर वापस लौटे थे। डॉ० विशेशर और श्री ठाकुरप्रसाद रिसाल महाराजकी व्यवस्थाके अनुसार समुद्री आकाशयान जॉर्जटाउनसे उड़ कर ॲम्स्टरडम, हमें लेनेके लिए आया। उसमें हमारे मेजबान श्री हरिप्रसाद सपत्नीक आये थे। दूसरे भी एक सज्जन थे। विमानमें आरूढ होनेके लिए एक नावमें बैठ कर हम उमंगसे निकले। लेकिन, हमारी नाव छप्परवाली होनेके कारण विमानके पंख तले पहुंच सके, ऐसा नहीं था। जबरदस्ती पहुंचनेकी कोशिश करते तो या तो विमानके पंखको नुकसान पहुंचता या नावका छप्पर टूट जाता। और, इससे भी विशेष संकट यह था कि नदीके अशांत पानीके कारण हम सब खतरेमें पड़ते। आकाशयानके सारथिने साफ कहा कि, "नहीं, नावको मैं पास आने ही नहीं दूंगा। दूसरी नाव प्राप्त कर लीजिए। वरना अफसोस है, लाचार हूं।"

हम अपना-सा मुंह ले कर वापस लौटे। देखने लगे हैं कि कोई नाव, जो 'अस्मान्, तारयिष्यति ?' हमारी खुशकिस्मतीसे चहके नीचे तैरती एक नाव दिखाई दी। वह बीमार नही है, इस बातकी हमने तसल्ली की, और उसके अन्दरका पानी बाहर निकाल कर, उसमें बैठ कर विमानमें पहुंच गये। बहुत कीमती वक्त जाया हुआ, लेकिन पहुंचे सही। पानी चीरते-चीरते विमान आगे बढ़ा और देखते-देखते आकाशमें उड़ा। न्यू ॲम्स्टरडमकी गगनशोभा निहारते-निहारते हम आगे बढ़े। पहले दिखी आबारी नदी, जो हमने अगले दिन, मोटरके रास्ते पार की थी। आगे चल कर महकौनी और महैका इन दो नदियोंके उद्गमकी घाटियां दिखाई दी। इतनेमें हमारे पायलट सारथिने एक कागज पर लिख कर हमें सन्देशा भेजा कि आप अब डेमरारा नदी पार करेंगे और दाहिनी ओर बॉक्साइटका शहर मेकेन्झी दिखाई देगा। उसके बाद हम इस देशकी सबसे लम्बी नदी एसेक्विबो पार करेंगे, जो ६९० मील लम्बी है। मैंने जवाबमें उसे चिट्ठी लिख कर कहा कि, 'नक्शा हाथमें ले कर बैठा हूं। क्या हम बाईं तरफके Great Falls और Carb Falls देख पायेंगे ?' उसने जवाबमें लिखा, "नही, वह बहुत दूर है। Great Falls तो सौ फुटकी ऊंचाईसे नीचे गिरनेवाला छोटा-सा प्रपात है। फिजूल 'ग्रेट फॉल्स' नाम उसे दिया गया है।" यह जवाब मैं पढ़ रहा था, इतनेमें एसेक्विबो नदीमें स्थित क्वा पन्ना (Kwa Panna) टापू नीचे दिखाई देने लगा। बादमें हमने पार की ओमाई (Omai) नदी। नीचेके गहन कांतारमें उसका मुंह देखना भी मुश्किल था। उसके बाद आई पोटारो नदी और टुमाटुमारी (Tuma Tumari) छावनी। लेकिन, यह सब तफसील देनेमें कोई लाभ नही है। यह सारा प्रदेश मानों सवा सौ से दो सौ फुट ऊंचे उगनेवाले महान वृक्षोंका महासमुद्र ही है। हमारी अरण्यकी कल्पना इसके आगे किसी बिसातकी नही। इसको तो महाकांतार कहनेके बजाय, चि० सरोज सुझाती है, वैसे अरण्यार्णव ही कहना चाहिए। बड़ी-बड़ी नदियां भी घासमें छुपनेवाले और जरा-जरा दिखाई देनेवाले सर्प या

अजगर जैसी मालूम पड़ती है। अब दूरसे केचूर-प्रपात दिखाई देनेका मौका आते ही सारथिने अपने साथीको अन्दर भेज कर, हमें अपने पास बैठनेका आमंत्रण दिया। उसका लाभ उठा कर हममेंसे एक सज्जन आगे गये। बादमें उनको हुआ कि यह जगह मुझे देनी चाहिए थी। मैंने उनको इशारा किया कि आपके पास कैमरा है, आप वहा बैठ कर फोटो खीचते जाइए। लेकिन, सारथिसे रहा नहीं गया। उसने मुझे दोनोंके बीच खड़ा रह कर सामने देखनेकी सूचना की। मैंने वह स्थान लिया, इतनेमें सामने दूर-दूर केचूर-प्रपातके दर्शन हुए। इतनी दूरसे भी उस प्रपात की भव्यता स्पष्ट होती थी। १२० मीलके वेगसे उस प्रपातकी ओर हम धंस रहे थे।

आसपास हरी-हरी प्रकृतिमाताका विस्तार, ऊपर साफ नीले आसमानमे कपास जैसे सफेद बादलोंके पतले ढेर. और इस स्वर्गीय दृश्यके बीच Gold chloride की याद दिलानेवाला सुनहरे पानीका प्रपात ! दो आंखोंसे पी-पी कर मनुष्य पीये, तो भी कितना ? हमारा विमान जैसे आगे बढ़ा, प्रपातका आकार बढ़ने लगा। नीचेसे उड़नेवाले तुषार और सीकर-बिन्दुओंके बादल और उनके सिर पर नये-नये ढंगसे कूद पड़नेवाला पानीका उन्माद ! डर लगता था कि अब यह गंधर्व दृश्य देखते-देखते अलोप होगा। लेकिन ठीक-ठीक सन्तोष होने तक हमने वह प्रपात देखा। संतुष्ट आंखोंने आसपास देखा, तो वहां प्रमाणमें छोटे ऐसे कुल तीन प्रपात दिखे। झिरझिरे पतले होनेके कारण किसी-किसी समय मोतीकी झालर जैसे और किसी समय चांदीकी सलाइयां या तार लटकते हों, वैसे वे उपप्रपात मालूम पड़ते थे।

एक बात लिखना भूल ही गया। इस प्रदेशके ऊंचे पहाड़ोंमें भैरवघाटी जैसी घाटियां जहां तहां बिखरी हुई हैं। लेकिन, वह बिलकुल खुली नही है। छोटे-बड़े पेड़ोंने इन कगारोंके किनारे-थोडी-बहुत जगह पा कर पहाड़के यह जख्म अधिकतर छिपाये हैं। ऐसे कगारोंके बीच इस प्रपातको पूरी-पूरी प्रतिष्ठा प्राप्त हो रही थी।

सारथि न केवल इस प्रदेशका जानकार था, बल्कि ठीक-ठीक रसिक भी था। उसने विमान अनेक प्रकारसे घुमा कर, उस प्रपातका हमें अनेक पहलुओंसे दर्शन कराया। मानो हमें कहता था, 'पश्याश्चर्याणि भारत !' छोटा-सा विमान, सिर्फ हमारे लिए ही आया हुआ। सभी लोग परिचयके, इसलिए अपनी मर्जीके मुताबिक चाहे जहां बैठ जाते, चाहे जिस खिड़कीसे देखते और लुटेरे जिस तरह जो चीज हाथ लगे, वह लूट लेते हैं, उस प्रकार हम जहां नजर पड़े और आंख पहुंचे, वह सब दिमागमें समा लेनेकी पूरी-पूरी कोशिश करते थे। अजीर्ण होगा, ऐसा डर पैदा होता, तब मनको समझाते कि इस समय तो निःसंकोच खाते जाओ, फिर बादमें इतमीनानसे जुगाली करते रहेंगे।

बहुत भ्रमण करनेके बाद सारथिने कहा, 'नीचे नदीमें शांत पानीमें जो एक नाव दीख पड़ती है, वहां हम उतरेंगे।' लेकिन, हमारा विमान हेलिकॉप्टर थोड़े ही था कि सीधा नीचे उतरना ? उसने चीलके समान चक्कर काटते-काटते मौका न

देख कर झप् करके नदीका पृष्ठभाग पाया। शान्त पानीने संभ्रमके साथ, उछल कर हमारा स्वागत किया। पानीमें भी चक्कर काटता हुआ हमारा विमान किनारे पर पहुंचा और सारथिके साथीने, ढोरको जैसे खूंटेके साथ बांधते हैं, वैसे विमानको किनारेके एक खंभेके साथ बांध दिया। हम जमीन पर उतर कर आसपासकी शोभा निहारने लगे। इतनेमें पेटने कहा कि आपने आंख भर कर देख लिया, लेकिन मैं तो खाली हूं। मूंगफलीके चबेनेसे पेट थोड़े ही भरता है?

ऐसे काव्यमय स्थान पर और इतनी बड़ी तपश्चर्याके अंतमें पैर हिलानेमें और मुंह चलानेमें एक अनोखा ही आनन्द आता है।

हमारे साथके दो भाई कैमरा ले कर जंगलमें धंसे। उनको प्रपातके सिर तक जाना था। सारथिने कहा, 'ठीक एक बजे हम यहांसे निकलेंगे।' हम ग्यारह बजे न्यू अॅम्स्टरडमसे उड़े थे। सवा बारह तक व्योमविहार करके, प्रपातके सिर पर नदीमें पहुंचे थे। खाने-पीनेमें पन्द्रह मिनट गए। जंगलमें से हो कर एक मील चलना और उतना ही वापस आना हमारे लिए असम्भव था। इसलिए चि० सरोज ने, श्रीमती हा ...मादने और मैंने आसपासकी शोभा निहारते वहीं ठहरनेका तय किया। इतनेमें सामनेके किनारेसे एक अच्छी सफेद नाव आती देखी। चि० सरोज को और मुझे सूझा कि व्योमविहारके अन्तमें थोड़ा जलविहार क्यों न करें? इस ओरके किनारे परके एक भाईने अपनी नाव, पानी निकाल कर तैयार की और छोटा एन्जिन चालू किया। बड़ी उमंगसे हम नावमें बैठे और काफी दूर तक प्रतीप-यात्रा की। वहां देखा कि पानी छिछला है। पानीके अन्दर छिपे हुए पत्थरोंमेंसे कलकल करता हुआ प्रवाह बहता है। पत्थरोंके बीच भी जहांतक जा सकते थे उतना जा कर हम वापस लौटे। पानी इतना काला-स्याह था कि यमदूतोंके हृदय-में भी धड़कन पैदा करे। इस काले रंगमें किञ्चित्-भूरा रंग मिलाया हो, ऐसा कहीं-कहीं आभास होता था। वापस लौटते देखा, तो नदीका प्रवाह जिस दिशामें बहता था, उस तरफकी एक घाटीमेंसे बादलोंके निद्रालु समूह ऊपर उठ-उठ कर अलोप हो रहे थे। हमने नाववालेसे कहा, 'चलो उस दिशामें।' वह आनन्द तो कुछ अनोखा ही था। पांच मिनट आगे बढ़ने पर देखा कि कंचूर-प्रपातके सिरके नजदीक हम पहुंच रहे थे और बादलोंके समूह तो सात-सवा सात सौ फुट ऊंचे चढ़ कर हमें दर्शन देते थे। अब आगे बढ़ना सुरक्षित नहीं था। पानीके खिचावमें फंसते तो यहीं मोक्ष हो जाता! हम वापस लौटे और ठीक एक बजे विमानके अड्डे पर पहुंचे। हमारे कैमराधारी साथी भी आ पहुंचे। उन्होंने फिरसे खा-पी लिया और सवा बजे हम निकले।

मुझे कल्पना नहीं थी कि एक कल्पनातीत दृश्य तुरन्त देखनेको मिलनेवाला है। नावमें हमने जिस तरह नौकाविहार किया था, उसी तरह हमारे विमानने भी थोड़ा जलविहार किया। मात्र प्रपातका खिचाव देख कर हम जहांसे वापस लौटे

थे, वहांसे वापस लौटनेके बजाय, विमानने 'फर्र्र' करके उड़ान की और प्रपातके ठीक माथे परसे सामनेकी विशाल घाटीमें दौड़ लगाई।

एक विशाल चन्द्राकार पहाड़ पर से पानी कगार परसे नीचे कूद रहा था और हम, गन्धर्वोंके समान, आकाशमें उड़ते-उड़ते पहले ऊपरसे नीचेकी ओर, और फिर आगेसे सिर घुमा कर पीछे सारे प्रपातको नखशिखान्त देख सके। नहीं, यह रूढ़ वर्णन ठीक नहीं है। प्रपातको 'शिखानखान्त' देख सके। नख तो दिखे ही कहांसे? अब प्रपातका सारा दृश्य धीरे-धीरे छोटा होने लगा। पासके पहाड़के कगार कुछ ऐसे डरावने मालूम होते थे कि नीचेकी गहरी घाटीका डर भी हम भूल गये। यह घाटी बहुत लम्बी-चौड़ी होनेके कारण विमानको कोई खास सावधानी नहीं रखनी पड़ती थी। हम एक तरफकी पहाड़ी दीवारके जितने नजदीकसे जाना संभव था, उतने आरामसे जा रहे थे। फिरसे वह तीनों तीन उपनायक जैसे प्रपात दिखाई दिये। विमानकी 'घर्र-घर्र' ध्वनिके सामने प्रपातकी गर्जना आकाशमेंसे हमारे कानों तक पहुंचे, यह सम्भव नहीं था। इसलिए, प्रपातके रोमांचकारी विविध दर्शनोंके साथ प्रपातकी मेघ-गम्भीर आवाज सुननेमें नहीं आई। इतनी एक कमी रही सही, लेकिन हम दर्शनानन्दमें इतने मशगूल थे कि इस कमी की ओर उस समय हमारा ध्यान ही नहीं गया। उस मस्तीके व्युत्थानके बाद, शान्तिमें लिखाते समय ही यह बात याद आ रही है।

वापस लौटते हमारे सारथि कैप्टन विलियम स्मिथने मेरे नक्शेमें मुझे बताया था कि, हम अब केचूरसे वारटिका तक सीधे जायेंगे और वहांसे जरा दाहिने तरफ मुड़ कर जॉर्जटाउन ढाई बजे पहुंचेंगे।

वापस लौटते पहलेके जैसा ही जंगलका विस्तीर्ण प्रदेश। अब तो पोटारो नदी दाहिनी तरफ रह गई। जंगली लोगोंके लिए जिसका महत्त्व सबसे अधिक था और जिसे वे सुधारकी पराकाष्ठा मानते थे—वह पोटारो नदी परका पुल फिर से दिखना सम्भव नहीं था। उस पुलका एक सुन्दर नमूना जॉर्जटाउनके संग्रहालय में देखा होनेके कारण प्रपातकी ओर जाते समय उस पुलकी तरफ मेरा ध्यान गया था। लेकिन, दूरबीनमें उसे देखनेकी मैंने कोशिश नहीं की थी। ऐसी चीजें दूरबीन की नजरमें हम लायें, उसके पहले ही विमान आगे निकल जाता है और मन निराश होता है। आगे चल कर कुरी ब्रांग (Kuri Brong) नदी हमने पार की। ये नदियां जंगलमेंसे गुजरते समय गहरी दरारें करती होनेके कारण, सामान्य नदीके समान उनके किनारे नहीं होते; और बीच-बीचमें जंगलमें छिप जानेके कारण वे डरावनी लगती हैं।

आगे चल कर माझारुनी (Mazaruni) नदीके प्रवाह परसे ही हम उड़ते थे। बाईं तरफसे वह थोड़ी कुछ दीख पड़ती थी। उससे आ कर मिलनेवाली टाकुटु (Takutu) नदी कुछ अच्छी दीख पड़ी। सारथिने चिट्ठी लिखी कि हम एसेक्विबो

और माझारुनी इन दो नदियोंके बीचमेंसे हो कर जा रहे हैं और अब वारटिकाका अड्डा पार करेंगे। आकाशमेंसे वारटिका शहर बहुत खूबसूरत लगता था। वेने-झुएला देशके पहाड़मेंसे आनेवाली सुदीर्घ नदी कुयुनी (Kuyuni) वारटिकाके पास ही एसेक्विबोसे मिलती है।

हमने देखते-देखते एसेक्विबो नदी पार की और महाकांतारका प्रदेश छोड़ कर हम खेतीके प्रदेशमे आये; यानी ऐसे प्रदेश परसे उड़ने लगे। लम्बे-लम्बे अखंडित खेतोंके बीच सुन्दर ढंगसे बसाये गये गांव, नारियलके पेड़, रास्तेके किनारे बहती नहरें—यह सब शोभा निहारते और मनुष्य-जातिकी कदर करते हम डेमरारा नदीके पास आये। अब मनुष्य-बस्ती दूर तक फैली हुई दीख पड़ी। पक्षियोंके घोंसलोके जैसे मनुष्योंके एक-मंजिले घर, एक कतारमें बांधे हुए देख कर नई बस्ती की सुघड़ताका खयाल आया और इस प्रकार इस प्रदेशकी कदर करते-करते ठीक ढाई बजे हम जॉर्जटाउन पहुंच गये!

आज हमने प्रकृतिमाताका जो त्रिविध या पंचविध दर्शन किया, वह सचमुच अद्भुत था। पूरे न होनेवाले जंगल, उनके बीचमे जहां-तहां रास्ते निकालनेवाली नदियां, ऊंचे-ऊंचे पहाड़के कगार, उनके ऊपरसे कायोत्सर्ग करनेवाले प्रपात, यह दृश्य रोज-रोज देखनेके कारण जिनके मनमें कोई कुतूहल नही रहा, ऐसे आत्मा-नन्दी बादल और इस अद्भुत कुदरत पर पुश्त-दर-पुश्त विजय प्राप्त करनी मनुष्य की प्रवृत्तियां—यह सब एक साथ जिस दिन देखनेको मिले, वह दिन केचूरके पानीके रंगके जैसा सुनहरा दिन है। एक दिनमें समाया हुआ आनन्द लिख कर रख सका, इस संतोषकी अपेक्षा उसे पूरा न्याय नही दे सका। इस असंतोषके साथ ही रुकना पड़ता है।

१५. काहिरामें—१

प्रिय बाल,

काहिराके हवाई अड्डे पर हमारी ओरसे दो, और ईजिप्तकी ओरसे दो, ऐसे चार भाई हमें लेनेके लिए आये थे। फलतः, कोई असुविधा न हुई। समयकी भी बचत हुई। हमारे दूतावासकी ओरसे श्री इन्दुप्रसाद सिंह और दीपचन्द वर्मा आये थे। ईजिप्त मेजबानकी ओरसे भाई शौकत और भाई असाद आये थे। मोटरके १८ मीलके सफरके बाद काहिरामें प्रवेश कर पाये।

चि० सरोज भी काहिरामें दुबारा आती है। पहली बार सन् १९३२ ई०में, अपने पिताके साथ वह यहां आयी थी। उस वक्त किसी एक भाईने इन लोगोंकी

थोड़ी बहुत सेवा की होगी, स्त्रीदाक्षिण्य दिखाया होगा। सरोजने उस भाईकी तलाश करनेके लिए पत्र भेजा था। समाचार मिला कि वह भाई अब्देल हलीम घामरायी इस दुनियामें अब नहीं रहे। इन्सानकी जीवन-ज्योति नहीं टिकती, लेकिन सेवाकी सुवास टिकती है।

हमारे लिए तय किये हुए होटलमें रहनेके लिए न जा कर हम श्री इन्दुप्रसाद सिंहके यहां फिलहाल रहनेके लिए आये हैं।

नाश्ता कर, नहा-धो कर दूतावास के Information Centre में हो आये। वहां उस महकमेके उच्चाधिकारी श्री रेहमान मिले। वह तुम्हारे आर्किटेक्ट रेहमान-के—इन्द्राणी-पतिके—बड़े भाई होते हैं। करीब चार साल यहां रहेंगे। ईजिप्तकी हालकी परिस्थितिके बारेमें सब बातें तफसीलसे जानते हैं। उनसे मिल कर बड़ा लाभ हुआ। हूमायूं कबीरकी तरह वे भी बंगाली हैं और उनके सहपाठी भी हैं।

अल-काहिरा इस्लामी संस्कृतिका आजके जमानेका सबसे बड़ा मरकज होनेसे मैंने अनेक सवाल पूछे। दमिश्क (दमिश्कस) के बारेमें भी मालूमात कर ली। यहां-के सबसे पुराने और सबसे बड़े इस्लामी विद्यापीठके बारेमें भी मैंने जानकारी हासिल की। इतनेमें यहांके बड़े आलिम अशाउर मिले। उनके शिष्य बड़े-बड़े ओहदे पर हैं। वे यहांके कुछ बड़े आलिमोंके साथ हमारी मुलाकात करायेंगे।

यहां देशराज कालीय नामके पंजाबी भाई मिले। भारतके शिक्षा-सचिवालयने इनकी सेवाएं यूनेस्कोको उधार दी हैं। यह नौजवान भाई दुनियामें बहुत जगह घूमे-फिरे हैं और पुख्ता खयालके हैं। आगे चल कर अच्छी सेवा करके प्रतिष्ठा पायेंगे, ऐसी मेरे मन पर छाप पड़ी। उनका अच्छा उपयोग किया जा सकता है।

आज शामको हम मुहम्मद अली मस्जिद देखने जायेंगे। वहांसे पिरामीड और गूढ़वादी स्फिन्क्स देख आयेंगे। और, दिनोंका हमारा कार्यक्रम तैयार हो रहा है। अब यहांके सवा चार बजे हैं और भोजनके बादकी नींद सवार होने लगी है। कल दूतावासके डाक-थैलेमें यह खत भेजा जायेगा।

बिस्तर पर लेटते ही थकानके कारण तुरन्त सो जाता हूं। तीन-चार बजे नींद खुलती है, तब तुम्हारे विचार आते हैं। जाप करता हूं और फिर सो जाता हूं। यहां तो तुम्हारे किसीके खत मिलेंगे, ऐसा नहीं लगता और यहांसे खत रोम लौटाये भी नहीं जा सकते। फिर भी कोशिश करूंगा।

कल यहांके इंडियन इन्फॉर्मेशन सर्विसेसके मुख्याधिकारी श्री रेहमानसे मिल-कर बहुत जानकारी हासिल की।

यहांकी सरकारने एक बढ़िया नीति चलाई है। आर्थिक-स्थितिमें चाहे जो बदल हो, तो भी गरीबोंकी रोटीकी कीमत और मोटे कपड़ेकी कीमत न बढ़े, ऐसी व्यवस्था सरकारने की है, इसलिए आम जनता सरकारसे खुश है और राज्य मजबूत

है। शरीरका मध्य भाग पेट ही है। वह सुखी और प्रसन्न रहे, तो और सब बातों-की व्यवस्था, चाहे जिस तरह हो सकती है, निबाही जा सकती है।

नाइल नदी यहांकी प्रजाको अन्नके अलावा अच्छे-से-अच्छे लम्बे रेशेवाली कपास देती है। इसलिए धान्य और धन दोनोंकी बहुतायत हो सकती है। नील नदी काहिरासे गुजरती है। नदीमें एक बड़ा टापू है, जिसमें खासी आबादी है। जैसे पेरिसमें सेन नदी शोभा देती है, वैसे काहिरामें नील नदी। फिर भी मुझे कहना चाहिए कि जैसे जंगलके जानवरकी तेजस्विता पालतू जानवरमें नहीं दिखाई देती, वैसे शहरोंमें दोनों तरफ कैद हुई नदियां अपना गौरव खो बैठती हैं।

पिछली बार काहिरा आया था, तब सूडानमें खारटूम तक जा कर सफेद नील और नील-नील नदियोंका संगम देखनेकी इच्छा थी, लेकिन गफलतमें वह रह गया। इस बार उतना समय ही नहीं है, इसलिए पिछली बारकी गफलत ज्यादा अखरती है। खारटूमके आसपासकी शोभा संगम की शोभा तो है ही। उसके अलावा नदी परके बांधकी योजना देखने-समझने जैसी है।

सन् १९५२ ई०मे यहां ११ दिन रहा था। उस दरम्यान इस्लामके बारेमें एक बहुत अच्छी किताब मैने पढ़ी थी। भारतके एवं पाकिस्तानके मुसलमान मानते होंगे कि इस्लामका रहस्य वे खुद ही जानते हैं। लेकिन, आजकी दुनिया इस्लामी संस्कृतिके धुरन्धरके तौर पर मिस्र देशको ही स्वीकार करती है और अब तो तमाम अरबजातिका नेतृत्व करनेकी महत्त्वाकांक्षा ईजिप्तमे जागी है। पुरानी रूढिनिष्ठ धार्मिकताको अबतक पोषण मिलता था यहांकी अलअजहर नामक विद्यापीठकी मारफत। बादमें रूढिनिष्ठाके खिलाफ बगावत करनेवाले उसी विद्यापीठमें तैयार होने लगे। इस विद्यापीठकी स्थापना सन् ९७० ई०में हुई थी। उस वक्त यह बिल-कुल सनातनी वृत्तिकी थी। सन् १८७१ ई०मे जैसे राजकीय स्वातन्त्र्यवाद जग उठा, वैसे ही धार्मिक विप्लव भी शुरू हो गया। उसमें जमालुद्दीन अल अफगानी और मोहम्मद अब्दु ये दो मुख्य थे। उन्हींकी परम्पराके एक भाई तहांहुसेन हैं। पं० सुखलालजी जैसे वे बचपनसे ही अन्ध हुए हैं। उन्हींके जैसे विद्वान्, बुद्धिवादी और आदर्शवादी हैं। उन्हींकी तरह बड़ी उम्रमें फ्रेंच सीख कर बाकायदा पी-एच्० डी० हुए। इन प्रज्ञाचक्षु तहांहुसेनसे हम मिलने जानेवाले हैं उन्होंने एक फ्रेंच विदुषीसे शादी की है। पति-पत्नी दोनों एक-दूसरेके भक्त हैं।

इसके अलावा और जिनसे मिलनेकी संभावना हो, उनसे मिलनेका मौका निकालूंगा।

हम आई० सी० सी० आर०की ओरसे काहिरामें केन्द्र खोलनेवाले हैं। वह काम मेरे विभागका नही है। फिर भी यहांका वायुमंडल जान लूं, यह इष्ट ही है। आज तो भारत और मिस्र देशके बीच दोस्तीका नाता होने पर भी ज्यादातर आपसमें एक दूसरेके बारेमें अज्ञान ही हैं। दो सरकारोंके बीच घनिष्ठ दोस्ती हो,

इतना काफी नही है। दोनों ओरके विचारक और समाजके सांस्कृतिक नेता एक दूसरेको पहचानें, एक दूसरेकी कद्र करें और परस्पर सहानुभूति बरतें, यह सबसे जरूरी है। और फिर, भारतमें सिर्फ मुसलमान ही ईजिप्तको पहचानें और समझें, यह काफी नहीं है। उनमेंसे दो संस्कृतियोंके बीच हार्दिक सहकार स्थापित नही होगा। भारतके हिन्दुओंको भी इस्लामी संस्कृतिके बारेमें गहरा ज्ञान और दिलचस्पी होनी चाहिए। हमारी विशालता ही हमारा सामर्थ्य होगा। आज तो यहांके लोग जवाहरलालजी और कृष्ण मेनन दोको ही पहचानते है।

आज दोपहरको श्री आर० के० नेहरूसे मिलने जाऊंगा। उसी समय यह खत एम्बेसीमे दे दूंगा।

कल शाम हम पिरामिड और स्फिन्क्स देखने गये थे। स्फिन्क्सका यहांका नाम है 'अबुल हाल', जिसका अर्थ होता है Father of Awe। मुझे लगा कि हम उसे भीष्मपितामह क्यों न कहें? यह स्फिन्क्स है; तो एक भव्य अद्भुत मूर्ति परन्तु पिरामिडके मुकाबलेमे वह नीचे गड्ढेमें है। इसलिए, उसका महत्त्व हमारी पहाड़ परकी बाहुबलिकी मूर्तिकी तरह नजर नही आता।

प्रचण्ड पिरामिडके बड़े-बड़े पत्थर भी हवा, बारिश और धूपके कारण घिस रहे है, कालग्रस्त हो रहे हैं। यह देखकर काल-माहात्म्य ही मन पर ज्यादा जमता है। पिरामिडके बारेमे मेरे खतोंमें कुछ भी न लिखना ठीक। पिछली बार सक्कारा तक जाकर वहांके पिरामिड, वहांका अद्भुत खुदाईका काम, पुराने महलके खंडहर वगैरह बहुत कुछ देखा था। इस बार उत्साह होने पर भी शरीर थक जाता हैं, इसलिए मालूम नही कि सक्कारा जाऊंगा या नही।

हमारे लोग नही जानते कि ईसाई धर्मके प्रारम्भके दिनोंमे, जब यूरोपमें उस धर्मको करीब-करीब नाबूद कर दिया गया था, तब इस मिस्र देशमे ही उसे आश्रय मिला था और यहां बड़े-बड़े ईसाई ध्यानयोगी और तपस्वी पैदा हुए थे। इसलिए ईसाई धर्मके प्राचीन इतिहासमें दिलचस्पी रखनेवालेको ईजिप्तमें ठीक-ठीक समय बिताना चाहिए और शोध-खोज भी करनी चाहिए। मेरी हालत तो यह है कि 'जब दांत थे, तब चने न मिले, और दांत गये, तो चने मिले। इसलिए, मेरा काम भविष्यके भाग्यवान् लोगोंके लिए सूचना और प्रेरणा देनेका ही रहा।

मेरी तबियत यों तो ठीक है लेकिन, कमजोरी काफी आ गई है। कल पिरामिड और अबुल हाल देखते बिलकुल थक गया। हालांकि ज्यादा चला नहीं था। जब शरीर न चले, तब तर्कशक्ति और कल्पना-शक्ति चलती है, इसलिए निभ जाता है। दुनियाकी सबसे अद्भुत चीजोंमेंसे यह स्फिन्क्स भी है। उसके आसपास कितना ही गूढ काव्य लिखा गया है। बैठे हुए सिंहका मानवी मस्तक इस तरहकी कुछ कल्पना है। सिंह अपने अगले पैर फैला कर बैठता है, इस तरह यह मूर्ति एक पहाडमेंसे कुरेदी गई है। अगले पैरके लिए पत्थर न मिला, इसलिए ईंटोंसे काम

ले लिया है। पीछेकी पूंछ अब भी अच्छी है। मूर्तिकी आंखें, नाक और कान काल-बलसे घिस गये हैं। असलमें वे कितने साबुत थे, हम आज नहीं जानते। आज भी अमुक बाजूसे और दूरीसे देखने पर आखोंकी गहराई और चेहरे परका थोड़ा-सा स्मित मन पर असर किये विना नही रहता। पुराण, विद्यागूढ-मानस, मूर्त्तिकला और स्थापत्यके प्रवीण व्यक्तिको इस स्फिन्क्सका गहरा अध्ययन करना चाहिए। आनन्दकुमारस्वामी जैसा ही आदमी यह कर सकता है। सचमुच, स्फिन्क्स प्राचीन-तम युगका एक आध्यात्मिक प्रतिनिधि है।

—काकाके सप्रेम शुभाशिष।

१६. काहिरामें—२

काहिरा, ६-६-१६५८

प्रिय बाल,

दिन बीत रहे है। तुम लोगोंने यहां ईशोपनिषद्का पारायण किया होगा। मैंने कल रातको तीन बजे पारायण किया और अभी सुबहकी प्रार्थनाके वाद हम दोनोंने किया। रवीन्द्रनाथ कहते हैं कि ईश्वरकी कृपासे धीरे-धीरे शोक कम होता जाता है और पवित्र स्मृति उज्ज्वल बनती जाती है और वही मरे हुए व्यक्तिके लिए पोषक सावित होती है।

कल सुबह हम श्री रतन नेहरूसे मिले। पहले उनकी पत्नीके साथ बहुत बातें हुई। अभी-अभी तो ये लोग यहां आये हुए हैं। लेकिन, पत्नीने अभीसे अपना असर करना शुरू किया है। बहुत होशियार संस्कारी महिला हैं। श्री नेहरूके साथ यहां-की तथा आफ्रिकाकी परिस्थितिके बारेमें कुछ चर्चा हुई।

अॅफ्रो-एशियन सॉलिडॅरिटी कमिटीके लोगोंसे मिले। वहां एक बहुत ही मधुर-भाषी रशियन भाई अब्दुल रशीदसे मुलाकात हुई। वे ताशकन्दके हैं और ताश-कन्दका भारतके साथ पुराने जमानेमें काफी सम्बन्ध था। हिन्दुस्तानमें वे काफी घूमे है। अंग्रेजी अच्छी बोलते हैं और भारतीय शिष्टाचार जानते हैं। दो-तीन चीनी भाई और बहनें भी वहां थी और ईजिप्शियन लोगोंमें कॅमीलिया नामकी एक लड़की थी, जिसकी सरोजके साथ अच्छी दोस्ती हुई। उस बहनका असल नाम होगा कामिला (जो कमाल—Perfection—तक पहुंची हुई है)। फिर, उसीका पश्चिमी रूप बनाया होगा—कॅमीलिया, जो एक मजेदार सफेद फूल होता है।

हमारे मेजवान श्री मिस्त्री भाईने कल दो बहनोंको और एक भाईको भोजनके लिए बुलाया था। उनमें जो विद्याबेन किर्लोस्कर थीं, वह तो हमारे डॉ० पंडितकी

लड़की ! २०, अकबर रोड, नई दिल्ली पर हम बहुत बार साथ रहे थे। दादा साहब नहीं थे, तब हम पंडित कुटुम्बके ही मेहमान थे। विद्याके पति भाई किर्लोस्कर भारतके एयर फोर्समें हैं। यहांकी सरकारने हमारी सरकारसे छह-आठ प्रवीण लोगों की मागकी थी, उनमेंसे श्री जनार्दन किर्लोस्कर हैं। मैंने उनसे कहा कि किर्लोस्कर-वाडीके मूल संस्थापक बेलगाममें हमारे शिक्षक थे। उनका एक लड़का मेरा सहपाठी था। भाई जनार्दन हंसमुख, होशियार युवक हैं। महाराष्ट्रीय संस्कारिताके उत्तम प्रतिनिधि गिने जा सकते हैं। आज रातको हम उनके वहां भोजनके लिए जानेवाले हैं। यहां गुजरातीमें और मराठीमें बोलनेका मौका मिलता है, यही एक बड़ा आनन्दका विषय है। दूसरे भाई कान्तिलाल शाह सिंधिया स्टीम नेविगेशनके अधिकारी हैं। वह तो हमारे श्री पोपटलाल भाईके पुत्र निकले। फिर तो पूछना ही क्या ? कान्तिलाल भाई जब मराठी बोलते हैं, तब ठसकेके साथ बोलते हैं। तीसरी बहन थीं श्रीमती बनर्जी। आशा बहनके पति United Nations Organisation द्वारा यहांकी सरकारकी सेवा कर रहे हैं ? नृपेन बनर्जी नामके एक बहुत उत्तम शिक्षाशास्त्री थे, जिनकी किताबोंकी सिफारिश मैंने बहुत बार की है। उनके ही कुटुम्बके ये लोग हैं। इस प्रकार भोजनके समय अनेक प्रान्तोंका सम्मेलन हो गया। चौथे भाईको कैसे भूल सकते हैं ? वह थे राजस्थानके फारूकी साहब। मैंने उनसे पूछा, 'राजस्थानके ऊंट छोड़ कर आपने मिस्र देशके ऊंट क्यों पसन्द किये ?' वह पुराने परिचितोंमेंसे हैं। पिछली दफा काहिरा आया था, उस समय भी इसी घरमें ये भाई मिले थे।

भोजनके बाद कुछ आराम करके श्री ओबेदुर्रहमानके यहां कॉकटेल पार्टीमें जानेकी हिम्मत की ! यहांके मुसलमान—बहनें भी—विस्की लेते संकोच नहीं अनुभव करते। वह मजलिस अपेक्षासे कुछ अधिक बड़ी थी। समाचार-पत्रोंके प्रतिनिधि कृत्रिम जिज्ञासासे सवाल पूछते। उनको भी मैंने रसपूर्वक जवाब दिये।

० ० ०

१०-६-१६५८

अहमद युमेफ नामके General Director of Fine Arts हैं। उनके साथ बहुत बातें हुईं। दूसरे भाई हैं भाई सालेह ताहेर। वे हैं Director of Museums of Modern Arts। इन दोनोंसे आज ही मिलने जानेवाले हैं।

ऐसी Cocktail पार्टी हम लोगोंको बहुत कृत्रिम मालूम होगी। जो इसके आदी हो गये हैं, उनको वही स्वाभाविक लगती होगी। हमारे पुराने भोज और उनके आग्रहोंकी अपेक्षा बुफे डिनर्स (Buffet dinners) पार्टियां काफी अच्छी होती हैं। लेकिन कॉकटेल पार्टीमें इतने सारे लोगोंसे घंटे-डेढ़ घंटेमें थोड़ा-थोड़ा समय मिल लेना और भीड़के आदी बन जाना, यह कुछ समझमें नहीं आता। इतने आदमियोंको देखनेके संतोष और थकानके साथ घर लौटे और फिर पेट-भर भोजन

करके सो गये।

एक बात करनेकी रह ही जाती है। शामके पांच बजे Indian Union में सब भारतीय लोग इकट्ठा होनेवाले थे। उसमें पांच-छः सिंधी, दूसरे स्थानिक तथा दूतावासके भारतीय और आठ-दस बहनें थीं। यहां मैंने छोटा-सा भाषण किया। उन लोगोंने उपदेश मांगा था। मैंने अपने जगह-जगहके अनुभव बयान किये। पर्याप्त पैसोंके बिना इंडियन यूनियन किस तरह चल सकेगा ? भारत-सरकार कुछ मदद करेगी या नहीं ? आदि बातें यूनियनके सेक्रेटरी श्री टंडनने कीं। मेरे पूछने पर लोगोंने कहा कि यहां नाइल नदीका बड़ा वार्षिक उत्सव होता है। मैंने कहा कि हम उसमें उत्साहके साथ शरीक हो जाएं।

बहनें सब हमेशाके मुताबिक एक तरफ बैठी थीं। उनको मेरे भाषणकी अपेक्षा चि० सरोजकी दोस्तीमें अधिक रस मालूम हुआ और मानों उनकी एक अलग सभा बन गई। मुझे यह अच्छा लगा; क्योंकि जिसमें रुचि नहीं है, ऐसी बातोंमें गंभीर बन कर बैठनेकी अपेक्षा जीवित वायुमंडल पैदा करना और उसका मजा लूटना उनके लिए अच्छा था। और मुझे भी लगा कि स्तब्ध मूर्तियोंकी अपेक्षा बातोंमें लगी हुई बहनें अधिक अच्छी।

ऐसी संस्थाएं केवल संकल्पसे नहीं चलतीं। सामाजिक वृत्तिवाला कोई आदमी चलाये, तभी चल सकती है। फारूकी साहेब यथाशक्ति प्रयत्न करते आये है। लेकिन पाकिस्तान होनेके बाद यूनियनके काफी सदस्य अलग हो गये और उन्होंने अपनी संस्था खड़ी की।

कल यानी ९ तारीखको सुबह हम डॉ० शेख महम्मद हिबल्ला, Dean of the Faculty of Juris prudence से मिलने गये। उनका दफ्तर बहुत दूर और शहर के बीचमें था। मकान बहुत भव्य, लेकिन अव्यवस्थित रखा हुआ। मुझे तो उत्तर नायजीरियाके कान शहरका वायुमंडल याद आया। यह भाई विद्वान् और काफी यात्राएं किये हुए थे। मैंने उनके साथ चंद गभीर बातें छेड़ी और हम वापस लौटे।

वहांसे वापस सुधरी हुई नई बस्तीमें आये और सचिवालयमें Director of Culture in the Ministry of Education डॉ० फातिहसे मिलने गये। रास्ते-में इतनी भीड़ थी ! और, पुल पर तो दम घोंटनेवाली Bottle-neck ! मोटर किसी भी प्रकार बाहर निकले ही नहीं और सचिवालयमें भी Lift के सामने बीस-बीस लोगोंका क्यू ! Lift में जापानके समान ही आरोहियोंको ठूंस-ठूंस कर भरते हैं। लिहाजा हम आधा घंटे देरीमें पहुंचे। इतनेमें डायरेक्टरको कबिनेटमें जाना पड़ा। उनके सहायक डॉ० अतीफके साथ सब बातें कीं। यह भाई बहुत अच्छे लगे—सज्जन और रसिक। उनसे मिलनेके संतोषके साथ वापस लौट रहे थे इतने-में, दैवयोगसे, डॉ० फातिह अपने स्थान पर वापस आ गये, इसलिए उनसे मिलने जाना ही पड़ा। फिरसे वही पहलेकी बातें ! यह भाई ठिगने, फुरतीले, कुशल और

उत्साही थे। दिखनेमें बिलकुल भारतीय। उनके उत्साहके कारण एक आफत आ पड़ी। उन्होंने कहा, 'आपकी बातें इतनी महत्त्वकी हैं कि आपको हमारे स्थायी Under Secretary नगीब हाशिमको मिलना ही होगा। मैं अभी उनके साथ मुलाकात तय कर देता हूं'। (यहां मिनिस्टरकी मददमें रहनेवाले सबसे उच्च सेक्रेटरीको स्थायी अण्डर सेक्रेटरी कहते हैं; क्योंकि अंग्रेजी-पद्धतिके अनुसार मिनिस्टर ही सेक्रेटरी माना जाता है।) लिहाजा आज नौ बजे उनसे मिलने जाना है।

शामके साढ़े छह बजे डॉ० तहा हुसैनसे, काहिराके बाहर, पिरामिडके रास्ते, उनके सुन्दर घरमें मिल आये। गरीब मां-बापका देहाती लड़का—जन्मांध—आज अरबी भाषाका आदरणीय लेखक। फ्रांसमें जाकर Ph. D. हुए है। अब तो निवृत्त जीवन जी रहे हैं। उनके साथ करीब एक घंटा सुन्दर बातें हुई। अन्तमें मैंने कहा, 'I have met today one of the heaalthiest minds' (आज मेरी एक बहुत ही नीरोग मनके आदमीके साथ मुलाकात हुई है)। उन्होंने भी भारतकी कुशाग्रबुद्धिकी बातें की। बुनियादी तालीमके बारेमें उनके मनमे श्रद्धा है। Unesco की ओरसे यहां दो केन्द्र चलते है। अमेरिकासे वापस लौटते यहां ठहर कर ये दो केन्द्र देखनेका उन्होंने आग्रह किया। प्रभावशाली व्यक्तित्व है और आज के जमाने पर उनका बड़ा असर है।

तहा हुसैनके यहांसे विद्या किर्लोस्करके वहां भोजनके लिए गये। पन्द्रह-बीस मीलकी वह यात्रा थी। जनार्दन, विद्या और उनकी छोटी-सी लड़की नीता मजेके प्रसन्न लोग हैं। घर पहुचते ग्यारह बज गये।

आज सुबह नौ बजे अंडर सेक्रेटरी अहमद नगीब हाशिमसे मिलने गये। उनसे मिले यह अच्छा ही हुआ। आदमी होशियार है। काफी अधिकार रखता है। उन्होंने I. C. C. R. के बारेमें सविस्तर जानकारी प्राप्त की। दो छोटी-सी किताबें दी। फोटो निकलवाये और कहा कि किसी समय वह स्वयं अल अजहरमें हिन्दुस्तानका इतिहास पढ़ाते थे। शकुन्तला नाटक उनको बहुत पसन्द है। वापस लौटते ईजिप्तमें आ कर इस देशका विकास देखनेका उन्होंने बहुत आग्रह किया और अन्तमें ईजिप्त-के सबसे बड़े इतिहासकार शफीक गुरबालके साथ कल सुबह मुलाकातकी उन्होंने व्यवस्था की। ये गुलरबाल इतिहासविज्ञ अर्नोल्ड टॉयन्बीके शिष्य हे। इतना कहने-के बाद अधिक कुछ कहनेकी जरूरत नही है। कल घरसे गुरबालके यहां और वहां-से हवाई अड्डे पर जानेके लिए श्री नगीब हाशिम अपनी मोटर भी देनेवाले हैं।

उनके वहांसे आधुनिक कला संग्रहालय Museum of Modern Arts के Director नियामक श्री सलाह ताहेरसे मिलने गये। उनके साथ बातें हुई। संग्रहा-लयके चित्र और मूर्तियां देखीं और वहांसे गये डॉ० अहमद युसेफसे मिलने। वे शिक्षा-विभागमें ललित कलाओंके शिरोमणि नियामक हैं। यहांके विख्यात

स्फिन्क्सका एक छोटा-सा नमूना वे मुझे भेंट देनेवाले हैं। वह नमूना हमारे मेजबान श्री मिश्रीलाल मेहता एक-दो महीनेमें बंबई जा कर पहुंचा देंगे।

इसी स्थान पर मिश्रीलालके बारेमें भी कुछ लिखूं। ये राजकोटके तेजपाल कुटुम्बके हैं। इस मिस्र देशमें उनका जन्म हुआ, इसलिए उनको मिस्री भाई कहते हैं। कुशल, व्यवस्थित और प्रेमल स्वभावके हैं। उनसे हमें बहुत मदद मिली। हमारी हरएक सुविधाका खयाल रखते हैं। इन्टर साइन्स तक शिक्षा प्राप्त की है। यहांकी अरबी भाषामें अपना काम चला सकते हैं। उनके चाचाका लड़का कुमुद भाई उतना ही अतिथिशील, विवेकी युवक है। आज ऑटोग्राफ देते मैंने लिखा— 'God bless this hospitable roof'। मेहमाननवाजीकी सुगन्ध कायम रहती है।

दोपहरमें हम Higher Council of Arts and Literature वाली संस्था-में, अॅफ्रो-एशियन कान्फरेन्सवालोंसे मिलनेके लिए गये थे। वहां सात-आठ अच्छे अरबी कवियोंसे मुलाकात हुई। रवीन्द्रनाथ, गांधीजी, भारतीय भाषा, नेहरू और तिलकके बारेमें बातें हुई।

दोपहरके भोजनके लिए हमें हमारे राजदूतके यहां आमंत्रण था वहां हम दो तथा एम्बेसीके लिए एक सिन्धी कर्मचारी श्री खिलनानी और उनकी पत्नी थे। श्रीमती नेहरूने बहुत प्रेमसे खिलाया और श्री नेहरूने चीनकी स्थिति और प्रगतिके बारेमें विस्तारसे चर्चा की; क्योंकि हम उन्हें पेकिंगमें मिले थे।

आज शामको नील नदीके किनारे चन्द ईजिप्शियन लोगोंसे मिलने जाना है।

० ० ०

जिस दिन काहिरा पहुंचे, उस दिनकी एक बात शायद लिखनेकी रह गई है। हरएक बड़े शहरमें होती है, वैसे यहां भी काहिराकी नई बस्ती भव्य रूपसे फैलती जा रही है। यहां लगभग सभी मकान पांच-सात मंजिलोंसे, तीस-पैंतीस मंजिलों तक पहुचे हैं। इस बस्तीका जो भाग नदीके बीचवाले टापूमें है, उसको गजीरा कहते हैं। टापूके लिए शब्द है 'गजीरा'। नई बस्तीके एक बड़े मुहल्लेको नाम दिया है 'हेलिओपोलिस' (Heliopolis) हेली यानी सूर्य। यह शब्द संस्कृतमें भी है और ग्रीकमें भी। किसने किससे ले लिया, कहना मुश्किल है। और पोली यानी पुरी, शहर। वह भी दोनों भाषाओंमे है। इस हेलिओपोलिसमें एक बड़ा पूरा मुहल्ला एक बेल्जियन स्थपतिने तैयार किया है। और, उसके अन्दर उसने अपने रहनेके लिए एक घर—या महल—तैयार किया है, जिसे हमारे यहांके लोग बिरला-मन्दिर कहते हैं। उसकी शैली बिरला-मन्दिर जैसी गिनी जा सकती है। लेकिन सुन्दरतामें यह इमारत बहुत श्रेष्ठ है। सचमुच यह मकान हेलिओपोलिस-की सुन्दरतम किरण है।

आज इतिहासकार मुहम्मद शफीक गरबलसे मिल कर हवाई अड्डे पर जायेंगे

और वहांसे बारह बजे निकल कर साढ़े चार बजे रोम पहुंचेंगे। अब वहींसे खत लिख सकूंगा।

अबतक एक गुजराती घरमें रहनेके कारण और हमारे दूतावासके स्वदेशी लोगोंकी मदद मिलती रहनेके कारण और ईजिप्शियन लोगोंकी हुलिया और स्व-भाव हमारे जैसा ही होनेके कारण हमने स्वदेश छोड़ा है, ऐसा कभी लगा ही नही। रोम पहुंचनेके बाद लगेगा सही। अबतक मेरी तबीयत उत्तम रही है। आगे भी उसको संभाल लेनेकी कोशिश करूंगा। तबीयतके आधार पर ही तो यात्रा हो सकेगी। अकेले health certificateसे नहीं बल्कि health अच्छी होनी चाहिए। तेरे पत्रकी राह देख रहा हूं।

—काकाके सप्रेम शुभाशिष।

१७. रोममें

रोम,
१२-६-१९५८

प्रिय बाल,

काहिरासे निकलते समय तुझे पत्र भेजे थे, वे मिल गये होंगे।

काहिरासे सवेरे नौ बजे निकले। रास्तेमें डॉ० महम्मद शफीक गुरबालसे मिले। अपने देशके वे एक बहुत बड़े इतिहासकार हैं। उनके साथ इधर-उधरकी बातें हुईं। बारह बजे हमारे हवाई जहाजने उड़ान किया। फिरसे हमें अपनी घड़ी दो बार पीछे करनी पड़ी। एक बार एथेन्स पहुंचने पर, ग्रीस देशमें और दूसरी बार रोम पहुंचते इतालियाका समय चलानेके लिए। काहिरासे एक पारसी भाई श्री मार्शल और उनकी लड़की हमारे साथ थे। वे लोग एथेन्स उतर गये। बम्बईमें बड़े-बड़े यन्त्रों (Heavy machinery)का व्यापार करते हैं। भूमध्य समुद्र पार करके और अँड्रियाटिक समुद्रका सिरा देख कर दाहिनी तरफ एपिनाइन पर्वतकी शोभा खोजते-खोजते हम रोम पहुंचे। हमारा पायलट उत्साही था। पहले कहता है, 'बूटके आकारकी इटलीके अंगूठे परसे हम गुजर रहे हैं। बाईं तरफ बादलोंमें सिसिली टापू ढका हुआ है।' फिर आगे जा कर कहता है, 'काप्री टापू अब बाईं तरफ दिखाई दे रहा है। वेसूवियस पहाड़ अगर बादलोंमेंसे दृष्टिगोचर हुआ, तो आपको सूचित करेंगे।' लेकिन उस ज्वालामुखीको अपना दर्शन देनेकी परवाह नही थी। स्थानिक साढ़े चार बजे, लेकिन वास्तवमें छह घंटेकी यात्रा करके हम रोम पहुंचे। उस पूरे शहरकी व्योम-प्रदक्षिणा करके उतरना पड़ा, इसलिए शहरकी

सारी शोभा हम देख सके। किसी भी शहरकी अपेक्षा यहांके ऊंचे-ऊंचे मकान अधिक सुहावने दीखते थे। आसपासकी खेती भी इस स्थानकी समृद्धि व्यक्त करती थी।

रोम या रोमा शहर देखते ही असंख्य भावनाएं जागृति हुई। टाइबर नदी दीखी और मेकॉलेकी होरेशियस कविता याद आई। कितने उत्साह और सामर्थ्यसे मेकॉलेने उस पूरी कहानीका चित्र गाया है !

'Oh Tiber ! Father Tiber !
To whom the Romans pray !'

आदि पंक्तिया आज भी मनको उत्साहित करती है। रोमकी स्थापनासे ले कर सीझर तकका, और सीझरसे ले कर रोमन-साम्राज्यके डूब जाने तकका सारा इतिहास मानों इस एक शहरका ही हो, इतना इस शहरका महत्त्व है। रोमन लॉ, ईसाई धर्म, उसका चर्च, स्वातन्त्र्यकी हलचल, यहांका संगीत तथा चित्रकला, स्थापत्य और मूर्ति-विधान, यहांकी प्रजाका साहित्य और उसका पुरुषार्थ, सब कुछ भव्य था। यहांका हरेक आदमी सम्राटोंकी परम्परा समझता था। दुनियाकी सर्व-श्रेष्ठ नगरियोंमे रोमका स्थान काफी ऊंचा है। ऐसे शहरके अनेक विभागोंमे घूमते रहना यही एक बड़ी संस्कार-यात्रा है। वायुयानसे होनेवाला व्योम-दर्शन और मोटरमें बैठकर गली-गलीमें घूमते समय होनेवाला लोकदर्शन दोनों निःसंशय प्रभाव-शाली होते हैं।

यहाके रिवाजके अनुसार हमारे रहनेकी व्यवस्था प्रो० टूची (Tuchi) ने एक उत्तम होटलमें की है। उसका नाम है (Hotel Parioli—यह नाम मुझे भाया। क्योंकि, बंगालमें पारुल नामके बहुत सुन्दर फूल होते हैं। यहां रास्तोंमे जहां-तहां फूल उगाये हुए दीखते है। अधिकतर गुलाबी रंगके कनेरके फूल थे।

यहांकी इमारतें—पुरानी और नई—एक-दूसरेके साथ मिलती-जुलती दिखाई देती हैं। प्राचीन खण्डहर जैसे-के-तैसे रखे हुए हैं। कितने ही पुराने बेहद सुन्दर मकान मानो धूम्रधूसर हो गये हों, ऐसे दिखाई देते हैं। लन्दनमें भी बहुतसे मकान इस तरह मलिन या म्लान दिखाई देते हैं। इससे मकानोंकी प्रौढ़ता बढ़ती ही है, ऐसा नही कहा जा सकता।

होटलमें आ कर खा-पी कर रातके साढ़े नौ बजे पार्टीमें गये। Leftist लोगों-की पार्टीमें Rightists अधिक संख्यामें शरीक नहीं होते। लेकिन, उस दिन इतने बड़े-बड़े लोग आये थे कि खडे रहनेके लिए जगह नही थी। ऐसी कॉकटेल पार्टीमें परिचय-मात्र हो जाता है; लेकिन कोई मनुष्य गम्भीर सवाल पूछ कर अच्छी चर्चा भी करता है। मुझसे भी एक-दो इंच ऊंचा एक कम्यूनिस्ट भाई Unita (युनीटा) नामका एक अखबार चलाता है। उसने बहुत सवाल पूछे। आखिरमें कहा, 'But I must not monopolise you.' दूसरे एक भाईने सवाल किया कि अगर शान्ति

कायम रखनी हो, तो टेक्नोलॉजिकल प्रगतिके बारेमें हमारा क्या रुख होना चाहिए ? उसका अभिप्राय स्पष्ट था कि टेकनोलॉजीको आगे नहीं बढ़ने देना चाहिए। मैंने कहा कि टेकनोलॉजी स्वयं खराब वस्तु नहीं है, लेकिन आज वह विकृत हुई है। मनुष्यका नाश करने पर तुली हुई है। दुनियामें गरीबोंका दुःख अमर्याद है। उसे दूर करनेका सवाल हाथोंमें ले कर विज्ञानशास्त्रीको यंत्रविद्याके द्वारा नया प्रस्थान आरम्भ करना चाहिए।

स्टॉकहोममें जुलाई महीनेके तीसरे हफ्तेमें एक विश्व-शान्तिपरिषद् होनेवाली है। कितने लोग ऐसा ही मानते थे कि उनमें जानेके लिए में यहां आया हुआ हूं। मैंने उनकी यह मान्यता दुरुस्त की और कहा कि वेस्ट इंडीज जानेका कार्यक्रम न होता, तो स्टॉकहोम जा सकता। हम लोगोंने अपनी शान्तिकी तमन्ना अनेक बार व्यक्त की है। अब बार-बार वही व्यक्त करते रहें, तो केवल एक वार्षिक रिवाजका पालन हम करते हैं, ऐसा उसका मतलब होगा। अब हमें चाहिए कि हम शान्ति-स्थापनाकी शक्तिका विकास करें। हम जीवन-मान सुधारनेकी कोशिश करते हैं। उसके बजाय नैतिक मान ऊंचा करनेका प्रयत्न करना चाहिए इत्यादि।

o o o

१३-६-१९५८

कल सुबह अमेरिकन एक्सप्रेस जा कर, तेरा या भाऊका पत्र होगा, इस आशा-से पूछताछ की। वहां सिर्फ अमेरिकासे ही एक पत्र था। आशा है कि आज दूता-वासमें तो जरूर कोई पत्र होगा।

कलका दिन सेन्ट पीटरका कथीड्रल देख लेनेका दिन गिना जायगा। सारी दुनियाके कथलिक लोगोंका यह केन्द्र है। उसके पड़ोसमें ही वॅटिकन है, जिसमें इन लोगोंका जगद्गुरु पोप रहता है। हमने एक घंटेसे अधिक समय सेन्ट पीटर देखने-में बिताया। उसमें इतनी विशालकाय मूर्तियां है कि पश्चिमकी प्राचीन मूर्तिकला सब यहीं उंड़ेल दी गई है, ऐसा कह सकते हैं। बाहर, अन्दर, बाजूमें, आगे, पीछे और ऊपर भी इतनी मूर्तियां रखी हुई हैं कि कदर करते-करते थकी हुई आंखोंको अद्भुत ऐसा कुछ लगता ही नहीं। कहते हैं कि यह कथीड्रल शुरू होनेके बाद पूरा होते-होते तीन सौ साल बीते। धर्मसत्ता और राजसत्ता एकत्र आनेसे कैसे भव्य, लेकिन केवल बाह्य परिणाम आते है, वह यहां देखनेको मिलता है।

जो हाल मूर्तियोंका है, वही हाल है बड़े-बड़े चित्रोंका। एक जगह सेन्ट पीटर की ऊंची मूर्ति है। भक्त उसके दाहिने पैरका हाथसे स्पर्श करते हैं; चन्द लोग पैरके अंगूठेको चूमते हैं। दीर्घकालकी ऐसी प्रेमादरकी सेवाका स्वीकार करते-करते पीटरका अंगूठा घिस कर पतला बन गया है। मैंने सोचा कि उस अंगूठेकी दया अकेला मैं क्यों करने जाऊं ? इसलिए, मैंने भी चरणके उस पत्थरका स्पर्श किया।

दूसरी एक मूर्तिमें क्रूस परसे उतारनेके बाद ईसाका शरीर उसकी मां गोदमें

ले कर विषादपूर्ण नजरसे उसकी ओर देख रही है—इस प्रकारका दृश्य है। माता मेरीका शरीर ईसाके शरीरकी अपेक्षा छोटा है। इसलिए करुणाका वायुमंडल अधिक वेचैन करनेवाला बनता है।

जिस तरह पेरिसमें नेपोलियनकी कब्र निचले भागमें रखी गई है और देखनेवाले मानो गैलरीमें खड़े रह कर गरदन नीचे झुका कर ही देख सकते हैं, उसी प्रकार यहां भी पीटरकी कब्र और उसके पासका पोप पायसका बुत निचले भागमें हैं और इसलिए भक्ति-नम्र होकर ही यह दृश्य देखना पड़ता है। यहांके दृश्योंका वर्णन करते हुए समय पूरा होगा, लेकिन वर्णनका अन्त नही आ सकेगा।

—काकाके सप्रेम शुभाशिष।

१८. म्यूनिक — १

रोम, १५-६-१६५८

प्रिय बाल,

आज श्री सीझर ओरसीनी नामका उच्च कुलका युवक मिलनेके लिए आनेवाला है। उसके पिता हिन्दुस्तानमें इतालियाके प्रतिनिधिके तौर पर आये थे। उनके इस इकलौते लड़केने एक महाराष्ट्रीय लड़कीके साथ शादी करनेका तय किया। माता-पिता समझदार। लड़केको नाराज करनेकी अपेक्षा उसकी पसन्दगीका उन्होंने स्वागत किया। हमारे पोहेकर उनको पहचानते हैं।

कल हम यहांकी एक अच्छी शिक्षिका और समाज-सेविका श्रीमती ब्रूना गोब्बी का घर देखने गये थे। घर छोटा है, सादा है, कह कर संकोच करती थीं। हमें तो बहुत अच्छा मालूम हुआ। उनके यहां हमने एप्रिकोट (जरदालू) का रस पीया। बहुत स्वादिष्ट था। उनकी बारह सालकी लड़की पॅट्रीशिया बिना किसी संकोचके घरकी सुन्दर-सुन्दर चीजें हमें बताती थी। फिर, उसने चित्र-मंजूपा खोल कर अपनी ठेठ बचपनसे खींची हुई और क्रमसे रखी हुई तस्वीरें उत्साहके साथ दिखाईं। इनमें एक तस्वीर थी, जिसमें वह रोती थी। उसकी ओर उसने हमारा ध्यान खीचा। 'मादाम, मादाम' कह कर वह अक्सर सरोजका ध्यान खींचती रहती। तैरना कैसे सीखी, नाचना कैसे सीखी, यह सब उसने बताया। उसके बाद मेरी उंगली पकड़ कर छज्जेके फूल उसने मुझे बताये। फिर, एक परदा हटा कर पिंजड़ेके सुन्दर-सुन्दर पक्षी बताये। बीच-बीचमें कुत्तेको प्यार करके बिस्कुट भी खिलाती जाती। बहुत मजा आया।

० ० ०

म्यूनिक, १६-६-१६५८

कल रोमसे ज्यूरिक पहुंचते रास्तेमें आल्प्स पर्वतका जो दर्शन किया था, वह अनुभव एक खतमें तुझे लिख कर, खत सीधा बंबईके पते पर भेजा था, इस आशासे कि डॉ० नाणावटीके जरिये वह खत तुझे और चि. सतीशको जल्द-से-जल्द मिले।

ज्यूरिकसे हम एक घंटेकी उड़ानके बाद म्यूनिक पहुंचे। यहां हमे लेनेके लिए भाई श्री आल्फ्रेड तकलीफ उठा कर समय पर आ पहुंचे थे। उनकी बहन एलिजाबेथ, इंडिया इन्स्टीट्यूट्की मंत्री श्रीमती रेडरर और उनके पति श्री रेडरर भी आये थ। मिलते ही सब लोगोंने हमारा इस तरह स्वागत किया, मानों घरके ही लोग मिलते हैं। इण्डिया इन्स्टीट्यूटकी ओरसे हमारा बाकायदा स्वागत आज शामको आठ बजे निश्चित किया है। उसके लिए संस्थाके अध्यक्ष डॉ० थीयर फेल्डर स्टुटगार्ट-से—आये हुए है। भारत और जर्मनीकी दोस्तीके लिए और भारतीय विद्यार्थियों की सुविधाके लिए यह भाई पिछले ३० सालोंसे प्रवृत्ति चला रहे हैं। और, ताज्जुबकी बात यह है कि उन्होने अबतक भारत देखा नहीं।

हमें होटलसे पेन्शन डॉक्समें ठहराया गया है। मेरा कमरा चौथी मंजिल पर है। चि० सरोजका कमरा पहली मंजिल पर है। भाई आल्फ्रेड और उनकी बहन दूसरी मंजिल पर रहते हैं। जब कि आज आये हुए डॉ० थीयर फेल्डर मेरे पड़ोस-वाले कमरेमें ठहराये गये हैं। खुराक और सुविधाएं बहुत अच्छी हैं।

कल शामको पांच बजनेके बाद होटलमें असबाब रख कर हम तुरन्त श्री और श्रीमती रेडररके घर गये। उनका घर म्यूनिकके बाहर, करीब दस मील दूर, ईसर नदीके किनारे है। ईसर नदीके बारेमे मैंने बिलकुल बचपनमें पढ़ा था। होहेनलिन्डन करके एक युद्धका वर्णन करती कविता है। उसमें ईसर नदीका उल्लेख है—

'and dark as winter as the flow
of Iser rolling rapidly'.

विमानमेंमे ही मैंने चि० सरोजको म्यूनिक, होहेनलिन्डन और ईसरकी रेखा नक्शेमें ढूंढ़ कर बताई थी। ईसर नदी म्यूनिक शहरके बीचमेंसे हो कर गुजरती है (जिस तरह नील नदी काहिरा शहरके बीचमेंसे हो कर आगे बढ़ती है)।

इस ईसर नदीको मेरी लोकमाताओंमें स्थान मिलनेवाला है ही। शहरमे अनेक स्थानों पर ईसरके दर्शन हो ही गये थे। लेकिन, भाई रेडररके घरके पीछे में उस नदीका दृश्य कुछ ऐसा सुन्दर दिखता था, मानों नन्दन वनका एक भाग हो। दोनों तरफ कलौंस सब्ज रंगकी झाड़ी और उनके बीचमें गहरी घाटीमें बहती ईसर और उसके सिर पर बांधा हुआ खूबसूरत पुल। किसी भी तरह मन तृप्त नहीं होता था। हमारी हिमालयीन नदियोंके समान यह नदी भी पिघली हुई बर्फसे परिपुष्ट हुई है। करीब तीस मील दूर जो पहाड़ है, वह हवा साफ होने पर यहांसे दिखाई देता है। रेडररका घर, बस्तीके एक सिरे, एक जंगलके किनारे है। उसके

पड़ोसमें, झाड़ीमें, किसी इतिहास-पूर्वकालीन राजाकी कब्रके अवशेष थे। अब तो ऊंचे-ऊंचे सीधे बढ़े हुए गगनचुम्बी वृक्षोंके वर्तुलसे ही उस कब्रका स्थान पहचाना जा सकता है।

घरके अन्दर भी चित्र, साज-सामान सब कुछ मौलिक, ऐतिहासिक, उत्तम कलाके नमूने जैसा था। श्रीमती एफा (ईवा) रेडररने हमारे लिए शाकाहारके उत्तम पदार्थ बनाये थे। हिन्दी-विद्यार्थियोंकी माके तौर पर वह पहचानी जाती हैं। यह किसीने कहा न होता, तो भी जिस प्रेमसे उन्होंने हमें खिलाया, उस परसे हमें यह मालूम हो जाता। प्रौढ श्री रेडरर बहुत सस्कारी, रसिक और विनोदी व्यक्ति हैं। ये सभी लोग अंग्रेजी उत्तम बोलते हैं, इसलिए भाषाकी कोई कठिनाई नहीं है।

भोजनके समय इन लोगोंने मुझसे पूज्य बापूजीके बारेमें बहुत सवाल पूछे और मैंने भी बिना किसी संकोचके बहुत बातें करके उनकी जिज्ञासा तृप्त की। भोजनके बाद ईसर नदीके किनारे-किनारे हम वापस म्यूनिक लौटे। बीच-बीचमें इस नदीमें से कुछ तालाब जैसे आखात बनाये गये हैं। यहांके लोगोंने अपनी नदीकी जितनी कदर की है, उतना रोमके लोगोंने टायबरकी की हो, ऐसा नहीं लगा। लेकिन यह तो एक मुसाफिरके मन परकी छाप है। इस प्रदेशमें सूर्य-प्रकाशका प्रमाण एक समान नहीं होता। शीतकालमें ठंडक अधिक और दिनके घंटे कम। आजकल उसका बदला लिया जा रहा है। रातके आठ बजे तक तो अंधेरा होता ही नहीं, और सुबह पाच बजनेके पहले ही सूर्य भगवान् दर्शन देते हैं। बारह घंटेका दिन और बारह घंटे की रात यह न्यायोचित व्यवस्था हमारे यहां ही चलती है। यहांकी रात आजकल पूरे आठ घंटेकी भी नहीं होती। वास्तवमें लोगोंको चाहिए कि ऐसी मंहगी रातका पूरा उपयोग करें। उसके बजाय लोग रातके दस बजे भोजन करते हैं और सुबह सूर्योदयके बाद भी बेखबर सो जाते हैं! हमारे जीवनमें जिस प्रकार चांदनीका महत्त्व नही रहा, उस प्रकार इन लोगोंका सूर्य-प्रकाशके बारेमें होनेवाला है। बिजलीकी मददसे जब चाहे तब उतना प्रकाश प्राप्त कर लेनेके बाद मनुष्य अपना जीवन सूर्य भगवान्के आने-जाने पर आधारित क्यों रखे ?

आजका दिन महत्त्वका कहा जा सकता है। आज हम म्यूनिकका अनेक देशों में मशहूर संग्रहालय देखने गये। ईसर नदीके प्रवाहमें एक बड़ा टापू है। उस पर यह संग्रहालय बनाया गया है। Oscar Von Miller —ऑस्कर वोन मिलर नाम के एक इंजीनियरने इसकी स्थापना सन् १९३० ई०मे की। मनुष्य-जातिने कुदरत को पहचाननेके और उससे अपने लिए आवश्यक सामग्री प्राप्त करनेके जो प्रयत्न किये और तरह-तरहके सूक्ष्मातिसूक्ष्म औजार तैयार किये और कुदरतसे हरएक प्रकारकी शक्ति प्राप्त करके उसको काममे लेना शुरू किया, उस सारी प्रवृत्तिका इतिहास यहां प्रत्यक्ष देखनेको मिलता है। म्यूजियमके नीचे बड़ी-

बड़ी सुरंगोंमें, कोयलेकी खदानें किस तरह चलती थीं और अब किस तरह चलती हैं, यह सब विस्तारसे बताया है। उसी प्रकार नमककी खदानोंके बारेमें भी बताया गया है। चि० सरोज और मैं मैसूरमें सोनेकी खदानें देखने पांच-सात हज़ार फुट पृथ्वीके पेटमें उतरे थे, उसका स्मरण हमें यहां हुआ। किमियासे केमिस्ट्री तकका रसायन शास्त्रका सारा इतिहास यहां प्रतिबिम्बित हुआ है। आठ-दस दिन बिताए बिना यह संग्रहालय पूरा देखना असंभव ही था। इसलिए दो घंटोंमें जितना देख सके, उतना देख लिया। उसमें मुख्य तो था प्लँनेटेरियम अथवा ज्योतिर्विलास। मकानके एक गुम्बजमें हम जा बैठे। उसमें बहुत-से विद्यार्थी और उनके शिक्षक भी थे। बीचमें छोटी-छोटी असंख्य दूरबीन जैसी नलियोंका गुच्छ रखा गया था। हमने उत्तरकी तरफ बैठनेकी भूल की, इसलिए म्यूनिकके अक्षांशमें उत्तर ध्रुवके आसपास सप्तर्षि, देवयानी आदि कैसे घूमते हैं, यह सुन्दर ढंगसे देखनेका मौका खोया। वैसे दिखाई दिया सब कुछ, लेकिन पूरा आनन्द नहीं मिला। सूरजको एक कोनेमें रख कर चन्द्र आकाशमें किस तरह दौड़ता है और उसकी कलाएं किस तरह बढ़ती-घटती हैं, यह सब बहुत सुन्दर ढंगसे बताया। चन्द्रको इस तरह सितारोंके बीच कुत्तेके बच्चेके समान दौड़ते देख कर उस पर दया आई! ये लोग अपनी प्रजाको उत्तम ज्ञान देनेके पीछे कितनी मेहनत उठाते हैं! दिमाग चलाते, पैसे खरचते और पुरुषार्थ करते ये लोग थकते ही नहीं। दो महा-युद्धोंमें सब तरहसे जो प्रजा बरबाद हो चुकी थी, अब गेंदकी तरह फिरसे उछलने लगी है: 'प्रायः कन्दुकपातेन पतत्यार्यः पतन्नपि।' इसलिए, ये लोग सचमुच आर्य हैं।

सितारोंका मूक संगीत आकर्ण सुननेके बाद हम संगीत-विभागमें गये। वहां यूरोपके सब वाद्य उनके विकास-क्रमके अनुसार रखे गये थे; इतना ही नहीं, बल्कि एक वाद्य-विशारद उसी क्रमके अनुसार यह वाद्य हमें बजा कर दिखाता था। सभी वाद्य उत्कृष्ट कोटिके और कलापूर्ण थे। कई वाद्य ऐतिहासिक महत्त्वके भी थे। यह सब हमें दिखानेके लिए एक संस्कारी विदुषी बहन फ्राउ मारगरेट कोन्सलमान खास हमारे साथ घूमीं। इस संग्रहालयकी स्थापना करनेवाले इंजीनियर ऑस्कर वोन मिलरकी सेक्रेटरीके तौर पर इस बहनने छुटपनसे काम किया है। इसलिए सारे संग्रहालयके प्रति इनके मनमें वात्सल्य और भक्ति दोनों हैं। चप्पा-चप्पा जानती हैं। लेकिन, दूसरोंका उत्साह देख कर आवश्यक उतना ही समझाती हैं। यह शक्ति सचमुच बहुत महत्त्वकी है और बिरला लोग ही यह बता सकते हैं। अगर समयकी गुंजाइश होती, तो समझाती हुई वह और सब कुछ सुनते हुए हम थोड़ी भी थकान महसूस नहीं करते।

—काकाके शुभाशिष

१६. म्यूनिक—२

प्रिय बाल,

यहां प्रारम्भमें ही कह दूं कि हम बहुत अच्छे मुहूर्त पर यहां म्यूनिक आये हुए हैं। इस शहरकी स्थापनाको आठसौ साल पूरे हो गये। उसका महोत्सव सारा शहर मना रहा था, इस दरमियान हम आ पहुंचे। हरेक मकानके सामने तीस-तीस, चालीस-चालीस फुट लम्बी ध्वजाएं लटकती थीं। जर्मनीमें यह प्रान्त बवेरिया कहलाया जाता है। बवेरिया-राज्यका इतिहास कुछ ऐसा-वैसा नहीं है। एक-एक राजाका स्वभाव अलग। किसी एक राजाने राज्यकी सारी सम्पत्ति, प्रजाहितका ख्याल किये बिना, बड़े-बड़े महल और किले बनानेके पीछे खर्च कर डाली। लेकिन, अब वह किले और महल देखनेके लिए देश-विदेशके लोग आते हैं और उससे लोगों को अच्छी आमदनी होती है। इसलिए, आजकलके लोग उस राजाको बहुत चाहते हैं, जबकि उसके जीतेजी उड़ाऊ राजाके तौर पर उसकी पार्लमेंटने उसे पदच्युत किया था।

हम आए उस दिन रविवार था। कल मंगलवारको खास छुट्टी थी। यह कौन-सा त्यौहार है, इसकी पूछताछ करते यहांकी प्रजाकी गहरी भावना और उसके पीछेका तीव्र जख्म हम समझ पाये। पिछले युद्धके अन्तमें रशिया, फ्रांस, इंगलैड और अमेरिका—इन चारोंने मिल कर जर्मनीके टुकड़े किये। आज पूर्वकी ओरका रशियन जर्मनी और पश्चिम तरफका स्वतन्त्र जर्मनी ऐसे दो भाग माने जाते हैं। इसलिए, अपना देश अभी विभक्त है, एकता अब तक साधी नहीं गई—उसका स्मरण जागृत रखनेके लिए और किसी दिन देशको साध कर एक करना है, यह संकल्प दृढ करनेके लिए यह राष्ट्रीय छुट्टी मनाई जाती है।

चार बजे हम भारतीय विद्यार्थी-संघसे मिलने गये थे। सौराष्ट्रकी इन्दु पटेल नामकी एक विद्यार्थिनी और दूसरे दो हिन्दी-विद्यार्थी होटलमें मिलने आये और चि० सरोजके साथ चार बजेका समय तय करके गये थे। वैसे तो यहां अस्सी भारतीय विद्यार्थी हैं। सबको खबर देनेका समय नही था। जिन बारह-पन्द्रह विद्यार्थियोंको खबर मिली, उतने इकट्ठे हुए थे। दिल्ली, पंजाब, बंगाल, बिहार गुजरात, कोंकण, महाराष्ट्र और मद्रास तथा मैसूरके भी विद्यार्थी थे। बहुत बातें हुई और बादमें सबको हलुआ खिलाया गया। वहांसे हम वापस लौटे। इतनेमें स्टुटगार्टवाले डॉ० थीअर फेल्डर, जो यहांकी इण्डिया इन्स्टीट्यूटके अध्यक्ष हैं, मिले। आज शामको हमारे स्वागतके लिए वे खास तौरसे आये हुए थे। हमको और उनको भाई एरन्स्ट रेडरर घुमाने ले गये। इन सज्जनोंको म्यूनिकके सौन्दर्य-स्थलोंका ठीक ख्याल है। म्यूनिकके बाहर जहां सुन्दर-से-सुन्दर वनोपवन हैं, रास्ते सुघड़ और चिकने हुए हैं, वहां अचूक देखने ले जाते हैं। पहले तो हमने एक

पुराना राजप्रासाद देखा। उसके पीछेका बड़ा दूर तक लगाया हुआ बागीचा, उसके अन्दर खड़ी की हुई संगमरमरकी मूर्तियां, पानीसे चमकती नहरें आदि देख ली। उसके बाद एक तालाबके आसपास उपवन देखने गये। वहांसे लौट कर हम अपने स्वागतमें हाजिर हुए। म्यूनिकके चुनिन्दा विद्वानोंमेंसे बीस-पच्चीस लोगोंको आमन्त्रित किया गया था। एक छोटे-से कमरेमें सब आ कर खड़े हुए। सबका परिचय करानेके बाद डॉ० थीयर फेल्डरने स्वागतका भाषण, अंग्रेजीमें लिखा हुआ पढ़ सुनाया और हम सब भोजनके लिए बैठ गये।

तीस-चालीस लोगोंको खिलाते इंस्टीट्यूटको काफी खर्च हुआ होगा। ऊपरसे द्राक्षासवका खर्च फिर अलग! और श्रीमती रेडररने इसके पीछे काफी मेहनत उठाई थी। सबको परोसतीं और सुविधाकी ओर ध्यान देती। बहुत ही प्रेमल बहन हैं। म्यूनिकमें अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियोंकी 'मां'के तौर पर वह पहचानी जाती हैं। पेट भर भोजन करनेके बाद लोगोंने मुझसे गांधीजीके बारेमें चार शब्द कहने के लिए कहा। मैंने गांधीजीकी शिक्षा-विषयक दृष्टि, सत्याग्रहका स्वरूप,अहिंसा की आवश्यकता, सर्वधर्मसमभाव आदि अनेक पहलुओंके बारेमें थोड़ा-थोड़ा कहा, फिर प्रश्नोत्तरी हुई। राजघाट-समाधिके बारेमें एक बहनने पूछा। चुनांचे मैंने अपनी अन्त्यविधि और अग्नि-संस्कारके बारेमें कुछ कहा। फिर, उन लोगोंने मुझे थोड़ा संस्कृत सुनानेकी सूचना की। मैंने 'प्रयत: श्राद्धकाले वा' जो बोला जाता है, वह ईशोपनिषद्-शान्तिपाठके साथ गाया। उसका असर सोचा था, उससे बहुत अधिक हुआ। (मेहमानोंमेंसे एक भारतीय सज्जनने तिलक और गांधीजीके बीचके मनभेदके बारेमें सवाल पूछ कर अपने औचित्यके अभावका प्रदर्शन किया। मैंने उसका लाभ उठा कर तिलक, गांधी और नेहरू इस त्रिपुटीकी खासियत और परस्पर आदर के बारेमें कुछ विस्तारसे कह कर भारतीय स्वभावकी खूबी विशद की और वायुमण्डलका पावित्र्य फिरसे स्थापित किया।) डॉ० हॉफमान नामके एक बड़े संस्कृत पंडित मेरे सामने बैठे थे। कहने लगे, 'आपके उच्चारण इतने अच्छे हैं कि ईशोपनिषद् अक्षरश: समझमें आ गया।' यह सज्जन यहां संस्कृत, पाली और तिब्बती भाषाका साहित्य और तत्त्वज्ञान सिखाते हैं। मेरी बाजूमें विख्यात शिक्षाशास्त्री डॉ० स्नाइडर और एक बहन दोनों बैठे थे। डॉ० स्नाइडर की उम्र ७७ सालकी है। उनके भी दो लड़के हैं और वे शिक्षाके बारेमें गहरी रुचि रखते हैं।

इंस्टीट्यूटसे घर आ कर बिस्तर पर लेटते साढ़े ग्यारह या बारह बजे होंगे। म्यूनिककी संस्कृतिके प्रतिनिधियोंसे मिल कर आजका दिन सार्थक हुआ।

दूसरे दिन दो शिक्षाशास्त्रियोंसे खास तौरसे मिलनेका समय निश्चय किया गया था। उसके अनुसार हम एक रेस्तरांके आंगनमें पेड़के नीचे जा बैठे। श्री-स्नाइडरके साथ आये हुए दूसरे शिक्षाशास्त्री सज्जनका नाम अटपटा था। यह

विद्वान् सिनेमाकी प्रवृत्तिके बारेमें भी बहुत जागरूक हैं।

राष्ट्रका चारित्र्य मजबूत रखनेके लिए क्या करना चाहिए? इस विषयकी चर्चामें प्रारम्भ हुआ। धर्म, घरका वायुमंडल, सामाजिक परिस्थिति, शिक्षाशास्त्री की लगन और राष्ट्रीय नेताओंका उत्साह—इन सब तत्त्वोंकी हमने चर्चा की। मां-बापोंको सिखानेके लिए इस देशमें खास साहित्य और व्यवस्था है—यह सुनकर मुझे ईर्ष्या हुई। शिक्षकोंको पर्याप्त तनख्वाह मिलनी चाहिए, समाजमें उनकी प्रतिष्ठा होनी चाहिए, राज्यकर्ताओंको शिक्षकोंका अपने कामके लिए उपयोग नहीं करना चाहिए—आदि बातोंमें हम एकमत हुए।

यहां प्राथमिक शालाके शिक्षक भी कॉलेजकी शिक्षा पूरी करके तीन साल शिक्षाशास्त्र सीखनेमें बिताते हैं, यह सुननेके बाद मनमे आया कि ऐसा दिन भारतमें कब उगेगा? यहां सुना कि प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा पूरी होनेके बाद विद्यार्थीको 'पढ़, पढ़' कहके कोई परेशान नहीं करता। बालिग हो जानेके बाद अपनी जिन्दगी अच्छी तरहसे उपयोगमें लाने या जाया करनेकी छूट विद्यार्थीको होनी चाहिए, ऐसी यहांके लोगोंकी मान्यता है। भाई स्नाइडरने पूछा कि, 'क्या भारतमें इकतीस विश्वविद्यालय हैं? इतनी यूनिवर्सिटियोंके लिए आप प्रोफेसर कहांसे लाते हैं?' ऐसी चिन्ता उन्होंने व्यक्त की। इस देशके शिक्षक और प्राध्यापक राजनीतिक पक्षोंके झगड़ोंसे चाहे उतने मुक्त रह सकते हैं, यह अच्छा है।

आलूदा और उनकी बहनके साथ एक इटालियन रेस्तरांमें भोजन किया। घर आ कर आराम किया। इन्दु पटेल हमसे मिलने आई थी। उसके साथ थोड़ी बातें कीं और कल रात तय हुआ था, उसके अनुसार हम श्री और श्रीमती रेडररके साथ यहांसे बीस मील दूर एक सरोवरके किनारे एम्मरलैण्ड एस्टेटमें रहनेवाले श्री रूपेर्टी कुटुम्बसे मिलने निकले। श्रीमती रेडररने इन्दु पटेलको भी आग्रहपूर्वक साथ लिया। बीस मीलका सारा प्रदेश इतना सुन्दर, रमणीय और आंखोंको तृप्त करनेवाला था कि हर क्षण आंखोंको दावत मिल रही थी। यहांके वन-उपवन, चरागाह और खेत लकीर खींच कर व्यवस्थित बनाये हुए होते हैं। किसी भी जगह खिचड़ी जैसा कुछ दिखाई नहीं देता। इसके पीछेका इस प्रजाका पुरुषार्थ सचमुच अनुकरणीय है। सौ-दो सौ साल पहलेका इन लोगोंका जीवन हमारे जैसा ही अव्यवस्थित और बिना करीनेका था। सारी प्रजाका स्वभाव बदलना, आदतें सुधारना और कुदरतको भी काममें लेना और सुधारना—ऐसे पुरुषार्थको आध्यात्मिक न कहें, तो कैसे होगा? अमुक हद तक इन लोगोंकी नैतिक जीवन-सिद्धि भी प्रशंसनीय है। कई कीमती पुराने आदर्श उन्होंने छोड़ दिये हैं, यह दुःखकी बात है। जितना पुरुषार्थ अधिक उतना जोखिम भी अधिक, यह भी सही है। जितनी मेहनतसे सृष्टि खड़ी करते हैं, उतनी ही बेदरकारीसे और दुष्टतासे संहार भी करते हैं। लेकिन, आखिर ऐसी पुरुषार्थी प्रजा ही अध्यात्म-क्षेत्रमें भी तरक्की करनेवाली है,

इसमें कोई शक नहीं है।

हमारी चिरपरिचित ईसरमाता अनेक स्थानोंसे दर्शन देती थी। हम जा रहे थे, उस रास्ते एक छोटी-सी नदी लोइसाक (Loisach) हमसे 'कैसे हैं ?' कह कर जरा हंसी और ईसरसे मिलने आगे दौड़ी। तब मैंने अपने सारथिसे पूछा कि, 'फिर ईसर आगे जा कर किससे मिलती है ?' उसने गम्भीर आवाजसे कहा—'डॅन्यूबसे।' हम जिस तरह गंगा या नर्मदाका नाम आदरके साथ लेते हैं, उसी प्रकार यहांके लोग डॅन्यूबका नाम लेते हैं। डॅन्यूबके बारेमें कविताएं तो हैं ही, लेकिन उसके प्रवाह का संगीत भी पकड़ा गया है और वह दुनिया-भरमें सुनाया जाता है।

जिस तालाबके किनारे हमारे मेजबान रुपेर्टी (Ruperti) दम्पती रहते थे, उसके आसपास रहनेवाले लोगोंने व्यवस्था की है कि मोटरें आ कर शोर न मचाएं, तालावकी शांति नष्ट न करें, इसलिए हमें अमुक हदसे आगे मोटर ले जानेके लिए पुलिसकी इजाजत लेनी पड़ी। घर ढूंढ़ते तकलीफ नहीं हुई। घरके सामने ही तालाबके किनारे एक छोटा-सा चह है। उसकी बाजूमें एक नाव लोट रही थी। चह के एक सिरे पर कछुआ-घर करके एक छोटी-सी झोंपड़ी है। कमरा तो बिलकुल जापानी पद्धतिका बना हुआ है। भाई रुपेर्टी एक इन्श्योरेन्स कम्पनीके डायरेक्टर होनेके कारण उनको हर साल तोक्यो (जापान) तक यात्रा करनी पड़ती है। इसलिए, अनेक देशोंकी कला-कृतियोंसे उन्होंने अपना घर सजाया है। हम तालाब-के किनारे खुले छातेके नीचे जा बैठे।

अबतक तो मैंने अच्छे-से-अच्छे अनेक सरोवर देखे हैं, उनकी पंक्तिमें बैठ सके, ऐसा यह स्टार्नबेरगरसे (सरोवर) है। खासा १०-१५ मील लम्बा और दो-तीन मील चौड़ा। किसी-किसी जगह पांच मील भी चौड़ा होगा। उसकी दोनों तरफ ऊंची-ऊंची टेकरियां होनेके कारण वह अधिक सुन्दर दीखता है। हम सरोवरकी शोभा देखते, उसके बाद टेकरी परकी हरी शोभा निहारते और उस टेकरीके पीछे स्टार्नबेरगरके जितना ही या किंचित् बड़ा अम्मर सरोवर कैसा दीखता होगा, उसकी कल्पना करते, इस प्रकार त्रिविध शोभाके वायुमंडलमें मन कुछ इस प्रकार लीन हो गया कि हमारी बातें भी कम हो गई और छोटे-छोटे पक्षियोंका संगीत अधिक स्पष्ट सुनाई देने लगा। मैंने अपने मेजबानसे कहा कि सरोवर और आकाश की दोस्ती हो रही है। आकाशका प्रतिबिम्ब व्यक्त करते सरोवरको विशेष प्रसन्नता होती है। लेकिन, वायुको यह अच्छा नहीं लगता। वह पहले आकाशमें बादल ले आता है। उनका भी प्रतिबिम्ब सरोवरमें पड़ता हुआ देख कर वायु चिढ़ जाता है और वह नीचे उतर कर अपने झपट्टोंसे सरोवरके प्रसन्न मुख पर झुर्रियां पैदा कर देता है। लेकिन, सरोवर इस तरह थोड़े ही हारनेवाला है ? वह तो जहां कहींसे मिले, सूर्य-प्रकाश ले कर चमकने लगता है और सारे वायुमंडलको प्रसन्न कर देता है। वैसे भी शान्त सरोवरमें तरह-तरहके प्रकाशके पट्टे दिखाई देते ही हैं।

सरोवरके किनारे खड़े रह कर मैंने अबतक देखे हुए अफ्रीका, जापान, चीन, ब्रह्मदेश और भारतके असंख्य सरोवरोंका स्मरण किया और तर्पण भी किया।

फिर, हम नाश्ता करने गये। हमारी खुराकके नियम मालूम होनेके कारण उन्होंने हमें निश्चित हो कर नाश्ता करनेके लिए कहा।

अगले ही सप्ताहमें भाई रुपेर्टीने साठ साल पूरे किये थे। बनका Birth-day Cake बाकीके सब लोगोंको दिया गया। फूलझाड़, फूल और पक्षियोंके गानके बीच हमने नाश्ता किया। भाई रुपेर्टी कहने लगे कि सवेरे हम नाश्ता करते हैं, तब पक्षी हमारे इर्द-गिर्द आ कर बैठते हैं और उनको समय पर टुकड़े न दें, तो फिट-कारकी नजरसे हमारी ओर देखते हैं। मैंने उनसे कहा कि हमारे यहांके कौए हमारे फेंके हुए काजू या मूंगफलीके दाने आकाशमे अधरमे पकड़ लेते है; लेकिन जब आलसी बनते है, तब वही दाने कहां पड़ते हैं, यह ध्यानपूर्वक देख कर उस तरफ दौड़ते हैं। उन्होंने कहा कि सरदीके दिनोंमें यहांके जंगलोंके हिरन भी हमारे बागीचेमें आते हैं।

उसक बाद मेरे पूछने पर उन्होंने यहांके पुराने राजाओंकी बातें की। एक राजा 'दूसरा लुडविग' घोड़े पर बैठ कर, मशालची सिपाहियोंको साथ ले कर, मध्य रात्रिको इस सरोवरकी प्रदक्षिणा करता था। यहांके गांवमे एक मोची मुंहमें से एक साथ दो राग बजा सकता था। राजाको वह सुननेका बहुत शौक था। इसलिए वहां ठहर कर वह दोहरी सीटी सुन कर, सन्तुष्ट हो कर वापिस लौटता था। यह राजा शरीरसे बडा कद्दावर था और उसका वैद्य बौना और मरियल। एक दिन इन दोनोंके शव इस सरोवरमें मिले। क्या दुर्घटना हुई, किसने किसको बचानेकी या मारनेकी कोशिश की—कुछ मालूम नही हुआ।

इस सरोवरके बारेमें मुझे जानकारी चाहिए थी। उन्होंने कहा, 'अभी-अभी एक मित्रने, इस सरोवरके बारेमें ही एक जर्मन किताब मुझे मेरी सालगिरहके दिन भेंट दी है।' किताब उन्होंने हमारे हाथमें रखी। हमने उस मूक किताबमेंसे कुछ रेखाचित्र देखे। कितना अच्छा है कि रेखाचित्रोंकी भाषा देश-देशके अनुसार बदलती नही रहती। मैंने आज तक इतने सरोवरोके वर्णन उत्साहसे किये हैं कि अब वही-की-वही अनुभूति नये-नये शब्दोंमे व्यक्त करनेका उत्साह नही रहा। सरोवर देखा। हृदय भी सरोवरके जितना ही समृद्ध हुआ। अब उसकी बातें करनेकी जरूरत ही क्या है?

'हीरा पायो, गांठ गठियायो,
बार-बार वाको क्यों खोले?'

उपनिषद्‌के ऋषियोंको आत्मानन्द प्राप्त हुआ, तब उसका वर्णन छोड़ कर, वह केवल 'हा···उ, हा···उ' करके गाने लगे। आत्मानन्दके सब वर्णनोंकी अपेक्षा यह अर्थहीन उद्‌गार ही सफल रूपसे आनन्द व्यक्त करते है।

निकलते समय श्री रुपेर्टीने अपनी अतिथि-पोथीमें दो शब्द लिखनेकी मुझे सूचना की और कहा कि 'कोई संस्कृत-श्लोक आप लिख देंगे, तो मुझे विशेष खुशी होगी। यह सारा पृष्ठ आपका ही है।' मैंने नीचेके श्लोक लिख दिये—

'शशिना च निशा निशया च शशी
शशिना निशया च विभाति नभः।
पयसा कमलं कमलेन पयः
पयसा कमलेन विभाति सरः॥

उसके बाद मैंने आगे लिखा—

'गुरोस्तु मौनं व्याख्यानम्
शिष्याः संच्छिन्नसंशयाः।'

यह समझाते दक्षिणामूर्तिकी कथा भी मैंने कह दी। भिन्न संस्कृतिके लोग जब संस्मरणोंका और कथानकोंका लेन-देन करते हैं, तब देनेवालेको कोई श्रम नहीं होता और लेनेवालेको समृद्धिका अनुभव और तुलनाका आनन्द मिलता है।

वापस लौटते दूसरे रास्तेसे आये, जिसके कारण उस सरोवरके मधुर दर्शन पुनः-पुनः अनेक बार हुए। सृष्टिका सौन्दर्य वही-का-वही फैला हुआ था। बीचमें एक जगह कृतज्ञ राष्ट्रने प्रिंस बिसमार्कके लिए बनाया हुआ एक स्मारक हमने देखा।

सारे दिनके श्रमके अन्तमें शरीर नींद मांग लेता है; लेकिन संस्मरणोंकी भीड़ दिमागमें बुफे डिनर चला कर सोने नहीं देती। उस खींचातानीमें कब नींद आ जाती है, मालूम ही नहीं पड़ता।

तूने तो जर्मनी एक या दो बार घूम कर देखा है। लेकिन, तू तो यंत्रोंका उपासक बना है। कारखानोंकी बात जितनी पूछें, उतनी तेरे पास मिलेगी! तूने यहांके जंगल पहाड़, नदियां और सरोवरोंकी मुलाकात ली थी?

म्यूनिक जिस तरह विद्याधाम है, वैसे असाधारण सौन्दर्यधाम भी। तुझे वह देख लेना ही चाहिए।

—काकाके सप्रेम शुभाशिष।

१७, १८-६-१९५८

२०. स्टुटगार्ट

१९-६-१९५८

प्रिय बाल,

म्यूनिक छोड़ कर स्टुटगार्ट क्या आये, मानो नई दुनियामें ही आ गये, इतना यहांके प्राकृतिक दृश्यमें फर्क है। वहांसे रेलगाड़ीमें आनेके कारण सारा प्रदेश—

गांव और शहर, खेत और जंगल, गिरजाघर और किले, प्रवाह और बादल सब कुछ तीन घंटों तक जी भर कर देख लिया।

म्यूनिक स्टेशन पर विदाई देनेके लिए श्रीमती एफा रेडरर, श्रीमती डॉक्टर कोनत्सलन और कुमारी इन्दु पटेल आ गई थीं। एक बहनने फूल दिये, दूसरीने फल और तीसरीने पोस्टकार्ड और टिकट। इसलिए, रेलगाड़ीमेंसे सारा प्रदेश देखते बीचमें फूल सूंघे, फल खाये और पोस्टकार्ड लिखे।

कल ही जिस डॅन्यूबका जिक्र मैंने किया है, वह डॅन्यूब नदी भी हमें रास्तेमें मिली। वह बहुत कुछ कह रही थी, लेकिन रेलगाड़ीके शोरमें कुछ सुनाई नहीं दिया।

रेलगाड़ीमें खाया और एक बजे स्टुटगार्ट उतरे। स्टेशन पर भाई आल्फ्रेडकी बहन एलिजाबेथ और इण्डिया-जर्मन इंस्टीट्यूटवाले डॉ० Reichel लेने आये थे। यह शहर अनेक ऊंची-नीची टेकरियों और पहाड़ियोंके नीचे, बीचमें और ऊपर बसा हुआ है। पुराने जमानेमें यहां अच्छी-अच्छी घोड़ियोंकी पैदाइश होती थी। इस-लिए, गांवके आसपास घोड़ियोंको चरनेके लिए चरागाह रखे हुए थे—उसपरसे Stuttgart नाम पड़ गया है। मराठीमें इसे 'घोड़ीचें कुरण' कह सकते हैं। यह शहर महायुद्धके दौरानमें चालीस फीसदी बरबाद हो चुका था। लेकिन, अब चारों ओर जोरसे बढ़ रहा है और पहाड़ पर भी चढ़ रहा है। तीन-चार बड़े-बड़े कारखाने हजारों मजदूरोंको काम देते हैं और उनके सुख-चैनके लिए सुविधाएं खड़ी कर देते हैं।

आज तीन बजे यहांके म्युनिसिपल कौन्सिलर और शिक्षा-विभागके रसिक डॉ० शुमन (Schuman) हमें शहर दिखाने ले गये।

थियोसोफीमें जिस प्रकार ब्रह्मविद्याकी शोध-खोज चलती है, उसी प्रकार मानव-जीवनका गहरा अध्ययन और उसकी भक्ति करनेके लिए एन्थ्रोपोसोफी (Anthroposophy) नामकी एक प्रवृत्ति चलानेवाले एक जर्मन तत्त्वज्ञने यहां एक विशाल, नवीनतम, विज्ञानपूर्ण हॉल बनाया है। उसे देखने हम गये। इसके बारेमें मैंने Rom Landau की किताबमें बहुत पढ़ा था। यह गान-मन्दिर अथवा संगीत-मन्दिर, ध्वनिशास्त्रका गहरा अध्ययन करके बनाया गया है और आधुनिक कलाके नये आग्रहोंका भी उसमें पालन किया गया है। इसके तीन खंड हैं—बड़ा, मध्यम और छोटा। वह सारी रचना हमें बहुत अच्छी लगी।

वहांसे हम एक नये ढंगकी आधुनिक पाठशाला देखने गये। यह मकान भी खास देखने लायक था। उसके पीछेका विचार समझनेके बाद यह कोई ढकोसला मालूम नहीं हुआ। यहांसे हम Killsbery नामके एक विहारमें नाश्ता करने गये। वहां उत्तम वृन्दवादन चल रहा था। स्थान उद्यानके बीचमें होनेके कारण फूलों और वृक्षोंकी शोभा तो थी ही। नजदीकसे एक छोटी-सी रेलगाड़ी गुजरती थी और

लम्बे रस्सोंमें टंगे हुए आसनोंमें बैठ कर मौजी लोग आकाशकी यात्रा करते थे। थोड़ी देरके बाद डॉ० ग्लासेनप्प (Glasenapp) नामके एक प्रख्यात भारत-विद्या-विशारद हमसे मिलने आये। वे भारतका इतिहास, तत्त्वज्ञान, कला, प्रवासी भारतीय, हमारे धर्म, संस्कृत भाषा, जैन-बौद्ध तत्त्वज्ञान—सब कुछ जानते हैं। बचपनसे उन्हें भारतीय विद्याके प्रति आकर्षण था। पिताको वह पसन्द नहीं था। उसने उनको कानूनकी ओर मोड़ा। आज्ञाधारक लड़केने माना सही, लेकिन पिता समझ गये कि लड़केको उसके अपने रास्ते जाने देनेमें ही लाभ है। स्वभावसे वे हमारे नये-पुराने पंडितोंके जैसे ही हैं। उनकी मुखाकृति दूसरे जर्मन लोगोंसे कुछ भिन्न थी। वे असमके डॉ० हरिकृष्णदास जैसे मालूम पड़ रहे थे।

उस स्थान पर मिलने आये हुए डॉ० मूसर (Muser) भी हमें बहुत ही पसंद आये। जैसे विद्वान्, वैसे ही अनुभवी। जैसे गंभीर, वैसे ही विनोदी। भगवान्ने उन्हें दुःखका आकंठ परिचय कराया है। लेकिन, सब बरदाश्त करके जीवननिष्ठ रहनेकी शक्ति भी उन्हें प्रदान की है। जर्मन-संस्कृतिके बारेमें उसके साथ दो-तीन बार चर्चा छिड़ी। उन्होंने कहा कि 'छूटसे चाहे वह सवाल पूछिये, और विवेकके लिए मीठी-मीठी भाषाका उपयोग मत कीजिए।' मैंने अपने खुले दिलका और साफगोईका उन्हें पूरा परिचय कराया। उनके ही कहने पर मैंने उनको कुछ गहरे सवाल पूछे और फिर गहरी चर्चा भी चली।

० ० ०

२०-९-१९५८

ता० १९ का दिन भी उतने ही महत्त्वसे भरा हुआ था। सुबह हम डॉ० लुटझ् (Lutz) के साथ Bosh कम्पनीके विशाल कार्यालयमें गये। यह कम्पनी मोटर कारमें इस्तमाल किये जानेवाले बिजलीके साधन बनाती है। इसके अलावा घरेलू कामकी ठंडी कोठी (फ्रिजिडायर) जैसी अनेक चीजें भी तैयार करती है। अनेक देशोंमें उनकी शाखाएं हैं। भारतमें बंगलोरकी तरफ उनकी एक शाखा है। ये लोग अपने कामगारोंके आरामकी ओर विशेष ध्यान देते हैं। उन्होंने जो प्रकार प्रारम्भ किये, वे अब दूसरी कम्पनियों और सरकारोंने अपना लिये हैं। इन लोगोंका कहना है कि कामगारोंके कल्याणमें कम्पनीका भी स्वार्थ होता है। तुझे यह सब मालूम ही होगा।

पिछली बार जर्मनी आये थे, तब बर्लिनमें सतत चलानेवाले Lift का अनुभव किया था। इस बार इस कम्पनीके मकानोंमें वह अनुभव किया। हम कहते हैं कि आजकेजमानेमें मनुष्य यन्त्रका दास बना हुआ है। लेकिन उसका प्रत्यक्ष परिचय तो इस Lift की घटमाला (रहट) में होता है। हमने इसे घटमाला कहा, लेकिन जर्मन लोग इसे जपमाला (पेटर नोस्टर) कहते हैं। लन्दनमें तथा तोक्योमें दौड़ती सीढ़ियां देखीं और इस्तेमाल की थी। उसमें भी थोड़ा सीखनेका होता है। लेकिन, उसमें

घबराहटके लिए कोई गुंजाइश नहीं होती। यह घटमाला तो सचमुच मनुष्यको दास बना देती है।

यहांसे घर जा कर, थोड़ा आराम करके, हमारे लिए खास आयोजित मध्याह्न के भोजमें हम गये। बहुत अच्छे-अच्छे लोग उसमें बुलाये गये थे। होटल भी अच्छा था—ग्राफ झेपलिन (Graf Zepplin)। मेरी दाहिनी तरफ डॉ० वीरसिंग (Veersingh) बैठे थे। ये एक प्रख्यात पत्रकार हैं। दुनियाके बारेमें बहुत जानते हैं। बातचीतके दौरानमें जर्मनी और फ्रांसके बीच तुलना चली। इन्होंने कहा कि, 'इस संबंधमें फ्रांस मानों उन्नीसवीं या अट्ठारहवीं सदीमें रहता हो, ऐसा लगता है।' मैंने कहा कि, 'और उनका पड़ोसी पुर्तगाल मानो पन्द्रहवीं सदीमें !' उसमेंसे गोवाके बारेमें बात निकली।

डॉ० वीरसिंहने एक-दो साल पहले गोवाके बारेमें एक लेख लिखा था। सालाझारको पसन्द नहीं आया होगा। सालाझारका एक खत आया। उसका मुंहतोड़ जवाब वीरसिंहजीने भेजा। गोवा पुर्तगाल-राष्ट्रका एक अंग है, सालाझारकी यह भूमिका कौन मान्य कर सकेगा? बाईं तरफ बोश (Bosh) कम्पनीके मालिकका जवान लड़का बैठा था। उम्रके प्रमाणमें अधिक अनुभवी और विवेकी मालूम होता था। उसकी बहन आजकल रुक्मिणी देवी आरुंडेलके कला-केन्द्रमें भारतनाट्यम् सीखती है। बंगलोरके पास इन लोगोंने कारखाना चलाया है। भारत सरकारने इन्हें पचास प्रतिशतसे अधिक पूंजी लगानेकी छूट दी है। इनके कार्यकर्ता डॉ० लुट्झ (Lutz) के साथ मैंने तेरे बारेमें बातचीत की होगी। उसने यह बात अपने इस जवान मालिक तक पहुंचाई थी। मुझसे पूछने लगा, 'आपके पुत्र टेरिफ बोर्ड कमेटीमें हैं?' मैंने कहा, 'इतनी तफसीलमें मैं नही जानता।' ये लोग भारतमें बहुत बार आते हैं, सर्वत्र घूमते हैं। बहुत जानते हैं। बड़े-बड़े लोगोंके स्वभाव और आदतोंके बारेमें जानकारी रखते हैं। एक बात मैंने तीव्रतासे अनुभव की कि इन लोगोंकी आमदनी अधिक होनेके कारण ये लोग सब जगह घूम सकते हैं। चाहे जितनी बार यात्रा करते हैं। जानकारी इकट्ठा करते हैं। आपसमें विचार-विनिमय करते हैं। हमारे लोग उनके जितने जागरूक होने पर भी धनके अभावके कारण परदेशमें घूम नही सकते। और, जिन लोगोंके पास काफी धन है, वे परदेशकी यात्रामें इन लोगोंके जितना ज्ञान प्राप्त नहीं करते। इसलिए, हम उनके मुकाबलेमें, पिछड़े ही रहनेवाले हैं।

सादगी और कमखर्च यह हमारी संस्कृतिकी खूबी हमें कभी खोनी नहीं चाहिए। हमारी खुराकका दरजा सुधरे, हमारी जिज्ञासा बढ़े और शिक्षामें गहराई आये, तभी हम बच सकेंगे और दुनियाकी सेवा भी कर सकेंगे। लेकिन, हमारे युवक और युवतियां सारी दुनियाकी यात्रा करें, यह निहायत जरूरी है।

खुराक और खर्च ये दो मुश्किलें इसमें खड़ी होंगी। मांस और मद्य टालने ही

चाहिए। लेकिन, यहांकी दूसरी खुराकके साथ अभ्यस्त हो जानेमें मुश्किल नहीं पड़नी चाहिए। सब तरहसे विचार करते यहांके लोग हमसे अधिक सुशिक्षित और चतुर मालूम होते हैं। हमारी संस्कृतिके कुछ तत्त्व गहरे और ऊंचे हैं। उन तत्त्वों की सिद्धि कम लोगोंमें दिखाई देती है। सामान्य लोगोंके पक्षमें इतना जरूर कह सकते हैं कि प्रभावशाली व्यक्ति प्रयत्न करे, तो नैतिक क्षेत्रमें वह चाहे जितने ऊंचे चढ़ सकते हैं। संयम, त्याग, क्षमा और आत्मीयता आत्मसात् करने हमारे लोग हिम्मत नहीं हारने, यह हमारी खासियत टिके और दूसरी सब बातोंमें इन लोगोंकी ऊंचाई तक हमारे लोग पहुंचें, इस प्रकारकी हमारी कोशिश होनी चाहिए।

भोजके साथ आरोग्य-चिंतनके भाषण और पान तो होते ही हैं। मैंने जो छोटा-सा भाषण किया, वह लोगोंको बहुत पसन्द आया। फुरसत मिलने पर वह लिख भेजूंगा। मीठी-मीठी बातोंकी अपेक्षा मनमें आयोजित सब विचार कहनेकी सिद्धि प्राप्त हो रही है।

२१. स्टुटगार्टसे फ्रंकफुर्ट

२१-६-१९५८

प्रिय बाल,

भोजनके बाद किसीने कहा कि 'यहांके अखबारकी प्रतिनिधि बहन नीचे कब से आपकी राह देख रही हैं। वे आपकी मुलाकात लेना चाहती हैं।' हम चार-पांच लोग वहां गये। मुलाकात अच्छी हुई। बादमे मालूम हुआ कि उसी अखबार के संपादक भी मेरे सामने आ कर बैठे थे और मुलाकातकी बातें सुनते थे। सब बातें अखबारमें नहीं आईं। जो आई हैं, वे अच्छी हैं। इस मुलाकातकी कतरन तुझे इसके साथ भेज रहा हूं। मुलाकातके प्रारम्भमें मेरी long flowing beard, Kindly eyes और youthful face का उल्लेख है। फोटोमें वह दिखता है या नहीं, तू देख ले।

बादमें हम Television Tower दूरवीक्षण-मीनार देखने गये। इतना पतला और इतना ऊंचा मीनार दुनियामें शायद ही और कही होगा। एक खंभा खड़ा किया हो, ऐसा ही लगता था। कहते हैं कि जब तूफान होता है और तेज हवा चलने लगती है, तब यह मीनार मीटर-दो-मीटर जितना झूमता है! और लोगोंको जहाजमें जैसे आते हैं, वैसा चक्कर आने लगते हैं। हमारे मीनारोंमें सीढ़ियां होती हैं, वैसी अब लिफ्टके जमानेमें करनी नहीं पड़तीं। हम ऊपर गये। वहांसे आस-पास दूर-दूर तक देखा। डॉ० मूसरने इस शहरका विस्तार कैसे होता गया, वह

समझाया। मुझे भी इतनी ऊंचाई पर वह मीनार डोलता हो, ऐसा लगा। क्योंकि, पैरों तलेकी जमीन स्थिर मालूम नहीं हो रही थी। मीनारके सिर पर चार सर्चलाइट हैं। ठीक शिखर पर लाल रंगका दीया है, सर्चलाइटके नीचे लाल दीये टिमटिमाते हैं, जो हवाई जहाजको सूचना देनेके लिए होते हैं।

इतनी ऊंचाई पर, अन्तरालमें पहुंचनेके बाद हम लोगोंको जिस तरह कोई स्तोत्र बोलनेका मन होता है, वैसे इस संस्कृतिके लोगोंको खाने-पीनेका सूझता है। हमने बीचका रास्ता लिया और कॉफी पी कर सन्तोष माना।

ऊंचाईका इतना अद्भुत अनुभव प्राप्त करनेके बाद विस्तारका और जंगलकी कुदरतका अनुभव लेनेके लिए हमें Black Forest जाना था।

अच्छा हुआ कि टेलिविजन मीनार देखनेके बाद ही हम कृष्ण-कांतार देखने गए। वापस लौटते काफी देर हो गई। मूल कार्यक्रम वापस लौटनेके बाद टेलिविजन टावर देखने जानेका था। रातको वहांसे शहरके दीये अच्छे दिखते सही—लेकिन ऊपर जाना ही नही होता।

हम भाई रायखेलकी मोटरमे निकले। डॉ० मसूर सब समझाते थे। रायखेल कुछ कम बोलनेवाले थे, इसलिए उनका स्वभाव समझते देर लगी। दुनियादारीके खयालवाले, लेकिन एक रसिक आदमी थे। पूर्व जर्मनीसे आये हुए शरणार्थियोंकी एक बस्ती रास्तेमें हमने देखी। छोटी-छोटी व्यवस्थित झोपड़ियोंकी यह बस्ती रशियाके कब्जेमें रहे हुए जर्मनीमे कैसा जुल्म चलता होगा, उसकी साक्षी थी। अपना सब कुछ वहां छोड़ कर इतने लोग, जान खतरमें डाल कर यहां पर आये, और आज भी आ रहे हैं, यही बताता है कि वहांकी जिन्दगी कितनी असह्य होगी।

आगे चल कर डेनलर-बेन्जके और कृत्रिम वर्षाके कारखानोंको पीछे छोड़ कर हमने 'ब्लैक फॉरेस्ट' में प्रवेश किया। शाम होनेको आई थी। इसलिए गहरे हरे पेड़ अधिक नीले और बादमें कुछ स्याह दिखाई देने लगे। ठंडक बढ़ी। कही-कहीं, शिलांगके समान रास्तोंके घुमाव भी मिले। उत्तम रास्ते, पानी पर चलती हो, ऐसी मोटर, आने-जानेवाली मोटरोंका साथ—यह सब होते हुए भी आखिर जंगल तो जंगल ही रहा। अपना असर डाले बिना नहीं रहता। दबे हुए हृदयसे हमने यात्रा आगे चलाई और एक पहाड़ पर स्थित अन्तर्राष्ट्रीय माध्यमिक शाला तक पहुंच गये। बम्बईके किसी मिलमालिकके लड़केको यहां दाखिल होना है। यहां के मुख्य अध्यापक और व्यवस्थापकसे डॉ० मसूर मिले और सब जानकारी प्राप्त की। इतने सब विद्यार्थी, इतने अधिक शिक्षक, तरह-तरहके पढ़ाईके विषय और असंख्य वर्ग—उनका समय-पत्रक किस तरह बनाया है, उसका तख्ता पाठशालाके आचार्यने मुझे बताया। इस कलाका मैं एक समयका अनुभवी होनेके कारण मैने उनके साथ रसपूर्वक विचार-विनिमय किया और पाठशालाके बारेमें बहुत सारी

जानकारी भी प्राप्त की। जर्मन-भाषा जाने बिना जो विद्यार्थी यहां आते हैं, उन्हें कितने दिनमें जर्मनका ज्ञान हो जाता है, इस सवालका जवाब एक अंग्रेज लड़केने दिया। छोटी उम्रके लिए स्वाभाविक शरमीलापन इस लड़केमें था ही नही। मानों कोई शिक्षक बोलता हो, इस प्रकार वह जवाब देता था। दक्षिण अफ्रिकाके गोरे लोग मिजाजी होते हैं और काले लोगोंके प्रति तिरस्कार रखते हैं, यह मालूम होने के कारण मैंने उस लड़केसे अधिक सवाल नही पूछे।

अब तो आठ बज गये, इसलिए प्रकाश कम होने लगा; फलतः हम वापस लौटे। रास्तेमें ही एक अच्छे होटलमें भोजन किया और दस बजेके बाद घर पहुंचे। वहां भाई आल्फ्रेड और उनकी दो बहनें आठ बजेसे हमारा इन्तजार करते बैठी थी। बहनोंमेंसे छोटी एनाके दर्शन तो हमें पहली ही बार हुए थे। उनका स्वभाव भी उतना ही मीठा और प्रेमल।

अमेरिकावाले हमारे खुशी नाइल्सके स्नेही एक जर्मन-दंपती डॉ० और श्रीमती रिन्क (Rinck) कार्लस्रूहसे खास मिलनेके लिए आये थे। लेकिन, हमें बहुत देर हो जानेके कारण, मुलाकात नही हो सकी, इसका हमें बहुत दुःख हुआ। हमारा खत उनको समय पर मिला था। उनका जवाब उनके आ कर चले जानेके बाद ही हमारे हाथमें आया।

नये-नये मित्र प्राप्त करना; अनुभवोंका आदान-प्रदान करना। वंशभेद, धर्म-भेद, भाषाभेदके बावजूद हृदयोंका परस्पर परिचय पानेमें दिक्कत नही पड़ती, इसका अनुभव करना, यह कोई मामूली आनन्द नहीं है।

कल सुबह (२०-६-१९५८) स्टुटगार्ट छोड़ा। यूं तो जानेके दिन सुबह कोई कार्यक्रम हो ही नहीं सकता, इसलिए पिछले दिनोंके अनुभवोंकी जुगाली करना और दूसरे दिन क्या-क्या देखनेको मिलेगा, इसकी कल्पना करना और तुझे खत लिखना, यही मुख्य व्यवसाय होता है। रास्तेमें हमेशाके मुताबिक खेत, पहाड़, जंगल और मेहनती किसान देखते-देखते हम साढ़े बारह बजे फ्रंकफुर्ट पहुचे। स्टेशन पर भाई एम्मलबर्ग आये थे। उन्होंने ही हमारा यहांका कार्यक्रम निश्चित किया था। स्टुटगार्टका होटल छोटा होनेके कारण घर जैसा लगता था। उसमें कर्मचारी भी कम होनेके कारण सब परिचितसे लगते और खास बात यह थी कि एक टेकरीके माथे पर होनेके कारण, नीचेके दर्रेमें बसा हुआ सारा शहर और सामनेका टेलिविजन मीनार—यह सारा दृश्य कमरेकी खिड़कीमेंसे आसानीसे पी सकते थे। होटलके आंगनमें एक दूरबीन थी। उसके छेदमें दो आने जैसा सिक्का डालनेसे दिन में सामनेका दृश्य और रातको ग्रह-नक्षत्र वह देखने देती। हमें जब-जब फुरसत हो जाती, उस समय आस-पास कुहरा फैला हुआ रहता, इसलिए हम उस जर्मन दूर-बीनका लाभ नहीं ले सके।

फ्रंकफुर्टका होटल साविग्नी (Savigny) शहरके बीच और आलीशान होने

के कारण बादशाही सुविधाओंका उपभोग लेने पर भी हम उसमें अपने-आपको छोटे जीवके समान अनुभव करते हैं। इतने सारे लोग उसमें रहें, एक-दूसरेको पहचानें नहीं, कौन हैं, यह देखनेकी परवाह भी न करें और अपने बड़प्पनमें मस्त रहें, यही मेरी दृष्टिसे ओछापन है। इसके मानी यह नहीं हैं कि यहांके लोग विवेक में घटिया हैं। परदेशीके तौरपर सब हमारे प्रति काफी विवेक बताते थे।

फ्रंकफुर्टमें यहांकी नगरपालिकाके दो महत्त्वके प्रतिनिधियोंसे हम मिले। उनसे इस शहरमें प्रचलित शिक्षा और सांस्कृतिक प्रवृत्तिके बारेमें पूरी जानकारी प्राप्त की। पिछले महायुद्धमें बरबाद हो जानेके कारण सारे देशकी प्रजा मुसीबतमें है। फिर भी, इस देशके सब शहर सांस्कृतिक प्रगतिमें एक-दूसरेसे होड़ चलाते होनेके कारण नाट्यगृह, संग्रहालय, पुस्तकालय, खेल-कूदके विहार—हरेक बाबतमें नागरिकोंकी सेवा रसपूर्वक करते हैं और अच्छी शिक्षाके बिना देश अपना उत्कर्ष फिरसे साध नहीं सकेगा, यह बात गले उतरी हुई होनेके कारण बच्चोंकी पढ़ाईके पीछे द्रव्य-शक्ति, बुद्धि-शक्ति और व्यवस्था शक्ति भरपूर खर्च करते हैं। तफसील [illegible] कैसे लिखी जाय ?

बादमें हम ग्युटेभवन और ग्युटे-संग्रहालय देखने गये। दोनों पास-पास ही हैं। ग्युटे एक खानदानी रईस आदमी था। इसलिए उसके घरमें उसके समयकी संस्कारी सुविधाएं सब हैं और यह सब उस समयके जैसा ही रचा कर रखा हुआ है। पिछले युद्धमें जब शहरों पर बम बरसने लगे, तब यहांके लोगोंने इस घरकी सब चीजें, सरो-सामान—अजी दीवार पर चिपकाये हुए कागज तक यहांसे हटा-कर संभाल कर रखे। यह मकान टूट गया। वह फिरसे जैसा था, वैसा ही बांध कर, पुरानी चीजें उसमें रचाई गई हैं। संग्रहालयमें केवल ग्युटे नहीं, बल्कि उसके जमानेका खयाल आ सके, ऐसी चीजें, चित्र, हस्तलिखित, मूर्तियां आदि सुन्दर ढंगसे रखे गए हैं।

रातको हमें यहांकी नगरपालिकाकी तरफसे ऑपेरा देखनेके टिकट मिले थे। एक इटालियन भाई (Verdi) का लिखा हुआ ऑपेरा था। रंगमंच विशाल और भव्य था। अनेकानेक पात्र यह मंच भर देते। संभाषण तो संगीतमय ही होता है। ये लोग पात्रोंकी आवाज कुछ इस प्रकार विकसित करते है कि तीस-चालीस या उससे अधिक वृन्दवादकोंकी आवाजसे भी वह ऊपर उठे और नाट्यगृहमें सर्वत्र फैल जाये। फिर, नियम ऐसा है कि ऑपेरामें ध्वनि-विस्तार-साधन काममें लेने ही नहीं चाहिए।

डेढ़ घंटा बैठ कर, पहली ही बार देखे हुए ऑपेराका कुछ खयाल आ जाने पर हम वापस लौटे। संगीत रसिक आल्फ्रेड इस तरह बीचमें थोड़े ही छोड़नेवाले थे। उन्होंने तीनों घंटे संगीतका आनन्द लूटा।

—काकाके सप्रेम शुभाशिष।

२२. बॉनमें—२

२२-६-१९५८

प्रिय बाल,

ता० २१ की सुबह दस बजनेके पहले फ्रंकफुर्ट छोड़ा और लगभग सारा समय र्‌हाईन नदीके किनारे-किनारे, तरह-तरहकी लम्बी-लम्बी नौकाएं, वाफोर और स्टीमर देखते-देखते, और प्राचीन कालके लुटेरे सरदारोंके किले और छोटी-बड़ी गढ़ियोंके सामनेसे गुजरते-गुजरते बॉन आ पहुंचे। रेलवेके किनारे दौड़नेवाले रास्तों के साथ वृक्षोंकी कतार तो होती ही है। वृक्ष इतने अच्छे ढंगसे लगाये हुए थे कि उनकी शोभा निहारते चित्त तृप्त ही नहीं होता था। फूल भी उतने ही आकर्षक। छह साल पहले इस र्‌हाईनके किनारे जब यात्रा की थी, तब टूटे हुए कारखाने फिरसे बांधे जा रहे थे। अब तो वे कारखाने जोरशोरसे चल रहे हैं। अकेली खेती पर ये लोग जी नहीं सकते। चुनांचे युद्धके सर्वनासके बाद भी सब शक्ति एकत्र करके, कारखाने खड़े किये बिना इन लोगोंको कोई और चारा ही नही है। प्राचीन कालमें खेतीकी संस्कृति जबसे शुरू हुई, वह चालू ही है। उसे छोड़ कर लोग मेषपाल और गोपाल-संस्कृतिमें वापस नही गये। उसी प्रकार कल-कारखानोंकी संस्कृति एक बार शुरू हुई है, वह अब छूटनेवाली नही है। अणुबमसे बरबाद हुए शहर भी देखते-देखते फिरसे खड़े हुए ही। इसलिए भारतीय संस्कृतिको भी यह चीज ध्यानमें रखनी ही होगी। हाथीके उगे हुए दांत मुंहमें वापस नहीं जाते, वैसा ही इन संस्कृतियोंका भी है। (तो क्या फिर मनुष्यके अपनाये हुए व्यसन भी कायम ही रहेंगे? आशा रखते हैं कि व्यसनोंके बारेमें यह नियम लागू नही होता होगा।)

बॉन पहुंचे और हमारी एक बड़ी गफलत हुई। हमने माना था कि राजधानी-का शहर है इसलिए यहां रेलगाड़ी आरामसे ठहरती होगी। हाथमें आए हुए समय-पत्रकमें देखनेका भी नही सूझा। हमारे आलूदा भी गफलतमें रहे। नतीजा यह हुआ कि चि० सरोज प्लेटफार्म पर उतरी। खिड़कीमेंसे छोटी-छोटी चीजें उसके हाथमें दी। (स्टेशन पर मजदूर आसानीसे मिले ऐसा नहीं था।) और हमारी गाड़ी आल्फ्रेडको और मुझे ले कर भग्-भग् हंसती दौड़ने लगी! एम्बेसीवाले दो सज्जन लेनेके लिए आये थे, वे दूसरी जगह खड़े थे। उन्होंने आलदाको रेलगाड़ीमें देख कर आसानीसे मान लिया कि हम सब कोलोन जा कर, वहांका सब देख कर शाम तक वापस लौटेंगे। इतना सुविधाजनक अनुमान करके एक भाई दूसरे गांव गये और दूसरे भाई घर चले गये। उनको इतना भी नही सूझा कि सारे प्लेटफार्म पर जरा देखें तो सही! बिचारी सरोज अकेली रही!!

हम दो कोलोन गये। वहांसे नये टिकट खरीद कर, आधे घंटेके बाद निकलने-

वाली वापसी गाड़ीमें लौट आये। उस गाड़ीमें भी समय पर चढ़ कर जगह प्राप्त कर लेनेका मेरे नसीबमें नहीं था। मजदूर कहने लगा, 'चलिए, चलिए, आपका सामान रख देता हूं।' मैंने कहा, 'मेरे दोस्त टिकट लेने गये हैं। अगर वह समय पर नहीं आये, तो मुझे इस गाड़ीमें नहीं जाना है।' ऐन वक्त पर आल्फ्रेड आये। तबतक सब जगह भर गई थी और उतने ही लोग खड़े भी थे। इसलिए अपने तीन सूट-केसोंको खड़ा रख कर उन पर हम बैठ गये। इतनेमें एक मजेदार तन्दुरुस्त बच्चेको मेरी दाढ़ीकी ओर देखनेका सूझा। आल्फ्रेड कहने लगे, 'आप उसके फादर क्रिसमस हैं। बच्चेको मेरी ओर और मुझे बच्चेकी ओर निहारते देख कर उसकी मांने उसे सुझाया कि, 'जा उनके साथ शेकहेंड कर। बच्चेने अपना गुलगुला हाथ आगे बढ़ाया। आल्फ्रेडने पेटीके ऊपर मेरे पास बैठनेके लिए बच्चेको जगह दी और जेब-मेंसे निकाल कर चॉकलेट दिया। बच्चेने तुरन्त उनके साथ भी हाथ मिलाया। फिर चॉकलेटका एक टुकड़ा खाता जाता और हर बार मांसे हाथ साफ कराता जाता। खाना समाप्त हो जाने पर उसने मांको सुझाया कि मुझे w.c. मे ले चलो।' हाथ धो कर बच्चा बाहर आया, फिर मैंने उसको थोड़ी मिठाई दी। फिरसे उसने हाथ मिलाया। बादमें मालूम हुआ कि बच्चेकी मां नार्वेकी है। जर्मन और अंग्रेजी दोनों उत्तम बोलती है।

बॉन वापस लौटनेके बाद मैं तो मूल प्लेटफार्म पर जा कर सरोजको देखना चाहता था। लेकिन, आल्फ्रेड कहने लगे, 'वह वहां है ही नहीं। मैंने स्टेशन मास्टर-के साथ अभी बात की है।' मैंने कहा, 'इसीलिए हम सरोजको देख आयें। वह तो यही पर राह देखती होगी।' लेकिन, आल्फ्रेडका दिमाग मानता ही नहीं। वे कहने लगे, 'मुझे यकीन है कि एम्बेसीवाले उनको होटल ले गये हैं।' लाचार बन कर मैं उनके साथ होटल तक गया। वहां मालूम पड़ा कि कोई आया ही नही।

मैंने एक ही बात पकड़ रखी कि स्टेशन जा कर, प्रतीक्षालय (waiting room) में सरोजको ढूंढ़ें। स्टेशन पर दो रेस्तरां ढूढ़े। मैंने कहा, 'चलिए, प्लेटफार्म पर।' आल्फ्रेड कहने लगे, 'नही। लोग रेस्तरांमें आ कर बैठते हैं, प्लेटफार्म पर नहीं।' मेरी एक भी सूचना उनको पसन्द नहीं आती. इसलिए मैं बेचैन हो गया; अब तो मिजाज खो बैठता, इतनेमें एक भाईने आ कर जर्मनमें कहा कि, 'आपकी एक बहन टैक्सी ले कर जानेकी तैयारीमें है।' हम उस तरफ दौड़े। सरोज को देख कर जोरसे पुकार कर कहा कि हम यहां हैं। कहकहोंके बीच सरोजने कहा, 'मैं प्लेटफॉर्म पर ही इतने समय तक, अपनी जगह पर बैठी थी। लेकिन, एक भाईने टूटी-फूटी भाषामें कहा कि आपके लोग आ गये हैं, टैक्सी भेजी है। उसमें आप होटल जाइए। इतना कह कर वह परोपकारी मनुष्य मेरा सामान उठा कर चलने लगा। मालूम नहीं, यह सब उसने कहांसे उपजाया था।' खैर, जिसका अन्त अच्छा होता है, वह सब मजेका ही कहना चाहिए। हम सही-सलामत होटलमें

पहुंचे और आरामका विचार करते-करते, अपनी एम्बेसीवालोंके साथ सम्पर्क साधने की झंझटमें पड़े।

बादमें समाचार मिला कि मुकर्जी तो दूसरे गांव गये हैं। First Secretary मणि एक-दो दिनमें भारत जानेवाले हैं। रावको कोई खबर नहीं है। भाई परुलकर अथवा बालिगा मिलने आयेंगे।

कल रातको ही परुलकरके यहां भोजनका कार्यक्रम निश्चित किया था। उसके पहले डॉ० बालिगा, अपनी पत्नीके साथ हमें घूमने ले गये। र्‌हाईनके किनारे थोड़े घूमे। शहरकी अच्छी कल्पना आई। शहर क्या, यहांके प्रमाणमें देहात ही कहना होगा।

परुलकरके यहां राव, मणि, श्रीमती मणि आदि बहुत लोग भोजनके लिए थे। वहां औपचारिक बातें हुईं: कार्यक्रम तय हुआ और आराम करने हम वापस होटल लौटे। कमरे कुछ छोटे हैं, लेकिन सब तरहसे आरामदायक हैं।

कल श्री पोहेकरका खत मिला। वह लिखते हैं कि लन्दनमें श्री सुन्दर काबाड़ीने सब व्यवस्था की है।

श्री बालिगाने हमको अपने घरमें रहने बुलाया है। वे मंगलूर तरफके हैं, पत्नी कोचीन तरफकी हैं। आज यहांके विद्यार्थियोंसे मिलेंगे। कल सुबह चन्द प्रोफेसरोंसे मिलेंगे और डुसेलडोर्फ जा कर ब्रुसेल्सके लिए उड़ेंगे।

—काकाके सप्रेम शुभाशिष।

२३. बॉनमें—२

२३-६-१९५८

प्रिय बाल,

कल सुबह डॉ० बालिगा हमें अपनी कारमें कोलोन केथीड्रल देखने ले गये। छह साल पहले इसी तरह बॉनसे कोलोन गये थे। लेकिन, उस समय हम वह गिरजाघर बाहरसे, मोटर घुमा कर ज्यों-त्यों देख सके थे। बम-प्रहारके बाद उसकी अब तक दुरुस्ती नहीं की गई थी। इसलिए, जोखिमके कारण किसीको अन्दर नहीं जाने देते थे। इस बार वह आरामसे देख सके। बॉनसे कोलोनका रास्ता इतना चौड़ा और पानी जैसा सीधा है कि डॉक्टर बालिगाको १२० किलोमीटरकी गतिसे गाड़ी चलाते थोड़ी भी दिक्कत नहीं हुई। भाई आलफ्रेडने, हिटलरके बनाये हुए रास्तोंसे भी अच्छे लश्करी मुख्य रास्तेकी जानकारी दी। पैदल चलनेवाले मुसाफिरोंको उस रास्तेसे जाने नहीं देते। छोटे-बड़े रास्ते भी इस मुख्य रास्तेको काटते नहीं। ऐसे बड़े रास्ते पर वेग चाहे जितना बढ़ानेमें हर्ज नहीं है।

अमुक वेगसे कम गतिसे जाना ही नहीं चाहिए।

र्‌हाईन नदीकी शोभा देखते-देखते और उसके ऊपरके बड़े पुलोंकी खासियत निहारते हम केथीड्रल पहुंचे। नदीके तट परसे इधर-उधर दौड़नेवाली नौकाएं देखकर चि० सरोजकी जलप्रेमी आत्मा बहुत ललचायी। जहाजमें बैठ कर घंटा-भर घूम आते, तो वह र्‌हाईन देखनेकी सफलता अनुभव कर पाती। लेकिन हमारे सामने या तो केथीड्रल, या र्‌हाईनका सफर ऐसा विकल्प होनेके कारण, उस विख्यात गिरजाघरकी तरफ जानेका हमने तय किया। किसीने इस भव्य मन्दिरको 'A symphony in stone'—पाषाण द्वारा व्यक्त होनेवाला वृन्द-वादन कहा है। मैं इस मकानको भव्य नहीं कहूंगा। उसके लिए योग्य शब्द तो 'उत्तुंग-ललित' होगा। इतने ऊंचे मकान दुनियामें बहुत कम होंगे। फिर भी, उनके शिखर पतले और नाजुक हैं। दो-तीन ही शिखर नहीं हैं, बल्कि तीन शिखरोंके आसपास, उतने ही पतले छोटे-बड़े शिखरोंका कुटुंब-विस्तार है, इसीलिए इसे वृन्दकी उपमा दी जाती है। सब शिखर जालीदार होनेके कारण पीछेका आकाश उनकी जालीमेंसे देख सकते हैं। अनेक ताकोंमें बहुत सारी मूर्तियां खड़ी की हुई थीं। कहते हैं ये मूर्तियां सन्तोंकी, भक्तोंकी और दाताओंकी हैं। खिड़की-दरवाजोंकी कमानोंमें जो जगह मिलती है, उसमें भगवान् ईसाके जीवन-प्रसंग रुजू किये गये हैं।

सारे मन्दिरकी प्रदक्षिणा करके महाद्वारसे हम अन्दर गये। अन्दर एक प्रवचन चल रहा था और असंख्य लोग एकचित्त हो कर सुन रहे थे। हमने इस दरमियान अन्दरके ऊंचे-ऊंचे खंभे, खिड़कियोंमें रंग-बिरंगे कांच द्वारा खूबीसे चित्रित पौराणिक चित्र देख लिये। बादमें मन्दिरमें पूजा शुरू हुई। कई भक्त घुटनोंके बल बैठ कर पाठ करते थे। पुरोहित स्तोत्र गा रहे थे। इतनेमें चर्च ऑरगनने, मन्दिरके सुषिर वाद्यने भक्ति-संगीत शुरू किया। वह बहुत ही प्रभावशाली था। मन्दिरके अन्दरका स्थापत्य और रंगीन कांचके चित्र देखते-देखते और भक्तोंके हृदयके साथ एकरूप होनेका प्रयत्न करते हमने काफी समय बिताया और वापस लौटे।

डॉ० बालिगा यहां आनेके बाद ही मोटर चलाना सीखे हैं। लेकिन, इतनी कुशलतासे चलाते हैं कि भाऊका ही स्मरण होता है। हम होटलमेंसे सीधे कोलन गये थे और वापस लौटे। डॉ० बालिगा और श्रीमती मित्रवृन्दा बालिगाके मेहमान बन कर ही। उनका छोटा सुशान्त हमारे साथ देखते-देखते हिलमिल गया। वह कोंकणी, हिंदी, अंग्रेजी और जर्मन—ये चार भाषाएं समझता-बोलता है। प्रसन्न है। मैंने उसे थोड़ी जादुई तरकीबें बताईं। वह खुश हुआ।

शामको हम जर्मनीके विदेश विभागके एक बहुत बड़े और प्रभावशाली भारत-प्रेमी अमलदारके घर उनसे मिलने गये। हम आये हैं ऐसी खबर मिलते ही उनकी पत्नीने हमें आमन्त्रण दिया था और भोजन भी हमारे अनुकूल तैयार किया था। उन लोगोंका नाम है स्मिड होरिक्स (Schmiett Horix)। उनके साथ बहुत

अच्छी बातें हुईं। एक बात ध्यानमें लेने जैसी है। इस सज्जनके यहां हमें छोड़ कर, डॉ० बालिगा वापस लौटनेवाले थे। हम आ रहे हैं इसका पता चलते ही भाई स्मिड होरिक्स घरसे बाहर निकल आये थे। यह तो आश्चर्यजनक था ही। लेकिन दूरसे डॉ० बालिगाको देख कर वे उन्हें पहचान सके और उन्होंने आग्रहपूर्वक उनको भी अन्दर बुला लिया। इतने प्रभावशाली व्यक्ति और इतने मिलनसार बहुत कम होते हैं। बात करते समय सामनेवालेका क्षोभ सहज रूपसे पिघल जाय और आत्मीयता पैदा हो। हमारे आलफ्रेडने भारतके छोटे-बड़े असंख्य स्त्री-पुरुषोंके फोटो लिये थे। भारतीय चेहरोंके और वेशभूषाके वे खास नमूने कहे जा सकते हैं। श्रीमती स्मिड होरिक्सको उसमें बहुत दिलचस्पी पैदा हुई। भाई स्मिड होरिक्स भारतमें अपनी मोटर ले कर बहुत घूमे हैं। सुविधाएं-असुविधाएं झेल कर भारत-का ज्ञान प्राप्त कर चुके हैं। इसलिए, उनका भारत-प्रेम पोला काव्यमय नहीं है।

श्रीमती मित्रवृन्दाके वहां हम अच्छी तरह जम गये। चि० सरोजने उनको घर काममें साथ दिया, इसलिए उनकी दोस्ती तुरन्त हुई।

० ० ०

२६-६-१९५८

ऊपरकी बातें लिखनेके बाद कई दिन बीत गये। पूरे तीन दिनका वर्णन एक साथ देना होगा।

हम दो-तीन दिन मेहमान रहेंगे, इस खयालसे डॉ० बालिगाने अपने यहां २०-२५ लोगोंको लंचके लिए बुलाया था। लेकिन, हम तो दोपहरके पहले ही बॉन छोड़नेवाले हैं, इसका उनको यकीन हुआ। लेकिन, लंच निश्चित किया था। वह तो वैसा ही कायम रहा। चुनांचे मित्रवृन्दा बहनको हमारी तरफ और लंच तैयार करने तरफ इस प्रकार दोनों तरफ ध्यान पिरोनेकी परेशानी उठानी पड़ी। उनका संभ्रम साफ दिखाई दे रहा था। डॉ० बालिगा आतिथ्य-कलामें प्रवीण हैं। सब कुशलतासे आयोजित करते हैं और चेहरे पर अस्वस्थता जरा भी नहीं दीख पड़ती।

जानेके दिन सामान्य रूपसे कार्यक्रम नहीं रखा जाता। लेकिन, २३ तारीखको सुबह बॉन-विश्वविद्यालयके रेक्टर और भारत विद्या-प्रवीण प्राध्यापकसे मिले। नालन्दा-विश्वविद्यालयकी स्थापना हुई, तब इस भाईको व्याख्यानोंके लिए बुलाया होगा। कहने लगे, 'मैं आया तब वहां कोई तैयारी नहीं थी, इसलिए मेरा आना लगभग व्यर्थ हुआ। पूरी तैयारी करके, अच्छे-अच्छे विद्यार्थी इकट्ठा करके बादमें मुझे बुलाया होता, तो वह कुछ कामका साबित होता।'

हमारी स्मृतियोंमें और इतिहास-पुराणमें जो समाजशास्त्र समाया हुआ है, उसके ऊपर किसीने जर्मन-भाषामें कुछ लिखा है? इस विषयमें कुछ अध्ययन हुआ है? यह सवाल मैंने उनसे पूछा। उन्होंने कहा कि हमारी 'इण्डोलॉजी'में इसका

समावेश नहीं होता।

बॉनमें अमेरिकन एक्सप्रेसका दफ्तर ही नहीं है। इसे तो देहाती राजनगर कहना होगा। गोड्डेसबर्ग जा कर पत्रोंकी पूछताछ की। किसीका पत्र नही था।

आखिर हमने बॉन छोड़ा। अपनी एम्बेसीकी मोटरमें ओटोबानके अद्भुत रास्तेका अनुभव लगभग पचास मील तक करके हम डुसलडोर्फके हवाई अड्डे पर पहुंचे। हवा अच्छी थी, लेकिन कुछ तेज चल रही थी।

भाई आल्फ्रेडसे विदा लेते दिल भर आया। वह जितने जर्मन हैं, उतने ही भारतीय भी, रुखसत होते समय उन्होंने भारतीय ढगसे चरणस्पर्श भी किया। मेरे सामने धूम्रपान न करनेका विवेक उन्होंने काफी समय तक बताया था। फिर, मैंने ही उनको इजाजत दी। पास बैठ कर मांस खाते, तो भी विवेकपूर्वक कहते, 'हम तो क्षत्रिय हैं।' इस भाईकी कुशलता और प्रेमलता असाधारण है।

—काकाके सप्रेम शुभाशिष

२४. ब्रुसेल्सकी प्रदर्शनी

२६-६-१९५८

प्रिय बाल,

२३ तारीखको तीन बजे हमने डुसेलडोर्फ छोड़ा और चार बजे ब्रुसेल्स आ पहुंचे। रास्तेमें पहले खेत, देहात और बादमें बादल और बारिश देख सके। यहां हवाई अड्डे पर हमारी एम्बेसीकी ओरसे मोटरके साथ श्री होग आये थे। मादामा इसाबेल ब्लूम तो थी ही। इनके अलावा एन्टवर्पसे श्री जितेन्द्र भाई अपनी मोटरमें आये थे। पहले एन्टवर्प जानेका सोचा था, लेकिन बादमें ब्रुसेल्समें ही रहना सुविधाजनक मालूम हुआ। इन्टरनेशनल क्लबका मकान तो भव्य, राजशाही ढंग-का है। लेकिन, हमारे कमरे हैं ठेठ तीसरी मंजिल पर! स्थिर होते ही अपने राज-दूत श्री कौलसे हम मिलने गये। अच्छे मिलनसार आदमी है। इतमीनानसे बातें हुई। बादमें उन्होंने अपने फर्स्ट सेक्रेटरी श्री मिश्रासे परिचय करा दिया। वह तो हमारे जबलपुरवाले द्वारकाप्रसाद मिश्रके पुत्र निकले। पंडित द्वारकाप्रसाद आजकल सागर-विश्वविद्यालयके कुलनायक हैं।

शामको चीनके प्रतिनिधि और अभिनेताओंका स्वागत था, वहां हमें ले गये। वहां बहुत लोग मिले। उसमें हमारी चीनकी यात्रामें हमारी तैनातमें खास नियुक्त दुभाषी भाई तुंग मिले। उनको मेरा खत मिला था। वहांसे वापस लौटते मादाम ब्लूमने शहरके अनेक भागोंमें टैक्सी घुमा कर हमें अच्छे-अच्छे स्थान और मकान दिखाये। मेरी कल्पनाकी अपेक्षा शहर अधिक बड़ा और सुन्दर सिद्ध हुआ।

राजप्रासाद, लोक-प्रतिनिधि-सभा, Grand Place (यहांका चांदनी चौक), बड़े-बड़े गिरजाघर आदि देखे। यूरोपमें स्थान-स्थान पर मूर्तियां खड़ी करनेका रिवाज दिखाई देता है। अब मुझे मालूम हुआ कि यूरोपके मूर्तिकार इतने कुशल क्यों हैं! और, हमारे यहां एक भी अच्छी मूर्ति शायद ही दिखाई देती है।

हमको भोजन अच्छा मिलता है, इतना आश्वासन तुम लोगोंको दे दूं। खासकर फल और सब कुछ। मादाम ब्लूमने यहांके लोगोंसे कहा होगा कि काका साहेब नेहरू-सरकारकी ओरसे खास नियुक्त किये गये, पार्लियामेंटके प्रतिनिधि हैं। यहांके लोगोंने मान लिया कि प्राइम मिनिस्टर नेहरू द्वारा प्रदर्शनीके लिए खास भेजे हुए उनके प्रतिनिधि हैं। जो कुछ भी हो, प्रदर्शनीके व्यवस्थापकोंने प्रदर्शनी देखनेके लिए अच्छी व्यवस्था करवा दी। ता० २३ और २४ दोनों दिन एक बड़ी मोटर और सब समझानेवाली एक Fair Hostess—हमें दी गई। हमारी 'ख्याति' सुन कर यहांके टेलिविजनने एक प्रश्नोत्तरी फ्रेन्चमें और एक फ्लेमिशमें ता० २४ को रखी। यह गलतफहमी न होती, तो भी गांधीके आदमीके तौर पर और हमारी दाढ़ी-साड़ीके आकर्षणके कारण टेलिविजनवालोंने हमें बुलाया होता!

सारा प्रदर्शन तफसीलसे देखना असंभव ही था। इसलिए, हमने २३ तारीखको अमेरिकाका और सोवियत यूनियनका—ऐसे दो मंडप सवेरे ही देख लिये। भोजनके लिए चेकोस्लोवाकियाके भोजनालयमें व्यवस्था की थी। इसलिए वहां भोजन करनेके बाद तुरन्त उनका मंडप भी देखा। वह तो अपेक्षासे कुछ अधिक सुन्दर निकला। उसमें बच्चोंके लिए बनाई दुनिया सचमुच अद्भुत थी। और, कांचके कामके द्वारा आदमी क्या-क्या पैदा कर सकता है उसकी भी नई-नई कल्पनाएं मिलीं। हम संगमरमरकी मूर्तियां बनाते हैं। कांसेकी मूर्तियां ढालते हैं। यहां अत्यन्त सुन्दर कलापूर्ण कांचकी मूर्तियां देख कर मैं तो अवाक् हो गया। हमारे यहां इस कलाका विकास आसानीसे हो सकता है और इससे कलाकारोंको एक नया क्षेत्र भी मिलेगा।

यह सब देखनेके बाद आराम करनेकी जरूरत तो थी ही। उसके लिए इस प्रदर्शनीमें एक बहुत अच्छी सुविधा की हुई हमने देखी—जिसका नाम है Relax। स्वागत-प्रासादकी एक तरफ कमरोंकी दो कतारें बनाई हुई थी। हर एक कमरेमें पैर लम्बा कर सो सकें, ऐसी एक-एक कुर्सी थी और उसकी बगलमें ही उस कमरेका अपना पाखाना और नहानेका कमरा। गरम पानी, ठंडा पानी, चाहे जैसे काममें ले सकते हैं। साथमें छोटा-सा साबुन, तौलिया और शरीर घिसनेके लिए तौलियेका हाथ-मोजा। पश्चिमी ढंगका शौचकूप, मुंह धोनेका बेसिन, आईना और परदा—सब सुन्दर, स्वच्छ और व्यवस्थित। हरेक कमरेमें एक छोटा-सा टेलिफोन तो था ही। कमरेका किराया भी ज्यादा था।

इन कमरोंमें उत्तम आराम करके, तरोताजा हो कर हम टेलिविजनमें गये। सवाल पूछेंगे और कितना समय देना होगा, किसीको कुछ मालूम ही नही ! ऐन वक्त पर आ कर उन्होंने मेरे सामने सवाल रखे। सब अच्छे थे। मुझे बीचमें बिठाकर एक तरफ सरोज और दूसरी तरफ एक दुभाषी। मुझे लगता है कि यहां भी मेरी दाढ़ी और चि० सरोजकी साड़ी, टेलिविजनकी शोभा और आकर्षण बढ़ाती थी—जिस प्रकार हम अपने सामने, आईनेमें देखते हो, उस प्रकार देखते थे। एक बार फ्रेंचमें टेलिविजन हुआ और बादमें फ्लेमिशमें। सारा दिन हमारे साथ मादाम ब्लूमकी प्रतिनिधि मादाम Suzanne Somerhousen प्रेमसे साथ घूमीं और हमको सब बताया।

यह सब पूरा करके हम International Club में वापस आये। वहां खा-पी कर अपने लिए आयोजित एक Reception में गये। उस क्लबके संस्थापक Baron Antoine अध्यक्ष थे। आये हुए लोग चुनिन्दा होनेके कारण मेरे भाषण-के बादकी प्रश्नोत्तरी उत्तम हुई। अहिंसाकी बात यूरोपके गले उतरना कितना मुश्किल है और कितना जरूरी है, यह बात मैं दिन-पर-दिन अधिकाधिक अनुभव कर रहा हू और मेरा खयाल है कि जिस जीवटसे आदिम ईसाई मिशनरियोंने ईसा के उपदेशका प्रचार किया था, वैसे ही जीवटसे और अमर श्रद्धासे किन्तु नये ढंगमें, अहिंसाका प्रचार इस खंडमें होना आवश्यक है। इन गोरे लोगोंके साथका हमारा सम्बन्ध 'बाबा-कम्बल' न्यायका है। हम इन लोगोंको छोड़नेके लिए तैयार हुए, तो भी ये लोग हमें छोड़नेवाले नहीं हैं। इसलिए, इनकी मांग पूरी करनी ही पड़ेगी या उनको अपनाना ही पड़ेगा। यह मेरे लिए एक नया जीवन-दर्शन है।

दूसरे दिन भी हम प्रदर्शनी देखेंगे, ऐसा पहलेसे खयाल नही था। मैं नेहरूका प्रतिनिधि नही हूं, यह मेरे ही मुंहसे जाननेके बाद भी, दूसरे दिन मेरी एक रेडियो-वार्ता, यानी मुलाकात रखी गई थी। पत्रकारोंके साथ एक कान्फरेन्सका भी आयोजन किया गया था और हम ब्रिटिश-मंडप देखें, ऐसी उस मंडपके व्यवस्थापकोंकी खास इच्छा थी। ये दोनों दिन भोजनके लिए और घूमने-देखनेके लिए थे। हम प्रदर्शनीके जानकारी-खातेके व्यवस्थापक Mr. Verbeck के मेहमान थे। देखनेमें आदमी आदर्शवादी कवि जैसे मालूम होते थे। प्रदर्शनीमें पहुंचते ही रेडियो में मेरी प्रश्नोत्तरी रेकार्ड की गई। यहां प्रेक्षकोंके सामने बोलनेका क्षोभ नही था। दस मिनटमें सब कुछ पूरा हुआ। मौका पा कर यहां भी मैंने कह दिया कि मैं नेहरूका प्रतिनिधि नहीं हूं। मैं तो सांस्कृतिक कामके लिए मध्य अमेरिकाकी तरफ जा रहा हूं। अहिंसाके बारेमें चार शब्द बोलना तो मेरा मुख्य काम था। बादमें थोड़ा समय पाने पर हम बेल्जियम देशके वस्त्र-विभागके मंडपमें गये। यहांकी सारी रचना, प्रकाशकी व्यवस्था और रंगोंकी पसन्दगी सभी शांति और प्रसन्नताके पोषक थे। पुराने और नये लिबासके दो विभागोके बीच एक सुन्दर पुल बनाया गया था

और एक स्थान पर तो मानों हौजमेंसे पानीकी फुहारें निकलती हों, इस खूबीसे रंग-बिरंगे कपड़ोंका फुहारा बनाया गया था। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि यह सब देखनेके लिए हमारे विट्ठलदास जेराजाणी यहां होते, तो क्या ही अच्छा होता !

—काकाके सप्रेम शुभाशिष।

२५. ब्रुसेल्ससे लंदन

२७-६-१९५८

प्रिय बाल और सतीश,

२५ तारीखको बेल्जियन वस्त्र-भंडार देख लेनेके बाद ग्यारह बजे पत्रकारोंके साथ मुलाकात शुरू हुई। उन लोगोंने, 'कहां जा रहे हो ? किस हेतुसे जा रहे हो ? प्रदर्शनी देखनेके लिए क्या आपको नेहरूने भेजा है ?' आदि सवाल पूछे। फिर, रशियन और अमेरिकन मण्डपोंके बीच तुलना करनेके लिए मुझसे कहा गया। मैंने कहा, 'दो सुन्दर किन्तु भिन्न फूलोंके बीच तुलना कैसे हो सकेगी ? हरेक मण्डपमें खास-खास क्या भाया, यह कह सकता हूं।' और Unfinished work of America यह जो विभाग है, वह मुझे बहुत पसन्द आया था, उसके बारेमें मैंने विस्तारसे कहा। एक अमेरिकन पूछने लगा कि, 'हम अपनी कमियां इस तरह साफ कबूल करते हैं। रूसी मण्डपमें आपने ऐसा कुछ देखा ?' मैंने कहा, 'अपनी कमियां कबूल करनेकी हिम्मत प्रौढ, अनुभवी राष्ट्र ही कर सकते हैं! रूसी सरकार तुलनामें बालक-सरकार कही जा सकती है। उससे इस तरहकी अपेक्षा ही मैं नहीं रखूंगा।' वे लोग कहने लगे कि, 'हमारे अमेरिकन लोग ही आलोचना कर रहे हैं कि रूसने जिस तरह अपने यन्त्र ला-ला कर अपनी शक्तिकी जाहिरात की, वैसा कुछ अमेरिकाने नहीं किया, यह कमी कहनी चाहिए। केवल कला और जीवन बतानेसे क्या लाभ ?' मैंने कहा, 'प्रदर्शन देख कर मेरे जैसा मनुष्य यह अनुमान नहीं निकालेगा कि अमेरिकन यन्त्रोंमें पिछड़ा हुआ है। मानवी सहकार बढ़ानेके लिए हरेक देश अपना-अपना जीवन पेश करे और कलाकी सुवास फैलाये, यही उचित है।'

यह जवाब सुन कर निश्चित होनेके बजाय दूसरे अमेरिकन सज्जनने पूछा कि आप मशीनरीमें दोष देखते हैं ? मैंने कहा, 'ऐसा नहीं है। दूरबीन, कैमरा, और ऐसे कई यन्त्र हैं, जो मनुष्य-जातिके लिए आशीर्वाद-रूप हैं। जो यन्त्र संहारकारी हैं और जिन यन्त्रों द्वारा मनुष्य मनुष्यका शोषण कर सकता है—exploit कर सकता है, ऐसे यन्त्रोंके बारेमें मेरे जैसा आदमी सदा शंकाशील रहेगा। एक मंडपमें एक देशने बन्दूकें भी रखी हैं। ऐसी अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनीमें यह बिलकुल शोभा

नहीं देता।' किसी एकने बचाव करते हुए कहा, कि 'वह तो जंगलके जानवरोंके शिकारके लिए हैं।' मैंने कहा, 'बन्दूक तो बन्दूक ही होती है। फिर, उसका उपयोग मनुष्यके खिलाफ किया जाए या जानवरके। बन्दूककी उपयोगिता मान्य करें, तो भी ऐसे स्थान पर उसका प्रदर्शन क्यों किया जाए?'

बादमें उन्होंने पाकिस्तान, कश्मीर, गोवा आदिके बारेमें अनेक सवाल छेड़े। मैंने कहा, 'अपने देशकी तरफदारी करनेके लिए मैं यहां नही आया हूं। लेकिन, आप सवाल पूछते ही हैं, तो ये लीजिए मेरे जवाब। लेकिन, ऐसे प्रश्नोंको इस मुलाकातमें स्थान नही होना चाहिए।' ऐसी प्रस्तावनाके साथ मैंने जोरसे उन सब सवालोंका जवाब दिया, जिसका असर अच्छा हुआ। हंगेरियन नेता नोज्यकी हत्याके बारेमें भी सवाल पूछे गये। मैंने अपना व्यक्तिगत अभिप्राय दिया कि, मुझे तो उससे आघात पहुंचा है। सरकारें क्यों नही समझती कि ऐसी कार्रवाइयों से किसीको किसी भी प्रकारका लाभ नही होता। ऐसी सजासे कोई सुधरता भी नही और दबता भी नहीं।'

मुलाकातके अन्तमें दी जानेवाली शराब लेनेसे हमने इंकार किया, तब एक अमेरिकन पत्रकारने कहा कि 'मैं भी वर्जित हूं।' उसके साथ विशेष बातचीत हुई, जो उसने अपने यन्त्रमें अंकित कर ली।

फिर, हमने हंगेरियन भोजनालयमें, भाई बरबेकका मेहमान बन कर अच्छा भोजन किया। भोजनके अन्तमें उन लोगोंने हंगेरियन लोगोंकी खातिर मुझसे एक संदेश लिखवा लिया। मैंने लिखा—'My heart goes out to the Hungarian People. May they get what they are struggling for, namely Peace.' वे लोग बहुत राजी हो गये।

आज भी relax में जा कर आराम किया। और, बादमें जैसा कि पहले तय हुआ था, ब्रिटिश मंडप देखने चले गये। यहां पहले सर जॉन बाल्फर (Sir John Balfour) खास तौरसे मिले। किताबमें हमारा नाम लिखवाया। फिर, उनके सेक्रेटरीने हमारे साथ घूम कर मंडपके तीनों विभाग हमको रसपूर्वक दिखाए। आदमी मीठा, चतुर और नर्मरसिक था। उनकी प्रचारकी पद्धति रूस या अमेरिकाकी पद्धतिसे अधिक सूक्ष्म, प्रौढ और इसीलिए प्रभावी भी थी: Like art, propaganda lies in concealing propaganda.

आजके कार्यक्रममें जिस प्रकार ऑटोमीयम देखनेका खास तय किया गया था, उसी प्रकार बेल्जियन लोग कांगोमें लोकोन्नतिके काम किस प्रकार कर रहे हैं, यह देखनेकी भी बात थी। ऑटोमीयमके बारेमें यहां विशेष नहीं लिखना चाहता। जिस प्रकार हमारे यहां ब्रिटिश सरकारने और मिशनरी लोगोंने हमें 'सुधारा', उसी प्रकार बेल्जियन लोग कांगोवासियोंको सुधार रहे हैं। इस सारे प्रकरणका ठीक ख्याल आनेके लिए राजा लीयोपोल्डका जीवन पढ़ना चाहिए। रोंगटे खड़े

हो जाएं, ऐसा इतिहास है।

प्रदर्शनीके कॉमिसेरियेट जनरल बॅरनकी ओरसे बेल्वेडियर-प्रासादके बागीचेमें एक प्रतिष्ठित Garden party का आयोजन किया गया था। न जाने किस कारण से, हमें निमन्त्रण मिला था, इसलिए वहां गये। वहांका बागीचा बहुत यानी बहुत ही सुन्दर था—कालीनसे भी बढ़िया। वहां ज्यादा समय रुके विना हम वापस चले आये और जल्दी-जल्दी भोजन करके अमेरीकन मंडपमें आयोजित Suzannah ऑपेरा देखने गये। माना था कि कोई हास्यप्रधान कथा होगी। लेकिन, निकली करुणकथा! पात्रोंका अभिनय सुन्दर था। हमारे राजदूत श्री कौल अपनी पत्नीके साथ वहां आये हुए थे। उनसे भेंट हुई। हम आखिर तक नही बैठे। मोटरसे लम्बी यात्रा करके घर आ कर सो गये।

दूसरे दिन सुबह एम्बेसीकी मोटरमें हवाई अड्डे पर पहुंच कर एक घंटेके अन्दर डोवरकी सामुद्रधुनी पार करके हम लन्दन पहुंच गये।

वहां भाई श्री सुन्दर काबाड़ी और दूतावासके श्री साहनी अपनी मोटर ले कर लेने आये थे। दूतावासने हमें एक होटलमें ठहरानेका सोचा था लेकिन हमने श्री काबाड़ीजीकी योजनाके अनुसार स्वदेशी मित्रोंके घर पर रहना ही पसन्द किया और श्री पांडुरंग सीताराम बनारसेके घर पहुंचे।

श्रीमती बनारसेके बनाये हुए महाराष्ट्रीय भोजनको स्वीकार करके हम साढ़े तीन बजे Friends House में श्री होरेस अलेक्जांडरसे मिलने गये। आधा घंटा उनके साथ बातचीत करनेके बाद, दूसरे तीन-चार मित्रोंके साथ उन्होंने जिस वार्तालापका आयोजन किया था, उसमें शरीक हुए। इस बातचीतका वर्णन भी लिखने लायक है। साढ़े पांच तक वार्तालाप चला। उसके बाद दूतावास बन्द हुआ होगा। यह मालूम होते हुए भी हम वहां गये और रस्म अदा करनेके खातिर महाद्वारकी किताबमें नाम दर्ज कर आये।

उसी समय सूझा कि छह साल पहले जिस घरमें हम ठहरे थे, वहांके लोगोंसे मिल आयें। इस घरका क्रमांक था बार्क्ले स्क्वेअर, नं० ४५ ए। हिन्दके इतिहास में जिन लोगोंका नाम अंकित हुआ है, उनमेंसे Lord Clive का यह मकान था। हालमें वह M. R. A. वाले Frank Buchman का हो गया है। अन्दर जा कर हमने पुराने मित्रोंकी पूछताछ की। उनमेंसे कोई नही थे। लेकिन, आजकल वे कहां हैं, इसकी जानकारी मिली। नये लोगोंमें Dr. John Brine मिले और एक वृद्धा बहन Lady Rose Manell भी मिलीं। इस स्थान पर हो आनेमें बहुत अच्छा लगा; क्योंकि अनेक सेवाभावी लोगोंने यह स्थान चलाया है।

इसके बादका कार्यक्रम था भारत-सरकारकी मददसे खरीदे हुए और चलाये हुए Y. M.C.A के मकानमें भारतीय विद्यार्थियोंके साथ भोजन करनेका और उनके साथ बातचीत और प्रश्नोत्तरी करनेका। विद्यार्थी स्वयं वहां सेवा करते थे।

मकानमें एक प्रार्थना-खंड भी है। वहां लगभग साठ विद्यार्थी कुछ समय तक रह सकते हैं, यह एक बड़ी सुविधा है। मुसीबतके समय यहां आ कर रहें और सुविधा होते ही स्थायी स्थान पर चले जाएं।

भाई बनारसेने हमारी सोनेकी व्यवस्था बहुत अच्छी की थी। सारा कुटुम्ब एक साथ मिल कर मेहमाननवाजी करता था। उनका छोटा, सात सालका लड़का बापू, चि० दीपक जितना पतला नहीं, किन्तु उतना ही प्रेमल और मीठी-मीठी बातें करनेवाला है। उसको गोदमें लेने जाते तुरन्त आ कर बैठ गया। अंग्रेजीमें ही बोलता है। 'तेरे क्लासमें कितने लड़के-लड़कियां हैं' ऐसा सवाल करते उंगलियां चला कर गंभीरतासे गिनने लगा; उस समय तो मानों दीपक ही गिन रहा हो, ऐसा लगा और वात्सल्यभाव पैदा हुआ। हमारे सवाल पूरे हुए, तब पूछता है, 'अब मैं जा सकता हूं?'

० ० ०

२८-६-१९५८

कल सुबह हमारे जीवणजी भाईका लड़का मनु और पुत्रवधू कुसुम मिलने आये थे। दोनों प्रसन्न थे। उनको देख कर बहुत खुशी हुई। थोड़े ही दिन पहले मिली हुई मेरी किताब 'उगमणो देश' साथ ला कर उस पर उन्होंने मेरे आशीर्वाद लिखा लिए। भारतकी साम्प्रतिक स्थितिके बारेमें पूछा। मनुने बचपनमें मुझे कब-कब मिला था, वे सब प्रसंग याद किये। मैंने भी कहा कि अहमदाबाद कांग्रेस-हाऊसमें जब मैं श्री नरहरि भाईके साथ रहा था, तब बालक मनुको हाथमें लटका कर गोल-गोल घुमाया था। मनुको वह याद था, इसलिए खिलखिला कर हंस पड़ा। कुसुम हमारे साथ बातें करनेके लिए रह गई। लेकिन, दोपहरको उसके वहां खाने-के लिए उसने फिरसे आग्रह किया, सम्मति प्राप्त की और तुरन्त रसोई बनानेकी तैयारीके लिए चली गई। यह ठीक ही हुआ। हम उनका छोटा, फिर भी करीनेसे रखा हुआ कमरा देख सके और स्वादपूर्ण भोजन पा कर माने। अहमदाबादमें हों, ऐसा अनुभव कर सके। कुसुम तैयारीके लिए गई और चि० गीता त्रिवेदी हमसे मिलने आई। गीता शिलांगमें रहनेवाले हमारे श्रीमुख भाई और मनोरमा बहन मेहताकी लड़की है। वह अपने डेढ़ सालके लड़के शंकरको ले कर आई थी। खेल-वाड़ी गीताको गंभीर माताके रूपमें बालकको संभाले हुए देख कर आनन्द हुआ। उसका भाई जित भी लंदनमें ही, अपनी अंग्रेज पत्नीके साथ रहता है। गीताकी और मनु-कुसुमकी अच्छी दोस्ती होनेके कारण वही हमको अपनी मोटरमें ले गई और वहां कुसुमके काममें हाथ बंटा कर उसने हमारे साथ ही भोजन किया।

भोजनके बाद हमारे दूतावासमें श्रीमती विजयलक्ष्मीसे मिलने गये। वहां उनके साथ हमारे डेप्युटी हाई कमिश्नर श्री आजिम हुसैन भी थे। चि० सरोजकी 'स्वरूप' के साथ पुरानी पहचान होनेके कारण पद्मजा, रैहाना आदि सबकी बातें चलीं।

आजिम हुसैनने कहा, वे ऑक्सफोर्डमें सतीशके साथ थे। वेस्ट इण्डीजके मेरे काम के बारेमें थोड़ी बातचीत हुई। आवश्यक सुविधाएं मांग लेनेके लिए विजयलक्ष्मीने बहुत आग्रह किया और हम रुखसत हुए। नीचे कार्यालयमें जा कर अपने पत्रोंकी तलाश की। वहां नैरोबीके श्री अम्बालाल शाह मिले। छुटपनमें उसने अरुशामें स्वागतमें हिस्सा लिया था। उसने सुझाया कि ब्रिटिश गियानाके विद्यार्थियोंसे मैं मिलूं। उसने उसके अनुसार उन लोगोंको संदेशा भेजा।

घर जा कर आराम किया। इतनेमें ब्रिटिश गियानाके तीन विद्यार्थी—जो यहां कानूनका अध्ययन करते हैं—आ पहुंचे। उनके साथ डेढ़-दो घंटे विस्तारसे बातचीत हुई। मेरे कामकी दृष्टिसे यह बातचीत बहुत उपयोगी थी।

इन लोगोंके चले जानेके बाद श्री बनारसे कुटुम्ब और भाई सुन्दर काबाड़ीके साथ काफी समय मिला। आरामसे भोजन किया। कुटुम्बके साथ फोटो खिचवाये और हवाई अड्डे जानेके लिए दूतावासकी मोटरमें श्री साहनीके साथ निकले। साहनी यहांके अनुभवी होनेके कारण हवाई अड्डेकी सारी झंझट उन्होंने ही निबटा ली और हमने माना कि लन्दन-पुराण यहां पूरा हुआ। लेकिन नहीं, यहां हमको 'एडिस अबाबा' जैसा ही कुछ अनुभव होना था; जिसके कारण हमारा न्यूयार्कका कार्यक्रम अव्यवस्थित होनेवाला है।

विमानकी सीढियों तक ले जानेवाली बसमें हमें अच्छी तरह बिठा कर श्री साहनीने विदा ली। हम बारिशका थोड़ा प्रोक्षण प्राप्त कर विमानमें स्थानापन्न हुए। विमान बहुत सोच-विचारके बाद उड़ा और उसने आधा घंटा यात्रा भी की। इतनेमें वाहकने देखा कि यन्त्रके लक्षण कुछ ठीक नहीं हैं और आगे जाना खतरेसे खाली नहीं होगा। इसलिए, हम जो कुहरेमेंसे और अंधेरेमेंसे निकल कर ऊपर प्रकाशमें पहुंच गये थे, फिरसे मुंह मोड़ कर लन्दनके कुहरेमें घुसे और जहांसे निकले थे, वहीं आ पहुंचे।

आगे क्या होगा, कोई भी जानता नहीं था। हम बैठ कर थक गए, ऊब गए, मनमें चिढ़ गये। कम्पनीकी ओरसे मिले हुए सैंडविच और कॉफी गलेके नीचे उतार कर चिढ़ और ऊब उतारी और रातके एक बजे तक हमारा लन्दनवास बढ़ा। एक बजे यानी ता० २८ को (आज) हम फिरसे निकले। विमानने खासा आधा घंटा इरादा पक्का करनेमें लगाया और मेन्चेस्टर तथा स्कॉटलैंडके ग्लासगो-के नजदीकके प्रेस्टविकके मुसाफिरोंको साथ ले कर अब हम न्यूयॉर्कके रास्ते सीधे उड़ रहे हैं।

अब घड़ीका, यानी समयका कोई ठिकाना नहीं रहा। पौ फटते ही विमानके कर्मचारीसे मैंने पूछा, 'क्या बजा है?' उसने कहा, 'London time ten to six, New York time ten to one.' अब अन्तरालमें जिस स्थान पर हैं, वहांका स्थानिक समय कौन-सा माना जाएगा? यहां तो हमारा कालके साथका सम्बन्ध

प्रकाश और भूख तक ही सीमित है।

काहिरासे लन्दन तकका हमारा प्रवास पुरानी दुनियाका और पूर्वपरिचित कहा जा सकता है। अब हम नई दुनियामें प्रवेश कर रहे हैं। इस दुनियामें हमारे परिचित लोग हैं, वहांका इतिहास भी हम थोड़ा कुछ जानते हैं। यह दुनिया हमारे देश पर, हमारे जीवन पर भी भारी असर डाल रही है और विशेष यह कि तुम दोनोंने इस दुनियामें काफी रह कर उसका परिचय भी प्राप्त किया है, फिर भी यह दुनिया हमारे लिए अनुभूत है।

—काकाके सप्रेम शुभाशिष।

२६. न्यूयार्क—१

२६-६-१९५८

प्रिय बाल और सतीश,

विमानमेंसे अमेरिकाकी भूमिका दर्शन हुआ, तब सबसे पहले तुम दोनोंका ख्याल आया। बालको अमेरिका ले जानेवाले जहाजने देर न की होती तो सरकारी इजाजतके अभावके कारण बाल अमेरिका जानेके लिए निकल ही नहीं सकता था। आखिरमें जब इजाजत आई, तब सतीशने दौड़धूप करके बालकी सब तैयारी कर दी, यह सब बातें मानों कल ही सुनी हों, इतनी ताजी हो गईं। बालको मैंने जो तार दिया था, वह भी याद आया। वह जमाना गया और आजका जमाना अब नये-नये अनुभव कराता है। बाल और सतीशने यह नई दुनिया देख कर जो उद्गार निकाले, वही उद्गार आज मैं नहीं निकाल सकता। लेकिन, इतना तो अनुभव कर ही रहा हूं कि अमेरिकाकी दुनिया एशियासे भी भिन्न है और यूरोपसे भी भिन्न है। गुणाकारसे ये लोग डरते ही नहीं।

हवाई अड्डे पर सबसे पहले एक अमेरिकन बहनने हमें पहचान लिया और वह अपने साथ हमें ले गई। उसकी मददके कारण अमुक विधियोंमेंसे हमने झट छुटकारा पाया। उसके बाद न्यूयॉर्कके हमारे कौन्सल जेनरलके कार्यालयके श्री वसंत नेवरेकर मिले। उनको हमारे रवीन्द्र केलेकरने लिखा था। नेवरेकरने मुझे एक पुरानी बात याद दिलाई, जब वे मेरे सेक्रेटरी होनेवाले थे, लेकिन निकटके कालमें उनकी शादी होनेवाली थी, इसलिए वह सम्भव नहीं हुआ था। नेवरेकरके मिलनेसे आराम हुआ; क्योंकि दूतावसके लोगोंको हवाई अड्डे पर सब जगह जानेकी छूट होती है। और, बहुत बार अपने लोगोंके स्वागतके लिए आते रहनेके कारण यहांके सब लोग इस भाईको पहचानते हैं। जकात-विभागमेंसे छूटे और तुरन्त हेरी

और खुशी नाइल्स और मार्गरेट बहन मिले। उभय पक्षोंको कितनी खुशी हुई! सचमुच वह कुटुम्बीजनोंका मिलन था। सबसे पहले चि० रैहानाके कुशल समाचार दिये। बादमें दूसरी बातें चलीं। उसके अनुसार श्री वसंत नेवरेकरको पते आदि दे दिये और आरामके लिए न्यूयॉर्कमें अमुक घण्टे रहनेका विचार बदल कर सीधे 'केपमे' (Cape May) जानेका निश्चय किया। लेकिन, हेरीने हमें न्यूयॉर्कमे अनेक जगह घुमा कर इस अद्‌भुत शहरका दर्शन कराया। खास करके एक सिरे पर नीग्रो-बस्तीमेंसे हो कर गुजरे और दूसरे सिरे पर 'युनायटेड नेशन्स ऑरगे-निजेशन'—संयुक्त राष्ट्रसंघका उत्तुंग, विशाल और सुकल्पित मकान देखा।

(हमारे यहां मध्यकालमें जो अफ्रीकाके लोग आये थे वे इथियोपिया अथवा एबिसीनियाके थे। उनके देशको हम हबसाण और वहांके लोगोंको हबशी कहते थे। इन लोगोंका राज्य मिस्रके दक्षिणमें और अफ्रीका-खंडके पूर्वमें है। जबकि अमेरिकामें गुलामके तौर पर पहुंचे हुए अफ्रिकन लोग मुख्यत: उत्तर-पश्चिम अफ्रीकाकी नायगर नदीके किनारे रहनेवाले थे। उस नदी परसे उनका नाम नीग्रो पड़ा है।)

एक अनुकूल भोजनालय ढूंढ़ कर वहां पेट भर खा-पी कर केपमे जानेके लिए निकले। मालूम हुआ कि न्यूयॉर्क शहर, बम्बईके समान एक टापू पर बसा हुआ है और इसलिए यहां मकान इतने ऊंचे-ऊंचे बांधने पड़ते हैं। मैंने यहांके मित्रोंसे कहा कि यह गगनचुम्बी मकान देख कर मनुष्य-जाति तो प्रवालके कीटोंके जैसी लगने लगती है।

मकानोंका तो खैर, लेकिन लम्बे-लम्बे मीलों तकके रास्तों पर दूसरे रास्ते बांधने पड़ें और उन परसे रेलगाड़ियां और तैलवाहन दौड़ते रहें, यह तो हद हो गई। लम्बे-लम्बे पुलोंका तो समझ सकते हैं; क्योंकि उनके जरिये नदी लांघनी होती है; लेकिन रास्तों पर के लोहेके रास्तोंको दिल पसन्द करता ही नहीं। और, मकानोंवाली जमीनके नीचेसे और नदीके नीचेसे दौड़नेवाले रास्ते तो फिर अलग ही! यह सारी कल्पना ही अस्वस्थ करनेवाली है। किसने कहा है कि इतनी भीड़ करके रहो! जवाब तो यही हो सकता है—'सयाने लोगोंके पागलपनने।' ये अमेरिकन जो कुछ करते हैं, बहुत सुघड़तासे करते हैं। कलासे भी सुघड़ताको अधिक महत्त्व दे कर स्थापत्य की नई कला इन लोगोंने क्यों स्थापित की, उसका कारण यहां समझमें आता है।

मुझे एक खयाल आया कि ऐसे ऊंचे मकान अगर डोलने लग जाएं, तो एक-दूसरेके साथ टकरायेंगे। यह संकट टालनेके लिए मकानोंके बीच अगर पुल बांधे जाएं, तो लिफ्ट द्वारा चढ़ने उतरनेका झंझट भी कुछ हद तक बच जाएगा। गुजरात के मध्यकालीन कुओंमें अन्दर उतरनेकी सीढ़ियोंकी दो तरफ जो दीवारें होती हैं, वह आसपासकी जमीनके दवाबके कारण गिर न जाएं, इसलिए बीच-बीचमें पुल

जैसे पत्थर रखे जाते हैं और उन पर कला उंड़ेली जाती है। यहां पर भी बड़े मकानों के बीच कलायुक्त सन्धि बनायी जाएं, तो अमेरिकन संस्कृतिकी शोभा बढ़ेगी।

० ० ●

१-७-१९५८

जबसे हम मिले हैं, उस क्षणसे कितने ही विषयों पर हमारी अविरत बातचीत चल ही रही है। हिन्द, अमेरिका, नीग्रो, अस्पृश्यता, जाति-व्यवस्था, अहिंसा, रूस, दुनियाके धर्म और दयालु ईश्वरने दुनियामें पाप, दुःख और दुष्टता किसलिए रहने दिये? सत्याग्रहका स्वरूप क्या है? उस अहिंसा पर सारी दुनिया अमल कर सकेगी, तो कैसे? सत्याग्रहकी युद्धनीति, अहिंसा शोधपीठ, भूदान, ग्रामदान, भिन्न संस्कृतियोंके दृष्टिभेद, शाकाहारके प्रकार, न्यूयॉर्क जैसे शहरोंका विकास और दोनों तरफकी कौटुम्बिक बातें करते-करते दो दिन कैसे बीत गए, मालूम ही नहीं पड़ा।

न्यूयार्कसे केपमे, ५०-६० मीलके वेगसे जाने पर भी लगभग चार घण्टेका रास्ता है। रास्ते इतने अच्छे हैं कि मानों पानी परसे नाव चलती हो, इस तरह हमारी मोटर रास्ता तय करती थी।

केपमे अतलातक महासागरके किनारे पर का एक सुन्दर भूशिर और हवा खानेका स्थान है। पूर्व और दक्षिणकी तरफ महासागर और पश्चिमकी ओर उत्तर से आनेवाली डेलावर नदी। यह नदी दूरसे फिलाडेल्फिया तक आती है और फिर अधिक चौडी बन कर समुद्रमें मिलती है।

न्यूयॉर्कके गगनचुम्बी मकान देखनेके बाद केपमे के दो-दो मंजिलोंके, गम्भीर लकड़ीके घर देख कर मन कुछ आश्वस्त हुआ—मानों विश्वरूप-दर्शनके बादका चतुर्भुज श्री कृष्णका सौम्य स्वरूप।

वहां पहुंचते कबके आठ हो चुके थे, इसलिए अंधेरा छाने लगा। लन्दनसे निकले थे, तबसे बाकायदा नींद मिली ही नहीं थी और उस जागरणके साथ यह दीर्घ प्रवास! मैं कुछ ऐसा थक गया था कि घर पहुंचते ही बाकी सब कुछ छोड़ कर एक घण्टा बेखबर सो गया। श्रीमती खुशीने सुझाया था और चि० सरोजने आग्रह किया था कि निश्चित की हुई व्यवस्थाके अनुसार न्यूयॉर्कमें घण्टाभर आराम करनेके बाद ही केपमे चलें। उन लोगोंका आग्रह न माननेका पछतावा सारे रास्ते करना पड़ा था, वह भी इस नींदमें डूब गया।

केपमेमें इतने अच्छे लोग, स्त्री-पुरुष मिले और उनके चित्तका और हृदयका परिचय इतना संतोषकारक था कि उसका वर्णन अगले पत्रमें ही कर सकूंगा।

- काकाके सप्रेम शुभाशिष।

२७. न्यूयार्क—२

१-७-१९५८

प्रिय बाल और सतीश,

केपमें पहुचे, तबतकका पत्र आज सुबह पूरा करके भाई बसंत नेवरेकरको सौंप दिया और साढ़े दस बजे हवाई जहाज पर सवार हुए। इस समय साढ़े ग्यारह बजे हैं, लेकिन हवाई जहाज उड़नेका तो क्या, दौड़नेका भी नाम नहीं ले रहा ! बेचैन मुसाफिर अपना-अपना पंखा चलाने लगे है। प्रवास रुका, तो प्रवास-वर्णन आगे चलानेका मौका मिला है।

तारीख २९ को सवेरे बिलकुल तरोताजा हो कर हम समुद्रका दर्शन करने गए। रातको हमारी खिड़कियोंमेंसे समुद्र भी दिखाई दे रहा था, चांदनीमें चमकता था और चि० सरोज कहती है कि उसके कमरेमें वह सुनाई भी दे रहा था। समुद्र-किनारे तक चले और वहा असंख्य स्त्री-पुरुषों और बालकोंको रेत, लहरें, धूप और पवनके साथ क्रीडा करते देखा। समुद्रका भाटा खत्म हो कर ज्वार शुरू हुआ होगा, लेकिन उसमें जोर नहीं था। लंदनसे न्यूयॉर्क तक अतलांतक पार किया, बीच-बीचमें देख भी लिया, लेकिन समुद्रके किनारे खड़े रह कर समुद्रका दर्शन करना ही उसका सच्चा दर्शन है। लदनसे लिस्बन जाते और लिस्बनसे आकरा हो कर लेगोस जाते समय हवाई जहाजसे अतलांतकके दर्शन किये थे। लेकिन, सच्चा आनन्द तो तभी मालूम हुआ था, जब आकरा लेगोस या सेकन्डीके आसपास समुद्र-किनारे पर घूमा था और मोटरकी यात्रा की थी। वहां पश्चिम अफ्रीका की दक्षिण दिशामें अतलांतक देखनेका संतोष मिला था। यहां पर भी अतलांतक दक्षिण दिशामें ही फैला हुआ था, लेकिन किनारा अमेरिकन है। समुद्रकी लहरोंको उत्तर दिशा पर आक्रमण करते देख कर विशेष आनन्द क्यों होता है? जगन्नाथ-पुरीका स्मरण होनेके कारण? या मातारा (सिलोन) का स्मरण हो जानेके कारण? समुद्रकी लहरें तो मानों कुदरतके दिलकी धड़कन होती हैं। मन पर उनका गहरा असर होना स्वाभाविक है।

सागर-दर्शनके बाद क्वेकर मित्रोंकी मौन-प्रार्थनामें शरीक हुए। वहा कुछ लोगोंने आतरिक ऊर्मिकी प्रेरणाके अनुसार बातें की। उनमें भी सागरके असरका उल्लेख था ही। लोग बोलते जायें और चि० सरोज उसका सार मुझसे कहती जाए। इस प्रकार, मैंने 'कर्णवीण नयने ध्वनि' लिया ! ये क्वेकर लोग प्रेरणाके अनुसार बोलते हैं। पहलेसे सोच-विचार कर बोलनेकी खातिर नही बोलते। इसलिए सहप्रार्थी आदरपूर्वक सुनते हैं।

मौनका समय पूरा हो जानेके बाद कुछ लोग चले गये। जो रहे, उनको श्री नाइल्सने मेरे बारेमें कहा, इसलिए सब लोग फिरसे बैठ गये। मैंने थोड़ा कुछ कहा

और बादमें प्रश्नोत्तरी बहुत चली।

मैं पूज्य बापूजीकी दृष्टिसे—जो मेरी भी दृष्टि है—जवाब देता था, इसलिए सुननेवालोंको संतोष होता दिखाई दे रहा था। रुखसत होते समय बहुत लोगोंने यहांके रिवाजके अनुसार हाथ मिलानेसे पहले अपना संतोष व्यक्त किया और नये सवाल भी पूछे। एक सज्जनने तो यहांतक कहा कि, 'केपमे आनेकी प्रेरणा मुझे किसलिए हुई, वह अब समझमें आया'।

आने-जानेके रास्तेमें एक भोले भाईने हमें देख कर पूछा, 'आप हिन्दुस्तानसे आये हैं? हिन्दुस्तानके लिए हमें बहुत आदर है, आकर्षण है—अगर आप वापस आगे और आपका भाषण हुआ, तो मुझे जरूर खबर दीजिए।' आदि बहुत कुछ कहा।

दोपहरकी नीदके बाद चार बजे खास मिलने आये हुए खास-खास लोगोंके साथ लगभग तीन घंटे प्रदीर्घ और गंभीर बातें हुई। केपमे आना सार्थक हो गया, ऐसा लगा। नीग्रो लोगोंके सत्याग्रहके प्रति सहानुभूति रखनेवाले ये लोग, विशिष्ट प्रसंग पर हिंसक मनुष्यको किस तरह बरतना चाहिए, उसकी चर्चा करना चाहते थे। उनको सारी बातचीतसे बहुत संतोष हुआ; क्योंकि अमुक-अमुक प्रसंगों पर बापूजी किस तरह बरतते थे, उसकी तफसील मैं उनको दे सका।

उसके बाद धर्मसंगीत सुननेके लिए समुद्र किनारे बांधे हुए बड़े खंडमें जा बैठे। आधा घंटा संगीत चला। उसके बादके भाषण सुनना मेरे लिए असम्भव था। इसलिए, उसी मकानके पीछे सागर-संगीत सुननेको जा खड़े हुए। उस समयका सूर्यास्त और उसके समुद्र परके रंग बहुत काल तक स्मरणमें रहेंगे। वहा बैठ कर उपनिषद्का पाठ किया। कई स्तोत्र भी गाये, जो सागरने एक तरहसे सुने और मित्रोंने दूसरी तरहसे। चार-पांच लोग तो अखंड साथ रहते और तरह-तरहकी चर्चा छेड़ते। इस प्रकार दिन आनन्दसे गुजरा और दूसरे दिन हम फिलाडेल्फिया हो कर शाम तक न्यूयॉर्क पहुंचनेके लिए निकले। केपमेमें दो दिन जिनके यहां हम ठहरे, वह खुशी बहनकी खास सहेली रोचल बहन थी। उन्होंने और उनकी लड़की ने हमारी व्यवस्था प्रेमपूर्वक संभाली थी।

तारीख ३० जूनको सुबह आठ बजे केपमे छोड़ा। भाई हेरी नाइल्सने मुझे इस प्रदेशका नक्शा दिया। इसलिए उस परसे कहां-से-कहां जाना था, उसका सारा तफसील मैं देख गया और एक रास्ता पसन्द करके भाई हेरीका अभिप्राय पूछा। उन्होंने कहा कि, 'यही रास्ता बहुत अच्छा है, नजदीकका है, लेकिन बिल्कुल नया, कोरा होनेके कारण रास्तेकी सुविधाएं उसके किनारे खड़ी नहीं हुई हैं।' फिर, नक्शा देख कर मैंने कहा कि, 'तो फिर New Jersy Turn Pike वाला रास्ता ही लेना पड़ेगा।' उन्होने कहा, 'ठीक है, उसी रास्तेसे जाना चाहता हूं।' बहुत बार गया भी हूं।' नक्शेके साथ यात्रा करना मुझे विशेष पसन्द है, इसलिए मेरे लिए

यह एक दावत ही थी। अतलांतक महासागरके किनारे-किनारे प्रारंभमें चलनेके बाद बाईं तरफ मुड़े और साढ़े ग्यारह बजे फिलाडेल्फिया पहुंचे। वहां हेरी-खुशीकी लड़की कुशिंग और जामाता लुईसे मिले और उनके क्लबमें भोजन किया। उसके बारेमें तो मुझे कहना ही चाहिए। यह स्थान क्लबके अलावा चित्रकलाका संग्रहालय भी है और उपाहारगृह भी है। मुझे लगा कि इस प्रकार मकानका त्रिविध उपयोग करना ही ठीक है। हमारे संग्रहालय भूतखानोंके समान खाली रहते हैं। वहीं पर दूसरे काम भी चलायें, तो मकानोंका कम उपयोग करनेके दोषमेंसे बच सकते हैं।

चित्र अच्छे थे। अनेक शैलीके थे। हरेक खण्डका प्रकार अलग था। जिस प्रकार हमारे यहा 'संगीत भोजन' होता है, वैसे यहां हमने 'सचित्र भोजन' किया।

कुशिंग-लुईका जोड़ा शौकीन है। वे अनेक चीजोंमें रुचि रखते है, विचारपूर्वक चर्चा करते हैं और दोनों अपने काममें कुशल होनेके कारण उनके मुख पर सफलता-की प्रसन्नता दिखाई देती थी।

फिलाडेल्फिया शहरके मकान और रास्ते देखते उस शहरकी अपनी खासियत है यह साफ मालूम हो जाता है। न्यूयार्ककी अपेक्षा यहांके मकान अधिक सुन्दर लगे और उनके माथे सुन्दर करनेकी कोशिश जहां-तहां मालूम हुई।

फिलाडेल्फियासे न्यूयार्कका रास्ता भी उतना ही काव्यमय था। न्यूयार्कके पास पहुंचे, तब श्री हेरी नाइल्सको लगा कि इन लोगोंको न्यूयॉर्कका जितना हो सके, उतना हिस्सा बता दूं। इसलिए, एलिजाबेथ-विभागसे आगे बढ़ते लिंकन टनेल द्वारा हडसन नदी लांघनेके बजाय बहुत आगे जा कर जार्ज वाशिंगटन नामके एक भव्य पुल परसे हो कर न्यूयार्कमें प्रवेश किया और वहांसे हडसन नदी-के किनारे-किनारे प्रवाहकी ही दिशामें जाते दाहिनी ओर नदीकी शोभा और बाईं ओर तरह-तरहके मकानोंकी शोभा निहारनेका अवसर हमें प्राप्त हुआ। नदीमें एकके बाद एक आनेवाली गोदियोंमे देश-विदेशके बड़े-बड़े जहाज लंगर डाल कर पड़े हुए हमने देखे, तब मनमें विचार आया कि जिस तरह एयर इण्डिया इण्टर-नेशनल एक दो सालमें लन्दनसे न्यूयॉर्क तक आनेवाला है, उस तरह भारतके बड़े-बड़े जहाज भी बम्बईसे न्यूयॉर्क किसी दिन तो आने चाहिए। हम किसी देशका शोषण न करें लेकिन दुनियाके साथ मालका प्रामाणिक लेन-देन तो करना ही चाहिए।

हम जापानसे जो जहाज खरीदनेवाले हैं वह अगर काफी बड़े हों, तो एक तरफ तोक्यो तक जायेंगे और दूसरी तरफ न्यूयॉर्क तक आएंगे। एक बार ऐसा आवागमन शुरू हो जानेके बाद वह धीमे-धीमे बढ़ेगा।

तुम्हें लगेगा कि खादी-मानस धारण करनेवाला मैं अमेरिका आते ही पांचों खण्डोंका जहाज-व्यवहार चलानेके स्वप्न देख रहा हूं। यह कैसे ? मैं मानता हूं कि ये दोनों बातें परस्पर विरोधी न बनें, ऐसा रास्ता जरूर निकल सकता है। ब्रिटेन-

की दुनियाका शोषण करनेकी पद्धतिमें अमेरिकाने इतना परिवर्तन किया, तो उसमें भी अधिक सुधार करके सर्वकल्याणकारी, न्याययुक्त पद्धति हम क्यों पैदा न करें? समुद्रयात्रामें कोई दोष नहीं है।

नदीके किनारे पर स्वतन्त्रता देवीकी ऊंची मूर्तिकी झांकी भी हम कर सके। इस मूर्त्तिने दुनियाके कई लोगोंको स्वतन्त्रताकी प्रेरणा दी है और कई भक्तोंने उसकी प्राप्तिके लिए अपने प्राण न्योछावर किये हैं।

वॉल स्ट्रीट, ब्राडवे आदि, जिनका अबतक नाम ही सुना था, मुहल्लोंको हमने प्रत्यक्ष देखा। रात हो जानेके कारण हमने यहाके दीयोंकी जगमगाहट भी देखी। लेकिन, मुझे कहना पड़ेगा कि दीयोंका उत्सव है तो तोक्योके गीजा बझारका ही। ब्रुसेल्सका उत्सव शायद अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनीके कारण बढ़ गया होगा। काहिराका भी अच्छा माना जा सकता है। लन्दनमें ऐसा उड़ाऊपन नहीं था और वह बात मुझे अच्छी लगी।

रातको गवर्नर होटलमें हम रहे। हरी रातकी गाड़ीसे बाल्टीमोर गये। चि० सरोज और खुशी बहनने अपने कमरेमें आधी रात तक बातें कीं! और, मैंने अकेले-अकेले तुझे खत लिखनेका विचार किया और समय पर सो गया। आज सुबह तुझे खत लिखा। तारीख २५ के तेरे खतके जवाबमें वह था।

श्रीवसन्तराव नेवरेकर खारे हलुवे और समोसोंका नाश्ता ले कर मिलने आये। उसके बाद हमारे कॉन्सल जनरल श्री गोपाल मेनन आ कर हवाई अड्डे पर ले गये। अप्पा पन्तकी जगह पर उन्होंने नैरोबीमें काम किया था। मुझसे एक बार मिले भी थे। वापस न्यूयॉर्क आऊंगा, तब उनके यहां खानेका आमंत्रण भी उन्होंने दे रखा है।

अब बात ऐसी है कि १५ और १६ अगस्त हमारा स्वातन्त्र्य-दिन है। उस दिन न्यूयॉर्कके हिन्दी-विद्यार्थी मुझसे खास मिलनेकी इच्छा रखते हैं। अमरिकन मित्रों-को भी राजी करना पड़ेगा। लिहाजा १५ तारीखको निकलनेका अंकन रद्द करवा-कर १६ तारीखका करना पड़ा। यहांसे लन्दन और लन्दनसे बम्बई हम बीचमें कहीं भी ठहरे बिना १९ तारीखकी शामको बम्बई पहुंचेंगे।

जिस तरह लन्दनमें फजीहत हुई वैसे ही आज यहां भी हुई। गोपाल मेनन, नेवरेकर, हमारी खुशी बहन सब लोग हमें हवाई अड्डे पर छोड़ कर वापस गए। हम साढ़े दस बजे विमानमें आरूढ़ हुए। लेकिन पहले तो उसे रास्ता मिला नहीं, उसके बाद उसका जनरेटर बिगड़ा। हम विमानमेंसे उतर कर अड्डे पर राह देखते बैठ गये। फिरसे विमानमें चढ़ गए। घंटे भरमें भट्ठीमें तपे, बादमें फिरसे नीचे उतरे। उपाहार-गृहमें भोजन किया। मैंने थोड़ी नींद भी ले ली। अन्तमें शामको सात बजे जाहिर हुआ कि हमें रात्रि-निवासके लिए इण्टरनेशनल होटलमें जा कर रहना पड़ेगा। अब कल सवेरे नौ बजे इंशाल्लाह न्यूयॉर्क छोड़ेंगे।

अब पत्र पूरा करके सोनेकी तैयारी करता हूं। होटल तो आला दरजेका है। मेरा कमरा अच्छा है। उसमें टेलीविजन भी है! उसमे थोड़ा समय दिया। अब सवेरे नहा-धो कर, नाश्ता करके जमेका जानेके लिए निकलेगे।

—काकाके सप्रेम शुभाशिष।

२८. जमेका—१

३-७-१९५८

प्रिय बाल और सतीश,

जमेका किस तरह आये, यहां कौन-कौन मिले आदि सब विस्तारसे लिखनेके पहले, यहां आते-आते जो विचार मनमें पैदा हुए उनको थोड़ेमें लिख दूं।

छुटपनमें Sandford and Merton नामके विद्यार्थियोंका एक उपन्यास पढ़ा था। सबसे पहली अंग्रेजी किताब मैंने वही पढ़ी थी। शब्दकोशमें शब्द ढूढ़ते थक जाता, लेकिन कहानीमें रस भी उतना ही था। गन्नेके खेतके मालिकका एक लड़का और गरीब घरका एक तन्दुरुस्त और मनदुरुस्त लड़का—उनकी यह कहानी है। और, इस कहानीका घटना-स्थान है जमेका टापू। उस समयसे जमेका-का नाम परिचित हो गया है।

इस टापूका स्पॅनियर्ड लोगोंका रखा हुआ मूल नाम था—चमेका, जिसका अर्थ है जंगल और बारिशका देश। यह टापू डेढ़ सौ मील लम्बा और ज्यादा-से-ज्यादा पचास मील चौड़ा है। टापू अधिकतर पहाड़ी है। उन पहाड़ोंमेसे अनेक नदियां हंसती कूदती, कल्लोल करती समुद्रसे मिलती हैं। पुराने जमानेमे सारे टापू की मालिकी गोरे लोगोंकी थी। पहले स्पेनके लोगोंकी, बादमें अंग्रेजोंकी होगी। आज यहां राज्य तो अंग्रेजोंका है, लेकिन बस्ती ज्यादातर लगभग नब्बे फी-सदी गुलामीसे मुक्त हुए नीग्रो लोगोंकी है। नीग्रो गुलामीसे मुक्त हुए और उपयोगी मजदूरोंकी जरूरत पैदा हुई। इसलिए, उस समयके अंग्रेज हिन्दुस्तानसे गरीब मजदूरोंको फुसला कर गिरमिटियाके तौर पर ले आये, और इस प्रकार इस सारे प्रदेशमें गुलामीकी नई आवृत्ति उन्होंने चलाई। उस समय भारतमें स्वराज्य-सरकार नहीं थी। हमारे नेताओंको भी कोई खबर नही थी। अब स्वराज्य होनेके बाद हम जगे हैं सही लेकिन हालत बदल गई है। सवा सौ साल पहले आये हुए हिन्दी लोग अब वापस भारत नही जा सकते। वहां उनका कोई नही है। भारतकी भाषा भी ये लोग भूल गये हैं। रस्म-रिवाज या धर्म भी नहीं रहा। बूढ़े लोग जब हिन्दीमें बात करते हैं, तब समझना मुश्किल हो जाता है। हमें देख कर रामायण

और भागवतकी बात करते हैं, लेकिन वह नाममात्र ही। बहुतेरे कबके ख्रिस्ती बन चुके हैं। और कोई चारा ही न था। अब ये लोग यहाके ही पूरे बन कर रहें, यही एकमात्र उपाय है।

एक विचार मनमें आये बिना नही रहता। मनुष्य चाहे जैसी आर्थिक, नैतिक और राजनीतिक दुर्दशा तक क्यों न पहुचा हो, उसके बारेमें निराश हुए बिना ईसाई धर्मोपदेशक उसके पास पहुंच जाते हैं और मनुष्य जहा हो वहासे चढ़नेके लिए एक सांस्कृतिक सीढ़ी खड़ी कर देते हैं। हमारे धर्मका मानस-शास्त्र गहरा है। हमारा आध्यात्मिक आश्वासन सबके लिए है। हम आत्माकी अमरता, श्रेष्ठ जन्मोंका सातत्य और भगवान्‌की परम कारुणिकतामे मानते हैं। हमारे धर्म-साधक साधनाकी पराकाष्ठा करते हैं। फिर भी, हमारे पास पतितोंका उद्धार करनेकी प्रेरणा कम है। यह कमी कैसे दूर हो, इसका गहरा विचार हिन्दूधर्म न करे तो उसके लिए मनुष्य-जीवनमें स्थान कम रहेगा। तत्त्वचिंतनमें हम भले ही लोकोत्तर हों, लेकिन जीवन-मूल्यमें कुछ घटिया है।

अब। चिंतन एक तरफ रख कर जमैका कैसे आये, उसकी बात करूं। न्यूयार्क-मे चौबीस घण्टे बरबाद करनेके बाद और एक रात इंटरनेशनल होटलका स्वाद चखनेके बाद, दूसरी तारीखको सुबह निकले। विमान समझदार बन गया था। हम इतनी ऊंचाईसे उड़ रहे थे कि आधी ऊंचाई पर, सामनेसे एक विमान आ कर उल्टी दिशामे जा रहा था, वह बहुत ही मजेदार मालूम हुआ। विमानमेंसे दूसरा विमान इस प्रकार पहली ही बार देखा।

पूर्व अफ्रीकाके किनारे हवाई जहाजमें जाते अनेक हरे टापूओंके माथे पर ईटके रंगके शिखर और आसपासके फिरोजी रंगका दरिया देखा था। उस समय लगा था कि ऐसी शोभा और कही हो ही नहीं सकती! लेकिन यहा तो समुद्रमें फिरोजी, नीले और हरे-नीले रंगके मानो बादल पर बादल फैलते हो ऐसी शोभा दिखाई दी और इतनी विस्तीर्ण कि मानों कुदरतने सारे समुद्र पर अबरीकी शोभा चितारनेका सोचा हो।

बीच-बीचमे बड़े-बड़े छिछले टापू, उनके अन्दर खेतके पैबन्द, बड़े-बड़े जंगल, चरागाह और दलदल; उनमेंसे हो कर बहनेवाली नदिया—यह अद्‌भुत दृश्य देखते-देखते सचमुच आखें ही थक गईं।

बीचमें Nassau (नासो) और Montigo Bay (मोन्टीगो बे) इन दो स्थानों पर विमान थोड़ी देर ठहरा। हमारे विमानमे नीग्रो लोगोंकी सख्या कम नही थी। एक कुटुम्बमें तो बूढ़ी मांकी लड़कीकी लड़कीके बच्चे भी थे!! हमने आश्चर्य व्यक्त किया, तब बूढ़ी मा कहने लगी। 'Wc start early मेरी पौत्रीको चौदह सालकी उम्रमें पहला बच्चा हुआ।'

स्थानिक सवा चार बजे हम किंगस्टन पहुंचे। स्वागतके लिए बहुत लोग

इकट्ठा हुए थे। नवपरिणीता अशोक और वीणा वर्मा मेजबान हैं। अशोकके पिता डा० जियालाल वर्मा यहां पचीस सालसे हैं। अबतक वे ही यहांके हमारे लोगोंके नेता थे। जब भारत स्वतन्त्र नहीं था और भारतके कमिश्नर इस प्रदेशमें नहीं थे, उस समय ऐसे नेता ही समाजको संभाल कर रख सकते थे। उनसे यहांका पचीस सालका इतिहास सुना। वे स्वयं अपनी मोटरमें हमें मोना (Mona) होटल ले गए। होटलकी मुख्य इमारतके आसपास, बहुत सुविधाजनक जो 'कुटिया' है, उसमें हमें रखा गया है। मेरे कमरेके सामने पहाड़का दृश्य तीनों तरफ चढ़ता जाता है, इतना कुछ एकान्त है कि दूरके मकान जोड़ दूरबीनमें ही देख सकते हैं। मैं नहीं मानता कि ध्यान-धारणा-समाधिके लिए इससे अधिक शान्त-एकान्त स्थानकी मनुष्य मांग कर सकता है!

इन लोगोंने हमारे स्वागतके लिए ईस्ट इण्डियन प्रोग्रेसिव सोसायटीकी ओर से वर्मा होटलमें एक सभा रखी थी। थकानके कारण मैं इनकार कर बैठूंगा ऐसा उन्हें डर था। मैंने कहा, 'एक दिन देरी हुई उसका तो कोई इलाज नहीं था। शाम की सभामें मैं जरूर आऊंगा।' सभा बहुत अच्छी हुई। सभाके अध्यक्षने और मैंने मंगलाचरणके तौर पर हिन्दीमें कुछ बोल कर बाकी सब अंग्रेजीमें चलाया। सभामें हिन्दी और नीग्रो दोनों समाजोंके स्त्री-पुरुष थे। सब लोग सिर्फ अंग्रेजी ही जानते हैं। यहांके हमारे लोग अगर हिन्दी जानेंगे, तो स्वदेशका साहित्य कुछ पढ़ सकेंगे। लेकिन, यहांके सब लोगोंकी जन्मभाषा अंग्रेजी ही हुई है। इन लोगोंको हिन्दीमें बोलने प्रेरित करना असम्भव है और इस समय लाभदायक भी नहीं है। मैंने कॉमनवेल्थके उल्लेखसे प्रारम्भ किया। दूध और शक्कर एक-दूसरेमें घुलमिल जाते हैं, उस प्रकार सब कौमोंको घुलमिल जाना चाहिए। यह प्रदेश अन्तर-राष्ट्रीय एकताका, भगवान्की प्रयोगशाला है। अनेक वंशके लोग भाईचारेसे रहने की कला यहां सीखते हैं, आदि सब कहा। सभाके अन्तमें अच्छी प्रश्नोत्तरी हुई। उसके द्वारा ही यहांकी परिस्थितिको समझना आसान हो जाता है।

स्वाक्षरी देने भी थोड़ी देरी हुई। इसलिए निद्रावश होनेका आनन्द बढ़ा। चांदनीमें आकाश उज्ज्वल होने पर भी कुछ देखे बगैर सो गया। रातके सितारे देखनेका तो रह ही जाता है। जबकि यहांके बादल कुछ खास देखने नहीं देते।

° ° °

४-७-१९५८

मूल कार्यक्रमके अनुसार शहरसे दूर कोई गांव देखनेकी बात थी, वह छोड़ देनी पड़ी। जमैकाके मुख्य प्रधान श्री मेनलीसे मिलने जाना था वह भी रद्द हुआ। ऐसी मुलाकातें केवल शिष्टाचार होती हैं। मिले तो क्या और न मिले तो क्या? उनसे मिलनेके लिए एक बार समयका प्रबन्ध हुआ था, उसीमें मिलनेका

पुण्य समा गया ! खास प्रयत्न करनेकी बात चली जिसके लिए मैंने मना किया।[1] इसलिए कलका सारा दिन मजेमें गुजार सके। सुबहके बारेमें तो मैंने लिखा ही है। वानस्पत्यम् (बोटेनिकल गार्डन), जलचरी, आशा नदी और पहाड़ी रास्तोंके काव्य का आस्वाद सुबह लिया। ठीक उससे उलटा अनुभव शामके कार्यक्रममें हुआ। उसके लिए प्रस्थान करनेके पहले यहांके एक भाई जाहोसिंग, अपनी पत्नीको ले कर मिलने आये थे। वे नये-नये घर बांध कर उन्हें बेचते हैं। उनकी पत्नी यहां की हैं। वह मूल जोधपुरकी तरफके। रोमन कॅथॉलिक हो गये हैं। अपने पिता जातिमें सुनार थे, इतना ही उनको अब याद है। थोड़ी देर उनके यहां आनेका आमन्त्रण देनेके लिए ही आये थे।

यहांसे चार-छह मील दूर हिन्दू टाउनमें हम गये। भाई वर्माने एक बड़ी जमीन खरीद कर छोटी-छोटी झोपड़ियां बांध कर रहनेके लिए गरीब हिन्दुओंमें उसको बांटा है। यहांके भारतीयोंको देख कर, उनकी तकलीफें, उनका दारिद्र्य और फिर भी ऐसी हालतमें भी सन्तोष मान कर रहनेका उनका स्वभाव—यह सब देख कर अनेक विचार मनमें आये। देखनेमें नीग्रो लोगोंसे कुछ अलग, लेकिन रहन-सहन, भाषा, पोशाक और धन—सभी बातोंमें नीग्रो लोगोंके समान। नीग्रो लोग हमारे लोगोंको कुछ हलका समझते हैं। हमारे लोगोंको सब 'कुली' ही कहते थे। और हमारे लोग चिढ़ कर नीग्रो लोगोंको 'निगर' कहते हैं। हमारे लोगोंकी संख्या कम होनेके कारण सिर ऊंचा करनेकी गुंजाइश भी नहीं। नब्बे लोगोंके बीच दोका प्रमाण किस हिसाबका ?

यहांसे Cock burn pen, जो कोबर्न पेन कहलाता है, वहां रहनेवाले भारतीयोंको देखने गये। जी० पी० माराज नामका एक दुकानदार (Grocer) की माली हालत अच्छी मालूम हुई। वहां दो यूनियन जैक झंडोंके बीच भारतका तिरंगा झण्डा एक डोरीमें लटक रहा था। इन लोगोंको कुछ कहनेके लिए मुझे दो-तीन स्थान पर सुझाया गया। मैंने बच्चोंकी पढ़ाईके बारेमें कुछ कहा—खास करके लड़कियोंकी। फिर तो इकट्ठा हुई बहनोंकी वाग्धारा चली, 'आप जो कहते हैं, वह सब ठीक है, लेकिन बच्चोंको सिखायें किस तरह ? रोजी नहीं मिलती। जब मिलती है, तब पेट भी नहीं भरता। नौ-नौ बच्चोंको खिलाना होता है। सिखानेके लिए पैसे कहांसे लायें ? मैंने सहज भावसे कहा कि, आपके शौहर अगर शराब पीना छोड़ दें, तो पैसोंकी कुछ बचत हो सकती है।' इतना सुना कि बहनें उत्तेजित हो कर कहने लगी, 'पैसेदार लोग आपको जो चाहे, सो समझाते है, लेकिन यह बात सही नहीं है। शराब पीनेके लिए भी तो पैसे चाहिए। हमारी जिन्दगी क्या जिन्दगी है ? नहीं, यह जिन्दगी है ही नहीं।' मैंने कहा, 'आपकी बात माननेके लिए मैं तैयार

१. बादमें यह मुलाकात अचानक हो सकी और अच्छी हुई उसकी बात आगे आई है।

हूं। आपने विस्तारसे न कहा होता, तो मुझे कैसे मालूम हो जाता। आपकी बुरी हालतका मुझे दर्द है, लेकिन उससे भी आप साफ-साफ तथा तेजस्वी भाषामें बोल सकती हैं, इस बातका मेरे मन पर गहरा असर हुआ है। जो लोग चुपचाप लाचारी से सब सहन करते हैं उनके लिए कोई भविष्य नहीं होता।'

इन लोगोंको भारत ले जाना अशक्य नहीं है। लेकिन, वहां उनकी हालत और भी बदतर होगी। एक विचार मनमें आया कि जमेकामें 'दरियामें खसखस' जैसे रहनेकी अपेक्षा इन लोगोंको अगर त्रिनिदाद ले जाया जाए, तो अपने लोगोंके बीच उनकी हालत सुधरेगी या नहीं? असल बात यह है कि इन लोगोंके बीच करुणासे रहनेवाले, उदार दृष्टिवाले नेता इनको मिलने चाहिए। तभी इनका तेज प्रकट होगा और उसका उपयोग उनकी उन्नतिके लिए किया जा सकेगा। साम्यवादी भी उनके लिए कुछ कर नहीं सकते। इन लोगोंकी मुसीबतोंको देखते साम्यवादी विचार वे आसानीसे ग्रहण कर सकेंगे, ऐसी हालत हैं।

इस प्रदेशमें आनेसे ही इन लोगोंकी असल हालतका ख्याल हो सका। बहुत सोचमें पड़ा हूं। Albert Schwitzer जैसा प्रतिभाशाली मनुष्य तत्त्वज्ञान, धर्म और संगीत ऐसे तीन क्षेत्रोंकी अपनी अद्‌भुत काबिलीयत पर पानी छोड़ कर अफ्रीकाके जंगलोंमे मनुष्य-जातिकी सेवा कर रहा है। ऐसी वृत्तिवाले भारतीय इस तरफ क्यों न आयें?

—काकाके सप्रेम शुभाशिष।

२६. जमेका—२

प्रिय बाल और सतीश, ४-७-१९५८

ईस्ट अफ्रीकाके भारतीय जिस प्रकार महसूस करते रहते हैं कि उस देशमें किसी-न-किसी दिन स्वराज्य होनेवाला है, फिर मालूम नहीं, हमारा वहां क्या स्थान होगा, उसी तरह यहांके अभी-अभी बसे हुए भारतीयोंको भी होता है। इस-लिए यहां उद्योग, हुनर या व्यापार बढ़ाते या जमीन खरीदते उन्हें झिझक होती है। लिहाजा भारतमें अपना स्थान मजबूत रख कर यहां जितना कमा सकते हैं, उतना कमानेकी उनकी वृत्ति होती है।

वास्तवमें, अगर इस देशमें अभीसे यहांके नीग्रो लोगोंके साथ दोस्ती बढ़ाई जाय, उनकी महत्त्वाकांक्षाओंके प्रति अभीसे समभाव रखा जाय और ब्रिटेनके गोरोंके साथ दोस्ती कायम रखते हुए भी नीग्रो लोगोंको स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए मदद की जा सके तो, मैं मानता हूं, हमारे लोगोंके लिए यहां अच्छा भविष्य है।

मुझे लगता है कि, जिस प्रकार अमेरिकन लोग दुनियाके हर सवालमें हस्तक्षेप करते हैं, उस प्रकार नही, लेकिन विश्वजनीन समभाव अपनानेकी दृष्टिसे, हमें चाहिए कि हम अमेरिकाके नीग्रो लोगोंका सवाल अच्छी तरह समझ लें। इतना ही नही, बल्कि उनके साथ आत्मीयता भी बढ़ावें। ईसाईधर्म और अंग्रेजी भाषा, साहित्य और संस्कृतिके साथका हमारा परिचय हमें भविष्यकी दृष्टिसे भी बढ़ाना चाहिए। आज ईसाई लोगोंमें जो विश्व-सेवा कर रहे हैं, उनके साथका हमारा सम्पर्क बढ़ना ही चाहिए और इसीलिए भारतमे जो पश्चिमके लोग, हमारे सहवासके कारण, धार्मिक तथा सांस्कृतिक उदारता अपना रहे है उनके साथ भी हमारा मेलजोल बढ़ना चाहिए।

० ० ०

५-७-१९५८

कलका दिन बहुत भरा हुआ था और महत्त्वका भी। सुबह साढ़े दस बजे हम यूनिवर्सिटी कॉलेज ऑफ वेस्टइंडीज देखने गये। यह कॉलेज त्रिनिदाद, जमेका और ब्रिटिश गियाना—तीनों प्रदेशोंके विद्यार्थियोंको उच्च शिक्षा देता है। आज उसमें ३५० विद्यार्थी पढ़ते हैं। आर्टस्, मेडिसिन, नेचुरल सायन्स जैसे थोड़े ही विषयोंकी सुविधा यहां हो सकी है।

ऐसे यूनिवर्सिटी-कॉलेजोंकी स्थापना इस आशा और संकल्पके साथ होती है कि उनमेंसे आगे चल कर, स्वतंत्र यूनिवर्सिटीकी स्थापना होगी। पश्चिम अफ्रीकामें ऐसे दो कॉलेज मैंने देखे है। घानामें आचिमोटो कॉलेज (इसमें झारखंडके हमारे जयपाल सिंहने कुछ साल काम किया था) और नाइजीरियाका इवादान कॉलेज। सुनता हू कि सिलोनमे भी ऐसा एक कॉलेज है। यहांका कॉलेज अब लन्दन-यूनिवर्सिटीके साथ जुड़ गया है। नैरोबीके स्थपति कॉलजके लिए मैंने सुझाया था कि वह कॉलेज लन्दन तथा बम्बई दोनों विश्वविद्यालयोंके साथ जोड़ दिया जाय, ताकि विद्यार्थी अपनी मरजीके अनुसार चाहे उस देशका पाठ्यक्रम पसन्द करके, उस-उस देशमे जा कर सीख सकें। अपने खर्चसे, लेकिन सरकारकी मजूरीसे कॉलेजकी स्थापना करनेकी बात थी, इसलिए ऐसी सूचना वहा अनुचित भी नही थी। यहां जो कॉलेज भारतसे बहुत दूर और अमेरिकाके नजदीक है, वहां हमारे विद्यार्थी ही बहुत कम प्रवेश लेंगे, इसलिए यहां सूचना करनी हो, तो कनाडा और ब्रिटेनकी यूनिवर्सिटियोके साथके संयुक्त सम्बन्धका ही विचार कर सकते हैं।

यूनिवर्सिटी-कॉलेजके प्रिन्सिपल डॉ॰ ग्रेव (Grave) से मिलनेका और दोपहर का खाना उनके वहां ही खानेका तय हुआ था। ५॥ सज्जनने पहले हमे सब जगह ले जा कर कॉलेजकी भूमि और अलग-अलग विभाग दिखाये। एक वर्गमील जितनी जमीन पर यह कॉलेज बसा हुआ है। वैद्यक विभाग सबसे बड़ा और महत्त्वका मालूम हुआ। पुस्तकालय बहुत बड़ा और व्यवस्थित था। नियतकालिकोंका

विभाग बहुत ही बड़ा और उसमें भी खास-खास विषयोंके नियतकालिक इतनी संख्यामें थे कि इस एक कॉलेजमें दाखिल हो कर, आदमी चाहे जिस विषयमें अद्यतन प्रवीणता प्राप्त कर सकता है। डॉ० ग्रेव (Grave) के साथ दूसरे दो भाई भी थे। मैंने श्री अशोक वर्माको भी अपने साथ बैठ कर सब कुछ सुननेके लिए आग्रह किया। इधर-उधरकी बातचीतके बाद हम मुख्य विषय पर आये।

डॉ० ग्रेवकी इच्छा है कि भारतसे कोई उच्च कोटिका विद्वान् आ कर भारतीय इतिहास, साहित्य और संस्कृतिके बारेमें व्याख्यान करे। भारतके बारेमें जानकारी प्राप्त करनेकी इच्छा रखनेवाले अध्यापकोंकी मदद करे; और थोड़े विद्यार्थियोंको भी सिखावे। बीच-बीचमें सार्वजनिक व्याख्यान करे, तो सुशिक्षित लोगोंको भी लाभ होगा। मैंने कहा कि बीच-बीचमें यह अध्यापक त्रिनिदाद और ब्रिटिश गियाना जा कर भी थोड़े व्याख्यान दे सकता है और अमेरिकासे बुलावा आने पर वहां भी थोड़े व्याख्यान दे आवे। डॉ० ग्रेवने हंसते-हंसते कहा, 'हां, आपके खर्चसे वह हो आये, तो हमें कोई आपत्ति नहीं है।' ऐसे आदमीको अगर एक सालके लिए भेजा जाए, तो भारतका 'केस' (case) यहां पेश हो सकता है और उसका अच्छा असर हो सकता है। साथमें बैठे हुए प्रो० सेन्डमनको भाषाशास्त्रमें रुचि है। उन्होंने कहा कि 'Indian Linguistic भी हमें मिले तो इष्ट है।' डॉ० ग्रेवने तुरन्त कहा 'Linguistics तो गौण वस्तु है। हम तो उच्च भूमिका पर भारतीय संस्कृतिक हार्द समझना चाहते है।' मैंने कहा कि, 'ऐसा सर्वज्ञ—सर्वांगपरिपूर्ण—आदमी मिलना आसान नहीं है, लेकिन ढूंढ तो निकालना पड़ेगा।' तफसीलमें उतरते मैंने कहा कि 'आमन्त्रण देनेवाले आप हैं, इसलिए आने-जानेका खर्च आपको देना चाहिए।' और तनख्वाहके बारेमें मैंने पूछा कि आप यहां क्या देते हैं? उन्होंने कहा कि सालके दो से ढाई हजार पाउण्ड तक देते हैं। मैंने सुझाया कि उसमेंसे आधा हिस्सा आप दें और आधा हम दें, तो उभय पक्षके लिए वह ठीक रहेगा। रहनेके घरकी सुविधा भी आपको करनी होगी।

बादमें तय हुआ कि पहले डॉ० ग्रेव खानगी तौर पर एक खत मुझे या डॉ० राजकुमारको लिखें। उसकी चर्चा दिल्लीमें करेंगे और फिर तय करेंगे कि आदमी भेजनेकी जिम्मेदारी या तो भारत सरकार ले, I.C.C.R. ले या कोई विश्व-विद्यालय ले। यह सब तय होनेके बाद विधिवत् पत्र कहां लिखा जाय, उसकी सूचना दे सकेंगे। डॉ० ग्रेवने कहा कि "मैं आपको ही लिखूंगा और उस पत्रकी नकल त्रिनिदादके आपके कमिश्नरको भेज दूंगा। सरकारी लोगोंके द्वारा काम करते देरी होती है। अक्टूबर, १९५९ ई० तक हमें आदमी मिल जाय, तो बस है। मैंने कहा कि इस योजनाकी सफलताके लिए आपके यहां पुस्तकालयमें भारत-विषयक किताबें काफी संख्यामें होनी चाहिए। जो कोई विशेष अध्ययन करना चाहे, उसके वाचनके बारेमें भुखमरी नहीं होनी चाहिए।"

यहीं पर लिख दूं कि दूसरे दिन हम जमेका-इन्स्टीट्यूट देखने गये थे, वहां वेस्ट इंडीज प्रदेशके बारेमें और यहांके विद्वानोंके लिए उपयुक्त हो ऐसा एक पुस्तकालय है। ब्रिटिश कौंसिलकी ओरसे भी एक शाखा जमेकामें है। मैंने देखा कि हमारे कमिश्नरकी ओरमें जो किताबें मिलती हैं, उनकी भी अध्ययनके लिए मदद होगी ही और मेरा मन ललचा रहा है कि जमेकामें भारतीय संस्कृतिके अध्ययनका एक केन्द्र खोला जाय।

जिस प्रकार अमेरिकामें आदिवासी रेड इंडियनोंका नाश करके वहां गोरे लोग बस गये है, उसी प्रकार वेस्टइंडीज और केरेबियन प्रदेशमें मूल कॅरिब जैसे लोगोंको नामशेष करके गोरोंने यहां खेती चलाई और नीग्रो, चीनी और भारतीय मजदूरों को ला कर यहां बसाया। इसलिए, यह प्रदेश प्रधान रूपसे नीग्रो लोगोंका और बाकीकी रंगीन प्रजाका बन गया है। जमेकाकी पन्द्रह लाखकी बस्तीमें भारतीय पचीस हजार ही हैं। त्रिनिदादमें तीस फीसदीसे अधिक हैं और ब्रिटिश गियानामें लगभग आधे हैं। इन तीनों प्रदेशोंका बौद्धिक तथा शैक्षणिक केन्द्र जमेका ही है और राजनैतिक केन्द्र त्रिनिदाद होने जा रहा है। ऐसी हालतमें यहांके हमारे लोगोंकी प्रतिष्ठा और प्रभाव बढ़ानेके लिए हमें यथाशक्ति प्रयत्न करना चाहिए। आगे जा कर उसका बहुत उपयोग होगा। अनेक देशोंकी प्रजा यहां इकट्ठी हुई है। हिल-मिल कर समान भावसे रह सकती है। यह प्रजा जब प्रगति करेगी, तब यूनो और यूनेस्कोमें महत्त्वका स्थान प्राप्त करेगी और जागतिक नेतृत्व भी आजमायेगी। इस भविष्यके क्षेत्रमें भारतीय प्रजा पिछड़ जाए, तो हमारा नुकसान होगा। यहांके नीग्रो लोगोंको अमेरिकाके नीग्रो लोगोंका सहारा है। ब्रिटेनकी अपेक्षा अमेरिकाका प्रभाव इस प्रदेशमें बढ़नेवाला ही है। इसलिए यहांके नीग्रो लोगोंका भविष्य उज्ज्वल है। हमारी प्रजा गोरे और काले दोनों लोगोंके साथ समानभावसे हिलती-मिलती रहे, यह बहुत ही आवश्यक है। इसलिए इस केन्द्रके लिए जो मेहनत और पैसे काममें लायेंगे, वह आयंदा अच्छे-से-अच्छा फल देनेवाले हैं।

—काकाके सप्रेम शुभाशिष।

३०. जमेका—३

प्रिय बाल और सतीश, ५-७-१९५८

इस सारे प्रदेशमें भारतीयोंकी संख्या कुल १८,००० है और यह संख्या दिन-ब-दिन बढ़ती ही जा रही है। अगर हमारे देशसे कुछ अध्यापक, कुछ व्यापारी, दो-चार उद्योगपति, आ सकें और थोड़े डॉक्टर भी यहां आ जायें, तो हमारी 'मजदूर

प्रजा' अनाथ जैसी नहीं रहेगी और उनको भारतीय संस्कृति अपने-आप मिल जाएगी।

इस सारी कल्पनाके पीछे राजनीतिक दृष्टि नहीं है, किन्तु दुनियाके साथके सांस्कृतिक सहयोगकी दृष्टि है। सारी दुनियामें जबकि राजनीतिक दृष्टि उत्पात मचा रही है और उसका दिवाला निकल चुका है, ऐसे समयमें राजनीतिक दृष्टि रखनेकी भूल तो हम करेंगे ही नही।

एक विचार पूरा करनेके लिए इतना विस्तार किया।

डॉ० ग्रेवके साथ बातें हो चुकी और चि० सरोजको और मुझको वे अपने यहां भोजनके लिए ले गये। रास्तेमें कहने लगे कि क्वेकर लोगोंके साथ आपकी दोस्ती है, इसलिए आज भोजनके समय आपको तीन क्वेकर मिलेंगे। एक है मेरी पत्नी और दूसरे दो हैं यहींके मेहमान—श्री बलीसिंह और उनकी अमेरिकन पत्नी—जो समाज-सेवाका उत्तम काम कर रहे हैं।

हिन्दुस्तानमें समाज-सेवाका काम किस प्रकार चल रहा है, उसके बारेमें श्रीमती बलीसिंहने पूछा। मैंने अनेक क्षेत्रोंका उल्लेख किया जिसमें श्रीमती ग्रेवको कुष्ठ निवारणके काममें रुचि मालूम हुई; क्योंकि वे खुद यहां ऐसे काममें हिस्सा लेती हैं। उनकी बहुत इच्छा थी कि वह केन्द्र हम देख आयें। किंगस्टनमें होते तो जरूर देख आते। भारत-सरकारकी ओरसे और गांधी-स्मारक निधिकी ओरसे चलनेवाले कामोंके बारेमें मैंने उनको विस्तारसे कहा। उसके बाद अनेक विषयों पर रसिक बातें हुईं। भोजनके बाद डॉ० ग्रेव अपने कामके लिए चले गये और श्रीमती ग्रेवने हमें होटल तक पहुंचा दिया।

होटलमें आराम करके, चार बजे हम यहांके गवर्नर सर ब्लैकबर्नसे मिलने गये। साथमें श्री अशोक वर्मा और उनकी पत्नी वीणा थी। दोपहरकी चायके लिए निमंत्रण होनेके कारण आरामसे बहुत सारी बातें हो सकीं। गांधीजी, अहिंसा, अहिंसक शिक्षा, अहिंसक समाज, भूदान प्रवृत्ति, अंग्रेजी बनाम हिन्दी आदि अनेक विषयों पर उन्होंने सवाल पूछे और मैंने उनके साफ-साफ जवाब दिये।

अहिंसाकी बातें करते सवाल उठा कि सेनाके वगैर कैसे चला सकते है? मैंने कहा कि बड़े-बड़े देशोंके सामने भले यह चिन्ता हो, छोटे-छोटे देशोंको फौज रखना कोई मानी नहीं रखता। भारत-जैसा बड़ा देश भी रशिया या अमेरिकाके खिलाफ युद्धमें उतर कर आठ दिन भी नहीं टिक सकता। हमारे लोग स्वदेशके लिए जानकी बाजी लगा कर लड़ेंगे, इसमें कोई शक नहीं है। लेकिन, देखते-देखते खेल खतम हो जायगा। जमैका जैसा देश सेना रखनेके पीछे पैसा क्यों खर्च करे? सब पैसे लोकोन्नतिके काममें ही खर्च करने चाहिए। मैंने कहा पश्चिम अफ्रीकामें मिनिस्टरोंके साथ बातें करते मैंने यही कहा था कि आप फौज मत रखिए। मैंने घानाके लोगोंसे और भी यही बातें कही थीं। पुराने जमानेमें युद्धके लिए घोड़ोंकी

जरूरत थी, इसलिए उस समय घोड़ोंकी नस्ल सुधारनेके लिए घुड़दौड़की स्पर्धाओं-को प्रोत्साहन देना आवश्यक था। घानाकी प्रजाके पास घोड़े नहीं हैं। आपके जीवन में घोड़ेका स्थान नहीं है। तो फिर आप घुड़दौड़की स्पर्धाके लिए पैसे क्यों बरबाद करते हैं? और लोगोंकी अभिरुचिको बिगाड़ते है? किसीने कहा कि जमेकामें भी घुड़दौड़की स्पर्धाएं चलती हैं। मैंने कहा कि पागलपनका ठेका किसी एक ही देश-का नहीं है। हमारे यहां घुड़दौड़की स्पर्धाएं अबतक चल रही है।

हम निरमिषाहारी हैं, यह मालूम होनेके कारण उसके अनुसार खानेकी व्यवस्था की गई थी।

४ जुलाई अमेरिकाका स्वातंत्र्य-दिन होनेके कारण अमेरिकाके कान्सल जनरल श्री रिंगवोल्ट (Ringwolt) के यहां स्वागत-समारम्भ था। वहां लगभग सारा प्रतिष्ठित जमेका इकट्ठा हुआ था। इसलिए, बहुतेरे लोगोंसे मिलना हो सका। उत्सवके अतमें आतिशबाजी छोडी गई। आतिशबाजीके बाण अनेक रंगोंकी शोभा बताते थे। स्वागतमें ही यहांके मुख्य प्रधान श्री मॅनले (Manly) मिले और उन्होंने आग्रहके साथ दूसरे दिन मिलने आनेके लिए आमंत्रण दिया।

रातको श्री तिवारीजीके यहां भोजन था। वहा भी बहुत लोगोंसे मिलना हुआ। श्री तिवारीजीकी इकलौती लड़की अमेरिकामे पढ़ी हुई है। उसके पति भी वहा मिले, जो एक फुरतीले जवान हैं।

कल सुबह हम जमेकाकी प्रख्यात संस्था—इन्स्टिट्यूट ऑफ् जमेका—देखने गये थे। उसके डायरेक्टर श्री लुईस (Lewis) एक अमेरिकन हैं, जो दूसरे गांवमें अगले दिन ही आ गये थे। डेप्युटी डायरेक्टर वेरिटी (Verity) एक उतने ही खुशमिजाज व्यक्ति संस्थाका बाल-विभाग चलाते है। इस संस्थामें, वेस्ट इण्डीज प्रदेशके बारेमे पिछले ३०० सालसे इकट्ठा की गई सभी जानकारी और तमाम साहित्य मिलता है। पिछले डेढ़ सौ सालमें अंग्रेजोंने इन सब टापुओंके बारेमे इतनी जानकारी इकट्ठा की है कि देख कर ताज्जुब होता है। पश्चिमके लोगोंकी ज्ञानोपासना देखते वे दुनियां पर राज्य जमा सके, इस बातका कोई आश्चर्य नहीं होता। फल, फूल, वनस्पति, खनिज पदार्थ, समुद्रकी प्रजा, पशु-पक्षी, मनुष्य सबके बारेमें गहरा अध्ययन करके रची हुई किताबें, चित्र और नक्शे देख कर सर्जनहार भी राजी होता होगा। डायरेक्टरने स्वयं साथ घूम कर हमें सब बताया। संग्रहालयमें मुझे कोई खास बात नहीं लगी। उसे शालोपयोगी मान सकते हैं। मैंने डायरेक्टरसे पूछा कि, 'आपके पास अपने लिए भी पर्याप्त जगह नहीं दिखाई देती। I.C.C.R.की ओरसे कोई पुस्तकालय यहां चलाया, तो उसके लिए आप कैसे जगह दे सकेंगे'' उन्होंने कहा कि 'जरूर दे सकेंगे। हम और मकान बांध रहे है। अमुक विभाग कॉलेजमें भेजनेका विचार है। ब्रिटिश कौन्सिलके साथ हमारा सहकार है, उसकी भी मदद ले सकेंगे।' मुझे यकीन हुआ कि यूनिवर्सिटी-कॉलेज और जमेका-इन्स्टिट्यूटके सहकार

से एक उत्तम भारतीय केन्द्र यहां चलाया जा सकता है।

बादमें यहांके शिक्षा-विभागके मन्त्री श्री ग्लासपोल (Glasspole) से मिलने गये। यह सज्जन पहले मजदूर-विभागके मन्त्री थे। अपनी सरकार क्या-क्या करना चाहती है, उसके बारेमें उन्होंने बाकायदा हमें समझाया। बुनियादी तालीम और शिक्षाका खर्च कम करनेके बारेमें मैंने उन्हें समझाया, लेकिन उनके दिमागमें कुछ नहीं घुस सका। जमेकामें बसे हुए भारतीयोंको शिक्षाके बारेमें भी उनके साथ कोई खास बातें नहीं हो सकी। जनाब पूरे-पूरे सियासी नेता है। स्वात्मनि सन्तुष्ट हैं। बहुत मिठबोले हैं।

उनसे मिलनेके बाद हम दादा तिवारीके यहां खाना खाने गये। वहां इण्डिया क्लबकी कार्यवाही समितिके सदस्य मिले। दादा तिवारी स्वयं अध्यक्ष हैं। अमेरिका में शिक्षित होनेके कारण उन्होंने विनय-विवेक बहुत अच्छी तरह साधा हैं। आगे जा कर नेता बन सकते है। अबतक शादी नहीं की है। भारत आनेवाले हैं। ऐसे क्लब द्वारा क्या-क्या हो सकता है वह मैंने विस्तारसे उन्हें समझाया। दो सिंधी भाई थे। उनके साथ भी बातें हुई। दादाने मेरे खानेके बारेमे विशेष ध्यान दिया मालूम हुआ।

जैसा कि तय हुआ था, तीन बजे मुख्य प्रधान श्री मेनली (Manley)से मिलने गये। देखनेमें हमारे कृष्ण मेनन जैसे दिखते हैं। सुना है कि ये सज्जन एक बहुत होशियार वकील थे। बहुत धन कमाया, लेकिन कमाया हुआ धन सार्वजनिक कामों में खर्च करके गरीब-के-गरीब रहे हैं। उनकी हम पर अच्छी छाप पड़ी। जमेकाके भविष्यके बारेमें अपनी आशा मैंने व्यक्त की, जिससे स्वाभाविक रूपमें उन्हें खुशी हुई। करारबद्ध हो कर आये हुए भारतीयोंके वंशजोंकी खास मुश्किलें दूर करनेके लिए और क्या करना जरूरी है, इसकी भी मैंने चर्चा की। उन्होंने अपनी बाजू और दृष्टि पेश की। उनकी बातें पसन्द आने जैसी थीं।

यहांसे हम कुछ लोगोंसे मिलनेके लिए वर्मा हॉल गये। वहां हम निश्चित समयके कुछ पहले पहुंच ही गये। वर्मा हॉल कैसी हालतमें है वह हम देख सके। आधा घण्टा राह देखनेके बाद कुछ लोग इकट्ठा हुए। चंद लोगों को डॉ० वर्मा ले आये। उनमें ब्रिटिश गियानासे आये हुए एक जमींदार श्री सुखदेव—ध्यान आकृष्ट करनेवाले आदमी थे। सोलह बच्चोंके पिता हैं! सामाजिक जिम्मेदारीका उन्हें अच्छा खयाल है और अपना प्रभाव भी डाल सकते है। हम जब ब्रिटिश गियाना जायेंगे, तब वहां मिलेंगे। उनके घर जानेका आमन्त्रण मैंने कबूल रखा है।

एकत्र लोगोंके साथ गम्भीर चर्चा की। भारतसे तीन व्यक्तियोंको यहां भेजा था उनका अनुभव लोगोंके सामने पेश किया और आज वे क्या कर सकते हैं, उसकी कल्पना उनको दी। सुखदेव जैसा आदमी जमेकामें हो, तो बहुत कुछ हो सकता है। डॉ० वर्माने फिरसे प्रगतिशील होनेकी आशा व्यक्त की है।

होटलमें भोजन करके क्लब इण्डियामें आयोजित सभामें हम गये। बारिशने कृपा की, इसलिए सभा खुलेमें हो सकी। सभामें अनेक समाजोंके बहुत लोग इकट्ठा हुए थे। दादा तिवारीको भी सभा सफल हुई, ऐसा लगा। मेरे भाषणके बाद प्रश्नोत्तरी अच्छी हुई। नई तालीम और संगीत-नियमन इन दो विषयोंके बारेमें कुछ लोगोंने गहरी दिलचस्पी बताई। श्रोतागणमें एक भाई भारतमें बहुत साल रहे हुए होनेके कारण वहांकी सारी हालत जानते थे। उनके सवाल अच्छे थे।

सभाके अन्तमें कुछ लोग खास मिलते हैं और विशेष बातें करते हैं। उस परसे सभाकी सफलताका अन्दाजा लगा सकते हैं। श्री दादा तिवारीने हमें घर पहुंचानेकी जिम्मेवारी ली थी। उनकी इच्छा हुई कि हमें शहरकी सब जगह घुमा कर सारी बस्तीका कुछ खयाल करा दें। यह काम उन्होंने बहुत अच्छी तरह किया। किंगस्टनके विस्तारका और शहरी जीवनका उस आधे पौन घण्टेमें बहुत अच्छा खयाल आ सका।

आज सुबह निकलनेकी तैयारी करनेके अलावा और कोई काम नहीं था। सवेरे उठने [illegible] स्नानानन्दका आस्वाद ले कर हम तैयार हुए और साढ़े ग्यारह बजनेसे पहले, बरसती बारिशमें, हवाई अड्डे पर पहुंचे। बिना किसी विघ्नके विमान उड़ा और हम अब San Yuan (सान-युआन) उतर रहे हैं। साढ़े तीन बजे हैं।

आजतक देखे हुए टापुओं और शहरोंकी अपेक्षा सान-युआनकी शोभा कुछ और ही थी। शहर, उसके आसपासके बागीचे, खेत और उपवन—सब-कुछ सुन्दर था। नीचे उतरे और देखा कि यहां तो अमरीकाका राज्य है। भाषा स्पेनिश और अंग्रेजी। हवाई अड्डेका मकान इतना विशाल, व्यवस्थित, सुविधाजनक और कलापूर्ण था कि इतनी दूर, एक छोटे-से टापूमें इतना खर्च किसलिए किया गया, यही समझमें नहीं आता था। लेकिन इसमें आश्चर्य क्या है? युरोप और अमरिकाके शौकीन मुसाफिर (tourist) इस प्रदेशकी खुशनुमा आबोहवा और सुविधाएं देख कर बारह महीने यहां आते रहते हैं। फिर अमेरिकन लोगोंको पैसे खर्च करते और सुविधाएं खड़ी करते देरी या दिक्कत क्यों मालूम हो?

ठीक स्थानिक छह बजे सूर्यास्त हुआ। संध्याका वैभव बाकायदा फैलाया और समेटा गया। उसके पहले कुदरतने समुद्रके चेहरेके हास्य और बादलोंके माथे परकी नक्शीवाली झुरियोंके अनेक प्रकार बताये और सूर्यास्तके समय तो सफेद बादलोंके इतने स्तर हिमालयीन पहाड़ोंके समान ऊपरसे दिखाई दिये कि दृष्टि विस्मित हो गई! इतना चमकता पहाड़ी विस्तार इसके पहले शायद ही देखनेमें आया हो।

मनुष्य विमानमें इतनी ऊंचाई पर पहुंच सका, उसके पहले भी ऐसी आसमानी शोभा लाखों सालोंसे मौजूद होगी ही। लेकिन, ऐसी शोभा देखनेवाला या उसका

आस्वाद लेनेवाला मन या हृदय नहीं है, इसका दुःख कुदरतको किसी समय नहीं हुआ होगा ! मनुष्य आज है और कल नहीं है। मनुष्य-जातिकी उम्र चन्द लाख सालोंकी है, जब कि कुदरतकी उम्र तो कोटि-कोटि सालोंकी होगी। ऐसी अद्भुत शोभा पैदा करके स्वयं उसमें रममाण होनेवाले प्रकृति और पुरुषका स्वरूप कौन समझ सकता है ?

—काकाके सप्रेम शुभाशिष।

३१. त्रिनिदाद—१

१०-७-१९५८

प्रिय वाल और सतीश,

त्रिनिदाद आते समय पत्र अद्यतन किये थे, इसीलिए मानों लिखना बन्द पड़ गया। तारीख ६ की रातको हमारा बादशाही तथा लोकशाही स्वागत हुआ। पीआरको (Piarco) हवाई अड्डे पर बड़े लोग भी आये थे और सामान्य जनताके प्रतिनिधि भी आये थे। खचाखच भरे हुए एक खंडमें एक बार सब लोगोंसे मिले और खंडके बाहर आ कर देखा, तो उससे भी अधिक लोग बाहर इकट्ठा हुए थे। सबसे मिल कर बड़ी खुशी हुई। सब-कुछ पूरा हुआ मान कर निकले, इतनेमें अखबारवालोंने सवाल शुरू किये। अखबारवालोंके सहकारसे मेरा सांस्कृतिक काम आगे बढ़ता है, इसीलिए उनके प्रति पक्षपात तो होता है। इन लोगोंके नाराज हो जानेसे काम बिगड़ भी सकता है। पुराने जमानेमें राजा लोग कवियोंका ख्याल रखते थे, उतनी ही उत्कण्ठासे सेवा-कार्य करनेवाले लोगोंको पत्रकारोंका ख्याल रखना चाहिए, उन्हें संतुष्ट रखना चाहिए। 'न कोपनीयाः कवयः क्षितीन्द्रैः' वाले वचनमें परिवर्तन करके चि० सतीश एक नया वचन बना कर दे। थोड़ा लम्बा बन जाए, तो भी चले।

सवाल तो हमेशाके ही थे। 'यहां आनेका आपका उद्देश्य क्या है ?' 'यह प्रदेश आपको कैसा लगता है ?' 'नेहरूजीकी तबीयत कैसी है ? 'नेहरूजीने इस्तीफ़ा दिया तो, उनका स्थान कौन लेगा ?' 'कश्मीरका क्या ?' वगैरह।

सारी भीड़ पार करके हमारे कमिश्नर डॉ० राजकुमारकी मोटरमें भदेश सगन महाराजके घर पर ठहरनेके लिए हम रवाना हुए। इस छोटेसे टापूमें हवाई अड्डा मानों बीचमें है। पोर्ट ऑफ स्पेन किनारे पर है और भदेश महाराजने जिस मकान में हमें ठहराया है, वह एक टेकरीके ऊपर है। अट्ठारह मीलकी यात्रा करके हम वहां पहुंचे। वहां देखा, तो हमारे साथ करीब पचास लोग आये हुए हैं ! मकान

विशाल है। पत्थरोंके खम्भों पर खड़ा किया जानेके कारण नीचेके भागका सभागृह अथवा मंडपके तौर पर उपयोग किया जा सकता है। पासमें छोटा-सा मंदिर है। मकान टेकरी पर होनेके कारण आसपासका दृश्य दूर तक दिखाई देता है। पीछे की तरफ कुछ ऊंचाई पर सेन्ट वेनिडिक्ट नामका एक ईसाई मठ है।

रातको भोजन करते ग्यारह बज गये और थके-मांदे सो जाते मध्यरात्रि उलट गई थी। लगता है कि अब ऐसा ही होनेवाला है; क्योंकि अन्दाजकी अपेक्षा यहांका स्वागत अधिक व्यापक बन गया है और पहले डेढ़ महीना कबूल करनेके बाद एक महीनेमें सब कार्यक्रम पूरा करना पड़ेगा अत: कार्यक्रमोंकी भीड़ बढ़ गई है।

आज सुबह त्रिनिदाद छोड़ कर ब्रिटिश गियाना जाने निकले हैं। दिल्ली छोड़ी, तबसे, त्रिनिदाद पहुंचने तक बहुत बहादुरीसे रोजका वर्णन लगभग उसी दिन अथवा दूसरे दिन लिखते आये हैं। इतना जीवट जिन्दगीमें कभी बताया नहीं था। इसका सारा श्रेय चि० सरोजको है। लेकिन त्रिनिदादके भरपूर कार्यक्रमने मेरी जिन्दगी भरकी अव्यवस्थाको पुरजोश मदद की है. इसलिए मैं प्रामाणिकतासे कह सकता हूं कि मेरी इच्छा होने पर और चि० सरोजके पूरे प्रयत्नोंके बावजूद इस सप्ताहमें हम कुछ भी लिख नहीं पाये। और, अब तो दिमागमें सात दिनके कार्यक्रमकी लगभग खिचड़ी-सी हो गई है। इसलिए जितनी हो सके, उतनी कोशिश तो करूंगा ही, लेकिन अब लगता है शायद ही क्रमवार लिख सकूंगा।

सोमवारको यानी सात तारीखको हम यहांके डिप्टी मिनिस्टर श्री कुरबोनिएर (Courboniere) से मिलने गये थे। नाम पर से लगा कि कोई फ्रेन्च आदमी होंगे लेकिन हैं तो यहांके नीग्रो ही। बहुत मिलनसार और अनुभवी हैं। उन्होंने भारतके बारेमें तफसीलवार अनेक सवाल पूछे और एक घंटेसे अधिक देर तक मुलाकात चलाई। फिर उन्होंने नये फेडरेशनके मुद्राचित्रों (Crest) की दो नकलें विधिपूर्वक, और फोटो निकलवा कर मुझे भेंट दी। Freedom of the city देनेकी यानी कि स्वकीयके तौर पर स्वीकार करनेकी जो विधि होती है, उसके जैसी ही विधि उन्होंने की। मुझे यकीन है अगर हम मानापमानके और वैध शिष्टाचारके नियम और आग्रह रखेंगे, तो इन लोगोंको अपनाना मुश्किल काम नही है। एक बात तो माननी ही होगी कि त्रिनिदाद जैसे टापूमें हमारे लोगोंकी अपेक्षा ये लोग सौ-दो सौ साल पहले आये हुए थे। भले गुलामोंकी लाचारीसे हो, लेकिन इन लोगोंने अपना पसीना यहां बहाया है और गोरे लोगोंकी कठोरताके शिकार बननेके कारण अपने खूनसे भी उन्होंने इस भूमिका सिंचन किया है। आज उनका यहां बहुमत है। शिक्षाके क्षेत्रमें वे काफी आगे बढ़े हुए हैं। जो कुछ आजादी, कालबलस, इस देशको मिलनेवाली है, उसके अधिकार अधिकांश इन लोगोंके ही हाथमें जानेवाले हैं। आजतक इस प्रजाने दूरदर्शिता अपनाई नहीं है। उड़ाऊपन उनके खूनमें है। फिर भी महत्त्वाकांक्षा बढ़ने पर ये लोग सब तरहसे विकास करेंगे। उनके प्रति

असंतोषकी भावना रखना हमारे लिए लाभदायक नही होगा। उनका स्वभाव कैसा भी हो, उस पर प्रभाव डाल-डाल कर ही हम उसे अनुकूल वना ले सकते हैं। हम अगर शिक्षामें पिछड़े हुए रहे और केवल अपनी खासी-अच्छी संख्याके बल पर ही स्पर्धामें उतरें, तो उनके साथ हमारा बन नही सकता। मैत्री तो समान भूमि पर ही हो सकती है। अगर हम निर्बल रहे, तो उनके साथ टिक नही सकेंगे। लेकिन, अगर समर्थ बने, तो उनका विरोध करनेकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी। इसीलिए, सब तरहसे कोशिश करके दोस्ती और सहकारकी वृद्धि करनी ही होगी।

अच्छा हुआ कि दुपहरका भोजन एक सिंधी भाई भीमसेन मारवाणीके यहां रखा था। अन्य प्रकारसे जिनसे मुलाकात न होने पाती. उन सिंधी सज्जनोंको यहां मिल सका। सिंधी लोग प्रयत्नपूर्वक राजनीतिक वायुमंडलसे दूर रहते हैं। यह तो ठीक है। लेकिन, उनको अपनी सांस्कृतिक महत्त्वाकांक्षा बढ़ानी चाहिए। आज ये लोग अपनी धनशक्ति और अनुभव-समृद्धिका कुछ भी उपयोग नही करते।

—काकाके सप्रेम शुभाशिष।

३२. त्रिनिदाद—२

१८-७-१९५८

प्रिय बाल और सतीश,

दोपहरको हम श्री जंगबहादुर सिंगकी व्यवस्थाके अनुसार उत्तर तरफका मराकस उपसागर देखने गये। उस टापूमें पर्वतोंकी तीन कतारें है। तीनों पूर्व पश्चिममें फैली हुई हैं। सबसे उत्तरकी कतार सबसे ऊंची और समृद्ध है। उस पर्वतमालाकी एक सुन्दर, हरी-भरी घाटी पार करके हम मराकस उपसागर पहुंचे। हमारे साथ जंगबहादुर-दम्पती और श्री बालकिशन-दम्पती थे। इसके अलावा दूसरी मोटरमें दूसरे एक भाई अपनी कन्याओंको साथ ले कर आये थे। घाटके माथे पर पहुंचते ही तुरन्त उत्तर तरफका समुद्र यकायक दृष्टिगोचर हुआ। धूपमें चमकता उसका पृष्ठभाग हम देखते ही रहे। फिर झरनेका पानी पी लिया और रास्तेके हर मोड़के साथ नये-नये दृश्य देखते, समुद्रके किनारे रेतके पट पर पहुंच गये। वहां कई लोग समुद्रमें नहा रहे थे, बच्चे कूद रहे थे, और 'यह सारी शोभा रोजकी ही है', ऐसे तृप्त कुतूहलसे, नारियलके पेड उत्तरकी ओर देखते थे। स्वच्छ रेतमें बैठ कर हमने भी यह शोभा निहारी, खा-पी लिया और आधे घंटे स्वप्न-सृष्टि पर राज किया। अमेरिकन लोगोंकी मददसे घाटीका सारा रास्ता अच्छा बनाया गया है। वापस लौटते एक सर्वमान्य, सुन्दर स्थान पर बैठ कर समुद्रको साक्षी रख

कर हमने प्रार्थना की और आहिस्ता-आहिस्ता डॉ० राजकुमारके यहां पहुंचे। रात के भोजनके लिए बहुत-से अच्छे-अच्छे प्रतिष्ठित तथा राजनीतिक लोगोंको बुलाया गया था। इसलिए, भोजन काफी समय तक चला। इकट्ठे हुए लोग अगर चाहें तो ऐसे प्रसंग पर बहुत-सी महत्त्वकी बातें आसानीसे हो सकती हैं।

मंगलवार (८-७) का दिन बड़ा महत्त्वका था। रिवाजके अनुसार हम पोर्ट ऑफ स्पेनके मेयर श्री डेनिस महावीरसे मिलने गये। इन सज्जनका डॉ. राजकुमार के साथ बहुत पुराना परिचय है। राजकुमार जब कांग्रेसके विदेश विभागमें काम करते थे और एक अखबार चलाते थे, तब वे डेनिस महावीरसे लेख प्राप्त करते थे।

मेयरसे मिल कर हम शिक्षा और संस्कार-मंत्री डॉ० सोलोमनसे मिलने गये। उनके यहां अच्छे चित्रकारोंके चार-पाच चित्र देखे। तीन चित्रोंमें यहांका देहाती जीवन, उसकी शांति और संतोष व्यक्त हो रहे थे। जब कि दूसरे दो चित्रोंमें आधुनिक कला उमड़ रही थी, जिसमें आजके युगकी मानसिक अस्वस्थता और अशान्ति [illegible] देती थी।

दोपहरको साढ़े बारहके बाद फेडरेशनके गवर्नर जनरल Lord Hailes के यहां भोजन था। ये सज्जन विलायतके Conservative पक्षके whip थे। गवर्नर जनरल नियुक्त हुए, तब यहांके लोगोंने कुछ असन्तोष बताया था। लेकिन, भाई साहब इतनी मीठी तरह पेश आये कि अब यहां सर्वत्र लोकप्रिय हैं। ऐसे बड़े-बड़े लोगोंसे मिलने जाना या उनके साथ खाना खाना बहुत बड़ी प्रतिष्ठा मानी जाती है। मुझे खुदको ऐसे प्रसंगोंका क्षोभ रहता है। मनमें होता है कि ऐसे प्रसंग टलें, तो अच्छा। लेकिन अब तो कुछ आदत हो गई है। मुझे Lady Hailes और उनके मन्त्रीके बीच बिठाया गया था। दोनों बहनें मेरे भोजनका अच्छा ख्याल रख रही थीं। उस मन्त्री बहनने अनेक महत्त्वके सवाल पूछे। Lord Hailes सामने बैठे थे, इसलिए उनके साथ भी बातें हो सकीं। चाहे जितनी महत्त्वकी बातें हों, तो भी मैं सब भूल ही जाता हूं। Lord Hailes महाशय, Winston Churchil के विश्वासके आदमी और भक्त मालूम हुए। मैंने उनसे कहा, 'युद्धके अन्तमें मुख्य प्रधानके रूपमें इंग्लैंडकी प्रजाने चर्चिलके स्थान पर दूसरे आदमीका चुनाव किया, इस बातका मुझे बड़ा आश्चर्य होता है। हमारे यहां ऐसा कभी भी नहीं होता। कठिन युद्धमें विजय प्राप्त की, केवल इसीलिए हमारे लोगोंने उन्हें आजन्म मुख्य प्रधान रखा होता।

'भारतमें रशियन नेताओंका इतना उत्साहपूर्ण स्वागत क्यों हुआ', इस बात-का इन लोगोंको आश्चर्य होता है। मैंने कहा, 'मेहमानोंका स्वागत हम इसी तरह करते हैं। और यह भी कहा कि इंग्लैंड और अमेरिकाने पुर्तगालके प्रति उत्साह-पूर्ण सहानुभूति बताई इसके खिलाफ हम कुछ बोल नहीं सकते। लेकिन, यह बात

हमें बहुत खटकती है। अगर खानगी रूपसे पुर्तगाल पर दबाव डाल कर गोवाके सवालका हल ये दोनों राष्ट्र ला सके, तो भारतके मनमें कायमके लिए कृतज्ञता पैदा होगी। इस विषयमें रशियन लोग हमारा मानस जानते हैं और मौके पर कुछ बोल कर, जनताका दिल जीत लेते हैं।

विन्स्टन चर्चिलने स्वयं खींचा हुआ एक चित्र Hailes दम्पतीको दिया था सो उन्होंने मुझे बताया। जमेकाके मुख्य मंत्रीकी पत्नी श्रीमती मॅनलेने सख्त लकड़ीमें बनाई हुई घोड़ेके पूर्वार्द्धकी एक मूर्ति भी उन्होंने दिखाई और कहा कि छह महीनों के लिए मुझे यह उधार मिली है। अपने ऊपर उठाये हुए अगले पैर टेक कर गहरी चिन्तामें बैठा हुआ वह घोड़ा हमारे मनमें काफी चिन्ता पैदा करता है। अमुक बाजूसे देखते हैं, तो वह मानों घबराहटकी मूर्ति हो, ऐसा मालूम होता है। इस प्रकारका भाव जानवरके मुंह पर व्यक्त करना कोई मामूली सिद्धि नहीं है।

Lady Hailes हमें बगीचेमें ले गई और हमारे फोटो खींच लिए। इसके पीछे केवल उपचार नहीं था। या तो भारतका या मेरी दाढ़ीका महत्त्व उसके पीछे था।

चि० सरोजको लोगोंके जीवनमें दिलचस्पी है। उसने भी बच्चोंके बारेमें प्रश्न किये, तो फिर पूछना ही क्या? लोग बिलकुल खुल कर बातें करते हैं। Lord Hailes का इकलौता बेटा जर्मनीमें है आदि बहुत सारी जानकारी Lady Hailes ने स्वेच्छासे कही।

उसी दिन शामको चार बजे डॉ० राजकुमारके कार्यालयमें चन्द महत्त्वके व्यक्तियोंको शिक्षाके बारेमें चर्चा करनेके लिए बुलाया गया था। यह चर्चा बहुत ही महत्त्वकी थी। त्रिनिदादके सामाजिक और सांस्कृतिक जीवनके बारेमें जो भिन्न-भिन्न मत प्रचलित हैं, उसकी गूंज यहां सुननेको मिली। भारतीय संस्कृति की रक्षा कैसे हो सकती है, दूसरी कौमोंका रुख क्या है आदिका विस्तारपूर्वक वर्णन आवेशके साथ एक पक्षने किया। उसमें भाई धनीका भाषण व्यवस्थित और तफसीलसे भरा हुआ था। चंका महाराज भी अच्छा बोले। श्रीमती मोहनने दूसरा पक्ष लिया और कहा कि हमें भूलना नहीं चाहिए कि हम पृथ्वीके पश्चिम गोलार्द्धमें रहते हैं। यहांके लोगोंके साथ एकरूप हुए बिना चारा नहीं।

उन्हींकी बात आगे चलाई भाई अकबर अलीने। इन सज्जनकी पेट्रोलकी दुकान है। अच्छा और समतोल बोलते हैं। आखरी दोनों भाषण मुझे विशेष भाये। मैंने यहां विस्तारसे सबको जवाब दिया और कहा कि भारतमें आज जो सांस्कृतिक विकास हो रहा है, वही यहां चलाना चाहिए। एक सौ तीस साल पहले यहां आई हुई भारतीय-संस्कृति अब बासी हो गई है। उसका आग्रह छोड़ देना चाहिए। दूसरी भी अनेक बातें विस्तारसे कहीं। वह सारा वार्तालाप बहुत अच्छा और उपयोगी था।

डॉ० उमा महाराज यहांके एक होशियार और लोकप्रिय डॉक्टर हैं। सनातन धर्मसभाके कर्णधारोंमेंसे एक हैं। चर्चा करते या अपनी बात समझाते स्पष्टता, विवेक और सरलताका अच्छा ख्याल रखते हैं। उनके वहां रातका भोजन रखा हुआ था वहां क्या-क्या बातें हुईं, उसकी टिप्पणी तुरन्त लिख न सकनेके कारण, इतने दिनोंके बाद अब कुछ याद नहीं आता।

रातको साढ़े आठ बजे हिमालय-क्लबमें मेरा भाषण रखा गया था। बिजली-के रंग-बिरंगे दीयोंसे क्लब सजाया गया था। मैं देख सका कि यह क्लब लोगोंको ठीक-ठीक आकृष्ट कर सकता है; जब कि यहां शराब पीने देनेका रिवाज नहीं रखा गया है। क्लबके नामका फायदा उठा कर मैंने हिमालयको अंजलि अर्पितकी और फिर संस्कृति धर्म, संस्कृति-समन्वय आदि अनेक बातें छेड़ीं। सभाके अंतमे प्रश्नोत्तरी भी अच्छी हुई और मैं देख सका कि लोग मेरी बातें समभावसे सुनते हैं और उत्कटतासे उस पर गौर भी करते हैं। समाजके नेताओंकी यहां उपस्थिति होनेके कारण दूसरे दिन भाषणकी चर्चा खानगीमें ठीक-ठीक चली। और, जिस किसीसे मिलने जाता वह मेरे भाषणका उल्लेख करके ही बातचीतका प्रारम्भ करता था।

—काकाके सप्रेम शुभाशिष।

३३. त्रिनिदाद—३

१४-७-१९५८

प्रिय बाल और सतीश,

बुधवारको सुबह जल्दी निकल कर हम बहुत जगह घूमे, लेकिन रातको सोनेके लिए पोर्ट ऑफ् स्पेन वापस आ गये।

सवेरे गांधी मेमोरियल स्कूल आरांग्वेज (Aranguez) और शागुआना (Chaguanas) की मोन्ट्रोज वैदिक स्कूल ये दो संस्थाएं देखी। यहां आर्यसमाजने प्रारम्भके दिनोंमें हिन्दू-समाजकी शुद्धि और सेवा किस प्रकार की, उसका जिक्र करके मैंने कहा कि आर्यसमाजका काम भारतमें तो कबका सफल हो चुका है और अब आर्यसमाजी लोग सनातनियोंसे अलग रहनेके बजाय धर्म और संस्कृतिके क्षेत्रमें सारे हिन्दुस्तानका नेतृत्व करने लगे हैं। वेदोंका अध्ययन स्वामी दयानन्द सरस्वती-ने शुरू किया था, उसे श्री अरविन्द घोषने गहराईमे उतर कर आगे चलाया है। कई विद्वान् आर्यसमाजमें दाखिल हुए बिना, वेदका स्वतन्त्र रूपसे अर्थ करने लगे हैं। रूढिवाद नरम पड़ गया है और सारा समाज निर्भयतासे प्रगति कर रहा है। आजका युग ही समन्वयका है। इसलिए अब यहां सनातनी और आर्यसमाजी

जैसे भेद चलानेके बजाय, उदारतासे एक हो जाना और सारे समाजको प्रगतिके रास्ते ले जाना, इसीमें बुद्धिमानी है।

नेताओंके साथ खानगीमें जो बातें हुई, उनमें मुख्य रूपसे हिन्दीका प्रचार किस प्रकार हो सकता है, उसके लिए क्या-क्या करना चाहिए, इस विषयकी विस्तारसे चर्चा हुई। मैंने सुझाया कि भारतसे शिक्षक, समाजसेवक और दिग्दर्शक लानेके बजाय, यहांसे ही सुयोग्य और उत्साही स्त्री-पुरुषोंको भारत भेज कर उन्हें वहां तैयार किया जाए और उनके द्वारा यहां काम लिया जाय, यही उत्तम उपाय है। मैंने यह भी कहा कि आप ऐसे लोगोंके आने-जानेकी यात्राका खर्चा वहन करेंगे, तो वहां कई संस्थाओंमें भारतके लोगोंके खर्चेसे, दो-तीन साल तक सिखानेकी व्यवस्था मैं कर सकूंगा। इस सारी चर्चामें यहांके सुमार्ड महाराज विशेष उत्साहसे हिस्सा लेते थे। वे आर्यसमाजके अध्यक्ष हैं। आर्यसमाजी संस्थाओंमें दूसरी कौमोंके नीग्रो आदि विद्यार्थी भी दाखिल होते हैं, यह विशेष बात है।

दोपहरके भोजनके लिए हमें इस टापूके पश्चिम सिरेसे पूर्व सिरे तक चालीस मीलसे भी अधिक यात्रा करके Sagre Grande (साग्रे ग्रान्दे) पहुंचना था। वहां पर श्री रामप्रसाद भूलाईके यहां भोजन था। उनका स्थान साग्रे ग्रान्देसे भी दूर बिलकुल जंगलमें था। पूछते-पूछते ढाई बजे हम वहां पहुंचे। वनश्रीकी एकान्त शोभा और लोगोंकी प्रेमल मेहमान-नवाजी एक-दूसरेमें घुल-मिल जाती थीं। यहांके सब लोग सनातनी थे। भोजनके बाद थोड़ा-सा समय बचा कर, हम गये मान्ज़ानिला (Manzanila) का समुद्र किनारा देखने। रेतका पट, लहरोंकी कतार और किनारे पर मीलों तक फैले हुए नारियलके टेढ़े-मेढ़े पेड़—यह सारी शोभा ठीक पैदा करनेवाली थी। त्रिनिदादका उत्तर किनारा देखनेके बाद, पूर्व किनारा भी देखना स्वाभाविक था। इस किनारे हम नरीवा (Nariva) नदी तक गये। यह नदी पर्वतकी मंझली कतारका पानी, भरी हुई पखालकी तरह, समुद्र तक ले आती है। पुल परसे नदीकी शोभा देख कर हम वापस लौटे और साग्रे ग्रान्देकी महासभा कॉलिजमें पहुंचे। यहां मैंने अपनी सर्वस्वतन्त्र सनातनी आत्मा उड़ेल दी और सनातन धर्ममें बौद्धिक स्वातंत्र्यके लिए किस तरह अवकाश रखा हुआ है, यह सब समझा-कर, आर्यसमाजियोंको अपना कर, अपने पेटमें समा लेनेके लिए अपील की। लोग जबतक अपनी संकुचित पुरानी दुनियामें रहते हैं, तबतक ऐसी अपील काम नहीं करती। नये लोग और नये सवाल पैदा होने पर ही यह सब काम आप-ही-आप होनेवाला है।

महासभाके आचार्यके यहां अल्पाहार किया। आचार्यजीका लड़का शरमीले कुतूहलसे मेरी ओर ताकता ही खड़ा था। उसे थोड़ा उत्तेजन दे कर मैंने अपने पास लिया, इसलिए उसने हिम्मत बटोर कर अपनी मुराद पूरी की। दोनों हाथोंसे उसने मेरी दाढ़ीको सहलाया। उसके चेहरे पर इतना कुछ सन्तोष व्यक्त हुआ कि मानों

मेरा दाढ़ी रखना सार्थक हो गया! आचार्य प्रयागके यहां उस प्रदेशके वाग्डन रॉडरिग्ज और उनकी स्पेनिश पत्नी मिली। दोनों बहुत मिलनसार मालूम हुए। पत्नीने 'मेरी माताके सिद्धांत आपके जैसे ही थे', कह कर सन्तोष व्यक्त किया। एक प्रेस्बेटेरियन पादरी भी वहां था। उसने मेरे व्याख्यानमेंसे एक बात खास पकड़ी कि लोगोंको आत्माके बारेमें ज्ञान देना चाहिए, इतना ही नहीं, बल्कि शिक्षा भी अध्यात्मप्रधान होनी चाहिए।

रातको डॉ० तिन्स्टन महावीरके यहां भोजन था। भाई तिन्स्टन जितने सज्जन और संस्कारी हैं, उतने ही मिलनसार और प्रतिष्ठित होनेके कारण उनके यहां अच्छे-अच्छे लोगोंसे मुलाकात हुई। Acting Governor—कार्यकारी राज्यपाल श्री होपचाँय और उनकी पत्नीके साथ बहुत बातें हुईं। खास करके हरेक देशके खुराकके विविध प्रकारोंके बारेमें। मसालेके उपयोग और दुरुपयोगके बारेमें मेरे विचार उनको पसंद आये। भोजनमें देरी तो हुई थी, लेकिन डा० राजकुमारका उत्साह खतम नहीं हुआ था। शहरकी रोशनीकी शोभा निहारनेके लिए उन्होंने हमें शहरमें घुमाया और फिर पासकी एक टेकरी पर ले गए। वहां एक बहुत महँगा होटल है। वह इस प्रकार बनाया हुआ है कि टेकरीके सिर परसे सीधे होटलके ऊपरकी मंजिलमें प्रवेश कर सकते हैं। फिर नीचे उतरते-उतरते नीचेके रास्ते पर उतर कर शहरमें आ सकते हैं। इसलिए होटलका नाम ही Up-side-down (अप-साइड-डाउन) होटल रखा गया है। हमारे देशमें ऐसा पहाड़ी होटल होता, तो मैं उसे 'ऊर्ध्वमूलम् अधःशाखम्' कहना पसन्द करता।

देरी होनेकी सम्भावना थी, इसलिए रातको कमिश्नरको यहां ही सो जानेका तय किया था। लेकिन, यह बात भदेश महाराजको अच्छी नहीं लगी और उसमेंसे एक प्रकरण खड़ा हुआ। लेकिन, वह तो अगले पत्रमें ही आ सकता है।

—काकाके सप्रेम शुभाशिष।

३४. दक्षिण त्रिनिदाद—१

प्रिय सतीश और बाल,

ता० ११ और १२को हमने दक्षिणकी यात्रा करनेका निश्चय किया था। साथमें श्याम अवतार और कमीशनके श्री वेंकटश्वरन् थे।

श्याम अवतार विद्यार्थीके तौर पर भारत आया था, तब पहली बार बम्बईमें मिला था। वहां वह विदेशी विद्यार्थियोंके नेताके तौर पर मशहूर हुआ था। वैद्यकका पाठ्यक्रम पूरा करनेके बाद भारतमें सब जगह घूमनेकी, श्री विनोबा भावेसे

मिलनेकी और अनेक संस्थाएं देखनेकी इच्छा उसने व्यक्त की। मुझे यह युवक पार-मार्थिक लगा, इसलिए मैंने उसकी सिफारिश मौलाना साहबसे की और सिफारिश-नामे आदि दे कर उसे सब जगह भेजा। घर जानेके बाद भी उसने मेरे साथ पत्र-व्यवहार जारी रखा था। अब वह सॅन-फरनान्डोके सरकारी अस्पतालमें काम कर रहा है।

इतना पुराना और अच्छा सम्बन्ध होनेके कारण मौका मिलते ही श्याम आ कर हमारे साथ घूमने लगा। हमें अपने घर भी ले गया। यहांकी परिस्थिति समझनेमें भी हमें उसकी मदद मिली।

हम पहले Caroni Sugar Estates (कॅरोनी शुगर एस्टेट) देखने गये। इस प्रदेशमें सबसे बड़ा कारखाना यही है। हर साल अस्सी हजार (८०,०००) टन शक्कर विदेश भेजा जाता है। यहां मजदूरोंकी सेवाके लिए श्री बेंजामिन सिली नामक एक वेलफेयर ऑफिसर काम करते हैं। बहुत अनुभवी अफ्रीकन है। मजदूर और अन्य लोग उन्हें Uncle Ben—बेन चाचा—के नामसे पहचानते हैं। मजदूरोंके सुख-दुःख समझते हैं। उनके दोषोंके प्रति दयाभावसे देखते हैं। क्रिकेटके अच्छे खिलाडी होनेके कारण युवकोंके बीच काम करके उनका मार्गदर्शन भी कर सकते हैं। हमें सब जगह घुमा कर उन्होंने मजदूरोंके मकान दिखाये और बालवाड़ी भी दिखाई। मैंने उनसे पूछा कि भारतीय मजदूरोंके खास दोष क्या हैं? उन्होंने कहा कि उनका जीवन कुछ बेढ़ंगा, अव्यवस्थित होता है। आपसमें सोच-समझ कर नहीं चलते, लेकिन कुल मिला कर अच्छे होते हैं।

यह सब देखनेके बाद हम शागुआनास (Chagunas) गये। वहाँ श्री श्रीराम के यहां खाना खाया। सारा कुटुम्ब संस्कारी है। बीच-बीचमें भारत जा कर वहांका सम्बन्ध कायम रख सकता है।

भोजनके बाद Coroni Factory में हमने शक्करके ढेर देखे। मिट्टीके या बजरी रेतके ढेर देख कर जिस प्रकार एक प्रकारकी तुच्छता मनमें प्रकट होती है, वैसी ही तुच्छता, साफ न किये हुए इस शक्करके ढेरोंको देख कर मनमें पैदा होती थी। फिर उसी मीठी रेतको समुद्र किनारे ले जा कर जहाजों पर लादते थे, उस समय तो उसके प्रति दयाभाव ही पैदा होता था! शक्करकी बनी हुई अच्छी-अच्छी चीजें देख कर उसके प्रति आकर्षण और कुछ आदरभाव पैदा होता है। शक्करके बोरे देख कर उसकी समृद्धिकी ओर ध्यान जाता है। लेकिन, जब अस्वच्छ जमीन पर, अस्वच्छ शक्करके ढेर पटके हुए और जहाजमें चाहे जैसे लादे हुए देखने मिलते हैं, तब उस वस्तुके प्रति एक प्रकारकी अरुचि पैदा होती है।

बहुत-से मजदूरोंको इकट्ठा करके उनके साथ बातें करनेके बाद हमने कैलिफोर्नियामें श्री लच्छमनसिंहके यहां जा कर चाय पी। दिल्लीमें मिली हुई विद्यार्थिनी द्रौपदीके भाईका यह घर है। उसकी माताजी मिलीं। उसकी बहन

रेवती आदि बहुत लोगोंके साथ द्रौपदीके बारेमें बातें कीं, इसलिए उनके मनमें हमारे लिए आत्मीयता जगी।

यहांसे दो मील यात्रा करके कूवा (Couva) में, श्याम अवतारके घर रात का मुकाम किया। यहां हमें आश्चर्य हुआ कि श्याम सबसे बड़ा भाई है! मालूम होता है छोटा! श्यामने अभी तक शादी नही की, जबकि उसके छोटे भाईने शादी की है और वे तीन लड़कियोंके पिता हो चुके हैं। श्यामकी माताजीने और भाभीने हमे प्रेमसे खिलाया और बहुत दिनोंके बाद जल्दी (साढ़े नौ बजे) सो सके!!

दूसरे दिन (ता० १२ को) सवेरे पोर्ट ऑफ् स्पेनसे हमारी मददमें भाई जुनेजा आये। श्री वेंटकटेश्वरन् रातको ही वापस गये थे। यहां हमें ले जानेके लिए स्थानिक नेता बेनी महाराज और कार्यकर्ता विश्राम गोपी आये थे।

इस तरफका एक शक्करका कारखाना देख कर हम यहांसे चार मील दूर सॅनफरनान्डो पहुचे। त्रिनिदादकी यह दक्षिणकी राजधानी है। शुगर एस्टेटको शक्करका कारखाना कहना ठीक नही है; क्योंकि बड़ी विशाल जमीनमें गन्नेकी बुआई करना, समय हो जाने पर उन गन्नोंको पेल कर उसका रस निकालना, बड़े कारखानेमे उस रसका शक्कर बनाना, बची हुई चाशनीसे 'रम' दारू बनाना, जमीन पर काम करनेवाले किसानो, मजदूरों और कारीगरोंकी विशाल बस्ती पर देख-रेख करना, उनके अनेक प्रकारके सवाल हल करना, दवा-दारू तथा बच्चोंकी शिक्षाकी सुविधाएं खड़ी करना, जरूरी मकान खड़े करना—ऐसी-ऐसी अनेकविध प्रवृत्तियोंका विचार करते हुए शुगर एस्टेटको शक्करवाड़ी या 'शर्करा-राज्य' कहना चाहिए।

भाई विश्राम गोपी हमे Eugene St. Madeleine वाली शक्करवाड़ीमे मजदूरोंके पुराने घर कैसे थे और नये घर कैसे है, यह दिखानेके लिए पुरानी बराकें देखने ले गये। मकान और अंदर रहनेवाले लोग एक-से बूढ़े और जर्जर थे। देखते ही तरस आ जाता। अच्छे, मजबूत, काम करनेवाले मजदूर और मजदूरिनें यह बस्ती छोड़ कर स्वयं बांधे हुए नये घरोमे रहने गये थे। उन्हें मकान बांधनेके लिए कर्ज मिला था, जो १५ से २० सालमें वापस लौटाना था। बाकी रहे हुए बूढ़े लोगोंको कर्ज कौन देगा? वे अपने लिए घर कहांसे बांध सकेंगे? उन्हें तो यह जगह छोड़ कर चले जानेका नोटिस मिल चुका था। हमे देख कर बेचारे किसी तरह हमारे इर्दगिर्द इकट्ठा हुए। पैरोंमें कप, हाथोंमें कंप, लकड़ीके आधार पर मुश्किलसे खड़े रह सकते और एक-दूसरेको आधार देते। उसमें एक बूढ़ी कहीसे चार फूल इकट्ठा करके, माला बना कर लाई। बोलनेकी ताकत न थी! केवल बहते हुए आंसुओंकी धारासे ही उसने अपना भाव व्यक्त किया। गोपीकी दरमियानगिरीके कारण इन लोगोंको यहां कुछ अधिक दिन रहनेकी इजाजत मिली थी। लेकिन, ये लोग खाएं क्या और जाएं कहां? कंपनी कहती है, अपने रिश्ते-

दारोंके पास जाओ। सबके रिश्तेदार कहांसे होंगे? और हों, तो भी आश्रय थोड़े ही दे सकनेवाले हैं?

तहकीकात करते मालूम हुआ कि ऐसे अनाथ और अपंग लोगोंकी संख्या लगभग सौ जितनी होगी। जिन लोगोंने सारी जिन्दगी यथाशक्ति मजदूरी की, जंगल तोड़ कर खेत बनाये और समृद्धि पैदा की, उन लोगोंको जिन्दगीके आखिरी दिनोंमें निराश आंखोंसे आंसू बहाने पड़ें, यह स्थिति असह्य थी। मुझसे रहा नहीं गया। आखोंके आंसुओंको मैं रोक या छुपा नहीं सका। कंपनी मैनेजरसे पूछने पर उसने कहा कि हम तो सरकारको पैसे देते हैं। सरकार चाहे, तो इन लोगोंको अच्छे घर बांध कर दे सकती है।

यहांसे हमने स्थानिक मुस्लिम भाइयोंकी मस्जिदमें जा कर प्रार्थना की और एकत्र लोगोंको I.C.C.R. के उद्देश्य समझाये और कहा कि आपको उर्दू किताबों की जरूरत हो, तो हम भेज देंगे। उन्होंने कहा कि 'आप भेज देंगे, तो हमें खुशी होगी। लेकिन, हमारे खर्चसे क्या आप कोई उर्दू शिक्षक भेज नहीं सकेंगे?' मैंने कहा कि 'आप मुझे दिल्लीके पते पर खत लिखिए। आपकी खातिर जरूर कोई शिक्षक ढूंढ कर भेजनेकी कोशिश करूंगा'।

इसके बाद सैनफरनान्डोके नगरश्रेष्ठी डॉ मुसाहिबसे मिलना था। वहांसे नजदीक दो राजमार्गोंके बीच पू० बापूजीकी मूर्ति खड़ी की गई है, वहां जा कर हमने फूल चढ़ाये, मानसिक प्रार्थना की और वेनी महाराजके यहां जा कर भोजन किया। इस शहरमें कई गुजराती भाई सुनारका धंधा करते हैं। इनकी औरतोंने वेनी महाराजके यहां आ कर हमारे लिए रसोई बनानेमें मदद की थी। गुजराती पकवान और गुजरातीमें वार्तालाप उभयपक्षके लिए आनन्ददायक था।

उसके बाद कई महत्त्वके लोगोंसे मिलने गये। मेरा अधिकतर काम तो ऐसे खानगी वार्तालापमें चलती प्रश्नोत्तरीमें हो जाता है।

—काकाके सप्रेम शुभाशिष।

३५. दक्षिण त्रिनिदाद-२

प्रिय बाल और सतीश,

पोर्ट ऑफ् स्पेनमें नगरपालिकाकी ओरसे हमारा सार्वजनिक स्वागत हुआ था, यह जाननेके बाद सैनफरनांडो पीछे कैसे रह सकता? उन्होंने भी टाउनहॉलमें, मेरे सार्वजनिक व्याख्यानके पहले, नगरपिताओंकी ओरसे सार्वजनिकस्वागतका **कार्यक्रम** रखा और सैनफरनांडोमें भी Freedom of the City वाला पुरस्कार मिला। इन

लोगोंके मनमें भले इस भारतीय सज्जनको बड़ा मान देनेकी विधि हो। मैंने तो अपने मनके साथ निश्चय किया कि इन दो शहरोंके तथा तमाम त्रिनिदादके बाशिन्दोंके प्रति मुझे आत्मीयता विकसित करनी चाहिए और पक्षपातरहित सबके कल्याणकी कामना करनी चाहिए। नगरपालिकाके स्वागतके जवाबमें मैंने प्रारम्भमें ही उन सौ बूढ़े मजदूरोंके दुःख-निवारण की बात की। डॉ० राजकुमार इस समारम्भके लिए खास मॅनफरनाडो आये थे। उस दिनकी रातकी सार्वजनिक सभा लोगोंकी कल्पनासे भी अधिक बड़ी हुई थी। राजकुमारजीने आप सब लोगोंके पत्र हमें दिये और देर हो जाने पर भी रातको ही वे वापस लौटे। घर पहुंचते उन्हें डेढ़ बजा होगा। हम भी आज सबके अनेक पत्र पढ़ने मध्यरात्रि हो गई।

यहांसे हमें देबे, पीनाल आदि स्थान देख कर, रात होनेके पहले पोर्ट ऑफ् स्पेन वापस जाना था। आजका कार्यक्रम श्री अजोधा (अयोध्या) सिंगन अपने हाथ ले लिया। ये सज्जन जब मिनिस्टर थे, तब इन्होंने त्रिनिदादके रास्तों पर विशेष ध्यान दिया था। उन्हें जब मालूम हुआ कि हम दक्षिणकी तरफका कोलतारका सरोवर देखना चाहते हैं, तब उन्होंने हमारा कार्यक्रम कुछ आगे-पीछे करके हमारी इच्छा तृप्त की। देबेसे वापस लौट कर, बीचका रास्ता निकाल कर, कोदीनो नदी पार करके १० मीलकी दौड़के अन्तमें हम कोलतार तालाब पहुंचे। यह तालाब एक बड़ा चमत्कार माना जाता है। यह भी नहीं है कि तालाब बहुत बड़ा है। तालाब पर मोटर भी कुछ अन्तर तक चला सकते हैं। लेकिन, अधिक समय तक एक जगह ठहर जाने पर मोटर धीरे-धीरे कोलतारमें उतर जाएगी! फिर उसे बाहर निकालना मुश्किल होगा। सैकड़ों वर्ष बीते—सर वॉल्टर रॅलेके समयसे आजतक लोग इस तालाबमेंसे कोलतार खोद निकालते आये हैं। आठ दिनके भीतर अन्दरसे नया कोलतार आ जाता है और गड्ढा भर जाता है। लंदन, न्यूयॉर्क, वॉशिंगटन जैसे बड़े-बड़े शहरोंके आस्फाल्टके रास्ते इस सरोवरके कोलतारकी मददसे ही बने हुए हैं। तालाबमेंसे कोलतार खोद निकाल कर, बड़ी-बड़ी कड़ाहियोंमें भर कर तार-विभागकी रस्सियों जैसी रस्सियों परसे जहाज तक ले जाते हैं और बादमें उसे गरम करके उसका शुद्ध कोलतार बनाया जाता है। ऐसे इस अद्भुत सरोवरका अनुभव लेनेके लिए हमने अपनी मोटर उस पर थोड़ी दौड़ाई। रविवार होनेके कारण जोर-शोरसे चलनेवाला काम देख न सके। आसपासका नया बसा हुआ ब्राइटन (Brighton) शहर देखा। यादगारके तौर पर कोलतारका एक छोटा-सा टुकड़ा उठा लिया और जैसे आये थे वैसे ही, पश्चिम किनारेकी शोभा देखते-देखते हम वापस लौटे। मॅनफरनाडो तक आ कर कोलतारका यह सरोवर देखना चूक जाते, तो वह सचमुच बहुत बड़ी कमी गिनी जाती। तालाब देखनेसे इतना संतोष हुआ कि अब चाहे जितनी मुश्किल और भीड़का कार्यक्रम हो, तो भी उसमें कोई हर्जा नहीं ऐसा लगने लगा।

Aripero नदी, जंगल, खेत और बारिशके आनंदका आस्वाद लेते हम पीनाल हो कर रॉकफोर्ड गये। वहांकी पाठशाला देख कर थोड़ी बातें करके, वापस पीनाल के सिनेमाघरमें एक बड़ी सार्वजनिक सभासे निबट कर, गांधी कन्याशाला देखी। भारत सरकारकी ओरसे नियुक्त एक बहन—सन्तोष चोपड़ा यह शाला चला रही हैं। हमारे पुराने कमिश्नर नन्दाने इस शालाकी स्थापनाके लिए बहुत मेहनत की थी। स्त्री-शिक्षाके बारेमें मैंने यहां उत्साहसे बात की। हमेशाकी फोटो खिचवाने-की विधि पूरी करके हमने पोर्ट ऑफ् स्पेनकी लम्बी यात्राका प्रारम्भ किया। क्योंकि, हमें रातको हमारे कमीशनके ज्येष्ठ मन्त्री श्री बालकिशनके यहां बड़े भोजन-समारम्भमें जाना था। यहा बहुत अच्छे-अच्छे लोगोंके साथ मुलाकात हुई। उनमें-से एक थे नौकादलके सेनापति Commander Hayward। थोड़े ही दिनोंमें वे स्वदेश चले जानेवाले थे। इन सज्जनकी लोकप्रियता असाधारण थी। इतने नम्र, खुशमिजाज और मिलनसार! मुझसे मिलनेके लिए दूसरे भी लोग उत्सुक हैं, यह देख कर उन्होंने स्वयं सुझाया कि, 'मैं आपकी सेक्रेटरीके साथ बातें करूंगा। आप-के साथ बातें करनेका ठेका मुझे अकेलेको नहीं ले बैठना चाहिए।'

उसके बाद डॉ० मैत्र, ब्रिटिश कॉन्सल हिल, अमेरिकन कॉन्सल आदि बहुत लोगोंके साथ महत्त्वकी बातें हुई। थके-मांदे हम भदेम महाराजके गिरि-निवास पर पहुंचे। लेकिन वहां भदेस और उमा महाराजके साथ आधी रात तक बातें चलीं। सनातनी-आर्यसमाजियोंके बीचका संबंध, हिन्दू-मुसलमानोंके बीचका संबंध, ईसाईधर्मियोंका रुख, यहांके भारतीय लोगोंके और अफ्रीकी नीग्रो लोगोंके बीच चलती स्पर्धा इत्यादि अत्यन्त महत्त्वके प्रश्नोंके सम्बन्धमें हमारी शुद्ध नीति कैसी होनी चाहिए, इसके बारेमें मैंने विस्तारपूर्वक कहा। क्योंकि मैं जानता था कि ये दो सज्जन अगर गांधी-पद्धतिकी दृष्टि स्वीकार करें, तो त्रिनिदादके बहुत-से सवालोका हल निकल सकता है।

मैंने देखा कि मैं स्वजनके रूपमें बातें करनेके कारण उनके जैसे लोग उस समय मेरी सब बातोंका स्वीकार करते हैं, लेकिन पुराने संस्कार और रोजके अनुभव जबरदस्त होनेके कारण वे फिरसे उलझनमें पड़ जाते हैं। ऐसी हालतमें केवल सिद्धांत-चर्चा और उपायोंका विवेचन करना पर्याप्त नहीं होता। अगर चार-छह महीने साथ रह कर नये ढंगसे काम करना प्रारम्भ किया, तभी सच्चा विचार-परिवर्तन होने लगेगा।

रातको बिस्तर पर लेटे-लेटे भी इसी प्रकारके बहुतसे विचार मनमें चलते रहे, यद्यपि दूसरे दिन तड़के उठ कर हवाई जहाज द्वारा ब्रिटिश गियानाकी राजधानी जॉर्जटाउन जाना था। त्रिनिदाद और उसकी राजधानी—पोर्ट ऑफ् स्पेन दोनोंका महत्त्व तेजीसे बढ़नेवाला होनेके कारण, यहां गुजारे हुए सप्ताहका महत्त्व बहुत था। त्रिनिदाद आखिर वेस्ट इंडीजका एक टापू ही था, जबकि

ब्रिटिश गियाना दक्षिण अमेरिका जैसे विशाल खण्डका, अधिकतर अविकसित प्रदेश था। वहां कैसे-कैसे अनुभव मिलेंगे, इसका विचार करते, ता० १४ को सोमवारके दिन सवेरे हम हवाई जहाज पर आरुढ हुए।

—काकाके सप्रेम शुभाशिष।

३६. जार्जटाउन

१६-७-१९५८

चि० चंदन,

तेरा पत्र मिला। उसका जवाब फुरसतसे लिखूंगा अथवा वहां पहुंचनेके बाद तेरे साथ चर्चा करूंगा। इस समय आजके सारे दिनका प्रवासका वर्णन तुझे भेजनेकी इच्छा हो रही है। उसे पढ़ कर चि० सतीश और बालको पढ़ने दे देना।

त्रिनिदनादसे जॉर्जटाउन-ब्रिटिश गियाना आये तीन दिन हुए। बुधवारकी शामको यह खत लिखवा रहा हूं। जॉर्जटाउनमें दो दिनका काम निपटा कर आज हम एसेक्विबो (Essequibo) जिलेके उत्तर विभागमें कुछ घूम आये। ब्रिटिश गियाना उत्तरसे दक्षिण तक फैला हुआ देश है। एक तरफ वेनिझुएला (Venezuela) का राज्य और दूसरी तरफ डच सुरिनाम। इस प्रदेशमें महत्त्वकी सब नदियां दक्षिणसे उत्तर बहती हैं और केरिबियन समुद्रसे मिलती हैं। इन नदियोंके कारण ही इस प्रदेशके तीन विभाग बन गये हैं, जिन्हें 'काउन्टी' कहा जाता है। तीनों काउन्टियोंके नाम नदी परसे ही पड़े हुए हैं—एसेक्विबो, डेमरारा और बेरबीस। उसमें बीचकी डेमरारा, काउन्टी सबसे छोटी, फिर भी महत्त्वकी है!

इस देशकी सबसे बड़ी नदी एसेक्विबो ठेठ दक्षिणसे निकल कर, अतलांतक महासागरमें जा मिलती है। नदी तीन सौ मीलसे अधिक लम्बी होनी चाहिए, लेकिन जहां वह समुद्रसे मिलती है, वहां उसका मुख लगभग २८ मील चौड़ा है। कहते हैं कि इस नदीमें छोटे-बड़े ३६५ टापू होंगे।

एसेक्विबो नदीकी दाहिनी तरफसे निकल कर, सारी नदी लांघ कर, बाईं तरफ पहुंचनेके लिए अगर हम जहाजमें जाते, तो पांच घण्टे बिगाड़ने पड़ते—'बिगाड़ने' नहीं कहूंगा; क्योंकि नदीके मुखकी यात्रा अनेक प्रकारसे रमणीय और ज्ञानमें वृद्धि करनेवाली होती है और जलमग्न टापू टालनेके लिए, अनेक मोड़ ले कर, टेढ़े-मेढ़े प्रवाहको पार करके रास्ता निकालना पड़ता है। यह सारी बातको समझ सकता है और उसके लिए इस प्रवासमें रसके घूंट अवश्य मिलेंगे। लेकिन, जिसके पास समय-दारिद्र्य है, वह ऐसा उड़ाऊपन नहीं कर सकता।

हमने जॉर्जटाउनसे उस पार पहुंचनेके लिए, छह आदमी बैठ सकें, ऐसा एक जलचर हवाई जहाज किराये पर लिया और जाते-आते बीस-तीस मिनटमें पहुंचने-की सुविधा प्राप्त की।

सारी यात्रा व्यवस्थित रूपसे करनेके लिए हमें सबेरे चार बजे उठना पड़ा। कुछ जल्दीमें और कुछ आराममें नहा कर, नाश्ता करके, छह बजे निकल कर बन्दरगाह पहुंच गये। हम जिस घरमें रहते हैं, वह जॉर्जटाउन रेलवे स्टेशनके सामने ही है। स्टेशनसे बन्दरगाह जाते भीड़के न होनेसे चौड़े मालूम होनेवाले रास्तेकी शोभा अच्छी तरह देख सके। यहांके सभी मकान खम्भों पर खड़े किये हुए और लकड़ीकी दीवारवाले होनेके कारण नगर-रचनामें एक सुन्दर नक्शा पैदा कर देते हैं। सभी मकान सफेद! इसलिए मैं तो इस शहरको जॉर्जटाउन कहनेके बजाय सुधानगरी या धवलपुरी अवश्य कहता। यहांके रास्ते बिलकुल सीधे और चौड़े हैं और बीचो-बीच बहती नहरसे दो हिस्सोंमें बंटे हुए होनेके कारण गरमी-के दिनोंमें रास्तों पर अच्छी ठंडक रहती है।

बन्दरगाह पर पहुंचे और वहां पर हमारी राह देखता हुआ हवाई जहाज हमने देखा। गोदी (डॉक) में जिस तरह छोटे-बड़े जहाज जमीन पर खड़े किये होते हैं, वैसे ही यह जहाज भी था। टिकट खरीदते समय एक मजमून पर दस्तखत करने पड़ते हैं कि, 'जान जाय, हाथ-पैर या आंख-कान टूट जाय, तो कम्पनीकी जिम्मे-दारी नहीं है, इस बातको हम स्वीकार करते हैं।' इस विधिमेंसे पार हो कर हम छह लोग विमानमें जा बैठे। हम दो, हमारे मेजवान हरिप्रसादजी, बारबडोससे यहां आ कर बसे हुए एक सिंधी भाई थानी (थदानी), एक व्यापारी बहन श्रीमती रेमन और हमारे प्रतिनिधि सातमसिंह—इतने लोग थे। हमारा हवाई जहाज पंचमहाभूतोंमेंसे जमीन, पानी और आकाशमें विहार करनेवाला होनेके कारण उसे दूसरे हवाई जहाजोंके समान गति प्राप्त करनेके लम्बे आंगनकी जरूरत नहीं होती। गोदीकी फिसलन परसे वह सीधा पानीमें उतर गया और वहां तैरने लगा। छोटी नावोंमें जिस प्रकार उलांडियां (hutriggers) होती हैं, उसी प्रकार इस जहाजके फैले हुए पंखों तले दो लम्बे गुब्बारे होते हैं। पहले तो मुझे लगा यह इसी तरह पानीके पृष्ठभाग पर दौड़नेवाला है, लेकिन उसने पानीमें एक मोड़ लिया। बहुत पानी उड़ाया और दूसरे हवाई जहाजोंके समान हवामें उड़ान की। पानी-के उड़नेसे हमारी खिड़कियां तुषारकी झालरसे ढक गईं और मानो हम फव्वारेमें-से गुजर रहे हों, ऐसा मजा आया। आसपासके पानीके तूफानके बावजूद भी हम अन्दर सूखे-के-सूखे सुरक्षित हैं, उसका आनन्द भी हम अनुभव कर सके।

जैसे-जैसे हम ऊपर गये, वैसे-वैसे नदीका प्रवाह, उसके ऊपरकी झुर्रियां, लम्बी-लम्बी फैली हुई सफेद लकीरें और जमीन तथा पानीके बीचके किनारेकी शोभा देखनेका आनन्द मिला। यहांके खेत, घर, रास्ते, पेड़ोंकी कतारें और अमुक-

अमुक तालाब भी इतने सीधे और चौकोर होते हैं कि मानों सारी सृष्टि कल ही, समकोनियाका उपयोग करके बनाई गई हो। पुरानी सृष्टिको पुरानी मर्यादाएं संभालनी पड़ती हैं, असुविधाएं सहन करनी पड़ती हैं और उसके द्वारा पुराना इतिहास सुरक्षित रखनेका अवसर उसे मिलता है। यहां सब कुछ शास्त्रशुद्ध और अणीशुद्ध होता है। जमीन पर जिस प्रकार सुविधाजनक होता है, उसी तरह आकाशसे रमणीय मालूम होता है। एसेक्विबो नदी पार करते उसके मुखमें जाने वाले अनेक टापू भी पार करने पड़ते हैं। मनमें विचार आता है कि नदीका पानी बढ़नेसे क्या टापू जलमग्न नहीं होंगे? लेकिन नदीका मुख इतना चौड़ा है कि चाहे जितनी बाढ़ आने पर भी पानी इन टापुओं पर नहीं आयगा।

असलमें इस प्रदेशकी राजधानी जॉर्जटाउन समुद्रकी सतहसे छह फुट नीचे ही है। इसलिए समुद्र किनारे पर एक मजबूत बांध, एक सिरेसे दूसरे सिरे तक बांधा हुआ है। इस निम्न प्रदेशमें धानकी खेती देख कर मुझे अपना बचपन याद आया— जब मैं अपने खेतोंमें जा कर शौकसे, कीचड़में घुटने टेक कर, निराईका काम करता था। यहांकी गन्नेकी फसल देख कर भी मुझे बचपनके वही दिन याद आये, जब मैं गन्नेके रसमेंसे नारंगी रंगका गुड़ तैयार करता था। बांधके कारण समुद्रसे भी सुरक्षित ये खेत कैसे सुन्दर मुस्कुरा रहे थे!

उस पार हम नदीमें उतरे। हवाई जहाज थका मांदा पानीमें तैरने लगा। बादमें एक छोटी-सी होडी विमानके पास आई और हमें किनारे पर ले गई।

वहां हमको अपने घर ले जानेके लिए भाई देवरूप मोटर ले कर तैयार थे। इन लोगोंको भारतके तिरंगे झण्डे और उसके अशोकचक्रके लिए अत्यन्त प्रेम आदर और भक्ति है। भारतीय स्वतन्त्रताके दिन, यूनियन जैकके साथ भारतकी ध्वजा भी ब्रिटिश गियानाके लोग अभिमानसे फहराते हैं। कुछ लोग भारतकी ध्वजाके साथ पाकिस्तानकी ध्वजाको भी स्थान देते हैं।

मैं तो भारतसे आया हुआ मेहमान और फिर पार्लियामेंटका मेम्बर भी ठहरा। इसलिए इन लोगोंका आग्रह है कि मुझे ले जानेवाली मोटरके ऊपर भारतकी ध्वजा होनी ही चाहिए। जार्जटाउनमें जहां मैं रहता हूं वहां हमारे मेजबानके घरके ऊपर हमारा झण्डा है ही। झंडा विषयक नियमोका इस देशमें कड़ाईसे पालन नहीं होता होगा। शायद इस देशमें कोई नियम ही नही होंगे। यहांकी सरकारको कोई आपत्ति हो ऐसा नही लगा; क्योंकि यहांकी सरकारके अमलदार भी हमारे सभा-समारोहमें हिस्सा लेते हैं।

हम अॅना रेजीना (Anna Ragina) और हेनरिएटा (Henrietta) पार करके कॉफी ग्रोव (Coffee Grove) में भाई देवरूपके घर पहुंच गये। वहां आस-पासके बहुत-से परिचित सबंधी लोगोंको एकत्र किया गया था। उनके साथ काफी खानगी चर्चा हुई। उसके बाद भोजन करके आराम किया और दो सार्वजनिक

सभाओंके लिए तैयार हो गये।

एक सभा हुई Anna Ragina में। बाहरके लोग इस प्रदेशमें कम आते हैं, इसलिए यहांके लोग काफी संख्यामें सभामें उपस्थित रहते हैं और घंटों तक राह देखते बैठते हैं। शर्ट, पतलून और हैट तथा मजदूर-सदृश अंग्रेजी-भाषा—ऐसे देहाती लोग जब प्रेमसे आकर हाथ मिलाते हैं और भारतके प्रति, उसके धर्म और संस्कृतिके प्रति अपनी 'निष्ठा' टूटे-फूटे शब्दोंमें व्यक्त करते हैं और किसीके मुंहसे रम शराबकी बू भी महकती हो—तब भारतीय जाति और भारतीय संस्कृति कैसे-कैसे रूप धारण कर सकती है, यह देख कर हम दंग रह जाते हैं। जापान-चीनमें तथा थाई कम्बोडियामें भारतीय संस्कृतिके अवशेष और स्थानीय संस्कृतिके साथके उनके मिश्रण देख कर पहले तो दुःख ही होता है। लेकिन आंख-कान और मन आदी हो जानेके बाद स्थानिक विशेषता और उसके द्वारा भी व्यक्त होनेवाली अमुक ढंगकी संस्कृति देख कर भारतीय संस्कृतिके लिए कहना पड़ता है—'नास्त्यन्तो विस्तरस्य ते'।

जो भारतीय यहां आये, वे अपने साथ थोड़े धर्म-संस्कार और बहुत सारी लोक संस्कृति लाये। प्रतिकूल परिस्थितिमें और विषम जीवन-कलहमें जितना टिक सका, उतना टिका और उसने नये-नये रूप भी धारण किये। अक्सर संस्कृतिकी आत्मा तो निकल चुकी होती है और मात्र अमुक रिवाजोंका खंडित रूप ही बचा हुआ होता है फिर भी, उन पोले अवशेषोंके प्रति निष्ठा द्वारा आत्मा फिर आ कर सज सकती है; इसलिए ऐसी आकृतिनिष्ठा भी स्वागतके लायक होती है।

भारतीय संस्कृतिके नये-नये प्रवाहोंके बारेमें जब बात करता हूं, तब ये लोग निष्ठासे सुनते हैं सही। लेकिन, यह देख कर कि उनके संगृहीत विचारोंके साथ उनका मेल नहीं बैठता, तुरन्त उलझनमें पड़ जाते हैं, अस्वस्थ होते हैं। लेकिन बाद में सोच-विचार करने पर उनको अच्छा भी लगता है।

दूसरी सभा हुई Joanna Celeila में।

जैसे गये थे उसी तरह वापस आये। विमान हमारी प्रतीक्षा कर रहा था। हमें पेटमें लेते ही उड़ उठा। इस बार नदीके प्रवाह, पानीके कम-ज्यादा वेग और कीचड़का कम-ज्यादा प्रमाण— यह सारा बहुत अच्छी तरह दिखाई दिया। इतनी बड़ी नदी समुद्रमें पहुंचती है और पानीकी राशि समुद्रमें उड़ेलती है, लेकिन उसको यहां कुछ भी महसूस नहीं होता। उत्तर तरफ फैला हुआ दरिया हवाके कुहरे के कारण अनन्तमें अलोप होता है और क्षितिज जैसा कुछ दिखाई ही नही देता। इसलिए आंखें वापस लौट कर नीचेके टापुओंको निहारने लगती हैं। हरी-भरी जमीन, खिलौने जैसे घर तथा बीच बीचमें झूमते नारियलके वृक्षोंका विस्तार देख कर सन्तोष होता है। जॉर्जटाउन शहर विमानमेंसे ही अच्छी तरह आंखोंमें समा ले सकते हैं। इस शहरकी रचना-पद्धति बिलकुल अलग ही है। प्रत्यक्ष देखे बगैर

उसका खयाल नहीं आ सकता।

सारे दिनकी लम्बी-चौड़ी यात्राके बाद आराम करना ही पसन्द करता। लेकिन आरामसे भी अधिक स्वागत करने लायक अनुभव हो सकते हैं।

जिस प्रकार नदीके विस्तारमें कुछ द्वीप सिर ऊंचा करते हैं, उसी तरह इस अपरिचित मुल्कमें भी आत्मीयताके वायुमंडलवाले चंद मानवी द्वीप मिल आते हैं इस देशके जो विद्यार्थी या विद्यार्थिनी भारतमें पढ़ते हैं और हमें पहचानते हैं, वे चि० सरोजके बारेमें और मेरे बारेमें अपने घर थोड़ा-बहुत लिखते रहते हैं और चि० सरोजका स्वभाव ही ऐसा है कि थोड़ा परिचय होनेके बाद वे लोग सरोजको घरकी सारी बातें कहते हैं और रिश्तेदारोंके फोटो बताते हैं। ऐसी हालतमें ऐसे उन कुटुम्बीजनोंसे मिलनेका दिल होना स्वाभाविक ही है। और, ये लोग भी दूर देशमें रहते अपने आप्तजनोंके बारेमें हमारे मुंहसे सुननेके लिए आतुर होते हैं।

दिल्ली-बम्बईकी यात्रामें हरि या इसरसिंग नामका एक जवान रेलगाड़ी में चि० सरोजको मिला था। बादमें बहुत बार बम्बईमे वह हमसे मिला। अच्छा, सुसंस्कारी यह लड़का जब-जब घरकी याद आती है तब तब नाणावटी (सरोजके भाई) के यहां आता है।

उसके घरके लोगोंने हमें प्रेमसे अपने यहां भोजनका आमंत्रण दिया। बातें करना, हमें खिलाना और हमारे साथ फोटो खिंचवाना—यही था वहांका कार्यक्रम। कुटुम्ब विशाल है, एकताकी भावनासे रहनेवाला है और जार्जटाउनमें उसकी प्रतिष्ठा भी है।

—काकाके सप्रेम शुभाशिष।

१६ दिसम्बर, १९५८ ई०

३७. अमेरिका क्या है?

आजके हिसाबसे दुनियाके दो विभाग होते है। यूरोप, एशिया और अफ्रीका तथा ऑस्ट्रेलिया मिल कर पुरानी दुनिया बनती है और उत्तर तथा दक्षिण अमेरिका मिल कर नई दुनिया बनती है।

इनमें यूरोपके लोग बड़े पुरुषार्थी, स्वार्थी और आतंककारी जालिम हैं। ये अपनेको सुधरे हुए कहते है। इन यूरोपियन लोगोंने एशिया पर अपना आतंक जमाया। अफ्रीकामें जा कर वहांके लोगोंको परेशान करके उनका मुल्क लूटना शुरू किया।

उत्तर अमेरिका, दक्षिण अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया इन तीनों देशोंके आदि-वासियोंको करीब-करीब नामशेष बना कर उनका देश अपने लिए ले लिया और वहां जा कर बसे। रेड इण्डियन, कॅरिब, आरावाक आदि अनेक आदिवासियोंमेंसे

जो बचे हैं, उनकी हालत दयनीय है। या तो ये लोग जीवन-कलहमें परास्त हो कर नष्ट हो जायेंगे अथवा इनकी संख्या नगण्य होनेके कारण बाकीकी बाहरी प्रजामें वे लुप्त हो जायेंगे।

उत्तर अमेरिकामें ब्रिटिश, आयरिश, फ्रेंच, जर्मन, यहूदी आदि अनेक जातियां जा बसी हैं। दक्षिण अमेरिकामें स्पेनिश, पुर्तगीज, फ्रेंच, डच आदि दूसरी यूरोपीय प्रजा जा बसी है, जिन्हें लैटिन प्रजा कहते हैं।

उत्तर अमेरिकाके बीचके भागमें युनाइटेड स्टेट्सका जो देश है, वह इतना प्रभावी है कि जब लोग 'अमेरिका, अमेरिका' कहते हैं, तब युनाइटेड स्टेट्सका ही बोध होता है।

इस युनाइटेड स्टेट्समें और उसके उत्तरके कनाडामें जो यूरोपके लोग जा बसे हैं, वे सब अपनी-अपनी भाषा छोड़ कर अंग्रेजीके द्वारा ही अपना सब काम करने लगते हैं। कनाडामें फ्रेंच-भाषाका भले ही अस्तित्व हो, प्रधानता तो अंग्रेजीकी ही है। ये सब लोग किसी-न-किसी पंथके ईसाई ही हैं।

इस तरह अमरीकामें यूरोपकी ईसाई-धर्मी, गोरी प्रजा अंग्रेजी-भाषाके सहारे एक प्रजा हो चुकी है। यूरोपके अन्दर जो वंशभेद है, राष्ट्रभेद है, उनको दबा कर ये सब लोग मिल कर अमेरिकन राष्ट्र हुए हैं।

यूरोपकी जो यहूदी प्रजा अमेरिकामें जा बसी है, वह भी अमेरिकन तो हुई है, लेकिन ईसाई लोगोंके मनमें यहूदी जातिके प्रति जो धार्मिक अलगाव है, वह कभी-कभी सिर ऊंचा करता ही है। यहूदी लोग ईसाइयोंके साथ कुछ घुलमिल तो गये हैं, लेकिन पूरे-पूरे नहीं।

अमेरिका जैसे नये देशमें खेतीकी और दूसरी मजदूरी करनेके लिए यूरोपियन लोगोंने अफ्रीकाके नीग्रो लोगोंको गुलामके तौर पर अमेरिकामें ला बसाया, तब इतनी बड़ी संख्यामें नीग्रो लोगोंको किसी भी सूरतमें अपने साथ बसाना खतरनाक है, इसकी ओर उनका ध्यान नहीं गया। अब जब नीग्रो लोग स्वतन्त्र हो गये हैं, शिक्षा पा कर सिर ऊंचा कर रहे हैं, तब अमेरिकामें नये-नये सवाल पैदा हो रहे हैं।

एक बात ध्यानमें रखनी चाहिए। अफ्रीकाके जो नीग्रो लोग अमेरिका जा बसे, उन लोगोंने अपनी भाषा छोड़ दी, अपना धर्म छोड़ दिया। अन्दर-अन्दरके जो असंख्य वंशभेद (Tribal differences) थे, उन्हें भी छोड़ दिया। अपनी चमड़ीका रंग, और चेहरेका आकार तो बदल नहीं सकते थे। उन्होंने ईसाई धर्मको स्वीकार किया, अंग्रेजी भाषाको स्वीकार किया, गोरोंका रहन-सहन पूरा-पूरा अपना लिया और जब-जब गोरोंकी कामवासना प्रबल हो उठी, तब-तब उनके रक्तको भी स्वीकार किया। गोरोंके साथ एकता साधनेका एक भी प्रयत्न नहीं छोड़ा, तो भी उन्हें अलग ही रखा जाता है।

नीग्रोके अलावा कई जापानी, चीनी और भारतीय अमेरिकामें जा कर बसे हैं। इनमेंसे चन्द लोग ईसाई हो गये हैं। बहुत-से घर पर भी अंग्रेजी बोलते हैं। फिर भी यूरोपियन लहूके अमेरिकन लोगोंने इन्हें पूर्णरूपसे अपनाया नहीं। ये अलग गिने जाते हैं, अलग रहते हैं और अनेक कठिनाइयां सहन करते आये हैं। कानूनन् अथवा अमेरिकन विधानके अनुसार ये सब अमेरिकन लोग ही हैं। लेकिन यूरोपियन लोगोंका जातिभेद इतना अधिक है कि वे गैर-गोरोंको अपनानेको राजी नही हैं। हालांकि सामाजिक मानस-भेद कायम करनेके पक्षमें हैं और उनका राजनीतिक तत्त्वज्ञान भेद को सहन नही कर सकता।

आजकल जापानी, चीनी, भारतीय आदि रंगीन प्रजाके लोगोंको अमेरिकामें प्रवेश आसानीसे नही मिलता। इने-गिने लोगोंको ही बहुत मुश्किलसे आने देते हैं क्योंकि गोरोंका निश्चय है कि उत्तर और दक्षिण अमेरिका, आस्ट्रेलिया और अफ्रीकाका अनुकूल भाग गोरोंकी ही बस्ती और विकासके लिए अंकित रखा जाय।

लेकिन, जो नीग्रो आदि मजदूर किसी समय गोरोंके ही प्रयत्नसे और गोरोंके ही लाभके लिए अमेरिका जा बसे हैं, उनका क्या किया जाय।

चन्द गोरे लोग जाहिर तौर पर नहीं, लेकिन दबी आवाजमें कहते हैं कि इस सवालकी चर्चा करना व्यर्थ है। गोरोंका और काले नीग्रोका रक्त-मिश्रण कोई चाहे या न चाहे, हो ही रहा है। सौ-पांच सौ वर्षके अन्दर यह मिश्रण इतना बढ़ता जायगा कि नीग्रोका सवाल ही लोग भूल जायगे। ऐसे संकटसे जो डरते हैं, वे कहते हैं कि 'यह मिश्रण आयन्दा इकतरफा होनेवाला नहीं है। मिश्रण ज्यादातर अनुलोम होता है, लेकिन प्रतिलोम मिश्रणको आप रोक नही सकते। फिर तो जिस तरह भारतमें सब रंगोंके लोग पाये जाते हैं, वैसे ही अमेरिकाकी हालत होगी।' दूसरे कहते हैं कि 'इसमें बुरा क्या है? भारतका तो कोई नुकसान नही हुआ। भारतमें वैज्ञानिक शिक्षाका आभाव है। लोकसंख्या पर नियन्त्रण नही है। और, कलतक भारत परतन्त्र था। इन तीन कारणोंसे भारतका नुकसान चाहे जितना हुआ हो, वंशसंकरके कारण भारतका कोई नुकसान हुआ है, ऐसा नही दीख पड़ता।" (आश्चर्यकी बात यह है कि जिस भारतमें शास्त्रकारोंने संकरका अधिक-से-अधिक विरोध किया, उसी भारतमें चमड़ीके रंगके सब प्रकार अधिक-से-अधिक पाये जाते हैं। और देशोंमें इतना नही है।)

३० सितम्बर, १९५८ ई०

३८. अमेरिकाका वायुमंडल

अमेरिकाकी सारी पूरी हालत ध्यानमें रख कर ही हमें उन छह-सात लाख भारतीयोंका विचार करना है, जो उत्तर और दक्षिण अमेरिकाके बीच जा कर बसे हैं।

ये लोग जहां बसे हैं, उस सारे प्रदेशमें गोरोंकी संख्या बहुत कम है। जो हैं, सो ज्यादातर नीग्रो, भारतीय, जापानीज, चीनी इत्यादि रंगीन प्रजा और थोड़े आदिवासी। इनमेंसे नीग्रो लोगोंने शुरूसे ही ईसाई धर्म और अंग्रेजी भाषाको स्वीकार किया है और शिक्षा पा कर राज्य चलानेमें अपना हिस्सा अदा कर रहे हैं।

गोरोंकी और नीग्रो लोगोंकी अपेक्षा यह है कि भारतसे जो छह-सात लाख लोग गिरमिटियाके तौर पर असलमें वहां जा बसे, वे भी अगर दूसरे यूरोपियनोंके समान अंग्रेजी भाषाको ही स्वीकार करें, तो उन्हें सबके साथ एक प्रजा बननेमें कठिनाई नही रहेगी। भाषामें, खानपान और पोशाकमें, रहन-सहनमें और शादी-ब्याहमें अगर ये लोग औरोंके साथ घुलमिल जायं और अपना धर्म अलग रखें, तो किसीको आपत्ति नही है। लेकिन, ईसाइयोंका धर्म-प्रचार इतना जबरदस्त है और ईसाई बननेमें सहूलियत भी इतनी है कि चन्द भारतीय मानने लगे हैं कि ईसाई बनना और स्वभाषाके तौर पर अंग्रेजीको मंजूर करना यही बुद्धिमानीका काम है। दूसरे कहते हैं कि हम इस देशके बाशिंदे तो बन चुके हैं, नागरिकके अधिकार भी हमें प्राप्त हैं; लेकिन हम अपना धर्म क्यों छोड़ें? प्रतिकूल-म-प्रतिकूल परिस्थितिमें भी हमने अपना धर्म नहीं छोड़ा। अब जब हम सिर ऊचा कर सके है और आजाद भारतके साथ हम अपना सांस्कृतिक सम्बन्ध भी फिरसे जोड़ सकते हैं, तब हम अपना धर्म क्यों छोड़ें? (अपना धर्म माने सनातन धर्म, आर्यधर्म, सिक्खधर्म, इस्लाम-धर्म आदि अपने-अपने धर्म)। भारतीयोंमें धर्मकी अनेकता होनेके कारण उनको एक करनेवाला तत्त्व तो भारतीय संस्कृति ही है। फिर, इसमें ईसाई भी शरीक हो सकते हैं। अपने-अपने धर्मका पालन करते हुए भारतीय संस्कृतिका स्वीकार और विकास अगर वे कर सकें, तो उनका व्यक्तित्व, उनकी संस्कारिता और भारतके साथका सांस्कृतिक प्रेम टिक सकता है। इसमें यह भी ध्यानमें रखना चाहिए कि यहां खानपानका कोई बड़ा सवाल है नहीं। मांस-मदिराके सेवनमें भारतीयोंका औरोंके साथ कोई विशेष भेद नहीं रहा। लिबासमें भी अब कोई विशेष भेद नहीं दीख पड़ता। सिर्फ विशेष समारम्भके समय भारतकी संस्कारी स्त्रियां सुन्दर-सुन्दर साड़ियां पहनती हैं, और सबका ध्यान आकृष्ट कर सकती हैं।

हिन्दी तो बहुतोंकी छूट गई है। घर पर भी बहुतसे लोग शुद्ध या अशुद्ध अंग्रेजीमें बोलते हैं। प्राथमिक शिक्षा सरकारकी ओरसे अंग्रेजीके द्वारा ही दी जा सकती है। ऐसी हालतमें व्यवहारवादी लोग भारतीय संस्कृतिके प्रति हृदयकी

गहराईमें रहे हुए प्रेमके कारण ऐसा अंग्रेजी-साहित्य पढ़ते हैं, जिसमें भारतका इतिहास, भारतका तत्त्वज्ञान, भारतके रस्म-रिवाज, त्योहार, भारतकी चित्रकला, स्थापत्य और मूर्तिकला, भारतका संगीत ये सब बातें व्यक्त हुई हों।

जिनके मनमें अपने-अपने धर्मका अभिमान है, वे सब धर्मकी बातें समझनेके लिए और धार्मिक साहित्य पढ़नेके लिए हिन्दी पढ़ना चाहते हैं। लेकिन, उनको किसी भी भारतीय लिपिका परिचय नहीं है। वे कहते हैं कि, 'हम हिन्दी कैसे पढ़ें? भारतके बारेमें आसान अंग्रेजी-साहित्य कम है। हमारे पुरखे हिन्दी बोलते थे; वह भले ही बिहार, उत्तरप्रदेश या पंजाबकी तरफकी गांवकी बोली हो, लेकिन उनकी बदौलत हम हिन्दी कुछ-कुछ समझ सकते हैं। टूटी-फूटी हिन्दी कभी बोल भी लेते हैं। लेकिन, हिन्दीकी किताबें पढ़ नहीं सकते।"

मैंने ऐसोंसे कहा कि "आपके लिए हम अंग्रेजीकी लिपिमे (जिसे रोमन या लैटिन लिपि कहते हैं) चन्द हिन्दी-किताबें छपवा कर दे सकते है। लेकिन हिन्दीका विशाल साहित्य तो नागरी-लिपिमे ही उपलब्ध हो सकता है। मुसलमानोंके लिए उर्दू-लिपि सीखनेके बाद ही उर्दू-साहित्य खुला हो सकता है। इसलिए आप लोगोंको अगर हिन्दी पढ़नेमे प्रगति करनी है, तो नागरी-लिपि सीखे विना चारा नहीं। रोमन-लिपिमें थोड़ी-सी हिन्दी किताबे हम देंगे जरूर, ताकि हिन्दी पढ़नेका आपका शौक बढ़े। फिर ऐसी भी चंद हिन्दी-किताबें दे सकेंगे, जिसमें एक ही मजमून नागरी-लिपिमें भी होगा और रोमन-लिपिमे भी। इस तरह रोमन-लिपिके द्वारा हिन्दी और उर्दू दोनों शैलीका परिचय होनेके बाद यहांकी लिपि सीखनेका आपका उत्साह बढ़ेगा। तब आपको ऐसी पाठ्य-पुस्तकें (दरसी किताबे) देंगे, जिनके द्वारा आप प्रथम रोमन-लिपिके सहारे और बादमे नागरी या उर्दू-लिपिके सहारे भारतके बारेमे अपनी जानकारी बढ़ा सकेंगे।

"अमेरिकाका विशाल समाज देखते आपकी प्रधान भाषा तो अंग्रेजी ही होगी; लेकिन सांस्कृतिक भाषा हिन्दी या हिन्दुस्तानी सीखनेसे ही आपको भारतवर्षकी जानकारी अधिक-से-अधिक हो सकेगी और भारतके साथका आपका सांस्कृतिक सम्बन्ध कायम रहेगा।"

डच गियानामें प्राथमिक शिक्षा अंग्रेजीकी जगह डच भाषामें दी जाती है। वहांके विद्यार्थियोंको डच, अंग्रेजी, फ्रेंच, जर्मन और स्पेनिश ये पांच यूरोपियन भाषाएं सीखनी पड़ती है। वहां राज हॉलैंडका है। लोकसंख्या ज्यादातर क्रियोल यानि नीग्रो लोगोंकी है। चीन और जावाके भी थोड़े लोग हैं। थोड़े आदिवासी तो हैं ही। भारतके लोग आजीविका प्राप्त करनेके उपरान्त आर्यसमाजी और सनातनी मतभेदोंकी चर्चामें मशगूल रहते हैं।

परदेशके आंतरिक सवालोंमें भारत-सरकार हस्तक्षेप करेगी, तो अनुचित होगा। और, वहांके लोगोंकी स्थानिक नागरिकता भी कमजोर होगी। अपने-अपने

देशकी नई जागृत संस्कृतिके निर्माणमें अपना भारतीय हिस्सा अदा करना यही वहांके भारतीयोंका स्वधर्म है। उसमें हम जितने सहायक हो सकते हैं, अवश्यमेव होंगे।

३० सितम्बर, १९५८ ई०

३९. नायगराका प्रपात—१

अमेरिका जाना और नायगराका विश्वविख्यात प्रपात न देखना दुर्दैवकी परिसीमा गिनी जायगी। सिर्फ एक ही सवाल ले कर यूनाइटेड स्टेट्समें दो सप्ताह भ्रमण करनेके कार्यक्रममें नायगरा बैठ नहीं सका और हमें यह मायूसी कबूल करनी पड़ी। फ्लॉरिडाका मुख्य शहर मायामीसे न्यूयार्क तक, अमेरिकाकी पूर्व तरफका, यानी यूरोपकी तरफका, दक्षिणोत्तर हिस्सा देख लिया और हिन्दुस्तान लौटनेकी ठानी। सब-की-सब बातें मनुष्यके भाग्यमें कहां लिखी हुई होती हैं?

लेकिन, जहां मनुष्य हार कबूल करता है, वहां भाग्य वैसा करनेसे इनकार करता है। हमारे पन्द्रह दिनके बाद तीन अधिक दिनोंकी मुहलत मिल गई और हमने अपने पुराने मित्र, तत्त्वज्ञानके अमरीकी प्रोफेसर और बौद्धधर्मके विज्ञ प्रो० बर्टसे मिलने इथका जानेका निश्चय किया। याद नहीं, हमने वाशिंगटनसे उन्हें ट्रंककॉल किया या बाल्टीमोरसे, और कहा कि आपसे मिलने हम आ रहे हैं। हमारे समयका अभाव देख कर वे स्वयं कष्ट उठा कर न्यूयॉर्क आनेवाले थे। जब उन्होंने सुना कि हम उनके घर पर ही उन्हें मिलने जायेंगे, बड़े खुश हुए और बर्ट-दम्पती ने वादा किया कि एक दिन हम आपको अपने घर पर पूरा-पूरा आराम देंगे, आस-पासका मुल्क दिखायेंगे और दूसरे दिन पौने दो सौ मीलकी यात्रा घरकी मोटरसे करके आपको नायगराका प्रपात भी दिखायेंगे। भगवान्‌से अन्धा कहता है एक आंख दे और भगवान् कहता है दो ले, ऐसी हमारी हालत हो गई।

हम न्यूयॉर्कसे हवाई जहाजमें बैठ कर बिंगहेम्प्टन हो कर इथका पहुंच गये। उसी दिनकी शाम और रात हम लोगोंने बौद्ध धर्म, जैन धर्म और शांकर वेदान्तके समन्वयकी बातें करनेमें और विश्वशान्तिकी खोजमें दुनिया क्या-क्या कर रही है, इसकी चर्चामें व्यतीत कीं। जिस एक छोटेसे प्रपातके मंजु-मधुर कलरवने हमारा चित्त अस्वस्थ कर दिया, वह इथका फॉल्स नामका प्रपात नेड़के घरके नजदीकसे ही गाता जाता है। (प्रोफेसर बर्टके साथ हमारी घनिष्ठता देखते-देखते इतनी बढ़ गई थी कि मैं उन्हें 'नेड़' कह कर पुकारने लगा। और, मेरे नामकी साहेबवाली दुम आप-ही-आप गिर पड़ी।)

दूसरे दिन हमने इथका फॉल्सका दर्शन किया। उसके बाद कॉर्नेल-यूनिवर्सिटी

का विशाल भूमिखण्ड देखने गये। इसी यूनिवर्सिटीमें प्रो० बर्ट तत्त्वज्ञान-विभागके अध्यक्ष हैं और हमारे बालने दस बरसके पहले इसी यूनिवर्सिटीमें इंजीनियरिंगका विषय ले कर डॉक्टरेट हासिल की थी।

भोजनके बाद हम यहांका विशाल अच्छोद सरोवर देखने गये, जिसका नाम था कायुगा (Cayuga) और उसीकी एक बाजू पर दूसरा एक सुन्दर प्रपात देखने हम गये, जिसको कहते हैं 'हाय फॉल्स'। उसका भौगोलिक नाम है टॉगेनॉक (Taughannock), लेकिन इस सरोवरका और प्रपातका आनन्द इतना अजीब था कि इसका वर्णन किसी अलग प्रकरणमें ही देना उचित होगा।

इथका और टॉगेनॉक फॉल्स दोनोंका दर्शन मानो नायगराके दर्शनकी पूर्व तैयारी ही थी। दो रातका पूरा आराम लेनेके बाद हम 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' कह कर एक विश्वरूप-दर्शनके लिए निकले।

अमेरिकामें रास्ते अच्छे होते ही हैं। लेकिन, विशेष बात तो यह कि इन रास्तों की पूरी जानकारी देनेवाले ब्योरेवार नक्शे भी जगह-जगह रास्तेमें मिलते हैं। और रास्ते पर नम्बर, निशानियां आदिकी सुविधा इतनी होती है कि हजारों मीलकी यात्रा आप किसीसे पूछे बिना और कहीं भी रुके बिना सही-सलामत कर सकते हैं। भूगोल और खगोलकी बातें समझनेके लिए नक्शोंका इस्तेमाल करनेकी मुझे पहलेसे ऐसी आदत पड़ गई है कि नक्शे ही सचमुच मेरी आंखें बन गये हैं। मित्र कभी-कभी कहते हैं कि 'तुम्हारा दिमाग भी नक्शोंका ही बना हुआ है।'

इस पौने दो सौ मीलकी यात्रामें हम लोगोंने अमेरिकाके गाव, देहात, वहांके छोटे-छोटे सुन्दर घर और उसमें रहनेवाली तन्दुरुस्त प्रजाका अच्छा दर्शन किया और कहीं-कहीं इरादतन मुख्य रास्ते छोड़ कर कच्चे रास्तेसे जा कर भारतके जैसा थोड़ा-सा अनुभव भी किया। और, दोपहरके चार बजेके पहले ही नायगरा पहुंच गये।

नायगराके प्रपातका दर्शन होनेके पहले ही उस प्रपातके वेगसे बिजली पैदा करके उस प्रदेशमें चलनेवाले अनेक कारखाने हम देख सके। इन कारखानोंकी बदौलत देशकी दौलत चाहे जितनी बढ़ती हो, उनका दर्शन मेरे जैसे क़ुदरत-प्रेमी को प्रसन्न नहीं कर सका।

वाशिंगटनमें ही हमारे अनुभवी मित्रोंने हमें कह रखा था कि नायगराका दर्शन करते बीचमें एक राजनीतिक झंझट आती है। उसका इलाज करके ही आगे जाना होता है। यूनाइटेड स्टेट्स और कनाडा इन दो देशोंके बीचमें नायगरा नदी बहती है। यह नदी ही काफी दूर तक इन दो देशोंके बीच सीमाका काम करती है। अब अगर पासपोर्ट वीसाका पूरा प्रबन्ध किया, तो एक पुल लांघ कर अमेरिकासे कनाडामें जा सकते हैं। भारतके नागरिकको कनाडा जैसे कॉमनवेल्थ देशमें जानेके लिए वीसा की जरूरत नहीं है। नायगरा-प्रपातका सौंदर्य देखना हो, तो कनाडाकी बाजूसे ही

देखना चाहिए। इसमें तो कोई बाधा नहीं आयगी। लेकिन, जिस पुल परसे गये, उसी पुल परसे लौट कर अमेरिकामें प्रवेश करनेके लिए नये अमेरिकन वीसाके बिना चलेगा नहीं। बाकायदा वीसा प्राप्त करते न जाने कितने दिन चले जायेंगे। वहीं पर फंस पड़ेंगे। इसलिए पुल लांघनेके पहले ही जाने-आनेकी खास इजाजत ले रखनी चाहिए।

इतनी पूर्वसूचना मिली थी सही, लेकिन नायगरा-प्रपातके नजदीक आते ही उसकी मेघगर्जना और उसका जादुई दर्शन दिमागमें ऐसा भर गया कि बेचारी सूचना विस्मृतिके कोनेमें कहीं दबी पड़ी रह गई। चि० सरोजने दबी आवाजसे पूछा, वीसाकी कुछ मुश्किल तो नहीं आयेगी? लेकिन, उस ओर ध्यान किसका जाय?

हम पुल लांघ कर कनाडाके किनारे पहुंच गये। तब साक्षात्कार हुआ कि हम बुरी तरह फंस पड़े हैं। श्रीमती बर्टने इसके पहले नायगराका दर्शन नहीं किया था। हमने उनसे कहा कि आप दोनों जा कर दर्शनका आनन्द ले आइए। हम पुल पर से जितना दिखाई देगा, उसीसे संतोष मानेंगे। उन दोनोंने कहा, 'यह तो हो नहीं सकता। आपको छोड़ कर हम कहीं जानेवाले नहीं।'

अब सवाल सही-सलामत लौटनेका था। कनाडावालोंने तुरन्त एक छपा हुआ सर्टिफिकेट हमें दे दिया कि ये लोग कनाडामें प्रवेश करना चाहते थे, लेकिन लौटते वीसाकी कठिनाई देख कर यों ही लौट रहे हैं। इस सर्टिफिकेटके बल पर हम पुल पर से लौटे और अमेरिकन दफ्तरमें पहुंच गये और वहांके कर्मचारियोंको हमने सारा हाल सुनाया। उन्होंने कहा, 'पहले हमारे पास ही आपको आना चाहिए था। हम सब कुछ आसान कर देते। अब ठहरिए कुछ रास्ता निकालता हूं।' भले आदमीने फोन पर कनाडावालोंसे कुछ बातचीत की और हमारा रास्ता साफ हो गया। और, हम नायगरा-प्रपातका दर्शन करनेके लिए पूरे विश्वासके साथ कनाडामें प्रवेश कर सके।

o o o

एक सरोवरसे निकल कर दूसरे सरोवरमें गिरनेवाली एक नदी हमने देखी थी बेल्जियम कांगोके रुआंडा-उरुंडी प्रदेशमें। वह नदी है छोटी-सी, लेकिन दो बड़े पहाड़ोंके बीच रास्ता निकालती, फलांग मारती, कूदती जाती, बड़ी सुहावनी लगती है। उस नदीका नाम है रुझीजी। किवू सरोवरसे निकल कर विशाल टांगानिका सरोवरमें जा पहुंचती है। नायगरा नदी भी बफेलो शहरसे नजदीक एरी (Erie) सरोवरसे निकल कर बत्तीस मील प्रवासके बाद कनाडाके विख्यात सरोवर ओंटारियो (Ontario) में जा गिरती है।

हम कह सकते हैं कि यही नदी आगे जा कर, सेन्ट लॉरेन्टका नाम धारण कर किंग्स्टन, मोन्ट्रीयल और क्यूबेक जैसे शहरोंकी सेवा करते हुए विशाल और

विशालतर हो कर समुद्रको जा मिलती है। न्यू ब्रुन्सविक, नोवास्कोशिया और न्यू-फाउलैंडके बीच इस नदीका जो विशाल आखात बनता है, ऐसी भव्यता शायद ही दूसरी किसी नदीको मिलती होगी।

बफेलोसे पच्चीस मीलका प्रवास करनेके बाद इस नदीके भाग्यमें एक सौ साठ फुटका अधःपात बदा हुआ है। एक छोटेसे टापूने नदीसे कहा, 'गिरना ही है, तो दो हिस्सोंमें बंटकर गिरो।' उसने मान लिया और नायगराके दो प्रपात हुए। जो बड़ा है, उसकी चट्टान अर्धचन्द्राकार है। इस परसे गिरते नायगरा हर तरहकी शोभा बता सकता है। दूसरा प्रवाह टापूके दाहिनी ओर हो कर गिरता है, उसे अमेरिकन फॉल्स कहते हैं। और, पहले चन्द्रभागा विभागको वहांके अरसिक लोग Horse-shoe Falls कहते हैं। घोड़ेके नाल बड़े सौभाग्यकी निशानी माननेवाले लोगोंको अपने विश्वविख्यात प्रपातको Horse-shoe Falls कहते संकोच क्यों हो? अर्ध-चन्द्राकार या नालाकारवाले प्रपातका सिर दो हजार छह सौ फुटका विस्तारी है। दाहिनी ओरके अमेरिकन प्रपातकी चौड़ाई एक हजार चार सौ फुटकी है।

इस प्रपातकी एक खूबी यह है कि नदीका पानी एक बड़े सरोवरसे आनेके कारण पानीमें मिट्टीकी गन्दगी नहीं होती। मिट्टी, कीचड़ आदि सब ऊपरके सरोवरमें रह जाते हैं और शुद्ध गहरा हरा पानी प्रपातके रूपमें कर्पूरधवल बन जाता है। नायगराका प्रपात दुनियामें सबसे ऊंचा तो है नहीं। गिरसप्पाका जोग-प्रपात अधिक-से-अधिक, नौ सौ साठ फुट है। अभी-अभी देखा हुआ केचूरका प्रपात सात सौ इकतालीस फुटका है। इनके सामने नायगराका एक सौ साठ फुटका प्रपात कुछ हिसाबमें नहीं। लेकिन, पानीका इतना बड़ा जत्था ले कर गिरनेवाला प्रपात नायगराके जैसा दूसरा नहीं है। एक निमिषमें, एक सेकेंडमें यह प्रपात दो लाख बाईस हजार घनफुट जितना पानी ले कर गिरता है।

इस सारे पानीके अधःपातसे बिजलीकी पूरी शक्ति तैयार करने गये, तो वह चालीस लाख अश्वत्थामाकी शक्ति होगी। इतने बड़े अधःपातके अंतमें सात मील का प्रवास करनेके बाद उस पानीको फिरसे नीचे गिरना पड़ता है।

जिस चन्द्राकार चट्टान परसे यह प्रपात गिरता है, उस चट्टानका हिसाब आज तिरेसठ बरस हुए, बाकायदा रखा गया है। पता चलता है कि यह चन्द्राकार चट्टान इन ६३ बरसोंके अन्दर पानीके प्रवाहसे घिस-घिस कर ३३५ फुट पीछे हटी है।

तिरेसठ बरसका हिसाब तो हुआ, लेकिन यह नदी इस प्रदेशमे कितने सालोंसे बह रही है? भूस्तरशास्त्रके वैज्ञानिक कहते हैं, सारा हिसाब लगाते मालूम होता है कि इस नदीकी उम्र करीब पच्चीस हजार बरसकी जरूर है। इस नदीके बारेमें और उसके प्रपातके बारेमें यह सब जरूरी जानकारी देनेके बाद अब हम नदीके उन्मादका और अपने दर्शनानन्दका वर्णन करनेके लिए आजाद हो गये।

४०. नायगराका प्रपात—२

जिस नायगराके बारेमें बचपनसे सुनते आये थे, जिसका वर्णन किताबोंमें और यात्रियोंके मुंहसे सुना था, जिसके कई फोटोग्राफ ध्यानसे देखे थे, और जिसके प्रत्यक्ष दर्शनकी आशा अबकी बार और सदाके लिए छोड़ भी दी थी, उस नायगराको आकण्ठ—आ-उभयनयन देखनेका क्षण आते ही सबसे पहली भावना धन्यता की थी। हर साल जिसे पन्द्रह-बीस लाख लोग देख कृतार्थ होते हैं, उनके अन्दर हम भी अब शरीक हो गये, इसकी धन्यता तो थी ही; लेकिन सबसे बड़ा आनन्द तो अधःपातमें भी उल्लास और आनन्द दिखानेवाले विश्वरूप-दर्शनका था।

मैं कह चुका हूं कि पुल परसे अर्धचन्द्राकार प्रपातका उत्तम दर्शन हुआ और अमेरिकन प्रपातका भी एक बाजूसे दर्शन हुआ। इसीसे प्राथमिक सन्तोप तो हो ही गया। लेकिन, अब तो ऐसे आश्वासन मात्र सन्तोषसे सन्तोष माननेकी आवश्यकता नहीं थी। हमारे स्नेही नेड बर्ट पुलके उस पार जा कर हमें बाईं ओर ले गये। सद्भाग्यसे तैलवाहन (मोटर) को उसके स्थान पर रखनेकी सुविधा हमें आसानीसे मिली। अमेरिकामें मोटरोंकी तादाद इतनी है कि एक शहरसे दूसरे शहर जानेमें तो समय कम लगता है; किन्तु मोटरके लिए विराम-स्थान ढूंढ़ते कभी-कभी कई गुना अधिक समय देना पड़ता है। इथकासे नायगरा तक १७५ मीलकी दौड़ करनेवाली मोटरको हमने 'भद्रमस्तु ते' कह कर आशीर्वाद दिया और पानीकी विविध लीला देखनेवाले असंख्य नर-नारियोंके समुदायमें शरीक हो गये। सहूलियत इसीमें थी कि चि० सरोज और मैं साथ-साथ सारी शोभा देखते जाएं और अपने आनन्दका विनियम करके उसे वृद्धिगत करें। नेड और मार्जरी भी इसी तरह अपना सह-लीलानन्द द्विगुणित करनेके लिए स्वतन्त्र हो गये। आनन्दकी पूरी-पूरी अभिव्यक्ति परभाषामें नहीं हो सकती, इसलिए भी हमें अलग-अलग होनेमें सुविधा मालूम हुई। लेकिन, हम एक-दूसरेसे इतने दूर तो थे ही नहीं कि खास बातें करनी हों, तो हम तुरन्त कर न सकें।

मेरी आदत है कि मैं भगवान्का दर्शन कभी केवल मूर्तिमें नहीं करता। मूर्ति को देखते जैसा मुझे दर्शनानन्द, ध्यानानन्द मिलता है वैसा ही आनन्द औरोंको भी मिलता हुआ उनकी आंखोंमें, उनके चेहरे पर देखे बिना मेरा दर्शनानन्द पूर्ण नहीं होता। और यहां पर तो सफेद, काले, गेहुंए और पीले सब तरहके लोग भाषाभेद और जन्मभूमि-भेद भूल कर जीवनानन्दमें अभेद भावसे तल्लीन हो रहे थे। और, इससे होनेवाली गुदगुदियां भी हृदयको दबानेके बदले प्रपातके तालके साथ समताल हो कर नाच रही थीं।

हम कुछ आगे बढ़े और अमेरिकन प्रपातके सामने जा पहुंचे। इस प्रपातका पानी चन्द्र-प्रपातके पानीसे सिर्फ दसवां हिस्सा ही भले हो, लेकिन उसकी भव्यता

तनिक भी कम नहीं थी। प्रपातकी एक बाजू ग्रेट द्वीप (Great Island) पर अमेरिकाका झण्डा हवामें फहर रहा था।

किसी भी प्रपातमें जब पानी गिरता है, तब देखते-देखते पारदर्शक पानी सफेद हो जाता है। फिर तो मानो आटा ही गिर रहा हो, ऐसा दृश्य देखनेमें आता है। जहां सूर्यप्रकाश अनुकूल हो, वहां ऐसा भास होता है मानों चांदीका रस ही नीचे गिर रहा है। लेकिन, सारे दृश्योका कैफ या उन्माद इसलिए चढ़ता है कि पानी गिरते समय उसमें नये-नये उबाल आते रहते हैं। अथवा सच कहें, तो नये-नये उबाल उतरते जाते हैं। उन पर ध्यान करनेसे ऐसा ही मालूम होता है कि कवयित्री सृष्टि-को नये-नये खयाल सूझ रहे हैं। उसके हृदयमें नई-नई कल्पनाएं उमड़ रही हैं। पानीकी धाराएं एक-दूसरे पर जब गिरती हैं, तब उनकी परेशानी कुछ और ही होती है। ऊंचाईसे पानीका नीचे गिरना कोई मामूली बात नहीं होती। वह तो हवाके साथ अथवा हवाके खिलाफ चलनेवाला सनातन युद्ध ही होता है। पानीकी अपेक्षा हवा ज्यादा अहिंसक सही; लेकिन गिरनेवाले पानीका विरोध करके हवा उसे धुनक देती है। फिर तो पानीकी धाराके पहले बूंदे बनती है। बूंदोंसे सीकर बनते है। सीकरसे तुषारबिन्दु बनते हैं। और फिर, तो हवाकी ठण्डक बढ़नेसे उन बिंदुओंका व्यक्तित्व नष्ट हो कर उसका तुहिन या कुहरा बनता है। और फिर, मानो भापने अपना स्वभाव ही बदल दिया हो, इस तरह सारी चीजोंके बादल ऊपर उठने लगते है। ये बादल भी ऊपरसे आनेवाली नई-नई धाराओंके साथ लड़ लेनेका आनन्द छोड़ते नही। फलतः, प्रपातका मस्तक और उसकी शिखा तो स्पष्ट दिखती है, लेकिन उसके पांवके नख कभी किसीको दीख ही नही पड़े। अगर कोई कहे कि 'मैंने प्रपातका नखशिखान्त दर्शन किया', तो वह गलत होगा। प्रपातके पांवके आसपास हमेशा ठण्डे-ठण्डे बादल ही खौलते रहते हैं।

जहा प्रपात है, वहां न जाने कहांसे, दुनिया भरके पक्षी आ ही जाते हैं। ये द्विजगण कुदरतसे ही प्रपातका व्याकरण सीख लेते हैं। इसलिए उनको प्रपातका डर नही लगता। प्रपातके इर्द-गिर्द ये उड़ते रहते हैं। उसके सीकरमें नहा कर ताजे होते हैं। तरह-तरहकी वक्रगति और चक्रगति ले कर नाचते रहते हैं और कवियोंको समझाते हैं कि खाना ढूढ लेना यही एक मात्र हमारा व्यवसाय नहीं है। हम जैसे फूलोंसे अनुनय करते है, वैसे ही हवामें और तुषारमे स्नानानन्द और तरणानन्दका भी आस्वाद लेते है। और, जब यह आनन्द पेटमे नही समाता, तब गानके द्वारा उसे हवामे छोड़ देते हैं। वह भी जब सन्तोप नही देता, तब हम अपना किल-किलाहट कर देते है। और, इस तरहसे अपनी परेशानीको सुसह्य बना देते हैं।

यह हो गई द्विजगणोंकी बात। लेकिन, सूर्यके किरण भी इन सीकरोंके साथ टकरा कर छिन्न-भिन्न होते हैं। लेकिन, उससे मायूस होनेकी जगह वे एक विशाल सप्तवर्णी इन्द्रधनुष फैला कर कहते हैं 'इसका आनन्द तो अनोखा है।' आकाशके

इन्द्रधनुष कुदरतके अतिथि होनेके कारण उनका आगमन निश्चित नहीं होता। जब दर्शन हुआ, तबहुआ। न्यौता देनेसे इन्द्रधनुष आकाशमें खड़ा नहीं होगा, लेकिन जहां प्रपात है वहां पर इन्द्रधनुषका दर्शन अखण्ड होता है। गलती हुई, इन्द्रधनुष हमेशा दीख पड़ता है सही, लेकिन अखण्ड नहीं; तुषारके बादल जहां बढ़े, वहां इन्द्रधनुष दीख पड़ता है। बादल हट गये, तो इन्द्रधनुष खण्डित होता है। पर, उसे फिरसे प्रकट होते देर नहीं लगती। अगर कुहरा बढ़ गया और चारों ओर फैल गया, तो इन्द्रधनुषके साथ प्रतिधनुष भी साफ-साफ दिखाई देता है।

अमेरिकन प्रपातके सामने जब हम खड़े थे, तब इन्द्रधनुषकी शोभा पूर्णरूपसे विकसित नहीं हो सकी थी। जब हम चन्द्र-प्रपातकी ओरसे अमेरिकन प्रपातको देखने लगे, तब इन्द्रधनुषका सारा वैभव प्रकट हुआ। अमेरिकन प्रपातके नीचे एक बाजू पर तरह-तरहके पत्थर भी हैं। ये पत्थर प्राचीन ऋषिके जैसे अखण्ड स्नान करते रहते हैं। लेकिन, उनके सिर पर सेवाल नहीं जम सकता।

अरे, यह क्या? उस अमेरिकन प्रपातकी ओर ये बौद्धभिक्षु अपने पीले चीवर ओढ़ कर कहां जा रहे हैं? इतने भिक्षु आये कहांसे? मैंने नेड भाईसे पूछा—उन्होंने कहा कि उस ओर पानीमें तैरनेवाले लोगोंको बचानेके लिए जो सेवक रखे गये हैं, उनका गणवेश पीला होता है। ये बौद्धभिक्षु नही हैं, कसे हुए अमेरिकन तैराक हैं। भ्रमनिरास पर हम सब हंस पड़े और उस प्रपातकी ओर बिलकुल नजदीक ले जाने-वाली लोहेकी सीढ़ीकी ओर हम देखने लगे। हमारे पास समय होता, तो हम भी वहां जा कर कुछ स्वर्गारोहणका आनन्द ले लेते।

किसी पक्षीको गाते सुन कर जब उसके नजदीक जाते हैं, तब वह हमें देख कर संकोचवश या भयवश गाना बन्द कर देता है। किसी बालकको नाचते-कूदते देख कर जब हम उसके नजदीक जाते हैं, तब वह भी अपनी विस्रब्ध लीला छोड़ कर कुतूहलसे हमारी ओर ही देखता रहता है। प्रपातका ऐसा नही है। अनेक देशके हजारों नर-नारियोंकी आंखें इन प्रपात-युगलकी ओर लगी हुई होते हुए भी उसकी आनन्द-समाधि नष्ट-भ्रष्ट नहीं होती। लक्षावधि क्युसेक पानीकी इस अखंड गिर-कूदको हम समाधि कैसे कह सकते हैं, इसका कोई आश्चर्य न करे। समाधिकी अचल प्रतिष्ठा यहांकी अखंड गतिमें भी पाई जाती है। निर्वात जगह पर दीपककी ज्योति जैसी अनिङ्ग रहती है, उसी तरह क्षण-क्षण पानीका अमोघ फेंकता हुआ यह प्रपात भी घण्टों तक देखनेसे अनिङ्ग ही है, ऐसा अनुभव हुए बिना नहीं रहता। प्रकृतिकी यह सचमुच अद्भुत लीला है कि इतने दुर्दान्त वेगमें भी वह एक किस्म-की आनन्द-समाधि पैदा कर सकती है।

अब हम चलते-चलते चन्द्र-प्रपातके नजदीक आने लगे। चन्द्रकी तीनों बाजुओंका पानी नीचे एकत्र होनेसे वहां तो एक तरहका जलप्रलय ही होता रहता है। नदीका शांत पानी वेगके खिंचावमें फंस कर ऊपरसे जहां नीचे गिरता है, वहां उसका रंग

बिलकुल हरा-हरा दीख पड़ता है।

ऊपर कहा है कि प्रपातके पानीमें जब बारिशकी मिट्टी इकट्ठी होती है, तब पानीका स्रोत ऊपर धुंधला, गंदा-सा दीख पड़ता है। कुछ नीचे उतरते-उतरते उसमें सफेद-पीला रंग पैदा होता है और दोपहरके प्रकाशमें उसका रंग बिलकुल सोनेके जैसा चमकने लगता है। पानीकी यह खूबी हमने सबसे पहले अफ्रीकाके थीका-प्रपातमें देखी थी। उसीका स्वर्ण-वैभव अभी-अभी ब्रिटिश गियानाके कान्तारमें पोटारो नदीके केचूर-प्रपातमें देखनेका सौभाग्य हमें मिला था। यहां नायगरामें जैसा कि ऊपर कहा है नदीका पानी एक सरोवरसे आनेके कारण मिट्टी, कीचड़ आदि सब सरोवर अपने पेटमें रखता है और अपना विशुद्ध पानी ऊपरसे बहने देता है। इसलिए, यहांके प्रपातसे निर्मलता सघन होनेसे उसका नीला-हरा रंग अपनी सात्त्विक शोभा प्रकट करता है। कपूरको पीसनेसे जैसा सफेद रंगका चूर्ण हाथमें आता है, उसी तरह पानीको छिन्न-भिन्न करनेसे भी कर्पूर-धवलिमा कैसे पैदा होती है, यह अगर देखना है, तो गोवाके दूध-सागरमें ही देखनी चाहिए। ऐसे ही धवल रंगके बड़े-बड़े गट्ठे देखने हों, तो नायगराके इस प्रपातमें ही देखने चाहिए। ये गट्ठे ऊपरसे गिरते ही टूट जाते हैं और अन्दरका वायुमय सफेद रंग बादलोंका रूप धारण करके ऊपर उठता है और चारों ओर अपना शीतल आशीर्वाद सबको देने लगता है।

हम चलते-चलते चन्द्र-प्रपातके सिर तक पहुंच गये। वहां पानी निर्मल नील रंगसे बह रहा था और काफी गहरा होते हुए भी प्रवाह तलके सब पत्थर हम आसानीसे देख सकते थे। यहां पर भी पानीकी शोभा देखनेके लिए जितने हम द्विपाद इकट्ठा हुए थे, उतने ही सपक्ष द्विजगण भी मौजूद थे। फरक इतना कि हम किनारेसे देखते थे, वे पानीके प्रवाह पर हवामें तैरते-तैरते देख रहे थे। हम उनकी ईर्ष्या करते थे। हमारे बारेमें क्या सोचते होंगे, वे ही जानें!

जब पानीका परदा ऊपरसे नीचे गिरता है, तब उसके पीछे जा कर उसकी शोभा देखनेका और उस परदेमेंसे बाहरका प्रकाश कैसे आता है, यह देखनेका कुतूहल मनुष्यको जरूर होता है। एक मुनिको वेरूल-एलोराकी गुफाओंके पास वेलगंगाके प्रपातकी शोभा परदेके पीछे बैठ कर देखनेका सूझा। उसने दीवारमें एक गुहा खोद कर उसमें ध्यानमें बैठनेकी जगह बनाई। नायगराके प्रपातके पीछे जानेका मनुष्यको न सूझता तो आश्चर्य। यहां पर अमेरिकन लोगोंने एक विवर (Tunnel) खोद कर प्रवाहके पीछे जानेका रास्ता बनाया है। फीस देनेवालेको अन्दर ले जाकर वह सारी शोभा दिखानेकी व्यवस्था वहां पर की है। हमारे पास फीसके पैसे थे; लेकिन हमारा समय-दारिद्र्य महान् था। इसलिए हमने अपने मनोरथको नायगरामें विलीन करके दूसरा आनन्द लेनेकी ठानी।

जहांसे हम आये थे, उस बाजू जा कर एक छोटी पहाड़ी रेलके सहारे नीचेके

पानीके प्रवाह तक पहुंच कर हमने स्टीम लांच ले ली। उसका नाम भी कितना काव्यमय था—Maid of the Mist ! यानी तुषारबाला, तुहिनकन्या, कुहरा-कुमारी। इस जहाज पर सवार होते ही उन लोगोंने हरेक उतारूको चमड़ेका एक-एक-झब्बा पहननेको दिया, जिसके साथ माथा ढंकनेके लिए एक कनटोपी भी थी। जब नौका हमें ले कर प्रतीप गतिसे प्रपातकी ओर चली, तब ऐसा ही लगता था कि मानों हम यमराजके मुंहमें प्रवेश कर रहे हैं। दोनों तरफ कुदरतकी ऊंची-ऊंची दीवारें, एक बाजू पर अमेरिकी प्रपात और दूसरी बाजू पानीसे बिजली पैदा करने-वाला यन्त्रघर। यहांसे इन्द्रधनुषकी शोभा भी बदल गई। हम आगे चले और देखते-देखते 'धार' धुआंमें फंस गये। तुषारकी बौछार गुदगुदियां करने लगीं। जहां देखें पानी, पानीकी गिरती दीवारें। जहांतक हिम्मत चली, हमारी नौका आगे बढ़ती गई। अब तो हम चन्द्राकारके मध्यमें पहुंच गये। अब आगे बढ़ते तो जल-समाधि ही मिलती। प्रपातकी जलसमाधि देखना एक बात और प्रपातके नीचे जहाज ले जा कर जलसमाधि लेना दूसरी बात। इस तरह आनेवाले रोजके हजारों यात्रियोंमें एककी भी इच्छा जलसमाधि लेनेकी नही थी। जीवनानन्द पा कर चाहे जितना सन्तोष हो. जीवनका जीवनमें ही विसर्जन करनेका खयाल तो 'मनुष्याणाम् सहस्रेषु कश्चित्' को ही आ सकता है। सलामत रहते हुए प्रपातके उत्पातमें जहां-तक जा सकते थे, जा करके हम लौटे। इस अनुभवकी यादगारके लिए जहाजवालों ने हमें जहाजका एक चित्र भेंट दिया। हम सब यात्रियोंके मुंह पर धन्यताका आनंद तो था ही; लेकिन इस आनन्दके सहभागी अनेकानेक प्रसन्न मानवोंका दर्शन भी कम आह्लादक नही था। हमने यात्राका गणवेश या कलेवर उतार दिया और तुरन्त वही अनुभव लेनके इच्छुक और यात्रियोंने उसे उत्साहपूर्वक धारण किया। गीतामें, पुराने चोले उतार कर जीव नये चोले कैसे धारण करता है, उसका जिक्र आता है। यहां तो एक जीव अपना किराये पर लिया हुआ चोला उतारता है, तो तुरन्त दूसरा जीव उसीको पहनता है, इसका अनुभव हमने प्रत्यक्ष किया। इसे हम पर-काया-प्रवेश भी नहीं कह सकते। क्योंकि, यह काया किसीकी भी नही होती। किरायेका मामला। न जाने दिनमें कितने यात्री इस चोलेको चढ़ाते होंगे और उतारते होंगे।

चोला तो हमने उतार दिया, लेकिन जो आनन्द पाया था, वह तो उतारनेकी बात नही थी। उसकी मस्ती ले कर ही हम पहाड़ी ट्रेनमें सवार हुए और अपने तैलवाहनमें जा कर बैठे।

तैलवाहनमें हम चार थे। लेकिन, अब चार ही अकेले थे। अपने-अपने आनन्द का रोमन्थ (जुगाली) करते बातें करनेका किसीका भी जी ही नहीं चाहा। मन-मस्त हुआ, फिर क्यों बोलें ? उसी दिन अगर यह प्रकृतिमाताकी विभूतिका आनंद लिखने बैठता, तो नहीं लिख सकता। और, आज इतने दिनके बाद वह लिखने बैठा

हू, तब वह आनन्द-विभूति पूरी-पूरी उपस्थित नहीं हो सकती। इसे तो अनुगीता ही कहना चाहिए। इथका प्रपातसे जिस अनुभव-परम्पराका प्रारम्भ हुआ, उसकी परिसीमा जलयात्रामें हुई और उसका चिन्तन-मनन अमेरिकाके रास्ते नायगरासे बफेलो तक पचीस मील तक चला। उस चिन्तनमें सूर्यकिरणोंके तन्तु बुने गये, जिनके अन्दर हमारे आतिथ्यशील स्नेही दम्पती भाई नेड़ और मार्जरी बहनके प्रेम के बूटे सारे स्मृति-पटलको उठावदार करते रहे।

नायगराके प्रति अर्पण की हुई इस श्रद्धांजलिके साथ भगिनी निवेदिताके नीचे लिखे वचन जोड़ देना सर्वथैव उचित होगा—

"किसी भी स्थानकी रमणीयताने जब भारतवासियोंको आकृष्ट किया है, तब उसने फौरन उसका धार्मिक रूपान्तर कर ही दिया है। भारतका हृदय जब किसी अद्‌भुत, रमणीय या भव्य दृश्यको देखता है, तब तुरन्त उसको लगता है, कि यह तो गाय जैसे बछड़ेको पुकारती है, वैसे परमात्मा जीवात्माको पुकार रहा है। नायगराका प्रपात यदि हिन्दुस्तानमें गंगामैयाके प्रवाहमें होता, तो यहांकी जनताने उसका वायुमण्डल कैसा बना डाला होता? आमोद-प्रमोद और पिकनिककी टोलियोंके बदले और रेलके यात्रियोंके बदले प्रपातकी पूजा करनेके लिए वार्षिक यात्रियोंकी टोलियां ही यहां इकट्ठी होतीं। भोगविलासके सब साधन मुहैया करने वाले होटलोंके बदले प्रपातके किनारे या उसके बीचों-बीच उमड़े हुए हृदयकी भक्ति उंड़ेलनेके लिए बड़े-बडे मन्दिर बनाये गये होते। सृष्टिके वैभवको देख कर भड़कीले ऐश-आराम और शान-शौकतके बदले लोगोंने यहा तप किया होता। और, इतनी प्रचण्ड शक्तिको मनुष्यके फायदेके लिए और सुख-चैनके लिए कैद करनेकी बात सूझनेके बदले उसे प्रकृतिके साथ ऐक्यका अनुभव करनेवाली मस्तीमें भैरव जापके साथ पानीके प्रवाहमें अपने जीवन-प्रवाहको मिला देनेकी बात सूझती। स्वभाव भिन्नतामें क्या कुछ बाकी रहता है?"

२३ सितम्बर, १९५८ ई०

४१. नाइजीरिया भी आज़ाद होगा

हमने इसके पहले कहा ही है कि भारतके आजाद होनेके बाद ब्रिटेनके हाथमें जो सबसे बड़ा देश अभी तक है, वह है नाइजीरिया। जब सन् १९५२ में मैं पश्चिम अफ्रीका गया था तब नाइजीरियाके कई बड़े-बड़े शहर मैंने देखे थे। नाइजीरियाका राज्य चलानेवाले ऊंचे-ऊंचे अंग्रेज अमलदारोंसे मिला था। जहां लोकप्रतिनिधियों के हाथमें कुछ अधिकार दिये गये थे, वहांके अनेक मन्त्रियोंसे भी मिला था। इस देशकी राजधानी लागोस, विद्याधानी इबादान, सहाराके किनारे बसा हुआ उत्तरका

शहर कानो, अत्यन्त रमणीय ठंडी हवाका शहर जॉस, तिजारतकी दृष्टिसे बड़े महत्त्वका शहर कडूना, राजशासनकी दृष्टिसे महत्त्वके शहर एनुगु और ओनिट्शा ऐसे अनेक शहर देखे थे। लोग अपने उत्साहसे नये रास्ते कैसे बनाते हैं, लोकसेवा-की संस्थाएं क्या-क्या काम करती है, नये उद्योग-हुनर कैसे विकसित हो रहे हैं, यह सब मैंने देखा था। इबादानके यूनिवर्सिटी कॉलेजमें अध्यापकोंसे और विद्यार्थियोंसे परिचय पा कर, सत्शील गोरे अध्यापक अफ्रीकनोंकी उन्नतिके लिए क्या-क्या सोच रहे हैं, और अफ्रीकन नवयुवकोंके दिलकी कौन-कौनसी नई उमंगें उन्हें अस्वस्थ कर रही हैं, यह भी कुछ-कुछ समझ सका था। बड़े-बडे मकान बनानेकी नई शैलियां अफ्रीकन जीवन पर क्या-क्या असर कर रही हैं, यह भी मैं देख सका था।

नाइजीरियाका यह महत्त्वका समृद्ध, सुन्दर प्रदेश पश्चिम अफ्रीकाके दक्षिण समुद्रकिनारे काफी उत्तर तक फैला हुआ है। इसकी लोकसंख्या दो सवा दो कोटि होगी और क्षेत्रफल करीब तीन लाख चालीस हजार वर्गमील है। इस देशके उत्तर नाइजीरिया और दक्षिण नाइजीरिया ऐसे दो स्वाभाविक विभाग होते हैं। उत्तरके अफ्रीकी लोग अधिकांश मुसलमान हैं। दक्षिणके अफ्रीकी लोग मिशनरियोंके प्रभावमे ईसाई बन गये हैं। इनमे शिक्षाका प्रचार ज्यादा है। लेकिन इन लोगोंके इबो और जोरुबा ऐसे दो प्रधान वंश हैं जिनमें अभी तक पूरी-पूरी एकता नही हो सकी है। पश्चिमकी ओर रहनेवाले जोरुबा और पूरबकी ओर रहनेवाले इबो अगर आपसके मतभेद भूल जायें तो उनके लिए स्वराज्य पाना कोई कठिन बात नही है। उत्तरकी ओर ज्यादातर हौसा लोग रहते हैं। दक्षिणके काले नीग्रोंसे ये अलग हैं। और इनकी भाषा पर अरबी भाषा और साहित्यका प्रभाव बहुत है। सहाराके रेगिस्तानके दक्षिणमें बसा हुआ कानो शहर, वहांका मिट्टीकी दिवालोंका किला, मिट्टी पर उंगलीसे बनाई हुई कारीगरी, किलेके अन्दर मध्ययुगीन शैलीसे रहनेवाले अमीर, इस्लामी न्यायालय, अनगिनत सम्पत्तिवाले मुस्लिम व्यापारी और कुशल उंगलियोंसे सुन्दर-सुन्दर चीजें बनानेवाली हौसा महिलाएं और रेगिस्तानकी रेत मे अपनी दाढ़ीको बचानेके लिए गलेके इर्दगिर्द उत्तरीय लपेटनेवाले मर्द—इनको मैं कभी भी भूल नही सकता। मैं नही मानता कि कानोंमें जो मैंने पहाड़के जैसा मूंगफलियोंका ढेर देखा वैसा जिन्दगीमें फिर कभी देख सकूंगा। कानो, जॉस, इबादान और लागोम ऐसे चार प्रकारके शहर एक ही देशमें हैं यह देख कर ताज्जुब होता है। हम लोगोंके लिए जैसी गंगा नदी है वैसी ही नाइजीरियाके लिए नायगर नदी है। यह नदी प्रथम उत्तरपूर्व बह कर टिंबक्टूको पानी पिला कर पूरब की ओर मुड़ती है। और तुरन्त दक्षिणपूर्व दिशामें बहती हुई ढाई हजार मीलका अपना प्रवास अनेक मुखसे गिनीके आखातमें पूरा करती है।

पश्चिमी पड़ोसका गोल्डकोस्ट देश घाना नाम धारण करके जब स्वतन्त्र हुआ

और भारतके जैसा कॉमनवेल्थका सदस्य बन गया तब नाइजीरियाका स्वातन्त्र्य दूर नहीं है ऐसा सबको विश्वास हो गया। चॉकलेटमें काम आनेवाले कोका फलकी आमदनीके कारण और क्वामे इन्क्रुमा जैसे प्रतिभाशाली व्यक्तिके नेतृत्वके नीचे सधी हुई लोक-जागृतिके कारण भी घाना जल्दी स्वतन्त्र हो गया।

धर्मभेद और वंशभेदके कारण नाइजीरियाका संगठन कुछ शिथिल रहा है इसलिए इस देशका स्वातन्त्र्य कुछ खटाईमें पड़ा था। अब अखबारोंसे मालूम होता है कि नाइजीरियाके नेताओंके बीच कुछ समझौता हुआ है। फलत: अंग्रेजोंने नाइजीरियाके स्वातन्त्र्यकी तिथि मुकर्रर कर दी है। सन् १९६० के अक्तूबरमें शायद महात्माजीके जन्मदिन नाइजीरिया जैसे विशाल अफ्रीकी देशके स्वातन्त्र्यका जन्म होगा। यह बड़ी खुशीका शुभवर्तमान है।

सहाराके उत्तरमें अरबी भाषा बोलनेवाले जो अफ्रीकन हैं, ईजिप्त मिस्रसे ले कर मोरोक्को तक, उनका सवाल अलग है। उत्तरपूर्व अफ्रीकाके ईजिप्त, सूडान इथियोपिया जैसे देश स्वतन्त्र हो चुके हैं। कुछ ही दिन पहले हमने पश्चिम अफ्रीका के फ्रेंच गिनीके स्वातन्त्र्यका स्वागत किया था। अब समाचार मिलता है कि मध्य अफ्रीकाके पश्चिमकी ओर जो फ्रेन्च कॅमॅरूनस् हैं वे भी थोड़े ही दिनोंमें स्वतन्त्र होनेवाले हैं।

इस तरह हमारे अफ्रीकी भाई धीरे-धीरे आजादीका आस्वाद लेने लगे हैं और साथ-साथ एशियाके साथ सहयोग करनेका महत्त्व भी समझने लगे हैं। जब तक कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है तब तक मनुष्योंके बीच सत्ययुग चलता है। आजादी मिलनेके बाद सब देश एकसे कलियुगमें प्रवेश करने लगते हैं। आजादीके पहले नरकवास, आजादी प्राप्त करनेके दिनोंमें पवित्र बलिदानके द्वारा बननेवाला स्वर्गलोक और आजादी हासिल होनेके बाद कलियुगी मनुष्यलोक यह है राष्ट्रीय प्रगतिका क्रम। अगर नये आजाद राष्ट्र परस्पर सहयोगके द्वारा और पिछड़े हुए राष्ट्रोंकी सेवा द्वारा नये सत्ययुगकी स्थापना कर सकेंगे तो मानवता ऊंची उठेगी और संस्कृतिका नया विक्रम सिद्ध कर दिखायेगी।

११ नवम्बर, १९५८

४२. योरोपकी जनता

योरोप में ४० दिन घूमा, जिसमें दस-बारह दिन स्विट्जरलैंड, दस दिन जर्मनी, तीन दिन पेरिस, दस दिन लंदन और डेढ़ दिन ['] ग्स्बन रहा। अलग-अलग स्थान देखे, जरूरी काम किये, लेकिन योरोपकी जनताके साथ ज्यादा संबध स्थापित नही कर सका। फिर भी, उस जनताके जीवनका निरीक्षण करते हुए—और वह भी

महायुद्धके विनाशके बाद, सिर ऊंचा करती हुई जनताका निरीक्षण करते उस जनताकी आध्यात्मिक शक्तिके बारेमें आदर पैदा हुआ। हमारी जनतासे वह जनता आध्यात्मिकतामें कम नहीं है। योग्य नेतृत्व मिलनेसे वह हमसे ज्यादा शक्ति दिखा सकती है। वहांका उद्यम, वहांकी स्वच्छता, जमीन और समयके हरएक छोटे-से टुकड़ेका भी उपयोग करनेकी तत्परता, मकान और आबादीकी रचनामें सुघड़ता, विज्ञानका हरएक क्षेत्रमें उपयोग करनेकी जागरूकता और सबसे महत्त्व-की बात—उन लोगोंकी जीवन-निष्ठा देख कर मैं प्रभावित हुआ हूं। वहांकी चित्र-कला, मूर्तिकला और स्थापत्यके नमूनोंका भी मेरे मन पर गहरा असर हुआ है। संगीत पसंद आने लगा है। लेकिन, उसकी आत्मा अभी तक पहचान नहीं सका हूं। इटलीके शहर चाहे जैसे हों, मैंने वे देखे नहीं हैं। परन्तु, हवाई जहाजमें उनकी खेती देख कर वह जनता अब व्यवस्थित और मेहनती बनी हुई है, इस बातका विश्वास हुआ। स्विट्जरलैंडकी जनता दूध, मक्खन, पनीर आदि चीजें खाती है। मांसका उपयोग कम करती है। योरोपकी दूसरी जनताके मुकाबिलेमें उसका आदर्श अधिक व्यावहारिक और दूरदर्शितापूर्ण है। कुछ हद तक ऊंचा भी है। फ्रांसकी जनताके सामने अभी कोई ऊंचा भविष्य दिखाई नहीं देता। वह कुछ ढीली (नरम) है। हालांकि विज्ञान और कला इन दोनों क्षेत्रोंमें इनका नेतृत्व काफी ऊंचा है। लंदनकी जनता होशियार और काबिल है। उसकी जीवन-शक्ति बहुत ऊंचे दरजेकी है। संगठन-शक्तिकी पराकाष्ठा तक वे लोग पहुंच गये हैं। मगर पुर्तगालकी जनता योरोपमें कैसे बसी है, यह समझमें नहीं आता। बिलकुल हमारे जैसी ही है। समर्थ रामदासने कहा है: 'सांगे वडिलांची कीर्ति तो एक मूर्ख,' जो अपने बाप-दादोंकी कीर्ति गाता है; वह एक मूर्ख है। ऐसी वह मूर्ख जनता है। वास्कोडिगामाके जमानेमें आगे बढ़ी ही नहीं!

योरोपकी जनता शरीरसे सुदृढ़ है, जीवन जीनेके लिए उत्साही है। और, इतिहास पढ़ कर आजकी दुनियामें क्या चल रहा है, वह देखनेकी दृष्टि उसने पाई है। वह महायुद्धके आत्मघाती खेल खेले, तो भी उसका सर्वनाश तो होनेवाला है नहीं ऐसा असर मेरे मन पर पड़ा है। काबिल व्यापारी जिस तरह सट्टा खेल सकता है, उसी तरह राक्षसी समर्थ जनता भी महायुद्ध रूपी सटटा खेल सकती है।

मुझे ऐसा लगता है कि वह जनता समय आने पर चेतनेवाली है और विश्व-कुटुंबकी स्थापनामें यथासमय हिस्सा लेगी। किसी भी प्रजामें, विचारमें या तंत्रमें चमत्कार देखे बिना उसके सामने अपना सिर नीचे नमानेवाली वह नहीं है। चमत्कारको पहचानते उसको देर भी नहीं लगेगी। ऐसी इस जनताकी कसौटी अब अफ्रीकाकी भूमि पर होनेवाली है।[1]

---

१. एक मित्रको लिखे गुजराती पत्रसे।

४३. इन्टरलाकनमें

चि० प्यारी रैहाना,

कोह (Caux) के बारेमें और वहांकी एम्० आर० ए०की प्रवृत्तिमें बारेमें मुझे जो खास लिखना है, वह दूसरे खतमें लिखूंगा। आज मैं इन्टरलाकन (Interlaken) के बारेमें लिखूंगा। लेकिन, उसके पहले मुझे एक बात लिखनी ही चाहिए। भूतकालमें जब किसी स्थानको देखनेके लिए जाता था, तब उसका इतिहास, उसके संबधी पौराणिक कथाएं, साहित्यमे आया हुआ उस स्थानका उल्लेख वगैरह सब प्रयत्नपूर्वक जान लेता था। और, इस तरह उस स्थान-संबंधी अपने संस्कार समृद्ध कर लेता था। लोगोंको भी इन सब चीजोंसे, अपनी दृष्टि द्वारा थोड़ेमें परिचित होनेकी दिलचस्पी रहती थी। भूतकालको जीवित किये बिना मुझसे रहा नहीं जाता था और लोग भी मेरी इस शक्तिसे संतोप पाते थे।

अब इन चीजोंके प्रति, न मालूम क्यों, मैं उदासीन हुआ हूं। मुझे लगता है कि यह काम अब और कोई करेगा और ज्यादा ठीक ढंगसे करेगा। ऐसा थोड़ा-बहुत काम दूसरोंने किया भी होगा, और न किया हो, तो भी क्या? पुराणोंमें, साहित्यमें और इतिहासमें जितनी मानवता प्रतिबिंबित हुई है, उससे भी बहुत-कुछ विशाल मानवता प्रतिबिंबित होनेको बाकी है। इस भविष्यकीम ानवताका अब मैं उपासक बना हूं।

आज यहांके ऐतिहासिक संग्रहालयमें गया था। इस छोटेमे स्विट्जरलैंडने एक खासा सुन्दर संग्रहालय बनाया है। उसकी रचना भी सुन्दर है। दीवार पर बड़े-बड़े गलीचे जैसे कपड़े पर पुराने ऐतिहासिक युद्ध और बलिदानके चित्र बुने हुए हैं। उसमें स्विट्जरलैंडका उज्ज्वल-से-उज्ज्वल इतिहास चित्रित हुआ है। यह सब कला और इतिहासकी दृष्टिसे देख कर प्रभावित होते हुए भी मेरे मनमें एक ही विचार आया कि मनुष्य मनुष्यको इस तरह अगर हैरान न करता, तो न चलता? किसलिए युद्ध और 'धार्मिक' छल होना चाहिए? ईसाके क्रुसिफिकेशनके चित्र तो जहां-तहां नजर आते थे। यह देख कर मुझे उस वचनका स्मरण हुआ कि 'यूरोपके लोगोंने एशियाके एक सत्पुरुपका अपने गुरुके तौर पर स्वीकार किया और माना कि इस प्रकार उन्हें एशियाके दूसरे सब लोगोंको गुलाम बनानेका अधिकार मिला।' लेकिन, उस वचनका महत्त्व अब कम हुआ है। अब तो यूरोप अंदरूनी झगड़ोंसे ही पीड़ित है, और भविष्यके बारेमें बेचैन हुआ है। दो महायुद्धोंके अनुभव से यहांकी जनता त्रस्त हुई है और अब युद्ध कैसे टाला जाय, इसीका चिंतन कर रही है।

और फिर भी, यहांकी जनताके मुंह पर कहीं भी गमगीनी नजर नहीं आती। जीवनका आनन्द हमेशा अनुभव करते रहना यही उनका प्रधान धर्म है।

स्विट्जरलैंडमें जबसे पांव रखा, तबसे आजतक कहीं पर भी गंदगी, कचरा या अव्यवस्था नजर नहीं आई। कहीं पर भी परती जैसा नहीं लगता। (कोई भी चीज अनुपयोगी नहीं लगती)। स्वच्छता, व्यवस्था और सुघड़ताका यह देश है। हवामें न धूल है न धुंआ। सैकड़ों मील लम्बे रास्ते देखे लेकिन ये सब रास्ते सत्यपुरुषोंके चारित्र्य जैसे स्वच्छ, सीधे और प्रसन्न दिखाई दिये।

इस देशकी भूमिका अधिकांश हिस्सा पहाड़ और सरोवरोंसे व्याप्त है। जो थोड़ी जमीन बची है, उसका यहांके लोग अच्छे-से-अच्छा उपयोग करते हैं। हम बोलते समय फल और फूलोंकी बातें करते हैं। लेकिन, हमारे देशमें फूल तो देखनेको भी नहीं मिलते। यहां पर ऐसा नहीं है। यहांके खेत और बगीचे तो क्या, बड़े-बड़े मकान और हवेलियां भी नीचेसे ऊपर तक फूलोंसे लदी हुई हैं।

इस देशमें पांव रखनेके पहले ही साढ़े दस हजार फुटकी ऊंचाईसे Alps (आल्प्स) के शिखरोंका और जिनेवा जैसे सरोवरोंका दर्शन किया था। उस जिनेवा सरोवरके किनारेके एक पहाड़ परके आलीशान मकानमें रह कर इस सरोवरका दिन-रात दर्शन, मनन और ध्यान किया था। और इस प्रकार, आंखोंकी तृप्तिका समाधान पाया था।

आज हम इन्टरलाकन देखने गये। बम्बईमें ही हमारे रामकृष्ण बजाजने सिफारिश की थी कि स्विट्जरलैंड देखनेके बाद इन्टरलाकन देखे बिना नहीं आना। चि० सतीशने भी यही सिफारिश की थी। कल रातको यहां आते ही भारतके राजदूत श्री आसफअली साहबसे मैंने कहा कि इन्टरलाकन देखना ही है। स्विट्जरलैंडकी राजधानी बेर्न (Bern) से पैंतालीस किलोमीटरकी दूरी पर यह स्थान है। (पांच फर्लांगका एक किलोमीटर होता है। इससे लगभग तीस मील हुए।)

थून और ब्रिएन्ज नामके दो विशाल और लंबायमान सरोवरके बीचकी काव्यमय संयोगभूमि पर इन्टरलाकन शहर है। और यहांसे बर्फकी गांधी-टोपियां पहने हुए अनेक सुन्दर शिखर दिखाई देते हैं। थून (Thun) शहरसे इन्टरलाकन तक फैले हुए थूनरसी (Thunersee) सरोवरके दक्षिण किनारेसे हम गये और उत्तर किनारेसे वापस आये। इससे इस सरोवरकी एक उलटी प्रदक्षिणा पूरी हुई और इतना रमणीय दृश्य देखनेको मिला कि मेरे जैसेको भी कहनेका मन हुआ कि 'आजका दिन धन्य है'!

बेर्न राजधानीका नाम रीछ परसे पड़ा है। और, सचमुच इन लोगोंने राजधानीके बीचमें ही एक जगह पर कई रीछ पाले हैं। बेर्नसे थून तक दोनों ओर खेत, बगीचे, उपवन और पहाड़ोंकी शोभा अनोखी है। २८ किलोमीटरका यह प्रदेश सचमुच आह्लादक है। यहांकी नदीके कारण इस प्रदेशकी शोभामें वृद्धि हुई है, ऐसा कहनेके बदले यह कहना चाहिए कि यहांके लोगोंने अपने रसिक पुरुषार्थसे गरीब-

सी और नदीको सौन्दर्यवाहिनी बनाया है ।

सौन्दर्यकी इतनी उत्कटता तक पहुचनेके बाद ही उसके आधार-रूप कुदरतने थूनरसी सरोवरकी शोभा उठाई । पानीका रंग इतना गहरा, शीतल और चमकीला नीला है, मानों वाल्मीकिकी प्रतिभा ही छलकती हो । हमने दक्षिणका रास्ता लिया । सरोवरके उस पारकी टेकरियां और उस पर चढ़ते फर्न (Fern) के पौधे देखते-देखते हम आगे बढ़े । हमारे सामने यानी आग्नेय दिशासे ऊंचे-ऊंचे पहाड़ भय दिखाते थे । शिखर इतने ऊंचे कि वहां कुछ उगे ही नहीं । और, पहाड़की बाजू भी दीवारकी तरह इतनी सीधी और ऊंची है कि वहां भी अमुक जगह पर पेड़ टिके ही नही । हमारा स्थानिक सारथि फ्रेंच, जर्मन और इटालिन भाषाएं जानता था । लेकिन अंग्रेजीसे उसका परिचय नहीके बराबर था । हमने उससे पूछा, 'क्या वह युग फ्रौ (Jung frau : प्रमद्वरा) का शिखर दिखाई दे रहा है ?' उसने कहा कि 'सामने जो सुन्दर हिमाच्छादित शिखर दिखाई देता है, वह नही, किन्तु वहांसे बाई ओर, उन बादलोंके पीछे युंग फ्रौ का शिखर है ।' आगे आकाशको भी बींधनेवाला एक ऊंचा शिखर नजर आया । हमने पूछा 'क्या यह युंग फ्रौ है ?' उसने कहा, 'एक तरहसे कहा जा सकता है; क्योंकि युग फ्रौके तीन शिखर हैं । उनमेंसे यह ठेठ पूरबकी ओरका है । जिस शिखर पर यात्री आफ्रीन हो जाते है, वह उस बादलके पीछे ही है ।' अब तो इस अवगुंठनवती पार्वतीका दर्शन करनेके लिए हमारा मन बेचैन हो उठा । बाकीके सब शिखर प्रसन्नतासे दर्शन देते हैं । और, यही प्रमदा घूंघट खीच कर क्यों खड़ी है ? ऐसा सोचते-सोचते हम इन्टरलाकन पहुच गये ।

चि० सरोज बीस साल पहले अपने पिताके साथ यहां आई थी और उसने दो टेकरियोंके बीचसे युग फ्रौके दर्शन किये थे । उसकी सूचनाके अनुसार हमारा सारथि हमको ठीक उसी जगह पर ले गया । अब युंग फ्रौ (young lady) ने अपना घूघट इधर-उधर खिसकना शुरू किया । और, अन्तमें हमें दर्शनका आनन्द दिया सही । यहांके बहुत-से शिखर १० से १२ हजार फुटकी ऊंचाईके हैं । सूरजकी किरणोंके साथ खेलनेवाले बादल हर वक्त इन शिखरों पर नया-नया प्रकाश डालते हैं । इसलिए, इस सनातन स्थावर शिखरोंकी शोभामें नित्य नूतन लावण्य दिखाई देता है । कभी लगता है कि वहां बरफका एक किला है । कभी लगता है वहां गंधर्वों का एक राजमहल है । यहांके कवियोंने इन पहाड़ोंकी शोभा अनेक तरहसे गाई होगी । लेकिन हम उनकी भाषा नहीं जानते । मैंने तो सर वॉल्टर स्कॉटके वर्णन पढ़े हैं, जिसमें उसने स्कॉटलैंडके पहाड़, सरोवर और वहांकी दन्त कथाओंको संभाल कर रखनेवाली गुफाओंको अमर किया है । लेकिन, कवियोंने जिस वस्तुका वर्णन किया है, वह प्रत्यक्ष वस्तु ही मेरे हृदयमें काव्यवृत्ति जगा रही थी । उसका वर्णन मैं नहीं कर सका, तो क्या ? उससे मेरा आनन्द कुछ छिछला नही होता ।

सरोवरके दोनों किनारे पर मनुष्योंने असंख्य घर बनाये हैं। किन्तु, वे इस तरह बनाये हैं कि सरोवरकी शोभा जरा-सी भी बिगड़ती नहीं। इतना ही नहीं, अपितु ये घर यहां जगह-जगह पर उगे न होते, तो सरोवरकी शोभामें कुछ कमी ही रह जाती, ऐसा महसूस हुए बिना नहीं रहता।

जिस तरह थून और इन्टरलाकनके बीच थूनरसो सरोवर लंबित हुआ है, उसी तरह इन्टरलाकन और ब्रियेएन्झ (Brienz) के बीच दूसरा एक सरोवर तना हुआ है। उसका नाम है Brienzersee। 'सी' के माने हैं सरोवर। इन्टरलाकनका गौरव ही इसमें है कि उसकी दोनों बगलोंमें गंधर्व-प्रदेश है।

बम्बई, मद्रास, नई दिल्ली वगैरह शहरोंकी आधुनिक व्यवस्थाको देखनेके बाद भी कहना पड़ता है कि स्विट्जरलैंडके शहरोंकी स्वच्छता और घरोंको सुचारु ढंग से व्यवस्थित बनानेकी अभिरुचि हमारे लिए अनुकरणीय है।

इन्टरलाकनके आसपासकी सृष्टि-शोभा अघा कर देखनेके बाद हमने उत्तरकी ओरका रास्ता लिया। क्या दक्षिण, क्या उत्तर, हमारा रास्ता तो सरोवरके साथ खेलता-खेलता चलता था। कभी लगता मानों आचमन करनेके लिए सरोवरकी सपाटी तक वह नीचे उतरा है। कभी ऊंचाईसे, सरोवरकी शोभा दूर तक निहारनेके लिए ऊपर चढ़ जाता था। एक जगह पर बतखोंका एक काफिला पानीमें आगे बढ़ रहा था, मानों कोई बड़े महत्त्वके कामके लिए निकल पड़ा हो। दूसरी जगह पर दस-बीस नावें अपने पाल सकेल कर और लंगर पानीमें उतार कर कुंभकर्णकी तरह डोलती थी। और, आसपासके रंग-बिरंगे फूल 'क्या मजा,' 'क्या मजा', कहला कर सबकी प्रसन्नता बढ़ाते थे। यद्यपि हमारा रास्ता सरोवरके किनारे-किनारेसे जाता था, फिर भी पहाड़की कई उंगलियां सरोवरके पानीके साथ खेलनेके लिए आगे आई होनेसे उसमें सुराख करके ही हमारा रास्ता आगे बढ़ सकता था। यह छोटे-छोटे 'टनल' सारे काव्यकी गंभीरता और गहराई बढ़ाते थे। इतनेमें रास्तेमें एक छोटा-सा प्रपात उतावला-उतावला, कूदता-कूदता सरोवरमें स्वात्मार्पण करता हुआ दिखाई दिया।

हमारा रास्ता उस पर पुलकी मर्यादा बांध कर आगे बढ़ा।

सूरज दिखाई नहीं देता था। लेकिन, बादलोंने एक खिड़की खोल कर थोड़ी सूर्यकिरणें सरोवर पर बरसाईं और सरोवर तुरंत ही चमक उठा। सरोवरका रंग, उस परकी झुर्रियोंकी डिजाइन और उसकी विविध प्रकारकी कांति—सब मिल कर हर क्षण हमको नया-नया आनन्द देते थे। एक बड़ी नाव पर पत्थर ले जानेका बोझा आ पड़ा था! यह नाव सरोवरकी इजाजत ले कर आगे बढ़ रही थी और उसकी नाकके सामने सरोवरका पानी कोहरा उड़ा कर उसका स्वागत कर रहा था। रास्तेकी तरफकी दीवारें सुन्दर बेलोंसे ढकी हुई थीं। भड़कीले रंगके कपड़े पहने हुए सुन्दर बालक फूलोंके साथ होड़ लगा रहे थे। जहां जगह मिली, वहां

लोगोंने सरोवरके किनारे पर फूलझाड़ोंके बीच आराम करनेके लिए कुर्सियां रखी ही हैं। कुदरतकी भव्यता दिन-रात नजरके सामने होनेसे कई लोगोंकी नजरें जड़ हो जाती हैं, सड़ जाती हैं। उन्हें उसमें कोई मजा नहीं आता यहांके लोग ऐसे दुर्दैवी नहीं हैं। मानों कुदरतके सौंदर्य पर ही जीते हों और बढ़ते हों, ऐसा लगता है।

जब-जब कोई सौंदर्य-स्थान हृदयमें आनन्दके फव्वारे प्रस्फुटित करता है, तब-तब इस आनन्दका साक्षी कोई होना ही चाहिए, ऐसी वृत्ति मनमें जाग उठती है। उस तरहसे अगर वह तृप्त नहीं होती, तो हम खत लिख कर किसी आत्मीय जन को इस आनन्दका आस्वाद लेनेके लिए निमंत्रित करते हैं। इतने सालोंके सहवासमें मैंने देखा है कि जहां-जहां मुझे निरतिशय आनन्द होता है, वहां-वहां चि० सरोज-को भी उसी तरहका आनन्द मिलता है। इसलिए, हम एक दूसरेका ध्यान खींच कर और एक दूसरेकी अनुभूतिका सूचन करके कुदरतकी उपासना समृद्ध करते हैं। आज भी उसी तरह सृष्टि सौंदर्यके गुणगान करते-करते हम दोनों मौन हो गये, थके नहीं, किन्तु अंतर्मुख हो गये। इसीलिए, वह मौन उन पहाड़ोंके जितना ही उत्तुंग और उस सरोवरके जितना ही गहरा, शीतल और शांतिदायी हो गया। आखिर घर लौटे। मनमें सोचा कि इतना आनन्द पेट भर कर उछल-कूद रहा है, उसका क्या करेंगे? इलाज एक ही था। हम दोनोंके आनन्दको परस्पर सहयोगसे एक खतमें बुनें और उसको हवाई जहाजके पर दे कर बम्बई तक भेज दें।

इतनेसे भी संतोष नहीं हुआ, तब हमने सोचा कि रैहानाकी मददसे उसी आनन्दको उमाशंकरके पास भेज कर 'संस्कृति' की पुड़ियामें गुजराती पाठकोंके हाथमें पहुंचा दें। चि० अमृतलाल उसका हिंदी करवा कर 'मंगल प्रभात' में गाया करेंगे ही।

—काकाके सप्रेम जय भगवान्
और खुदा हाफिज

नवम्बर, १९५८ ई०

४४. पूर्व और पश्चिमकी तुलना

जब पश्चिमके लोग हमारे यहां आ कर राज्य करने लगे, तब अपने देशके गुणगान करना और भारतके दोषोंकी सहस्रावलि सुनाना उनका नित्यका व्यवसाय हुआ था। हमारे राज्यकर्ता हमारे गुरु भी बनना चाहते थे। हारे हुए लोगोंको ऐसी सब बातें सुननी ही पड़ती हैं और हमने भी पुश्त-दर-पुश्त पूरी मात्रामें सुन लीं।

अगर पश्चिमके आदर्शके साथ हमारे आदर्शोंकी तुलना की होती, तो बात

अलग थी। हमारे भले-बुरे लोक-व्यवहारके साथ पश्चिमके वैसे ही भले-बुरे व्यवहारोंकी तुलना की होती, तो भी हर्ज नहीं था। हरेक समाजमें दोष होते ही हैं। लेकिन, हमारे राज्यकर्ता जब शिक्षा-दीक्षागुरु बन करके प्रवचन देते थे, तब अपने देशके सुन्दर-सुन्दर, उच्च और महनीय आदर्शोंके साथ हमारे देशके सामान्य लोगोंके व्यवहारोंकी, हमारी बुरी आदतोंकी और हमारे वहमोंकी तुलना करके वे अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करते थे। तब उसमें न्यायकी मात्रा कहांसे प्रकट हो? आश्चर्य तो यह है कि ऐसी तुलना करनेमें उन लोगोंको लुत्फ आता था और हम चुपचाप सुनते थे।

खास करके मिशनरी लोग पश्चिमसे लाया हुआ ईसाई धर्म और पश्चिमी संस्कृतिके उच्च सामाजिक आदर्शोंकी बातें करते थे और हमारे सामाजिक दोष और हमारी पौराणिक कथाएं आगे रख कर हमारे देशकी निन्दा करते थे, तब तो उनका गौरव और हमारी फजीहत चरम कोटि तक पहुंचती थी। राज्यकर्ता और उन्हीं की जातिके धर्मोपदेशक जो कुछ भी कहें, सुनना ही पड़ता था।

इस चीजका जब अतिरेक हुआ, तब हमारे लोग भी उन लोगोंके धर्ममें उन्हींके ढंगसे छिद्रान्वेषण करने लगे। रेनॉल्डस्के उपन्यासोंमें Mysteries of the Court of London नामक एक उपन्यास था, जिसमें विलायतके उच्च खानदानके लोगोंमें जो साहस और दुराचार प्रचलित था, उसका वर्णन दिया है। हमारे लोग बड़े ही चावसे उस उपन्यासके पारायण करने लगे। देशी भाषाओंमें उसके अनुवाद भी हुए। हिन्दुस्तानके किसीके भी हाथमें रेनॉल्डस्का उपन्यास देखते ही अंग्रेज लोग चिढ़ जाते थे। मिशनरी लोगोंने हमारे पंडितोंसे दार्शनिक चर्चा कुछ दिन तक चलाई। उसमें लाभ न देख कर उसे छोड़ दिया और गरीबों को मुफ्त दवादारू दे कर और अंग्रेजी विद्याके स्कूल खोल कर सेवा द्वारा धर्म-प्रचार शुरू किया। भारतकी सामाजिक अधोगतिके वर्णन अपने देशमें भेज कर वहांसे मिशनके लिए चन्दा इकट्ठा करना उनके लिए स्वाभाविक था।

जब हमारे लोगोंने अपने धर्म और संस्कृतिका अध्ययन शुरू किया और पश्चिमकी संस्कृतिका आदरयुक्त अध्ययन करके उच्च भूमिका पर से तुलना शुरू की, तब हमारा मानस अपना स्वाभाविक आरोग्य प्राप्त कर सका। लेकिन, भारत पर राज्य करनेका अपना अधिकार सिद्ध करनेके लिए पश्चिमके लोगोंको भारत की निन्दा किये बिना चारा नहीं था। हमारे दोषोंका गहरे रंगोंमें वर्णन करने वाली एक किताब 'मिस मेयो' नामकी एक अमेरिकन महिलाने लिखी। Mother India उसका नाम था। स्वराजका दावा करनेवाले लोगोंका देश कितना गिरा हुआ है, इसका ख्याल पश्चिमके लोगोंको देनेके लिए यह सारा प्रयत्न था। दुनिया में विकृत अभिरुचिके लोग जब तक हैं, तब तक ऐसी किताबें लिखी जायेंगी ही, इसमें आश्चर्य नहीं है। आश्चर्य इस बातका था कि पश्चिमके अनेक राष्ट्रोंने बड़े

चावसे वह किताब पढ़ी। 'मिस मेयो' की आमदनी कल्पनातीत बढ़ी और भारत का नाम काला हो गया।

उस समय गांधीजीने Mother India किताबकी समालोचना लिखी और उसे Drain Inspector's Report कहा। हरेक शहरके साथ गन्दा पानी ले जानेवाले नाले होने ही हैं। वहा कितनी दुर्गन्ध है, यही देखनेका काम 'मिस मेयो' ने किया है, अधिक कुछ नहीं, यही सार था गांधीजीकी लिखी समालोचना का। 'मिस मेयो' के ढंगकी दूसरी कई किताबें पश्चिमके लोगोंने लिखी और आइन्दा भी लिखेंगे। लेकिन, अब लोग ऐसी किताबोंका मूल्यमापन करना सीख गये हैं।

और, अब तो यात्राके साधन बढ़नेके कारण हमारे लोग विदेश हो आते हैं और वहां की हालतें बराबर समझ भी लेते हैं। हम आजाद हुए, इसमें भी हमारी प्रतिष्ठा बढ़ गई। जिन बातोंको पश्चिमके लोग हमारे दोष समझते थे, उनमेंसे कई बातें आज वे हमारी खूबीके तौर पर बताते हैं। अब हमारे लोगोंको निन्दा और अपमानका शल्य सहन नही करना पड़ता।

जो बात हमने भारतके बारेमें ऊपर लिखी हैं, वे ही बातें चीनी लोगोंके बारे में भी हुई। चीनी संस्कृतिकी हीनताके बारेमें पश्चिमके लोगोंने कुछ कम नहीं लिखा है। अब उन्हीके लोग चीनी संस्कृतिकी खूबियां बतानेवाले उपन्यास लिखने लगे हैं। अब किसीको भी सिर ऊंचा करनेका कारण नही रहा। और, किसी को भी दूसरेके सामने सिर नीचा करके खड़े रहनेकी नौबत नहीं आती। सब देशके और सब वंशके लोग एक ही मिट्टीकी मूर्तियां हैं, यह स्वयंसिद्ध बात अब पूरी-पूरी साबित हो चुकी है। अब दूसरोंके दोष बतानेका परोपकार शरीफ लोग कम करने लगे हैं। अपने ही समाजके दोष देख कर उन्हें दूर करनेकी कोशिश करनेमें लाभ है, इतना सब समझ गये हैं।

तो भी एक ऐसा विषय रहा है जिसके बारेमें आजकल गरम चर्चा चलती है। अफ्रीका-खंड है। वहाके काले अफ्रीकन लोगों पर पांच छोटे-बड़े पश्चिमके देशोंका राज्य चलता है। अफ्रीकन लोग स्वतन्त्र बनना चाहते हैं औरयोरोपके लोग अपना राज्य वहां कायम रखना चाहते हैं और वैसा करनेके लिए वहांके लोगोंकी निंदा भी करते हैं। अफ्रीकन लोगोंको अपने ही देशमें अछूत हो कर रहना पड़ता है। इस अन्यायके खिलाफ जब अफ्रीकन लोग आवाज उठाते हैं, तब हमदर्दीके कारण हम भी उनकी आवाजमें अपनी आवाज मिला देते हैं। किसीकी चमड़ीका रंग काला है, गोरा नही है, इसलिए उसके प्रति घृणा करना, उसे हीन समझना और उसके स्वाभाविक अधिकारसे उसे वंचित कर ' सरासर अन्याय है। वर्णविद्वेष सामान्य मानवताका द्रोह है, ऐसा जब हम कहते हैं, तब पश्चिमके लोगोंको सिर नीचा ही करना पड़ता है।

अब काले गोरेका सवाल जैसा एक ढंगसे अफ्रीकामें है, वैसे दूसरे ढंगसे

अमरीकामें भी। अफ्रीकाके काले नीग्रोंको गुलाम बना कर जानवरोंके जैसा रखा, अब उन्होंने अमरीकन विधानके अनुसार समानताके कई हक पाये हैं। किन्तु, वास्तविक रूपमें उनकी हालत सन्तोषजनक नही है।

इस मामले भी भारतके लोगोंकी सहानुभूति अमरीकाके नीग्रों लोगोंके पक्षमें ही है। यह देख कर अमरीकन लोग चिढ़ जाते हैं और पूछते हैं कि क्या तुम्हारे देशमें भी वर्णविद्वेष नहीं है ? अभी-अभी अमरीकाके एक प्रतिष्ठित मासिकने एक लेख लिख कर यह सिद्ध करनेकी कोशिश की है कि रंगविद्वेष दुनियामें सर्वत्र है— भारतमें है, अफ्रीकामें है और इंग्लैंडमें भी है। जब तक अपने घरका यह दोष लोग दूर नहीं करते, अमरीकाकी ओर उंगली उठानेका इन्हें क्या अधिकार है ?

भारतमें जाति-जातिके बीच उच्च-नीच भाव है, अस्पृश्यता है ये बातें तो सारी दुनिया जानती है। लेकिन, इन दोषोंका हम समर्थन नही करते। उल्टा इन दोषोंको दूर करनेका पूरा-पूरा यत्न कर रहे हैं, इतनी बात तो सारी दुनिया देख रही है। अब नये ढंगसे वे हमारे दोप देखते हैं। अफ्रीकासे हिन्दुस्तानमें आये हुए विद्यार्थी भी इस नई चीजकी ओर शिकायत करने लगे है। वे कहते हैं, भारतमें काले रंगकी चमड़ीके प्रति तिरस्कार या अनुदार भाव पूरा-पूरा भरा हुआ है। जब कोई शादी करना चाहता है, तब काली लड़कीको पसन्द नहीं करता, गोरी को ही पसन्द करता है। और यह पक्षपात इतना स्पष्ट है कि अखबारोंमें 'चाहिए' वाले स्तम्भमें खुले तौर पर लोग लिखते हैं—'इतनी तनख्वाहवाले अच्छे शिक्षित हिन्दूको लड़की चाहिए। लड़की संस्कारी हो, लिखी-पढ़ी हो और गोरी भी हो, इत्यादि।' ऐसे कई इश्तहार इकट्ठा करके अमरीकन अखबार पूछते हैं कि क्या यह वर्ण-विद्वेषका नमूना नहीं है ?

इस प्रश्नका जवाब देना कठिन नहीं है। पश्चिममें जहां सब-के-सब लोग गोरी चमड़ीके होते हैं, लड़कियोंके दो विभाग किये जाते हैं—ब्लांड और ब्रुनेट। ब्लांड कोटिकी लड़कियां ज्यादा गोरी और गुलाबी होती हैं और उनके बाल सुनहरे होते हैं। ब्रुनेट गोरोंमें भी कुछ सांवली होती हैं। उनके बाल ब्राउन रंगके होते है। कहा जाता है कि पश्चिमके रसिक मर्द ब्लांडको पसन्द करते हैं, लेकिन शादी करते है ब्रुनेटसे ही, कैसा भी हो, यह तो अभिरुचिका सवाल है। अमुक व्यक्तिका रंग काला है, या पीला, या गेहुंआ, इसीलिए उसे उसके न्यायोचित अधिकारोंसे वंचित रखना, उसे बुद्धिशक्ति और मानवी योग्यताओंमें कम समझना और उसके प्रति दुर्व्यवहार करना यह है वर्णविद्वेषका लक्षण। हमारे देशमें एक जातिके लोग दूसरी जातिमें अक्सर शादी नहीं करते। तो भी एक ही जातिमें चमड़ीकी सब छटाएं पाई जाती हैं। एक ही जातिमें चन्द लड़कियां केतकी वर्णकी होती हैं, चन्द हाथी दांतके जैसी गोरी और उसी जातिमें बिल्कुल काली लड़कियां भी पाई जाती हैं। सब-की-सब लड़कियोंकी शादियां हो जाती हैं। व्यक्तिकी चमडीका रंग

देख कर उसकी जाति तय नही की जाती।

सच देखा जाय, तो लोगोंकी पसन्द केवल चमड़ीके रंग पर से नही की जाती। आंखें, नाक, मुंह, बाल, कपोल आदि चेहरेके सब तत्त्वोंका ख्याल किया जाता है। इसमें भी अभिरुचि अनेक प्रकारकी होती है। हमारे यहा चमड़ीका रंग देख कर आदमीको पाठशाला-प्रवेश नही देनेका रिवाज कभी नही था। मंदिर प्रवेशके समय हीन जाति यानि संस्कारहीन व्यक्तियोंको मंदिरमें नहीं जाने देते थे। लेकिन, अब यह भेद हट गया है।

अभिरुचिका भेद तो रहेगा ही। लड़कीके रंगका ख्याल किया जाता है, वैसा लड़कोंका नही किया जाता। लेकिन, नागरिकतामें और सामाजिक जीवनमें केवल रंगके कारण किसीको अधिकारोंसे वंचित नही किया जाता। जो अफ्रीकन विद्यार्थी यहांके रिवाजोंकी टीका-टिप्पणी करते हैं, वे भी अपने देशमें अभिरुचि का ख्याल तो रखते ही हैं, लेकिन उसकी किसीने शिकायत नहीं की है।

यों देखा जाय, तो काश्मीर-पंजाबकी ओर हमारे लोगोंकी शरीर-रचना और शरीरका रंग अलग होता है। बंगालकी ओर उससे बिल्कुल भिन्न और दक्षिणमें तो उससे भी भिन्न होता है। बीज-शुद्धि का अधिक-से-अधिक आग्रह रखनेवाले हमारे समाजमें सब वंशके लोग पाये जाते हैं। ब्राह्मण जाति जब ब्राह्मणेतरोंसे शादी नही करती थी, तब भी पंजाबी ब्राह्मण, बंगाली ब्राह्मण और मद्रासी ब्राह्मण आपसमें शादी कर सकते थे। वंशभेद बीचमें नहीं आता था। वर्णभेदकी भी रुकावट नही थी, आज भी नहीं है।

ये सब बातें प्रमाणमें गौण हैं। असली बात यह है कि अब भारतीयोंको पश्चिमके लोग हीन राष्ट्र नही कहते। अब हमारे साथ समान भावसे चर्चा करते हैं। हमारा ही वंश श्रेष्ठ, हमारा ही धर्म सही, हमारी ही संस्कृति उन्नत यह पश्चिमका अभिमान अब कुछ ढीला हुआ है और धीरे-धीरे कम हो जायगा। आखिरकार सब वंशके लोग मिल कर ही एक मनुष्य-कुटुम्ब बनता है।

४५. यूरोपका शिकार—आल्जेरिया

यूरोपका शाप अभी दुनियासे उतरा नही है। यूरोपका पुरुषार्थ असाधारण है, इसमें शक नही। यूरोपकी ज्ञानसाधना, यूरोपका संगठन, यूरोपकी महत्वाकांक्षा तीनों लोकोत्तर हैं। लेकिन इतने स्वार्थी, इतने क्रूर और इतने अदूरदर्शी लोग शायद दुनियामें नही हुए।

हम यह नहीं कहते कि दुनियाकी और प्रजाएं कुछ अच्छी हैं। लेकिन उनमें कहीं-न-कहीं मर्यादा दीख पड़ती है। यूरोपने अपने जमानेमें अमेरिका, एशिया,

अफ्रीका तीनों खण्डोंको निचोड़नेमें कहीं भी कसर नहीं रखी। यह तो हुई बड़े-बड़े भूखण्डोंकी बात। इसके अलावा छोटे-मोटे सागरोंमें जो असंख्य छोटे-मोटे टापू हैं उनमें यूरोपके लोग पहुंच ही गए हैं और जहां गये हैं छीना-झपटी करके सब कुछ अपने हाथमें ले लिया। लेकिन विधाताके घरमें हर एक चीजका अन्त होता ही है। यूरोपका जोर अब कम हो गया है और बाकीकी दुनिया अब जाग्रत हो रही है। एकके पीछे एक देश स्वतंत्र होते जा रहे हैं। छोटेसे जापानने विशालकाय रशियाको हराया, तबसे युग-परिवर्तन शुरू हुआ। भारतने ब्रिटिश साम्राज्यसे मुक्ति पाई तबसे सारी दुनिया समझ गई है कि गोरोंके वैभवके दिन खतम हुए है। इतना होते हुए भी यूरोपकी प्रजा अपना रुख बदलती नही। हर जगह जितना हो सके अन्याय, अत्याचार और रक्तपात करके जो अपने हाथमें रख सकती है, रखनेकी पूरी-पूरी कोशिश करती रहती है। उसका सिद्धांत अच्छा है। मौतके पहले मरें क्यों? लेकिन इस सिद्धांतके कारण दुनियामें कितना अत्याचार फैल रहा है इसका खयाल वह नहीं करती। और दुनियाकी रंगीन प्रजाके दिलमे गोरोंके प्रति जो तिरस्कार, द्वेष या शत्रुता बढ़ रही है, इसकी तो वह परवाह ही नही करती।

आज दुनिया डर रही है कि रशिया और अमेरिकाके संघर्षके फलस्वरूप विश्वयुद्ध छिड़ जायेगा और उसमे सारी दुनिया बेचिराग हो जायगी। ऐसे वक्त इन गोरोंके मनमें सूक्ष्म रूपसे यह बात चल रही है कि रशिया और अमेरिकाके बीच समझौता क्यों न किया जाय, ताकि समस्त गोरी प्रजा संगठित हो कर फिरमे अपना आतंक जमा सके। ऐसे दिनोंमें कितने दुर्दैवकी बात है कि चीनने एशियाके अन्दर ही गृहयुद्धका वायुमण्डल पैदा किया है।

यूरोपियन लोग जानते हैं कि अफ्रीकामें उनका राज अब बहुत दिन तक टिकनेवाला नही है। अगर वे अफ्रीकन लोगोंसे समझौता करें, उनके साथ सहयोग करें और उनसे कहें कि इस विशाल खंडमें आप भी रहें और हम भी रहेंगे, तो सदियों तक गोरोंको अपने विकासके लिए अवकाश रहेगा। लेकिन वे कहते हैं कि हमें उस तरह नही रहना है। अफ्रीकामें काले लोगोंकी संख्या इतनी है कि अगर उनके साथ हम घुल-मिल गए तो हमारे प्रभुत्वकी बात तो दूर, हमारा स्वतन्त्र अस्तित्व भी नही रहेगा। इसलिए काले लोगोंको दबा कर ही हम अफ्रिकामे रह सकते हैं। घोड़ा घासके साथ यारी करेगा तो खायेगा क्या? यह है गोरोंकी जीवन-नीति।

अब आल्जेरियाको ही देख लीजिए। यह छोटा-सा देश अफ्रीकाके उत्तरमें है। लोकसंख्या शायद ७२ या ७५ लाखकी है। उसमें यूरोपियन लोग (ज्यादातर फ्रेंच) दस लाखमे भी कम हैं। लेकिन इन यूरोपियन लोगोंने आल्जेरियाका सबसे अच्छा उपजाऊ भाग अपने हाथमें ले लिया है। इसमें शक नहीं, आल्जेरियाकी भूमिका दोहन करनेकी कला इन यूरोपियन फ्रेंच लोगोंमें ही अधिक है। लेकिन

यह देश असली उनका नहीं था। जबरदस्ती जा कर, वहांके लोगोंको हटाकर फ्रेंच लोगोंने वहां अपना राज जमाया। फ्रांस और आल्जेरियाके बीच भूमध्य समुद्र है। आल्जेरियाका इतना ही दोष है कि फ्रांसके लिए वह बिलकुल नजदीकका देश है। अब वहांके लोग अपना देश अपने हाथमें लेना चाहते हैं। अगर फ्रेंच लोग आल्जेरियन बन करके वहां रहे तो कोई शिकायत नहीं करेगा। लेकिन उनके लिए वही सवाल खड़ा होता है कि घोड़ा घासके साथ यारी करेगा तो खायेगा क्या ?

आल्जेरियाके नजदीक उत्तरमें स्पेन देश है। वहांसे डेढ़ लाख स्पेनियार्ड आल्जेरियामें आ कर बसे हैं। इटालियन लोग भी आ बसे हैं। और यहूदी तो होंगे ही। आज पांच-छः बरस हो गए, आल्जेरियन लोग अपनी आजादीके लिए लड़ रहे हैं। उन्हें किसीकी भी प्रत्यक्ष मदद नही है। U. N. O. में गोरोंका ही आधिपत्य विशेष है। वे भी आल्जेरियाको मदद नही दे रहे हैं। इतना सब होते हुए भी सभव है, फ्रांसको बीचका रास्ता निकालना होगा और आल्जेरिया स्वतन्त्र हो ही जाएगा। अगर फ्रास लड़े विना आल्जेरियाके लोगोंको स्वराज्यके अधिकार दे देगा तो दोनों लोगोंमें दोस्ती जम जाएगी। दोनोंका पुरुषार्थ परस्पर पोषक होगा और अफ्रीकाके लिए वह एक अच्छी मिसाल बनेगा। लेकिन फ्रांसको यह सीधी बात अभी तक सूझती नही। फ्रेंच लोग अपना प्रभाव, अपने अधिकार सुरक्षित रखनेकी कोशिश कर रहे हैं और भविष्यके लिए अफ्रीकन लोगोंका तिरस्कार और उनकी दुश्मनी हासिल कर रहे हैं। आज उनका एकमात्र सहारा, उनकी सबसे बडी आशा इसीमें है कि रंगीन प्रजा संगठित नहीं है और उसे सत्याग्रहका रहस्य पूरा-पूरा मालूम नहीं हुआ है। अगर रंगीन प्रजा सत्याग्रहके रास्ते जायेगी तो कम बलिदानमें स्वतन्त्र हो जायेगी और गोरे लोगोंके लिए वह तरीका आशीर्वाद-रूप बनेगा। क्योंकि सत्याग्रही लोग किसीका द्वेष नही करते। शत्रुओंको भी, दुश्मनोंको भी अपने भाई समझ कर अपनानेके लिए वे तैयार रहते हैं।

यूरोपियन लोगोंका हित इसीमें है कि वे सत्याग्रहीकी कदर करें और सत्याग्रही प्रजाके साथ प्रेमसे घुलमिल जावें। यूरोपने ऐसा नहीं किया तो उनके लिए कोई भविष्य है नहीं, वर्तमानकाल भले ही उनका हो।

४६. हिन्द महासागर और दक्षिण ध्रुव

सन् १९२२-२३ के अरसेमें भारतके इतिहासके बारेमें 'पूर्व रंग' नामकी एक किताब मैंने लिखी थी। उसमें हिन्दी महासागरपर विचार करते हुए मैंने नीचे दिया फिकरा लिखा था :—

जिस तरह पश्चिममें द्वारिका द्वीप भारतका दरवाजा और सन्तरी है उसी

तरह दक्षिणमें सिलोन है। और एडनसे सिंगापुर तकके जलमार्गके सफरमें वह एक महत्त्वका स्थान है।

स्वराज्यमें सिलोनके हिन्दी जहाज एक तरफ बम्बई, कराची, बसरा, एडन, झांझीबार और केपटाउन तक जायेंगे जबकि दूसरी तरफ विशाखापट्टनम्, कलकत्ता, रंगून, फ्रीमेन्टल और मेलबोर्न तक सफर करेंगे।

इस तरह सारे हिन्द महासागर पर नजर रखने के लिए लंका ही हमारा मुख्य स्थान है। एशियाके दो हाथ—एक केपटाउन तक फैला है जबकि दूसरा सिंगापुर फ्रीमेन्टल तक फैला है। इन दो हाथोंके आलिंगनमें सारा हिन्द महासागर समा हुआ है।

सिलोनकी यह उपयोगिता स्पष्ट करनेके लिए थोड़ा उदाहरण लें।

अहमदाबादमें कांकरिया तालावकी और उसके आसपासकी शोभा देखनेके लिए तालावके बीचोंबीच खड़े रहना चाहिए। इसके लिए वहां नगीनावाड़ी बांधी गई है। और वहां तक पहुंचनेके लिए स्थल मार्गके तौर पर एक पुल बंधा है।

अमृतसरमें भी सरोवरके बीच सिख गुरुद्वारा है और वहां जानेके लिए एक पुल है।

दक्षिणमें भी मदुराके पास तप्पकुलम्के तालावमें एक मन्दिर है।

बड़े-बड़े बंदरोंमें जहाजोंकी सुविधाके लिए एक दिवाल समन्दरके अन्दर खूब दूर तक बांधी जाती है और वहां एक बड़ा दीया रखा जाता है।

ऐसी ही कल्पना करके हम कह सकते हैं कि हिमालयके आसपास रहनेवाले राजा कुबेरका भाई रावण दक्षिणकी तरफ गया और हिन्द महासागरके बीचोंबीच आए हुए लंका नामके एक द्वीपमें उसने एक मन्दिर बनाया ताकि सारे हिंद महासागर पर काबू रखा जा सके। सिलोनमे (उसका पुराना नाम ताम्र द्वीप है) तामुलक हो कर ब्रह्मदेशके किनारे जावा तक हमारे जहाज जाते थे। इस ओर लंकासे निकले हुए जहाज मंगलूर, दाभोल, भृगुकच्छ हो कर मकराणके किनारे तक जाते थे। और फिर दक्षिणकी ओर मुड़ कर मालिन्दी (मोम्बासा) आदि बन्दरोंसे हो कर अफ्रीकाके दक्षिण तक पहुचते थे। उन दिनों सारा हिन्द महासागर अपना था और हमारे जहाज उस महासागरके चारों ओर घूमते थे।

हम यानी अकेले भारतवासी ही नहीं। अरबस्तानके हमारे भाईबन्द भी उसी तरह दरियाई सफर करते थे। और सुवर्ण द्वीप यानि ब्रह्मदेशके लोग भी सारी दरियाई प्रवृत्तिमें साथ देते थे।

वेदकालसे ले कर हमारे लोग नौका-नयन करते आए हैं।

आज सारी दुनियाके जहाजी-व्यवहारमें छोटे-बड़े सभी भारतीय जहाजोंको इकट्ठा करने पर उनकी संख्या एक प्रतिशत भी नहीं होती। वह आधे प्रतिशतसे थोड़ी कम ज्यादा होगी।

दुनियामें तीन महासागर हैं जो सबसे बड़े हैं। उनमें प्रथम स्थान प्रशान्त महासागरका है। जो एशिया और अमेरिकाके बीच फैला है।

दूसरा नम्बर है अतलांतिक महासागरका और तीनोंमें सबसे छोटा लेकिन इतिहासपूर्वकालसे प्रसिद्ध है हमारा हिन्द महासागर।

२

कर्मकी न्यारी गति पर आश्चर्य व्यक्त करते हुए जब कविने गायाः—"सब नदियां जल भर-भर रहियां, सागर किस बिध खारी।" तब क्या उसे मालूम था कि हमारे हिन्द महासागरमें कौन-कौनसी नदियां अपना मीठा जल भरती हैं?

ईराकसे प्रारम्भ करें तो युफ्रेटिस और टायग्रिस—ये दोनों इतिहासप्रसिद्ध और वत्सल नदियां खजूरके पेड़ोंको अपना पानी पिलानेके बाद अपनी सारी समृद्धि हिन्द महासागरको समर्पित कर देती हैं और उसका स्वीकार करनेके लिए हिन्द महासागरने अरबस्तान और ईराकके बीच अपना कितना दीर्घ बाहु फैलाया है!

फिर आइये वेदवाणीके श्रवणसे पुनीत हमारे देशमें। यहां सात नदियोंका जल एकत्र करके सिन्धु केटी बन्दरगाहके पास अपना उपहार सागरवरको अर्पित करती हैं। जरा दक्षिणकी ओर उतरने पर साबरमती, मही, नर्मदा, तापी वगैरह नदियां पश्चिमकी तरफ बह कर सागरको समृद्ध करती हैं। जबकि पूर्वकी ओर बहनेवाली नदियोंमें कावेरी, कृष्णा, गोदावरी, महानदी, रूपनारायण वगैरह अनगिनत छोटी-बड़ी नदियां पूर्वी समुद्रका तर्पण करती हैं और मानो आखरी निवापांजलि अर्पण करनेके लिए उत्तरकी समस्त जलराशि एकत्र करनेवाली गंगा और सिन्धुकी तरह हिमालयके उस पारका पानी सम्हाल कर लानेवाली ब्रह्मपुत्रा अनन्त हस्तोंसे सागरका खजाना भर देती हैं।

तब ब्रह्मदेशकी नदियां कहने लगीं कि हम भी दूर-दूरके पानी लानेमें कम कुशल नहीं हैं। लगभग चीन देशकी सरहदसे पानी इकट्ठा करनेवाली चिंदविन और इरावती—ये दोनों हिन्द महासागरकी अभिलाषाएं पूर्ण करती हैं।

इसीलिए वह महासागर भी छोटे-बड़े द्वीप-बालकोंको अपने मौजोंके पालनेमें झुलाता रहता है।

हिन्द महासागरमें आनन्द करते इन छोटे-बड़े द्वीपोंकी नामावली इकट्ठा करने पर न मालूम कितने सहस्रोंकी संख्या हो जाएगी। उनका स्तोत्र तो अलग ही गाना चाहिए।

३

जिस तरह कच्छके उत्तरमें, राजस्थानमें तथा अफ्रीकामें सहाराका रेतका रेगिस्तान है, उसी तरह दक्षिण ध्रुवके आसपास सनातन बरफका रेगिस्तान है। जहां देखे वहां बरफ-ही-बरफ और उस पर इधर-उधर दौड़नेवाले ठण्डे-से-ठण्डे पवनके तूफान।

बचपनमें हम जानते थे कि उत्तर ध्रुवकी तरह दक्षिण ध्रुवमें भी पानीका महासागर ही है। यह कौन कह सकेगा कि बरफके नीचे पानी है या नही ? और इसका पता लगाने पर भी उसमें क्या फर्क होनेवाला है ? और फिर भी हर एक चीजका रहस्य जाने बगैर मानव जातिका जी ठंडा नहीं होता —(ठंडे प्रदेशके लोग 'ठण्डा नही होता' ऐसा शब्द कभी प्रयोग नही करेंगे। वे तो कहेंगे, 'अमुक काम किए बगैर मनुष्यका जी गरमाता नहीं।) ठंडे मुल्कमे बरफ़ परसे आते प्राणहारी ठंडे पवनसे बचनेके लिए बरफकी ही ईंटोंका एक गरमी देनेवाला कमरा वहांके एस्किमो लोग बना लेते हैं। बरफकी गोल दिवालके ऊपर गोल गुम्बद चढ़ा देते हैं। इससे पवनसे मुक्त ऐसा गरम हिमगृह तैयार होता है।

मनुष्यने ढूंढ निकाला कि दक्षिण ध्रुवके आसपास एक बड़ा भूखण्ड है। अब जबकि यह जमीन मिली है तब यह सवाल उठता ही है कि उसका मालिक कौन ? जिस देशके नागरिकने वह भूभाग ढूंढ निकाला उसी देशका वह माना जाता है। अथवा जिस देशके जहाज दक्षिण ध्रुवका संचार कर सकें उस देशका वहां अधिकार होगा।

कई लोग मानते हैं कि नौका-नयनकी ईजाद पहले-पहल भारतभूमिमें ही हुई। ऋग्वेदमें नौकाका वर्णन आता है। हमारे लोगोंसे दूसरे देशोंकी जनताने नौका बनानेकी कला और उस नौकामें बैठ कर जलमार्गसे प्रवास करनेका कौशल्य प्राप्त किया होगा। क्या मालूम वेदमें आनेवाले 'तुग्र' और 'भुज्यु' नाम स्वदेशके लोगोंके हैं या विदेशके ?

यदि नौका-नयन-विद्या हम लोगोंने ढूंढ निकाली है तो आज हमारा उस विद्यामें सबसे पीछे रहना, हमारे लिए विषाद उत्पन्न करनेवाला है। समुद्र-यात्रा-निषेध तथा मत्स्याहार निषेध करनेवाले हमारे पूर्वजोंने पुराने जमानेमें उस कला-का नाश किया होगा। अपने जमानेमें अंग्रेजोंने उस कलाका निर्दयतापूर्वक नाश किया है। और इसीलिए दुनियाके दरियावरदी राष्ट्रोंमें हमारा कोई स्थान नहीं है। अगला तो क्या --पिछला भी नहीं है।

दक्षिण ध्रुवके आसपासके भूखण्डमें जिनको दिलचस्पी है ऐसे बीस राष्ट्रोंने मिल कर आपसमें करार किया है कि दक्षिण ध्रुवके उस प्रदेशका उपयोग युद्धकी तैयारीके लिए न किया जाए। हमारे लिए यह कितनी शरमकी बात है कि उस छोटे-बड़े बीस राष्ट्रोंमें भारतका नाम तक नही है ! वैसे देखा जाय तो ब्रिटेन, जापान, या रूसके बजाय हमारा देश दक्षिण-ध्रुव प्रदेशके ज्यादा नजदीक है। भारत सरकारको अपने व्यापारी जहाजोंकी संख्या बगैरा बढ़ानी चाहिए और जिन्हें मछलियां खानेमें आपत्ति नहीं है, उनके लिए उस आहारकी पूर्ति करके इस तरह धान्याहारी लोगोंके लिए अनाजकी तंगी (कमी) कम करनी चाहिए।

जिस देशके पास लम्बा और सुन्दर सागरतट है उसके पास यदि दरियाई काफिला नहीं है तो उस देशकी हस्ती और विकास जोखिममें हैं।

१५ दिसम्बर, १९५९

४७. पुनश्च किलिमांजारो

आज १८ नवम्बर है। सवेरे साढ़े आठके बजाय सवा नौ बजे हम नैरोबीके अम्बाकासी (Embacasi) हवाई अड्डेसे रवाना हुए। हवा खुशनुमा है। लेकिन वह अपनी खुशी सफेद कपास जैसे बादलोंके ढेर चारों ओर फैला कर जाहिर करती है। ऊपरका आकाश निरभ्र नीला है। नीचे सर्वत्र बादलोंका मैदान फैला हुआ है। जमीन शायद ही नजर आती है। गगनविहारी पक्षी बादलोंको बींध कर ऊपर नहीं आ सकते। पक्षी भले ही गगनविहारी कहलाते हों, लेकिन उनका ध्यान तो पृथ्वीके साथ ही वफादार होता है। लिहाजा बादलोंके ऊपरका आकाश उनके लिए है ही नहीं।

हमारा हवाई जहाज सीधा दक्षिण—दक्षिण-पूर्व जा रहा है--लगभग मोम्बासाकी दिशामें।

विमानमें इन्जिनकी घर्घर् ध्वनि दोनों कानोंके अन्दर पहुंच कर फिरसे फुव्वारेकी तरह बाहर आती थी। इतनेमें सारथिने घोषणा की कि थोड़े ही निमिषोंमें दाहिनी ओर किलिमांजारो पर्वतका शिखर दिखाई देगा।

किलिमांजारो यानी अफ्रीकाकी भव्यता। भूमध्य रेखासे बहुत दूर न होते हुए भी उसके मस्तक पर हमेशा बर्फका किरीट विराजमान होता है। पांच हजार नौ सौ फुट ऊंचाईका उसका शिखर सैकड़ों मील दूर तक दिखाई देता है। यहांकी भूमिमें किलिमांजारो और मेरु सबसे ऊंचे पहाड़ हैं। थोडा उत्तरकी तरफ जाएं तो माउंट केनिया और एलगिन इन दो पहाड़ोंकी जोड़ी केनियाके मुल्क पर राज्य करती है।

नौ साल पहले किलिमांजारोके प्रथम दर्शन सन्ध्याके समय नैरोबीमें किये थे। क्षितिज परके बादलोंमेंसे उसका गुलाबी शिखर ढूंढ निकालनेमें कुछ दिक्कत हुई थी। लेकिन एक बार मिल जाने पर बस आंखोंमें बैठ ही गया।

उसके बाद दारेस्सलाममें पश्चिम और उत्तरकी ओर जा कर हम मेरु पर्वतकी तलहटीमें अरुशा पहुंच गये थे। और मोशी नामके शहरमें किलिमांजारोकी तलहटी देखी। वहांसे किलिमांजारो हाथीकी पीठके समान गोल-गोल दिखाई देता था और उसके सिर परके बरफके रेले ऐसे मालूम होते थे, मानो हाथीका मद झरता हो। मोशीमेंसे किलिमांजारोका दर्शन कर लेनेके बाद उस पहाड़की उत्तरकी बाजू हम अंबोसेलीके अरण्यमेंसे देख सके।

उसके बाद झांझीबार टापूमें पता चला कि किलिमांजारोके माथे पर एक बड़ा सरोवर है। और उसीका पानी समुद्रके नीचेसे झरनेके रूपमें आ कर झांझीबारमें चमचम नामके झरनेके रूपमें प्रगट होता है।

हम लोग जिस प्रकार हिमालयका ध्यान रखते हैं और उसकी भक्ति करते हैं उसी प्रकार अफ्रीकी लोगोंके लिए भगवानने इस प्रदेशमें किलिमांजारोकी उत्पत्ति की है।

ऐसे इस किलिमांजारोके दर्शन आसमानमेंसे १६००० फुटकी ऊंचाईसे कर सकेंगे और इतने नजदीकसे—कभी सोचा तक नहीं था। इसलिए पूरे उत्साहसे और कुतूहलसे खिड़कीमेंसे देखना शुरू किया। प्रारम्भमें दूर-दूर देखते थे इतनेमें विमानके पंखके सामने ही किलिमांजारो प्रकट हुआ। इस पहाड़की बाजू पर पेड़-पत्ता आदि कुछ भी नही था। मिट्टी और पत्थरों पर थोड़ा-सा बर्फ—यही था उस शिखरका दर्शन। विमान आगे बढ़ा और किलिमांजारो हमारी बगलमें आया। अब उसका विस्तार और उसकी प्रौढ़ी हम पूरी तरह देख सके। कुछ ही आगे गये और किलिमांजारोके माथे परका द्रोण दिखाई देने लगा। उस द्रोणके किनारे पर बर्फकी परत जमी हुई थी। लेकिन द्रोणके अन्दर बर्फका नामोनिशां नहीं था। इस परसे अनुमान हुआ कि द्रोण (crater) गहरा होगा और वहां हवा भी गर्म होगी।

विमानकी ऊंचाई परसे 'भक्ति-नम्र' होना हमारे लिए सम्भव नही था, लेकिन उससे किलिमांजारोकी प्रतिष्ठा तनिक भी कम नहीं होती थी।

जी भर कर दर्शन हुए। हम सन्तोष मानते, इतनेमें दूसरे एक पहाड़का शिखर —बिना बर्फका लेकिन नुकीले पत्थरोंका—बिलकुल नजदीक प्रकट हुआ। डर लगता था कि कही विमानकी दिशामें थोड़ी गफलत हुई तो उस शिखरके साथ हम टकरा जाएंगे। यह नया पहाड़ और उसके पीछे खिसकता किलिमांजारो दोनोंका दृश्य बहुत ही आकर्षक था।

किलिमांजारो ओझल हुआ और दूर-दूर मेरु दिखाई देने लगा। इस पहाड़का आकार अच्छा है। उसका विस्तार देख कर आंखें तृप्त हो सकती हैं। लेकिन बेचारे के माथे पर न द्रोण है, न हिमधवल किरीट। लिहाजा देवोंके पर्वत मेरुका नाम धारण करते हुए भी किलिमांजारोके सामने वह गौण ही माना गया है।

नक्शेमें विमानका रास्ता और किलिमांजाराकी ऊंचाई देखी। वहां पता चला कि हम नैरोबीसे आथी नदीके किनारे-किनारे, लेकिन आकाशमेंसे जा रहे हैं। अब बाईं ओरकी खिड़कियोंसे आथी नदीकी घाटी कहें तो घाटी और लकीर कहें तो लकीर दूरसे आती और दूर तक जाती दिखाई दी। अब वह नदी समुद्र किनारे पर मालिन्दी बन्दरगाहके पास समुद्रसे मिलेगी।

लेकिन अब हमारा रास्ता मोम्बासाकी ओर न जाते हुए टांगा शहरकी ओर

मुड़ा। यह शहर समुद्र-किनारे पर, हमारे बाईं ओर था। उसे देखनेके बाद याद आया कि उसके पहले जो थोड़े पहाड़ हमने देखे थे, वहां नौ साल पहले एक ऐस्टेट देखने गये थे। उस पहाड़का नाम अब याद नहीं आता।

अब तो असली मजा समुद्र तट पर, रेत और पानीके बीच चित्रित हरे, फीरोजी ओर नीले रंगका था। एक तरफ सफेद रेत, दूसरी तरफ समुद्रका पार-दर्शी गहरा नीला रंग और दोनोंके बीच ऊपर वर्णन किये हुए विविध रगोंकी क्रीड़ा। आंखें रंगोंका वह तूफान पीती जाती और उसकी लहरें हृदयको ऊर्मिल बनाती थी।

अफ्रीकाके इस किनारे पर कई एक टापू अभी तक अपने मनके साथ यह निश्चित नहीं कर पाये हैं कि समुद्रकी सतहसे बाहर आएं या थोड़ा अंदर ही रह जाएं। कई एक टापू plus four का निर्णय करते हुए कई एक minus four मे ही अधिक शोभा मानते। जो टापू चार फुट ऊंचे आये हैं उनकी रेत काली हो गई है। जिन्होंने पानीके बाहर अपना सिर नही निकाला उनके ऊपरका और आसपासका फीरोजी रंग दूर-दूर तक ध्यान आकर्षित करता है।

अब हम आये सुगन्धी टापू झांझीबारके सिर पर। उसका किनारा जितना जमीन परसे आकर्षक है, उतना ही लेकिन अलग ढंगसे, विमानकी नजरसे मोहक जान पड़ता है। झांझीबार शहर बादलोके कारण दिखाई नही दिया। लेकिन उस टापूका विस्तार एक नजरसे देख सके।

१५ दिसम्बर, १९५९

४८. शर्कराद्वीप मॉरिशियस

आज जिसे मॉरिशियस कहते हैं उसके, पुराने जमानेमें, अलग-अलग नाम थे। सन् १५०५में जब पुर्तगाली लोगोंको इस टापूका पता चला, उस समय उस पर मनुष्य बस्ती थी ही नहीं। (इसका मतलब यह नहीं है कि पुराने लोगोंको पता ही नहीं था या प्राचीन कालमें वहां मनुष्यबस्ती थी ही नहीं।) जब पुराने लोगोंने अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार इस टापूको नाम दिये है, तब हम अपनी कल्पना चला कर एक नया नाम उसे क्यों न दें ? मैं तो इसे शर्कराद्वीप कहूंगा, क्योंकि इस टापूकी उपजमें ९७ फीसदी उपज शक्करकी है। हमारे बचपनमें भारत में जो शक्कर इस्तेमाल होता था वह सब मॉरिशियससे ही आता था और इसलिए लोग शक्करको 'मोरस' कहते थे।

जिस टापूसे सारे देशको शक्कर मिलता था उस टापूको हम शर्कराद्वीप कहें यह सर्वथा अनुरूप ही है।

यह टापू भारतकी दक्षिण-पश्चिम दिशामें लगभग दो हजार मील दूर है।

मॉरिशियस अथवा शर्कराद्वीप लंका या माडागास्कर जितना बड़ा टापू नहीं है। उसकी लम्बाई साढ़े बत्तीस मील है और चौड़ाई अट्ठाईस मील। पूरा क्षेत्रफल ७४० वर्गमील है।

अक्षांश और रेखांशके हिसाबसे यह टापू भूमध्य रेखाके दक्षिणमें २० अक्षांश पर और ग्रीनिचके पूर्व ५७ रेखांश पर है। इस छोटे-से टापू पर मनुष्यबस्ती काफी घनी है। कुल बस्ती पांच लाख सत्तर हजारकी होगी। उसमें हिन्दू लगभग दो लाख छियासी हजारसे अधिक यानी ५१ फीसदी होंगे। मुसलमान छिहत्तर हजार यानी साढ़े तेरह फीसदी हैं। कुल भारतवासी सामान्य तौर पर सत्तर फीसदी माने जाते हैं। चीनी लोग तीन फीसदी यानी सत्रह हजार हैं। फ्रेंच और अंग्रेज मिल कर गोरे लोग चौदह हजारसे भी कम यानी ढाई फीसदी हैं। बाकीके लगभग तीस फीसदी या तो अफ्रीकी हैं या मिश्र संतति है।

धर्मके हिसाबसे देखते हिन्दू पचास फीसदी, ईसाई साढ़े पैंतीस फीसदी, मुसलमान चौदह फीसदी माने जाते हैं। इसमें ईसाई 'बस इतने ही है' कहना आसान नहीं है।

इस टापूमें शक्करकी उपज लगभग पांच लाख बहत्तर हजार मेट्रिक टन है, यानी लोकसंख्याके हिसाबसे प्रति आदमी एक टनकी उपज होती है। यह शक्कर पहले भारतमें आता था। अब वह अधिकतर ब्रिटेन, कैनेडा, जापान, ईरान और हांगकांगको भेजा जाता है। इसलिए मॉरिशियसका सारा व्यापार ब्रिटेन पर अवलम्बित है। भारतसे हम अधिकतर कपड़ा भेजते हैं, यह निर्यात भी धीरे-धीरे कम होता जा रहा है।

सन् १९५५में हमारा निर्यात ढाई करोड़ रुपयेसे अधिक था वह अब डेढ़ करोड़से भी कम हुआ है। प्रमाणमें दक्षिण अफ्रीकाका व्यापार वहां बढ़ता जा रहा है और वह स्वाभाविक ही है।

वैसे तो मॉरिशियसके साथ हमारा सम्बन्ध बहुत पुराना है। भारतमें अपना राज्य स्थापन करनेके लिए फ्रांस और ब्रिटेनके बीच जब स्पर्धा चलती थी, और दोनों देशोंके जहाज कैप ऑफ गुड होप कर भारत आते थे उस समय मॉरिशियस उनकी सेनाके लिए बहुत ही महत्त्वपूर्ण अड्डा था। वह फ्रांसके कब्जेमें था तबतक वे ब्रिटिश जहाजोंको सता सकते थे। मॉरिशियस जिसके हाथमें हो वही भारत पर अधिकार कर सकता है यह स्पष्ट होनेसे लार्ड वेलस्लीने भारतमेंसे हमारे लोगोंकी दस हजारकी फौज यहांसे मॉरिशियस भेजी और हमारे तथा ब्रिटिश लोगोंकी बहादुरीसे इसे और आसपासके टापुओंको जीत लिया।

आगे चल कर जब देखा गया कि अफ्रीका या माडागास्करके गुलामोंकी मदद-से खेतीका काम चलाया नहीं जा सकता और गुलामी भी रद्द हो गई, तब हिंदुस्तानमेंसे गिरमिटिया मजदूरोंको बुलाया गया। इन लोगोंने जहाज बांधनेके

कामसे ले कर ईखकी खेती तकके सब काम वहां किये। हमारे देशके लोगोंके खून और पसीनेसे समृद्ध बननेवाले इस टापू पर राज्य अंग्रेजोंका है। जमीदारी अधिकतर फ्रेंच लोगोंके हाथमें है। और अधिक लोकसंख्या हमारे लोगोंकी है। कानूनकी दृष्टिसे वहां हमारे लोगोंको कोई मुश्किल नहीं है। गोरे लोग जितना बढ़ने देते हैं उतने हमारे लोग बढ़ते ही हैं। उनके मनमें भारतके प्रति सांस्कृतिक भक्ति है। ये लोग अगर शिक्षामें प्रगति करें तो अनेकवंशी, अनेकभाषी, अनेकधर्मी जो मानव-संस्कृति दुनियामें जगह-जगह पर इतिहासविधाताकी योजनाके अनुसार विकसित हो रही है। उसमें वे अपना कीमती हिस्सा अदा कर सकेंगे। इस शर्कराद्वीपके प्रति हमारा आकर्षण केवल सांस्कृतिक है। नये-नये देशोंमें जा बसे हुए हमारे लोगोंका सर्वांगीण उत्कर्ष देखनेमें ही हमारा परम सन्तोष है।

१५ दिसम्बर, १९५९

४९. अंग्रेजोंके दिनोंका तिब्बत

[करीब ३७ वर्षके पहले तिब्बतके बारेमें मैंने एक लेख लिख कर गांधीजीके 'नवजीवन' में (३१ अगस्त १९२२) छापा किया था। उस वक्त गांधीजी पहली बार भारतीय जेलमें थे। उन दिनों जैसे भारत परतन्त्र था, वैसे चीन भी अनेक विदेशी राष्ट्रोंके प्रभावके तले दबा हुआ था। भारतकी अंग्रेजी सरकारकी महत्त्वाकांक्षा तिब्बत जीतनेकी थी। कर्नल यंगहजबंडके साथ बड़ी फौज भेज कर उन्होंने तिब्बतकी राजधानी ल्हासा शहर जीत लिया। लेकिन चीनी सरकारके साथ झगड़ा मोल लेनेकी अंग्रेजोंकी तैयारी नहीं थी। इसलिए पाई हुई जीत छोड़ कर यंग हजबंडकी फौज भारत वापस आई। उस जमानेका जिक्र इस लेखमें है। तभीसे मैंने महसूस किया था कि तिब्बतकी भाषा सीखना हमारे लोगोंके लिए अनेक दृष्टिसे आवश्यक है।]

हिन्दुस्तान सरकारकी मददसे हिन्दुस्तान और तिब्बतके बीच तारका सम्बन्ध जोड़ दिया गया है और तारके द्वारा ल्हासाके दलाई लामा और हिन्दुस्तानके वाइसरायके बीच दोस्ती और स्नेहकी वृद्धिके सन्देशोंका आदान-प्रदान भी हो चुका। यह घटना अखबारोंमें प्रकाशित तो हुई, लेकिन उसका महत्त्व लोगोंके ध्यानमें पर्याप्त मात्रामें नहीं आया होगा।

अंग्रेज लोग हिन्दुस्तानमें आये उसका हिन्दुस्तानके इतिहास पर जितना असर हुआ है उससे भी अधिक और उससे भी अधिक बुरा असर हिन्दुस्तानके द्रव्य-बल और मनुष्य बलसे ब्रिटिश सल्तनत हिन्दुस्तानके पड़ोसियों पर काबू पा रही है, उसका है। हिन्दुस्तान द्वारा अरब लोगोंको सताया गया; हिन्दुस्तान द्वारा मेसोपोटेमिया जीता गया, बर्मा जीता गया; हिन्दुस्तान द्वारा ही अफगान लोगोंको छेड़ा गया

और हिन्दुस्तानके खर्चेसे ही लार्ड कर्जनने कर्नल यंगहजबंडके नेतृत्वमें सेना भेज कर तिब्बत पर आक्रमण किया।

अंग्रेज लोगोंके समान अंग्रेजी भाषाकी शक्ति भी अपूर्व है। तिब्बत परके इस सैनिकी आक्रमणको अंग्रेजीमें 'पीस मिशन' का नाम दिया गया है। 'पीस मिशन'के मानी हैं 'शांतिका शिष्टमण्डल'। इस शांतिके शिष्टमण्डलने दीवारके पीछे छिप कर रहनेवाले और तीरकमानसे लड़नेवाले तिब्बती लोगोंको हराया, ल्हासा जीत लिया, लूट लिया और तिब्बतके साथ जबरदस्ती तिजारत चलाई। चीनके साथ कटुता रखना उस समय लाभदायी न होनेके कारण जीता हुआ तिब्बत वापस देना पड़ा। फिर भी तिब्बतके साथका तिजारतका सम्बन्ध जो शुरू हुआ सो कायम रहा ही।

पुराने जमानेमें भगवान् बुद्धके आकर्षणसे चीनी यात्री हिन्दुस्तान आये और हिन्दुस्तानके श्रमण और ब्राह्मण त्रिपिटक और उपनिषदका उपदेश करने चीन गए। आज भी जब हिमालयकी बर्फ पिघल जाती है तब हिन्दुस्तान और तिब्बत-के बीच चार-पांच रास्तोंसे व्यापार चलता है। लेकिन वह तो खुशीका सौदा है। तिब्बतको जो चाहिए वहां वे यहांसे ले जाते हैं और हिन्दुस्तानको तिब्बतसे जो चाहिए उतना ही हिन्दुस्तान ले लेता है। 'मेरे पास माल बढ़ा है इसलिए वह तुझे लेना ही पड़ेगा', ऐसी यूरोपीय व्यापारनीति हमारी नहीं है। आप दरवाजे बन्द रखेंगे तो तोपोंके गोलोंसे उन्हें गिरा देंगे और फिर हमारे तरह-तरह के पदार्थोंसे आपकी प्रजाको ललचाकर उन्हें सुधरे हुए ढंगमें रहते और परतन्त्रता का जुआ कन्धे पर चढ़ाते सिखायेंगे', ऐसी वृत्ति हमारे लोगोंमें अब तक पैदा नहीं हुई है। तिब्बती लोग हमारे सनातन पड़ोसी हैं। भगवान बुद्धकी जन्मभूमिके तौर पर हिन्दुस्तानके बारेमें उनके मनमें अत्यन्त आदर है। पांव पसारनेकी अंग्रेज लोगोंकी नीतिका अनुभव हुआ तबसे हमारे लोगोंको भी वे कैलाससे आगे नही जाने देते, और उसमें उनका कोई कसूर नही है। हिन्दुस्तानके कई लोगोंने अंग्रेजों की नौकरीमें रह कर लामाके भेसमें तिब्बतकी यात्रा की है और गुप्तरूपसे तिब्बतके नक्शे बना कर अंग्रेजोंके लश्करी विभागको दिये हैं। अब जब तिब्बतके साथका नये ढगका व्यापार बढ़ेगा तब कुदरती तौरसे तिब्बती लोग बेचैन हो उठेंगे और फिर बेचैन तिब्बती लोगोंके आक्रमणका हौवा उतने ही कुदरती तौरसे हमें बताया जाएगा और हिन्दुस्तानको अंग्रेजोंकी कितनी जरूरत है यह सिद्ध करनेमें इस नई दलीलका समावेश होगा। तिब्बतके साथ हम सम्बन्ध जरूर चाहते हैं। हिन्दुस्तानके कुछ इतिहासका मसाला तिब्बतमें प्राप्त हो सकनेकी संभावना है। संस्कृत और प्राकृत ग्रन्थोंके तिब्बती तरजुमों परसे हमारा नष्ट हुआ धार्मिक साहित्य हमें फिरसे मिल सकता है। व्यापारकी दृष्टिसे भी हम तिब्बतकी आवश्यकताओंकी नैसर्गिक रूपसे पूर्ति कर सकते हैं। लेकिन यह सब स्वराज्यमें

ही हो सकेगा। स्वदेशी धर्म पहचाननेवाले भारतके द्वारा यह हो, यही ठीक है। वरना एक पड़ोसीको दुश्मन बनानेका पाप ही हमारे सिर पर आ जानेवाला है। और फिर एक तरफ मुसलमान और दूसरी तरफ चीनी, ऐसे दो पड़ोसियोंसे अपना रक्षण करनेके लिए अंग्रेजोंका जुआ कायमके लिए स्वीकारना होगा।

० ० ०

हमारी राष्ट्रीय संस्थाओं और विद्यापीठोंको चाहिये कि वे अभीसे तिब्बती भाषा सिखानेकी तैयारी रखें। वरना तिब्बतमें अंग्रेजी भाषाका साम्राज्य बढ़ेगा और अंग्रेजी भाषा द्वारा हमारे यहां तिब्बतके बारेमें और तिब्बतमें हमारे बारेमें झूठ-सच अनेक ख्यालात फैलेंगे। अंग्रेजोंके और चंद तिब्बती विद्वानोंके प्रयाससे तिब्बती भाषा सीखनेके साधन आज मौजूद हैं। तिब्बती व्याकरण और तिब्बती शब्दकोष आसानीसे मिलते हैं। हमारे यहां पुराने अकर्मण्य लोगोंको वह बेजा महत्त्वाकांक्षा मालूम होगी, लेकिन श्रद्धाकी दृष्टिमें स्वराज्यको प्रत्यक्ष देखनेवाले नवयुवक इसका महत्त्व झट समझ लेंगे। बंगालमें तिब्बती भाषा सीखनेका प्रारम्भ हुआ है। हमारे यहां (पश्चिम भारतमें) भी क्यों न हो? बेशक पुरुषार्थके बिना तो कुछ नहीं हो सकेगा।

२६ मई, १९५९

५०. माडागास्कर देख कर

माडागास्करका चिंतन लम्बे अरसेसे कर रहा हूं। बहुत साल पहले यहांसे कई-एक मुस्लिम भाई गांधीजीके आश्रममें पधारे थे। उन्होने मेरे गुजराती लेख पढ़े थे। उन्होंने मुझे माडागास्कर आनेका साग्रह आमन्त्रण दिया था। इस बातको बीस-तीस साल हो गए होंगे। वह आमन्त्रण और उस समयकी मेरी इच्छा आज पूरी होती देख कर बहुत आनन्द होता है।

भूस्तरशास्त्री (Geologists) कहते हैं कि इस टापूका सम्बन्ध अफ्रीकाके साथ नहीं किन्तु भारतके साथ था। और नृवंशशास्त्री (Anthropologists) समझाते है कि यहांकी प्रजा अफ्रीकी वंशकी नहीं किन्तु पॉलिनीशियन है। हम उन विद्वानोंकी बातका स्वीकार करें।

यूरोपकी बगलमे जिस प्रकार ब्रिटेनका टापू है, एशियाके पूर्वमें जिस तरह जापानका विस्तार है, वैसे अफ्रीकाकी बगलमें माडागास्करका द्वीपेश्वर है। ब्रिटेन और जापान जैसी समृद्धि यह टापू भी विकसित कर सकता है।

इतना तो स्पष्ट है कि माडागास्कर टापू एशिया और अफ्रीकाके बीच बसा हुआ होनेके कारण दोनों संस्कृतियोंका सम्बन्ध और समन्वय यहां हो सकता है।

फ्रेंच लोगोंने अगर चाहा तो वे तीन खण्डोंकी प्रजाका त्रिवेणी-संगम यहां विकसित कर सकते हैं। और इस प्रकार यहांकी अपनी उपस्थिति मनुष्योंके लिए आशीर्वाद रूप बना सकते हैं—

That solomon has wisely spoken
A three-fold cord is not soon broken.

संस्कृतिके त्रिवेणी-संगमका भी ऐसा ही होता है। यहांके मालगासे लोगोंका इतिहास भूतकालकी अपेक्षा भविष्यमें अधिक है। भारतमेंसे आ कर यहां बसे हुए लोगोंमें अधिक संख्या तो गांधीजीके गुजरातके लोगोंकी ही है। महात्मा गांधीजीकी सर्वकल्याणकारी सर्वोदयी मनोवृत्ति इस प्रदेशमें काम करे तो दुनियाके अधिकतर सवालोंका हल यहां ढूढा जा सकता है।

हमारे लोग यहां भले ही धन कमानेकी इच्छासे आये हों, लेकिन यहां आनेके बाद यहांके लोगोंके साथ दोस्ती करनेका उनका कर्तव्य हो ही जाता है। धनकी कमाईकी अपेक्षा मैत्रीकी, स्नेहकी कमाई कम मूल्यवान नहीं होती। राज्यकर्ता फ्रेंच लोग और यहांके धरतीके पुत्र मालगासे लोग—दोनोंके साथ हमारी दोस्ती बढ़े, दोनोंकी हम सेवा करें, और दोनोंके लिए हम आशीर्वाद रूप बन जायं, उससे अधिक भाग्य और क्या हो सकता है ?

फ्रेंच लोगोंका साहित्य देखते यह प्रजा भावना-प्रधान, रसिक और संस्कारी मालूम होती है। पेरिसकी यात्रामें गया था तब वहांके स्थापत्य, वहांकी चित्रकला और वहांके संगीतसे मैं प्रभावित हुआ ही था। फ्रेंच लोग यानी युरोपके कुशाग्र बुद्धिवाले ब्राह्मण ! फ्रेंच भाषाका प्रभाव ब्रिटेनसे ले कर रूस तक सर्वत्र फैला हुआ है। हमें चाहिए कि ऐसी संस्कारी और मीठी भाषाके साथ हमारा जो सम्बन्ध आया है उसका हम पूरा-पूरा लाभ उठायें। और हमारी संस्कृति भी दुनियाकी किसी भी संस्कृतिसे घटिया नहीं है। गुण-दोष सब समाजोंमें होते हैं। लेकिन हम तो अपने पास जो अधिक-से-अधिक अच्छा है वही दुनियाके सामने रखें और दूसरो के पास जो उत्तम है उतना ही प्रसन्नतासे ग्रहण करें।

हमारा संगीत, हमारी चित्रकला, हमारा मूर्तिविधान और हमारे भव्य मन्दिर दुनियामें प्रतिष्ठित बन चुके हैं। उनके पीछेका अध्यात्म लोग धीरे-धीरे समझने लगे हैं। हमें वह सब यहां विकसित करना चाहिए और यहांकी प्रजाके सामने रखना चाहिए।

यहांकी प्रजाका इतिहास अभी मैं पढ़ नहीं पाया हूं। लेकिन सुना है कि यहां-की प्रजाका इतिहास उज्ज्वल है, उनके ढंगसे वह सुधरी हुई प्रजा है। उन लोगोंका जीवन, उनके जीवनके आदर्श हम सहानुभूतिपूर्वक समझ लें और उनके त्योहारों और उत्सवोंमें भाग लें तो हमारा यहांका जीवन समृद्ध होगा।

भारतसे यहां आ कर बसे हुए लोगोंके साथ गुजरातीके द्वारा और हिन्दुस्तानी

के द्वारा मैं सम्पर्क साध सकता हूं यह मैं अपना अहोभाग्य मानता हूं। अफसोसकी बात है कि अपने लिए यहां सात दिनसे अधिक समय नही दे सकता। लेकिन इन सात दिनोंका अगर उत्तम उपयोग कर सकूं तो बहुत कुछ जान लूंगा।

हमारे यहांका एक अनुभव यहां खास ध्यानमें आता है। भारत स्वतन्त्र हो जाने पर हमने फ्रेंच सरकारको प्रार्थना की कि चन्द्रनगर, पॉण्डिचेरी, कारिकल, यायान, माहे जैसे प्रदेश आपके अधीन है उन्हें भारतमें विलीन होनेकी इजाजत दीजिए। फ्रेंच सरकारने भारतीय राष्ट्रकी और सम्बन्धित प्रदेशोंकी प्रजाकी इच्छा का सम्मान करके सारे प्रदेश राजी-खुशीसे हमको सौंप दिए इसलिए हम फ्रांसके कृतज्ञ है। इस प्रकार हमारे पांच प्रदेश हमे वापस लौटा कर फ्रेंच सरकारने भारत-को अपना कायमी मित्र बना लिया है। हमने इस दिलदार प्रजाकी मुहब्बतकी कदर करके तय किया है कि पॉण्डिचेरीमें फ्रेंच भाषाका और फ्रेंच संस्कृतिका एक स्वागतार्ह अड्डा कायम रहेगा और हमारे लोगोंको फ्रेंच भाषा सीखनेके लिए हम प्रोत्साहन देंगे।

अगर पुर्तगालके लोग फ्रांसका अनुकरण करके गोवाके लोगोंको इसी प्रकार भारतमें विलीन होने देगे, तो अंग्रेजी और फ्रेंचके साथ-साथ पुर्तगाली भाषा और संस्कृतिको भी भारतमे सम्मानका स्थान मिलेगा और फ्रांस और भारतके बीच जिस प्रकार अत्यंत मधुर सम्बन्ध बंध गया है, उस प्रकार पुर्तगालके साथ भी बंध जाएगा।

मेरी मान्यता है कि लॅटीन प्रजाओंके साथ विशेष रूपमें हमारा स्वभाव मिलता-जुलता है। यह बात सही हो तो फ्रांस, स्पेन, पुर्तगाल, इटली, रुमानिया आदि देशोंके साथ—उनकी भाषा, उनके साहित्य और उनकी संस्कृतिके साथ—हमें अपना परिचय बढ़ाना चाहिए। गुजरातियोंके लिए यह मुश्किल नही है।

यहां रहे हुए गुजराती अपनेको सारे हिन्दके प्रतिनिधि समझ कर यह सारा भार सिर पर ले तो उनके द्वारा भारतकी और मानवजातिकी उत्तम सेवा होगी। मेरी दृष्टि राजनीतिक नही, किन्तु सांस्कृतिक है। संकुचित राजनीतिसे लोग एक दूसरेसे अलग हो जाते हैं, विमुख बनते हैं। जबकि संस्कृतिका परिचय बढ़नेसे लोग नजदीक आते हैं, उनका जीवन समृद्ध बनता है और फिर ईश्वरके आशीर्वाद प्राप्त हो सकते हैं। हम सबकी संस्कृतियोंमेंसे कल्याणकारी तत्त्वोंका स्वीकार करें और हमारे पास जो अधिक-से-अधिक अच्छा हो उसे दुनियाके सामने रखें—इस उद्देश्य से ही Indian council of cultural relations की ओरसे मैं यहां आया हुआ हूं और अगर हो सके तो माडागास्करके साथ सांस्कृतिक सम्बन्ध बढ़ाना चाहता हूं। मुझे विश्वास है कि उसमें आपकी पूरी-पूरी सहायता मुझे मिलेगी।

अपने-अपने देशकी और सारी दुनियाकी सेवा करनेवाले लोगोंका अनुभव कहता है कि दुनियाके सभी सवालोंका हल शिक्षा द्वारा ही हो सकता है। सवाल

राजनीतिक हों, आर्थिक हों, हुनर-उद्योगके हों या कला-कौशल्यके हों, सबका हल और विकास आइंदा शिक्षा द्वारा ही हो सकेगा।

मनुष्य जातिको सुधारनेका काम अनेक धर्मोंने किया। धर्मकी शक्ति सचमुच अद्भुत है। सारी मानवजातिने अगर कोई प्रगति की है तो वह भिन्न-भिन्न धर्मों-के द्वारा की है।

लेकिन हमें यह भूलना नहीं चाहिए कि धर्मोंके स्वरूपमें समय-समय पर परिवर्तन होते आये हैं। धर्मोंने उस-उस समाजको समय-समय पर नई दिशा बताई है। लेकिन जब अनेक समाजके लोग अपने-अपने धर्मोंके साथ एकत्र आते है तब सभी धर्मोंकी कसौटी हो जाती है। धर्मके नामसे भेदभाव बढ़ें, मनुष्य-मनुष्यमे दीवारें खड़ी हो जाएं तो हमे समझना चाहिए कि हमारे धर्मके आकलनमे कोई गम्भीर दोष है। विविधतामे एकता Unity in diversity यह जीवनका मूल है। लेकिन उसमें अगर विविधता, अलहदगी और भेदको ही हम महत्त्व देंगे और एकताकी आवश्यकता भूल जायेंगे तो धर्म-अधर्म बन जाएगा और हम जीवनके संघर्षमें हार जाएंगे।

हम स्वदेश छोड़ कर इतने दूर आ बसे हैं, इसमें भी ईश्वरका हेतु है। हमें पास-पास लानेके लिए—एक करनेके लिए ही ईश्वरने हमे इतने दूर आनेकी प्रेरणा दी। अब हम ब्राह्मण—बनियेका भेद आगे न करे। शिया और सुन्नी, आगाखानी और इश्नाशरी ऐसे भेदोंमें उलझ कर अगर हम अलग-अलग रहेंगे तो हम हार जायेंगे। अगर सबका खुदा एक है, मादरी जबान एक है, देश एक है, तो समाजके रूपमें एक होते और रहते हमें आना चाहिए। वैसा करते बारीक-बारीक वस्तुका आग्रह या जिद छोड़ देनी पड़ेगी। सभी कौमोंके लोगोंका एक ही तालाबमें से पानी पीना, एक ही नदीमें नहाना और एक ही शहरमे बसना जितना स्वाभाविक है, उतना ही, यह भी स्वाभाविक हो जाना चाहिए कि हम सब एक छप्परके नीचे आ कर एक-दूसरेको साक्षी रख कर अपनी उन्नतिका विचार करें। हमारे त्योहार अलग-अलग हों तो दोनों त्यौहार एक साथ मनानेकी हमारी तैयारी होनी चाहिए। दोनोके लिए एक ही दिन हो तो भी अच्छा है अथवा दोनों दिनों पर दोनों फिरसे साथ मिल कर त्यौहार मनायें तो भी अच्छा है। दीवालीके त्योहारमे जब सभी लोग साथ मिल कर आमोद-प्रमोद करेंगे तब हमारे जीवनकी सुवास सर्वत्र फैलेगी। और ईसामसीहका बड़े दिनका त्योहार और ईदका त्योहार अगर सब लोग अपनाये तो किसीका कोई नुकसान नहीं है। सभी तरहसे लाभ ही लाभ है।

यह सब तभी होगा जब हम अपने बच्चोंको उस प्रकारकी शिक्षा देंगे। गांधीजीके आश्रममें हम सबकी प्रार्थना साथ बोलते थे, सबके त्योहार सब मनाते थे। एक-दूसरेकी भाषा उत्साहसे सीखते थे। इसलिए हमारा जीवन समृद्ध-संपन्न हुआ था।

हिंदुस्तानमेंसे हम मुट्ठीभर लोग यहां आये हैं। अगर हमारे बीच बारह भाई तेरह चूल्हे जैसी हालत हो जाय तो हमारे लिए जीना मुश्किल हो जायगा। सच पूछें तो हमें आपसकी एकता बढ़ा कर, यहांके लोगोंके साथ मिलनेके प्रसंग भी ढूंढने चाहिए।

मैंने जब सुना कि यहांके लोगोंने एक सुन्दर उत्सव करके एक बड़ी रकम इकट्ठी की और उसे यहांकी प्रजाके अगुओंको सेवा-कार्यके लिए दे दी, तब मैं हर्षके मारे फूला न समाया। आप लोगोंको ऐसा कदम उठानेका सूझा इसके लिए मैं आपको मुबारकबाद देता हूं। यही सच्चा रास्ता है। यही असली धर्म है।

पूर्व अफ्रीकामें भी हमारे लोगोंने इसी तरह अपना सद्भाव अमली कार्य द्वारा व्यक्त किया है। एक गुजराती भाईने कंपालामें एक सुन्दर टाउनहॉल बंधवा कर शहरको भेट किया। दूसरे एक भाईने (वे भी गुजराती हैं) एक कॉमर्स कॉलेज तैयार करवाया और सभीके लिए खुला रखा। उसमें सिर्फ हिन्दी विद्यार्थी ही नहीं बल्कि अफ्रीकन, गोरे सभी पढ़ सकते हैं।

नैरोबीमें एक गांधी अकादमी स्थापित हुई है। उसे गांधी स्मारक निधिकी ओरसे भारतने पन्द्रह लाख रुपये दिये। और पूर्व अफ्रीकाके अपने लोगोंने एक करोड़ शिलिंग इकट्ठे कर दिये। इस तरह यदि हम दिल उदार करेंगे, सभीको अपनायेंगे तो कहीं भी हम अप्रिय नही होंगे। सभी हमें चाहेंगे और हमे सेवा करने का सन्तोष मिलेगा।

२

जीवनका आनन्द वे ही ले सकते है और सेवा वे ही कर सकते है जिनके पास आनन्द मनाने जैसा अपना कुछ हो और सेवा द्वारा देने जैसी भी कुछ पूंजी हो।

अपनी वह पूजी, अपनी वह विरासत और अपनी प्रतिष्ठा गुजराती भाषा है। गुजराती भाषा, गुजराती साहित्य और गुजराती सामाजिक जीवन इन तीनोंमें हमारी जड़ें जब तक मजबूत होंगी तब तक हमारा अपनापन टिका रहेगा। यह मीठी मधुर भाषा हिन्दू-मुस्लिम, पारसी, ईसाई सभीकी है। और उस भाषाकी भक्ति करनेवाले मेरे जैसोंकी भी है। मुझे भय है कि यहांके बसनेवाले गुजराती लोग अपनी इस मादरी जबानका महत्त्व बराबर नही समझते। अपने बच्चोंको गुजराती भाषा सिखानेके बारेमें वे कुछ बेदरकार हैं। कई भाई तो बच्चोंके साथ घरमे भी फ्रेंचमें अथवा ऐसी कोई दूसरी भाषामे बोलते हैं। फिर बच्चे गुजराती न समझें तो आश्चर्य क्या ?

इन बच्चोंको हिन्दुस्तान ले जाने पर वे वहां अब जायेंगे और कहेंगे कि 'हम नहीं समझ सकते लोग क्या बोलते हैं। और हमारी फ्रेंच भाषा यहां कोई नहीं समझता। हमें एक दिन भी यहां नहीं रहना। चलो वापस माडागास्कर।'

यहां रहनेवालोंको मालागासे और फ्रेंच दोनों भाषाएं आनी चाहिए। हमारे

बच्चोंको यहांकी ही तालीम दी जाय यह दीये जैसी स्पष्ट बात है। लेकिन बच्चों-को गुजराती पढ़ानेकी सुविधा तो होनी ही चाहिए। उसके लिए खास शिक्षक रखें। गुजरातीमें सभी धर्मोंकी अच्छी किताबें भी मिलती हैं अतः हमारी गुजराती हमारी सभी जरूरतें पूरी करनेमें समर्थ है। गुजरातीके आशीर्वाद मांके आशीर्वाद सरीखे हैं।

५१. माडागास्कर

माडागास्कर और नैरोबीके समुद्रके बीच समुद्रके
ऊपर शामके चार बजे।
६-१२-५६

चि० प्यारे मीठे दीपक,

हमारे हवाई जहाजमें चार बजे हैं। इस वक्त नई दिल्लीमें साढ़े छः बजे होंगे। छः तो जरूर बजे होंगे। हमने माडागास्करके टापूमें सात दिन पूरे किये। इसमें हमने चार स्थान देखे। राजधानी तानानारीव, उसके बाद मांताशु, जहां पर हाथकी अंगुलियोंके जैसा सुन्दर सरोवर बनाया हुआ है : वहांसे लौट कर हम आंत्सिराबे देखने गये। वह स्थान राजधानीसे सवा सौ मीलकी दूरी पर दक्षिणकी ओर है। वहां गरम पानीके झरने हैं, जिनमें नहानेसे कई बीमारिया दूर होती हैं। शहर सुन्दर है, ठण्डा है। एक बड़े तालावमें हमें एक फ्रेंच सज्जनने अपनी किश्तीमें बिठा कर घुमाया। बड़ा आनन्द आया। बादमें दूसरे दिन हम हवाई जहाजमें बैठ कर माजुगा गये। यह एक पुराना बन्दरगाह है। वहां हमारे देशके हिन्दू-मुसलमान सौ-दोसौ बरसके पूर्व जा कर रहे हैं। माजुंगाके पास तीन नदियोंका पानी समुद्रमें मिलता है। उनके नाम विचित्र हैं।

हम जहां जाते हैं अपने देशके इन लोगोंसे मिलते है, उनके सुख-दुःखकी बातें सुनते हैं। उनको सलाह देते हैं। सबके सब लोग गुजराती हैं। उनके बच्चोंको गुजराती कभी-कभी कम आती है।

माडागास्कर बहुत बड़ा टापू है। अंग्रेजोंके देशसे भी बड़ा। जापानसे भी बड़ा। एक हजार मील लम्बा, दोसौ-तीनसौ मील चौड़ा। इसमें रहनेवाले यहांके लोगोंको मालागास कहते हैं। यहां राज्य फ्रेंच लोगोंका है। ईसाई पादरी लोग बच्चोंकी पढ़ाईका इन्तजाम अच्छा करते हैं।

हमारे देशके लोग यहां आ कर अच्छा कमाते हैं। बड़ी शानसे रहते हैं।

यहांके फ्रेंच गवर्नरको हम मिले। उसने हमको चाय पीनेके लिए बुलाया था। दुभाषीकी मददसे हमारी बातें हुई। योगके बारेमें उन्होंने बहुत पूछा।

अब हम माडागास्कर छोड़ कर पूर्वी अफ्रीका जा रहे हैं। शामको नैरोबी पहुंचेंगे।

नई दिल्लीमें अब ठंड बढ़ी होगी। यहां गर्मीके दिन शुरू हुए हैं। यहां हमने एक नया शाक खाया। Artichoke नामका एक विचित्र फूल है। उसको उबालकर मेज पर लाते है। हरएकको एक-एक देते है। खानेवाले फूलकी एक-एक पंखुड़ी उखाड़ कर एक तेलमें डुबो कर उसे दांतसे कुरेद कर चूस लेते हैं। और सख्त भाग फेंक देते हैं। स्वाद आलूके जैसा है। सब पंखुड़ियां चूसनेके बाद नीचे बिस्किटके जैसा भाग रहता है। वह भी आलूके जैसा ही अच्छा लगता है। खानेकी असली चीज़ वही है। आर्टिचोक हमने सबसे पहले देखा मॉरिशियसमें। उसे खानेका तरीका वहांके गवर्नरने हमें सिखाया।

यहां अनन्नास बहुत होते हैं। रोज हम उसका रस पीते हैं।

हम पूर्वी अफ्रीकामें बीस दिन घूम कर तारीख २७ दिसम्बरको बम्बई पहुंचेंगे। फिर वहांसे दिल्ली।

चि० सरोजने यहाकी बहनोंके साथ अच्छी दोस्ती की है। उनमें ज्यादातर मुस्लिम हैं। हिन्दू कम हैं।

अब लिखना बन्द करता हूं क्योंकि हमारा हवाई जहाज झाझीबारके टापू परसे गुजरेगा।

—काका साहेबके सप्रेम शुभाशिष सबको

५२ हमारे पड़ोसीका नवजीवन

अफ्रीकाके पूर्व किनारेके पास जो बड़ा टापू है—माडागास्कर—वहां मैं कुछ महीने पहले गया था। भूस्तरशास्त्र कहता है कि प्राचीन कालमें भारतका और माडागास्करका घनिष्ठ सम्बन्ध था। भारतके पशु-पक्षियोंकी हड्डियां वहां मिलती हैं, जो अफ्रीकामें नहीं पाई जाती। जो हो माडागास्कर खासा बड़ा टापू है। उत्तरसे दक्षिण एक हजार मील पूरबमें पश्चिम दो सो—तीन सौ मीलकी चौड़ाई।

माडागास्करका पुराना जीवन भले ही आदिवासियोंके जैसा हो, लेकिन उसने काफी प्रगति की है, खास करके वहांकी होवा जातिने, जिसका वहां प्राधान्य है।

वहांके लोगोंसे बातचीत करते हुए मैंने कहा था कि यूरोप, एशिया और अफ्रीका इन तीन खण्डोंके पास तीन बड़े टापू हैं, उनका भाग्य गैर-मामूली है।

यूरोपके उत्तर-पश्चिममें ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंडके दो टापू हैं, जहांके लोगों ने अपने लोकविलक्षण पुरुषार्थसे एक बड़ा साम्राज्य स्थापित किया। दुनिया भरमे

अपनी तिजारत चलाई और वहांके लोग अमेरिका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया—अनेक खण्डोंमें जा कर बसे हैं।

एशियाके उत्तर-पूर्वकी ओर जापानके चार बड़े टापू हैं। इस जापानने देखते-देखते पश्चिमका अनुकरण करके बड़ी प्रगति की। एक बड़े साम्राज्यकी पूर्व तैयारी की। रशिया और चीन जैसे बड़े देशोंके खिलाफ लड़ कर अपनी शक्तिका परिचय दिया। सिर्फ अमेरिका ही जापानको कुछ दबा सका है।

इसी तरह अफ्रीकाके मध्य-पूर्वकी ओर माडागास्कर देश है। भौगोलिक दृष्टिसे उसका स्थान मार्केका है। उस टापूमें खनिज-सम्पत्ति काफी है। और उसकी मदद करनेवाले देश भी अब कम नहीं हैं। उनका भूतकाल तो मामूली है। लेकिन वहांकी जनता चाहे तो अपना भविष्यकाल उज्ज्वल बना सकती है।

मैंने माडागास्करकी मुलाकात १९५९के दिसम्बरमें ली थी। थोड़े ही महीनों के बाद माडागास्करको फ्रेंच साम्राज्यमेंसे स्वतंत्रता मिल गई। वहांके लोगोंने अपने टापूका नया नाम रख दिया है—मालगासे। उत्साहके साथ वे अपने भविष्यके विकासके बारेमें सोच रहे हैं।

और आश्चर्यकी बात है कि बेल्जियमके अधिराज्यसे मुक्त होनेकी वेदना सहन करनेवाले कांगो देशके भले-बुरे नेता लोग अपने भाग्यका कुछ निर्णय करनेके लिए इसी माडागास्कर या मालगासेकी राजधानी तानानारिवमें इकट्ठा हुए थे। और व कहते हैं कि सबमें समझौता हो चुका है और अब वे शान्तिसे अपने देशकी प्रगति साध लेंगे।

यह सब कहां तक सही है, विश्वासपात्र है, हम नहीं जानते। लेकिन यह देख कर कि अफ्रीकी लोगोंको अपने भाग्यकी मन्त्रणा करनेके लिए तानानारिवका स्थान पसन्द करनेका सूझा, हमें बड़ा आश्चर्य हुआ। जो हो हम लोगोंको मालगासे के विकासका निरीक्षण विशेष रूपसे करना होगा। सौ साल पहले मालगासेके साथ हमारी तिजारत अच्छी चल रही थी। मालगासे पर फ्रेंच लोगोंका राज्य मजबूत होते ही उन लोगोने हमारी तिजारत बहुत कुछ दबा दी। अब हमारे व्यापारियोंका वहां आना-जाना पहले जैसा आसान नहीं रहा तो भी हम वहांके लोगोंकी सेवा जरूर कर सकते हैं। मालगासे भारतका पड़ोसी देश है जिसके साथ हम सौमनस्य—goodwill -- बढ़ाना चाहते हैं।

१ अप्रैल, १९६१

५३. रशियाके पत्र

मास्को
९-७-६२

प्रार्थना मन्दिरके स्थायी और अस्थाई सदस्यगण,

सोचा था कि रोज आपको यहांसे पत्र लिखूं, लेकिन हो नहीं सका। सुबहकी प्रार्थनाके समय आप सब याद आते हैं।

पालमसे निकले और लाहौर, काबुलका स्मरण करते हिंदुकुश पहाड़ लांघ दिया। इन दिनों पहाड़ों पर बर्फ कम होता है, इसीलिए उसकी शोभा अधिक होती है। हमने हवाई जहाजमें खाना खाया और ताशकन्द पहुंच कर भी। ताशकंद तक भारतका हवाई जहाज था। बादमें रूसी। रूसी जहाजमें सादगी थी, लेकिन चलता था उत्तम ढंगसे। हमारे साथियोंकी और हवाई जहाजोंकी नजाकत इनमें नहीं थी।

शामका जहाजमें ही खाया, रास्तेमें उराल पहाडोंमें बसे हुए एक शहर—स्वेडरलूस्कमें उतरे। थोड़ा आराम करके भारतकी मधरातके समय मॉस्को पहुंचे। स्थानिक कालमें साढ़े तीन घण्टेका फर्क है। यहां रातको सवा नौ बजे सूर्यास्त हुआ। हवाई अड्डेसे मॉस्को बीस मील दूर है। और तभी हमने सूर्यास्त देखा। यहांके एक अर्थशास्त्री प्रोफेसर श्री उलयानोफ्स्की—जिन्होंने मुझे दिल्लीमें टॉलस्टॉयके बारेमें व्याख्यान देते सुना था—हमसे मिले। प्रथम आया मॉस्को विश्वविद्यालय, इमारत बहुत बड़ी, गगनचुम्बी है। विद्यार्थियोंके छात्रावास पांच-पांच आठ-आठ मंजिलोंके हैं। मॉस्कोमें सबसे अच्छे जो चार-पांच होटल हैं, उनमें भी जो सबसे अच्छा है युक्रेन होटल उसमें हमें ठहराया है। इसमें १३ मंजिलें हैं। हम पांचवी पर ठहरे हैं। भारतसे आये हुए मण्डलके सदस्य करीब १३० हैं। अमेरिकासे २०० आये हैं। दुनियाके कुल १०९ राष्ट्रोंके प्रतिनिधि कुल २५०० होंगे। इनमें अफ्रीकाके चालीस छोटे-बड़े देशोंके प्रतिनिधि भी हैं। जापानसे १५० प्रतिनिधि आये हैं। उनमें हमारे पहचानवाले यासुई काबरा उनके मण्डलके प्रमुख हैं।

दो दिन हम लोगोंने अपनी समितियां बिठाई और बसमें घूम कर शहर भी देखा। शहरके बारेमें बादमें लिखेंगे। इन लोगोंने लेनिनके शवको मसालेकी मदद-से 'ममी'के जैसा बनाया है। हमने उसकी प्रतिकृति देखी। जैसे हम लोग राम और कृष्णकी पूजा करते हैं, ये लोग लेनिनका इतना ही आदर करते हैं।

लेनिनकी वह समाधि हम देख आये। जमीनके विवरमें काले संगमरमरकी वह समाधि है। उसके बारेमें भी बादमें लिखेंगे।

हम यहां नाटक देखने नहीं गये। आर्मीनियन लोगोंके तरह-तरहके लोकनृत्य देखे और कल देखी स्कॅन्डिनेवियन लोगोंकी एक नृत्य-नाटिका-ballet और साथ

रूसका वृन्दवादन सुना। बड़ा आनन्द आया। अपने देशमें मैं नाटक सिनेमा शायद ही कभी देखता हूं। लेकिन विदेशका जीवन और वहांकी संस्कृति समझनेके लिए नृत्य संगीत आदिका उपयोग है।

आज हमारी परिषद शुरू हुई। जिस मकानमें हम इकट्ठा हुए हैं, बड़ा भव्य है। इतना बड़ा मकान शायद ही कहीं होगा। दोपहरको सातवीं मंजिल पर देश-देशके ढाई-तीन हजार लोग एक साथ टेबल-कुर्सी पर खानेको बैठ सके। और सबको हर तरहका सन्तोष था। यहां अंग्रेजी जाननेवाले बहुत कम मिलते हैं। चन्द रूसी लोग बहुत अच्छी हिंदी बोलते हैं। भारतकी सब भाषाओंके अच्छे-अच्छे ग्रंथोंका अनुवाद कर रहे हैं।

खास बातें मिलने पर करेंगे। सब लोग प्रार्थनामें आते होंगे।

० ० ०

१६-७-६२

आप जानते है कि अबकी बार प्रार्थनामें पढ़नेके लिए रोज कुछ लिख भेजनेकी इच्छा थी। लेकिन इतने दिनोंमें किसीको भी लिख नहीं सका। आज तारीख १६ है। १४ की रात तक परिषद् चली। कल जल्दी सुबह हम यहांसे निकल कर २२० किलोमीटरकी यात्रा (मोटरकी) करके काउन्ट लिओ टॉलस्टॉयके स्थान 'यास्नाया पोल्याना' की यात्रा करके आये। जिस कोच पर उनका जन्म हुआ और जिस उपवनमें उनकी अस्थियां आराम कर रही हैं और जिस कमरेमें वे लेखन कार्य करते थे और जहां किसानोंसे मिलते थे—वह सब देखा। आज और कल मास्को घूमेंगे और रेलके रास्ते परसों लेनिनग्राड पहुंच जायेंगे। दोनों शहर रूसकी राजधानी हैं। आजके हिसाबसे तारीख २५ को भारत पहुंचनेकी बात है। तय होते ही लिखेंगे।

एक दिन हम सारे रूसके ग्रीक चर्चके पॅट्रिआर्कके आमन्त्रण पर Zagorsk गए थे। वह स्थान यहांसे लगभग ८० किलोमीटर पर है। (अब हमें भी मील भूल कर किलोमीटरके आदी बनना चाहिए)।

यहांकी प्रजा पुरुषार्थी है। तन्त्रनिष्ठ भी है। बाकी सब बातोंमें आदमी तो एकसा ही है। प्रेम, आतिथ्य, सेवाभाव हर देशमें पाये जाते हैं। यहां भारतके बारे में आदर खूब है। इन दिनों हवा अच्छी है। शामको नौ बजे सूर्यास्त होता है और सुबह चार बजेसे पहले सूर्योदय। आदमी सोये कितना!

यहां कहीं भी कामोत्तेजक चित्र नहीं दीख पड़ते। वैसा साहित्य भी नहीं है। बाल-साहित्यमें द्वेष या युद्धका प्रचार नहीं है। शहरमें और गांवमें सब लोग प्रसन्न दीखते थे। पोशाकमें अमीर-गरीब ज्यादा भेद कहीं नहीं। सबके कपड़े साफ-सुथरे दीखते हैं।

जिस होटलमें हम ठहरे हैं, मॉस्कोके सबसे ऊंचे मकानोंमें एक है। कुल २८ मंजिलें हैं। आप सबको

काकाके सप्रेम वंदेमातरम्

५४. जागतिक यात्राधाम—रूस

रूस जानेकी मेरी इच्छा बहुत पुरानी थी। सन् १९१२ या १३ में जब मैं सिन्धमें था, तब मैंने सुना कि शिकारपुरके व्यापारियोंकी हुंडी पश्चिम एशियामें मॉस्को तक चलती है। मेरा विचार हुआ कि सिन्धसे मॉस्को और सेन्ट पिटसबर्ग तक पैदल जाऊं। शिकारपुरके किसी अच्छे व्यापारीको कुछ धन दे कर उससे हुंडियां ले लूं। और इस तरह भारतसे रशिया तकका सफर करूं। इतनेमें सन् १९१४ का जागतिक युद्ध शुरू हुआ। और रूस जाना नामुमकिन हुआ।

सन् १९१५ के प्रारंभमें गांधीजी भारत आये। मैं उनसे शांतिनिकेतनमें मिला और मेरे जीवनमें बड़ा परिवर्तन हुआ। स्वराज्य पाये बिना विदेश नहीं जाना, यह पुराना विचार मजबूत हुआ और रूस जानेकी बात रह गई।

स्वराज्य हुआ। गांधीजी चले गये। और मैंने अफ्रीका, यूरोप, जापान, चीन, अमेरिका आदि देशोंका सफर किया। लेकिन रूस जानेका मौका ही नहीं आया। मनमें डर पैदा हुआ कि बुढ़ापा आयेगा, फिर रूस जानेका रह ही जायेगा। इसलिए सन् १९६२ के मई महीनेमें जब मौका दीख पड़ा, झट उसे कबूल किया। चिरंजीव सरोज और मैं इक्कीस दिनकी रूसकी यात्रा कर आये। ताशकंद, मास्को, लेनिनग्राड, ये तीन शहर हमने देखे और वासनापोलियाना और झागोर्स्क ये दो गांव देखे।

बड़ा आनंद आया। खूब देखनेको मिला। सोचनेको इससे भी अधिक मिला। और मानो, नये ही आदमी बन कर हम वहांसे वापस आये। रूसके उस सफरका बयान विस्तारसे लिखनेका संकल्प था, लेकिन कार्यवश या आलस्यवश रह गया। इतनेमें हमारी इस यात्राके एक साथी प्रो० शेरसिंहजीका लिखा हुआ यह सुंदर यात्रा-प्रसंग हाथमें आया। भगवानकी कृपासे मेरे भाग्यमें लिखा हुआ कि अनेकानेक, सुंदर-सुंदर और उद्बोधक किताबोंके लिए मैं प्रस्तावना या भूमिका लिखूं। चित्तने मुझसे कहा कि "तुम्हारा अपना यात्रा-वर्णन कब होगा भाग्य ही जाने। शायद होगा ही नहीं। तो यह अच्छा प्रवासवर्णन हाथमें आया है, तो इसकी भूमिकामें लिख डालो थोड़ा कुछ जो तुम्हें रूसकी यात्राके बारेमें लिखना है।"

देखा कि इस किताबमें रूसके बारेमें खूब अभ्यासपूर्ण ढंगसे लिखा है। रूस हो

आ कर भी जो मैं नहीं जानता था, इस किताबसे मुझे मिला। फिर मन मुझसे कहने लगा कि "एक पेड़ परसे दूसरे पेड़ पर कूदनेमें आनंद लेनेवाले पक्षीके जैसी उड़ती यात्रा तुमने की। तुम्हें इस यात्राकी भूमिका लिखनेका अधिकार ही क्या है?" मैंने सब संकोच छोड़ कर मेरे मनसे कहा कि "यही तो मेरा अधिकार है। रूसकी यात्राका आनंद तो मेरे पास है ही। और अठहत्तर वर्षकी उम्रके दावे किसी भी किताबके साथ अपनी भूमिका जोड़ सकता हूं।"

आत्मविश्वासके साथ मैंने प्रस्तावना लिखनेके प्रस्तावका स्वीकार किया और अब संकल्पकी शिथिलताके कारण देरी न हो जाय ऐसा सोच कर चार शब्द लिख रहा हूं।

हमारे बचपनमें रूसकी ओर हमारा ध्यान इसलिए जाता था, कि भारतमें अपना साम्राज्य मजबूत करके बैठे हुए अंग्रेजोंके मनमें दिन-रात रूसका ही डर रहता था।

उन दिनों, काश्मीर, चित्राल, काबुल आदि प्रदेशके बारेमें एक रोचक किताब देखी थी, जिसका नाम था Where three empires meet. भारत परका ब्रिटिश साम्राज्य, झारका रशियन साम्राज्य और चीनके बादशाहका मरनेकी तैयारीमें पड़ा हुआ चीनी साम्राज्य। ऐसे तीन साम्राज्योंकी सरहदें जहां इकट्ठा होती हैं, वह स्थान तो जरूर देखना चाहिए, ऐसा खयाल मनमें बार-बार आता था। (जब हम दिल्लीसे ताशकंद गये तब एशियाका यह महत्त्वका प्रदेश विमानकी ऊंचाईसे देखते उसी पुरानी किताबका स्मरण हुआ था। उन तीनों साम्राज्योंका अंत हुआ है। हैलेसिलासीके छोटे-से इथिओपियन साम्राज्यको हम भूल जाएं तो अब दुनियामें एक भी साम्राज्य बचा नहीं है।) रूसके क्रान्तिकारी लोगोंने झारके खिलाफ कई बार बगावत की और वे लोग या तो मारे गये या सुदूर एशियाई साइबेरियामें सड़ कर मरनेके लिए भेजे गये। आखिरकार रशियामें बोल्शेविज़मका जन्म हुआ, जिसे आज कम्युनिज़म कहते हैं। झारके सारे वंशका नाश हुआ। सेन्टपिटर्सबर्गवाली राजधानीको प्रथम शुद्ध रशियन नाम मिला वही पेट्रोग्रेड और अब राजधानी 'लेनिनग्रेड' नामसे, दुनियामें मशहूर है।

बचपनके दिनोंमें रूसी साम्राज्यके पिता पिटर दी ग्रेटकी जीवनी पढ़ी थी। इस महान सम्राटने अपनी राजधानी मास्कोसे समुद्र किनारे ले जा कर रूसको एक दरियाई राष्ट्र कैसे बनाया इसका इतिहास हम जानते थे। और "नर करनी करे तो अशक्य वस्तु शक्य हो सकती है', इतना बोध हम उस परसे ले सके थे।

उसके बाद जब मैं कॉलेजमें पढ़ता था, तब मैंने रूस और जापानके संघर्षकी बात सुनी। एक छोटे-से जापानने पश्चिमकी रणविद्या और धनविद्या सीख कर रूसको कैसे हराया, यह रोमहर्षण इतिहास हमने सुना और तभीसे एशियाके राष्ट्र भी सिर ऊंचा कर सकते हैं, यह विश्वास हमारे दिलमें बंध गया। रूसका प्रचंड

दरियाई बेड़ा-बाल्टिक समुद्रसे निकला और सात समुद्र लांघ कर जापानका नाश करनेके लिए पीले समुद्र तक पहुंच गया। लेकिन एक ही दरियाई लड़ाईमें उसे जलसमाधि मिल गई। यह सब समाचार सुन कर हमारा हृदय तो उछल पड़ा था।

रूसो-जापान युद्धके कारण झारके साम्राज्यका अन्त हुआ और उसकी जगह विश्वमानव लेनिनके नेतृत्वमें रूसी जनताने साम्यवादी नवजीवनका जन्म लिया। तबसे उस राष्ट्रके प्रति हमारे मनमें कुतूहल और आदर पैदा हुआ।

रूसका नाम सुनते ही वहांके ऋषितुल्य मनीषी और साहित्य-सम्राट टॉलस्टॉयका स्मरण होता ही था। रूसी लेखक टॉलस्टॉयके नामके साथ सम्राट शब्द बिलकुल फबता नहीं किन्तु टॉलस्टॉयके जागतिक प्रभाव और कीर्तिका यथार्थ वर्णन दूसरे शब्दसे हो नहीं सकता। टॉलस्टॉयका प्रख्यात उपन्यास, 'रिसरॅक्शन' मैंने पढ़ा था। ग्रंथकारके विचारोंका कुछ खयाल तो उससे मिला था। किन्तु टॉलस्टॉयको मैं ऋषि समझने लगा, गांधीजीका सहवास प्राप्त होनेके बाद ही। टॉलस्टॉयका जीवन, चिंतन और लेखन सचमुच जागतिक महत्त्वका है।

तबसे बारबार मनमें संकल्प उठता था कि टॉलस्टॉयकी जन्मभूमि और कार्यभूमि 'यास्नाया पोलियाना' की यात्रा करनी ही होगी।

जिस तरह रूसोजापान महायुद्धके कारण जापानी प्रजाकी बहादुरीके प्रति आदरभाव मनमें दृढ़ हुआ था, उसी तरह स्टैलिनके नेतृत्वमें पिछले महायुद्धमें रशियन प्रजाने हिटलरकी अजेय जर्मन फौजका सामना किया उसका वर्णन पढ़नेके बाद रशियन प्रजाकी वीरताके प्रति मनमें आदर होने लगा। सचमुच जर्मन और रशियन, दोनों देशके नवयुवक शौर्यके लिए जगतमें अग्रपूजाके अधिकारी हैं।

झारके दिनोंमें जो साम्राज्य मुमूर्षु था, मरनेको पड़ा था, वही लोकसत्ताकी अमृत संजीवनी पाते ही समर्थ बन कर दुनियाके अग्रगण्य राष्ट्र अमेरिकाका प्रतिस्पर्धी बन गया, यह इस शताब्दिका सबसे बड़ा चमत्कार है। इसीलिए मनमें आता था कि जीते जी एक दफे इस अद्भुत देशकी यात्रा करनी ही चाहिए। नहीं तो इसी एक संकल्पके कारण मर कर नया जन्म लेना पड़ेगा। रूस देशसे हमें बहुत कुछ सीखना है। शासनशक्ति और जनताके बीचका द्वैत जितना कम हो सके इतना उसने किया है। वहां अमीर और गरीब ऐसा भेद अब नही रहा। समस्त प्रजाकी शिक्षा, समस्त प्रजाकी प्रगति और समस्त प्रजाका सुख, यही वहां प्रधान है। पुरानी समाज-व्यवस्था तोड़ कर नयी व्यवस्था चलाते, हिंसाका प्रयोग करना पड़ा, इस बातको हम रूसी साधनाका ऐब कह सकते हैं। आज भी वहां पर व्यक्ति-स्वातंत्र्य मर्यादित है, ऐसी शिकायत भी कर सकते हैं। लेकिन लोग सुखी हैं, प्रगतिशील हैं और उत्साहयुक्त हैं, इस सिद्धिको हम भूल नहीं सकते।

हम 'यासनाया पॉलियाना' देखने गये। हमारे लिए प्रबंध बहुत अच्छा था। 'तुला' शहर हो कर हम यासनायाकी ओर मुड़े। वहांकी जनताने हमारा प्रेमसे स्वागत किया। सबसे पहले हम लोग एक छोटेसे उपवनमें बड़ी शान्तिसे टॉलस्टॉय की समाधि देखने गये। समाधि क्या? एक छोटी-सी खुली जगहमें घास उगी थी और उसके बीच मिट्टीकी ही एक छोटी-सी कबर थी। हमने नजदीक जा कर उस कबर पर एक अच्छा-सा भक्ति कुसुम चढ़ाया; वैदिक मंत्र बोल कर हमने सबोंकी ओरसे श्रद्धांजलि अर्पण की; उस रशियन ऋषिके युगकार्यका कुछ ध्यान किया और शान्तिसे लौट कर उमराव काउन्ट टॉलस्टॉयका प्रासाद देख लिया। हमें सब कुछ दिखानेवाले रूसी महाशय टॉलस्टॉयके दूरके रिश्तेदार थे। अंग्रेजी जानते थे। उन्होंने हमें सब दिखाया, समझाया। फिर तो हमने घासके ऊपर प्लास्टिककी पारदर्शक विस्तीर्ण चादर बिछाई। पेट भर कर खाया। उसके बाद गांवके लोगोंके सामने हमने टॉलस्टॉयके प्रति हमारी भक्ति क्यों है, कितनी है, यह सब समझाया। हरएक वाक्यका रूसी अनुवाद सुनते ही स्थानिक लोग प्रसन्नतासे उछल पड़ते थे।

भारतमें हमने चार धामकी यात्रा और दूसरी-दूसरी यात्रायें की हैं। उस यात्रासे यह यात्रा तनिक भी कम पवित्र नहीं थी। फर्क इतना ही था कि यहां पर हम ही हमारे पुरोहित थे। मैंने टॉलस्टॉयकी बड़ी जीवनी तो पढ़ी ही थी। आत्म-कथानुमा उनके उपन्यास भी पढ़े थे। और उनकी धर्मपत्नीकी कैफियत भी पढ़ी थी। टॉलस्टॉयका ग्राहंस्थ्य जीवन एक बड़ा प्रकरण है। इस सारे वायुमंडलमें उसकी सब बातें प्रत्यक्ष हुईं।

हम चाहते हैं कि टॉलस्टॉयका जीवन, उसका चिंतन और साहित्य भारतकी हरएक भाषामें जनताके लिए उपलब्ध हो। जिस किसीको मौका मिले उसे यासनाया जाना ही चाहिए। टॉलस्टॉयके जैसे चिन्तनशील, जीननस्वामी और समर्थ साहित्यकार दुनियामें कम हुए हैं।

हम मास्को गये थे जागतिक विश्वशांति परिषदके लिए। उस परिषदमें एक उपसमितिको एक सवाल सौंपा था कि दुनियाके धर्म-परायण लोग जागतिक शांति के लिए क्या-क्या कर सकते हैं, यह सवाल विस्तारसे सोचा जाय। इस छोटी-सी किन्तु जागतिक सर्व-धर्मी समितिको रूसके ग्रीक-चर्ची ईसाई लोगोंके धर्मगुरुकी ओरसे उनके मठमें दावत थी। हमें वहां समितिका काम भी करना था और भोजन भी करना था। मॉस्कोसे झागोर्स्क तककी यात्रा पूरी करके हम विशाल मठमें पहुंचे। गोवाके सेन्ट झेवियरकी समाधिके इर्द-गिर्द जैसा वायुमंडल है, वैसा ही यहां पर था। सभामें मैंने गांधीजीकी सब धर्मोंके प्रति जो आदरयुक्त स्वीकार-भावना है, उसे समझाते ईसाके प्रति और उनके धर्मके प्रति हमारा आदर व्यक्त किया, और शांति तथा विश्वमैत्रीके द्वारा ही सब धर्मोंकी हस्ती सफल हो सकती

है, इस बात पर विशेष जोर दिया।

मठके आसपासकी भोली जनतासे-बूढ़ियों, छोटे-बड़े बच्चों आदि श्रद्धा-धन लोगोंसे मिल कर हमें बड़ी खुशी हुई। उन्होंने हमको गांधीजी और नेहरूजीके बारेमें पूछा और अश्रुपूर्ण नयनोंसे भारतके प्रति अपना स्नेह दिखाया।

मुझे तो इस ग्रंथकी प्रस्तावना ही लिखनी थी। लेकिन ग्रंथकारने चाहा था कि दो स्थानोंका मैं कुछ वर्णन भी लिखूं। मुझे विश्वास है कि श्री शेरसिंहजीकी यह प्रेरक किताब पढ़ कर पाठकोंकी रूसके बारेमें अधिकाधिक जाननेकी भूख बढ़ेगी और चन्द लोग रूस हो ही आएंगे। वहांकी यूनिवर्सिटियोंमें भारतके विद्यार्थियोंके लिए प्रेमपूर्ण स्वागत है और कई विद्यार्थी उससे लाभ भी उठा रहे हैं।

स्वराज्य होनेसे दुनियाके सब देशोंके साथ भारतका सीधा संपर्क शुरू हुआ है। जागतिक पुरुषार्थमें हमें भी अपना हिस्सा अदा करना है : इतनी महत्त्वाकांक्षा तो इस किताबके पढ़नेसे पाठकके मनमें जाग ही उठेगी।

१ जून. १९६४

५५. नेपाल

(१) तिरपन सालके पहले

मैंने नेपालकी प्रथम यात्रा की थी उसे तिरपन साल हो गए। उन दिनों आदमीको नेपाल जानेकी इजाजत महाशिवरात्रिके दिनोंमें ही मिल सकती थी। मेरे पास आचार्य कृपालानी और स्वामी आनन्द और एक दूसरे नवयुवक थे। हम मुजफ्फरपुरसे रक्सौल तक रेलसे गए। और वहांसे पैदल, दो पहाड़ लांघ कर, राजधानी काठमांडू गये। वहासे ललितपट्टण और भादगांव, ये दो पुरानी राजधानियां देखीं। स्वयंभू अथवा शंभु टेकरीपर बुद्ध भगवान, धर्म भगवान और संघ भगवानकी मूर्तियां देखीं। प्रार्थनाके चक्र घुमाये। इन्द्रका वज्र (पीतलका बनाया हुआ) देखा। अच्छे-अच्छे मंदिर और मूर्तियां देखीं। बाघमती नदीमें मुश्किलसे स्नान करके पशुपतिनाथका दर्शन-पूजन किया। और यात्राकी मीयाद पूरी होनेके पहले हम वापस लौटे। नेपालमें हमने नासकाटापुरकी विचित्र कथा भी सुनी थी। हमने सुना था कि नेपालके राजा इतने बड़े होते हैं कि उनका कर्तव्य केवल 'होने' का और प्रजाको अपना दर्शन देनेका ही होता है। राज चलानेका मामूली काम राजा क्यों और कैसे करे? जो कोई आदमी मुख्य प्रधान बन सके, वही राज्य करेगा। हमने यह भी सुना था कि पशुपतिनाथके पुजारीका अधिकार और प्रभाव नेपालके राजाके जैसा ही होता है। ऐसी-ऐसी बातें लोगोंके मुंहसे सुन कर, नेपालका अद्भुत प्राकृतिक दृश्य और धर्म-संस्कृतिके मन्दिर देख कर वापस लौटे थे।

हमने देखा था कि नेपालमें हिंदू धर्म और बौद्ध धर्मका ऐसा सुन्दर संगम हुआ है कि दोनों एक-दूसरेमें अविभाज्य रूपसे ओत-प्रोत हो गये हैं।

उन दिनों नेपाल राज्यमें गाड़ियां नहीं चलती थीं। यात्रा पैदल ही होती थी। सामान ढोनेका काम कसे हुए शरीरके नेपाली मजदूर ही करते थे। वहांकी राज्य-नीति बाहरके लोगोंको अंदर आने देनेमें विश्वास नहीं करती थी हालांकि काठमांडूमें ब्रिटिश रेसीडेन्सी तो थी ही। पोस्ट ऑफिसका प्रबन्ध एक प्रकारका था सही। लेकिन लोगोंको उसका उपयोग करनेकी आदत कम थी। गोरखा सैनिकोंकी आज्ञाकारिता और बहादुरीकी बातें हमने काफी सुनी थी। वहां उनकी 'खुखड़ी' नामक छुरीका दर्शन किया।

सन् १८५७ सालके भारतीय स्वातंत्र्य युद्धके अंतमें, हारे हुए चंद भारतीय नेता, अंग्रेजोंकी क्रूरतासे बचनेके लिए नेपाल जा कर रहे थे इतना इतिहास हमें मालूम था ही और इसी कारण नेपालकी भूमिके प्रति कुछ आकर्षण और कुछ कृत-ज्ञता भी थी। लोकमान्य तिलकके दाहिने हाथ कृष्णाजी प्रभाकर खाडिलकर किसी समय नेपालमें आ कर रहे थे, यह देखनेके लिए कि भारतकी स्वतन्त्रताके लिए नेपालसे कोई मदद मिल सकती है या नही। इस यात्राका वर्णन हमने काकासाहेब गाडगिलके मुंहसे ही सुना था और भोले सामान्य लोग राजदर्शनके लिए कैसे लालायित रहते हैं इसका शब्द चित्र भी उनके मुंहमे हमें मिला था।

उस यात्राका विस्तृत वर्णन करनेका यहां उद्देश्य नही है। सिर्फ एक पुराने चित्रके पड़ोसमें नया चित्र धरनेसे नया चित्र कैसा उठावदार होता है यही देखनेके इरादेमे पुरानी बाते यहां याद की हैं।

(२) आजकी जागतिक परिस्थिति

तिरपन बरसके बाद सारी दुनिया बदल गई है। रूसमें और चीनमें बादशाहोंके जरठ राज्य खतम हो गए हैं। भारत स्वतंत्र हुआ है। अनेकानेक देश स्वतंत्र हुए हैं। यूरोपकी और अमरीकाकी राजनैतिक नागचूड ढीली हुई है। तो भी पश्चिम-का प्रभाव कम नही हुआ है। जहां अंग्रेजोंका साम्राज्य अपना जोर दिखाता था वहां अमरीकाका आर्थिक साम्राज्य अपनी महत्त्वाकांक्षा तृप्त कर रहा है। रूसने झारका और उसके राजवंशका तो खातमा कर ही दिया किन्तु इससे भी विशेष 'पूंजीप्रधान दुनिया'को डरानेवाला साम्यवादी राज्यतंत्र चलाया है। अपने पड़ोसके एक विशाल राष्ट्रको रूसने साम्यवादकी दीक्षा दी, पूरी-पूरी मदद की। अब उसे चीन—ईर्षालु चीनका विरोध भी सहन करना पड़ता है।

इन तिरपन बरसोंमें जापानके राष्ट्रीय जीवनमें अनेक स्थित्यंतर हुए। जापानने मेजी कालमें अपना कायाकल्प करके पश्चिमी विद्याके बल पर रूसका परास्त करनेका अद्‌भुत विक्रम करके दिखाया सही, लेकिन पिछले दो महायुद्धोंमें उसे अमरीकाके साथ होड़ करते पराजित होना पड़ा। आज जापान राजनैतिक

दृष्टिसे स्वतंत्र और आर्थिक बलकी दृष्टिसे समर्थ होते हुए भी, उसे अमरीकाके इशारे पर जीना पड़ता है। एशियाई साम्राज्यका उसका सपना कबका नष्ट हुआ है। तो भी उसका प्रभाव दिन पर दिन बढ़ता ही जाता है। साम्यवादके कारण चीन पर बौद्ध धर्मका असर पहले जैसा नही रहा है, फिर भी एशियाके बौद्ध जगत्में नवजागृति और ईसाई आतंकके प्रति अमर्ष प्रगट होने लगा है।

इधर यूरोप, एशिया और अफ्रीकाके त्रिकोणके बीच इस्लामी राष्ट्रोंमें भी नव-जागृति दिख पड़ती है। इसमें धर्मजागृति उतनी नहीं है जितनी वंशजागृति अथवा संस्कृतिजागृति प्रधान है।

और अफ्रीकाका सवाल तो देखते-देखते जटिल होता जा रहा है। अफ्रीकाको Dark continent—'कृष्ण खंड' कहनेका रिवाज यूरोपीय राष्ट्रोंने चलाया था। सन् १९२५ का साल अफ्रीकाके लिए मध्यरात्रिके जैसा अंधेरेका था। उस साल यूरोपके राष्ट्रोंने जिन्दा अफ्रीकाके टुकड़े करके सारे खंडको निगल जानेका मनसूबा किया था। (गुप्त रूपसे नहीं, बिल्कुल जाहिरा तौर पर।) किन्तु यूरोपीय राष्ट्रोंके परस्पर ईर्ष्या, अविश्वासके कारण वह कुटिल नीति सफल नहीं हो सकी और पद-दलित, निराश अफ्रीकी लोगोंमें नवजागृति पैदा हो गई है। वे जानते है, सब कुछ खोनेके बाद अब उन्हें अधिक खोनेका डर है ही नही। होगा तो लाभ ही होगा।

(३) समविभागका सार्वभौमधर्म

ऐसी जागतिक स्थितिमें नेपाल भी अपना कायाकल्प कर रहा है। उसकी परिस्थिति समझने लायक है।

बड़े-बड़े राष्ट्रोंकी जब अहंश्रेयसी चलती है तब छोटे राष्ट्र एक तरहसे सुरक्षित होते हैं और उनकी राजनैतिक कीमत भी बढ़ती है। चीन और भारत जैसे दो उदयोन्मुख, प्रचंड-राष्ट्रोंके बीच, हिमालयकी गोदमें, नेपालका राज्य विराजमान है। उसके साथ 'दोस्ती' का संबंध बांधनेके लिए अमरीका, ब्रिटेन, रूस, चीन, भारत लालायित है। पाकिस्तान इज़राईल और जर्मन, भी नेपालकी उपेक्षा नही कर सकते। इनमेंसे किसी एक राष्ट्रका प्रभाव बढ़ा तो दूसरोंके पेटमे दर्द अवश्य होगा। ये सबके सब राष्ट्र नेपालकी सहायता करनेके लिए उत्सुक है। और इसीमें नेपालके लिए अपनी स्वतंत्रता संभालनेका, और जोरोंसे आधुनिक बन कर अपनी उन्नति करनेका अच्छा मौका है। भौगोलिक और सांस्कृतिक दृष्टिसे नेपालके लिए भारत सबसे नजदीकका देश है। भारतमें नेपालके लिए आत्मीयता भी कम नहीं। नेपालका राज्य किसी अन्य समर्थ राष्ट्रके प्रभावके नीचे दब जाये यह भारतके लिए अनिष्ट है। और जब नेपालको अन्य राष्ट्रोंके प्रभावसे बचाना है तब नेपालको अपने प्रभावके नीचे लानेकी कोशिश भी भारत नही कर सकता।

हम स्वयं अमरीका, रूस, ब्रिटेन, जर्मनी आदि अनेक देशोंसे मदद लेते हैं लेकिन सतर्क रहते हैं कि किसी भी देशके राजनैतिक प्रभावके नीचे हम बिल्कुल न

आ जाएं। हम उपकारबद्ध तो होते हैं लेकिन उपकार देख कर हम अपनेको कहीं भी बेच नहीं डालते। यही शुद्ध नीति है। मदद लेते भारतकी जो दृष्टि और नीति होती है, यही नीति भारतसे और अन्यान्य राष्ट्रोंसे मदद लेते, नेपालके लिए भी योग्य है और स्वाभाविक है।

सदाचारका नियम ही है कि किसीकी मदद करके उसका उपकार बताना सज्जनोंके लिए शोभा नहीं देता। 'प्रियं कृत्वा मौनम्' यही है सत् पुरुषका आभिजात्य। "प्रियं कृत्वा मौनम् पुरुषम् अभिजातम् कथयति।"

लेकिन सहायताको अब कोई उपकारके तौर पर बताते ही नहीं। जो नियम सदाचारका था वह अब राजनीतिका भी बन गया है।

अगर हमारा दावा सही है कि समस्त मनुष्य जाति एक विशाल परिवार है, अगर हम सचमुच मानते हैं कि सब राष्ट्र मिल कर एक विराट् राष्ट्र-कुटुम्ब ही है, तो अपना ज्ञान, अपनी संपत्ति और अपना प्रेम सबको बांटते रहना हरेक व्यक्ति और घटकका कुटुंबधर्म ही है। एक घरके भाई-भाई अपनी सारी कमाई कुटुंबके सुपुर्द करते हैं और उनके बच्चे उसका लाभ एकसे उठाते हैं। आजका मानव धर्म इतना विकसित नहीं हुआ है किन्तु अपनी धन-दौलतका, अपने ज्ञान-कौशल्यका कमोबेश वितरण करना, share करना एक हरेक राष्ट्रका धर्म है इसका स्वीकार अब होने लगा है। मध्यकालमें जब लोग भले या बुरे ढंगसे अपने-अपने धर्मका प्रचार करते थे—और आज भी करते हैं तब यही भाषा काममें लाई जाती है कि ईश्वरका जो कृपाप्रसाद हमें मिला है उसका लाभ औरोंको देना हमारा पवित्र कर्तव्य है। इसमें हम अपनी पूरी शक्ति लगायेंगे। अब धर्मकी बात कुछ गौण हुई है, उसकी जगह संस्कृतिका प्रचार बढ़ने लगा है और राजनैतिक होड़के कारण संपत्तिका भी समविभाग करना और सेवा करना जरूरी माना जाता है।

और भी एक दृष्टि धीरे-धीरे विश्वमान्य होती जा रही है।

कहते हैं कि जब तक एक भी देश गुलाम है, परतंत्र है तब तक कोई भी देश पूरा-पूरा स्वतंत्र नहीं है। एक देश स्वतंत्र हो और दूसरा परतन्त्र, ऐसी स्थिति अब दुनियामें निभ नहीं सकती। स्वतंत्रता अविभाज्य है। स्वतंत्र होना माने विश्वमें सर्वत्र स्वतन्त्रताकी स्थापना करना।

इसी न्यायसे एक देश विकसित हो और दूसरा देश अविकसित रहे यह दुनिया में अब चल नहीं सकता। मेरा घर स्वच्छ रहे और मेरे पड़ोसीके घर अस्वच्छता रहे तो मैं गंदगीके रोगोंसे बच नहीं सकता। एक देशमें समृद्धि और और दूसरे देशमें अकाल और कंगालियत—यह स्थिति भी खतरनाक है। एक प्रदेश अगर यकायक गरम हुआ और दूसरा प्रदेश ठंडा रहा तो सन्तुलन लानेके लिए हवा ऐसी जोरोंसे बहती है कि उसके झंझावातसे खेती, बगीचे और मकान नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं। इसलिए हम जो कुछ भी पाते हैं उस पर सबका अधिकार है। सबमें बांट कर

खाना इसीमें ईमानदारी है। पड़ोसीको न देते, "जो अपने ही लिए पकाता है और अकेला खाता है वह चोर है" गीताका यह वचन राष्ट्रोंके लिए और वंशोंके लिए भी लागू है।

राजनैतिक दृष्टिसे कहें अथवा मानवतारूपी विश्वधर्मकी दृष्टिसे कहें, नेपालकी मदद करना हमारा प्रधान धर्म है। भारतने, स्वयं स्वतंत्र होते ही इस धर्मको पहचाना यह परम संतोषकी बात है।

शर्कराद्वीप-मॉरिशियस

निवेदन

पू० श्री काका साहेबके साथ भारतमें तथा भारतके बाहर काफी प्रवास करनेका सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। प्रवासमें कुछ भी सुन्दर, मंगल, प्रेरणामय या विचारप्रेरक देखनेको मिलते ही तुरन्त मनमें आता 'यदि यह लिख लें तो कितने सारे हमारे स्वजनोंके साथ मिल कर इस आनन्दका मजा ले सकेंगे ! और फिर लिखनेके लिए पू० श्री काकासाहेबसे कहती। उनका उत्साह तो मुझसे भी ज्यादा; किन्तु जो काम सामने आते जायें उनको ना नहीं कह सकते थे। अत: कभी भी आरामसे बैठ कर लिखनेका समय ही कहां मिलता ! फिर विनती, प्रार्थनासे ले कर 'सिर खाने' तक जा कर लिखवा लेना पड़ता। एक वक्त लिखनेका शुरू हो गया फिर तो हम लेखन-प्रवाहमें बह जाते थे—न आप लिखवाते थकते न लिखनेमें मेरा रस कभी भी कम होता। यूं हमारा चलता था।

इस समय मॉरिस (मॉरिशियस) हो कर आनेके वाद मैंने अनेक बार कहा, "पिताजी, मॉरिसके बारेमें लिखना ही चाहिए।" एक बार मैंने जरा ज्यादा ही सिर खाया होगा तब आपने कहा "अब तुम ही लिखो। इतनी किताबें तो तुम्हें लिखवायीं; अब तुम्हें ही लिखना चाहिए।"

पहले तो मुझे ऐसा लगा कि, "यह तो हमारा काम है नहीं।" हम तो पू० श्रीके शब्द उतार कर उसका आनन्द लूटना जानते हैं।" फिर सोचा जब पू० श्री लिखवाते ही नहीं है तो, प्रयत्न तो करूं, और मुझे ज्यादा कहां लिखना है, इतना तो तय ही कर लिया था कि हो सके उतना सारा पू० काका साहेबके अपने शब्दोंमें दे दूंगी जिससे पाठकोंको निराशा न हो। पू० श्रीके अलग-अलग पत्र, लेख, व्याख्यान तथा वार्तालाप एकत्र करके संकलन करनेका ही काम मैंने किया है। जो अच्छा न लगे वह मेरी कमी समझ कर पाठक माफ करेंगे लेकिन ज्यादातर तो सब पू० श्री काका साहेबका होनेसे पसंद आयेगा ही ऐसा जान कर यह किताब तैयार करनेकी हिम्मत की है।

आरम्भमें पू० श्रीकी प्रस्तावना है।

सरोजिनी नानावटी

दूरके अपने

'ईश्वरने पैर दिये हैं, प्रवास करनेके लिए और आंखें दी हैं उसकी सृष्टिका निरीक्षण करनेके लिए', इतना ज्ञान छुटपनसे ही मिला होनेसे जीवनमें मैंने बहुत

प्रवास किये हैं। भारतमें तो कोने-कोने हो आया हूं,—कई-कई जगह तो अनेक बार। और स्वराज्य मिलनेके बाद विदेशका प्रवास भी कम नहीं किया है। पूरी मानव जातिको भ्रमण करनेमें कुछ अनोखा आनन्द मिलता है, यह मैं जानता था। इसलिए मेरे यात्रानन्दका स्वाद समानधर्मी लोगोंको करानेके लिए समय-समय पर मैंने थोड़ा लिखा भी है। लेकिन कई बड़ी-बड़ी यात्राओंके वर्णन लिखनेको अभी बाकी रहे हैं। 'हिमालयका प्रवास', 'ब्रह्मदेशका प्रवास', 'पूर्व अफ्रीकाका प्रवास', तया सूर्योदयका देश (जापान)', इतने चार प्रवासके वर्णन ही अव तक दे सका हूं।

प्रवास करते जो आनन्द आता है उससे उसका वर्णन लिखनेमे कम आनन्द नहीं होता। फिर भी मनमें आया कि आप ही गायें, आप ही नाचें और आप ही बाजा भी बजायें ये कुछ अच्छा नहीं है। अतः प्रवासमें साथ देनेवाले साथियोंको मैंने अनेक बार कह कर देखा है कि 'स्वयं कुछ न लिखनेका व्रत तोड़ोगे तो कुछ बिगड़नेवाला नही है मेरे कई साथी थोड़ा प्रवास करके थक जाते या ऊब जाते। मेरी सब यात्राओंमें तनिक भी ऊबे बिना उत्साहसे मेरा साथ दिया है चि० सरोजिनी ने। आरम्भमें मेरे साथ प्रवास करते अच्छे-अच्छे लोगोंकी भी कसौटी होती थी परन्तु चि० सरोजने कभी भी यात्राके लिए आनाकानी नहीं की। स्वराज्य होते ही देशके टुकड़े हुए, उन दिनों अनेक दंगे हुए। एक बार तो स्टेशन पर गोलाबारी हुई थी। यात्री सारी ट्रेन खाली करके भाग गये। गाड़ीके मारथि तथा सचालक भी गायब! ऐसे समय भी चि० सरोजने मेरे साथ प्रवास किया है। मुसलमानोंसे भरी हुई ट्रेनमें फक़त दो हिन्दू! लोग सलाह देते कि ऐसा विवेकहीन साहस क्यों करते हैं, ऐसे समय पर भी सरोज न तो स्वयं आनेसे हिचकिचाई और न मुझे कभी रोका। उसका एक ही आग्रह था कि खुद भी साथ रहे।

यात्राके ऐसे रसके साथ हमने चारों खंडकी अनेक यात्राएं की हैं तथा सृष्टि-निरीक्षणके एक-दूसरेके आनन्दमें साथ दिया है इतना ही नहीं, वृद्धि भी की है। और फिर भी सरोजकी मूक-सेवाका आग्रह में आज तक तोड़ नहीं सका था। मैं लिखवाऊं उतना वह लिखनेको तैयार, लेकिन खुद कुछ न लिखे। अंग्रेजी, गुजराती, हिंदी तथा मराठी साहित्य हम साथ पढ़ते थे, उसकी चर्चा करते; लेकिन लेख लिखनेका कहूं तो हमेशा उसकी ना ही मिलती। एक वक्त उसने हिम्मत की और मेरी दो-तीन किताबोंके अनुवाद कर दिये!

आखिर हमारी इस यात्रा (१९५९) में उसने हिम्मत की और मॉरिशियस, रीयूनियन, मालगासे (माडागास्कर) तथा पूर्व अफ्रीकाके हमारे प्रवासका यह वृतान्त उसने लिख तो दिया।

आखिरी २२ वर्षोंमें चि० सरोजने मेरा लिखा हुआ इतना सारा पढ़ा है और इतना सारा लिखा है कि मेरी लेखन-शैली, मेरे खास-खास शब्द तथा विचारोंके साथ उसका पूरा-पूरा परिचय तथा समभाव है। मेरी ओरसे वह पत्र लिखती है

तब मेरी ही भाषा लिखती है, मनुष्य-मनुष्यके बीचके सम्बन्धमें भाषाकी जो मधुरता आनी चाहिए वह सरोज और बढ़ा देती है।

मॉरिशियस द्वीपकी हमारी यात्रा अनुभवसे, आनन्दसे तथा महत्त्वसे इतनी तो भरपूर थी कि उसका वर्णन गुजराती प्रजाको दिये बिना कोई चारा ही नहीं था और मैंने तो कुछ भी लिखनेका साफ इंकार कर दिया। इसलिए सरोजको लिखना ही पड़ा। इस तरह शर्कराद्वीपवाली यह मीठी पुस्तक पाठकोंको मिल रही है।

प्रवासमें सरोजके साथ होनेसे मैं जहां जाता हूं वहां स्त्री-समाजके साथ भी संपर्क होता है और सरोज तो चि. रेहानाकी आध्यात्मिक बहन। मुस्लिम स्त्री-समाज में घुल-मिल जाना उसके लिए सहज होता है। विदेशमें तो हमने देखा है कि हमारे लोग जब मुसलमानोंके रहन-सहन, उनके रस्मोरिवाज तथा धार्मिक मान्यताओंके साथ समभावपूर्वक मिलते-जुलते हैं तब वे लोग मानों अपना पूरा हृदय खुशीसे अर्पण कर देते हैं। हजारों संधियों (विष्टि) से यह आत्मीयता अधिक प्रभावी होती है। 'धार्मिकता, संस्कारिता तथा आतिथ्य एक ही प्रकारके हो सकते हैं' ऐसी अंग्रेजोंके जैसी संकुचितता हमारे लोगोंमें बहुत है। उसमे हमने बहुत सहन किया, है बहुत खोया है। फलस्वरूप हमारे हृदयकी स्वाभाविक उदारता करीब सारीकी सारी बेकार हो जाती है और फिर हम नाहककी कड़ुवाहट मनमें रखते हैं। मुसलमान हों या ईसाई हों, अमेरिकी हों या जापानी हों, हम यदि प्रेमपूर्वक उनके साथ एक हो सकें तो हमारे लोग कहीं भी अलग-अलगसे नहीं मालूम होंगे।

सौमनस्यकी यात्राओंमें (सादे शब्दोंमें कहें तो मधुरता और मिलने-जुलनेके विकासके लिए की हुई यात्राओंमें) हमने देखा है कि सामान्यत: हमारी महिलाओंको लोगोंके साथ मिलना-जुलना ज्यादा मुश्किल होता है। विदेशमें रहते हुए भी हमारी बहनें अन्य समाजोंके साथ पूरी तरह एक नहीं हो पातीं। जो मिलती-जुलती हैं वे भी, केवल पश्चिमी अथवा अंग्रेजी ढंगसे। इसलिए उसका लाभ अपने देशको नहीं मिलता न उसकी प्रौढ़ संस्कृतिको।

ऐसी वस्तुस्थिति होनेके कारण चि० सरोजकी मदद मुझे कीमती साबित हुई। अमेरिकामें भी होटलोंमें न रहते हुए लोगोंके घरोंमें रहनेका मैंने आग्रह रखा था। चि० सरोजको पश्चिमके लोगोंका और उनके साहित्यका अच्छा परिचय होनेके कारण हमारा काम सुन्दर चला।

शर्कराद्वीपमें हम घूमे उस समय लिखे हुए पत्र तथा मेरे व्याख्यानोंकी अपनी टिप्पणियोंसे, हमारे किये हुए निरीक्षणोंसे तथा लोगोंसे प्राप्त प्रेमके रसायनसे यह पुस्तक लिखी गई है। इसलिए मेरे प्रवास साहित्यमें इसकी छाप (डिजाइन) अलग ही होगी।

मैंने जितने प्रवास किये उनमें सृष्टिका सौन्दर्य तथा भव्यताका रस लूटनेके उपरांत उन देशवासियोंके जीवनका परिचय ये दोनों उद्देश्य मैंने एकसे मनमें रखे

हैं। आखिर-आखिरमें उसमें एक विशिष्ट वृद्धि हुई है।

ब्रिटिश कालके दरमियान, गोरोंने अपनी सहूलियतकी खातिर हमारे लोगोंको गिरमिटियाके रूपमें ले जानेका तथा वहां बसानेका प्रयोग किया। हमारे उच्च वर्गोंकी प्रजा गफलतमें थी, इसलिए हमने वे लांछनास्पद प्रयोग होने दिये। किंतु उन प्रयोगोंमेंसे भी अंतमें कई अच्छे परिणाम पैदा हुए हैं। अत्यन्त प्रतिकूल परिस्थितिमें रहनेके कारण अपने लोगोंकी जीवन-शक्तिकी कसौटी हुई। उन्होंने कई शक्तियोंका खास विकास किया तथा केवल अपने धीरज और होशियारीसे उन्होंने उस-उस जगह उस-उस भूमिमें और समाजमें अपनी जड़ें दृढ़ की। और विशेष तो यह कि सब तरहसे परेशान होने पर भी उन्होंने अपनी संस्कृतिका स्मरण कायम रखा तथा भारत-भक्तिको अदृश्य नहीं होने दिया।

ऐसे वे हमारे लोग उन देशोंमें कैसे रहते हैं; आसपासके अन्य समाजके लोगोंके साथ उनके सम्बन्ध कैसे हैं ये सब देखना, उस-उस देशकी परिस्थितिके कारण उत्पन्न होनेवाले वहांके सवालोंका अध्ययन करना, और अपना व्यक्तित्व सभालते हुए भी वहांके भिन्न-भिन्न समाजके लोगोंके साथ ओत-प्रोत किस तरह होना, इस प्रश्नका हल ढूंढनेके लिए तथा भगवानकी इन छोटी-बड़ी प्रयोगशालाओंमें संस्कृति समन्वयके जो प्रयोग चल रहे हैं उनमें भारतीय संस्कृति समन्वयके कौनसे विश्व-कल्याणकारी तत्त्व काममें आ सकते हैं तथा कौनसे तत्त्व कालग्रस्त होनेके कारण छोड़ देने चाहियें यह विवेक उनको समझाना यह भी एक नया उद्देश्य उभर कर आया। इसका प्रतिबिम्ब इस पुस्तकमें पूरे प्रमाणमें देखनेको मिलेगा।

हमारे लोग पूर्व अफ्रीका, दक्षिण अफ्रीका, सिलोन, ब्रह्मदेश, फीजी, त्रिनिदाद, ब्रिटिश गियाना, सूरीनाम, (डच गियाना) जमैका इतने प्रदेशोंमें अच्छी तादाद में बसे हुए हैं। लेकिन मॉरिशियसकी बात तो उसमें भी कहीं अलग है। वहां राज भले ही अंग्रेजोंका हो, और जागीरदार जैसे जमीदार भले थोड़े फ्रेंच लोग हों, मॉरिशियसकी मुख्य प्रजा तो भारतकी ही है। वहांका राज्य चलानेमें अब हमारे लोगोंका सहयोग अच्छा है। वहांके समग्र जीवनमें हमारी संस्कृतिका हिस्सा आगे चल कर प्रभावशाली बनना चाहिए।

मौलाना अबुल कलाम आजाद द्वारा अभी-अभी स्थापित की गई Indian council for cultural relations इस अर्द्ध सरकारी संस्थाका मैं उपाध्यक्ष था। उस दरमियान सांस्कृतिक सम्बन्ध बढ़ानेकी दृष्टिसे मैंने जो-जो प्रवास किये उसके अनुभवका निचोड़ मुझे देशके समक्ष रखना ही है। अनेक दृष्टियोंसे भारतके लिए यह प्रश्न महत्त्वका है और आगे चल कर इसका महत्त्व बढ़नेवाला है। अभी-अभी यानी १९५९ में मॉरिशियस टापूकी मैंने मुलाकात ली और करीब आठ दिन वहां विताये।

मेरी ऐसी यात्राओंमें पं० जवाहरलालजीका हमेशा प्रोत्साहन रहा है। उनके

साथ काम करनेवाले श्री मणिभाई देसाई (विदेश सचिव) की सिफारिश पर मॉरिशियसके उस समयके अपने कमिश्नर श्री जगन्नाथ धमीजा तथा उनकी पत्नी श्रीमती देविका बहनने स्नेह भरे आतिथ्यके साथ हमारे लिए सारी सहूलियतें कर दी और स्थानीय लोगोंने तो इतने उत्साहसे हमारा स्वागत किया कि उन आठ दिनोंमें मॉरिशियसके लगभग सब लोगोंको हम देख और मिल सके। तीस-चालीस मीलके विस्तारके उस द्वीपका तथा उसके रमणीय स्थलोंका अनेक तरहसे दर्शन किया। दिन-रातके व्यस्त कार्यक्रममें आठ दिन कैसे बीत गए वह ध्यानमें नहीं आया।

भारतसे ढाई-तीन हजार मील दूर किन्तु हिन्द महासागरमें ही बसनेवाले अपने खूनके लोगोंकी स्थितिका वर्णन पाठकोंको इस किताबमें मिलेगा।

यहां मालगासे (माडागास्कर) टापूके बारेमें विशेष जानकारी नहीं आयी है। क्योंकि हम उसे अधिक समय नहीं दे सके। हमारे वहां हो आनेके बाद मालगासे लोगोंको स्वराज्यके हक मिले हैं, लेकिन वहां अधिराज्य फ्रांसका ही है। उस टापूके साथ हमारे लोगोंका सम्बन्ध बहुत ही प्राचीन है। (इतिहास-पूर्वकालीन सम्बन्धका सोचें तो वह भूमि एक समय भारतके साथ संलग्न थी!)

आखिरी कई शतियोंसे गुजरानियोंका सम्बन्ध माडागास्करके साथ बहुत अच्छा रहा था। वहां फ्रेंचोंका राज्य हुआ तब उन्होंने हमारा सम्बन्ध प्रयत्नपूर्वक तोड़ दिया। अब दुनियाकी हालत बदल गई है। भविष्यमें मालगासेके लोगोंके साथ हमारा सहकार बढ़ने ही वाला है।

यहां एक भविष्यवाणी करनेको जी चाहता है। भले लोग उसको अतिशयोक्ति माने :

यूरोपके उत्तर-पश्चिम किनारे पर जो महत्त्व ब्रिटेनका है, एशियाके उत्तर पूर्व पर जो महत्त्व जापानका रहा है वैसा ही महत्त्व अफ्रीका खंडके पूर्वमें आये हुए उतने ही बड़े इस मालगासे द्वीपको आगे जा कर मिलनेवाला है। वहांके लोगोंको आनेमें यदि हम मदद करेंगे तो विश्वसेवामें हमारा यह अच्छा-सा हिस्सा माना जाएगा।

मॉरिशियसके मेरे अनेक व्याख्यानोंमें वहांके रामकृष्ण मिशनमें दिया हुआ मेरा व्याख्यान सबसे महत्त्वका था। क्योंकि वहां पर उस टापूके महत्त्वके सभी लोग एकत्र हुए थे। मेरे उस भाषणको वहांके मिशनने प्रकाशित किया है। वह हाथमें आया होता तो उसका गुजराती करके उसे परिशिष्टके रूपमें देनेका चि० सरोजका विचार था। वह भले न दे सके। उस व्याख्यानमें व्यक्त की हुई दृष्टिका इशारा इस पुस्तकमें जहां-तहां बिखरा हुआ है ही।

हमारी उस यात्राके बाद मॉरिशियसमें एकके बाद एक दो महाबवडर आये तथा अत्यधिक नुकसान हुआ। कितने ही मकान उध्वस्त हुए, महावृक्ष टूट पड़े तथा

खेत-मैदान तहस नहस हो गये। ऐसी विपत्तिके समय भारत सरकारकी ओरसे अच्छी-सी सहायता वहां समय पर और सबसे पहले पहुंची। उसका प्रभाव वहांकी प्रजा पर बहुत अच्छा पड़ा। विलायतकी सरकारने भी सहायता भेजी, लेकिन देर-से।

भारत सरकारको अब मॉरिशियसके साथ स्टीमरका व्यापार बढ़ाना चाहिए, जिससे हमारे लोगों और वहांके लोगोंके बीच आना-जाना सुगम हो जाए और धीरे-धीरे रोटी बेटी-व्यवहार भी बढ़ने लगे। संस्कृति परिचय करानेके लिए हमें योग्य लोगोंको भेजना ही चाहिए किन्तु हमारे लोगोंके लिए रोटी-बेटी-व्यवहार ही संस्कृतिके आदान-प्रदानका सर्वोत्तम उपाय है।

हमारे लोग अब पहलेसे ज्यादा प्रवास करने लगे हैं। स्वराज्य मिलनेके बाद लोगोंकी दृष्टि भी व्यापक हुई है। स्वमान संभाल कर प्रजाकी सेवा करनेकी वृत्ति भी जागृत हुई है। ऐसी बदली हुई परिस्थितिमे नये लोग नये ढंगसे प्रवास-वर्णन लिखेंगे और देशवासियोंको दुनियाकी परिस्थितिकी जानकारी देंगे।

'शर्कराद्वीप मॉरिशियस' को साहित्यका आगाही (भविष्यवाणी) रूप मान सकते हैं।

काका कालेलकर

भारतके लोग ठेठ प्राचीन कालमें कहां-कहां जा कर बसे थे इसका इतिहास हमारे पास नहीं है। आखिरी पचास-सौ बरसोंमें विदेशी तथा देशी विद्वानोंने थोड़ा बहुत संशोधन करके उस इतिहासकी हमें जरासी झांकी करायी है। फिर भी उसका पूरा अथवा प्रामाणिक चित्र अब तक तैयार नही हुआ है। हमारे लोग समुद्रके रास्ते दूर-दूरके देशों तक जाते थे, इसमें शंका नहीं है कि प्राचीनकालमें एशिया तथा यूरोप दो अलग खण्ड गिने नहीं जाते होंगे। हमारे लोग तथा हमारी संस्कृति पूर्व रशिया यानी साईबेरिया तक पहुंची होनी चाहिये। (अथवा, लोकमान्य तिलककी कल्पनाके अनुसार हम वहांसे यहां आये होंगे) अफ्रीका खंडके विषयमें निश्चित रूपसे कुछ कहा नहीं जा सकता। फिर भी उस भूमिमें हमारे पूर्वज गये होंगे ऐसा मान सकते हैं। लेकिन ये सब हुई प्राचीनकालकी बातें। आजके इतिहास पर प्राचीनकालकी घटनाओंका असर दिखाई नहीं देता। इसलिए हम प्राचीन वसाहतोंका विचार इस वक्त छोड़ दें। पठान और मुगलकाल में हमारे लोग अफ़गानिस्तान, ईरान तथा तुर्कस्तान तक गये ही होंगे। हमारा समुद्री व्यापार भी उस तरफ थोड़ा-बहुत विकसित हुआ था परन्तु उसका इतिहास कहां ढूंढेंगे? फिरंगी (Portuguese) डच, फ्रांसीसी (French) तथा अंग्रेज जैसे यूरोपीय लोग समुद्रके रास्ते हमारे यहां आने लगे और हमारे यहांकी कमजोरी तथा लापरवाही देख यहां अड्डा जमाने लगे, उसके बादका इतिहास उनके लेखोंसे मिलता है, अच्छी तरह मिलता है। अतः वहींसे हमारा आजका इतिहास हम शुरू करते हैं।

धर्म, तत्वज्ञान, कलाकौशल्य तथा उद्योगहुनरमें हमने चाहे जितनी सांस्कृतिक प्रगति की हो, फिर भी ईसाकी पन्द्रहवी शतीके दिनोंमें हमें पूरी दुनियाकी स्पष्ट कल्पना नही थी। हमारा भूगोलका ज्ञान दयनीय था। बाहरकी दुनियामें क्या चल रहा है, हम कुछ नही जानते थे। विदेशके यात्रियोंने हमारे यहां आ कर यहांकी परिस्थितिके विषयमें बहुत कुछ लिखा है। लेकिन उसी जमानेमें हमारे लोगोंको विदेशमें जा कर वहांकी परिस्थितिके बारेमें लिखनेकी अथवा स्वदेश-वासियोंको कहनेकी सूझी नहीं।

और हमारे लोग जब बड़ी संख्यामें विदेश गये भी तब किस तरहसे गये। यूरोप अमरीकाके लोगोंने अफ्रीकाके लोगोंको गुलाम बना कर उनसे काम लेना जब छोड़ दिया, गुलामीकी प्रथा ही बंद की, तब उन गुलामोंकी जगह लेनेके लिए और अर्ध-गुलामीकी हालतमें रहनेके लिए हमारे लोग विदेश गये। और वह भी कहां? सुदूर पूर्वमें फीजी आदि टापुओंमें, पश्चिमकी ओर अफ्रीकाके पूर्व किनारे पर, तथा उत्तर और दक्षिण अमरीकाके बीच आये हुए वेस्ट इन्डीज़ आदि प्रदेशोंमें।

ऐसे लज्जास्पद कामके लिए हमारे लोग तैयार हुए उसके मुख्य तीन कारण मान सकते हे :

१. हमारे लोगोंकी गफलत और सामाजिक गैरजिम्मेवारी। विदेशसे कौन कहां से आते हैं, हमारे यहा क्या-क्या काम करते हैं, हमारे लोगोंको फुसला कर कहां ले जाते हैं, वहांकी हालत कैसी है इत्यादि कुछ भी हमारे लोग—राजा, समाजके नेता अथवा व्यापारी भी—अच्छी तरह नही जानते थे।

२. जातिभेदके कारण उत्पन्न होनेवाले ऊंच-नीच भावको ले कर हमारे बहुतसे स्वजनोंके प्रति हमारे मनमें आत्मीयता बहुत कम थी। नीची मानी हुई जातियोंके लोग कैसे जीते हैं, वे सुखी हैं या दुःखी और उनके ऊपर क्या अन्याय-अत्याचार होते हैं—ये कुछ भी जाननेकी दरकार (परवाह) हमारे सामाजिक नेता या उच्च वर्गके लोग रखते नहीं थे।

३. अपने यहां हम स्वराज खो बैठे थे। इसलिए राजकी स्वतंत्रता, राष्ट्रीयता तथा स्वकीय जनताके प्रति हमारा कर्तव्य, इन सबके बारेमें हमारी कर्तव्य-बुद्धि बिल्कुल मंद पड़ गयी थी।

४. चौथा भी एक कारण ऊपरके तीन कारणोंसे हम सोच निकाल सकते हैं। यहां हरिजन आदि दबी हुई जातियोंके लोगोंकी स्थिति इतनी खराब थी और उनको सामाजिक रूढ़िका त्रास इतना तो सहन करना पड़ता था कि इस देशको छोड़ और कहीं भी जानेसे अपनी हालतमें कुछ सुधार ही होगा इस तरहकी जान पर खेलनेकी वृत्ति उनमें आ गयी थी। स्त्रीजातिकी स्थिति उस जमानेमें कितनी खराब थी उसकी तो कल्पना ही करनी पड़ेगी। जिस तरह कई स्त्रियोंने जान पर खेल कर धर्मांतर किया वैसे कई स्त्रियोंने असह्य परिस्थितिसे बच जानेके लिए देशांतर

करने का भी मान्य रखा होगा।

सारी दुनियामेंसे गुलाम होनेके लिए अफ्रीकन लोग ही मिल सके और गिरमिटिया होनेके लिए हमारे देशके लोग ही मिल सके, यह बात हमारी संस्कृतिके लिए शोभास्पद नहीं है। अफ्रीकी लोगोंमें अपने लोगोंको तथा खुदको बेच देनेकी प्रथा थी इसीलिए और लोग उनको गुलाम बना कर ले जा सके और हमारे कई लोग 'दुबले' (अर्ध गुलामकी हालतमें रहने वाली किसानके चाकरोंकी एक जाति-गुजारातके सूरतके तरफकी)की हालतमें रहनेके आदी थे। यह भी एक बड़ा कारण कि हमने गिरमिटियाकी प्रथाको निभा लिया। चाणक्यके जमानेका सूत्र—न आर्यः दास भावं अर्हति—जो आर्य जातिका अथवा वृत्तिका है वह कभी भी गुलामीको स्वीकार नही कर सकेगा—यह हम भूल गये थे। संक्षेपमें, हमारे यहां अनेक वंशके लोगोंके मिलनसे एक विस्खलित या ढीला समाज बना था।

विल्बरफार्स तथा गॉरिसन जैसे मानवताके भक्तोंने गुलामीकी प्रथाका कड़ा विरोध करके गुलामोंको स्वतंत्र करनेके बाद अफ्रीकी नीग्रोंने जिन कामोंसे साफ इंकार किया, वही काम करनेके लिए भारतवासियोंको तैयार हुए देख कर नीग्रो लोगोके मनमें भारतीयोंके प्रति आदर तो उत्पन्न हो ही नही सकता था। आज भी वेस्ट इन्डीज़ जैसे देशोंमें नीग्रो लोगोंके मनमे बैठ गया है कि भारतीय लोग उन लोगोंसे भी नीचेके स्तरके हैं।

ऐसी परिस्थितिमें हमारे लोग यूरोपीय मालिकके यहां काम करने गये। वहां उन्होंने जो कुछ सहन किया उसका वर्णन पढ़ते क्रूरसे क्रूर मनुष्यकी आंखोंमें भी आंसू आयेंगे और रोंगटे खड़े हो जायेंगे। ऐसी हालतमें भी हमारे लोग धीरज-पूर्वक तथा हिम्मतपूर्वक टिके रहे और गिरमिटमेंसे मुक्त होनेके बाद धीमे-धीमे सिर ऊंचा कर सके इसमें हमारी जातिकी तथा संस्कृतिकी प्राणशक्ति सिद्ध होती है। न थी शिक्षा, न था किसी तरहका प्रोत्साहन, न थी स्वदेशकी ओरसे कुछ भी राहत या मदद, पुराने संस्कार जितने टिक सके उतने टिके। ऐसी विषम परिस्थितिमे भी उन लोगोंने भारतके प्रति अपनी जो भक्ति थी उसे कायम रखा। अधिकतर लोग अपने धर्मसे वफादार रहे। थोड़ी सी छूट मिलने पर स्वदेशसे उन्होंने धर्मोपदेशकोंको बुला लिया। वहां अपने मंदिर बांधे। कइयोंने भारतकी यात्राएं कीं और इस तरह अपनी भारतीयताको हो सके उतना टिकाये रखा।

ऐसे हमारे देश बांधवोंकी जीवन-कथा हमें जाननी चाहिये और उनकी भारतनिष्ठाकी कद्र करके, वे जहां जा कर बसे हैं वहां उनके पैर मजबूत बनानेके लिए उनकी सहायता करनी चाहिए। प्रत्येक देशकी परिस्थिति अलग; इसलिए वहांके प्रश्न भी अलग। इन सबका विचार करके उनकी मदद करनी चाहिए।

दक्षिण अफ्रीकामेंसे भारतीय लोगोंको तो बिलकुल मिटा ही देनेका प्रयत्न वहांकी सरकारने किया था तब सद्भाग्यसे गांधीजी वहां पहुंचे और उन्होंने

हमारे लोगोंको नयी दृष्टि दी, उनके अंदर नया चैतन्य डाला।

पूर्व अफ्रीकाकी स्थिति उससे अलग है। वहां गिरमिटियोंके उपरांत हमारे व्यापारी तथा और लोग स्वेच्छासे जा कर बसे। भारतके साथ उनका सांस्कृतिक संबंध हमेशा कायम रहा है। अंग्रेजोंने अपनी नीतिके अनुसार उनका उपयोग कर लिया और उनको दबाये रखनेका प्रयत्न किया। अब उस प्रदेशकी स्थानिक प्रजा जाग्रत हुई है। उनका संख्या-बल इतना ज्यादा है और सारी दुनियामें यूरोपीय लोगोंकी धाक इतनी कम हो गयी है कि अब अफ्रीकी लोगोंको क्रमशः स्वराज्य दिये बिना अंग्रेजोंको चारा नहीं है।

इथियोपिया, ईजिप्त, सूडान, लायबीरिया, घाना, नायजीरिया आदि देश कमोबेश स्वतंत्र हुए हैं। परिणामस्वरूप तमाम अफ्रीकी लोगोंकी महत्त्वाकांक्षा जाग्रत हुई है। इस नयी परिस्थितिको अच्छी तरह समझ कर हमारे लोगोंको अपना स्थान तय करके अपनी हस्तीको आशीर्वाद रूप तथा मजबूत करना चाहिए।

झांझीबारकी स्थिति इससे अलग है। वहां अरब लोगोंका जोर अधिक था। उन्होंने झांझीबारमें रह कर पूर्व अफ्रीकाके किनारे पर अपना राज्य जमाया और गुलामोंका व्यापार करते रहे। मस्कतके सुलतानको झांझीबार जा कर कायम होनेमें हमारे लोगोंने ही मदद की थी।

दूसरी तरफ त्रिनिदाद ब्रिटिश गियाना आदि अमरीकी प्रदेशोंकी परिस्थिति उससे भी अलग थी। उन प्रदेशोंके मूल आदिवासी तो कबके लगभग अलोप हो चुके हैं। राज्य गोरोंका है किन्तु वहाकी प्रजा तो अफ्रीकासे तथा भारतसे लाये हुए लोगोंकी ही है। प्रत्येक स्थान पर थोड़े चीनी और अन्य लोग मिलेंगे। ये प्रदेश हमारे देशसे बहुत दूर तथा अमरीकाके नजदीक हैं। हमारे लोगोंको अपनी संस्कृतिको टिकाये रखनेमें ही बड़ी मुश्किल थी, तब नीग्रो लोगोंको भारतीय संस्कृतिका स्वाद चखानेका काम कहांसे हो सकता? सर्वत्र यूरोपीय लोगोंकी साम्राज्यवादी संस्कृति तथा उनका ईसाई धर्म फैले हुए थे। उसीका रंग वहांके नीग्रो लोगोंने अपनाया हुआ था। हमारे लोग भी इससे काफी प्रभावित हुए थे और अब आगे तो शिक्षा और जीवन-सिद्धि अमरीकासे प्राप्त करनी पड़ेगी; ऐसी परिस्थितिमें एक नयी ही आंतरवंशीय संमिश्र संस्कृति वहां पैदा हो रही है। हमारे लोगोंको यदि हम पूरी-पूरी सहायता देंगे तो वहांकी नव संस्कृतिकी रचनामें हमारा योगदान महत्त्वका होगा तथा उसका प्रभाव चारों ओर फैलेगा।

हर जगह धर्म-धर्मके बीच जो खींचातानी और स्पर्धा चल रही है उसमें हमें उतरना नहीं है। जैसे-तैसे, कुछ भी करके अपने धर्मके संख्याबलको बढ़ाना यह हमारा स्वभाव नहीं है, हमारी वैसी महत्त्वाकांक्षा भी नहीं है। हम अपनी संस्कृति अपने लिए संजीवन करके अपनी शक्तिका विकास करेंगे। तथा नये

जमानेके अनुकूल नये रूपको धारण की हुई अपनी संस्कृतिकी सुगंध फैलायेंगे । सभी शुद्ध संस्कारोंको खुले दिलसे लेंगे और देंगे और हो सके तो सबके लिए आशीर्वाद रूप बनेंगे । इन अलग-अलग स्थानोंमें ईश्वरने अपनी एक-एक अद्भुत सांस्कृतिक प्रयोगशाला चलायी है यह पहचान कर अपना भाग अदा करेंगे।

ऐसे इन सब अद्भुत प्रदेशोंमें भी मॉरिशियसका प्रदेश तथा वहांकी हमारी स्थिति बिल्कुल अलग है । पूर्व अफ्रीकामें जिस तरह करोड़ों अफ्रीकी लोगोंके बीच, मुट्ठीभर अंग्रेजोंकी मदद करने हम अच्छी संख्यामें जा कर बिखरे पड़े हैं, ऐसी स्थिति मॉरिशियसकी नहीं है। सात सौ बीस वर्ग मीलके उस द्वीपमें राज्यकर्ता अंग्रेज मुट्ठीभर ही हैं, वहां सच्चा जोर तो वहाके फ्रेन्च जमीनदारोंका है । वहां आदिवासी जैसे कोई है ही नही । जो हैं वे पैंसठ प्रतिशतसे अधिक भारतसे आये हुए हिन्दू मुसलमान ही हैं । फ्रेन्च लोगोंके लाये हुए थोड़े अफ्रीकी लोग, चीनसे जा कर बसे हुए थोड़े चीनी तथा सबके आपसके संबंधोसे उत्पन्न हुई 'क्रिओल' नामसे पहचानी जानेवाली प्रजा, यह है मॉरिशियसका विस्तार। इस टापूमें हम अभी-अभी हो आये । उस प्रवासका ब्यौरा तथा वहांके लोगोंकी स्थितिके बारेमें हमने अलग-अलग व्यक्तियोंको पत्र लिखे थे । उससे पूरी कल्पना आती है अतः वही यहां देते हैं।

[मॉरिशियस जानेके लिए दिल्लीसे निकल कर हम बम्बई १९५९ के नवम्बर की दस तारीखको पहुंचे तथा विदेशी मुद्रा इत्यादि की आखिरी तैयारी करने दो दिन रुके। वहांसे शर्कराद्वीपके विषयमें यह पत्र पूज्य काका साहबने जिनको लिखा है वह मजु बहन जापानके प्रवासमें पू० काका साहब के साथ थीं । उनको प्रवासका बड़ा रस है ।]

प्रिय मंजु,

आज जिसे मॉरिशियस कहते है उसके पुराने समयमें, अलग-अलग नाम थे सन् १९७५ में जब पुर्तगाली लोगोंको इस टापूका पता चला, उस समय उस पर मनुष्य बस्ती थी ही नही । इसका यह मतलब नहीं है कि पुराने लोगोंको इस टापू का पता ही नही था या प्राचीनकालमें वहां मनुष्य बस्ती थी ही नहीं। जब पुराने लोगोंने अपनी-अपनी इच्छाके अनुसार इस टापूको नाम दिये हैं, तब हम अपनी कल्पना करके एक नया नाम क्यों न दें ? मैं तो उसे शर्कराद्वीप कहूगा, क्योंकि इस टापूकी उपजमें ९७ फीसदी उपज शक्करकी है । हमारे बचपनमें भारतमें जो शक्कर इस्तेमाल होती थी वह सब मॉरिशियससे ही आती थी और इसीलिए लोग शक्करको 'मोरस' कहते थे ।

जिस टापूसे समूचे देशको शक्कर मिलती थी उस टापूको हम शर्कराद्वीप कहें यह सर्वथा उसके अनुरूप ही है

यह टापू भारतकी दक्षिण-पश्चिम दिशामें लगभग दो हजार मील दूर है।

मॉरिशियस या शर्कराद्वीप लंका या माडागास्कर जैसा बड़ा टापू नहीं है। उसकी लंबाई साढ़े अडत्तीस मील है और चौडाई अट्ठाईस मील। कुल क्षेत्रफल ७४० वर्ग मील है।

अक्षांश और रेखांशके हिसाबसे यह टापू भूमध्य रेखाके दक्षिणमें २०° अक्षांश और ग्रीनिचके पूर्व ५७° रेखांश पर है। इस छोटे-से टापू पर मनुष्य वस्ती काफी घनी है। कुल वस्ती पांच लाख सत्तर हजारकी होगी। उसमें हिन्दू लगभग दो लाख छयासी हजारसे अधिक यानी इक्यावन (५१) फीसदी होंगे। मुसलमान ७६ हजार यानी साढ़े तेरह फीसदी है। कुल भारतवासी सामान्य तौर परसत्तर फीसदी माने जाते हैं। चीनी लोग तीन फीसदी यानी १७ हजार हैं। फ्रेन्च और अंग्रेज मिल कर गोरे लोग चौदह हजारसे भी कम—यानी ढाई फीसदी हैं। बाकीकी लगभग तीस फीसदी प्रजा या तो अफ्रीकी है अथवा मिश्र-सतति क्रिओल है।

धर्मके हिसाबसे देखने हिन्दू पचास प्रतिशत, ईसाई पैंतीस प्रतिशत और मुसलमान चौदह प्रतिशत माने जाते है। इनमें ईसाई 'इतने ही' है यह कहना आसान नहीं है।

इस द्वीपमें शक्करकी उपज लगभग पांच लाख बहत्तर हजार मीट्रिक टन है, यानी लोक-संख्याके हिसाबसे प्रति मनुष्य एक टनका उत्पादन होगा। यह शक्कर पहले भारतमें आती थी। अब वह अधिकतर ब्रिटेन, कनाडा, जापान, ईरान तथा हांगकांग भेजी जाती है। इसलिए मॉरिशियसका सारा व्यापार ब्रिटेन पर अविलम्बित है। भारतसे अधिकतर हम कपड़ा भेजते हैं। यह निर्यात भी धीरे-धीरे कम होता जा रहा है।

सन् १९५५ में हमारा निर्यात ढाई करोड़ रुपयोंसे अधिक था। अब वह डेढ़ करोडसे भी कम हुआ है। प्रमाणमें दक्षिण अफ्रीकाका व्यापार वहां बढ़ता जा रहा है और यह स्वाभाविक भी है।

वैसे तो मॉरिशियसके साथ हमारा संबंध बहुत पुराना है। भारतमें अपना राज्य स्थापित करनेके लिए फ्रान्स तथा ब्रिटेनके बीच जब स्पर्धा चल रही था, और दोनों देशोंके जहाज केप ऑफ गुडहोप हो कर भारत आते थे उस समय सैनिक दृष्टिसे मॉरिशियस बहुत ही महत्त्वका था। वह फ्रान्सके कब्जेमें था तब तक वे ब्रिटिश जहाजोंको सता सकते थे। मॉरिशियस जिसके हाथमें हो वही भारत पर अधिकार प्राप्त कर सकता है यह स्पष्ट होनेसे लॉर्ड वेलेस्ली ने भारतसे हमारे लोगोंकी दस हजारकी सेना यहांसे मॉरिशियस भेजी और हमारे तथा ब्रिटिश लोगोंकी बहादुरीसे इसे तथा आसपासके टापुओंको जीत लिया।

आगे चल कर जब देखा गया कि अफ्रीका या माडागास्करके गुलामोंकी मदद से खेतीका काम चलाया नहीं जा सकता और गुलामी भी रद्द हो गई, तब

भारतसे गिरमिटिया मजदूरोंको बुलाया गया। इन लोगोंने जहाज बांधनेके काम से ले कर ईखकी खेती तकके सब काम वहां किये। हमारे देशके लोगोंके खून और पसीनेसे समृद्ध बननेवाले टापू पर राज्य अंग्रेजोंका है। जमींनदारी अधिकतर फ्रेन्च लोगोंके हाथमें है और अधिक संख्या हमारे लोगोंकी है। कानूनकी दृष्टिसे वहां हमारे लोगोंके लिए अब कोई कठिनाई नहीं है। गोरे लोग जितना आगे बढ़ने देते हैं उतना हमारे लोग वहां बढ़ते ही हैं। उनके मनमें भारतके प्रति सांस्कृतिक भक्ति है। ये लोग यदि शिक्षामें प्रगति करें तो अनेकवंशी, अनेकभाषी, अनेकधर्मी जो मानव-संस्कृति दुनियामें जगह-जगह पर, इतिहास-विधाताकी योजनाके अनुसार विकसित हो रही है उसमें वे अपना कीमती सहयोग दे सकेंगे। इस शर्करा-द्वीपके प्रति हमारा आकर्षण केवल सांस्कृतिक है। नये-नये देशोंमें जा कर बसे हुए हमारे लोगोंका सर्वांगीण उत्कर्ष देखनेमें ही हमारा परम संतोष है।

इस यात्रामें भी तुम साथ होती तो तुम्हें बहुत कुछ जाननेको मिलता।

काकाके सप्रेम शुभाशिष

[मुझे इस मॉरिशियसमें जा कर बसे हुए अपने लोगोंको मिलनेकी उत्कंठा तो बरसों-पुरानी थी। पूज्य काकासाहब जब पूज्यश्री बापूजीके सत्याग्रह आश्रम में रहते थे तब मॉरिशियसके एक गुजराती मुस्लिम सज्जन भारत-भ्रमणके लिए आये थे वे मिले। उन्होंने भी पूज्य काका साहेबको एक बार मॉरिशियस जानेका बहुत आग्रह किया था। तबसे मॉरिशियस जानेका धुंधला-सा संकल्प मनमें था ही। किन्तु भारत स्वतंत्र न हो जाय तब तक और कोई भी विचार जड़ कैसे पकड़ता? उस समय तो जेलयात्राकी धुन ही सिर पर सवार थी। आखिरकार स्वराज तो मिला, अंग्रेज गये, तब विदेश-यात्राका सोया हुआ भूत फिरसे अंगडाई लेने लगा। विदेश बसे हुए हमारे लोगोंमें खास दिलचस्पी होनेसे पूज्य काकासाहेबने विदेशोंमें अनेक प्रवास किये। १९५९ में अफ्रीका हो कर मॉरिशियस, रीयूनियन तथा माडागास्कर जानेके लिए ता० १३ नवम्बरकी रातको हम चले। यात्राके वर्णन के, हवाई जहाजसे लिखे हुए हमारे पत्र ही यहां देती हूं।]

हवाई जहाजसे
१४-११-५९

चिरंजीवी प्यारे वसंत तथा सुदर्शन,

वसंत कल रात तुम हमें मोटर तक छोड़ कर वापस घर गये फिर तुरन्त आरामसे सो गये या नहीं? हम मोटरमें बैठ कर हवाई अड्डे पर बहुत जल्दी पहुंचे। वहां बैठ-बैठ कर ऊब गये और अन्तमें कस्टमस आदिसे फारिग हो कर अंदर गये।

हमारा विमान रातको लगभग बारह बजे उड़ा। बहुत ही जल्द बम्बईके दीये अदृश्य हो गये। फिर मात्र चांदनीकी बरसात दिखाई देती थी। किन्तु विमानमें

देखभाल करनेवाली बहनको लगा कि अब सबको सो ही जाना चाहिए । उसने आ कर हरेक खिड़कीका परदा बंद कर दिया । वह गयी तब हम फिरसे उसे खोल कर देखने लगे लेकिन खास कुछ दिखता नही था । इतनमें उस बहनने आकर फिर से परदा बंद कर दिया । तब हमने 'सयाने बन कर' वमत सुदर्शन जैसे शरद (वसंत-सुदर्शनकी मा) सरकारका हुक्म होते ही आखे मूद कर नीदको आमंत्रण देते है, वैसा किया । बच्चे बुलाते है तब नीद आ ही जाती है । हमे मात्र उसने बिल्कुल ही दाद न दी । हा, बीच-बीचमे दस-पन्द्रह मिनिट झपकी आती थी तो सही, लेकिन नीद तो नही आयी । सुबह एडन आया । लगभग साढ़े चार बजे (हमारे सात बजे) वहां उतर कर थोड़ा नाश्ता किया; यहा वहा घूमे । वहांका एक गुजराती कुटुम्ब मिला । वे तो पूज्य काकासाहेबसे मिल कर अत्यन्त खुश हो गये । 'वापस जाते समय अवश्य ही यहां उतरना' ऐसा उन्होंने आग्रह किया । और हम विमानमें आकर बैठे और उड़े ।

अब हम बीस तारीख तक नैरोबी रह कर इक्कीसको मॉरीशियस जायेंगे । वहां सात दिन रह कर माडागास्कर और रीयूनियन । वहांसे वापस नैरोबी आ कर पूर्व अफ्रीकामें दो सप्ताह भ्रमण करेंगे ।

पूज्य काकासाहबके तथा फोइबी (फूफी) के सप्रेम
बहुत बहुत शुभाशिष

चिरंजीव प्यारे सुदर्शन,

कल रातके सुनिशम् और आज सुबहके सुप्रभातम् ! रातको सुनिशम् कहने पर भी नींद तो नही ही आयी ! सुबह उठते ही यानी प्रकाश होते ही दूरबीन कहने लगी "दूर-दूरके बादल देखनेके लिए सुदर्शनको जगाओ और बुलाओ" । हमारे भारतीय विमानोंको जादुई कालीन Magic Carpet कहते हैं । प्राचीन कालमें ऐसे गलीचे आकाशमेंसे चाहे जहा जा कर राजपुत्रोंको उठा लाते थे । उसको कहनेवाला था कि हमारे सुदर्शनको ले आओ, मैं उसे एशिया तथा अफ्रीकाके बीचका समुद्र दिखाना चाहता हूं ।

समुद्र गया और उसकी जगह सुन्दर रूपवान बादलोंका समुद्र फैल गया । रूपवान याने क्या, जानते हो ? 'रूपा' यानी 'चांदी' । चांदीकी तरह चमकनेवाले वह हैं रूपवान-सुन्दर ।

अब समय नही है । जय हिन्द ।

काकासाहबके सप्रेम शुभाशिष
१४-११-५६

चिरंजीव प्यारे दीपक,

हमारे छुटपनमें एक सुन्दर रिवाज था । महीने दो महीनेमें घरके सब गद्दों को धूपमें डालते थे । घरमें लोग कम तो थे ही नहीं ! गद्दोंसे पूरा आंगन ढंक जाता था । फिर तो हम सब छोटे-छोटे बच्चे उन गद्दों पर लोटते-लोटते एक छोर

से दूसरे छोर तक पहुंच जाते थे। गद्दों पर लेट कर एक क्षण आकाशको देखना, दूसरे ही क्षण आकाशकी ओर पीठ करनी, फिरसे आकाशको देखना—बहुत मजा आता था। धूपके कारण गद्दे गरम हो जाते लेकिन खेलके रसमें हमें उसकी कोई परवाह ही न थी। दादीजी कहती धूपमें लेटनेसे सिर दुःखेगा लेकिन हमें उसकी भी परवाह न थी। फिर उन्होंने कहा "तुम यदि यूं आंगनमें लेटे रहोगे और आकाशमेंसे चील तुम्हारे ऊपरसे जायेगी तो तुम्हारी कमर टूट जायेगी। फिर तो हाथमें लकड़ी ले कर चलना पड़ेगा'। उसका डर हमें जरूर लगता। हम आकाशमें देखते रहते कि कोई चील तो ऊपरसे जा नहीं रही है !

आज हम हवाई जहाजमें नैरोबी जा रहे हैं। रास्तेमें बादलोंके गद्दे एक सिरेसे दूसरे सिरे तक फैले हुए हैं। चील तो बादलोंके नीचे ही होगी। देखनेमें बड़ा आनन्द आता है। हवाई जहाजमेंसे बादलों पर कूद कर छुटपनकी तरह लोटने को जी चाहता है।

लेकिन छुटपनके दिन कहांसे लाऊं ! इसलिए मेरे छुटपनकी बातें इस तरह तुमको लिख कर सन्तोष मानता हूं। तुम मेरे जितने बड़े होगे तब तुम भी अपने पोतोंको अपने छुटपनकी बातें अवश्य कहोगे।

काकासाहबके सप्रेम शुभाशिष—सभीको

१४-११-५६

चि० प्रिय स्वाति तथा नन्दिनी,

कल रात बंबईसे निकले। चांदनी पुरजोशमें बरस रही थी फिर भी हम न देख सके समुद्र और न देख पाये अरबस्तानका रेगिस्तान। उसकी जगह यदि नींदमें डूब गये होते तो भी कुछ सन्तोष होता। लेकिन पैर, घुटने और कमरकी शिकायत थी, "यह कोई सोनेके ढंग है ?"

सुबह सात बजे हम एडन पहुंचे। किन्तु वहांके साढ़े चार ही बजे थे। मतभेद का कितना बड़ा अवकाश !!

हम नाश्ता कर रहे थे तब कई गुजराती गृहस्थ मिले। मुझे पहचान कर एक सज्जन बोले, "मैं तो आपके शिष्यका शिष्य हूं !" करसनदास माणेकके साथ वह सज्जन करांचीमें मनोराकी सैर करने आये होंगे—करांची साहित्य परिषद के समय। वापस जाते समय दो दिन एडन ठहरनेका उन्होंने बहुत आग्रह किया।

एशियाका किनारा छोड़ कर देखते-देखते हम अफ्रीकाके आकाशमें आ पहुंचे हैं। खंड बदला है लेकिन सूर्योदयके प्रकाशका रंग वहीका वही है। बादल भी वही हैं और अब सिर पर न दिखनेवाले तारे भी वही हैं।

ब्रिटिश सोमाली लैन्ड लांघ कर ईथिओपियामें याने हब्शिओंके देशमें प्रवेश किया ऐसा कह सकते हैं। दोपहर तक माउन्ट केनियाके दर्शन कर नैरोबी पहुंचेंगे।

हवाई जहाजमें चाहे उतनी तेज गतिसे हम जाते हों तो भी अन्दर कुछ मालूम नहीं होता और आरामसे लिखा जाता है यह कितनी बड़ी सहूलियत !

बंबईसे निकलते समय आपके पिताश्री उमाशंकरका पत्र तथा महाराज (रविशंकर भाई) के साथ लिये हुए फोटोकी प्रति भी मिल गयी थी।

काकाके सप्रेम शुभाशिष

१४-११-५६

चि० प्यारे प्रियदर्शन वसंत,

हमारे विमानमें बच्चे बहुत हैं। सामनेवाली बैठक पर बैठे हुए दो लड़के कॉमिक्स देखनेमें मशगूल हैं। खिड़कीके बाहर इतनी सुन्दर कुदरत फैली हुई है उसे देखनेका उनको सूझता नहीं है !

तुम्हारे पास अच्छे नक्शे हैं। उनके साथ दोस्ती करना। दोस्ती करनेके बाद ये नक्शे हमारे साथ देश-विदेशकी बातें करते है। सभी नक्शे मूक-वातूनी होते हैं। वहीकी वही बात बार-बार कहते वे ऊब न जायें या थक न जायें इसलिए मूक भाषामें बोलते है। मेरे हाथका नक्शा कह रहा है कि अब पत्र बन्द करो क्योंकि अभी उत्तुंग माउन्ट केनिया आयेगा। वह पहाड़ पवन गरमी और बर्फ से घिसा जा रहा है। फिर भी उसकी ऊंचाई सत्रह हजार फुटसे अधिक है। हम भी कुछ कम ऊंचे नहीं है। बलिहारी हमारे विमानकी !

काकासाहेबके सप्रेम शुभाशिष

१८-११-५६

चि० बाल,

मॉरिशियस जाते, विमानकी सहूलियतके कारण हमें चार दिन नैरोबी ठहरना पड़ा यह तो तुम्हें मालूम है ही। मॉरिशियससे वापस पर नैरोबी आ कर पूर्व अफ्रीकामें करीब बीस दिन हमने भ्रमण किया इसलिए इन चार दिनोंका वर्णन भी—खास कर वहांके अभयारण्यके पशु-पक्षियोंकी मुलाकात ले कर उनकी निकटताका अनुभव हम कर पाये, उसका वर्णन यहां न देकर उस यात्राके साथ ही देना उचित रहेगा। कालक्रम टूटेगा, लेकिन स्वाभाविक संबंध बना रहेगा। यूं तो तीन दिनमें हम इतने सारे लोगोंसे मिले, इतनी चर्चाएं कीं तथा संस्थाओंकी मुलाकातें ली कि उन चार दिनोंके अनुभवोंसे ही एक पूरा प्रकरण भर सकेंगे।

नैरोबी पहुंचते ही हमारे सामने एक उलझन खड़ी हुई। हमें समाचार मिले कि हम अठारह तारीखको मॉरिशियस पहुंचेंगे ऐसा मान कर वहांके लोगोंने ता० १६ से सात दिनोंका कार्यक्रम तय कर दिया था। खास तो यह कि मॉरिशियसके गवर्नर सर कॉलविल मॉन्टगोमरी डेवरिलने ता० १६ की दोपहरको हमें भोजनके लिए आमंत्रित करनेका तय किया था। जब कि एयर फ्रान्ससे हमें सूचना मिली थी कि दिल्लीसे करवाया हुआ हमारा ता० १८ का अंकन उन्हें रद्द करना पड़

रहा है, क्योंकि किसी यूरोपीय खिलाड़ियोंकी बड़ी टोली पूरीकी पूरी एक ही विमानमें ठेठ पेरिससे मॉरिशियस जाना चाहती थी। अब क्या किया जाये? अन्य किन्हीं यात्रियोंको रोक कर क्या, हमको दो टिकटें दी जा सकती हैं इसका भी कोशिशें हुई। जितने लोगोंका कुछ वजन था उन सभीने प्रयत्न कर देखे, किन्तु कोई सफलता न मिली और करीब-करीब तय कर लिया कि चार दिन ज्यादा रह कर हम ता० २३ को मॉरिशियस पहुंचेंगे।

और रास्ता ही नहीं था तो हम क्या करते? जिसका इलाज नहीं है उस परिस्थितिको स्वीकार करना अनिवार्य है। लेकिन मैंने कहा कि निश्चित किए कार्यक्रमको बदलनेसे असंख्य लोगोंको हम अड़चनमें डालते हैं। और एक बात यह थी कि मोरिसके हमारे राजदूत श्री धमीजाकी ओरसे दो तार भी आ चुके थे कि निश्चित किये हुए कार्यक्रमको बदलनेसे मुश्किल होगी, अतः शक्य हो तो कार्यक्रम बदलिये मत। तब ज्यादा खर्च करके भी ता० १८ को ही निकलना चाहिए, ऐसा सोच कर हमारी टूरिस्ट वर्गकी टिकटें बदल कर पहले वर्ग की कर ली और प्रत्येकके तीन-सौ रुपये अधिक दे दिये। मूल कार्यक्रमको पवित्र मान कर उसे न बदलनेके बारेमें गांधीजीकी सिखावन इस समय काम आयी।

पू० काकासाहेबने कहा "छः सौ रुपये भले खर्च हो जायें लेकिन हमें निकलना है १८ को ही।"

आगेके अनुभवने सिद्ध कर दिया कि इस निर्णयमें ही बुद्धिमानी थी। बीचमें '१८ को निकल नहीं पायेंगे' जो तार माडागास्कर तथा मॉरिशियस भेजे गये थे उनको रद्द किया और संतोषके साथ हमने नैरोबीका हवाई अड्डा (Embakasi) १८ की सुबहको ही छोड़ा।

पू० काका साहब लिखते हैं कि—

एयर फ्रान्सका मैं हमेशा कृतज्ञ रहूंगा। वे लोग जानते है कि कुदरतकी भव्यता देखने यात्री तरसते हैं। अतः एक हवाई अड्डेसे यात्रिओंको दूसरे हवाई अड्डे तक पहुंचानेके आमिक कर्तव्यमें कोई विशेष धर्म भी हमारा है। उन्होंने नैरोबीमें दक्षिण-दक्षिण पूर्व जाते अपने विमानको किलिमाजारो पर्वतके बहुत नजदीकमें चलाया। तथा हमने उस पहाड़का मानव दुर्लभ शिखर-दर्शन जीभरके किया। अनेक ऊंचे-ऊंचे शिखरोंके निकटमें जाते मनमें भीति रहती थी कि तनिक भी भूल हो जाय तो विमानकी फैले हुए पंख किसी शिखरसे टकरायेंगे और हम सबको अंतिम अनुभव हो जायेगा कि हम आकाशगामी खे-चर नहीं किंतु भूमि पर रहनेवाले भू-चर हैं।

किलिमांजारोके दर्शनका आनंद उसी समय लिखा था उसे वैसेका वैसा यहां देना उचित होगा।

आज नवम्बरकी १८ तारीख है (१९५९) सुबह साढ़े आठकी जगह सवा नौ बजे नैरोबीका हवाई अड्डा अंबाकासी छोड़ा। हवा खुशनुमा है लेकिन वह अपना आनंद व्यक्त करती है श्वेत रुई जैसे बादलोंके ढेरको चारों तरफ फैला कर। ऊपर का आकाश निरभ्र नीला है। नीचे बादलोंका मैदान फैला है। जमीन तो क्वचित ही नजर आती है। गगनविहारी पक्षी बादलोंको छेद कर ऊपर आ नहीं पाते। पक्षी भले ही गगनविहारी हों किंतु उनके ध्यानकी निष्ठा तो पृथ्वीके प्रति ही है, अतः बादलोंके ऊपरका हमारा यह आकाश उनके लिए है ही नहीं।

हमारा विमान सीधा दक्षिण-दक्षिण पूर्व जा रहा है लगभग मोम्बासाकी दिशामें।

विमानके एँन्जिनकी घर्-घर् ध्वनि दोनों कानोंके अंदर घुस कर फिरसे फव्वारेकी तरह बाहर निकलने लगी। इतनेमें सारथिने ऐलान किया कि—कुछ ही निमिषोंमें, दाहिनी ओर किलिमांजारो पर्वतका शिखर दृष्टिगोचर होगा।

किलिमांजारो यानी अफ्रीकाकी भव्यता—भूमध्य रेखासे बहुत दूर न होते हुए भी उसके सिर पर हमेशा बर्फका किरीट विराजमान होता है। पांच हजार नव सौ फुट ऊंचा उसका शिखर सैकड़ों मील दूर तक दिखाई देता है। यहांकी भूमिमें किलिमांजारो तथा मेरु सबसे ऊंचे पहाड़ हैं। जरा उत्तरकी ओर माउन्ट केनिया तथा एल्गिन इन दो पहाड़ोंकी जोड़ी केनियाके प्रदेश पर राज्य करती है।

नव वर्ष पूर्व किलिमांजारोके प्रथम दर्शन संध्याके समय नैरोबीसे किये थे। क्षितिज परके बादलोंमेंसे उसका गुलाबी शिखर ढूंढ निकालनेमें कुछ दिक्कत हुई थी। लेकिन एक बार मिल जाने पर बस नजरोंमें वह बैठ ही गया।

उसके बाद दारेस्सलामसे पश्चिम तथा उत्तर जा कर मेरु पर्वतकी तलहटीमें हम अरुशा पहुंचे थे। तथा मोशी नामके शहरमें किलिमांजारोकी तलहटी देखी थी। वहांसे किलिमांजारो हाथीकी पीठके समान गोल-गोल दिखाई देता था, और माथे पर बरफके रेले ऐसे मालूम होते थे, मानो हाथीका मद झरता हो। मोशी-किलिमांजारोका दर्शन कर लेनेके बाद उस पहाड़की उत्तरकी बाजू हम अंबोसेलीके अरण्यमेंसे देख सके। उसके बाद हमें झांझीबार टापूमें पता चला कि किलिमांजारो के माथे पर एक बड़ा सरोवर है और उसीका पानी समुद्रके नीचेसे झरनेके रूपमें प्रगट होता है!

हम जिस प्रकार हिमालयका ध्यान धरते हैं और उसकी भक्ति करते हैं उसी प्रकार अफ्रीकी लोगोंके लिए भगवानने इस प्रदेशमें किलिमांजारोकी उत्पत्ति की है।

ऐसे उस किलिमांजारोके दर्शन आकाशमेंसे १९००० फुटकी ऊंचाईसे कर सकेंगे—वह भी इतने नजदीकसे—कभी सोचा तक नहीं था। इसलिए पूरे उत्साहसे और कुतूहलसे, खिडकीमेंसे देखना शुरू किया। प्रारम्भमें दूर-दूर देखते

थे इतनेमें विमानके पंखके सामने ही किलिमांजारो प्रकट हुआ ! इस पहाड़की बाजू पर पेड़, पत्ता आदि कुछ भी नहीं था। मिट्टी जैसे पत्थरों पर थोड़ा-सा बरफ— यही था उस शिखरका दर्शन। विमान आगे बढा और किलिमांजारो हमारी बगलमें आ गया। अब उसका विस्तार और उसकी प्रौढ़ता हम पूरी तरह देख सके। कुछ ही आगे गये और किलिमांजारोके माथे परका द्रोण Crater दिखाई देने लगा। उस द्रोणके किनारे पर बरफकी परत जमी हुई थी। लेकिन द्रोणके अंदर तो बरफका नामोनिशां नहीं था। उस परसे अनुमान हुआ कि द्रोण गहरा होगा और वहां हवा भी गर्म होगी।

विमानकी ऊंचाई परसे भक्तिनम्र होना हमारे लिए संभव नहीं था, लेकिन उससे किलिमांजारोकी प्रतिष्ठा तनिक भी कम नही होती थी। जी-भर कर, आंख-भर दर्शन हुए। हम संतोष मानने उतनेमें दूसरे एक पहाड़का शिखर—बिना बरफ का लेकिन नुकीले पत्थरोंका—बिलकुल नजदीक प्रकट हुआ। डर लगता था कि कही विमानकी दिशामें थोड़ी भी गफलत हुई तो उन शिखरोंसे हम टकरा जाएंगे। यह नया पहाड़ और पीछे खिसकता किलिमांजारो—दोनोंका दृश्य अत्यंत आकर्षक था।

किलिमांजारो ओझल हुआ और दूर-दूर मेरु दिखाई देने लगा। इस पहाड़का आकार अच्छा है। उसका विस्तार देख कर आंखें तृप्त हो सकती हैं। लेकिन उस बेचारेके माथे पर न द्रोण है, न है हिमधवल किरीट; इसलिए देवोंके पर्वतका नाम धारण करते हुए भी किलिमांजारोके सामने वह गौण ही माना गया है।

नक्शेमें मैंने इस विमानका रास्ता तथा किलिमांजारोकी ऊंचाई देखी। वहां पता चला कि हम नैरोबीसे आथी नदीके किनारे-किनारे लेकिन आकाशमेंसे जा रहे हैं। अब बायीं ओरकी खिड़कियोंमेंसे आथी नदीकी, घाटी कहें तो घाटी और लकीर कहें तो लकीर दूरसे आती और दूर तक जाती दिखाई दी। अब वह नदी समुद्र किनारे पर मालिन्दी बंदरगाहके पास समुद्रसे मिलेगी। लेकिन अब हमारा रास्ता मोम्बासाकी ओर न जाते टांगा शहरकी ओर मुड़ा। यह शहर समुद्रके किनारे पर, हमारी बायीं ओर था। उसे देखनेके बाद याद आया कि उसके पहले जो थोड़े पहाड़ हमने देखे थे, वहां नौ साल पहले हम एक एस्टेट देखने गये थे। उस पहाड़का नाम अब याद नही आता।

अब असली मजा समुद्रके तट पर, रेत और पानीके बीच विलसित हरे, फिरोजी और नीले रंगका था। एक तरफ सफेद रेत, दूसरी तरफ समुद्रका पारदर्शी नीला रंग, और दोनोंके बीच ऊपर वर्णन किये हुए त्रिविध रंगोंकी क्रीड़ा। रंगोंका वह तूफान आंखें पीती जाती थीं और उसकी लहरें हृदयको उर्मिल बनाती थीं।

अफ्रीकाके इस किनारे पर कई एक टापू अब तक अपने मनके साथ यह निश्चित नहीं कर पाये हैं कि समुद्रकी सतहसे बाहर आएं या कुछ अंदर ही रह

जाएं। कई एक टापू plus four का निर्णय करते हैं और कई एक minus four में ही अधिक शोभा मानते हैं। जो टापू चार फुट ऊंचे आये हैं उनकी रेत काली हो गई है। जिन्होंने पानीके बाहर अपना सिर निकाला नही है उनके ऊपरका और आसपासका फिरोजी रंग दूर-दूर तक ध्यान आर्कषित करता है।

अब हम आये लौंगके सुगंधी टापू झांझीबारके सर पर। उसका किनारा जमीन परसे जितना आकर्षक है उतना ही, लेकिन कुछ अलग ढंगसे, विमानकी नजरसे मोहक जान पड़ता है। झांझीबार शहर बादलोंके कारण दिखाई नहीं दिया। लेकिन उस टापूका पूरा विस्तार एक नजरसे देख सके।

किलिमांजारो देखनेके बाद जो पहाड़ियां दिखाई दीं वे अब कैसे हमें आकर्षित कर सकती थी? थोड़ी ही देरमें किलिमांजारो, उसुंबराकी पहाड़ियां तो क्या अफ्रीकाका लंबा किनारा भी अदृश्य हो गया और इस प्रदेशमें खास नजर आनेवाली, समुद्रकी विविधरंगी लीला हम देख सके। पुराने समयमें देखे हुए दृश्य और इस समयके दृश्योंके बीच तुलना करें इतनेमे तो माडागास्करका समुद्रतट नजर आने लगा। माडागास्कर द्वीप पहाड़ी मुल्क है। उन पहाड़ोंके बीचसे हो कर छोटी-बड़ी नदियां अपना रास्ता निकालती हैं और जहां सागरसे मिलती हैं वहांके समुद्रके पानीको दूर-दूर तक गंदलासा कर देती हैं। फलस्वरूप विमानमेसे नदीका मुख ईटके रंगके पंखेके जैसा दिखता है। ताडके पत्तेके पंखे उपयोगी तो हैं ही, किन्तु उसकी आकृति उसकी उपयोगितासे भी अधिक आकर्षक होती है। आकाशमें विहार करते पक्षी जिस तरह आकाशमे गोल-गोल उड़ कर अपने घोंसले पर बैठ जाते हैं उसी तरह हमारा विमान माडागास्करकी राजधानी तानानारीवके पास आरीवोनिमाम अड्डे पर पहुंच गया और डेढ़ घंटेके आरामके लिए नीचे उतरा।

वहां भारत सरकारके कौन्सल जनरल श्री जयवदन शाह तथा श्रीमती विद्या बहन शाह मिले। श्री विद्याबहनने बड़ी नाजुक ख्यालीसे तैयार करके लाया हुआ गुजराती भोजन प्रेमसे हमें खिलाया। फिर दोनोंके साथ हमने विचार-विनिमय किया कि रीयूनियन द्वीपमें कब जाना इष्ट होगा, माडागास्कर जब आयेंगे तब वहां कितने दिन बिता सकेंगे, कहां-कहां जायेंगे, इत्यादि।

माडागास्कर छोड़ हम रीयूनियन पहुंचे। वहांसे उड़ कर रात आठ बजे यानी एक घंटा देरसे मोरिसके हवाई अड्डे (Plaisanse) पहुच गये। रास्तेमें एक गुजराती सज्जन नैरोबीसे साथ थे—श्री भीमभाई देसाई। वे मॉरिशियसके रहने वाले, भारत गये थे। ढाई वर्षके बाद अपने वतन वापस आ रहे थे। उनसे हमको काफी जानकारी मिली। इस पूरे प्रवासमें वे हमारी देखभाल भी अच्छी तरह करते रहे। खास मुझे उन्होंने बार-बार कहा, "आप जरा भी तकलीफ बर-दाश्त नहीं करना। मेरे घर पर मेरी पुत्रवधू है वहां आपको आराम रहेगा। आप

दोनों चाहे जब हमारे घर रहने आ जाइये" इत्यादि ।

मॉरिशियसके बारेमें जितनी किताबें हमने देखीं उन सबके लेखक हवाई जहाजसे नहीं किंतु दरियाई जहाजमें वहां पहुंचे थे इसलिए दूरसे मॉरिशियसके चित्रविचित्र शिखर कैसे दिखाई दिये और बंदरगाह पहुंचते कैसा दृश्य नज़र आया इसीका वर्णन उन लोगोंने दिया है। उन वर्णनोंमें काफी साम्य है फिर भी प्रत्येक की खूबी अलग। हवाई जहाजमें बैठ कर मॉरिशियस पहुंचते वह द्वीप कैसा दिखेगा उसकी अनेक कल्पनाएं पू० काकासाहेबने की थीं। और उन कल्पनाओंके साथ प्रत्यक्ष दर्शनका मेल बैठेगा या नहीं उसकी चिंता भी उनको थी! किन्तु हम नैरोबीसे ही समय नष्ट करते-करते आये और मॉरिशियस पहुंचनेके पहले अंधेरा हो गया। फलस्वरूप पूरे द्वीपको पार करने पर भी उसका दर्शन हम कर ही नहीं सके। भूमिके दर्शन न हो सके उसका अफसोस मनमें ले कर हम नीचे उतरे—वहां कुछ ही क्षणोंमें मॉरिशियसवासी अपने लोगोंका विराट दर्शन हुआ और हम गद्‌गद् हो गये।

हम उतरे तब अंधेरा तो हो ही चुका था। वर्षा भी रिमझिम बरस रही थी। हवाई अड्डे पर जिस विधिसे जाना पड़ता है—पासपोर्ट, हेल्थ, कस्टम्स इत्यादि उससे तो हम पूरे परिचित और अभ्यस्त थे। और यहां तो हम सरकारके और जनताके चहेते मेहमान होनेसे कोई मुश्किल कैसे होती? आजके अनुभवने दिखाया कि अडचने एक बार सहन हो सकती है लेकिन लोगोंके प्रेमकी उछलने वाली लहरोंकी घुटन लगभग असह्य हो जाती है। उतरते ही हमारे कमिश्नर श्री जगन्नाथ तथा उनकी पत्नी देविका बहन धर्मीजाने हमारा कब्जा लिया और लोगोंका परिचय शुरू हो गया। ऐसे समय पर पू० काकासाहेबकी उलझन स्वाभाविक थी। एक तो आप कुछ ऊंचा सुनते हैं, उसमें लोगोंके नाम जल्दी-जल्दी बोले जाते हों और परिचय दिया जाता हो! वह सारा कैसे याद रहता और भारतके प्रतिनिधिके स्वागतार्थ आये हुए बड़े-बड़े लोगोंके नाम, चेहरे और परिचय याद न रहे यह भी कैसे चले! इस मधुर उलझनको सुरभित करनेका कार्य लोगों के दिये हुए हार और फूल कर रहे थे लेकिन उससे उलझन कुछ कम नहीं हो रही थी।

हवाई अड्डेके मकानमेंसे वाहनमें बैठने हम बाहर निकले। तब वहां मॉरिशियसवासी हजारों भाई बहनोंकी भीड़ जमी हुई थी। वे हमको कहांसे पह-चानते? इतना जानते थे कि अपनी पुण्यभूमि भारतसे आये हुए ये लोग है। व्यापार आदिके लिए आये नहीं लेकिन हमको मिलनेके लिए आये हैं। मॉरिशियसके अंग्रेजी, फ्रेन्च और हिन्दी अखबारोंने पू० काकासाहेबके बारेमें बहुत सी माहिती एकत्र करके लोगोंको दी थी। छोटे-बड़े अनेक लोग नजदीक आते, हाथ मिलाते, फूल अर्पण करते, अपना आनंद व्यक्त करते और आसपासके दीपक

उनकी आंखोंके हर्षाश्रुको चमका देते। "जन्मभर इन लोगोंकी अनन्य निष्ठासे सेवा करने पर भी इतने प्रेमका बदला हम कभी भी दे पायेंगे?" प्रेमका बोझ एक ऐसी चीज है कि उसके नीचे दब जाने पर भी उसे उतार डालनेको जी नहीं चाहता। उन लोगोंको धन्यवादके दो शब्द पू० काकासाहेब मुश्किलसे बोल पाये। न जाने कितने लोगोंके कान तक वे पहुंच सके होंगे किंतु पू० श्री काकासाहेबको—बापूजी के साथीको—प्रत्यक्ष देखनेकी धन्यता लोगोंकी आंखोंमें साफ चमक रही थी। उन सबकी गहरी भावना देख कर मेरा भी हृदय भर आया।

मॉरिसके दक्षिण-पूर्व सिरे पर आये हुए उस हवाई अड्डेसे द्वीपके मध्यमें स्थित क्यूरपीप फोरेस्ट साइड विभाग तककी पचीस मीलकी मोटर यात्रामें धमीजा दंपतीके साथ हमने खूब बातें कीं। बाहरके दृश्योंमें तो हमारी मोटरके दीपकोंमें प्रत्यक्ष होते गन्नेके सांटे ही हम देख सके।

भारतके कमिश्नरका रहनेका मकान अच्छी ऊंचाई पर है। अधिकतर लकड़ी का बना हुआ है। काफी सीढ़ियां चढ़नेके बाद हम अंदर पहुंचे। श्री देसाई तथा पुष्पाबेन देसाई अपने बेटे रमेशके साथ सबसे पहले मिले। फिर मिले मॉरिशियस के हमारे लोगोंके नेता डॉ० रामगुलाम और उनकी पत्नी। हरेकके साथ थोड़ी-थोड़ी बातें करते भी बहुत समय गया। उनमेंसे कई तो बीस-बीस, तीस-तीस मील से मिलने आये थे। ये सब भारतसे जितनी दूर बसते हैं उतनी ही उनकी भारत-भक्ति भी उत्कट है। सबसे बातें की। भोजन कर लिया तब तक तो १८ तारीख कबसे विदा हो चुकी थी और हम उन्नीसवीं तारीखके मेहमान बने थे।

इतनी ज्यादा भीड़में तथा उत्कट स्वागतमें भी हम धमीजा दंपत्तीके आतिथ्य-की विशेषता देख सके। उन्होंने हमको लिखा था 'हमारे यहां आपको थोड़ी कठिनाई तो होगी किन्तु हम आपको कहीं और रहने देना नहीं चाहते।' दिक्कत तो हमें कुछ थी ही नहीं किन्तु आठ दिन तक हमें सब जगह घुमानेमें और सारा कार्यक्रम बना कर उसको पार उतारनेमें उनको कितनी दिक्कत हुई होगी उसकी कल्पना हम कर सके। उसमें उनके दो प्यारे बेटोंने अपना बालोचित पूरा सहयोग दिया था। इस तरह आतिथ्यमें सुंदर कोमलता भी आ गयी। एक दिनमें इतनी लंबी यात्रा पूरी करके भारतसे आ कर यहां बसे हुए स्वजनोंके बीच पहुंचे हैं इस धन्यताके साथ हम प्रार्थनामें और फिर नींदमें डूब गये।

श्री धमीजाके घरमें एक तरफ छोटा-सा सुंदर प्रार्थनाका कमरा है। उसमें मुख्य छवि श्री मां आनंदमयीकी है। प्रार्थनाका वायुमंडल देख पू० काकासाहेबको विशेष आनंद हुआ। मॉरिशियसमें हम रहे तब तक नहा धो कर सुबहकी प्रार्थना हमने इसी कमरेमें की। प्रार्थना मंदिरकी सेवा देविका बहन स्वयं करती थीं। और जगन्नाथ भाई भी मौन प्रार्थना नियमित करते थे। पश्चिमी ढंगसे शिक्षित तथा राजकीय कामोंको ले कर पश्चिमके लोगोंके साथ हमेशा मिलने-जुलनेवाले लोग

जब अपने जीवनमें एक कोना इस तरह, आग्रहके साथ अपनी संस्कृतिके लिए अलग अंकित रखते हैं तब हृदय कहता है कि 'निराश होनेका कारण नही है। हमारी संस्कृतिकी शक्ति तथा सुवास अभी कायम है।'

० ० ०

"यात्राको गये तब सर्वप्रथम 'स्थान देवता' के दर्शन करने चाहिये" इस न्याय से हम राज्यके प्रतिनिधि—गवर्नर—तथा प्रजाके प्रतिनिधि—पोर लुईके मेयर—इन दोनोंको मिलने गये। गवर्नर सर कोलविल डेवरिलके प्रासादके आसपास बड़ा, सुंदर बगीचा है। और उसके आसपास विशाल उपवन भी है। 'रेद्‌वी' (Reduit) के नामसे पहचाने जानेवाला यह स्थान भव्य है। लेकिन हमारा विशेष ध्यान गया इस बातकी ओर कि गवर्नरके इस बागमें भी एक जगह ईखकी खेती तो थी ही। इस द्वीपका सारा जीवन ईख पर ही निर्भर होनेसे ईखको इतनी राज-मान्यता मिलनी ही चाहिए। आगे देखा कि यहांकी राज-मुद्राकी दोनों बाजू पर ईखके सांठे खड़े कर दिये हैं। उनके बीच ढालके चार विभाग बनाये। एक कोनेमें जहाज, दूसरे कोनेमें नारियलके पेड़, तीसरे कोनेमें पहाड़के शिखर पर एक सितारा और चौथे कोनेमें एक चाभी है। "मॉरिशियस एक समुद्री द्वीप है उसका सूचन जहाजसे होता है। यहांकी स्वाभाविक उपज नारियल है अतः उसका भी यहां स्थान है। पुराने समयसे मॉरिशियसकी प्रशंसा करते लोगोंने कहा है कि वह तो Star of the Indian ocean (हिंद महासागरका उज्ज्वल सितारा) and a key to the way of India (तथा भारतके मार्गकी कुंजी) है। इस तरह मॉरिशियस-की राजमुद्रामें उसका इतिहास तथा उसका महत्त्व अथवा भाग्य अंकित है।"

पोर लुईके मेयर श्री एडी चांगक्ये चीनी वंशके एक सज्जन ख्रिस्ती हैं। उनसे मिल कर हमें विशेष आनंद हुआ। उन्होंने हमारा अच्छा स्वागत किया। टाउनहालमें हमको, स्वयं साथ चल कर, महत्त्वकी चीजें दिखाईं। एक जगह इंग्लैंड की पुरानी रानीका एक पत्र खास मढ़वा कर रखा गया है। उसका इतिहास मजे-दार है। इंग्लैंडके किसी राजाकी मृत्युके प्रसंग पर मॉरिशियसकी ओरसे फूल भेजे गये होंगे। उनके लिए मेयरके नाम रानीकी ओरसे धन्यवादका वह पत्र था। उस समयके लोगोंका भूगोल विद्याका तथा अपने साम्राज्यका अज्ञान इतना तो था कि पत्र पर पता लिखा था : The Mayor, Port Louis, Mauritius, West Indies! फलतः वह पत्र प्रथम अमरीकामें जमैका द्वीपमें गया! गलती ध्यानमें आते उस पत्रने तीन खंडकी यात्रा पूरी की और मॉरिशियसके नगर शेठको मिला। ऐसा वह त्रिखंड यात्री पत्र देख कर हमें मजा आया।

टाउन हॉलमें प्रवेश करते ही दोनों तरफकी भव्य सीढियां जहां एक होती हैं वहां संगमरमरकी एक सुंदर मूर्ति रखी हुई थी। एक सशक्तयुवक अपनी प्रेयसी-को उठा कर छोटी-सी नदीको पार कर रहा है—ऐसी वह प्रतिमा है। पूछनेसे पता

चला कि एक विख्यात फ्रेन्च उपन्यासके काल्पनिक नायक-नायिकाकी यह मूर्ति है।

बरनारदेन द सें पीयेर (Bernardin de saint Pierre) नामके एक फ्रेन्च लेखकने १७८८ के आसपास लिखा हुआ उपन्यास 'पॉल तथा वरजिनिया' का मराठी भाषांतर पू० काका साहेबने छुटपनमें पढ़ा था। उन्होने लिखा है, "यह पुस्तक इंग्लैडमें फ्रेन्च सीखनेवाले विद्यार्थियोंके लिए पाठयपुस्तकके तौर पर मुकर्रर थी अतः अंग्रेजोंमे वह प्रचलित हुई। फिर किसी अंग्रेज अफसरने मराठीमें उसका भाषातर करवाया तथा सरकारी शिक्षा विभागने उसे १८७५ में प्रकाशित किया। छोटी उम्रमें पढ़ी हुई कथाओंका प्रभाव मन पर अधिक रहता है। दो दुर्दैवी माताओके ये दो बालक बचपनमें एक ही पालनेमें झूलते बड़े हुए। बचपनसे ही उनमें परस्पर प्रेमका उदय हुई। फिर वरजिनियाको फ्रान्स जाना पड़ा। पॉल अतिशय दुःखी हुआ। अंतमें वरजिनिया पेरिससे वापस आयी तो सही। लेकिन जहाजमेंसे वह उतर सके उससे पहले ही जहाज तूफानमें फंस गया और वह मर गयी। ऐसी उस उपन्यासकी कथा है। वह युवक, युवती तथा उनकी माताएं मॉरिशियसवासी थी ऐसी कल्पना की थी इस लिए यहाके लोगोके मनमें उस उपन्यासके प्रति विशेष आत्मीयता है। वह यहां तक कि जिस स्थान पर वह जहाज डूब जानेका वर्णन किया है उस स्थानका नाम लोगोंने दुर्दैवी भूशिर (Cop Malheureux) रखा है। कहते है कि हमारे कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुरने भी वह उपन्यास छुटपनमें बांगलामें पढ़ा था और उनको भी वह पसंद आया था। मैने वह कथा पढी तब मैं इतना छोटा था कि स्त्री-पुरुषके प्रेमके वर्णन समझ नही पाता था। फिर भी पॉल तथा वरजिनियाका एक दूसरेके प्रति प्रेम, उनके वियोगका दुःख तथा डूबती वरजिनियाको बचानेके लिए समुद्रमें कूद पड़नेवाले पॉलकी बहादुरी इत्यादि वर्णनोंका मेरे बाल मानस पर बड़ा प्रभाव पड़ा था। और दुनियाके दूरके किसी छोर पर आया हुआ विजन जैसा वह मुल्क कैसा होगा यह जिज्ञासा भी अस्पष्ट रूपसे मनमें जागी थी।

"उसी मॉरिशियसमें, जीवनके आखिरी दिनोमें, मैं पहुंच पाया और उस काल्पनिक प्रेमी युगलकी कलात्मक मूर्ति देख सका, यह भी एक धन्यता ही थी।"

आपने श्री मेयर साहबकोअपने छुटपनके संस्मरण बताये और पूछा कि, "क्या इस मूर्तिका फोटो मिल सकेगा? बाजारमें मिलता हो तो एक खरीद लूंगा।" मेयर साहबने उस मूर्तिका एक खास फोटो खिचवा कर अपने हस्ताक्षर सहित हमारे पास भेज दिया इतना ही नही किन्तु paulet Virginie इस मूल उपन्यास की संपूर्ण संशोधनवाली एक फ्रेन्च प्रति भी भेज दी। किसी प्रजाको जब कोई एक चीज पसंद आ जाती है तब वह उसके पीछे छोटीसे छोटी बारीकियोंमें उतरनेवाला संशोधन किस तरह करती है यह पुस्तक इसका उत्तम नमूना है। और फ्रेन्च लोग

भी कितने भावनाशील कि मात्र एक उपन्यासका इस भूमिके साथ उन्होंने कायमी संबंध बांध दिया, मानो वह सारी कथा सत्य ही हो !

दोपहरको गवर्नर तथा लेडी डेवरिलके यहां भोजनके लिए हमें जाना था। वहां ज्यादा लोग नहीं थे अतः आरामसे वार्तालाप चला पू० काकासाहेब भारतीय संस्कृतिके प्रतिनिधिके रूपमें वहां गये थे अतः गवर्नर साहबने उनको अभी-अभी मिली हुई आंध्रकी चित्रकलाकी एक पुस्तक हमको दिखाई। फिर, भारतीय संस्कृति एक समय दुनियामें कितनी फैली हुई थी, उसकी बातें चली। किन्तु यह बाते तो भोजनके बाद हुई थीं। भोजनमें हमने एक उबाला हुआ फूल खाया जो हमारे लिए नया था। उसका नाम है आर्टिचोक। उसका वर्णन तो पूज्य काकासाहेबके शब्दोंमें ही देना पड़ेगा।

"एक तरहसे उसकी चीड़ (Pine) के लकड़ीके फूलके साथ तुलना हो सकती है। उसकी हरी पंखुडियां एक-एक तोड़ कर, ताजे तेलमें या सिरके (Vinegar) मे डुबो कर चूसते हैं। उस हरी पखुड़ीका छोर तो नुकीला होता है। लेकिन उसकी जड़की तरफ दांतसे कुतरने पर आलूका जैसा थोड़ा-सा पदार्थ खानेको मिलता है। ऐसी बीस-तीस पंखुड़ियां चूसनेमें अच्छा व्यवसाय मिलता है। उसके बाद बीचके भागको ऊपरसे खीचने पर उसके नीचे बिस्कुटके आकारकी गोल मोटी परत होती है। वही है मुख्य खानेकी चीज। वह भी आलूके जैसी ही स्वादिष्ट होती है। हमारे मेजबानने हमें उस फलको खानेकी रीति सिखाई।" हम रहे शाकाहारी इस लिए शाकाहारीकी फिलसुफीकी चर्चा स्वाभाविक थी, उसके साथ देश-देशान्तरके रीतिरिवाजोंकी बात चली। मॉरिशियस तथा भारत आज एक ही कॉमनवेल्थके सदस्य हैं अतः उसकी बातें भी चली। गवर्नरके ए० डी० सी० श्री मार्गन भारतमें चार वर्ष रहे थे। उन्होंने भी संभाषणमें हिस्सा लिया।

भोजनके बाद भी मार्गन हमें गवर्नमेन्ट हाऊसका विशाल और सुंदर बाग देखने ले गये। वहाके वृक्ष, फूल तथा बागकी रचनाकी हार्दिक कदर करके हम वापस आये। रिवाजके अनुसार पूज्य काकासाहेबने लेडी डेवरिलके साथ बातें कीं। तथा सर कॉलविलने मेरे साथ संभाषण चलाया।

शामको मॉरिशियसके अलग-अलग अनेक सांस्कृतिक मंडलोंकी ओरसे जिमखाना कलबमें हमारे लिए सत्कार तथा मानपत्रका कार्यक्रम था। वहां व्याख्यान हिंदीमें और अंग्रेजीमें भी थे। एक बात खास है कि ऐसे प्रत्येक प्रसंग पर भारतका राष्ट्रगीत और इंग्लैंडका राष्ट्रगीत दोनों गाये जाते थे। इसका खास कारण पूज्य काकासाहेबने बताया है। "मॉरिशियस द्वीपमें १८१० तक फ्रेन्च लोगोंका राज्य था। उसके बाद ब्रिटेनने, भारतकी मददसे उस द्वीपको जीत लिया। उस समय अंग्रेजोंने फ्रांसीसी लोगोंके साथ उदारतासे कौल करार किया कि वहां फ्रेन्च कानून ही चलाये जायेंगे। फ्रेन्च लोगोंके कॅथलिक धर्मकी प्रतिष्ठा रहेगी,

इत्यादि। आगे चल कर उत्सवोंमें फ्रेन्च तथा ब्रिटिश दोनों राष्ट्रगीत गाये जाते थे। फ्रेन्च राष्ट्रगीत गाते समय अंग्रेज सोल्जर खड़े नहीं हुए। इससे फ्रेन्च लोग चिढ़ गये। उनका रूठना-मनाना बरसों तक चला था! यह सारा इतिहास मैंने पढ़ा था इस लिए भारतके झंडेका तथा राष्ट्रगीतका सर्वत्र समान भावसे सम्मान होता देख मुझे विशेष समाधान (संतोष) हुआ।"

हमारे इस समारंभकी शुरूआतमें ही लोटस क्लबकी ओरसे हमारा राष्ट्रगीत गाया गया। उसका लाभ ले कर पू० काकासाहेबने कमलका फूल भारतका प्रतीक रूप क्यों माना गया है इसका कुछ विवेचन किया।

"कमल-पंकज-कीचड़मेंसे जन्म लेता है, सरोवरके पानी-जीवन-को बींध कर ऊपर आता है तथा ध्येय-सूर्यका ध्यान करता है। ऐसा वह कमल जीवन धर्मी होते हुए भी अलिप्तता पूर्वक पानीमें रह कर आदर्शकी भक्ति करता है। इसलिए वह भारतीय संस्कृतिका प्रतीक है। हजारो वर्ष हुए हमने बाहरके किसी देशके साथ युद्ध नही किये है। प्रत्येक पवित्र प्रसंग पर शान्तिका तीन बार उच्चारण करते हैं और भिन्न वंशी, भिन्न भाषी, भिन्न धर्मी लोग एकत्र कैसे रह सकते हैं उस समन्वय की कलाका विकास करते आ रहे हैं।" भारतमे अंदर-अंदर युद्ध और झगड़े हुए हैं, उस बातको वे टालना नही चाहते थे अतः उन्होंने कहा, "जैसे आपके इस प्रदेशमें बीच बीचमें प्रचंड बवंडर-तूफान उठते हैं, वृक्षोंको तथा मकानोंको तोड़ गिराते हैं, बहुत नुकसान करते हैं, लेकिन गन्नेकी खेतीके लिए अत्यंत जरूरी वर्षाको भी ले आते हैं, उसी तरह हमारे इतिहासमें भी युद्ध हुए हैं, संघर्ष चलते हैं, लेकिन अंतमें भारतीय आत्मा, हमारे संतों द्वारा, समन्वयका काम कर सकी है। आज भी अंग्रेजोंके विरुद्ध हम अहिंसक ढंगसे लड़े। किन्तु उसके अंदरका द्वेष और वैर भूल कर हम एक कॉमनवेल्थ-परिवारमें दाखिल हुए। कॉमनवेल्थके उस कौटुम्बिक संबंधके कारण ही हम यहां आपके बीच स्नेहके संबंधको विकसित करने आ पाये हैं। फ्रेन्च लोगोंने भारतकी इच्छाका आदर करके भारतके चार पांच नन्हें से प्रदेशोंमेंसे अपना अधिकार उठा लिया। फलस्वरूप फ्रान्सके साथ हमारी दोस्ती तो हुई ही तदुपरान्त पॉन्डिचेरीमें हमने फ्रेन्च संस्कृतिका एक केन्द्र कायम किया है। आप लोग भी गिरमिटके दिनोंकी परेशानियोंको भूल कर फ्रेन्च तथा अंग्रेज लोगोंके साथ मैत्रीके संबंध स्थापित कर रहे हैं तथा बहुवंशी, बहुधर्मी ऐसी एक संगम-संस्कृतिकी स्थापनाका प्रयोग आरंभ किया है। उसमे भारतीय संस्कृतिका पूरा योगदान यदि देना है तो भारतीय संस्कृतिका तथा उसके आजके पुरुषार्थका परिचय आपको बढ़ाना चाहिये। उसमें हम भारतवासी कितनी सहायता कर सकते हैं यह देखने मैं यहां आया हूं।"

"आप भी यहां अति विषम परिस्थितिमें किस तरह टिक पाये हैं तथा भिन्न देशके और भिन्न संस्कृतिके लोगोंके साथ आप किस तरह सहयोग करते हैं, धीरे

धीरे किस तरह आगे बढ़ते हैं वह भी हम जानना चाहते हैं और आपसे सीख लेना चाहते हैं। कुछ समय पहले वेस्टइन्डीज़की ओर रहनेवाले भारतीयोंको मिलने मैं गया था। वहां मैंने जो कहा था वह यहां भी कहता हूं, कि भगवानने इन छोटे प्रदेशोंमें एक-एक अद्भुत प्रयोगशाला चलाई है, जिसमें यूरोपीय, अफ्रीकी, भारतीय, चीनी, अरब इत्यादि अनेक वंशके लोग एकत्र हो कर सहजीवन विकसित कर रहे हैं। यह प्रयोग यदि सफल हो जाये तो यहींसे दुनियाको भविष्यके नेता मिलने चाहिये।"

समारंभके अध्यक्ष श्री गिरजानन्दने हिंदीमें सुन्दर व्याख्यान दिया। मंत्री रामस्वामीने अंग्रेजीमे मानपत्र पढ़ा और इन टापुओंमें जिनकी बहुत बड़ी बस्ती है ऐसे कछुएके पीठसे बने हुए एक सुन्दर बकसेमे रख कर उसे अर्पण किया। कभी मात्र यहांकी मुख्य भाषा फ्रेंच थी। यदि कोई फ्रेन्चमें बोला होता तो भाषा त्रिवेणी संपूर्ण होती।

सभाके आरंभमें एक सज्जनने सुन्दर भारतीय संगीत सुनाया। विशेषता यह थी कि हमेशा बूट-सूट पहननेवाले यह सज्जन गाते समय आग्रहपूर्वक भारतीय पोशाक पहनते हैं।

शामको हम माननीय जयपालकी ओरसे आयोजित सत्कार समारंभमें पहुंचे। विशाल ईरोज सिनेमामें न समा सके इतना जनसमुदाय था। यह स्थान—प्लेन-दे-पापाय (Plaine des Papayes) उत्तर मॉरिशियसके मध्यमें स्थित है। यहा भी पू० काकासाहेबने विस्तारसे बातें की। क्योकि चारों ओरके गांवोंसे बहुत लोग थे। युवकोंकी संख्या भी काफी थी, और सब लोग सुननेको भी उत्सुक नजर आते थे। पू० काकासाहेबने कहा कि आजकल दुनियाके शहर मदोन्मत्त बने हुए है, लेकिन सच्ची मानवीय संस्कृति तो धरती और पशु-पक्षियोके साथ सीधा संबंध रखनेवाले गांवोंमें ही विकसित हुई है।

"भारतमें भी प्राचीनकालसे कुछ बड़े शहर और नगर बसे हुए थे, लेकिन ग्रामीण संस्कृति ही भारतीय संस्कृति मानी जाती थी। संस्कृतिके नेता, संत तथा धर्मगुरुप ग्रामसे भी दूर उपवनोंमें तथा जंगलोंमें आश्रम बना कर रहते थे। शाकुन्तलम् नाटकमें आपने देखा होगा कि आश्रमके युवक शहरमें—राजधानीमें आने पर कितने परेशान होते थे। आज भी हम देखते हैं कि सादगी, सदाचार, भाई-चारा, आतिथ्य तथा चारित्र्य शहरसे ज्यादा गांवोंमे ही है। लेकिन उन सारे सद्गुणोंको ढंक देनेवाली अज्ञानता और अस्वच्छता बहुत फैली हुई है। हमारे यहां गांवोंकी सपत्ति तथा गांवोंका पुरुषार्थ शहरोंकी ओर खिचता जा रहा है। फल-स्वरूप गांवोंका जीवन दिन-ब-दिन भयानक होता जाता है। और गांवोंमें झगड़े, पक्षापक्षी तथा दलबंदी बढ़ते हैं। आप भारतके गांवोंसे इस तरफ आये। किस तरह आये उसके इतिहासमें नहीं उतरना है। लेकिन यहां अनेक तरहके

अत्याचारोंको सहन करते हुए भी आपने माथा ऊंचा रखा। सब कष्टोंमेंसे बच कर निकल कर आपने अपनी स्थिति सुधारी। आपके उस धैर्यका तथा जीवटका विचार करते हैं तब आदरसे सिर झुकता है। आपकी सारी होशियारीके पीछे महान चारित्र्य बल था इसी कारण आप टिक पाये।

"लेकिन अब उस पुरानी पूंजीको केवल संभालना पर्याप्त नही है। दुनिया तेजीसे आगे बढ़ रही है। नये-नये सवाल पैदा होते रहते हैं। उन सबको हल करने के लिए जीवनमें नये-नये प्रयोग करनेवाले युवा हृदयकी आवश्यकता है। अब बूढ़े लोगोंके आदर्शोंमें तथा उनकी महत्त्वाकांक्षामें हमें बंध कर नही रहना चाहिये।

"अपना धर्म छोड़े बिना सब धर्मोंके प्रति हम आदर रखें—बढ़ायें। सब लोगोंके साथ ओतप्रोत होनेकी कला विकसित करें। और खास बात तो यह है कि हम शोषक और शोषित -- ऐसे वर्गोंमें विभाजित न हो जायें. ऐसा करनेके लिए हाथमें श्रमका काम करनेवाले अलग और बुद्धिजीवी अलग ऐसा भेद अब समाजमें रहना नही चाहिये। हमें अब नयी शिक्षा प्रणाली चलानी चाहिये, जिसमें तीन उंगलियोंमें होनेवाला लिखने पढ़नेका काम प्रधान न हो किन्तु दस उंगलियोसे औजार चला कर कला-कौशल्य जिसमें विकसित हो उसकी प्रधानता रहे। ऐसी शिक्षासे ही दुनियामें चलनेवाला शोषण कम होनेवाला है।

"यह सारा मै यहां इसलिए कहता हूं कि भारतमें परंपरासे चलनेवाली संस्कृतिमें महात्मा गाधीकी प्रेरणासे हम जो समाज-परिवर्तन करना चाहते हैं उसकी कुछ कल्पना यहांके लोगोंको आ जाये।"

"दुनियाके स्वार्थी लोगोंने अर्थशास्त्र तथा विज्ञानकी सहायतासे शोषक तथा साम्राज्यवादी जबरदस्त संगठन किये हैं। ऐसे लोगोंके हाथमें दुनिया अब सुरक्षित नही है। अमेरिकाने भी देख लिया है कि एक देश धनवान रहे और बाकीके देश गरीब रहें यह स्थिति अब टिकनेवाली नही है। ज्ञान संपत्ति और सत्ता इन तीनों का उपभोग सबके साथ बांट कर ही हो सकता है। इसीलिए सब धर्मोंके प्रति आदर रखनेवाली, सब वंशोके साथ समभाव बढ़ानेवाली और सबके सुखमे अपना सुख देखनेवाली संस्कृतिके लिए महात्माजीने भारतमें जबरदस्त प्रवृत्ति चलायी। आप सब देखते हैं कि भारतके हमारे कमिश्नर भी सबके साथ एक-सा मधुर संबध रखते हैं। सबकी मदद करते हैं और सबको उपयोगी होनेका प्रयास करते हैं।"

"मेरी सिफारिश है कि आप इस सुंदर, प्यारे टापूमें एक बढ़िया पुस्तकालय चलायें, जिसमें भारतका इतिहास, भारतका साहित्य, भारतके धर्म और तत्त्वज्ञान तथा संगीत, चित्रकला इत्यादि भारतकी समृद्धिका साहित्य मिल सके। अंग्रेजी, फ्रेंच, हिंदी, तमिल, गुजराती, मराठी इत्यादि भाषाओंके ग्रंथ उसमें होने चाहिए। आज आप भारत आ कर देखेंगे तो दक्षिणके लाखों तमिल लोग और अन्य द्राविड भाषाके लोग हिंदी सीख रहे हैं। हिंदी भाषा, हिंदू, मुस्लिम, ईसाई सभीकी भाषा

है। उस भाषा द्वारा भारतकी संमिश्र संस्कृति, संगम संस्कृति समझी जा सकती है।

"जो लोग स्वार्थमें डूबे रहते हैं, अपने ही लोगोंका भला चाहते हैं वे लोग छोटे बनते जाते हैं। जो लोग सबके हितके लिए प्रयत्न करते हैं वे महान बनते हैं। भारतके समक्ष ऐसा आदर्श महात्माजीने रखा। पंडित नेहरू उस रास्ते पर चल रहे हैं इसीलिए जगतमें भारतकी इज्जत है। यहां मॉरिशियसमें आपको एक सुंदर अवसर भगवान्ने दिया है। अपने बालकोंको उत्तम शिक्षा दीजिये।"

रात नौ बजे मजदूर पक्षके नेता और यहांके एक मंत्री श्री रामगुलामके घर एक बड़ा भोज था। उस भोजन समारंभमें लगभग सभी मंत्री आये थे। जहां तक याद है कुछ अंग्रेज सेक्रेटरी भी थे। उनमें फ्रेंच सस्कृतिके प्रतिनिधि श्री गाइ फोरजेट आरोग्य विभागके मंत्री थे। उन्होंने भारत तथा भारतके तत्त्वज्ञानके बारेमें बहुत दिलचस्पी व्यक्त की।

इस तरह हमारा पहला दिन इतना तो भरचक था कि रातको अच्छी तरह थकने पर भी जल्दी नीद नही आयी। प्रार्थनाके कारण मन शांत न हुआ होता तो नींद आती ही नहीं।

रोज रातको सोनेमें इतनी देरी होगी तो पू० काकासाहेबका स्वास्थ्य कैसे टिकेगा यह चिंता भी मुझे सताने लगी। किन्तु इतने प्रेमल, उत्सुक लोगोंको इतने कम दिनोंमें जितना भी दे सकें उतना देना है ऐसे आपके संकल्पके सामने कुछ भी करनेकी मेरी शक्ति नही थी; इच्छा भी नही थी। और यथार्थमें, दूर आ कर बसे हुए उन स्वजनोंके लिए जो प्रेम भरी उत्कट भावना थी उसीने पू० श्री काकासाहेब को अद्भुत शक्ति दी। लगभग रोज रातको देर तक जागने पर भी आपका स्वास्थ्य अच्छा रहा। एक पत्रमें वे स्वयं लिखते है :—

"श्री धर्मीजाने हमारा कार्यक्रम इस तरह रखा था कि एक दिन लोगोंसे मिलना, सभामें व्याख्यान देना और दूसरे दिन थोड़ा समय निकाल कर पूरे द्वीपको देखना और उसकी जानकारी प्राप्त करनी। कार्यक्रम इस तरह रखा तो सही लेकिनआठदिनोंमें सब लोगोंको संतोष देना आसान नही था इसलिए नये-नये कार्यक्रम बढ़ते ही चले गये। इतने दूर स्वकीयोंको मिलनेका जो आनंद मिलता था उसीके बल पर इतना भरचक (व्यस्त) कार्यक्रम सहन हो पाया। शक्ति टिक पाई क्योंकि लोगोंके उत्साहको मेरा उत्साह भी साथ दे रहा था।"

दूसरा दिन

यहांके समाचार पत्रोंको मुलाकात (Interview) देनेमें बड़ी मुश्किल यह थी कि उनके प्रतिनिधि थे फ्रेन्च बोलनेवाले। उनको अंग्रेजी ठीक आती नहीं थी। और दुभाषिये यथार्थ समझें या नहीं और वे समझा सकें या नहीं इसका हमें विश्वास नहीं होता था। अपनी जंग खायी हुई फ्रेंच भाषाको बहुत यत्नपूर्वक मैंने कुछ संजीवन किया होनेसे मेरा आनंद अपार था। मैं अनुभव करती थी कि 'काकासाहेब कहते हैं एक और ये लोग समझते हैं कुछ अलग ही।' और समयकी इतनी तो कमी कि भाषा-कौशल्य होता तो भी आराममें समझानेका अवकाश ही न मिलता। सब लोग प्रश्न भी इतने ढेर सारे लाते थे। सब प्रश्नोंका संतोषकारक उत्तर देने एक छोटी पुस्तिका ही लिखनी पड़ती। पू० काकासाहेबने कहा, "कई बार मनमें विचार आता है कि एक भाषासे अन्य भाषामें प्रवेश करना एक ही समाजके जीवन्त लोगोंको इतनी मुश्किल होती है तो अनूदित साहित्य तथा साधनोंके द्वारा दूर देश-के तथा प्राचीन कालके समाजके जीवनमें प्रवेश करनेके प्रयत्नको कितना मिथ्या मानना चाहिए।"

'एडवान्स (Advance' नामके एक दैनिक पत्रको संदेश देनेका काम अधूरा रख कर हम अलग-अलग स्थान देखनेके लिए निकल गये। रास्तेमें एक जगह कास-कावेल मराठी मंडलकी मुलाकात ली। पंडित आत्माराम ताम्हणकर नामके एक महाराष्ट्री क्रांतिकारी सज्जन भारतसे बच कर ब्रह्मदेश इत्यादि देशोंमें घूम कर छद्मवेशमें यहां आ कर रहे थे। उनकी प्रेरणासे यहांके पाण्डुरंग क्षेत्र मंदिरके लिए १९२७ के सालमें पक्का मकान बांधा गया। यहांका प्रेमवर्धक मंडल इसकी देखभाल करता है। सहदेव बाबाजी यहांके मराठी मंडलके अध्यक्ष हैं। उनके मुखसे पुराने ढंगकी मराठी सुनते अपार आनंद हुआ।

महाराष्ट्र मंडलको मिलनेका कार्यक्रम यहां रखा नहीं गया था वह तो २२ ता. को रखा था। फिर भी बहुतसे महाराष्ट्री लोगोंको इस छोटेसे मंदिरमें एकत्र हुए देख कर उनके साथ हमने थोड़ा समय व्यतीत किया। पू० काकासाहेबने उनको मराठीमें कहा कि, "सतारा मेरी जन्मभूमि है वहांके लोग भी यहां आये हुए हैं। अति प्रतिकूल परिस्थितिमें आप यहां आ कर बसे लेकिन हिम्मत नहीं हारे, भाग नहीं गये, टिके रहे यह देख कर आप लोगोंके लिए बहुत आदर होता है। भारतसे इतनी दूर पांडुरंगका क्षेत्र, शिवाजीकी छवि श्री विनोबा भावेका चित्र—यह सब देख कर भावना उमड़ आती है।

"मॉरीशियस कोई विशाल देश नहीं है। इस छोटेसे टापूमें कुल महाराष्ट्री कितने हैं? इनमें परिवार कितने हैं? महाराष्ट्रके किन-किन भागोंमेंसे आये हुए हैं, और क्या करते हैं; उनकी आर्थिक स्थिति कैसी है। यह सारी माहिती एकत्र करेंगे तो

यह बहुत उपयोगी साबित होगी। हमें एक-दूसरेकी मदद करनी चाहिए। बच्चोंको अच्छी-से-अच्छी शिक्षा देनी चाहिए। महाराष्ट्रके संतोंका साहित्य तो हमें कंठ होना चाहिए। महाराष्ट्रके अखबार तथा मासिक पत्र मंगायेंगे तो वहांकी परिस्थितिसे वाकिफ रह सकेंगे लेकिन यहां पैसे कमाने हों तो अंग्रेजी और फ्रेंच ये दो भाषाएं सीखनी चाहिये और हिन्दी सीखेंगे तभी अन्य भारतीयोंके साथ हम एक-रूप हो पायेंगे। मेरे पास समय होता तो यहांकी महाराष्ट्री बहनोंके पास बैठ कर उनके मुखसे यहांके अनुभव सुन लेता।"

"आपको इतना ही कहना चाहता हूं कि भारत आपका देश है; उसके लिए आकर्षण रहना स्वाभाविक है; वह टिकना चाहिए; परन्तु भूलिये मत अब आप इस देशके वतनी हैं। यह देश आपका है। भारतकी सेना ले कर यहां अंग्रेजोंने डेढ़ सौ साल पहले इस टापूको जीत लिया तब हमारे पूर्वजोंका खून यहां बहा है। तत्पश्चात् आपके बाप-दादा यहां गिरमिटिया हो कर आये। उन्होंने कड़ी मजदूरी करके अपना पसीना यहां बहाया है। अपना खून और पसीना बहा कर इस भूमिको हमने अपना बनाया है। अब इस देशको हम छोड़नेवाले नही हैं। इस पवित्र भूमिकी सेवा करेंगे। यहा बसे हुए अन्य लोगोंके साथ एक होंगे। अंदर-अंदरका ऊंच-नीच भाव तो छोड़ना है ही, किन्तु गोरे, काले, पीले तथा गेहुंवर्णीके बीच भी ऊंच-नीच भावको हमें टिकने नही देना चाहिये। भगवानके सब बालक एक सरीखे हैं। और भगवानके प्रति ले जानेवाले धर्म भी एक सरीखे हैं। अपने धर्ममें दृढ़ रह कर, दूसरोंके धर्मके लिए आदर रखेंगे और अपनी उन्नति करेंगे।"

बिल्कुल जंगल जैसे इस स्थान पर इतने सारे लोग एकत्र कैसे हुए इसका हमें आश्चर्य हुआ। "पू० काकासाहेब खास हमारे है, महाराष्ट्री है। ऐसा गौरव प्रत्येक भाव भीगे चेहरे पर चमक रहा था! मुझे यह देख कर अत्यन्त आनन्द हुआ।

अब हम एक लोकप्रिय स्थान पर आ पहुचे। आस-पासकी झाड़ियोंमें थोड़ी जगह बिना वृक्षोंकी है और वहां लाल, काली, पीली इत्यादि रंग-बिरंगी मिट्टीके ढेर हैं। इसका नाम शामरेल (Chamarel) है। जो लोग मॉरीशियस आते हैं वे इस भूमि भागको देखे बिना नही रहते। हमारे देशमें और इससे सुंदर हजारों स्थान हैं लेकिन उसमें शामरेलका आकर्षण कम नही होता। हम आसपास खूब घूमे। साथ लाया हुआ नारियलका पानी पिया। जहां खड़े होनेसे आसपासका दृश्य सुन्दर दिखता है। वहां जरा ऊंचाई पर एक झोंपड़ी बांधी हुई है वहां इकट्ठा हो कर फोटो लिये। यह स्थान ऊंचा होनेके कारण वहां बारिश किसी भी समय आ सकती है। कुछ आगे बढ़नेके बाद याद आया कि हमने सुन्दर प्रपात छोड़ ही दिया है। हमारे धमीजा साहबको लगा कि मेहमानोंके मनमें यह कमी रह जाये उससे तो वापिस जाना अच्छा है। हम वापिस आये। रास्ता छोड़ कर छोटे रास्तेसे निकले

वहां सुन्दर एक छोटा-सा प्रपात हमारी राह देखता गा रहा था ! हम सभीको लगा कि इससे बड़े-बड़े प्रपात भले ही इस टापूमें अन्यत्र होंगे किंतु इस प्रपातको उन सबका प्रतिनिधि गिन कर अवश्य संतोष मान सकते हैं । मॉरिस द्वीपकी दक्षिण-पश्चिमकी शोभा जी भर देख कर हम आगे बढ़े और ठेठ दक्षिणकी शोभा देखने चल पड़े ।

इस देशकी विचित्रता यह है कि यहांके ऊंचे पहाड़ोंको उनके बीचकी एक नदी का नाम दिया गया है । 'रिविएर वार (Riviere noire) यानी काली नदी । यह नदी जहां समुद्रमें मिलती है उस जगहको भी काली नदीका अखात कहते हैं । आस-पासके पहाड़ोंको भी काली नदीके पहाड़ कहते हैं और इस तरफके जिले या तालुके-का नाम भी काली नदी है ।

दक्षिणका समुद्री किनारा देखते-देखते हमने छोटी-बड़ी अनेक नदियां पार की । ऐसे छोटे प्रवाहको मॉरिसमें ही नदीका नाम मिल सकता है । सेंट फीनिक्स पार करके हम ग्रीस ग्रीम (Gris Gris) पहुंचे । यहांका समुद्र किनारा इतना सुन्दर है कि स्थानीय लोग समुद्रमें नहाते है और रेतमें लोटते हैं । यहांकी तुलनामें कुछ बड़ी नदीको पार करके सुईलाक (Souillac) पहुंचे । इस द्वीपका यह दक्षिणतम छोर है । दक्षिणतम समुद्रकी शोभा देखते-देखते हम दूसरी ओर चले । अनेक द्वीप समुद्रमेंसे सिर ऊंचा करके समुद्रकी शोभा बढ़ा रहे हैं । समुद्रकी ऐसी शोभा देखनेके लिए भी इस प्रदेशमें आना चाहिए । यहांसे आगे जाते प्लेजांसका हवाई अड्डा आता है । उसके पास समुद्रकी शोभा सर्वाधिक है ऐसा कहा जाता है । किन्तु समय ज्यादा हो जानेके कारण उस नील अखातको छोड़ देना पड़ा । मुझे वहां जानेकी खास इच्छा थी लेकिन बहुत देर हो जानेसे उत्तरका रास्ता ले कर हम क्यूरपीप होकर Forest Side पहुंच गये । उस सारे रास्तेमें ईखके खेत फैले पड़े थे । दूर-दूर खिस्ती गिरजाघर और चीनीके कारखाने दिखते थे ।

दो बजे घर पहुंच कर भोजन किया । इतनेमें रेडियोवाले टेप रिकार्डर ले कर हाजिर हो ही गये थे । उसमें भारतीय संस्कृतिके बारेमें पू० काकासाहब १५ मिनट अंग्रेजीमें बोले तथा इतना ही समय हिन्दीमें । दोपहरको आरामकी जरूरत होने पर भी तुरन्त निकल कर हिन्दू महाजन संगममें जाना पड़ा । वहां निकोलाई (Nicolai) में एक हिन्दू मंदिर है । मंदिरमें शिव, दुर्गा, कृष्ण, नवग्रह इत्यादि अनेक देवोंकी मूर्तियां थी । यहां बहुत-से तमिल स्त्री-पुरुष एकत्र हुए थे । केरलके एक सुशिक्षित सज्जन वहां पुजारी थे । भोजन भी दक्षिणी ढंगका था । हमारे लोगों-की एक खूबी यह है कि भाषा, रिवाज, चेहरे चाहे उतने भिन्न हों तो भी संस्कृतमें सब एक हो सकते हैं । आदरणीय मेहमानके मंदिरमें पहुंचते ही पुरोहितको उत्साह आया । उसके संस्कृत मंत्र तथा स्तोत्र किसी तरह पूरे होते नहीं थे चलते ही रहे । संस्कृतकी मधुरता और स्तोत्रोंकी भाववाहिताके घूट पीते जाते थे । किन्तु एक ही

स्थान पर लम्बे समय तक खड़े रहनेसे पैर अकड़ जाते थे। आखिर सब लोग मंदिरके बाहर मंडपमें इकट्ठे हो गए, खाना पीना तो अनिवार्य होता है। हमारे लोगोंकी एकता मजबूत करनेके लिए हिन्दी सीखनेका बहुत आग्रह पू. काकासाहेबने किया। वे जानते थे कि गोरे लोग प्रथम-प्रथम हमारी हरेक भाषाके प्रति सहानुभूति दिखाते हैं, थोड़ा कुछ प्रोत्साहन देते हैं, और बादमें कहते हैं कि इतनी सारी भाषाएं सिखाने का प्रबन्ध कहांसे हो सकेगा ? सबके लिए अंग्रेजी एक-सी उपयोगी है उसीको सब मान्य कर लें तो बस। काकासाहेबने कहा कि अंग्रेजी और फ्रेंच तो आप सीखेंगे ही लेकिन हमारी एकताके लिए तथा संस्कृति संवर्धनके लिए हिन्दीके छत्रके नीचे हम सब आ जायें यही ईष्ट है।"

निकोलाईसे फिर उत्तरकी लम्बी यात्रा करके हम त्रियोले (Troilet) पहुंचे। यह स्थल अन्य एक संसद सदस्यके मतदान मण्डलका था। यहां अनेक मदिरोंका एक सम्मेलन है, जिनमें मुख्य मंदिर महेश्वरनाथका है बहुत बड़ी भीड़ इकट्ठी हुई थी। ग्रामीण लोग पुराने ढंगकी पोशाक पहननेवाले फिर भी राजनैतिक चुनाव-का महत्त्व समझनेवाले थे। उनके सामने हिन्दीमें बोलना आसान था। यहां भी पू० काकासाहेबने उनके आखिरी डेढ़ सौ सालके इतिहासका उनको स्मरण करवाया। १८१०—१२ के अरसेमें हमारे लोगोंका खून उस भूमि पर बहा है उसके बाद १८३५ के अरसेमें हमारे लोगोंने अपने पसीनेसे इस भूमिको सींचा हैं। अतः यह भूमि हमारी है यह हम भूलें नही। जिन गोरोंके साथ हम यहां आये थे उनकी भी यह भूमि है सही। इसलिए पुरानी सब परेशानियां भूल कर हमें सबके साथ स्वाभिमानपूर्वक हिलमिल जानेकी शक्ति बढ़ानी चाहिए।"

शहरके लोग जहां इकट्ठा होते है वहां शराबकी बुराईके बारेमें पू० काका-साहेब ज्यादा बातें नहीं करते। क्योंकि वे लोग सुशिक्षित माने जाते हैं। किन्तु गांवके लोग सीधी बात समझ सकते हैं इसलिए शराबकी बुराई तथा नम्बाकूके विषयमें थोड़ा कह कर, एक ही बात उनके मनमें बिठानेका प्रयत्न किया कि संयम में ही सच्ची संस्कृति है।

वहांसे निकले तब अंधेरा बढ़ गया था। नामदार श्री जाधवके साथ उनके एक अनुयायीके यहां हम भोजनको पहुंचे। श्री भोगनने मेहमानोंके आतिथ्यमें कुछ कमी नहीं रखी थी। आरामसे भोजन किया किन्तु जल्दीसे निकले। अलबत्ता फोटो लेनेके बाद ही निकल पाये। रिविअेर द्यु रांपार (Riviere du rempart) गांवमें व्याख्यानके लिए पहुंचे। वहां रोशनी सिनेमामें लोग एकत्र हुए थे। शिक्षा-विभाग-के सचिव नामदार श्री जाधव अध्यक्ष थे। यहां भी शिक्षण, संस्कृति, समन्वय, एकता समानता तथा धर्म-कुटुम्बकी बातें पू० काकासाहेबने कही। यह स्थान लगभग उत्तर-पूर्वको है। वहांसे वापिस क्यूरपीप आते घंटोंकी यात्री थी देर हो, जानेसे अंधेरे में कुछ भी दिखता नही था। रास्तेमें जनबस्ती भी नहीं थी। उस एकान्तका वायु-

मण्डल प्रार्थनाके लिए विशेष अनुकूल था। प्रार्थनाके बाद हम सबके आग्रहसे पू० काकासाहेबने चलती मोटरमें थोड़ा सो लिया और मध्यरात्रि तक हम घर पहुंच गये।

इस तरह शर्कराद्वीपका दूसरा दिन पूरा हुआ। सुबह कासकावेलमें मिले हुए भोले, तुलनामें गरीब, किन्तु प्रेम समृद्ध महाराष्ट्री स्त्री-पुरुषोंकी खास छाप मन पर पड़ी और लगा कि भारत जा कर इन लोगोंके लिए अवश्य अच्छी-अच्छी मराठी किताबें तथा सामयिक भेजने चाहिएं।

तीसरा दिन

आजका दिन सब दृष्टिसे महत्त्वका था। सुबह मिलने आनेवाले लोगोंको पू० काकासाहेबने बहुत माहिती दी, उनसे बहुत कुछ जान लिया और बादमें ८-९ बजे यहांके एक सचिव हेराल्ड वॉल्टरके साथ ओब्ल (Eau Bleu) तरफका हाइड्रोइलैक्ट्रिक पावर स्टेशन देखने गए। श्री वॉल्टर सब सचिवोंमें उम्र मे छोटे हैं किन्तु बुद्धिमानीमें किसीसे कम नहीं। वे और उनकी पत्नी हमें (Forest Side) से पीतो द्यू मीयु (Pito du milieu) ले गए। यह पहाड़ ठीक-ठीक ऊंचा है और उसके दो शिखर बहुत ही आकर्षक और सुन्दर हैं। उन शिखरोंके ऊपर जो एक तरहकी डिजाइन उभरी है वह भूस्तर-शास्त्रकी दृष्टिसे बहुत महत्त्वकी है ऐसा पू० काकासाहेब कहते थे। ये पीतों द्यु मीयु पहाड़ तथा मोंतान ला ग्राव (Montane La Grave) इस प्रदेशकी सुन्दर शोभा है। यहांकी नील नदी (Eau Blue) में एक बड़ा बांध बांधा गया है। यह इस देशका भाखड़ा-नांगल माना जायेगा। बांधके ऊपर पहुचनेके लिए हमें छियानवें सीढियां चढ़नी पड़ी। इस बांध का काम पूरा होगा तब पासके शहरको पीनेका पानी मिलेगा, खेतोंकी उपज बढ़ेगी और बिजलीकी भी सहूलियत होगी। कुदरतका अपार सौन्दर्य तथा मनुष्यका पुरुषार्थ दोनोंका यहां संगम देख कर मन प्रसन्न हुआ। काव्यका काव्य तथा उपयोगितामेंसे पैदा होनेवाली समृद्धि एकत्र मिलती है तब किसका मन खुश नहीं होगा ? यह सरकारी पुरुषार्थ दिखानेके बाद वॉल्टर दम्पति हमको दक्षिणकी ओरके अपने क्षेत्रमें ले गए। मॉरिसमे एक छोर पर पोर लुई (Port Louis) उत्तर-पश्चिममे है तो दूसरे छोर पर, दक्षिण पूर्वमें माहेबुर्ग (Mahebourg) का बन्दर-गाह है। यह शहर भले राजधानी न हो, लेकिन ऐतिहासिक और अन्य सब तरहसे महत्त्वका है। हवाई अड्डा यहांसे नजदीक है। इससे भी उस शहरका महत्त्व बढ़ा है। क्लो (Claux) और क्रियोल (Creoles) नदियां इस शहरके पास ही समुद्रसे मिलती हैं। माहेबुर्गमें प्लाजा (Plaza) सिनेमामें एक बड़ी सभा हुई। यहां हमारा स्वागत एक निराले ढंगसे हुआ। दो लड़कियां अपने हाथमें फूलोंकी थाली ले कर

खड़ी थीं। हम आये वैसे ही थोड़े फूल हमारे ऊपर उछाल कर वे हमारे आगे-आगे चलने लगीं। फूलोंकी पंखुड़ियां हमारे मार्गमें बिखेरती वे आगे चलती जाती थीं। इस तरह पुष्पमार्ग पूरा करके हमने नाट्य मंदिरमें प्रवेश किया। वहां हमारे स्वागतार्थ सूरतकी तरफके एक वृद्ध मुसलमान सज्जन तैयार खड़े थे। सफेद दाढ़ी की शानके साथ, सजल नेत्रोंके प्रेमके साथ उन्होंने हमारा स्वागत किया। जब उन वृद्ध सज्जनको मालूम हुआ कि मेरा वतन सूरत ही है तब तो उनका जन्मभूमि वात्सल्य उमड़ पड़ा। जन्मभूमिका जादू कुछ अपूर्व होता है।

इस भावभीगे स्वागतको स्वीकार कर, प्रसंगोचित भाषण पू० काकासाहेबने किया। और हम F. U. E. L. नामके चीनीका कारखाना देखने गये। हमारा भोजन भी वहीं था। रास्ता तो मानों आंखोंकी जियाफत था! दाहिनी तरफ विविध रंगी समुद्र, उसमें छोटे-बड़े अनेक टापू; तथा बायी ओर एकके बाद एक बदलते हुए दृश्य, खेत, पहाड़; आकाशके बादलोंके कारण चलता हुआ धूप-छांवका खेल और मॉरिस द्वीपको जिसके लिए गौरव है वह दक्षिण पूर्वकी ग्रान्द (Grande) नदी लांघ कर हम लगभग पूर्वके छोर पर आ गये। फिर एकदम उत्तर-पश्चिमका रास्ता लिया और F. U. E. L. तक पहुंच गये। पास ही एक गिरजाघर था लेकिन उसे देखनेका समय न था। चीनीका यह कारखाना बहुत बड़ा और अद्यतन है। मॉरिसमें उत्पन्न होनेवाली चीनीका १/३ भाग यही तैयार होता है। यह कारखाना मूलमें बिहारकी ओरके गजाधर नामके एक हिन्दी सज्जनका था। उनके निधनके बाद उनके बेटे मुश्किलमें आ गए और उन्होंने इक्यावन प्रतिशत शेयर एक फ्रेंच अमीरको बेच डाले। गजाधर भाइयोंने और शेयर खरीदनेसे कारखानेके मैनेजर बने हुए श्री फरनान्द लेकलाजियो (Fernand Laclazio) ने हमारा स्वागत करके कारखानेमें हमको सब दिखाया। दक्षिण-अमेरिकाके उत्तर किनारे त्रिनिदादमें जो चीनीका कारखाना हमने देखा था उसमे ये जरा भी कम नही है। सम्भव है कि यहाके यन्त्र वहाके यन्त्रोंसे अधिक नये और अच्छे होंगे। भाई गजाधर भारतकी पुरानी संस्कृतिके चुस्त उपासक थे। अभिमानपूर्वक कहते थे कि "स्वदेशसे इतने दूर आ कर रहे हैं फिर भी आज तक हमने गोरोंके हाथका पानी भी नही पीया है।" स्त्री-जातिकी उन्नतिके नये विचार उनको स्पर्श ही कैसे करते? इसलिए उनके घरकी स्त्रियोंसे मुलाकात हो सके ऐसा था ही नही।

कारखाना देख कर हम श्री फरनान्द लेकलाजियोके साथ मजदूरोंके घर देखने गये। पूरी एस्टेट इतनी तो विस्तीर्ण है कि मोटरमें बैठे-बैठे देखने पर भी हम थक गए! श्री लेकलाजियो हमें अपने एक रमणीय उपवनमें, छोटेसे सुन्दर सरोवरके किनारे ले गये! वहा वृक्षोंकी शीतल छायामें बैठे। हम मादक पेय पीते नहीं हैं यह जान कर उनका उत्साह कुछ मंद पड़ गया। हम शाकाहारी हैं वह तो उनको मालूम

था किन्तु शाकाहारी लोग द्राक्षासव क्यों नहीं पीते यह उनकी समझमें नहीं आता था। उन्होंने तुरंत कोका-कोला औरेंज जैसे सौम्य पेय मंगाये और इस तरह सबका सत्कार किया। साथके लोगोंने बताया कि श्री लेकलाझियो इतने श्रीमन्त हैं कि पैसों की उनको पड़ी नहीं है। फिर भी कारखानेमें दिन-रात मेहनत करते हैं और सुधार करते रहते हैं। क्योंकि अपनी होशियारीमें श्रीमान जितने कुशल हैं इतने ही नम्ररसिक भी हैं। बेचारेकी पत्नी सदा बीमार रहती हैं। इसलिए उनकी सेवामें इनका काफी वक्त जाता है। हमने उनको एक बार भारत आनेका निमन्त्रण दिया। मजाकमें उन्होंने जवाब दिया कि, "मेरी तो बहुत इच्छा है कि एक बार भारत देख आऊं। लेकिन मैं रहा फ्रेंच आदमी मौज-शौक करने यहां-वहां घूमूं तो आपके लोग अखबारोंमें मेरा नाम छाप देंगे और मेरी फजीहत हो जायेगी फिर मैं सुनता हूं कि आपके यहां तो शराबबन्दी भी है!" उनकी वातोंको योग्य जवाब देते हुए पू. काका साहेबने कहा कि हमारी शराबबंदी विदेशियोंके आड़े नहीं आती। अरे आपको क्या मालूम कि हमारे कई 'रसिक' लोग शराबकी छूटके लिए किसी-न-किसी विदेशी मेहमानको [illegible] हैं और आप चाहें उतने मौज शौक करें तो हमारे अखबार आपका नाम लेनेवाले नहीं हैं और हमारे यहां आपको आसानीसे पहचाननेवाला भी कौन है! आप चाहेंगे तो हर जगह आपको नया नाम दे देंगे!" ऐसा जवाब सुन कर श्रीमान बहुत खिल उठे और उन्होंने विनोदकी झड़ियां बरसाईं। फिर हम झोंपड़ीके अन्दर भोजनके लिए गये। अच्छे-से-अच्छे रसोइयोंको बुला कर उन्होंने हमें कीमती-से-कीमती भोजन दे कर फ्रेंच आतिथ्यका परिचय कराया। भोजन पूरा करते दोपहरके तीन बज गये थे।

चायका कारखाना देखनेके बीचमें एक निकम्मा कार्यक्रम था उसे समय देनेके बाद आजके मुख्य कार्यक्रम—रामकृष्ण मिशनकी ओरसे था—वहां पहुंचे। स्वामी विवेकानन्दका यह काम इस प्रदेशमें बहुत बरसोंसे चल रहा है जैसा कि पू० काका साहेबने लिखा है "स्वामी विवेकानन्दके लेखोंका असर भारत पर और अमरीका पर बहुत ही पड़ा है। उनके सेवाश्रम अनेक देशोंमें चलते हैं। आर्यसमाज तथा ब्रह्मसमाजसे भी विवेकानन्दका काम इतना सर्वमान्य हुआ उसका कारण यह है कि स्वामी विवेकानन्दने सनातन हिन्दूधर्मके अन्दर रह कर ही धर्म-सुधारका काम किया। हिन्दू धर्ममें सब तरहके सुधारके लिए अवकाश है इतना ही नहीं, अन्य धर्मोंके प्रति भी सनातन हिन्दूके मनमें आदर-वृत्ति ही रहती है यह उन्होंने बताया कि स्वामी विवेकानन्दने जो काम किया वही काम गांधीजीने दूसरे ढंगसे, अपने जमानेके अनुरूप किया है। इसलिए स्वामी विवेकानन्दके लेख पढ़नेके बाद गांधी जीके लेख पढ़ने और स्वीकारानेमें मुझे तनिक भी कठिनाई नही हुई। रवीन्द्रनाथ ब्रह्मसमाजी थे, लेकिन हिन्दू दृष्टिका विरोध करनेवाले कट्टर सुधारक नहीं थे और दुनियाके तमाम विचारोंका समभावपूर्वक मनन किया होनेके कारण उनके लेखोंमें

तथा गांधीजीके लेखोंमें अनुकूलता बहुत मिलती है इसलिए मेरे मनमें तीनोंके प्रति आदर भी है। इसीलिए रामकृष्ण मिशनके किसी भी केन्द्रके प्रति मेरी गहरी आत्मीयता रहती हैं। इस सारे सद्भावके साथ ही उनके आमन्त्रणको मैंने स्वीकार किया था। यह आश्रम बहुत बरसोंसे वाक्वा (Vacoas) में चल रहा है इसलिए उसके पास जगह, मकान, पुस्तकालय आदि की अच्छी सहूलियत है। यहांके बहुविध समाजमें इस संस्थाकी प्रतिष्ठा भी अच्छी है अतः हमारे स्वागतमें पूरे मॉरिस द्वीप के विद्वान्, संस्कारी तथा प्रतिष्ठित—सभी लोग आये हुए थे।" यहां दिया हुआ काकासाहेबका व्याख्यान बहुत महत्त्वका है इसलिए इस व्याख्यानका सार यहां देनेके बदले उसको अलगसे पूरा-पूरा देना उचित होगा। भाषणके बाद हम बहुतसे लोगोंसे मिल सके।

बम्बईसे निकलनेसे पहले वहांके ब्रिटिश कौंसिलके लोगोंको हम मिले थे। उन्होंने कौंसिलकी यहांकी शाखाको हमारे बारेमें लिखा होगा इसलिए उस शाखाको चलानेवाले श्री सीकम्ब पू० काकासाहेबसे यहां मिले और उन्होंने तथा उनकी पत्नीने अपनी संस्था देखनेका आमन्त्रण हमको दिया। यहां पर एक संस्कारी महिला मिलीं जो हैं मूल त्रिनिदाद की। यहां शादी की है। हम त्रिनिदाद हो कर आये हुए हैं अतः उनके मन स्वकीय! हमारे लोग अब दुनियामें सर्वत्र जाते हैं दूर-दूर शादी करते हैं। ये सब मुझे अच्छा लगता है। अंग्रेज तथा फ्रेंच लोग इसी तरह फैले हैं। कुल मिला कर उस जातिको लाभ ही हुआ है। क्योंकि ऐसे सम्बन्धोंसे दृष्टि विशाल होती है तथा हिम्मत बढती है। हमारे बिहारके श्री आनन्द मोहन सहाय भारत सरकारके राजदूतके तौर पर पू० काकासाहेबको बैंकॉकमें मिले थे। वहां जानेसे पहले उनकी नौकरी मॉरिसमें थी। उनकी बेटी यहीं ब्याही हैं उनसे भी हम मिले।

हमसे स्वाक्षर (autograph) लेनेके लिए एक महाराष्ट्री लड़की आयी। उसने पूणेमें कर्वे विद्यालयमें सात साल पढ़ाई की थी। अपनी संस्था तथा महर्षि कर्वे के लिए उसकी बातोंमें अत्यन्त आदर तथा गौरव व्यक्त होता था। मेरे पास जब कोई साक्षरी मांगता है तब मुझे बहुत संकोच होता है। लेकिन 'ना' कहने से कुछ बनता नहीं और समय बिगड़ता है यह देख कर अब चुपचाप नाम लिख देती हूं।

भारतीय संस्कृति पर व्याख्यान देनेके लिए यहां आये हुए प्रो० रामप्रसाद तथा चीनी बनानेकी कलामें प्रवीण शर्करा कोविद् श्री माथुर भी यहां मिले। वापस जाते पू० काकासाहेबने कहा कि कलकत्ताके पासके दक्षिणेश्वरके काली मंदिरमें अनन्य भावसे भक्ति करनेवाले एक निरक्षर परमहंसकी साधना कितनी जबर्दस्त थी और और उसने सारी दुनियामें दूर-दूर तक कितने प्रभावशाली काम किये हैं उसका विचार करते हैं तब सन्त तुकारामकी उक्ति बिलकुल सही लगती है कि:

"भले एक ही तोला—यदि सच्ची साधना हो तो वह अद्‌भुत काम करती है।"

रातको श्री हजारीसिंहके यहां हमारा भोजन था। इन सज्जनने मॉरिसमें रहनेवाले हिन्दियोंका इतिहास लिखा है जो बहुत वर्ष पहले पू० काकासाहेबको मिला था। इसलिए यहां आनेसे पहले हजारीसिंहके बारेमें मैंने पूछ ही रखा था। श्री हजारीसिंह यहांके राज्यमें महत्त्वके विभागमें अच्छी जगह पर हैं। हमने देखा कि उनकी पत्नी जितनी संस्कारी हैं उतनी ही कार्यकुशल भी हैं और पति-पत्नी एक-दूसरेमें अच्छी तरह ओत-प्रोत हैं। वे गाती भी अच्छी हैं। उनके यहां भी इस प्रदेशके बहुतसे प्रतिष्ठित लोग एकत्रित हुए थे। उनमें एक हिन्दी सज्जन थे जो वहां प्रथम हिंदी न्यायमूर्ति नियुक्त हुए थे। उनके साथ पू० काकासाहेबकी बहुत बातें हुईं। नामदार रामगुलामके साथ भी उनका महत्त्वका वार्तालाप हुआ। यहां पू० काकासाहेबका लिखा हुआ एक पत्र दे कर आजका दिन पूरा करती हूं।

"पुराने समयमें किसी नये देशमें जब मैं जाता था तब अधिकतर कुदरतकी शोभा निहारनेम तथा उसके पीछे उमड़नेवाले चैतन्यका ध्यान करनेमें मुझे अधिक रस था। तथा उस अनुभवके आधार पर सामान्य लोगोंसे बातचीत करके उस-उस प्रदेशके हृदयको समझनेका मैं प्रयत्न करता था। उस साधनाकी समृद्धि अथवा मस्ती कुछ और ही थी। गांधीजीके साथ जुड़नेके बाद समाज-सेवाका मिशन अथवा भूत मुझे चिपका। इसलिए सामाजिक प्रवृत्तियां, स्थानीय लोगोंका पुरुषार्थ, इतिहासमें उनका स्थान, परिस्थितिके कारण उत्पन्न होनेवाले उनके सवाल इन सबकी ओर प्रथम ध्यान जाता है और साथ ही उस प्रदेशकी भूमि, उसकी उपज, उसमें मदद करनेवाली नदियां, सरोवर, पहाड़; तथा मनुष्यके लिए जो आशीर्वाद रूप है किन्तु जिसके लिए मनुष्य आशीर्वाद रूप नहीं है ऐसी वनस्पति और प्राणी-सृष्टिका भी निरीक्षण करता हूं। संग्रहालय यानी Muscum देखनेको मिले तो उसका भी लाभ लेता हूं। इस तरह ज्ञानमें वृद्धि होती है, दृष्टि खिलती है, किन्तु पहलेकी मस्ती नहीं आती। लेकिन दोनों तरफका चिन्तन करके इस प्रदेशका तथा समाजका भविष्य क्या है इसका मनोमन्थन चलता ही रहता है। ईश्वरकी कृपा है कि उसने मुझे अनेक प्रदेश तथा अनेक समाजका परिचय प्राप्त करनेका अवसर दिया है तथा उसका आनंद लूटने जितनी जीवनकी ग़ैरजिम्मेवारी भी बख्शी है। बिना ग़ैरजिम्मेवारीके अलिप्तताका विकास नहीं होता है और सच्चा आनन्द नहीं मिलता यह मेरा अनुभव है।

यहां श्री तिलक नामके एक अच्छे एडवोकेट तथा विधान सभाके सदस्य हैं। उनकी पत्नी विनया भी सामाजिक कामोंमें अच्छा रस लेती हैं। उनके साथ तथा श्री हजारीसिंहकी पत्नीके साथ मेरी विशेष दोस्ती हुई और घरकी देविका बहन तो मुझे बिलकुल छोटी बहनके जैसी लगती थी। वैसी ही स्नेहभरी सेवा वह हमारी

करती थी। सचमुच पू० काकासाहेबने देश-विदेशमें मुझे कितने ही स्वजन दिलवा कर मेरा जीवन समृद्ध किया है !

चौथा दिन

सुबहकी सुन्दर प्रार्थनाके बाद हमारे मेजबान श्री धमीजाने कहा कि, "प्रार्थनाकी शांतिमें आपको इतना आनन्द आता है तो आज आपको एक सुन्दर स्थान दिखाना चाहता हूं जहां आपको प्रार्थनाके वायुमंडलका ही अनुभव होगा। जब-जब मैं वहां गया हूं मुझे तो वहां खूब शांति मिली है।" ऐसी सिफारिश सुनने के बाद उस स्थानके बारेमें कौतूहल जागना अनिवार्य था। लेकिन तुरंत निकलना शक्य नहीं था। व्यवस्थाके अनुसार सुबह लोग मिलने आते थे। पू० काकासाहेबने मुझसे कहा, "तुमने देखा है कि आश्रममें क्या अथवा किसी भी देशके प्रवासमें क्या—सुबह जल्दी उठ कर आनेवाले लोग अलग होते हैं और शामको मिलने आने वाले लोग अलग। उनके चर्चाके विषय भी अलग। बात आगे चले उससे पहले ही सेक्रेटेरिएत सोशिल (Secretariate Social) चलानेवाले एक फ्रेंच सज्जन श्री एडविन रोबिआर (Edwin Robillard) मिलने आये। देखते ही लगा कि आदमी सनकी तथा सेवाभावी हैं। सब तरहके समन्वयको मानता था और उसके पीछे लगा रहता था। यहाके फ्रेंच समाजके होते हुए भी उनको इतना मिलनसार देख कर हमें तो क्या, सबको आश्चर्य होता है। पत्र-व्यवहार द्वारा अनेक देशोंके साथ उन्होंने सम्पर्क साधा है। मॉरिसमें यदि हम ज्यादा रहे होते तो इस धुनी सत्पुरुषको अधिक मिलते। बादमें जब उनका कार्यालय हम देख आये, तब तो स्पष्ट ही हुआ कि ज्यादातर काम श्रीमान अकेले ही करते हैं। उनकी निष्ठा देख कर आदर उत्पन्न हुआ और लोग ऐसे सनकी आदमीको दूर रख कर उसकी कद्र करते हैं उसका बुरा भी लगा।

प्रार्थनाके तुरन्त बाद उनसे मिले थे उस कारणसे भी सात्त्विक भाव परिपुष्ट हुआ था। ऐसे सद्भावके साथ हम क्यूरपीपके बाजूमें आयी हुई एक पहाड़ी पर पहुंचे।

रास्ता बहुत अच्छा बना हुआ है। उस रास्तेसे ऊपर पहुंचे तो वहां बुझे हुए ज्वालामुखीका एक ठंडा द्रोण दिखाई दिया, जिसके अन्दर भी वृक्ष उगे हैं और तलहटीमें थोड़ा पानी भी है। चारों तरफसे दिख सके इसलिए उस पहाड़ी पर द्रोण-के आसपास गोल-सा रास्ता बनाया है और आरामसे बैठ कर निरीक्षण हो सके इस-लिए एक जगह झोंपड़ी भी बनाई है।

यह स्थान बहुत ऊंचाई पर होनेसे यहांसे सारे द्वीपका दूर-दूर तकका रमणीय

दर्शन होता है। दूरके पहाड़ोंके शिखर भी अच्छी तरह पहचाने जाते हैं। कहते हैं कि हवा साफ हो और आकाश निरभ्र हो तब यहांसे पड़ोसी द्वीप रीयूनियन (रेयूनियों) की भी झांकी होती है।

पू० काकासाहेबने कहा, "मुझे तो यहांसे द्वीपकी उत्तरकी बाजू देखनेका विशेष आनन्द आया। क्योंकि इस तरफके पीटर बॉथ जैसे ऊंचे शिखर मुझे देखने थे। आठों दिशाओंमें दूर तक जी भर देख लेनेके बाद नजर पुनः-पुनः उस द्रोणकी गहराईकी ओर जाती है, और मनमें भावना उठती है कि सृष्टिमें पैर और नज़र चाहे उतनी दूर दौड़ा लें, फिर भी मनको समाधान तो गहराईमें उतरनेसे ही प्राप्त होता है। वाणी बोलती है, यह सही है किंतु दृश्यजगतका जैसे वर्णन हो सकता है, वैसे आंतरिक गहराईका नहीं हो पाता, वहां तो गहराई जितनी अधिक, उतना ही वाणीको सख्त ताला लग जाता है। ऐसे ही गूढ़ किसी अनुभवके अन्तमें कविने कहा था 'गूंगेको सपनो भयो, समूझी समूझी पछताये।'

जग .. उतावली किये बिना यहां ठीक-ठीक समय बिताया। साथके दूरबीन का उपयोग किया; फिर भी तृप्ति तो नहीं हुई। पहाड़ीसे नीचे उतरे और पोरलुई में रखी हुई एक सभाके लिए ल्यूनापार्क नाट्यगृहमें पहुंचे। यह सभा 'इंडियन कल्चरल एसोसियेशन' तथा 'यूथ कौंसिल' के संयुक्त उपक्रमसे रखी गई थी।

प्रत्येक सभामें भारतीय संस्कृति, उसका आजका प्रवाह तथा भविष्यके लिए हमारी संस्कृतिकी मुरादें इस विषयके अलग-अलग पहलू पर पू० काकासाहेब बोलते थे, और मानव-जाति जो नई संस्कृतिका विकास करना चाहती है, अथवा तीन खंडके भिन्न-भिन्न समाजोंको एकत्रित कर, इतिहास विधाता जो सर्व-समन्वयकारी संस्कृति गढ़ रहे हैं, उसमें हमारा योगदान क्या हो सकता है उसके बारेमें हरेक जगह आप विशेष जोर दे कर बोलते हैं।

इस तरह भूत, भविष्य, वर्तमानकी बातें करते हुए भी नज़दीककी बातोंको भुलाना तो अशक्य था। अतः हमने कमिश्नरके कार्यालयमें जा कर पासपोर्ट पर आवश्यक कार्यवाही हुई है या नहीं यह देख लिया। रीयूनियन, माडागास्कर इत्यादि जगह जानेकी तारीखें टिकट पर लिखवा लीं। कार्यालयमें निष्ठावान कार्य-कर्ता मिले। उनके साथ पू० काकासाहेबने थोड़ा वार्तालाप किया। दीवालों पर टगे हुए आकर्षक नक्शे देख लिये और स्वदेशसे किसीका भी कोई पत्र नहीं है उसके विषादयुक्त आश्चर्यके साथ आगे बढ़े। क्योंकि हमारी राह देखनेवाले वाक्वाके मराठी मंडलको हमें मिलना था। नक्काशीवाली लकड़ीकी छोटीसी पेटीमें रख कर दिये हुए मानपत्रको पू० काकासाहेबने स्वीकार किया। स्वागतकी विशेषता यह थी कि एक सज्जनने पूरा मानपत्र भावभीनी सुंदर मराठी कवितामें रचा था। मराठीके सादे उच्चारण सुनते भी जहां गद्गदित हो जाते हैं वहां पूरे समाजने जब इतनी आत्मीयतापूर्वक सत्कार किया फिर पूछना ही क्या था?

शिवाजीके समयसे महाराष्ट्रियोंने कैसी-कैसी राष्ट्रसेवा की है और मद्रासके मध्य-कालीन वेंकटाध्वरि कविने संस्कृत कवितामें महाराष्ट्री लोगोंको कैसा प्रमाणपत्र (सर्टिफिकेट) दिया है उसका इतिहास पू० काकासाहेबने उन लोगोंको सुनाया। राजारामके दिनोंमें जब राजा संभाजी मारे गये और राजाराम महाराज कैदमें पड़े थे, तब अनुभवहीन युवकोंने राज किस तरह संभाला और उन्नीस वर्ष तक लड़-लड़ कर दिल्लीके बादशाहको कैसे हराया, उसका भी थोड़ा उल्लेख करके लोगोंसे कहा, "उन्हीं पूर्वजोंके आप वंशज हैं। आपने बहुत सहन किया है। अब अच्छे दिन आये हैं। इस परिस्थितिका लाभ ले कर उत्कर्ष करनेके लिए बच्चों-को—खास तौर पर लड़कियोंको उत्तम शिक्षा दीजिये।" श्री विनोबा भावेकी भूदान प्रवृत्तिके बारेमें तो हर जगह कहते ही थे। कई महाराष्ट्री, जो शिक्षाके संस्कारसे वंचित रहे थे, वे शायद यह सारा व्याख्यान समझ नहीं पाये होंगे। यहांकी क्रियोल भाषामें यदि पू० काकासाहेब बोल पाते तो उनको ज्यादा समझा सकते थे।

महाराष्ट्रीके बाद गुजराती! बाक्वासे निकल कर हम रोज़ हिल (Rose Hill) गये। यहां बाजारका ठाठ ज्यादा लगा। यहांके विशाल टाउनहॉलमें गुजरातियोंने भव्य स्वागतकी तथा जलपानकी उत्तम व्यवस्था रखी थी। इसकी विशेषता यह थी कि इतने प्रचंड स्वागतके लिए भी खानेकी सारी चीजें गुजराती महिलाओंने स्वयं घरमें बनायी थीं। इस स्वागतमें सहज ही स्पष्ट हो जाता था कि इस प्रदेशमें गुजराती समाज कितना प्रतिष्ठित है। खास देखने लायक था उनके चेहरों परका प्रेम और गौरवयुक्त भाव। मानो "काकासाहेब तो हमारे ही हैं" ऐसे स्वागतके अंतमें पू० काकासाहेब गुजरातीमें न बोलें यह तो हो ही नहीं सकता था। लेकिन वहां मात्र गुजराती ही नहीं एकत्र हुए थे; अतः आपको गुजरातीके बाद अंग्रेजीमें भी बोलना पड़ा।

मॉरिस द्वीपको देखते रोज़ हिलका यह टाउनहॉल बहुत ही बड़ा और भव्य था। स्वागतके लिए यह स्थान पसंद करके गुजरातियोंने मात्र किरायेके ही कितने पैसे खर्च किये होंगे ऐसा विचार मनमें उठा। जरा पूछ लिया। हमको यकीन था कि किरायेके चार सौ-पांच सौ हों तो भी वह ज्यादा नहीं गिने जाते। पूछने पर पता चला कि ऐसे सार्वजनिक कार्यक्रमोंके लिए नगरपालिका मात्र पचीस रुपये ही लेती है! यह प्रथा बहुत अच्छी मालूम हुई।

यहांसे हमें बिल्कुल दक्षिणमें सुईयाक (Souillac) पहुंचना था। मोटरमें वहां जाते आधे घंटेसे अधिक समय लगा। मॉरिसके सात दिनोंमें सर्वत्र जा कर, सब लोगोंसे पू० काकासाहेब मिले ऐसे स्वागत मंडलकी महत्त्वाकांक्षाके कारण पूरे द्वीपमें हमें अनेक बार उत्तरसे दक्षिण, पूर्वसे पश्चिम और सब दिशाओंमें बार-बार जाना होता था। सुईयाकका स्वागत श्री मणिलाल रामदीनने ग्रांड ब्वा (Grand

bois) सोशल वेलफेयर सेन्टरकी तरफसे रखा था। 'मॉरिशियन टाइम्स' के सम्पादक श्री रामनाला तथा जगनसिंहने बहुत अच्छे व्याख्यान दिये। यहां हमारे लोग अंग्रेजीमें या फ्रेंचमें बोलते हैं उसका आश्चर्य नहीं होता लेकिन जब सुंदर हिंदी में बोलते हैं तब विशेष आनन्द होता है।

यहां बहुत गरीब लोग भी एकत्र हुए थे। कपड़ोंका भी पूरा ठिकाना नहीं, बैठनेका ढंग नहीं, आते गये और वैसे ही कहीं भी बैठ जाते। देखते-देखते भीड़ उमड़ पड़ी। कार्यक्रम आरंभ हुआ तब ऐसी सभामें पूरी शांति छा गई। लोग तो मानों कानके साथ आंखोंसे भी सुन रहे थे—इतने तो एकाग्र और स्नेहसिक्त! न जाने कहांसे हरेक संस्थाने तथा अनेक व्यक्तियोंने फूलहारके ढेर ही लगा दिये। फूल भी कैसे—मॅग्नोलिया जैसे कीमती और सुगंधित! इस तरफ मेहमान बहनोंको हार पहनानेका रिवाज नहीं है उनको एक गुलदस्ता अर्पण करते हैं। यह रिवाज सब जगह अपनाने लायक है।

संपादक श्री रामलालाने यहां एक व्यवहार्य सूचना लोगोंके समक्ष रखी कि मॉरिसमें सब लोगोंको पक्षपातरहित—एकत्र लानेके लिए एक सांस्कृतिक केन्द्र स्थापित करना आवश्यक है। इस सूचनाका पुरस्कार करते पू० काकासाहबने ऐसे केन्द्रका उद्देश्य क्या होना चाहिए, उसमें क्या-क्या प्रवृत्तियां होनी चाहिए, क्या नहीं होनी चाहिए उसकी एक सूक्ष्म रूपरेखा बना दी। और ऐसा केन्द्र यहां स्थापित हो तो भारतकी ओरसे किस तरहकी सहायता मिल सकेगी उसकी भी कुछ कल्पना दी। उस कल्पनाका महत्त्व है इसलिए उसकी रूपरेखा परिशिष्टमें दी है।

रोज़ हिलसे बिल्कुल दक्षिणमें सुईयाक आये थे अतः फिरसे द्वीपके मध्य तक, क्यूरपीपकी फोरेस्ट साइड तक हमें मोटरके दीयोंसे अंधेरेको पिरोना पड़ा। वहां भोजनके बाद श्री अब्दुल्लाभाई करीमजी मिलने आये। पू० काकासाहेबने उनके यहां जा कर उनसे मिलनेका सोचा ही था। क्योंकि उनका स्वास्थ्य कुछ नादुरुस्त था। समय तय करके हम उनसे मिले उससे पहले वे स्वयं मिलने आ गये। भारतीय मुस्लिमोंमें करीमजी खानदान अपनी संस्कारिता, समृद्धि तथा कुशलताके लिए विख्यात है। सबको राजी कैसे रखना, जहां आवश्यक हो वहां उदारतासे दान कैसे देना और फिर भी संस्थाओं पर कब्जा जमानेके लोभसे मुक्त कैसे रहना, यह सब यह परिवार भली-भांति जानता है। भाई करीमजीके साथ बहुत-बहुत बातें हुई—वह भी गुजरातीमें! हम माडागास्कर जानेवाले हैं यह जब उनको मालूम हुआ तब हमारे रहनेकी व्यवस्था वे स्वयं करेंगे यह भी उन्होंने उत्साहके साथ कहा। (परंतु वहां जानेके बाद हमारे कौन्सिल जनरल श्री जयवदन शाहके यहां ही ठहरना सब मिला कर उपयोगी होगा ऐसा हमने देखा।)

इस तरह मॉरिसके चार दिन पूरे हुए। पू० काकासाहेबको महसूस होने लगा कि सप्ताह अब ढल रहा है (पूरा हो रहा है)। चार दिन बीत गये और तीन

ही बाकी रहे। इस तरहका भान मन पर बहुत असर करता है यह अनुभवी ही समझ सकेगा।"

यह विचार मेरे मनमें भी आया ही था। हजारों मील दूर आना, लोगोंके साथ प्रेम-संबंध बांधना और वापस चले जाना। जीवनमें फिरसे मिल सकनेकी आशा भी कैसे रखी जाये ! प्रत्येक बार नये स्वजनोंको छोड़ना बुरा तो लगता ही है। किन्तु ऐसे अनुभवोंसे हृदय विशाल बनता है तथा जीवनमें समृद्धि और सुवास बढते जाते हैं।

पांचवां दिन

सोमवार भी बिना दयामायाके पूरा-पूरा भरचक दिन निकला। सुबह उठते ही हिन्दीका वायुमंडल जमा। आर्य समाजी स्वामी ध्रुवानंदजी मिलने आये थे। उनकी इच्छा थी कि उनकी संस्थाएं हम देखें। पू० काकासाहेबने कहा कि, "आर्यसमाजने भारतमें जो प्रवृत्ति चलायी है उसके प्रति हम गांधीवालोंकी बहुत सहानुभूति है। हिन्दू धर्ममें सुधार करनेका काम आर्यसमाजने बहुत किया है। स्वदेशी संस्कृतिके लिए मान-आदर जगानेका जो काम आर्यसमाजने किया है उसके सामने तो सिर झुकता ही हे। लेकिन सनातनी समाजके विरुद्ध लड़नेके पुराने दिन अब रहे नहीं है, शास्त्रार्थका महत्त्व अब रहा नही, हवनके प्रति अब उन लोगोंमें श्रद्धा भक्ति उत्पन्न करना कठिन है आदि बातें अब तक समझे नही हैं। वह तो खैर, लेकिन आजके युगमें धर्मप्रचारसे भी अधिक महत्त्व संस्कृति-विकास तथा संस्कृति-समन्वयका है इतना यदि वे समझ लें तो उनकी शक्ति बहुत बढ़ेगी और उनका काम मात्र हिंदू समाज तक मर्यादित नहीं रहेगा।

"भारतके बाहर फिर वह पूर्व अफ्रिकामें हो, मॉरिशियसमें हो, फीजीमे हो या वेस्ट इन्डीज़में हो —हमें इस्लाम तथा विश्वासी धर्मके साथ स्पर्धामें उतरना नहीं है। इस्लामी समाजके साथ चर्चा या स्पर्धामें उतरनेसे वे हमारी भूमिका समझ नहीं पाते। उससे राष्ट्रीय एकता कमजोर होती है और धार्मिक जुनून जागता है। ईसाई लोग दुनियामें सर्वत्र फैले हुए हैं। उनकी संगठन शक्ति तथा सेवाशक्ति असाधारण है। हिंदू धर्म, बौद्ध धर्म और इस्लाम इन तीनोंके साथ टक्कर झेलते ख्रिस्ती धर्म ज्यादा सफल नहीं हुआ यह सही है। लेकिन ये तीनों धर्म जहां अपने उज्ज्वल रूपमें कार्य कर नहीं पाये हैं वहां—यानी दुनियाके बहुत बड़े हिस्सोंमें ईसाई प्रचारक अपनी निष्ठा युक्त सेवाके कारण, (तथा राजनैतिक सामर्थ्य के कारण भी) बहुत फैले हैं और कीमती काम कर रहे हैं। उस धर्मके संगठनके सामने हिंदू, बौद्ध या इस्लाम आत्मरक्षा जितनी थोड़ी बहुत शक्ति बता सके हैं।

लेकिन नये-नये क्षेत्र जीतनेकी शक्ति या कला उनमें अब तक आयी नहीं है। इसमें अफ्रीकामें इस्लामने कुछ सफलता प्राप्त की है। हिंदू धर्म तथा बौद्धधर्म—दोनोंने एक जमानेमें दुनियाकी अनेक कौमों पर अद्भुत प्रभाव डाला था, किन्तु अब वह तेजस्विता उनमें दिखाई नहीं देती। दोनोंका तत्त्वविचार दुनियाके विद्वान् लोगों को अधिक तृप्तिदायक मालूम होता है। हिंदू तथा बौद्ध दोनोंमें ज्ञाननिष्ठाकी मर्यादा नही है। मतभेदके प्रति वे असहिष्णु नही है। मनुष्यकी शक्ति और अशक्ति का ख्याल रख कर, अधिकार भेदके अनुसार व्यक्तिके विकासके लिए अलग-अलग प्रयत्न आजमाते है। अभिरुचिकी विविधताको पहचान कर अनेक साधना बताते है और प्रत्येक व्यक्तिके प्रति असाधारण धीरज रखते है। इन सारे गुणोके कारण हिंदू तथा बौद्ध वृत्ति धर्मप्रचारके कामसे अधिक अच्छी तरह संस्कृति समन्वयका काम कर सकती है और झगड़ोंको टाल कर परस्पर सहिष्णुताका वायुमंडल उत्पन्न कर सकती है।

"[illegible] सभी धर्मोके अंदर जो अच्छे शुभ तत्त्व हैं उनकी कदर करके, कइयों का स्वीकार करके, समन्वयके वायुमंडलमें आगे बढ़ना चाहिए। 'आपका धर्म कम दरजेका, हमारा अच्छा और महान—इस तरहकी वृत्ति रख कर संघर्ष चलानेके दिन अब नही रहे है।"

जहां-जहां पू० काकासाहेब जाते हैं वहां-वहां आर्यसमाजके उत्साही कार्य-कर्ताओंके साथ प्रेमपूर्वक ऐसी बातें करते ही हैं। सद्भाग्यसे आर्यसमाजी भी उनके साथ शास्त्रार्थ नही करते। विवेकपूर्वक सारा सुन लेते हैं। अपने अनुभव कह देते हैं। मतभेद कायम रहते हैं, फिर भी मित्रता आत्मीयता बढ़ती है।

स्वामी ध्रुवानंदजी बहुत वर्षोसे इस प्रदेशमें रहे हैं। कहते हैं कि लम्बे अरसे तक रहनेके कारण उनकी कार्यकुशलता बढ़ी है। ब्यौरेमें उतर कर प्रत्येक वस्तुको अपनी कल्पनाके अनुसार विकसित करनेका उनका आग्रह भी बढ़ा है। इसीलिए संन्यासी—स्वामीकी तटस्थता कम हुई है। पू० काकासाहेबके साथ वार्तालापमें ऐसा कुछ नजर नहीं आया। उल्टे "आप जो कहते हैं वह हम करते ही हैं अतः हमारी संस्थाओं द्वारा अपना सांस्कृतिक काम कीजिये और हमको ही सहायता दिलवाइये यह था उनकी बातोंका सार। पू० काकासाहेबने एक ही प्रश्न उनसे पूछा कि, आप खुलेआम साफ-साफ कहते हैं कि ख्रिस्ती धर्मके संस्कारोंको हम शिक्षा-प्रधान अंग ही मानते हैं। इन संस्कारोंका लाभ देनेके लिए ही तो हमने शाला खोल रखी है। जिनको ये संस्कार पसंद नहीं हैं वे हमारी संस्थाका लाभ उठायें ही क्यों? धर्मांतर करवाके हमारे धर्मकी दीक्षा हम न दें। इतना संयम हमें मंजूर है। लेकिन ख्रिस्ती संस्कार ये तो हमारी शिक्षा पद्धतिका अविभाज्य अंग है (भारतमें तथा अन्य देशमें जहां सरकार धर्म निरपेक्ष है वहां सरकारकी सहायता लेनेके कारण ख्रिस्ती संस्थाओंको कुछ अधिक मर्यादाओंको स्वीकार करना पड़ता है। वे प्रार्थना

आदि संस्कारोंको अनिवार्य नहीं रख सकते। इतनेसे हमारे लोग संतोष मान लेते हैं और कहते हैं कि इन ख्रिस्ती लोगोंका चारित्र्य ऊंचा होता है। बच्चोंमें शिस्त आती है। अंग्रेजी इत्यादि सब विषय उत्तम सिखाते हैं इसलिए इन संस्थाओंका लाभ लेने लायक होता है।

"यूरोपीय शालाओंमें चारित्र्यका तंत्रबद्धताका तथा शिस्तका कुछ आग्रह रहता ही है। धर्मका आग्रह हो न हो, लेकिन वे शालाएं ज्यादातर नीग्रो या भारतीय बच्चोंको नहीं लेती। गोरे वंशकी प्रतिष्ठा कम न हो यह आग्रह इसके पीछे होता है।

"हमारे लोग अपने बच्चोंको ख्रिस्ती अथवा यूरोपीयशालामें भेजनेके उत्साह-में रहते है। वहां नीग्रो, मुसलमान, यहूदी, बौद्ध इत्यादि चाहे उस वंश या धर्मके बच्चे आये उसमें हमें हर्ज नही होता। लेकिन हमारी शालामे जैसे हरिजनको आयें देनेमें लोगोंके चित्तमें संकोच होता है वैसे ही मुसलमान, ईसाई आदि भिन्न धर्मी अथवा नीग्रो, यहूदी आदि भिन्न वंशी विद्यार्थी लेनेकी हिम्मत हमारे लोगोंको नही होती। संस्था हमारी देखभालमें हो तब भी संस्कारोंके बिगड़नेकी भीति रखी जाती है!!

मुसलमान लोग जब अपनी कौमके लिए अलग शाला चलाते है तब मिशनरियों की तरह वे भी धर्म संस्कारोंका आग्रह अच्छी तरह रखते हैं। शिक्षक किसी भी धर्मके हों, किन्तु वायुमंडल इस्लामके अनुकूल होना चाहिए ऐसा आग्रह रहता है। ऐसी इस्लामी संस्थामें हिन्दू विद्यार्थी अपने धार्मिक उत्सव निजी ढंगसे मना सकते हैं। मात्र वहा मूर्तिपूजा नही चलेगी। अमरीकी लोग अपनी शालाओंमें चीनियों-को, जापानियोंको, ईसाइयोंको, मुसलमानोंको, नीग्रो या क्रियोल लोगोंको अपने काममें या प्रवृतिमें आकर्षित कर सके है? ये लोग आपकी सेवा लेते है? आपको अपनाते हैं? इस दिशामें अब हमारे प्रयत्न होने चाहिए। मै स्वयं तो केवल विचार-विनिमय ही कर सकता हूं। आप अनुभवी है। आपके आदर्शोंकी सफलता चाहता हूं।"

हमें मिलने आनेवाले युवान सज्जन बुखोरी अलग ही तरहके व्यक्ति थे। अभी-अभी वे डायरेक्टर बने हैं। बहुत उत्साही हैं, हिन्दुस्तानी प्रचारिणी सभाके उपाध्यक्ष हैं। हिंदी उत्तम बोलते है। उनके साथ बातें करनेके बाद पूज्यश्रीने मुझसे कहा, "मैं देख सका कि इन सज्जनमें समय पहचाननेकी शक्ति है और ये यथासमय अच्छे नेता बननेवाले हैं।"

दोनोंकी संस्था देखनेका पू० श्री काकासाहेबने कबूल किया।

आज भी बाहर निकलने पर प्रथम उस पहाड़ी द्रोण (क्रेटर) की ओर जानेको मन चाहा। ऊंचे स्थानसे मॉरिस टापूका अधिकसे अधिक हिस्सा पी लेनेकी सहूलियत आंखोंके लिए वहीं तो थी! जाते-आते अच्छे रास्ते और प्रभातकी खुश-

नुमा प्रसन्न हवा। फिर तो उस प्रार्थनामय भूमिमें जानेको दिल चाहेगा ही। वहांसे हम हिन्दू गर्ल्स कॉलेज देखने गये। जैसे हमारे यहां गोवामें वैसे विदेशमें भी हाई-स्कूलको कॉलेज कहते हैं। भागीरथी देवी नामकी भारतकी एक महिला वहां मुख्य अध्यापिका हैं। वे हैं मैसूर तरफ की इसलिए कन्नड़ भाषा तो जानती ही हैं, मराठी भी जानती हैं, लेकिन विशेष यह कि वे बंगाली भी अच्छा जानती हैं। विद्यालय देखनेके बाद सब कन्याओंको एकत्र बुलाया, शालामें बड़ा खंड न होनेसे उनको धूपमें खड़ा कर दिया। पू० काकासाहेबको यह बिल्कुल अच्छा नहीं लगा। अत: उन्होंने अपना व्याख्यान थोड़ेमें समाप्त कर लिया। डॉ० तिलकचंद तथा श्रीमती विनया तिलक इस संस्थाके प्रति ज्यादा ध्यान देते हैं ऐसा लगा। हिन्दू गर्ल्स कॉलेज यह नाम सुनते ही पूज्यश्रीके मनमें जो विचार परंपरा चली—यह भी यहां देने योग्य है।

"यूरोपीयशाला और ख्रिस्ती शाला एक नहीं होती। ख्रिस्ती शालाएं सबको प्रवेश देनेको तैयार होती हैं। यूरोपीय, एशियाई, किसी भी देशके अथवा वंशके विद्यार्थियोंको लेनेमें उनको कोई दिक्कत नही होती। मात्र सब विद्यार्थियों पर ख्रिस्ती धर्मके संस्कार कमोबेश थोपे ही जाते हैं। संचालक हिन्दी या इस्लामी विद्यार्थी आये तो हर्ज नही है। मात्र नीग्रोको लेनेमें कुछ जगह विरोध होता है। और ज्यादा जाच करनेसे पता चलता है कि स्वतंत्र अफ्रीकी विद्यार्थीके लिए भी हर्ज नही होता, मात्र जो लोग अमरीकी गोरोंके यहां किसी समय गुलाम रह चुके हों उनके वंशज अमरीकी बच्चोंके साथ सीखें यह समानता उन्हें सह्य नही होती!

"यू धर्मके नामसे संकुचितता और नफरतको प्रश्रय मिलता है। कन्याओंकी शिक्षामें यह अधिक हो उसमें आश्चर्य ही क्या? विदेशमें हिन्दू कन्याओंके लिए अलग संस्थाएं चलानेकी आवश्यकता स्पष्ट है। हिन्दू संस्कृतिके संस्कारोंको संभाल रखनेका आग्रह घरमें ढीला होता है तब वह शाला द्वारा ही दिया जा सकता है। वहां भी जरूरी सहूलियतें होती नही हैं और हिंदू संस्कृतिके संस्कार क्या हैं यानी उसका भी स्पष्ट ख्याल नही होता। फिर तो कुछ बाह्य विधियां तथा आग्रह इतना ही रह जाता है। लेकिन हमारे यहां किसी भी धर्मके अथवा वंशके लड़के और लड़कियां हमारे बच्चोंके साथ पढ़ने आयें उसकी तैयारी होनी ही चाहिये।

"थियॉसोफी अथवा रामकृष्ण मिशनकी संस्थाओंमें व्यापक धर्म वाचन, अनेक धर्मोंकी जानकारी तथा धार्मिकताके मूल तत्त्वोंकी माहिती दी जाती है। आर्य-समाजकी शालाओंमें मुख्य जोर हवन पर दिया जाता है। तदुपरांत आर्यसमाजके सिद्धांतोंकी प्रश्नोत्तरी पाठ करनी पड़ती है। सनातनियोंकी विशेषता है मूर्तिपूजा, संध्यावंदन, स्तोत्रका पाठ करना तथा अनेक उत्सव मनाना।

"इसमें होता यह है कि संस्थाके संचालक तथा दाताओंके बीच विचारोंकी एकता नही होती। और संस्था चलानेवाले शिक्षकोंके मनमें सनातनी रीति-रिवाजों

के प्रति आनंद या उत्साह नहीं होता। मात्र संचालकोंकी इच्छाको शिस्त मान कर यांत्रिक ढंगसे सारा चलाते हैं। कइयोंको तो अपनी न्यात (जाति) पंथ या धर्मकी अलग शाला चलानेमें ही धर्मको सभालनेका संतोष मिलता है। विदेशमें इस तरह बीस-पचीस पंथोंकी भिन्न-भिन्न संस्थाओंको जैसे-तैसे चलते देख कर किसीको भी आश्चर्य ही होगा। स्वदेशमें बहुत बार उस-उस पंथके पास जरूरी पैसे न होनेसे शालाएं निकम्मे ढंगसे चलती हैं। और विदेशमें पैसे छूटसे मिलते हैं वहां अच्छे शिक्षक जरूरी संख्यामें नहीं मिलते।

"हमारे धर्म तथा संस्कृतिकी किताबें तो चाहे उतनी मिल सकती हैं—अंग्रेजी, फ्रेंच, हिंदी, गुजराती, मराठी, तमिल, बंगाली इत्यादि भाषाओंमें ढेर सारी पुस्तकें तैयार हैं। लेकिन शालाके संचालक तथा शिक्षकोंको उसकी जानकारी कम होती है। विदेशमें संस्थाके मकान और फर्नीचर वगैराके लिए काफी पैसे खर्च किये जाते हैं। वहांकी परिस्थिति देखते यह इष्ट भी है। धर्म तथा संस्कृतिका ज्ञान देनेके लिए विद्वान शिक्षकोंको या संन्यासियोंको अथवा पुरोहितोंको बुलानेके बदले उनके यहां के ही बुद्धिमान और श्रद्धावान युवकोंको भारत भेज देना चाहिये। वहां चार-पाच वर्ष रख कर और पूरे देशमें यात्रा करवा कर उनको वापस ले आना चाहिए। इस तरह उस-उस प्रदेशको कायमके अच्छे शिक्षक मिलेंगे और स्थानिक अथवा स्वदेशी परंपरा शुरू हो जायेगी।"

हिंदू गर्ल्स स्कूल संस्था देखनेके बाद हम मॉरिसके लेजिस्लेटिव कौंसिलके अध्यक्ष को मिलने सचिवालयमें गये। उस भव्य मकानमें हो कर स्पीकरके कमरेमें जाने का रास्ता बहुत संकरा था। नौकर या चपरासीको जानेके रास्ते जैसा लगता था। स्पीकरको मिलने इस तरह जाना अच्छा नही लगा। लेकिन दूसरा अच्छा रास्ता कहां है यह मालूम न होनेसे और हमारे कमिश्नर सब जानते हैं ऐसा सोच कर, स्पीकर महोदय सर रॉबर्ट स्टेनलेको मिलने गये। मनुष्य सज्जन लगा लेकिन अंग्रेजोंके स्वभावनुसार पहली मुलाकातमें औपचारिक बातें ही हुई। मनुष्य रुक्ष-सा भी नहीं लगता और कैसा है उसका ख्याल भी पूरा नहीं आता।

अनेक ऐसे अनुभवके कारण पू. काकासाहेबने तय कर लिया कि 'ये लोग अपना ढंग नहीं छोड़ते तो हम अपना ढंग क्यों छोड़ें?' आपने तो खुले दिलसे, संक्षेपमें हमारे आनेके उद्देश्यके बारेमें कहा। यूं मिलनेकी 'रस्म अदा कर' के हम चले आये।

यहांसे हम गये मुसलमानोंकी एक पुरानी मस्जिद देखने। मॉरिसके लिए यह मकान सुंदर और भव्य था। अन्दर गये तब ऐसा महसूस हुआ कि हम अपने ही देशमें हैं। बादमें पता चला कि कच्छ काठियावाड (सौराष्ट्र)तरफके हमारे लोगोंने हो इसे बनाया है। पैसे देनेवाले हमारे व्यापारी थे। इतना ही नहीं, लेकिन चूना, लकड़ी इत्यादि सारा माल भी भारतसे, हमारे ही जहाजोंमें लाया गया। कारीगर भी हमारे देशके तथा मस्जिदका आकार भी हमारे ही ढंगका। यह मस्जिद सौ सालसे अधिक

पुरानी है। महत्त्वकी हैं। मस्जिदके लिए इमाम लगभग सब अरबस्तानसे बुलाये जाते हैं। मस्जिद बांधनेके लिए जरूरी पैसे एकत्र करनेकी कठिनाई देख मुस्लिम व्यापारियोंने बाजारमें बिकनेवाली अनाजकी एक-एक बोरी पर प्रत्येक रुपये पर दो सेन्टका कर लगाया। इस तरह पैसे आसानीसे इकट्ठा हुए। इस्लामकी मस्जिद के लिए जो पैसे खर्च किये जायेंगे उसमें हम कर नहीं देंगे ऐसी शिकायत वहांकी अंग्रेज सरकारने और फ्रेंच जमीनदारोंने की। हमारे लोग धर्मके काममें ऐसी संकुचित दृष्टि नहीं रखते अतः हिंदू, मुसलमान सभीने खुशीसे वह कर दिया। इस तरह यह सुन्दर मस्जिद तैयार हो गई। उसके पहले बडे वली अथवा अध्यक्ष थे हाजी जुनूस अलाह रखिया।

हरेक मस्जिदके साथ एक मदरसा होता ही है, जिसमें कुरानशरीफ अरबी तथा उर्दूमें सिखाते हैं।

मस्जिदमें जानेके बाद हम तो अल फातिहा बोलेंगे ही और स्थानिक मुसलमानोंको उसका आश्चर्य भी होगा ही। इस अवसरका उपयोग करके दो-चार वाक्यों में भारतीय संस्कृतिकी बात पू० काकासाहेब कहेंगे ही कि "भगवानकी ओर बुलानेवाले सब धर्मोंका हम आदर करते है। और सब भाषाएं हमारे लिए एक-सी पवित्र हैं।"

यहांसे ताहेरबागकी मुस्लिम शालामें जरा झांक कर हम मॉरिसका संग्रहालय (म्यूजियम तथा पुस्तकालय) देखने गये। हमारा अनुभव है कि जमैका, ब्रिटिश गियाना, दारेस्सलाम, झांझीबार, मॉरिस इत्यादि हरेक जगह गोरोंने बहुत-सी मेहनतसे सुन्दर संग्रहालय बनाये हैं, जिसमें पुराना इतिहास, अज्ञात प्रदेशके संशोधन के लिए जरूरी साहित्य, स्थानीय पशु-पक्षी, मछलियां, खनिज-पदार्थ तथा उनके जीवनसे संबंधित महत्त्वकी चीजें सुन्दर तरहसे जमा कर रखी हुई होती हैं। मॉरिस टापूमें डोड़ो नामका एक बड़ा पक्षी रहता था अन्य पक्षियोंके जैसा चतुर न होनेसे देखते-देखते शिकारियोके हाथों वह पक्षी नामशेष हो गया। अब उस पक्षीको देखना हो तो उसकी हड्डियां तथा उसके पंख इस सग्रहालयमें ही देखनेको मिलेंगे। इस पक्षीके सर्वनाश पर ही अंग्रेजीमें एक वाक् प्रयोग प्रचलित हुआ है: "Dead as a Dodo (डोडोके जैसा नामशेष)। हमारे पास समय होता तो इस संग्रहालयको देखनेमें लगातार चार-पांच दिन लगाये होते। थोड़े समयमें जितना शक्य था उतना देख कर हम ऊपर पुस्तकालयमें गये। झांझीबारकी तरह यहां भी स्थानीय इतिहास बतानेवाली किताबें, नक्शे इत्यादि संभाल कर रखे हैं। संग्रहालयके वस्तुपाल (क्यूरेटर) मि० विन्सन सज्जन और उत्साही थे उन्होंने हमें बहुत-सी बातें समझायीं, किताबें दिखायीं तथा आवश्यक माहिती एकत्र करके भोज देनेका वचन भी दिया। किताबोंकी देखभाल करनेवाली ग्रंथपालिका महिलाने हमें बहुत मदद की। जो किताब मांगे या जानकारी आवश्यक हो वह तुरन्त निकाल कर देती

थीं। इतना ही नहीं लेकिन हमारा दिलचस्पी समझ कर हमको उपयोगी दूसरी किताबें भी निकाल-निकाल कर दिखाती थीं। चेहरेसे वह महिला चीनी-क्रियोल होगी ऐसा लगा। यहां यदि किसीकी जाति पूछें तो अपनेको फ्रेंच कहनेमें ही गौरव मानते हैं।

यहांसे हम आर्य समाजके अनाथालय तथा सभा भवन देखने गये। स्वामी ध्रुवानन्दने हमको सारा बताया और हमारा समन्वयका आग्रह जानते होनेसे वहां से हम निकले तब आर्य समाजी ढंगसे धन्यवाद देनेके बदले उन्होंने फ्रेंच ढंगसे 'मेरसी' (Merci) कहा। अनाथालयमें हमेशाकी तरह छोटे बच्चे तथा अपंग लोग तो थे ही। लेकिन मुझे विशेष तो यह अच्छा लगा कि वहां लगभग चालीस बूढ़ी स्त्रियोंको भी आश्रय मिला था।

सन् १९०१ में गांधीजी मॉरिस आये थे। सच तो यह है कि, दक्षिण अफ्रीका से हिन्द आते समय उनका जहाज यहां थोड़े दिन रुका था। उसका लाभ लेकर गांधीजी यहांके अपने लोगोंसे तथा अंग्रेज गवर्नरसे और अन्य अमलदारोंसे भी मिले थे। हमारे लोगोंकी स्थिति देख कर उन्होंने बहुत कीमती सलाह दी थी। गांधीजी के बाद इस देशमें आये श्री मणिलाल डॉक्टर। वे यहां बहुत वर्षों तक रहे (सन् १९०७-१२)। भारतीय लोगोंकी स्थिति सुधारनेके लिए उन्होंने काफी मेहनत की। कृतज्ञ लोगोंने उनकी एक मूर्ति यहां स्थापित की है। आर्य समाजके सभा भवनमें भी मणिलाल डॉक्टरका स्मारक है।

दोपहर भोजन और आरामके बाद मॉरिस टापूके पूर्वमें फ्लाक (Flacq) विभागमें गये। डॉ० तिलक इस प्रदेशके प्रतिनिधि हैं। यहां स्वागतकी बहुत तैयारी की थी। किन्तु डॉ० तिलकको स्वागतके हरीफके तौर पर मिली बरसात ! बारिशने इतने उत्साहसे सबका स्वागत किया कि एकत्र हुए सब लोग तितर-बितर हो गये, महिलाएं एक बड़े खंडमें चली गईं। बारिश जरा रुकी तब उसी खण्डमें, उनको सम्बोधित कर पू० काकासाहेबने स्त्री जातिके हृदय-धर्मकी बातें की। महिलाओं का स्वाभाविक कुतूहल समझ कर आपने इस सभामें मेरे बारेमें कुछ विस्तारसे कहा। महिलायें राजी हुई ही। मैं बहुत शरमाई लेकिन सब बहनोंकी प्रेम भरी आंखोंने मेरी ओर बार-बार देखा तब तो मनमें धन्यता ही उमड आयी। परि-स्थितिका लाभ ले कर पू० काकासाहेबने सादगी, निर्भयता, प्रवासका महत्त्व तथा सुधारकी आवश्यकता इत्यादि महिलाएं समझ सकें इस ढंगसे बहुत कुछ समझाया।

शामको कॉमनवेल्थ पार्लियामेंटरी एसोसिएशनकी ओरसे पू० श्री काकासाहेब का स्वागत था। उसके लिए दरबार खण्ड (Throne Room Government House) में हम गये।

कॉमनवेल्थ पार्लियामेंटरी एसोसिएशनकी परम्परा बहुत सख्त है। खास लोगोंको ही आमन्त्रण दे सकते हैं औरोंको नहीं इत्यादि नियम सख्तीसे पाले जाते

हैं। उनकी तरफसे स्वागत होना ये बड़ा सम्मान माना जाता है। यह कॉकटेल पार्टी थी। यहां सर राबर्ट स्टेनली बहुत खुले। उन्होंने बहुत सुन्दर दोस्ताना भाषण किया। ईसवी सन्‌के पहले सन्‌से इतिहासका प्रारम्भ करके भारत तथा इंग्लैंडके सम्बन्धोंका तथा खास कर मॉरिस जैसे हिन्दी महासागरके टापुओंका उल्लेख करके उन्होंने हमारा उत्साहपूर्वक स्वागत किया। जवाब देते पू० काकासाहेबने भी भूस्तर शास्त्र (Geology) का हवाला दे कर, माड़ागास्करसे दक्षिण भारत तक फैले हुए विशाल भूखंडका उल्लेख किया तथा "उस एक ही भूमिके बालक होने कारण हम पराये नहीं हैं तथा कॉमनवेल्थके कारण भी हम एक परिवार बने हैं।" इस बात पर उन्होंने विशेष जोर दिया तथा कॉमनवेल्थ जैसे राष्ट्रीय संघका भविष्य कितना उज्ज्वल है उसकी भी कुछ कल्पना दी।

"भारतीय संस्कृति प्रत्येक व्यक्तिके स्वातंत्र्यका आदर करती है। व्यक्तिके विकासको सर्वोपरि मानती है। हमारे यहां तानाशाही स्थापित हो जाय तो भी वह टिकनेवाली नही है।" इत्यादि बातें विशेष जोर दे कर कही और विश्व कुटुम्बका महत्त्व समझाया। सर राबर्ट चतुर और मिलनसार हैं। उन्होंने अपने व्याख्यानमें मित्रताका जो वायुमण्डल खड़ा किया उसको पू० काकासाहेबने सुन्दर तरीकेसे संभाला इससे सब सदस्य प्रसन्न हुए। इस स्वागत समारोहमें एक क्रियोल महिला मिली जो एक समय विधान सभाकी सदस्या रह चुकी थीं। क्रियोल होनेका उनको गौरव था। संस्कृति-संगमके बारेमें पू० काकासाहेबके विचार सुन कर वे बहुत प्रसन्न हुई। हालांकि पू० काकासाहेब तो समझ ही गये थे कि प्रजा सत्ताके आदर्श बढ़ते जायें यह उस महिलाको अच्छा नही लगता था।

यहांसे हम गुडलैंड्स गये। यहांके स्वागतके मेज़बान नामदार रामलाला थे। और अध्यक्ष थे श्री राम गुलाम। गुडलैंड्स मॉरिसके उत्तर पूर्वमें है यहाका सौन्दर्य भी ध्यानको आकर्षित करनेवाला है। यहां भी लोटस क्लबकी महिलाओंने सुन्दर संगीत सुनाया।

यहांसे मोटरसे लम्बी यात्रा करके मांतान लांग (Montange Longue) पहुंचे। अंधेरेके एकान्तमें हमने अपनी प्रार्थना कर ली। montauge Longue में भोजन भी था तथा हिन्दी प्रचारिणी सभाकी ओरसे व्याख्यान भी रखा गया था। हम थके तो थे लेकिन भोजन बहुत प्रेम-पूर्वक तैयार किया गया था, हरेक चीजके पीछे मेहनत और कुशलता थी। यहांकी व्यवस्था नामदार रॉय तथा बुखारीके अधीन थी। व्याख्यानमें राष्ट्रीय एकताके लिए हिन्दीका मिशन कितना महत्त्वका है यह समझाया। इसी सभामें राजेन्द्र कुमार 'मधुकर' ने अपनी कविताकी किताब मुझे भेंट की और एक-दो कविता गा कर भी सुनाई। हमारे लोगोंने इस स्थानका नाम धारानगरी क्यों रखा है पता नहीं।

आज भी घर पहुंचते बहुत देर हो गयी तथा बिस्तरपर जाते मध्यरात्रिके बाद

१ बज गया। अच्छा हुआ कि थकनेके बाद जैसे-तैसे प्रार्थना करनेके बदले हमने मोटरमें ही समय पर प्रार्थना कर ली थी।

घर पहुंचते तक रास्तेमें हम सबको बहुत नींद आ रही थी। बेचारा वाहक न मालूम किस तरह जागता होगा ? मुझे उसके लिए बहुत सहानुभूति होती थी। पू० काकासाहेब पर तो मिशन सवार हुआ था और हमारे मेजबानोंमें अतिथि-सत्कारकी उमंग थी लेकिन उस ड्राईवरको सात दिन तक देर रात तक गाड़ी चलानी पड़ती थी यह कितना त्रासदायक होता होगा !···ये विचार मनमें आते थे।

छठा दिन

मॉरिसमें जो अखबार चलते हैं उनमें अधिक तो फ्रेन्च भाषाके हैं। कइयों में फ्रेन्चके साथ बीच-बीचमें अंग्रेजी भी होती है। कई फ्रेन्चके साथ हिंदी देते हैं। 'जनता' पूरा हिंदीमें छापा जाता है। वह सप्ताहमें दो दिन प्रकाशित होता है। श्री राम लालाका 'मॉरिशियस टाइम्स' अंग्रेजी साप्ताहिक है। मॉरिसकी मुस्लिम लीगका 'ला वुआ द इस्लाम' (La Vofx da Islam) पाक्षिक है। वह फ्रेन्च तथा अंग्रेजीमें निकलता है। मॉरिसमें बसे हुए चीनी लोग भी अंग्रेजीमें दो अखबार प्रकाशित करते हैं। इसी तरह रोमन कॅथलिक लोगोंका एक साप्ताहिक फ्रेन्चमें निकलता है। अभी-अभी भारतके बारेमें भी उसमें जानकारी आने लगी है।

दैनिक अखबारोंमें फ्रेन्च लोगोंका प्रिय दैनिक 'ल सरनीन' (Le Cernen) है। आज तक तो वह हमारे लोगोंका विरोध ही करता था। अब आगे क्या करता है, देखें। सबसे महत्त्वका दैनिक है 'एडवान्स' (Advance) जो फ्रेन्चमें तथा अंग्रेजीमें चल रहा है। इसके संपादक एक क्रियोल सज्जन हैं जो फ्रेन्च भाषाके अच्छे विद्वान माने जाते हैं। मजदूर पक्षके प्रति इनका पक्षपात है।

इस 'Advance' ने पू० काकासाहेबसे एक मुलाकात मांगी थी। उसने इतने सारे प्रश्न लिख कर दे दिये मानो एक महा निबंध ही चाहिये हो ! उस अखबारके प्रतिनिधिको अंग्रेजी ठीक तरह आती नहीं थी। प्रश्नोंका तो अंग्रेजी करके लाया था; लेकिन जवाब अंग्रेजीमें समझानेकी कठिनाई। ता० २० को आधी मुलाकात दी थी वह आज पूरी करनेकी थी। आज उस पत्रकारके साथ हजारीसिंहकी सेक्रेटरी भी आयी थी। पू० काकासाहेबने इन लोगोंको जितना समय दिया और जितना लिखवाया उसकी तुलनामें अखबारमें कुछ संतोषकारक आया नहीं। उनकी वृत्ति तो अच्छी थी, लेकिन कुशलता कम।

इस मुलाकातके बाद श्री छोटूभाई देसाई अपने बेटेको ले कर मिलने आये। छोटूभाई एक समयके गुजरात विद्यापीठके विद्यार्थी रहे थे। अतः पूज्य श्री काका-साहेबके प्रति उनको विशेष आदर और प्रेम होना स्वाभाविक था। उनकी गहरी

भावना देख कर बहुत आनंद हुआ। दोनों एक-दूसरेसे मिल कर आनंदित थे और मैं उनका आनंद देख कर खुश होती थी। छोटूभाईने यहां उद्योगमें अच्छी प्रगति की है। देसाई परिवारकी यहां अच्छी प्रतिष्ठा है। सार्वजनिक कामोंमें रस ले कर मदद भी करते हैं।

हमको जो लोग विशेष पसंद आये उनमें एक थे श्री राय। वे मंगलूरकी तरफ के; जातिके बंट। दिखनेमें अच्छे और कुशल। बीमा कंपनीका काम करते हैं। अपनी मोटर ले कर श्री धमीजाके साथ बहुत-सी चीजें बतानेके लिए दो-तीन दिन हमारे साथ घूमे थे। उत्साहपूर्वक मदद करते थे और बोलते थे कम, इसलिए उनका प्रभाव ज्यादा अच्छा रहा। उनके उत्साहके कारण हम तीसरी दफा त्रू ओ सेर्फ (Trou aux cerfs) वाले द्रोण पर गये और दूरबीनसे आसपासका प्रदेश जी भर कर देखा।

आज सुबह 'पॉल और वर्जिनिया' वाले उत्तर प्रदेशमें घूमना था। यह प्रदेश जितना सुन्दर है उतना ही इतिहास प्रसिद्ध भी है। फ्रेन्च जमींदारोंने इस जगह समुद्रके किनारे सुंदर घर बांधे हैं और प्रिय वृक्षोंके उपवन भी लगाये हैं। इन उपवनोंमें भी यहां-वहां घूमनेवाले लोग चाहे वहां बिगाड़ न करें इसलिए रास्तेके किनारे नोटिस होता है कि 'एकांत' किस तरफ है—वहां जा कर लोग शौच बैठ सकते हैं। यह व्यवस्था हमें बहुत अच्छी लगी। सुंदर खेत, समुद्रका किनारा, उसके रंग, समुद्रकी हंसती लहरें तथा वनउपवनको शोभा देनेवाले छोटे-बड़े सुंदर काम्पे (धनिक लोगोंके लिए छुट्टीमें आ कर रहनेके घर) देखते-देखते हम आगे बढ़े। बिलकुल उत्तरमें है वह दुर्दैवी भूशिर—(Cap Malheureux—जहां उपन्यासकी काल्पनिक नायिका वर्जिनिया जहाजके साथ डूब गयी थी। यहा हमने भी उपन्यासके नायक प्रेमी युवक पॉलके साथ थोड़ा-सा अफसोस किया और बहुत ही सराहे हुए पाम्प्लमूस (Pamylemouses) उपवन देखने गये। लाबुरदोने (Labourdonnais) जैसे पुराने होशियार गवर्नरोंने तरह-तरहकी वनस्पतिको यहां ला कर लगाया है। लेकिन एक जगह छोटेसे एक सरोवरमें जो कमल उग रहे हैं उसीका एक विशिष्ट फोटो हर पुस्तकमें मिलता है। उस कमलके पत्तोंकी किनारी हमारे यहांकी थालीकी किनारके जैसी ऊपर खड़ी हुई होती है। उस सरोवरमें विविध रंगके कमल देख कर बहुत ही आनंद हुआ। यह वानस्पत्यम् छोटा होते हुए भी अति आकर्षक है। यहां आनंदके साथ जानकारी भी काफी मिलती है।

क्रियोलकी ओरके सागरके बदलते हुए रंग देखते मनको तृप्ति ही नहीं होती थी। किंतु आगेके कामोंको याद कर हम वापस आने लगे तो सामने मोका पर्वतके टेढे-मेढे ऊंचे शिखर दिखाई दिये। उनमें ही पीटर बोथका शिखर सबसे ऊंचा है, लगभग २७०० फुटकी ऊंचाई है। समुद्रमें आने-जाने वाले जहाजों पर इसी पहाड़

परसे ध्यान रखा जाता था। इन पहाड़ोंके आकार देखते-देखते हम पोर लूई पहुंचे।

यहांकी विधान सभाके सदस्योंकी खास इच्छा थी कि पू० काकासाहेब जैसे भारतीय राज्य सभाके सदस्य उनकी सभामें उपस्थित हो कर उन लोगोंकी पद्धति का निरीक्षण करें। यहां आदरणीय मेहमान प्रेक्षकोंको बैठानेकी अच्छी व्यवस्था है। इस सभाके अध्यक्ष सर रॉबर्ट स्टेन्ली गंभीर मुख-मुद्राके साथ कामकाज चला रहे थे। हम पहुंचे तब विरोध पक्षके नेता श्री विष्णु दयाल भाषण कर रहे थे। उनकी होशियारीके बारेमें बहुत कुछ सुना था। उनका साहित्य भी पढ़ा था। थोड़े भाषण सुने और कानकी तृप्तिसे अधिक पेटकी तृप्तिका समय होनेसे रोज़ हिलमें श्री भीखूभाई देसाईके यहां भोजनके लिये गये। श्रीमती पुष्पाबहनने सारी व्यवस्था बड़े ध्यानपूर्वक की थी। देसाई परिवार बड़ा है। सबने साथ मिल कर भोजन किया। उस परिवारका परस्पर प्रेमका संबंध देख संतोष हुआ। पू० काकासाहेबने भोजनोत्तर आराम किया इतने समय मैंने घरकी महिलाओंके साथ बातें करके उनका परिचय कर लिया।

यहांकी सांस्कृतिक संस्था ब्रिटिश काउन्सिल देखनेकी हमारी इच्छा थी ही। और श्री तथा श्रीमती सीकम्बका आमंत्रण भी था। भोजनके बाद हम प्रथम वहीं गये। उनका मकान और वहांकी व्यवस्था देख हम खुश हुए। ब्रिटेनके लोगोंकी लिखी हुई तथा ब्रिटिश प्रकाशकोंकी छपी हुई किताबें ही यहां रखी जाती हैं। तदुपरांत राज्य चलानेकी विद्या (Civil Administration) सीखनेवाले लोगोंको यहां अंग्रेजी भी सिखाई जाती है। इस तरह ज्यादा उहापोह किये बिना समाज पर अधिक-से-अधिक प्रभाव डालनेकी कला अंग्रेज जानते हैं।

शामको करीमजी भाईके यहां आमंत्रण था। इस तरफके मुल्कोंमें करीमजी परिवार अमीर, संस्कारी और होशियार हैं। खानदान बड़ा है और व्यापार उद्योगमें अग्रणी होनेसे परिवारके सभी लोगोंको कुछ न कुछ काम मिल ही जाता है। करीम जीके यहां मॉरिसके ज्यादातर सब प्रतिष्ठित लोग एकत्र हुए थे। महिलाएं भी अच्छी तादादमें एकत्र हुई थीं। इस परिवारकी सज्जनताका और संस्कारिता का प्रभाव बड़ा था। भाई करीमजीकी छोटी बेटी फरीदा मुझे बहुत प्यारी लगी।

यहांसे घर जानेकी हमें कुछ उतावली थी। क्योंकि वहां—श्री धमीजाके घर आज सबसे बड़ा समारोह था। भारतकी प्रतिष्ठा तथा मिलनसार भाई जगन्नाथ धमीजाकी कुशलताके कारण इस जलपानमें सामान्यतः एकत्र न होनेवाले लोग भी आये थे—राजाके गवर्नर, स्पीकर तथा मंत्रीगण तो थे ही। भारतीय समाजके सब नेता भी थे ही, किन्तु फ्रेन्च अमीर, लेखक, कवि तथा कलाकार भी आये थे। मेहमानोंमें एक अंग्रेज फोरेस्ट अफसर श्री एजरली बहुत अच्छी हिंदी जानते थे।

उन्होंने ब्रह्मदेशमें बहुत वर्ष बिताये थे। पू० काकासाहेबने उनसे कहा कि 'ब्रह्मदेश मैं दो बार गया हूं। लेकिन चि० सरोजने तो अपना बचपन वहां बिताया है।' इतना सुनते ही श्रीमानने भीड़मेंसे भी मुझे ढूंढ लिया। और जब उनको पता चला कि मेरे पिताजी वहां (ब्रह्मदेशमें) कानून-मंत्री थे तब तो हमारे बीच बहुत बातें चलीं।

खर्च तो बहुत हुआ होगा किन्तु इस तरह भारतकी प्रतिष्ठा तथा सद्भावकी तटस्थताको स्वीकार होते देख हमें बहुत आनंद हुआ। किसीके भी चेहरे पर यह भाव नहीं था कि आ कर वे उपकार कर रहे हैं। श्रीमती देविका बहन धमीजा तो मेहमानोंके स्वागतमें कुशल थीं ही लेकिन उनके दो छोटे बेटे भी खानेकी कोई चीज ला कर मेहमानोंको आग्रह करते थे यह देख कर सबको उन पर बहुत प्यार उमड़ता था। जलपानका यह सत्कार प्रसंग अपेक्षासे बहुत ज्यादा समय तक चलता रहा। फिर वर्षाने आ कर भी मेहमानोंको कुछ ज्यादा रुकनेका प्रोत्साहन दिया।

'एडवान्स' अखबारके प्रतिनिधिको दो हिस्सोंमें दी हुई मुलाकात आखिर पू० श्री काकासाहेबने पूरी की। बात करते जाते थे साथ उनका भोजन भी चलता था। ऐसा न करते तो रात्रिके बारह बज जाते! और हम कब नींदकी शरण जाते? सबके जानेके बाद पू० श्रीको विचारमग्न देख मैंने पूछा 'क्या विचार चल रहे हैं, पिताजी? अभी भी नींद नहीं आती है? तब आपने कहा—

"जिस देशमे मेरे देशवासियोंको अर्धगुलामके तौर पर अपमानस्पद स्थितिमें रहना पड़ा था उसी देशमें, सौ-सवासौ वर्षमें भारतीय लोग राज्यकर्ताओंका चुनाव करते हैं तथा सचिव या मंत्री बन कर राज्य चलाते है यह देख कर मुझे बहुत संतोष हुआ। उसी भारतका प्रतिनिधि हो कर मैं यहां आया हूं और धमीजा उसी भारत के राजदूत हो कर यहां रहे हैं। ऐसे इस स्थित्यंतरसे यहांके कई वृद्ध जन तो गद्‌गद् हो जाते थे। मानों भारतके माथे परका कलंक धुल गया, उसका उज्ज्वल रूप जगत्‌के समक्ष प्रगट हुआ, उसका आनंद मनाते थे, यह तुमने देखा न?"

मैं उत्तर दे सकूं उससे पहले हमारे मेजबानके छोटे बेटे 'सुनिशम्' करने आये। प्रतिदिन जल्दी सो जानेवाले ये बालक आजकी चहल-पहलसे उत्तेजित हुए थे। आंखमें नीद होते हुए भी सोनेकी इच्छा नही थी। थोड़ी देर खेले फिर उनके पिता प्रेमकी जबरदस्तीसे उनको सोने ले गये और इस मधुर दृश्यका आनंद लेते मनाते हम भी सोने गये।

सातवां दिन

मॉरिसका हमारा अंतिम दिन आखिर आ ही गया। कल हम रीयूनियन जायेंगे। आज बहुत लोग मिलने आनेवाले थे ही। उनमें एक बैरिस्टर आये। शायद क्रियोल होंगे, लेकिन हिंदी सीख कर अच्छी बोलते भी हैं। व्याख्यान भी हिंदीमें देते हैं। दूसरे सज्जन थे जे० एन० रॉय। उनसे बहुत-सी अच्छी जानकारी मिली। दृष्टिवाले मालूम हुए।

अनेक अखबारवाले मिल चुके थे। फ्रेन्च दैनिक 'ल मॉरिशियस' (Le Mauricen) रह गया था। उसके प्रतिनिधि आज मुलाकात लेने आये। पांच-सात दिनके अनुभवसे उन्होंने देख लिया कि पू० काकासाहेबका विश्वबन्धुत्व सच्चा है। वे किसी भी पक्ष, जाति, या वंशके विरुद्ध हैं ही नहीं। जैसे वे सबसे मिलते हैं उसी तरह सबका सच्चा हित उनको एक-सा प्रिय है। जो सत्य लगे वह कहनेमें उनको कोई संकोच नहीं है क्योंकि उनको कुछ भी लेनेका या खोनेका है ही नहीं।

इस मुलाकातके बाद एक तमिल सज्जन मिलने आये --- श्री अप्पावु। हैं बहुत धनवान। उनको एक मंदिर बंधवानेकी धुन लगी है। नये-पुराने मंदिर देखना पू० काकासाहेबको अच्छा लगता है। उनकी कलाकी कद्र भी है। लेकिन नये मंदिरके पीछे कोई पैसा खर्च करना चाहता है तब आपको यह अयोग्य लगता है। 'जो मंदिर हैं उन्हींकी अच्छी तरह देखभाल जब नहीं हो रही है तब नये मंदिर क्यों बांधें ? मंदिरों को यदि संस्कृतिके केन्द्र बनायें और ऐसा करते लोग अपनी संकुचितता छोड़ दें तब तो बहुत काम हो सकता है। पुरानी अच्छी-बुरी रूढ़िओंके गढ़के तौर पर वे काम आते हों तो भी मैं उनको जीवंत मानूंगा, और जरूरत पड़ने पर उनका विरोध करूंगा। 'लेकिन आजकल मंदिरका वायुमंडल अधिकतर मृतवन् ही होता है। उसके पीछे कोई पैसा खर्च करने तैयार हो जाये तो वह आदमी पुराने जमानेका है, भूत सृष्टिमें रहता है ऐसा ही मैं मानूंगा। विवेक सभाल कर जितना कह सकते थे, उतना आपने कहा।

फिर हम स्वदेशी कोऑपरेटिव सोसायटियोंके कई सदस्योंको (साझीदारोंको) मिलने गये। उनके अध्यक्ष श्री मणिलाल रामदीन ईखके खेतोंके भारतीय मालिकों के प्रतिनिधि जैसे मालूम हुए। उनके साथ माथुर नामके भारतके शर्करा-प्रवीण (Sugar expert) थे। यहांकी परिस्थितिके वे पूरे जानकार हैं। उनके दिये मान-पत्रके उत्तरमें पू० काकासाहेबने विस्तृत व्याख्यान दिया। और ईखके मालिक क्या-क्या कर सकते हैं यह समझाया।

अब हमारे कमिशनरके कार्यालयमें यहांके तमाम अखबारोंके प्रतिनिधियोंको पू० काकासाहेबसे मिलनेका कार्यक्रम था। "इस प्रेस कॉन्फ्रेन्समें न जाने कैसे-कैसे सवाल पूछेंगे।" यह सहज आशंका कमिशनर साहबने व्यक्त की। परंतु बेढंगे

अथवा नाजुक प्रश्नोंको सुन्दर मोड दे कर ठीक और मधुर उत्तर देनेकी कला तो पू० काकासाहेब उत्तम जानते हैं इसलिए मेरे मनमें तनिक भी चिंता नहीं थी। कभी-कभी वे सोचते हैं कि "कठिनाई भरा प्रश्न पूछा ही है तो चलो सीधा उत्तर दे दें। भले फिर सब नाराज हो जायें"

लेकिन आज तो विपरीत ही अनुभव हुआ। मानों सांस्कृतिक समन्वयके लिए चर्चा-परिषद चल रही हो उस ढंगसे पत्रकारोंने बहुत गहरे प्रश्न अति आदरपूर्वक पूछे तथा पू० काकासाहेबके विचारोंको विद्यार्थीकी तरह रसपूर्वक समझ लिया। उनके प्रश्नोंसे पू० काकासाहेबको संतोष हुआ ऐसा दिखाई दिया। आपके उत्तरोंसे सबको होनेवाला संतोष और समाधान स्पष्ट नजर आता था। आरंभमें ही पू० काकासाहेबने उनसे कहा था कि 'मुझे अपनी बिरादरीका ही मानिये।' परिणाम यह था कि उनके बीच एक सुन्दर सात्विक वायुमंडल जमा। फिर पू० काकासाहेबने कहा कि आपके अखबारोंमें कल आप क्या लिखेंगे और कितना लिखेंगे उसकी मुझे चिंता नहीं है। आप मुझे समझ लें। हमारी दृष्टि यदि आपका योग्य तथा स्वागतयोग्य मालूम होगी तो आगे आप भारतके बारेमें जब जब कुछ भी लिखेंगे उस पर उसका प्रभाव हुए बिना रहनेवाला नही है। यह बात ही मेरे लिए कीमती है।

इतना कह कर आपने गांधीजीके प्रभावमें स्वयं कैसे बने (गढे गये) और अब जगतके प्रश्नोंकी तरफ किस दृष्टिसे देखते हैं, इससे प्रारंभ करके गांधीजीकी जीवनदृष्टि तथा भारत सरकारकी शांतिवादी सर्वकल्याणकारी नीति विस्तारसे समझा दी। बादमें सब प्रश्नोंके उत्तर दिये।

वहांसे घर वापस आते रास्तेमें करीमजी जीवणजीका पेप्सीकोलाका कारखाना देखा। उसमें यंत्रोंसे पेप्सीकोला बोतलोंमें कैसे भरा जाता है और बोतल बंद हो कर किस तरह अपनी जगह पर बक्सेमें जा कर बैठ जाती है यह देखनेका मजा आया। मानों छोटे बच्चे कवायत कर रहे हों! श्री करीमजीके दो युवान भतीजे हमको सारा समझा रहे थे। कलके लड़के अपने कारखानेमें व्यवस्थापक बनते ही जिम्मेदारीका भार ओढ़ लेते हैं और गंभीरतासे बातें करते हैं यह देखनेमें और उसको स्वीकार कर उनको प्रोत्साहन देनेमें पूज्य काकासाहेब जैसे जन्मजात शिक्षकको विशेष आनंद होगा ही। हजारों बालक तथा युवक जिनकी वत्सल देखभालमें विकसित हुए हैं उनके चेहरे पर किसी भी युवक या युवतीके विकसते उत्साह, साहस या पुरुषार्थ देखते जो वात्सल्यके भाव उभर आते है उन्हें देखनेकी धन्यता कुछ अनोखी ही है।

दोपहरके बाद तीन जगह सम्मान सभारंभमें हाजिर रहनेका था। पहला तो नजदीक ही वाक्वामें इन्डो-मॉरिशियन एसोसिएशनकी ओरसे था। सब तरहके लोगोंको वहांकी हरी लॉन (घास-पत्ती) पर एकत्र हुए देख कर पू० काकासाहेबने

विषय बदल दिया और भारतीय संगीत तथा चित्रकलाके विकास पर मानों बाकायदा व्याख्यान देते हुए कहा :

"भारतीय संगीत यह एक अत्यंत सुंदर त्रिवेणी संगम है। नाट्याचार्य भरतसे ले कर जो भारतीय संगीत हमारे यहां विकसित हुआ था उसमें मुगल कालमें ईरानी संगीतका बढ़ावा (मिलाप) हुआ। इस समन्वयका काम करनेवाले हरिदास नामके एक त्यागी बैरागी संत सत्पुरुष थे। उनके शिष्य तानसेनने अकबर बादशाहके दरबारमें ख्याल ठुमरीका हिन्दुस्तानी संगीत प्रवाहित किया। निःस्पृह हरिदास अकबर के दरबारमें तो आते ही कहांसे? अकबर बादशाह विनम्र हो कर, जंगलमें पैदल उनके दर्शनोंको गये और उस संगीतके संगममें अवगाहन करके कृतार्थ हुए। उसी अरसेमें दक्षिण भारतमें पुरंदर विट्ठल तथा त्यागराय जैसे भक्तकवि कर्णाटकी संगीतका विकास कर रहे थे। बंगाल आसामकी तरफकी परंपरा अलग ही थी। आज उन सबके समन्वयसे नये समृद्ध संगीतका जन्म हो रहा है।

"आप पैसे खर्च करके यहां ग्रामोफोनका रिकॉर्ड खरीदें और हरेक प्रसंग पर उसे बजायें इतना बस नहीं है। संगीत तो आपके कानमें, गलेमें और उंगलियोंमें जीवंत हो कर नाचना चाहिये। संगीतका आस्वाद लेनेकी शक्तिको विकसित करना यह हुई आधी तैयारी। यह तो प्राथमिक संस्कारिता हुई। धरती प्रथम वारिशको पीती है और सैरी होनेके वाद, उसी जमीनसे मीठे पानीके झरने फूट निकलते हैं और गाते-गाते बहते हैं, इसी तरह आपके और आपके बालकोंके गलेसे संगीत निकलता जाये तथा उंगलियां तरह-तरहके वाद्योंसे सुंदर स्वर-संमेलन प्रगट करती जायें तब ही संस्कारिता प्राणवान तथा समृद्ध बनेगी।"

भारतकी चित्रकला भी इसी तरह अनेक शैलियोंका समन्वय अब करने लगी है इस बारेमें भी पू० काकासाहेबने विस्तारसे कह कर लोगोंका रस जाग्रत किया।

"कलामें बहिष्कारको अवकाश नही है। अलगाव होना ही नहीं चाहिए। उच्च अभिरुचिका विकास हो सके इस तरह सभी देशके शुभ संस्कारोंको हम स्वीकार कर सकते हैं। जैसे समुद्र पर दिवाल बांधी नहीं जा सकती वैसे कलामें और मानवप्रेममें दीवारें टिक नहीं सकतीं। भगवानने आपको अनेक रंगोंका विलास बतानेवाला महासागर दिया है। आकृतिकी लीलाको स्थिर करके दिखानेवाले पहाड़ दिये हैं और अनेक वंशके तथा अनेक संस्कृतिके लोगोंको एकत्र ला कर बसाया है। विशाल हृदयकी आतिथ्यशीलताके प्रतापसे एक नयी संस्कृतिका विकास करनेका अवसर आपको दिया है। नौ-दस वर्ष पहले पूर्व अफ्रीकामें वहांके विद्यार्थियोंकी चित्रकला मैंने देखी थी। अफ्रीकियोंकी दुःखी आत्मा उस कला द्वारा अपनी मनोवेदना व्यक्त करती है ऐसा मैंने अनुभव किया। कला द्वारा हमें हमारे सुख-दुःख, आशा-आकांक्षा, चितानिराशाको बींध कर ऊपर आनेवाली अमर आशाको व्यक्त करके सबके अंदरसे जीवनका सनातन आध्यात्मिक आनंद प्राप्त करना है।

आपके दुःख भी कम नहीं थे उन दुःखोंसे नहीं हारते हुए टिके रहनेकी जीवट आपने दिखाई है। अब विराट् समन्वय साधनेका यह अवसर भी कलाके नवसर्जन द्वारा सफल होना चाहिये।"

इस व्याख्यानको सुनते आनंदमें इतना लीन हो जाती थी कि नोट लेना रह ही जाता था। आसपासके लोगोंकी आंखोंमें उस आनन्दका प्रतिबिम्ब देख कर मैं बहुत खुश हुई और सबके प्रति समभावकी भावना मेरे दिलमें उमड़ आयी। एक ही विचारसे प्रभावित होनेके बाद लोगोंमें एक बन्धु भाव पैदा होता है। उसके बाद एक-दूसरेसे मिलनेमें आनन्द आता है। अंतिम दिन होनेके कारण भी उस भावनामें विशिष्ट गहराई आ गयी।

इस पश्चिमके प्रदेशसे निकल कर हम सीधे पूर्वकी ओर गये। वहां मोंतान ब्लांश (Montagne Blanche) के पास कृषि मंत्री श्री बुलेलकी ओरसे स्वागत था। यहां पूज्य काकासाहेबने भाषा पर विशेष जोर देते हुए कहा—

भाषाका तथा संस्कृतिका परस्पर गहरा सम्बन्ध है। यहां बसनेवाले आप लोगोंने अपनी हिन्दी संभाल रखी है यह बड़े सन्तोषकी बात है। नेता लोग फ्रेंच व अंग्रेजी तो जानते ही हैं। लेकिन उनको स्वजनोंके साथ सुन्दर हिन्दीमें बोलते देख कर मुझे यकीन हुआ कि हमारी संस्कृति यहां टिकेगी, फूले-फलेगी और एक दिन ऐसा भी आयेगा कि जब आप लोग भारतकी संस्कृतिमें अपना हिस्सा दे सकेंगे। विदेश जा कर बसे हुए अंग्रेजोंने अपनी भाषाकी तथा अपने मूल देशकी कम सेवा नहीं की। यहां हिन्दू-मुसलमान साथ रहते हैं। उनके बीच भाषा-भेद न हो तो अच्छा है। आसानसे आसान भाषा काममें लेंगे तो दोनोंके लिए वह एक-सी उपयोगी होगी। यहांके क्रियोल लोगोंको भी हमें अपनाना चाहिए। उसके लिए हमारी भाषामें थोड़े क्रियोल शब्द आ जायें तो मैं उसको इष्ट ही मानूंगा। उन लोगोंको भी हमारी भाषा एकदम पराई-सी नहीं लगनी चाहिये। जीवन जहां ओत-प्रोत होता है वहां भाषा भी उतने ही परिमाणमें—अथवा जरा कम—ओत-प्रोत तो होती ही है। उसको मैं अनिष्ट नहीं मानता हूं। सावधानी इतनी रखनी चाहिये कि भारतमें जो हिन्दी या हिन्दुस्तानी चलती है उससे आपकी भाषा बहुत दूर न चली जाए।"

"यह भूमि हमारे लिए पवित्र भूमि है क्योंकि औरोंके साथ हमारे पूर्वजोंका खून भी यहां बहा है। सन् १८१० में अंग्रेजोंने यहांके दो टापू जीते तब सैनिक भारतसे ही लाये गए थे। उनका खर्च भी हमारे यहांसे हुआ था। उसके बाद आपके बाप-दादोंने अपने पसीनेसे इस भूमिका सिंचन किया है। जो लोग जिस भूमि पर मजदूरी करते हैं उन्हींकी वह भूमि हो जाती है।

"अब हमारे बच्चोंको उत्तमसे उत्तम शिक्षा मिलनी चाहिये। जिनके पास धन है वे अपने ही बच्चोंकी नहीं किन्तु आसपासके गरीब बच्चोंकी शिक्षाका प्रबंध

भी करें। तभी हम पर ईश्वरके आशीर्वाद बरसेंगे।

"महिलाओं तथा बालकोंके प्रति समाजमें हमेशा आदर रहना चाहिये। लड़कोंसे लड़कियोंकी शिक्षा निम्न स्तरकी नहीं होनी चाहिये।"

"गीतामें परब्रह्मका वर्णन करते कहा है—निर्दोषं हि समंब्रह्म। हमें हमारे समाजसे दोषोंको निकाल कर उसमें समता स्थापित करनी चाहिये। स्त्री-पुरुष समान, सब वर्ण और सब जातियां समान, ब्राह्मण तथा हरिजन समान, सब धर्म समान। गोरे, भारतीय, चीनी तथा अफ्रीकी—सभी समान—यह हमारा आदर्श होना चाहिए। किसीके हाथका खानेमें दोष नहीं है; हरामका खानेमें, अन्यायका खानेमें पाप है। शराब खराब वस्तु है। इससे किसीका भला नहीं हुआ है; इससे धन, बुद्धि, आरोग्य, चारित्र्य, प्रतिष्ठा सभीका नुकसान होता है। जिन लोगोंने शराब छोड़ी है उनके घरमें सब पवित्र मंगल रहता है।"

"भगवानने सब धर्मोंको इस भूमिमें एकत्र ला कर रखा है वह निरर्थक नहीं है। हमारा धर्म हम छोड़े नहीं किन्तु सब धर्मोंका आदर करें।"

हमारा तीसरा स्वागत था मजदूर मंत्री श्री रिंगाडुकी तरफसे मोका सिनेमा-घरमें। यहां तो आखिरी सार्वजनिक भाषण होनेसे विदाईकी ही बातें करनी थीं, अतः पू० काकासाहेबने लोगोंको भारतके समस्त इतिहासका सिंहावलोकन कराया :

"गंगोत्रीकी छोटी सी नदी अनेक प्रवाहोंसे परिपुष्ट हो कर गंगा-सागरके पास सागर जैसी विशाल होती है, उसी तरह हमारी संस्कृति भी समृद्ध तथा परिपुष्ट होती चली आई है। वेदकाल, उपनिषद् काल, रामायण-महाभारत काल, मनु तथा याज्ञवल्क्यकी स्मृतिके बादका बौद्धादिका काल, उसके बाद बाहरसे आये पठान तथा मुगलोंके साथकी सांस्कृतिक लेन-देनके बादकी संगम-संस्कृति; पुर्तगाली, फ्रेंच, अंग्रेजोंके आगमनसे हुआ पूर्व-पश्चिमका मिलन तथा अब सारी दुनियाकी सेवा करनेका मिलनेवाला अवसर यह हमारा कितना बड़ा भाग्य है! अब विदेशके लोग भी हमारी संस्कृतिका आदर-पूर्वक अध्ययन करने लगे हैं। हमें भी दुनियाकी अलग-अलग संस्कृतिकी खूबियां समझ लेनी चाहिए हरेकमेंसे अच्छा ग्रहण कर लेने की सीख हमारे वैदिक ऋषियोंने ही हमको दी है।"

जिस इंडियन कौंसिल फॉर कल्चरल रिलेशन्सकी तरफसे पू० काकासाहेब यहां आये उसके उद्देश्यके बारेमें भी उन्होंने कहा कि, "भारत देशकी हस्ती संस्कृति-समन्वयके लिए ही है। और वही काम हमारी संस्था, हमारी सरकार तथा हमारा देश करना चाहते हैं।"

एक जगहसे दूसरी जगह जाना यानी उस द्वीपको एक बार फिर लांघना! हम फ्लांकसे पोरलूई गये वहां भारत कमिश्नरके दफ्तरमें मॉरिस आकाशवाणीकी इच्छाके अनुसार पू० काकासाहेबने अपना विदाई संदेश टेप कराया और रातके नौ

बजे सुन्नी सूरती मुस्लिम सोसायटीके लोगोंके साथ भोजनके लिए पहुंचे। जनाब तुरावा उसके अध्यक्ष थे।

कुछ दिन पहले तय किया हुआ यह भोजन कुछ गलतफहमीके कारण आगे टलता रहा। इसमें दोष किसीका नहीं था। वह आखिरी रातके लिए तय हुआ। सोसायटीके ज्यादातर नेताओंके साथ इससे पहले पहचान हो ही चुकी थी। एक बार मस्जिदमें जा कर कुरानेशरीफकी आयतके साथ हमने स्वाभाविकतया प्रार्थना की थी उसकी जानकारी भी लोगोंको हो गयी थी। इसलिए इस भोजनमें पूरा-पूरा मुस्लिम समाज इक्कट्ठा हुआ था। क्लबके विशाल मकानमें एक बाजू पुरुष और दूसरी बाजू महिलाएं एकत्र हुई थी। लेकिन वहां पर्दे जैसा कुछ नहीं था। पुरुषोंके साथ भोजन करनेके बाद हम बहनोंके बीच आ कर पू० काकासाहेबने थोड़ी बातें कीं। उन्होंने कहा कि, "चिरंजीव सरोजको तो आपने अच्छी तरह अपना लिया है। लेकिन उनको यहां विशेष आनन्द आये उसमें आश्चर्य क्या? चिरंजीव रेहाना तथा सरोज आपसमें बहनोंसे भी अधिक हैं। करीब बीस सालों से हम [illegible] रहते हैं। और हम सब आश्रमवाले रेहानासे ही अलफातिहा सीखे हैं।"

इस पूरे समारम्भमें गुजरातीमें बोलना ही स्वाभाविक था। उसकी आत्मीयता कुछ विशेष ही मालूम हुई। इन भाई-बहिनोंने अंतमें हमें सुन्दर-सुन्दर उपहार दिये तथा मधुरसे मधुर संस्मरण एकत्र करके हमने वह दिन पूरा किया।

घर जानेका लम्बा रास्ता उन संस्मरणोंने ही भर दिया था। पू० काकासाहेब बोले, "मुझे गुजराती मराठी जितनी ही नजदीककी लगती है और उस भाषा के उपकार मैं कभी भी भूल नहीं सकता। उसने मुझे महात्माजी दिये तथा और भी इतना कुछ दिया है कि जीवन हरा-भरा हो गया है। लोग कहते हैं कि मैंने गुजराती भाषाकी सेवा की है। किन्तु गुजरातीसे मुझे अनेक गुना जो कुछ मिला है वह तो मैं ही जानता हूं।"

इस भावनाके साथ ही हमने चलती मोटरमें रातकी प्रार्थना की और मध्य-रात्रिके बाद बिस्तर पर जा सके।

गुरुवार ता० २५-११-५९ के दिन सुबह ४ बजे उठ कर नहा धो कर, सारा सामान तैयार किया और मिलने आये हुए अनेक परिचितोंके साथ प्रार्थना की। श्री धमीजा, उनकी पत्नी, बच्चे तथा घरके नौकर सब मानों हमेशा साथ ही रहते हों ऐसा हमें लगने लगा था। नाश्ता किया और फिर आखिरी बार मॉरिस द्वीपके दक्षिणके भागको लांघ हवाई अड्डे पर पहुंचे। सबकी विदाई लेते दुख तो हुआ ही। कितने प्रेमल लोग! उनके कल्याणकी प्रार्थना करते-करते हम विमानारुढ़ हुए। मॉरिस तथा रीयूनियन ये द्वीप दो सखियोंके जैसे हैं। हमारे विमानको प्लेजांस (Plaisance)से गीयो (Guilliof) पहुंचते पूरा घंटा भी नही लगा लेकिन

उसकी बात नये अध्यायमें करना ही ठीक होगा।

पोरलूई, मॉरिशियस
२५-११-५६

प्रिय नरेश,

आज हम यहांसे रीयूनियन जायेंगे। मैंने तुम्हें पहले लिखा ही है कि मॉरिस तथा रीयूनियन इस प्रदेशको शोभा देनेवाली द्वीपोंकी एक जोड़ी है। मॉरिसका वैभव भले अधिक हो लेकिन बूरबों (रीयूनियनका असली नाम) बड़ा भाई माना जायेगा। इसकी लंबाई ५५ मीलकी है और चौड़ाई ३२ मीलकी। क्षेत्रफल ९७६० वर्ग मील है। मॉरिससे यह प्रदेश अधिक पहाड़ी होनेसे अबतक लोग उसका अच्छा विकास कर नहीं सके हैं। भारतकी मददसे अंग्रेजोंने १८१० में इस टापूको मॉरिसके साथ ही जीत लिया था। लेकिन १८१५ में नेपोलियन बोनापार्टके साथ जो संधि हुई उसमें अंग्रेजोंने मॉरिसको अपने पास रख कर बूरबों द्वीपको फ्रेन्च लोगोंको लौटा दिया था। यहांकी जनसंख्याके बारेमें पूरी जानकारी नहीं मिली है। सन् १९०२ में यहांकी कुल आबादी १,७३,००० से कुछ अधिक थी। उसमें हमारे लोग १३,५०० थे। माडागास्करसे आये हुए मालगासे लोग ४५००, चीनी १४००, बाहरसे आ कर बसे हुए नीग्रो ९००० तथा क्रियोल नामकी मिश्र प्रजा ३००० की थी। इतने आंकड़ोंसे हमको संतोष कैसे होता? बाकीकी प्रजाके बारेमें कोई जानकारी नही है।

बात यह है कि फ्रेन्च लोगोंने भारत सरकारकी खुशामद करके भारतसे गिर-मिटियोंको बुला लिया। इसका प्रारंभ १८६० से हुआ और १८८२ तक यह रिवाज चला। 'भारतीय लोगों पर अत्याचार होता है, उनको ठीक तरह रखा नहीं जाता,' ऐसा कह कर मजदूरोंका भेजना रोक दिया गया। मानों अंग्रेजोंके मॉरिशियसमें मजदूर बहुत सुखी थे!

उन बाईस वर्षोमें जितने भारतीय मजदूर यहां आये उनका क्या हुआ यह कहना मुश्किल है। वे धीरे-धीरे अपनी भाषा भूल गये और क्रियोल बोलने लगे। अपना धर्म छोड़ कर ख्रिस्ती हुए तथा धीरे-धीरे यहांके लोगोंमें मिल-जुल गये होंगे। भारतीय गिने जायें ऐसे अब वहां कितने हैं यह तो वहां पहुंचने पर ही पता चलेगा।

आज भारतीय माने जा सकें ऐसे तो गुजरातकी ओरके कुछ मुसलमान ही हैं। उन्हींके मेहमान हो कर हम तीन दिन वहां रहेंगे। वहांके सृष्टि-सौन्दर्यकी भी बहुत प्रशंसा सुनी है। मॉरिसके जितनी चीनी वहां तैयार नहीं होती। जहां राज्य फ्रेन्च है वहां स्थानिक प्रजाको वे फ्रेंच मानते हैं। धर्म अथवा वंश कुछ भी हो, वे फक्त फ्रेन्च संस्कृतिको ही मान्यता देते हैं और सबको उस संस्कृतिमें एकत्र करना चाहते हैं। इस तरह फ्रेन्च लोगोंकी और अंग्रेज लोगोंकी नीति बिलकुल अलग है।

हम तो अंग्रेजोंकी नीतिके आदी। फ्रेन्च नीति समझते या मान्य करते जरा देर लगेगी।

मॉरिस और रीयूनियनके बीचका अंतर मात्र १३० मीलका है। यहांसे उड़े और वहां पहुंचे—एक घंटेकी भी यात्रा नहीं है।

बहुत ही भरचक कार्यक्रमके बीच मुश्किलसे इतना लिख सका हूं।

काका कालेलकरके सप्रेम वंदेमातरम्

अफ्रीकाके सवाल अलग, मॉरिसके अलग, रीयूनियन माडागास्करके अलग। नाटकके नये-नये परदे उठते जाते हों और नये-नये दृश्य देखनेको मिलते हों ऐसा प्रतीत होता है। ऐसी इस चमत्कृतिके कारण हरेक जगहकी थकान वहींकी वहीं रह जाती है; और नये स्थानके लिए नयी ताजगी आ जाती है! कितना समृद्ध जीवन!

रीयूनियनके विषयमें पू० काकासाहेबके दो इतने सुंदर पत्र हाथ आये हैं कि मुझे कुछ भी लिखनेकी आवश्यकता ही नहीं रहेगी! दूसरा पत्र नीचे देती हूं।

चि० निर्मला,

मेरे पत्रकी मददसे काल्पनिक यात्रा करनी है? चल तब हम मॉरिससे निकलें—उड़े। जिस द्वीपको मोटरकी मददसे सात दिन तक यहांसे वहां लांघते रहे थे वहअब सारा एक साथ दिखता है। लेकिन कितनी देर तक? हमें दक्षिण-पश्चिम जाना है। नौ वर्ष पूर्व जब पूर्व अफ्रीकामें लिंडी तक गये थे तब हमने देख लिया था कि भूमध्य रेखा लांघ कर हम दस डिग्री नीचे आये हैं। दक्षिण गोलार्धमें हमारा इतना ही प्रवेश था। इस समय रीयूनियन तक पहुंचना है यानी बीस डिग्री से भी कुछ अधिक दक्षिणमें। मॉरिसमें रातको आकाशके तारे देखनेका प्रयत्न किया लेकिन बादलोंने इजाजत नहीं दी। समुद्र परसे हवाई जहाजकी यात्रा करते आकाश और पानी दोनोंका एक साथ विचार मनमें आता है। आकाशके बादल तथा समुद्रके रंग दोनों चंचल हैं—और चमकीले भी।

ये आ गया सें०देनी (St. Dennis)—रीयूनियनकी राजधानी। (फ्रेन्च लोग आखिरी व्यंजनका उच्चारण नही करते) यह शहर आलूके आकारके इस द्वीपके उत्तरमें हैं। किन्तु वहां तक हमारा विमान पहुंचनेवाला नहीं है। कुछ इस तरफ गीयो (Gilliot) हवाई अड्डा है वहां हम उतरे। श्री इब्राहीम बेग हमें लेने आये हैं। उनके साथ श्री मोहम्मद दीनदार तथा श्री इसमाईल बनिया तो थे ही। विशेष तो यह कि उनके दो प्यारे बेटे भी हमें लेने आये थे। उनको देख कर बहुत आनंद हुआ लेकिन एक धक्का-सा भी लगा। भाई इब्राहीम बेग और उनके साथी हमारे साथ अच्छी गुजरातीमें बात कर रहे थे। लेकिन उनके बेटे गुजरातीमें बोल तो पाते ही नहीं थे, हमारी बातें समझ भी नहीं सकते थे। हंसमुख प्यारे बच्चोंसे बात ही न हो सके उसका क्या उपाय? कितनी परेशानी:

अच्छा हुआ कि चि० सरोजको कुछ फ्रेन्च आती थी। कॉलेजके दिनोंमें उसने फ्रेन्च भाषा सीखी थी। और कुछ साहित्य भी पढा था। जब हमारा माडागास्कर और रीयूनियन जानेका तय हुआ तब वह मिली सो नयी-पुरानी, अपनी और उधार ली हुई, फ्रेन्च पुस्तकें ले कर अपनी फ्रेन्चकी जानकारीको ताजा करने लगी। जब देखूं तब उसके हाथमें फ्रेन्च पुस्तक। बिस्तर पर भी तकियेके नीचे उसी भाषाकी किताब! नींदमें भी उस किताबका असर मगजमें पहुंच जाता होगा!! चि० सरोज ने फ्रेन्चमें सवाल पूछना शुरू कर दिया और बच्चे उसको ऐसे तो चिपके! फिर तो मैं अकेला रह गया ज्ञातिके बाहर! जब कुछ जानना हो तब सरोज द्वारा ही बच्चोंसे पूछ सकता था।

भाई इब्राहिम बेग हमें होटल 'देल यूरोप'में ले गये। वहां उन्होंने हमारे लिए दो कमरे रखे थे। बादमें पता चला कि इस नामी होटलको चलानेवाले गृहस्थ एक समयके भारतीय ही हैं। अब तो वे भारतको भूल ही गये हैं। हमको देख कर उनको जरा भी नहीं लगा कि कोई स्वजन आये है। फ्रेन्च लोगोंकी नीतिके असरसे जो क्रियोल संस्कृति यहां पैदा हुई है उसका प्रत्यक्ष दर्शन एक क्षणमें हुआ। अठारहवीं सदीके उत्तरार्धमें भारतसे जो गिरमिटिये इस तरफ लाये गये थे—वे दक्षिण भारतके—तमिलनाडसे आये होंगे। अब उनके वंशज सब भूल कर कितने ही काले हों तो भी अपनेको फ्रेन्च कहलाते हैं। घरमें तथा बाहर क्रियोल भाषा बोलते हैं। ये लोग अब आर्थिक दृष्टिसे अच्छे सुखी है और यहांके जीवनमें ऐसे तो घुलमिल गये हैं कि उनको किसी तरहकी मुश्किल नहीं है। किंतु संस्कृति? हम स्पष्ट देख सकते हैं कि असल फ्रेन्च लोग इनको अपने समाजमें लेते नहीं हैं। जिनकी चमड़ी अब काफी सफेद हुई है वे पूरे-पूरे फ्रेन्च होनेका दावा करते हैं। ऐसा करके जो घुल-मिल सकते हैं वे घुल-मिल जाते हैं। और बाकी के? वे सब क्रियोल मान जाते हैं।

हम थोड़ा घूमे। श्री बेगके घर भोजन किया और होटलमें आकर आराम किया। यहांके मौसमका असर होगा। हमारे लोगोंके बाल-बच्चे अच्छी सख्यामें होते हैं। भाई मोहम्मद दीनदारके तेरह बच्चे हैं। भाई मूसा सदरके सात। हमारे मेजबान भाई बेगके यहां भी दस बच्चे हैं जिनमेंसे सबसे छोटे दो—मुर्तुझा और अझदर हमे हवाई अड्डे पर मिले थे। इनसे पूछते ये आंकड़े मिले थे। ये आंकड़े सोचने लायक हैं। जो पुराने गिरमिटिये आये उनको यहां 'मलवार' कहते हैं। उनकी संख्या ६०,०००की होगी। उन्होंने बनाये हुए पुराने मंदिर यहां हैं। वे सारे कॅथलिक ख्रिस्ती हो गये है। गिरजेमें भी जाते हैं और मंदिरमें भी। उनमेंसे कई धनवान और ज़मीनदार बने है।

जिनको भारतीय मान सकते हैं ऐसे भरुच और सूरतकी तरफसे आये हुए तथा ज्यादातर यहां जन्मे हुए मुसलमान व्यापारी हैं। उनकी संख्या २,२०० है। फ्रेन्च आदि सच्चे यूरोपीय २,५०० तथा ख्रिस्ती बने हुए चीनी ४,५०० हैं। सभी क्रियोल

माने जायेंगे। हमारे देशकी तरह यहां भी प्रजा रंगसे सफेद, पीली, काली तथा गेहूंएं वर्णकी है। शामको घूम कर सारा शहर देखा। शहरके पास एक बड़ी पहाड़ी भी देखी। उस पहाड़ी पर अमीरोंके ही मकान हैं। पहले तो मात्र फ्रेंच लोगोंको ही वहां रहने देते थे। अब हमारे लोगोंने वहां थोड़े बहुत सुन्दर मकान बांधे हैं। हम वह देखने गये। ऊंचाई पर हवा अच्छी ठंडी है और कई स्थानोंसे राजधानीके तथा समुद्रके बहुत सुन्दर दर्शन होते हैं। मेरी काश्मीरी शालको यह जगह बहुत पसन्द आ गई। ऐसा लगा ! वह वहीं रह गयी !!

रातको से० देनी (St. Dennis) के सब मुस्लिम गुजराती सज्जनोंने हमें शाकाहारी भोजन दिया। मुस्लिम समाजमें महिलाएं कहांसे होंगी ? चि० सरोज तो मेहमान। अकेली होने पर भी सरोजको सब पुरुषोंके बीच कभी कोई हिच-किचाहट नही होती। और जिस स्वाभाविक ढंगसे सबके साथ वह बातें करती है उससे उन पुरुषोंको भी उसके साथ बात करते विचित्र-सा नही लगता। आधा भोजन हो जानेके बाद चि० सरोजको सूझा कि कोई महिला हो तो उनसे बातें करें। तब हमारे ध्यानमें आया कि यह तो मुस्लिम समाज है। यहां महिलाओंकी अपेक्षा नहीं रखी जा सकती। सुबहसे जिन-जिन घरोंमें हम गये थे वहां तो चि० सरोजकी और मेरी भी महिलाओंके साथ बातचीत हो सकी थी। एक घरमें अधेड़ उमरकी महिलाने जब देखा कि मेरी उम्र ७० से अधिक है तब प्रवास करनेकी मेरी हिम्मत की उन्होंने प्रशंसा करके अन्तमें कहा, "हमारे टापूमें आ कर बीमार न होना, हां, स्वास्थ्य संभालियेगा।"

भोजनके बाद होटलमें सोने गये तब वहांके बड़े बैठक-कमरेमें नृत्य चल रहा था। नाचनेवाले अधिक तो क्रियोल स्त्री-पुरुष थे। थोड़े गरीब फ्रेन्च भी होंगे। एक तरफ बैंड बज रहा था। दूसरी तरफ खाने-पीनेके लिए मेज-कुर्सियां रखी गयी थीं। लोग खाते जाते थे और बीच-बीचमें जी चाहे तब अथवा मनपसन्द संगीत चलता हो तब उठ कर नाचने लगते।

इस नृत्यके अनेक प्रकार हैं। हम उसके जानकार न होनेसे हमको सब एक-सा लगता था। स्त्री-पुरुषोंको ऐसे नाचते देख पहले तो जरा विचित्र लगता है। लेकिन एक बार आंखको आदत होने पर नृत्यकी कलाकी ओर ध्यान जाता है। और फिर नाचनेवाले उसमें क्यों तल्लीन होते होंगे उसकी कल्पना आती है। नृत्यके तालके साथ कदम चलाने चाहियें। सारी खूबी तथा कला उसीमें है। ताल द्रुत होता है तब लोग तेजीसे नाचते, गोल-गोल फिरते और बड़े खंडके एक सिरेसे दूसरे सिरे तक घूमते जाते। इस नृत्यका नशा तो वह संगीत ही होता है। वह बंद पड़ने पर नाच नहीं चलता। संगीतमें फरक होते हीं नाचकी शैली भी बदल जाती थी। हमने देखा कि कई लोग बहुत सुन्दर नाचते थे। कई जरा बेढंगे-से लगते थे। कई जोड़ियां अच्छी लगती थीं, जबकि कई शोभती नहीं थीं। एक फ्रेन्च लड़की बाल खुले रख कर

नाच रही थी। एकके बाद अनेक जोड़ीदार उसके साथ नाचे। उसने हरेकको उचित ढंगसे नाचना सिखाया। उसमें तनिक भी छिछलापन दिखाई नहीं दिया। किसीको ज्यादा नजदीक आने नहीं देती थी। उस नाचको देखनेमें ज्यादा रस न आया और दूसरे दिन पूरे द्वीपकी परिक्रमा करनी थी इसलिए हमने जल्दी सो जाना पसंद किया।

हमारा यह पत्र भी यहीं बंद करना इष्ट होगा।

काकाके सप्रेम शुभाशिष

o o o

यहां आये हैं तबसे देखा है कि यहां एक ऐसा प्रश्न है जिसने लोगोंके मनको अस्वस्थ-परेशान कर दिया है। उसके बारेमें पू० काकासाहेबने एक पत्रमें लिखा है। यही सवाल माडागास्करमें भी हमारे सामने उपस्थित हुआ। देश-देशान्तरकी यात्राएं की हुई होनेसे पासपोर्ट, वीसा, नागरिकताके बारेमें पू. काकासाहेबकी पुत्र-वधू चंदन बहन ज्यादा जानती हैं अतः यहांकी परेशानीकी बातें उन्हींको लिखी हैं।

२८-११-५६

चि० चंदन,

माडागास्कर तथा मॉरिसके बीचके एक नन्हे-से टापूमें जानेका मुझे तो नहीं सूझा होता, क्योंकि इस तरफ कहीं भी रुकें तो तीन दिन वहां व्यतीत करने ही पड़ते हैं। दो विमानके बीच तीन या चार दिनकी अवधि होती है। इतने दिन इस स्थानको कैसे दें ? किन्तु भाई बलवन्तराय मेहता एक वर्ष पहले इस प्रदेशमें आये थे। उन्होंने सिफारिश की कि "रीयूनियनमें हम लोगोंमेंसे कोई जाता नही है। इसका वहां बसे हुए हमारे लोगोंको कुछ बुरा लगता है। आप जायेंगे तो अच्छा होगा। लोग प्रसन्न होंगे।" मेरा तो नियम है ही कि जहां कोई न जाता हो वहां खास जाना चाहिए। इसी तरह हमारे देशमें मैं सिंध और आसाम भी पहुंचा था।

रीयूनियनमें फ्रेंच लोगोंका राज्य है। फ्रेंच लोग कहते हैं कि रीयूनियन हमारा संस्थान-कॉलोनी-नहीं है वह तो फ्रांसका एक हिस्सा-इलाका है। यहांका एक प्रतिनिधि फ्रांसकी पार्लियामेन्टमें भी बैठता है। जो लोग पुराने-सौ साल पहले गिरमिटिये हो कर आये थे वे तो फ्रेन्च नागरिक हो ही चुके हैं। भारतके साथ उनका कोई संबंध नहीं रहा है। अब वे हिन्दुस्तानकी भाषाएं भी भूल गये हैं। उनका कोई सवाल रहा नहीं है। बादमें सूरत, भरुच तरफके दो-चार गांवके मुसलमान व्यापार करने यहां आ कर बसे हैं। उनके बाल-बच्चोंका जन्म यहीं हुआ। कइयोंने तो भारतके दर्शन भी अब तक नहीं किये हैं। इतने वर्ष यहां रहने पर भी वे फ्रेन्च नागरिक नहीं हो पाये हैं। फ्रेन्च लोग इनको विदेशी ही मानते हैं। यहां रहनेके लिए तथा व्यापार करनेके लिए उनको साल दो सालमें सरकारसे मंजूरी लेनी पड़ती है। सरकारकी इच्छा हो तब तक ही

विदेशियोंको इस तरह रहने देती है। चाहे जब निकाल सकती है। अपना यह अधिकार बासी न हो जाये इसलिए हर दो सालके बाद किसी एकाध आदमीकी मंजूरी रद्द भी करती है। इसमें सरकार जरा भी दयामाया नहीं दिखाती। इसका इलाज एक ही है कि इन लोगोंको फ्रेन्च नागरिकता मिल जाये। इसके लिए जरूरी पुरुषार्थ करनेका हमारे लोगोंको सूझता नहीं है। धनवानोंको तथा जिनका बड़ोंके साथ संबंध होता है उनको फ्रेन्च नागरिकता मिल जाती है। इससे शेष लोगोंकी परेशानी ज्यादा कड़ी होती है। हमारी सरकारने इसका यह इलाज ढूंढ निकाला है कि जो भी भारतके कानूनकी दृष्टिसे कुछ गफलतमें रह जायें—समय पर पासपोर्ट न ले, अमुक साल भारत न जाये उनसे कह देना कि 'आप अब भारत के नागरिक नहीं रहे हैं' ऐसा हम करेंगे तभी हमारे लोग फ्रेन्च नागरिकता प्राप्त करनेके लिए पूरा प्रयत्न करेंगे। मराठी कहावत है न—नाक दाबो तब मुख खुलेगा (नाक दाबले म्हणज तोंड उघड़ते) इस किस्मका यह इलाज था। (सिलोन—श्री लंकाका उदाहरण हम देखते हैं। [वहां हजारों भारतवासी हैं, जो भारतके नागरिक नहीं रहे हैं] और सिलोनके नागरिक हो नहीं पाये हैं।)

रीयूनियन आते ही हमने इन सारी परेशानियोंकी कथा सुनी। जहां जायें वहां यह एक ही बात। किसीके घरमें भोजन करते हों, किसीको मिलने जायें तब भी यही बात। मस्जिदमें लोग एकत्र हुए हों वहां भी यही पुराण सुनना पड़ता। और सारे द्वीपकी १३० मीलकी परिक्रमा की तब भी गांव-गावमें तथा प्रत्येक शहरमें भी यही बात कि भारत सरकारकी यह कैसी नीति है कि हमको नोटिस देती हैं कि हम भारतवासी नहीं है! इस तरह हमें धकेल देती है और हमारे लिए व्यवहार की असंख्य परेशानियां पैदा करती है। मृत्यु या शादीके कारण स्वदेश जाना हो तो कितनी माथापच्ची, वहांसे वापस आते फिरसे वही कठिनाई। यहांकी सरकार कहती है: 'ऐसा उदाहरण अब तक हमने नहीं देखा कि किसी भी देशकी सरकार अपनी प्रजाका इनकार करें' कितने चिढ कर कहते थे "पाकिस्तान कमिश्नरको हम मात्र लिख दें तो तुरन्त हमे वहांसे नागरिकता और पासपोर्ट मिल जाते हैं। लेकिन हम भारतके है, हमारे स्वजन प्रियजन सब भारतमें हैं। हम पाकिस्तान जा कर अथवा पाकिस्तानी हो कर क्या करेंगे?"

एक जगह सब लोगोंको मस्जिदमें एकत्र करके रातको मैंने उनको विस्तारसे समझाया कि "आप भारतके हैं इसका कौन इनकार कर सकता है? भारत सरकार आपकी दुश्मन थोड़ ही है? आपको परेशान करके उसको क्या मिलने वाला था? लेकिन आपको जानना चाहिए कि जब तक आप भारतके नागरिक रहेंगे तब तक यहां आप विदेशी माने जायेंगे। जमानेके जमाने यहां बितायेंगे तब भी यहांकी सरकार आपको विदेशी कह कर निकाल बाहर कर सकेगी। ऐसी तलवार कब तक सिर पर लटकती रखनी हुई है? इसलिए फ्रेन्च नागरिक होनेमें ही आपकी

सलामती है। आप यहांकी सरकारसे कहिए कि हम यहां बस गये हैं। भारत सरकार हमें अपनाती नहीं है। हमारा सारा व्यापार रोजगार यहीं है। हमें फ्रेन्च नागरिक बनाइये।

"मैं आपसे पूछता हूं कि हमारी सरकारने भले ही आपसे कहा हो कि आप भारतके नागरिक नहीं हैं। लेकिन भारत पहुंचने पर आपको कभी किसीने रोका है ?" एक आदमी ने कहा "रोका तो नहीं है। परमिट देते हैं कुछ करते हैं लेकिन भारत जाने देते तो हैं ही"।

इस जवाबसे मुझे बल मिला मैंने उनसे कहा कि "आप तो हमारे जिगरके टुकड़े हैं। भारत आते आपको कोई रोकनेवाला नहीं है। हमारी पूरी कोशिश तो यहां आपके पैर मजबूत करनेके लिए ही है। थोड़े दिन अड़चन सहन करनी पड़ेगी लेकिन एक बार फ्रेंच नागरिकता मिल गयी फिर आप यहा आरामसे रह सकेंगे"।

इतनेमें भारतसे आये हुए एक शिक्षकने कहा "मुझे यहां हमेशाके लिए रहना नही है। मुझे हिन्दुस्तान वापिस जाना है। अमुक वर्षका करार करके ही मैं यहां आया हूं फिर भी मुझे पासपोर्ट नहीं मिलता !" मैंने कहा, "आपको तो तुरन्त मिलना ही चाहिए।"

फिर दो चार लोगोंने कहा कि, "जिस तरह आपने हमको सब समझाया वैसा आज तक किसीने हमें समझाया नही है।" मैंने कहा कि "भारत सरकारके कर्मचारी तो कानूनके अनुसार ही चल सकते हैं। कुछ ज्यादा कहने जाएं तो भारत सरकारके लिए मुश्किल पैदा कर दें। मेरी बात अलग है मैं पार्लियामेंटका सदस्य हूं। कानूनसे कुछ बिगड़ता हो तो उसे सुधारनेका काम हमारा है। मैं मानता हूं कि आपको फ्रेंच नागरिकता प्राप्त करवानेके लिए हमें पूरी मदद करनी चाहिए। आपका हित तथा आगे आनेवाला आपका जोखिम आपको समझा देनेके बाद भी यदि आप आग्रह रखेंगे कि 'हमें भारतके नागरिक ही रहना है। हमारे पैर यहां मजबूत भले न हों तो आपको भारतकी नागरिकता मिलनी ही चाहिए। मैं स्वदेश वापिस जाऊंगा तब सारी बात अच्छी तरह समझ लूंगा। जरूरत पड़ने पर कानून बदल देंगे। आपको हम क्यों असंतुष्ट रखें ? किस लिए परेशान करें ?

श्री बेगने कहा : "यदि इतना हमारा काम करवा सकेंगे तो एक बड़ा रिकार्ड माना जायेगा।" इसमें उस सज्जनकी अश्रद्धा और उनका दुःख स्पष्ट दिखायी देते थे। मैंने उनसे इतना ही कहा, "विश्वास रखिये मुझसे जितना हो सकेगा सब करूंगा।"

अब जब माड़ागास्कर तानानारीव जाऊंगा तब हमारे कौंसिल जनरल श्री जयवदन शाहसे कानून कायदे और नियम समझ लूंगा। फिर भारत पहुंचूगा। तब विदेश सचिवालयमें तलाश करूंगा। भारतके मुसलमानोंको ऐसा तो नहीं लगना चाहिए कि हम उनको अलग मानते हैं अथवा उनके सुख-दुख

के बारेमें लापरवाह हैं।

मुझे यकीन है कि चिरंजीव सतीश यह पत्र पढ़ेगा ही।

मैं समय पर स्वदेश पहुंच ही जाऊंगा। बच्चे आनन्दमें होंगे। चि० दीपकके लिए यहांके डाकखानेके टिकिट भेजता हूं। उनमेंसे चि० कुमारको भी मिलेगी ही।

२६-११-५६

चि० शरद बहन (नाणावटी)

मैं आपको बहुत कम पत्र लिखता हूं। मिलते हैं तब बातें करते हैं। लेकिन यहां रीयूनियन पहुंचते ही हमारे मेजबान भाई इब्राहीम बेगके दो प्यारे बेटे चि० सरोजको ऐसे चिपके हैं कि उसको और मुझे चि० वसंत-सुदर्शन ही याद आते हैं। सरोजसे रहा नहीं गया इसलिए उसने उन लड़कोको फ्रेंचमें वसंत-सुदर्शनकी बातें कहीं। वे बच्चे कहते हैं कि "तो आप हमें हमारे उन अनदेखे मित्रोंकी तस्वीरें भेजेंगे?"

इतनी बात होनेके बाद मैंने सरोजसे कहा कि "चलो हम वसंत-माता शरद को ही पत्र लिखें। सेवाके पीछे उनको यात्राका अवसर कम मिलता है। इसलिए हमारी यात्राका आनन्द उन तक पहुंचा दें।" सरोजको यह बात पसन्द आयी। वह बोली, "चलिए, ये ले लिया कागज हाथमें, लिखवाना शुरू कर ही दीजिये।"

एक पुस्तकमें मैंने रीयूनियनके बारेमें पढ़ा था कि यहांकी रेलवे लाइन पर छह मील लम्बी एक सुरंग है। सुरंगके लिए मुझे अंग्रेजी शब्द 'Tunnel' भी अच्छा नहीं लगता है और गुजराती शब्द 'बोगदूं' भी अच्छा नही लगता है। अतः रामायण पढ़ते परिचित ऐसा 'विवर' शब्द काममें लूं तो आपको भी अच्छा ही लगेगा। रीयूनियनकी रचना ही ऐसी है कि यहांकी अधिकतर बस्ती द्वीपके किनारे-किनारे है। बीचके पहाड़ोंमें रह कर आनन्द लूटनेका तो यूरोपीय लोगोंको ही सूझेगा। उनकी बस्ती पहाड़ोंकी ढलान पर फैलने लगी है। हम सें.देनीसे निकले और ऑटो-रेलमें बैठ कर देखते-देखते विवरमें प्रवेश किया। विवर छह मील लम्बा है सही, लेकिन उसमें अखण्ड अंधेरा नहीं है। बीच-बीचमें बाहरसे कुछ-कुछ हवा और प्रकाश लानेवाले छेद हैं। एक-दो जगह तो विवर पूरा पारकर हम तलहटी के पुल पर जायें वहां दूसरा विवर शुरू होता है। पुलके नीचेकी नदी सूख गयी थी उसका समुद्रकी ओर फैला हुआ पथरीला मुख ही केवल दिखता था। विवरमें हमारी रेलगाड़ी धीरे-धीरे चली। रेलगाड़ी कहां थी—इंजिनसे खींचती हुई मानों एक ट्राम ही थी। आप माथेरान गयी हैं इसलिए ऐसी रेलगाड़ीकी आपको कल्पना आ सकेगी। यहांकी रेलगाड़ी पहाड़ चढ़ती नहीं लेकिन उसको बींध कर उस पार जाती है।

विवर पूरा हुआ तब हमने रेलगाड़ी छोड़ दी और तैलवाहनमें निकले।

उत्तरकी ओरका सागर छोड़ कर पश्चिम तरफके किनारे पर आये। यहां पहाड़ियां दूर हैं। किनारेकी भूमि तुलनामें समतल है। खेत, ईंखकी बुवाई, फलझाड़ तथा फूलझाड़ देखते-देखते हम आगे बढ़े। कुदरतने यह टापू प्रथम परियोंके लिए बनाया होगा। इसलिए यह इतना खूबसूरत है। दूर-दूर धुआं नजर आता था, नजदीक पहुंचने पर पता चलता था कि यह शक्करका कारखाना है। समुद्र तथा भूमिके बीच अखण्ड अनुनय चलता था उसके दर्शन करते-करते हम शाम को सें० पियरे (St.Pierre) पहुंचे। इस टापूके सारे किनारे पर कैथोलिक लोगोंने अपने अलग-अलग संतोंको बिठा दिया है। हरेक गांवका नाम संतसे ही शुरू होता है। इस तरह सें० पॉल (Saint Paul) सें० जील (Saint. Gilles), सें० लूई (St. Louis) हो कर हम सें० पियरे पहुंचे। बीचमें एक चौड़ी नदी लांघी। वह भी बिना पानीकी थी। हरेक जगह बाजारमें जहां हिन्दियोंकी दुकानें थी वहां जरा रुकते थे, भाई इब्राहीम हमारा परिचय करा देते थे। दुकानके पीछे अथवा दुकानके ऊपर रहनेका घर होता है वहां ले जा कर हमें कॉफी या नारियलका पानी देते थे, हमें सुख-दुखकी बातें कहते थे, और हम आगे चल देते थे। सें० पियरे में हम एक रात रहे। वहांकी एक मस्जिदमें अपने सब लोगोंसे मिले। बहुत बातें हुई। यहां एक वृद्ध भले दम्पती हमारे मेजबान थे। वे भी भरुचकी तरफके ही मुसलमान थे। अत्यन्त प्रेम-पूर्वक उन्होंने हमारा आतिथ्य किया और हमारे लिए शाकाहारी खुराक तैयार कर दी। शामको मस्जिदकी सभाके पहले श्री काजी तथा श्री पटेल हमको एक मोटरमें, द्वीपके मध्यमें आये हुए सिलाओस (Cilaos) नाम के ऊंचे प्रदेशकी ओर ले गये। यहां जगह-जगह गोरोंके मकान विखरे पड़े हैं। हवा खुशनुमा है। रहनेकी सब सहूलियतें भी हैं। जितना ऊंचे चढ़े थे उतना ही फिर उतर कर पियेर पहुंच गये।

दूसरे दिन हमारी यात्रा फिर चालू हुई। अब दक्षिण समुद्रकी शोभा देखते-देखते हम आगे चले यहां रास्ता कच्चा है और जंगल कुछ घना है। वज्रलेप रास्ते परसे जानेका मजा अलग और कच्चे रास्ते परसे जानेका अलग। परिक्रमाका दक्षिण किनारा पूरा करके हम उत्तरकी ओर मुड़े। वहां दो जगहों पर बायीं तरफसे आ कर फैला हुआ और ठंडा पड़ा हुआ लावारस देखा। पहाड़के ऊंचे शिखर पर एक जीवन्त ज्वालामुखी है। बीचमें बादल नहीं आये होते तो हम उसे धधकते देख सके होते। ऊंचे-ऊचे नुकीले शिखर देखनेका आनन्द कम नहीं था। फिर आया एक झूलता पुल। उसे लाघ कर पूर्ण समुद्र देखते-देखते हम सेन्ट रोज़ (Saint Rose) पहुंचे। वहां एक हिन्दी सज्जनका वेनिला (Venilla) बनानेका कारखाना देखा। वेनिलाकी फलीको किस तरह तोड़ कर सुखाते हैं तथा अच्छी-बुरी अलग-अलग छांटते हैं। ये सारा उन्होंने समझाया। उस कारखाने के सामने हमने एक वामन-मूर्ति नारियलका पेड़ देखा—जमीन पर खड़े-खड़े

नारियल तोड़ सकें इतना बौना। सेन्ट रोजसे आगे जाते सेंट ऐनमें हमने एक सुन्दर कथीड्रल देखा। वहां उतर कर अन्दर जा कर देखनेका दिल था लेकिन आगे जानेके बाद सूझा। यह किस कामका? फिर भी उसके बाद जहां-जहां गये वहां उस चर्च के फोटो प्राप्त करनेकी कोशिश की। न मिले तब पछतावा होता था कि जरा-सा क्यों नहीं ठहर गये! अन्तमें जा कर सें०देनीमें ही उस चर्चका फोटो मिला। उस ऊंची, चौकोन मीनारके आस-पास मानों चार मालाएं लटकती रखी हों ऐसी उसकी शोभा है। सें० बेन्वा (St. Benoit) तथा सेंट आंद्रे (St. Andre) इन दो शहरोंको लांघने पर फिरसे उत्तरका समुद्र दिखने लगा। ऐसे द्वीपमें नदियां, बीच के पहाड़ोंसे निकल कर चारों दिशाओंमें किरणोंकी तरह फैलती हैं और समुद्रसे मिलती हैं। सेन्ट सूजान (St. Suzanne) तथा सेंट मारी (St. Maria) हो कर हम दोपहरसे पहले ही सें. देनी पहुंच गये। पूरे शहरमें फिरसे उसके सुन्दर मकान, सरकारी इमारतें, बगीचे, एक-दो मूर्तियां वगैरह देख कर हम होटल गये। वहीं भोजन किया। दोपहरके बाद, मॉरिसमें मिले हुए भाई अबदुल्ला करीमजीके मैनेजर भाई अकबर अली करीमजी यहां मिलने आये। उनकी सज्जन पत्नी और बेटीको मिले, नाश्ता किया फिर भाई हैदर अली चिनाई हमें रीयूनियनका सृष्टि-सौन्दर्य दिखाने ले गये।

सचमुच यदि यह भाग हमने नहीं देखा होता तो हमने रीयूनियन देखा है ऐसा हम कह ही नहीं सकते। सारे द्वीपकी परिक्रमा करनेके उपरांत जैसे हम पश्चिमकी ओरसे सिआलोसकी दिशामें अन्दर जा कर आये वैसे पूर्वकी तरफसे एलबुर्ग (Helbourg) की दिशामें जानेकी भी जरूरत थी। हम जहां तक गये वहां तक सृष्टि का वैभव बम्बई पूनाके बीचका खंडाला घाट तथा आसाममें देखे हुए चेरापूंजीके प्रदेशका स्मरण कदम-कदम पर कराता था और वहांके प्रपात! एक-आध होता है तो भी हम आश्चर्य मुग्ध होते हैं। यहां तो जितने मोड़ लिए हरेकमें किसी-न-किसी प्रपातका दर्शन होता ही है। यदि मेरे कान दुरुस्त होते तो मैं कहता कि जहां दर्शन नहीं होते वहां भी प्रपात-संगीत तो सुनाई देता ही है।

भाई हैदरअली चिनाईने हमें इतना ही कहा था कि मैं आपको "Veil de marriage—शादीका घूंघट नामका प्रपात दिखाने ले जाऊंगा। यदि यह आपको न बताऊं तो करीमजी सेठसे क्या कहूंगा और मुझे भी खुदको कहां संतोष होगा? हम चले। सें०देनीसे हवाई अड्डे गीयोकी ओर चले। वहांसे दोबारा सेन्ट मारी, सेन्ट सूजान, सेंट आन्द्रे, तथा सेंट बेन्वा तकका रास्ता काटा। हमने बाईं ओर समुद्रके दर्शन किये। फिर एक नदीके किनारे-किनारे हम द्वीपके अन्दर घुसे। किसी पुराने अमलदारके नामसे एक गांव बसाया गया है जिसका नाम हेलबुर्ग है। उसको फ्रेंच भाषामें एलबुर्ग कहते हैं। दो तरफ ऊंचे-ऊंचे पहाड़के बीच बहती हुई नदीके उद्गमकी ओर जाना यह अपनेमें ही एक उत्तम काव्य है। जानकार ही ऐसे

दृश्योंका छाती पर होनेवाले दबावका आनन्द लूट सकते हैं। ऐसा हमारा गुहा प्रवेश ठीक-ठीक चला और पहाड़के ऊपरसे गिरनेवाले छोटे-बड़े प्रपात दिखने लगे। रास्ता कभी तो नदीकी बायीं ओर और कभी तो दायीं ओर चलता था। ठीक-ठीक अन्दर जानेके बाद हमको लगा कि रास्ता अब बन्द हो जायेगा। लेकिन वहां तो पुल परसे नदी लांघ कर हम उल्टी दिशामें जाने लगे। वहां एकके बाजूमें दूसरा, ऐसे सात प्रपात एक साथ वृन्दगायन कर रहे थे। मोटर रुकवा कर हमने अगस्त्य-की तरह उस दृश्यका पान करना आरम्भ किया। सातों प्रपातोंको दो आंखों द्वारा एक साथ पीते गये फिर भी प्यास बुझती नहीं थी लेकिन उसका कैफ चढ़ता ही जाता था। पियक्कड़ जैसे हरेक प्यालीके साथ पिलानेवाले साकीको धन्यवाद देता है ऐसे हम भाई चिनाईको और साथ आनेवाले मित्रोंको धन्यवाद देते रहे। जी भर कर देखनेके बाद पता चला कि अंधेरा शुरू हो गया है। अब आगे तो जा ही नहीं सकते लेकिन वापस जानेका रास्ता भी मोटरकी आंखें जला कर ही देख सकेंगे।

कुदरत देखनेकी तृषा तो छिपी, लेकिन अहं वैश्वानरो भूत्वा प्राणीनाम् देहम् आश्रितः…कहनेवाला भूख-भगवान जागृत हुआ और उसने चतुर्विध खुराक मांगी। साथ कुछ खानेको लाये नही थे इसका सभीने पछतावा किया। इतनेमें इस निर्जन प्रदेशमें एक छोटेसे गांव-सालाजी (Salazic) में रास्तेके किनारे एक हिन्दुस्तानीकी दुकान हमको मिली। दुकानका मालिक हमारे मेजबानोंका परिचित था। हमने उन से मक्खन, रोटी, पनीर, और चॉकलेटकी स्वादिष्ट खुराक ली। हम खाते थक गये लेकिन वह सज्जन प्रेमसे खिलाते थके नही। बोले : "इतना तो साथ ले ही जाइए" पैसे देनेकी बात हमारे मेजबानने की तब वे चिढ़ गये, "हिन्दुस्तानसे ऐसे मेहमान हमारे यहां क्या रोज आनेवाले है ?" ऐसा कह कर उन्होंने बात उड़ा ही दी। सचमुच भारतसे हजारों मील दूर, दरिया पार, अनजाने मुल्कमें इतनी आत्मीयता तथा मेहमाननवाजीका अनुभव करके हमारी—खानेवाले और खिलानेवाले दोनों-की—भारत-भक्ति बढ़ी और इस तरह भगवानने कहां-कहां हमको स्वजन दिये थे इसका स्मरण करते हम वापिस आये। जाते और आते रास्तेमें एक तमिल मंदिर हमने देखा। बाहरसे ही उसकी कारीगरी देख कर संतोष माना।

फिर तो भाई हैदर अलीके नवाबी ठाठ—नवाबी नही अद्यतन ठाठवाले घरमें भोजनके लिए पहुंचे। सारे परिवारकी मीठी मेहमाननवाजी चखी। भोजनोत्तर वार्ता-लापमें भाई दीनदारने पूछा कि स्वतन्त्र भारतमें उर्दूके लिए क्या कोई स्थान है ? मैंने कहा : उर्दू तो आज भारतमें ही पनप रही है। पश्चिम पाकिस्तानमें कश्मीरी, पंजाबी, पुश्तू और सिंधी ये चार लोक-भाषाएं है। पूर्व पाकिस्तानके बंगाली लोग बंगालीके स्थान पर उर्दूको आसानीसे आने नहीं देंगे। इसलिए उर्दू तो पूर्व पंजाब, मुरादाबाद, दिल्ली, लखनऊ, इलाहाबाद, भोपाल, अलीगढ़ तथा दक्षिण हैदराबाद की तरफ ही पनप रही है। कई हिन्दू खानदान घरमें उर्दू बोलते हैं और उर्दूमें ही

पढ़-लिख सकते हैं। हमारी साहित्य अकादमीमें उर्दू कवि और लेखकोंका गौरव होता है। सारे देशमें जहां मुसलमान उर्दू मदरसा खोलते हैं वहा-वहां उनको सरकारी मदद मिलती ही है। भारतके सविधानमें ही सब धर्म, सर्व संस्कृति, सर्व भाषा, और सब लिपियोंको अभयदान दिया गया है। भारतकी संस्कृति मिली-जुली संगम संस्कृति है। उसका स्वीकार संविधान सभाने किया है। गांधीजीकी जो संस्था मैं खुद चलाता हूं उसमें हिन्दी और उर्दू दोनोंको स्थान है।"

ये सब बातें यहांके लोगोंके लिए नई थी। उन्होंने तो मान लिया था कि देश के टुकड़े हुए इसलिए भारतमें मुसलमानोंका कुछ रहा ही नहीं होगा। मैंने विस्तार से सब समझाया उसका सबको सन्तोष हुआ।

सोनेके लिए हम होटल 'देल यूरोप' पहुंचे। लेकिन वहां किसी कीसोनेकी नीयत नहीं मालूम हुई। बहुत दिनोंसे जाहिर किया हुआ एक बड़ा नाच वहां होनेवाला था। क्या तैयारी और क्या भीड़! नाचका इतना नशा चढ़नेके बाद लोग शराब क्यों पीते होंगे? हम तो कुदरतके झरने, नदी तथा प्रपातोंका मथनकारी दृश्य देख कर मस्त हुए थे। इसलिए यहांका नाच देखने हम नही रुके और निद्रा देवीका आतिथ्य ही स्वीकार कर लिया।

हमें क्या मालूम था कि दूसरे दिन हमारे फ्रेंच विमान द्वारा भी एक अद्भुत आकाशी मेहमाननवाजी हमें चखनी है?—जो मेहमाननवाजी अक्षरशः आज तक-की तमाम मेहमाननवाज़ियोंसे बढ़कर थी।

सुबह नहा धो कर समय पर विमान अड्डे पर पहुंचे। वहां विमानको आते इतनी देर हो गयी कि ज्यादातर लोगोंकी फिरसे मुलाकात हुई। मुरतूजा और उसके भाईने मेरे दूरबीनका खूब उपयोग किया।

आखिर हम उड़ चले। हमारे विमानने अरसिकतासे माड़ागास्करका रास्ता नही लिया। उसने पूरे देश पर अंग्रेजी (8) आठकी आकृतिका चक्कर लिया।

पहले मोड़में द्वीपमें चलती खेती, पहाड़के ढलान पर विकसित हुई नए ढंगकी खेती तथा एलबुर्गके आसपासका एक सुन्दर प्रपात हम देख सके। यह प्रपात दो प्रवाहोंमें बंटा हुआ है। यह पूरा दृश्य देखते ग्यानामें देखे हुए केचूर प्रपातका तुरन्त स्मरण हुआ।

चक्कर फिरा और हम सें. देनीका विस्तार देख कर लापोसेसियों (Laposse-ssion) के बन्दरगाहसे चले और वहांसे हम बादलोंके अन्दर घुमे। इतनेमें हमारे मातली (Piolet) ने ध्वनिक्षेपक वाणीसे पुकार कर कहा कि अभी बादलोंके बीच एक अद्भुत दृश्य दिखेगा। और सचमुच—तीन हजार फुटसे भी ज्यादा ऊंचा प्वान्त द नेज (Pointe de Neiges) का शिखर दिखा। बादल उस ऊंचाई पर पहुंच नहीं पाते थे। उसके बाद उससे भी ऊंचे-ऊंचे पहाड़ोंके शिखर देखे। कुल्हाड़ीकी धार जैसे तीक्ष्ण शिखर, ज्वालामुखीके ठंडे पड़े हुए विवर ऐसी कुदरती भव्यता देख कर

हमें पूर्ण तृप्ति हुई। खिलाड़ी बादलोंने हमें यह सब देखने दिया यह उनका उपकार ! बालकोंकी तरह बीच-बीचमें आ कर तथा मौके पर बीचमें आ कर वे हमें चिढ़ा कर हमारा आनन्द बढ़ाते थे। बादलोंके श्वेत ढेर, पहाड़के विकराल शिखरोंसे कम आकर्षक या भव्य नहीं थे लेकिन उनका वर्णन कौन करे ? वह स्थिर रहें तब ना ?

वसंत, सुदर्शनके फोटो खींचते हमें वे कितना परेशान करते हैं ! सुदर्शनको तो आखिरी घड़ी पर कुछ सूझता ही है !!

ऐसे चंचल बादलोंके व्योम-प्रदेशको लांघ कर, समुद्र पर के प्रशान्त विस्तार परसे हमने प्रयाण किया। और अब कुछ ही देरमें माड़ागासकर पहुंचेंगे। समुद्र और आकाशकी शांतिके बीच यह पत्र लिखवा पाया हूं। थोड़ा लिखा है पर बहुत मान कर पढ़ना।

बच्चोंको और आपको

काकाके सप्रेम शुभाशिष

द्वीपराज माड़ागास्कर (माड़ागासे)

माडागास्कर द्वीप दूरसे दिखने लगा। एक तरफके किनारेकी सीधी लकीर देखनेका मजा आया। नदियोंके पानी समुद्रमें दूरतक घुसते हुए नजर आते थे। पहाड़ी प्रदेश, मोड़ लेनेवाली नदियां—सबका एक साथ दर्शन अधिक स्पष्ट होता जाता था। इन सबमें खास ध्यान आकर्षित किया पहाड़ तथा टेकड़ियोंके बीच फैले हुए एक टेढ़े-मेढ़े अनेक उंगलियोंवाले सरोवरने।

पास जाते गये वैसे पूरा तानानारीव शहर प्रत्यक्ष होता चला। गीच बस्ती-वाला यह शहर पहाड़ पर बसा हुआ होनेसे घरोंकी ऊंची-नीची पंक्तियां दिखने लगीं। पू० काकासाहेबको लिस्बनका स्मरण हुआ। उसकी बातें मुझसे कह रहे थे इतनेमें हमारा विमान 'आरिवोनीमाम' (Arivonimama)नामके हवाई अड्डे पर उतरा। वहां हमारे राजदूत, हमारे पूर्व परिचित श्री जयवदन शाह और श्री विद्या बहनने अपनी पुत्री वीणा बहनके साथ हमारा स्नेह भरा स्वागत किया। उनके साथ तानानारीवमें बसनेवाले प्रमुख हिन्दुस्तानी भी आये थे। स्वागतविधि पूरा करके विविधरंगी फूलोंकी सुवास लेते हम मोटरकी ३० मीलकी यात्रा पूरी करके ताना-नारीव पहुंचे। इस ३० मीलकी ऊंची-नीची जमीन और लाल मिट्टीने कर्णाटक बेलगांवका और मैसूर बंगलूरका मधुर स्मरण करा दिया। पू० काकासाहेबने कहा कि यह मिट्टी प्राचीन ज्वालामुखीकी होनी चाहिए। हमने जो पढ़ा है कि प्राचीन

समयमें इस प्रदेशका संबंध दक्षिण भारतके साथ था—बीचमें समुद्र नहीं था, यह सच लगता है।

यहांकी प्रजा अफ्रीकी नहीं, मालगासे है; पोलिनिरायन मानी जाती है।

पूरी तीस मीलकी दौड़ समाप्त हुई और मनमें 'हाश, अब पहुंच गये घर' ऐसा सोचते हैं इतनेमें तो गाड़ी रुकी और हमने देखा कि घर तो बहुत-बहुत ऊंचाई पर है। घर देखनेकी कोशिशमें इतना तो उत्कंठ होना पड़ता था कि पीछे गिर जानेका डर ही लगे! कमर कस कर चढ़ना शुरू किया। सीढ़ियां मुश्किल नहीं थी किन्तु वे पूरी ही नहीं होती थीं!

अंतमें ८३ सीढ़ियां चढ़ कर एक सुंदर, स्वच्छ, सरस सजाये हुए बंगलेमें पहुंचे, और तुरन्त ही घर पहुंचे हैं ऐसा अनुभव हुआ। विद्याबहनके प्रेम भरे आतिथ्यका हमने खूब आनन्द लिया। एक सप्ताह हम वहां रहे। छोटेसे छोटे काम में उनकी प्रेमल देखभाल तथा ममता दिखाई देती थी। सारे कुटुंबकी संस्कारी सज्जनता बहुत अच्छी लगी। मेरी उनकी तो पुरानी पहचान निकली जिससे आनन्द [illegible]!

देशी हिसाबसे तारीख २५ को पूज्य श्री काकासाहेबका जन्म दिन था। वहांसे लिखे हुए एक पत्रमें उस विषयका थोड़ा-सा चिंतन है तथा आज तकके प्रवासका थोड़ा सिंहावलोकन भी है अतः उसीसे आगेका प्रवास वर्णन शुरू करेंगे।

तानानारीव,
माडागास्कर
३०-११-५९

चि० निरुपमा,

आशा थी ही कि तुम्हारा पत्र दिल्ली हो कर यहां आयेगा। तारीख १५ के पत्र कल यहां मिले। कहनेको और लिखनेको इतना सारा इकट्ठा हुआ है—लगा पेटमें समायेगा नहीं; लेकिन लिखनेका समय ही मिलता नहीं है।

तारीख २० को, देशी हिसाबसे, मेरा जन्म दिन था और अंग्रेजी तारीखके अनुसार पहली दिसम्बरको, मैं ७४ पूरे करके ७५ में प्रवेश कर रहा हूं। हर साल अंतर्मुख हो कर बीती हुई जिंदगीका विचार करता हूं तथा बाकी रही हुई जिंदगी के लिए नये सिरेसे संकल्प करता हूं। इस बार इतनी फुरसत यहां मिलनेवाली नहीं है यह जान कर सब इष्ट मित्रोंका स्मरण करके संतोष माना।

अंतर्मुख होनेका समय न मिला उसका दुःख नहीं था। मेरे मनमें अंतर्मुख और बहिर्मुख ऐसा भेद अब रहा ही नहीं है। कुदरतको देखता हूं उसमे परमात्माके दर्शन होते हैं। लोगोंसे मिलता हूं, उनकी बातें सुनता हूं उनकी स्थिति समझ लेता हूं और उनको जरूरी सलाह देता हूं तब भी उस परमात्माकी पवित्र सेवा ही मालूम होती है। खुदको भूल कर ऐसी सुंदर सेवा होती हो और दर्शन मिलते हों

तब अपना अलग या विशेष स्मरण करनेसे क्या लाभ होनेवाला था ?

आज तक की हुई हमारी यात्राका संक्षिप्त बयान दे कर इस द्वीपराजके बारेमें तुम्हें लिखूंगा। बम्बईसे हम पहुंचे नैरोबी। वहां आगेके विमानके लिए चार दिन रुकना पड़ा। तब पासके अभयारण्यमें जा कर अनेक पशु-पक्षियोंकी, तीन शेरोंकी तथा एक नागसे मुलाकात की। शेरोंके पास, बंद मोटरमें धीरे-धीरे चार फुट नजदीक गये तब उस बादशाहने मूंछ ऊपर करके करवट बदली। इससे ज़्यादा हमारा महत्त्व उसके मनमें था नहीं !

नैरोबीसे सुबहसे शाम तक, बल्कि देर रात तक उड़ कर मॉरिशियस पहुंचे। उस शर्कराद्वीपमें सात दिन रहे। वहांके संस्मरण शक्कर जैसे अथवा मधु जैसे मीठे हैं। उस द्वीपके आसपास समुद्र छिछला होनेसे नीले, हरे, फिरोजी इत्यादि तरह-तरह के रंगोंकी जियाफत चालू रहती है। और पहाड़के शिखर कहते हैं, "आकृतियोंमें जितनी मज़ेदार विविधताका निर्माण हो सके उतना करनेका काम हमारा है !"

वहांके प्रश्न हमारी संस्कृतिकी दृष्टिसे महत्त्वके हैं। हिन्दुस्तानी सेनाकी मददसे, १८१८में मॉरिशियस तथा रीयूनियन ये दो टापू अंग्रेजोंने जीत लिये थे। फिर हमारे गिरमिटिये लोगोंकी मददसे वहां ईखकी बुवाई शुरू की। लेकिन यह सारा विस्तारसे अभी नही लिख सकूंगा। रीयूनियन मॉरिशियसका बड़ा भाई; हालमें फ्रेंचके कब्जेमें है। वहां हम तीन दिन रहे। मोटरमें बैठकर, समुद्रकी साक्षीमें पूरे द्वीपकी उलटी परिक्रमा की, फिर अंदर घुस कर, खंडाला तथा चेरापूंजी जैसी ही अद्भुत घाटियां देखी, जलके कई प्रपात देखे सफेद रेशमकी लडी-उतरती हो ऐसे वह प्रपात सैकड़ों फुटकी ऊंचाईसे गिरने पर भी गर्जना नहीं करते थे। उनकी मंजुल ध्वनि सुननेको अब कान मेरे पास नहीं हैं। थोड़ा-सा सुनाई दिया। उसको 'बहुत मान कर' स्वीकार लिया। चि० सरोज भी उनकी ओरसे अथवा उनके बारेमें बहुत-बहुत कहती रहती थी। वह आनन्द विशेषमें।

फ्रेंच कौम रसिक तो है ही। रीयूनियनसे विमानमें हमें माडागास्कर लाते विमानने दो चक्कर उस टापू पर काटे। एक चक्करमें वहांकी मैदानी और पहाड़ी खेती हम देख सके। और एक अतिशय सुंदर प्रपात दो प्रवाहोंमें बंटा हुआ आकाशसे देखा। ब्रिटिश गियानामें देखे हुए केचूरके प्रपातका स्मरण हुआ।

दूसरे चक्करमें ऊंचे-ऊंचे पहाड़ोंके शिखरोंसे हमने नीचेका दृश्य देखा। कुल्हाड़ी की धार जैसे तीक्ष्ण शिखर, ज्वालामुखीके ठंडे पड़े हुए द्रोण—और ऐसी ही कुदरतकी भव्यताका उत्कंठ पान किया। और खिलाड़ी बादलोंने हमें यह सब देखने दिया। और छोटे बच्चोंकी तरह बीचमें घुस कर, बीचमें आ कर हमारे आनंदको बढ़ाया। बादलोंके श्वेत ढेर शिखरोंसे कम सुन्दर या भव्य नहीं थे। चचल बादल तथा समुद्रके प्रशांत विस्तारके बीच हो कर हम माडागास्कर पहुंचे हैं। प्रकृतिके दर्शनका आनंद कम नहीं होता था लेकिन समयका अभाव बाधा

डालता है। माडागास्कर द्वीप हजारों मील लम्बा है। उसका वर्णन उतना ही लम्बा होगा। इसलिए यही रोकता हूं।

तुम्हारा स्वास्थ्य कैसा है? यहां ग्रीष्म भले हो, वहां शीतकाल है। तुम्हारी भूख खुली होगी। अब तुम चि० विजयकी अपनी चिंता नहीं करवाती होगी। इस उमरमें पेट भर खाना और ऐसा करनेमें मां पर उपकार करते हैं ऐसा चेहरा करके रहना — यह आनन्द अनोखा होता है!

इस प्रदेशमें फ्रेन्च भाषाका ही प्रभुत्व है। शिक्षा, फ्रेंचमें चलती है, व्यवहार फ्रेंचमे और यहांकी मिश्र प्रजा जो क्रियोल भाषा बोलती है, वह भी फ्रेंचका ही अपभ्रंश है। यहांके गुजराती भी धीरे-धीरे गुजराती भूल कर घरम फ्रेंच दाखिल करने लगे हैं।

चि० कल्पक कूदंकूदा (उछल-कूद) करता होगा और इस उमरमें स्वादानंद लूटना उसका नमूना तुम्हारे सामने पेश करता होगा।

काकाके सप्रेम शुभाशिष
१-१२-१९५९

चि० बाल,

अंग्रेजी तारीखके अनुसार आज मेरा जन्मदिन है। किसने सोचा था कि ७४ पूरे करके ७५ वर्ष में प्रवेश मैं सुदूर माडागास्कर द्वीपकी राजधानी तानानारीवमें करूंगा?

अंतर्मुख होनेके लिए समय ही नहीं मिला। आज सारे दिनके अंतमें, दर्शनानंदसे आंखोंको तृप्त करनेके बाद ही लेटे-लेटे यह पत्र लिखवा रहा हूं।

यूं तो नैरोबीसे मॉरिस जाते रास्तेमें इस विशाल द्वीपका विहंगम दर्शन किया था, इतना ही नहीं, किंतु यहांके विमान अड्डे पर पैर भी रखे थे। लेकिन यह तो विमानकी सहूलियतके लिए।

आज तुमको राजधानी तानानारीवकी कुछ कल्पना दूंगा। यह शहर अनेक पहाड़ियों पर अव्यवस्थित चिपका हुआ है। पहाड़ीके सिरसे तलहटी तक चिपके हुए हैं अतः यहांके मकान नदीके घाट पर एकत्र खड़े हुए यात्रियोंके जैसे दिखाई देते हैं। इन मकानोंके दृश्योंका ख्याल हिमालयके मसूरी, दार्जिलिंग या शिमला परसे भी नहीं आयेगा।

सबसे महत्त्वकी बात तो पहाड़ीकी दो तरफकी बस्तियोंको जोड़नेवाले दो विवरों (tunnels) की है। ये दो विवर नहीं होते तो शहरका व्यवहार बहुत ही दीर्घसूत्री बना होता।

मकानोंका स्थापत्य कहीं-कहीं पुराने मालगासे ढंगका है और कहीं-कही आधुनिक फ्रेन्च ढंगका। चढ़ने उतरनेमें तो लोगोंको मानो कुछ भी थकान मालूम नहीं होती। किसीको मिलने चले, दुकानको या दफ्तरको चले, तो एक दिनकी

पूरी कसरत मिल ही जाती है। मैंने जरा देखा कि यहांके लोगोंकी पैरोंकी पिंडलियां क्या नेपाली गोरखोंके जैसी पुष्ट भरी-भरी दीखती हैं? अमीर हो या गवर्नर हो, किसीको भी इस व्यायामसे मुक्ति नहीं मिलती। नाजुक महिलाओंको भी, यदि उनको समाज प्रिय हों तो यह चढ़ उतर करनी ही पड़ेगी।

मेरे मनमें आया कि मैं इन लोगोंको सूचित करूं कि जिस तरह आपने आर-पार दो विवर बनाये हैं उसी तरह विवरमेंसे पहाड़ीके ऊपर तक जानेके लिए जगह-जगह खड़े विवर बना कर लोगोंको पालनेमें (लिफ्टमें) ऊपर जानेकी व्यवस्था कर दीजिए। जापानमें एक प्रसिद्ध प्रपातके पास ऐसी व्यवस्था है; इसलिए मेरी कल्पना अव्यवहार्य नहीं है। कोयलेकी अथवा सोनेकी खदानोंमें यदि सारा व्यवहार विवर और लिफ्ट द्वारा हो सकता है, तो ऐसे गिरिनगरमें क्यों न हो?

हम ता० २६ की दोपहरको यहां पहुंचे। पहले दिन हमारे मेजबान जयवदन भाईने हमारा ख्याल रख कर चढ़ उतरवाला कोई कार्यक्रम नहीं रखा था। अपने घरमें ही बहुतसे हिन्दू मुस्लिम भाइयोंको भोजनके लिए बुलाया था। अधिकतर तो सौराष्ट्रके आसपासके ही थे। उन मेहमानोंमें एक नये आये हुए सज्जन कुछ विचित्र थे। उन्होंने अपने विचित्र अभिप्राय ठोंकने शुरू कर दिये। उस दिनके एक मेहमानके वे मेहमान थे। अतः उनकी बातका विरोध करना भी ठीक नहीं होता! मुझे खुदको तो अनेक तरहके अभिप्राय सुननेकी आदत है; इसलिए मजा आया, किन्तु और लोग अस्वस्थ हो गये; और उन्होंने पूरे विनयके साथ उन सज्जनका प्रतिवाद किया। वायुमण्डल जाग्रत-सा हो गया। इस पहली ही मुलाकातमें यहांके बहुतसे लोगोंसे परिचय हुआ और इतने दूरके प्रदेशमें हमारे लोग होशियारी से तथा कुशलताके साथ अपना स्थान किस तरह जमा कर बैठे हैं उसका ख्याल आया। सचमुच हमारी प्रजाके लिए मनमें आदर उत्पन्न हुए बिना नहीं रहता।

चि० सतीशको एक पत्र लिख कर देरसे सो गया।

दूसरे दिन सुबह नाश्तेके समय विद्या बहनके साथ बहुत-सी बातें हुईं। फिर उनकी बेटी वीणा बहन हमको शहर दिखाने ले गयीं। फ्रेंच भाषा पर वीणा बहन का काबू अद्भुत है। दो घंटे सर्वत्र घूम कर मुख्य-मुख्य मकान तथा आसपासका दूर तकका दृश्य देखा। वीणा बहन हमें सब समझाती थीं और हमने उसी तरहके दृश्य कहां-कहां देखे हैं उसका स्मरण करते जाते थे। हमारे यहां जैसे विमानका अंकन समय पर करवाना पड़ता है वैसा यहां भी है। इसलिए २२,६२० फ्रेंक खर्च करके हमने माडागास्करके उत्तरकी ओरके बन्दरगाह माजुंगा जाने-आनेके दो टिकट खरीदे। फ्रेंच तथा जापानी लोगोंको अपना राष्ट्रीय चलन छोटा-सा रख कर मुंह भर कर बड़ी संख्यामें बोलनेकी आदत है। २२,६२० फ्रेंकके रुपये ६३६,०८ हुए।

जरा-सी फुरसत मिलते ही हम या तो पत्र लिखते हैं अथवा नक्शे ले कर देश का दर्शन पक्का करते हैं। शामको सेवासदनका एक सुन्दर कार्यक्रम था। जबसे शाह कुटुम्ब इस देशमें आया है तबसे उसने भारतके लोगोंको सामाजिक कार्यक्रमों द्वारा जागृत, प्रसन्न तथा संगठित करनेका काम सुंदर ढंगसे चलाया है। ऐसे प्रयत्न के पीछे कितनी मेहनत रहती है यह तो अनुभवी ही जाने। गरबा इत्यादि कार्यक्रम में करीब आधी संख्या मुस्लिम बहनोंकी थी।

आज मेरा जन्म दिन है। यह दिन हमने सारा चढ़ उतर करनेमें ही बिताया। यात्रा मात्र आंखोंसे करनेकी थोड़े ही होती है? चरण और पेट दोनोंका पूरा सहयोग न हो तो उसे यात्रा मानी ही नहीं जायेगी।

यहां आये तब हमारा मुख्य काम स्थान-देवताके दर्शन करनेका था। माड़ागासकरके वाइसराय जैसे हाई कमिश्नर साज़े (Mon. Saget) को सर्वप्रथम मिले। फिर प्रेसीडेण्ट झीरान (Tsiranana) को मिले। लेकिन मुझे दिलचस्पी हुई जब यहांके नगर सेठ (मेयर) हमें टाउन हॉल दिखाने ले गये। वहांके भीति-चित्र ऐतिहासिक महत्त्वके तो थे ही। लेकिन कलाकी दृष्टिसे भी सुदर थे।

दोपहरको श्री अकबर अलीके यहा भोजन था। श्री अकबर अली यहांके वहुत प्रतिष्ठित, संस्कारी और प्रेमल सज्जन हैं। उनकी फ्रेंच पत्नी इतनी ही संस्कारी और प्रेमल हैं। घर इतना तो सुन्दर, सहूलियत भरा और खास कर ऊंचा था कि उसे देखनेका और वहांसे आसपासका दृश्य देखनेमें भी बड़ा आनन्द था। पैसे किस तरह प्राप्त करना यह बहुत लोग जानते हैं लेकिन पैसा खर्च करके उससे सुख, सहूलियत तथा संस्कारिता कैसे पैदा करनी है और गृहस्थाश्रमकी सुवास किस तरह फैलानी यह तो बहुत कम जानते है। उत्तम भोजनके साथ उनके हार्दिक अभिनन्दन भी प्राप्त करके मैने वही थोड़ा आराम किया। आरामकी आवश्यकता मालूम होने के कारण उसकी भी उन्होने सुन्दर व्यवस्था की थी।

वहांसे हम एक ऊंचे शिखर पर रानीका महल देखने गए। आज वह संग्रहालय बना हुआ है। संग्रहालयका एक भाग समुद्र तथा जंगलकी समृद्धिका प्रतिनिधि है। दूसरा भाग यहांके मालगासे लोगोंकी संस्कृति, उनका इतिहास और पश्चिमके साथ उनका सम्बन्ध, तीनोंका तादृश चित्रण उपस्थित करता था। इतिहाससे मालूम होता है कि यहांके राजाओंसे रानियां अधिक होशियार थीं और उनकी राष्ट्रीयता भी ज्यादा मजबूत थी।

एक बात जान कर विचारके लिए अच्छा मसाला मिल गया। रानियां अपने पतिको ही अपना मुख्य प्रधान बनाती थीं। अथवा मुख्य प्रधानको ही पतिके रूप में स्वीकारती थीं जिससे राजनीतिमें हित सम्बन्धका द्वैत आता ही नही था। हमने यह भी सुना कि एक मुख्य प्रधान इतना तो होशियार था कि एकके बाद एक तीन रानियोंका वह पति बना और ३६ बरस तक मुख्य प्रधान बना रहा।

थकके चूर हो कर घर आये किन्तु वहां हमारे राजदूतकी ओरसे एक बड़ा स्वागत समारम्भ था। भारतकी प्रतिष्ठाके कारण ऐसे समारम्भमें बड़े-बड़े सभी लोग आते हैं। मालगासे समाजके नेता तथा अमलदार, फ्रेंच गवर्नर, प्रेसीडेण्ट, मंत्रीगण तथा भारतके सभी अच्छे लोग आते-जाते थे और भारतके स्वादिष्ट व्यंजनोंकी प्रशंसा करते जाते थे। अपनी-अपनी दिलचस्पीकी बातें करते और चढ़े उतनी सीढ़ियां उतर कर विदा होते।

इसलिए मैं भी मानता हूं कि इस देशके दर्शनका यह पहला वर्णन पूरा करके मैं भी विदा ले कर नींदके साम्राज्यमें प्रवेश कर लूं।

काकाके सप्रेम शुभाशिष

तानानारीव

३-१२-५६

चि० नंदिनी तथा स्वाति,

जब हम किसी दम्पतिको पत्र लिखते हैं तब आजका रिवाज है कि स्त्रीका नाम प्रथम आये। पश्चिमका तो यह रिवाज है ही लेकिन हमारे यहां भी सीताके बाद राम आते हैं। राधाके बाद कृष्ण, पार्वतीके बाद परमेश्वर लेकिन दो बहनोंको लिखते समय छोटीका नाम पहले आना चाहिए या बड़ीका यह अब तक तय नहीं हुआ है। छोटी बहनको पढ़ना न आता हो तो हम बड़ीको लिख सकते हैं कि यह पत्र स्वयं पढ़ कर अपनी छोटी बहनको भी सुना देना। लेकिन स्वाति पढ़ती भी है और लिखती भी है। अत: निर्णय नहीं हो सका। जो लिखा गया है सो बराबर है या नही उसका यकीन नही है उस विषयमें चि० स्वाति जो निर्णय देगी उसे स्वीकार कर लेंगे।

यह अपनी उलझन लिख कर तुमको भेज रहा था इतनेमें एक किस्सा याद आया। जो कि मज़ेदार है इसीलिए लिखता हूं।

आंसवालमें दो भाइयोंके बीच पैतृक सम्पत्तिके बारेमें झगड़ा चला। अनेक न्यायालयोंने अपने-अपने निर्णय दिये उसके बाद अंतमें अध्यक्ष क्रूगरके पास सारा मामला पहुंचा। उन्होंने सब कागजोंके ढेरको बिना पढ़े एक तरफ कर दिया और दोनोंको बुला कर एक मिनटमें फैसला कर दिया: 'सारी मिल्कियतके दो भाग करने का अधिकार बड़े भाईका है। अपनी बुद्धिके अनुसार वह दो भाग कर दे। उसके बाद उन दोमेंसे अपनेको पसंद आये वह एक भाग पहले उठा लेनेका हक छोटे भाई का! वहींका वहीं निर्णय हो गया। दोनों भाई राजी हो कर घर चले गये।

तुम्हें मैंने लिखा ही है कि इस बार हिन्द महासागरके तीनों द्वीपोंकी यात्रा कर रहे हैं। तीनोंमें हिन्दी व्यापारी कमोबेश संख्यामें रहते ही हैं। रीयूनियन तथा माड़ागासकरमें तो ज्यादातर गुजरातके ही हिन्दू-मुसलमान हैं। यहांके लोगोंके कान तक वह पंक्ति पहुंची नहीं है कि 'जहां-जहां बसे एक गुजराती, वहां-वहां

सदा काल गुजरात।' हमारे लोग होशियार व्यापारी तो हैं ही लेकिन उनमें अस्मिता ही जागी नहीं थी।

माडागासकरके बारेमें थोड़ी जानकारी चि० बालको लिख भेजी है वह पत्र तुम्हें यथासमय मिलेगा। आज जिन स्थानोंका वर्णन लिखता हूं वहा हम यहांसे कल और आज जा कर आये।

कल हमने मोटरमें बैठ कर ८० किलोमीटर दूर आ कर मोंताशु सरोवर देखा। विमानमेंसे इसके दर्शनने ध्यान आकर्षित किया था इतना ही नहीं बल्कि हमने उसे उंगलियोंवाला सरोवर नाम भी दिया था।

रास्तेमें १३ किलोमीटर पर एक छोटेसे प्रपातने हमारा स्वागत किया और कहा, "यहां रुकिये मत आपको देर हो जाएगी।"

मोंताशु सरोवरके आस-पास अमुक जगह पर अच्छी झाड़ी है। उन झाड़ियोंमें रास्ता भूलनेका दुख किसीको नहीं हो सकता, जितना ज्यादा उसमें घूमना पड़े उतनी ज्यादा उसकी शोभा देखनेको मिलती है। आस-पास पहाड़ियां भी बहुत हैं इसलिए कुदरतकी शोभा ऊपरसे भी देख सकते हैं और नीचेसे भी। सरोवरके किनारे बांधे हुए थोड़े मकान भी अनेक बाजुओंसे दिखते थे। उन मकानोंके प्रतिबिम्ब हमको कह रहे थे, "डरो मत। यहां कोई भूकम्प नही आया है। पानीका स्वभाव है कि प्रतिबिम्ब द्वारा पहाड़ीको तथा मकानोंको हिलाते रहना।"

पानीने कहा, "हमारा स्वभाव काहेका, यह हमारी लाचारी है। हवा हमें शान्त बैठने दे तो हम किसीको हिलाने नही जायेंगे।"

पानीकी तुलनामें उसके किनारेका विस्तार दस गुना था। ऐसे उस सरोवरकी सुन्दरताका बयान किन शब्दोंमें किया जाए? यहां तालाबकी फैली हुई उंगलियां और बीचमें घुसनेवाली जमीन-की उंगलियोंसे एक-दूसरेमें ओत-प्रोत होनेसे पानी तथा जमीन दोनोंकी खूबियां देखनेको मिलती थी। मोटरको खूब थकानेके बाद हम जमीनकी एक उंगलीके सिरे पर पहुंचे वहां किसीका छोटा-सा एक मकान निर्जनताकी उदासीका अनुभव करता था। हमने उसे सनाथ किया। अंदर जा कर बैठे लेकिन सरोवरने कहा, "अन्दर बैठ कर चोरोंकी तरह क्यों खाते हैं? हम बाहर आये और सरोवर तथा धूपकी लीला देखते-देखते खुलेमें नाश्ता किया। अच्छा था कि इस सरोवरका समग्र दर्शन विमानसे हमने किया था क्योंकि मोटरमें घूमते सारे सरोवरका एक साथ ख्याल आना मुश्किल था। शौकीन लोगोंने इस सरोवरके किनारे पिकनिकके लिए कई सुन्दर मकान बनाये हैं।

जयवदन भाईने कहा, "इस मोंताशुके आसपास जमीन बिल्कुल सस्ती है मांगे उतनी मिलेगी लेकिन मकान बेहद मंहगे। एक-एक चीज—लकड़ी, पत्थर, कीलें इत्यादि दूरसे लानी पड़ती हैं।

मैंने कहा, "इसका मुझे दुःख नहीं होता। लेकिन इतने खर्चेसे ऐसी काव्यमय

जगह पर मकान बांधने पर भी फुरसतमें दरिद्री लोग यहां रहने आ नहीं सकते हैं यही बड़ा दुःख है। कमाईके लिए दिनों, महीने तथा वर्ष बितानेके बाद यहां आकर जरासी ताजगी मिले इतनेमें वापिस भाग जाते हैं। यह कैसी विडम्बना !

हम भी यहां ज्यादा न रुक सके क्योंकि एक सज्जनके यहां चायका आमन्त्रण था।

जहां लोग मिलते हैं वहां एक बात तो अचूक निकलेगी ही। "हम भारतके नागरिक बने रहें उसमें भारत सरकारको हर्ज क्या है?" और हर वक्त हम समझाते हैं कि "आपके ही हितके लिए यहां पर आपकी जड़ें ढीली न हों इसी लिए, भारत सरकारको ऐसी कठोर कृपा धारण करनी पड़ती है।" यहां एक-दो सज्जन इस बातको समझे फिर भी यह बात ठीकसे समझायी नहीं जाती उसका असंतोष उन्होंने व्यक्त किया है।

शामको पीपल्स हॉल (People's Hall) में मेरा सार्वजनिक भाषण रखा था। उसमें भारतीय लोगोंके अतिरिक्त मालगासे लोग भी थे। बड़ी सहूलियत यह थी कि मैं गुजरातीमें जो बोलूं उसका वाक्य-वाक्यका अनुवाद वीणा बहन शानदार फ्रेंच में करती जाती थीं। मेरी गुजरातीका असर हमारे लोगों पर क्या होता है यह देखनेके बाद मैं मालगासे भाइयोंका चेहरा देखना, फ्रेंच वाक्य सुनते ही उनके चेहरे खिल उठते। मुझे इसीका संतोष था। लेकिन भाषणके अन्तमें एक मालगासे सज्जनने आ कर, हाथ मिला कर अपना संतोष व्यक्त किया। तब मैंने धन्यताका अनुभव किया। इस भाषणके बाद कितने ही मालगासे लोग घर पर मिलने आने लगे। अपने भाषणमें मैंने कहा कि इस देशमें आ कर यहांके लोगोंकी हमने जो सेवा की है वह सार्थक तभी होगी जब हम उनकी भाषा सीख कर, गांव-गांवमें उस भाषामें व्याख्यान देंगे, उत्सव मनायेंगे तथा मालगासे भाषामें सांस्कृतिक सामयिक चला कर भारतीय जीवनकी कुछ सुवास उनको देंगे और हमारे लोगोंको इस देशके बारेमें समय-समय पर गुजराती मासिकोंमें लेख तो लिखने ही चाहियें।

रातको हमने हीरजी दम्पतिके साथ ला तावर्न (La Taverne) नामके होटल में भोजन किया। इस प्रेमल दम्पतिने पहली ता० को मेरे जन्मदिनके निमित्त फ्रेंच लेवेण्डरकी एक बड़ी बोतल भेंटस्वरूप भेजी थी !

मोंताशुके बाद आन्त्सिराबे। कल हम दक्षिण-पूर्व दिशामें एक सरोवर देख आये। आज बरसती बरसातमें, आन्त्सिराबे नामकी एक सुन्दर आरोग्य नगरी देखने गये थे। १२० मीलके टेढ़े-मेढ़े रास्तेसे पश्चिम तरफका पहाड़ी प्रदेश भी ठीक-ठीक दिखाई दिया। पूरे रास्ते आंखोंके लिए जियाफत थी। मिमोसा वृक्षोंके जंगल और बीच-बीचमें यूकेलिप्टसकी झाड़ियां। आन्त्सिराबे टेढ़ा-मेढ़ा खूब फैला हुआ, स्वच्छ, सुघड़ तथा सम्पन्न शहर है। शहर देखनेको निकलनेसे पहले यहांके सबसे पुराने मुस्लिम खानदानके घर नाश्ता करने रुके। मनजीभाईके यहां हम

सबका स्नेह भरा स्वागत हुआ। भारतसे आये हुए हम यात्रियोंको देख कर घरके बालक भी खुश हुए। बालकोंके स्वभावमें शर्मीलापन तथा कुतूहल वृत्तिका गज-ग्राह चलता है। एक क्षणमें एक वृत्तिकी विजय होती है दूसरे क्षण दूसरीकी। बुलायें तो बालक दूर जाते हैं और फिर अपने आप नजदीक आ कर हमको निहारते हैं। मैं छोटे सलीमके साथ बातें करूं इतनेमें यास्मीन तथा रोज़ी चि० सरोजको खींच कर अन्दर घरमें ले गई।

यहां थोड़ा नाश्ता करके हम शहर देखने निकले। फ्रेंच संस्कृतिकी खासियत का ख्याल देनेवाला यहांका विशाल स्नानागार है। तरह-तरहके रोगी यहां नैसर्गिक उपचारके लिए आते हैं। रहनेकी, खाने पीनेकी तथा उपचारकी सहूलियतें देख यहा रहनेको दिल ललचाये बिना नही रहता। और यह सारा यहांके आरोग्य दायी खनिज-जल (Minera water) के कारण है। इस पानीके स्नान-पानसे कुछ रोग मिटते हैं। आरोग्य-धाम देख लेनेके बाद हम एक छोटा-सा फव्वारा देखने गये। रुग्ण-कल्याणकारी इस फव्वारेकी प्रतिष्ठा सभालनेके लिए उसके पास एक सुन्दर मंडप बनाया हुआ है, जिसके पत्थर पर भी इस पानीका असर दिखाई देता है। इस जलका पान करके हम सामनेवाले स्विमिंग पूल देखने गये। (उमाशंकर भाईसे पूछना कि संस्कृत साहित्यमे आनंदके लिए तैरनेके वर्णन कहीं हैं? राजकन्याएं जब जल विहार करती थी तब शायद कमर तकके पानीमें खड़ी हो कर जल उछालती होंगी। नौकाविहारमें पानीको छूनेका होना ही नही है। होशियार यात्री पानीमें कूद कर उस पार जाते होंगे। मुमुक्षु लोग भवनदीको पार करते होंगे। किन्तु केवल आनंदके निमित्त जलराशिमें या प्रवाहमें तैरनेवाले अथवा जलप्लावन करनेवाले कोई थे सही? होते तो हमें कितने सारे वर्णन मिले होते!)

खैर। यहांके तरण-ताल देख कर मन ललचाया कि यहां थोड़ा जलविहार कर सकें तो कितना अच्छा! लेकिन 'मनकी मन ही मांही रही'।

फिर हम गये एक कुदरती सरोवर देखने। यह आन्द्राइकीबे (Andraikibe) सरोवर शहरसे कुछ दूर है। उसके आसपास सहूलियतें बहुत हैं। विशेष यह है कि ये सहूलिते सरोवरकी शोभाको बिगाडती नही हैं। यहां कई लोग चड्डी और कानटोपी पहनकर पानीमें तैर रहे थे। कई सरोवरमें नौकाविहार कर रहे थे। चि० सरोज का स्वभाव मैं जानता हूं और नौकायनकी उसकी कुशलताका भी मैंने अनुभव किया है। उसके चेहरेको देख मैं समझ गया कि उसका मन कितना ललचाया है और फिर भी वह उसे दबाती है। जो सज्जन हमें यहां ले आये थे उनके साथ मैंने बात की। उन्होंने नौकामें बैठे हुए एक फ्रेंच सज्जनको उनकी भाषामें पूछा। फ्रेंच लोग दाक्षिण्यमें पूरे। उन्होंने तुरन्त 'हां' कहा और हम दोनों नौकामें जा कर बैठे। कॉलेजमें सीखी हुई फ्रेंच भाषा चि० सरोजके काम आयी। वह सज्जन उत्साह-

पूर्वक बातें करने लगे। उनकी नौकाका एन्जिन चालू हुआ और हमने सरोवरमें सोत्साह दौड़ लगायी।

यहां भी हमारे अमरीकी अनुभवकी पुनरावृत्ति हुई। मानों पथरीले रास्ते पर बिना स्प्रिंगकी गाड़ी दौड़ती हो वैसे हमारी नौका खड-खड आवाज करने लगी। शरीरके जोड़ और हड्डियां भी कहने लगे कि यह नौकाविहार है या बैलगाड़ीके धक्के? कॉर्नेलमें एक बार ऐसा अनुभव हुआ था। इसलिए उसका आश्चर्य नहीं हुआ। सरोवरके पानी, छिछली नौका, छोटेसे एन्जिनका वेग सहन न कर सके, इसलिए आवाज भी होती थी और धक्के भी लगते थे। उस समय यह खास पसंद नही आता। लेकिन बादमें उसका स्मरण करनेमें मजा आता है। एक बड़ा चक्कर काट कर हम वापस आये। पानीके ये विविध दर्शन ले कर मनको समाधान हुआ कि प्रातःकाल सार्थक हुआ।

उसके बाद हम श्री सानीके यहां भोजनके लिए गये। उनको भी स्वदेशसे आये हुए और गुजराती बोलनेवाले लोग कहांसे मिलते? खुश-खुश होकर उन्होंने आवभगत की। हमने बहुत प्रश्न पूछे। अंगूठीमें बैठानेके कई सुन्दर-सुन्दर रंगीन और कीमती पत्थर हमने उनके पास देखे।

सब निपटा कर फिर हम आये मनजीभाईके घर। वहां शहरके अन्य भारतीय लोग इकट्ठा हुए थे। स्वागत और बिदा एक ही बैठकमें सम्पन्न हुए। उस समय गरम-गरम जलेबी खायी थी उसका स्मरण अभी भी ताजा है। बच्चोंके साथ और बड़ोंके साथ बात करके हम वापिस आये। अब वह रास्ता अपरिचित रहा नहीं था लेकिन उससे उसका आनंद कम नही था। और बारिश अपनी मेहमान-नवाजी कैसे छोड़ती?

जयवदनभाई हमको टूरिस्ट ब्यूरोमें ले गये लेकिन वहां कोई अंग्रेजी पुस्तक नहीं मिली। आखिर पूरी तरह थके हुए फिर भी अत्यन्त खुश हो कर हम घर पहुंचे और स्वर्गारोहण करके नीदके अधिकारी बने। तुमको इन आखिरी वाक्यों में भी हमारी नीद दिख पड़ेगी। अतः मुनिशम्।

तुम दोनोंको काकाके सप्रेम शुभाशिष

तानानारीव

६-१२-५९

चि० हसमुख,

तुम्हारे साथ विशेष पत्र-व्यवहार हुआ नही है। मिलते हैं तब भी ज्यादा बातें नहीं होती। तुम हो ही कम बोलनेवाले। आज मैंने सोचा कि तुम्हें पत्र लिखूं। तुम्हारे कम बोलनेका स्वभाव छुड़ानेकी दृष्टिसे ही नहीं लेकिन इस बार तुमने पूर्व अफ्रीकाके अपने संबंधियोंके पते दिये इतना ही नहीं किन्तु उनको पत्र भी लिखे। इस तरह हमारी यात्रामें तुम साथ ही हैं। इसलिए आजका पत्र तुम्हें

लिख रहा हूं। इससे पहलेके सब पत्र तुम्हारे द्वारा ही सबको मिले हैं।

हमारे पास जितने दिन हैं उतनेमें यह देश जितना भी देख सकूं उतना देख लेनेका सोचता था। लेकिन एक हजार मील लंबा और ढाई सौ-तीनसौ मील चौड़ा यह द्वीप देख-देख कर कितना देख सकेंगे ? लेकिन माजुंगा अथवा माजोंगा हम छोड़ नहीं सकते थे। जैसे अंग्रेज सर्वप्रथम हमारे देशमें सूरतमें आये थे और वहां अपनी कोठी डाल कर धीरे-धीरे चारों ओर फैले, उसी तरह मालगासे लोगोंके इस देशमें हमारे लोग प्रथम पहुंचे माजुंगामें। और वह भी कितने प्राचीनकालमें ! अंग्रेज या फ्रेंच लोग यहां घुसे नहीं थे तबसे हमारे लोग यहां आते हैं। यह शहर उस जमानेमें हमारे लोगोंका ही माना जाता था। भारतके जहाजोंके लिए यहांका बंदरगाह खास सहूलियत वाला था। इसलिए लोगोंने उसे पसंद किया। पुर्तगाली लोग भी यहां आते थे। इस तरह इस स्थानका महत्त्व बड़ा है।

एक नदी इकोपा राजधानी तानानारीवके पास जन्म ले कर उत्तरकी तरफ बहती है और दूसरी बड़ी नदी बेटसीबोकाको मिलती है। और इस तरह पुष्ट हुई नदी अनेक मुखोंसे समुद्रके एक अखातको मिलती है। उस अखातके गलेके पास ही माजुंगा शहर बसा हुआ है।

परसों हम तानानारीवके इवात (Ivato) हवाई अड्डेसे निकले। यह अड्डा शहरसे मात्र अठारह किलोमीटर ही दूर है। रास्तेमें पहाडोंके बीचसे रास्ता निकालनेवाली नदियां देखनेका आनंद था। माजुंगामें श्री अबदुल्ला करीमजीकी ओरसे उनके कारभारी, एक होशियार मालगासे श्री रॉबर्ट राबेहासी हमें लेने आये थे।

यहां हमको सब जगह घुमा कर जानकारी देनेका काम रायचंद भाई शाहने किया, बहुत मिलनसार और उत्साही सज्जन हैं। उनके साथ दरजी केशव-जी भाई आये थे। उन सेवाभावी वृद्ध सज्जनके लिए यहां सबको आदर है। उनको सब 'बाप्पा' कहते हैं। श्री अबदुल्ला करीमजीके बंगलेमें—जिसे यहां शाम्बा कहते हैं—हमारा मुकाम रखा था। वहांसे रायचंद भाई हमें शहर ले गये। यहां चारों तरफ घूर कर सब देखा, शहरकी शोभा निहारी और पुराने समयमें हमारे लोग सर्वप्रथम यहां कब आये थे यह ढूंढने हम यहांके कब्रिस्तानमें गये। पुराने हिन्दियोंके नामकी तख्तियां ढूंढते १८७० को सालकी मिली। उस समयसे १९१४ तक हमारे लोगोंका व्यापार यहां बहुत अच्छा चला। उस समय कोई रोक-टोक तो थी ही नहीं। फिर फ्रेंचोंका राज्य हुआ और हमारी प्रवृत्ति लगभग सूख गयी।

दोपहरको रायचंद भाईके यहां भोजन कर मैंने थोड़ा आराम किया। उतनी देरमें चि० सरोजने घरकी महिलाओंके साथ बहुत-बहुत बातें कर लीं। इतने दूर बसे हुए हमारे लोगोंको भारतका और उसमें भी गुजरातका कोई मिल जाय तो वे उसे बहुत ही प्रेमपूर्वक उनका स्वागत करते हैं और अपनाते हैं।

फिर हम दुबारा शहर देखने निकले। मकान तथा दुकानें बहुत अच्छी थीं। उस परसे यहांके वैभवका यथार्थ ख्याल आया। मुझे कुछ पुस्तकें चाहिए थीं अतः भाई रॉबर्ट राबेहासी हमें अनेक जगह ले गये। एक दुकान पर उनकी बेटी डॉरथी मिली। माडागास्करकी कई फ्रेंच किताबें भाई रॉबर्टने हमें भेंट कीं। एक नक्शा भी मिला मेरे लिए तो वह जियाफत थी !

साढ़े चार बजे एक आगाखानी स्थान पर हमें ले गये। यहां सब हिन्दी एकत्र हुए थे। यहां मैंने स्वतंत्र भारतका संदेशा सुनाया। दुनियामें हमको जो नैतिक स्थान मिला है उसका भविष्यके लिए जो महत्त्व है सो समझाया और रीयूनियनका अनुभव याद रख कर उनको विनती की कि अपनी गुजराती भाषा आप भूलना मत। आपको उस भाषा और उसके साहित्यको बढ़ा कर भारतके साथके संबंधको टिकाना और बढ़ाना है।

सभाके अन्तमें समाचार मिले कि पुराने कब्रिस्तानमें १८०५ की तारीख मिली है। उसमें भी कई हिन्दी नाम हैं। हम उत्साह पूर्वक वहां गये लेकिन कब्रिस्तानके दरवाजे पर ताला था।

वहांसे हम एक हिन्दी पुस्तकालय देखने गये। उसमें लगभग ढाई हजार गुजराती किताबें हैं। पहले यह पुस्तकालय सबके लिए था। अब यह मुसलमानोंके तथा स्थानिक लोगोंके हाथमें है। यहां व्यवस्थापकोंने हमारे फोटो लिये। जब मुसलमान लोग जानते है कि हम हिन्दू-मुस्लिम एकतामें मानते है तब वे अपनी संस्था देखने हमें प्रेमपूर्वक बुलाते हैं।

माजुंगामें कॅथलिक लोगोंकी बहुत पाठशालाएं हैं। उनका काम हमेशा अच्छा और व्यवस्थित होता है इसलिए उनका प्रभाव अच्छा है। केवल बालिकाओंकी पाठशालामें करीब ढाई हजार लड़कियां पढ़ रही हैं। इस शहरमें हमारे लोगोंकी बस्ती लगभग बीस हजारकी मानी गयी है। उसमें दस फीसदी हिन्दू हैं।

रातको मुस्लिम भाई देसाईके घर भोजन था। उनका घर बहुत ही अच्छा था ! राजा महाराजा भी उसकी ईर्ष्या करें !

फिर हिन्दू समाजकी ओरसे शांतिभवनमें रास-गरबा इत्यादिका कार्यक्रम था। पोरबंदर गुरुकुलकी भूतपूर्व विद्यार्थिनी श्री अनसूया बहनने तथा उनकी ननदने मिल कर यह कार्यक्रम तैयार किया था। अच्छा था। शांतिभवनका अपना भी एक पुस्तकालय है।

माजुंगामें भी हमने लोगोंसे पासपोर्टकी परेशानीके बारेमें बहुत कुछ सुना और उनको सारी परिस्थिति समझा दी।

रातको तारे देख कर सो गये।

सुबह चार बजे उठ कर फिरसे तारे देखने बाहर निकले। लेकिन जहां देखें वहां मात्र बादल ही बादल ! नींद भी बिगड़ी और तारे तो दिखे ही नहीं ! हम

तैयार हुए इतनेमें रायचंदभाई तथा मोहनभाई आ कर हमको अपने घर ले गये। मोहनभाईने हमको प्रवाल (मूंगे) की एक माला और अगरका एक टुकड़ा भेंट दिया और सभी हमें हवाई अड्डे तक विदा करने आये। माजुंगा आने-जानेका हमारा किराया रायचंद भाईने दे दिया।

यूं डेढ़ दिनमें जितना देखना शक्य था इतना देख कर, अच्छे-अच्छे लोगोंका परिचय प्राप्त कर, बहुतसे अनुभव तथा विचारोंके साथ हम तानानारीव वापिस पहुंचे और शाम होनेसे पहले घर आ गये।

सबको काकाके सप्रेम शुभाशिष

तानानारीव

६-१२-५६

प्यारी बहन,

अब तकके हमारे प्रवासका वर्णन करनेवाले पत्र चि० हसमुख आपको पढ़ सुनाते ही होंगे इसलिए, वह सारा आप जानती ही हैं। आखिरी पत्र माजुंगाके बारेमें उस[illegible] ही चि० हसमुखको भेजा है। उसके बारेमें एक 'घरेलू' बात मुझे बहुत अच्छी लगी। वह आपको भी जरूर अच्छी लगेगी इसलिए आपको लिखती हूं।

माजुंगामें कल सुबह हम जिन सज्जनके घर नाश्ता करने गये थे उनके घरकी एक सुंदर बात मालूम हुई।

इन सज्जनकी पहली पत्नी गुजर गयीं। उस पत्नीकी मां अभी भी उनके घरमें ही रहती हैं। सासने अपने दामादको दूसरी शादी करनेका प्रोत्साहन दिया और दूसरी पत्नीको अपनी बेटी मान कर प्रेमपूर्वक आशीर्वाद,, सलाह और मदद देती रहती हैं। बच्चों पर 'नानी मां' प्रेम बरसाती हैं। नयी गृहिणी भी उनको मां की जगह मान कर उनको संभालती है। घरका वायुमंडल सुन्दर, प्रेमल और संस्कारी है। यह सब देख कर मुझे बहुत आनंद हुआ।

अब्दुल करीमभाईके शाम्बामें हम डेढ़ दिन रहे लेकिन उस स्थानके सौंदर्यका असर मन पर बहुत हुआ। आप होतीं तो भजन गानेकी ही आपको स्फूर्ति होती। अब यह पत्र भेज देना पड़ेगा। वहां सबको अनेकानेक स्नेहस्मरण

आपकी

सरोज

नैरोबी पहुंचने वाले विमानमेंसे

६-१२-'५६

प्रिय उमाशंकर,

किये हुए संकल्पके अनुसार, अफ्रीकाकी बगलमें आये हुए हिन्द महासागरके तीन

द्वीपोंकी यात्रा करके वापिस पूर्व अफ्रीका जा रहे हैं। इस समय विमानमेंसे खास कुछ देखनेको मिलता तो व्योमविहार करते पत्र लिखने जैसी अरसिक प्रवृत्ति शुरू ही नहीं करता। लेकिन करें क्या ? माडागास्करकी राजधानी तानानारीव छोड़-कर थोडे पहाड़ देखे, नदियां पहचानीं और दूर तक समुद्र किनारा देखा। इतनेमें बादलोंने हमारे विरुद्ध साजिश की और हिन्द महासागरके सिर पर श्वेत-श्वेत दूधसागर अथवा क्षीरसागरको फैला दिया। उसको देख-देख कर कितना देखें ? इसलिए कुछ दिन पहले अफ्रीकामें नैरोबीके अभयारण्यमें गये थे। उसके संस्मरण लिख दिये। अब आपको लिख रहा हूं।

मॉरिशियस तथा रीयूनियनके बारेमें एक दो पत्र लिख भेजे ही हैं। माडागास्करका कुछ बयान चि० नंदिनीको लिखे हुए पत्रमें आपने देखा ही होगा। उसके बाद हम उत्तरमें माजुंगा गये थे उसका पत्र चि० हसमुखने आपको देखने भेजा होगा। अत: अब आखिरी दिनोंके अनुभव और सामान्य बातें ही लिखनेकी हैं। एक तरहसे आपको लिखे हुए इस पत्रको माडागास्करकी यात्राकी पूर्णाहुति मान सकते हैं।

माडागास्करमें हमारे लोग बहुत पुराने समयसे जाते-आते थे। उस समयकी सरकारोंको व्यापारकी भी पड़ी नहीं थी और काबू रखनेका भी सूझा नहीं था। यहांका व्यापार ज्यादातर अरबोंके हाथमें था। उसमें हमारे लोगोंका थोड़ा-सा हिस्सा था। फिर जब फ्रेंचका राज्य मजबूत हुआ तब उन्होंने धीरे-धीरे अरबों-का और हमारा वर्चस्व समाप्त कर दिया। दस-बीस साल पहले यहांके मालगासे लोगोंने फ्रेन्च राज्यके विरुद्ध विप्लव किया तब सरकारने निर्दयतामें उन लोगोंका कत्ल किया। फ्रेंच कहते हैं, ''हमने बारह-पन्द्रह हजारसे अधिक लोगोंको मारा नहीं है।' जब स्थानिक लोग कहते है कि, 'साठ हजारसे ज्यादा मारे गये होंगे।'

यह तो हुई पुरानी बात। अब दुनियाकी परिस्थिति बदली है। एशियाकी जागृतिका प्रभाव यहां भी हुआ है और फ्रेन्च लोग समझ गये हे कि भविष्यमें इन लोगोंको स्वराज्य दिये बिना चारा नहीं है। हमारे मन पर यह छाप पड़ी है कि सरकार यहांकी प्रजाके प्रति अब सहानुभूति रखती है।

फिर भी प्रजाका असंतोष पूरा समाप्त नहीं हुआ है। कई लोग मेरे साथ पत्र-व्यवहार चलाना चाहते थे। मैंने कहा कि इतनी दूरसे मैं आपकी क्या सेवा कर सकूंगा ? आपके बीच आ कर रह सकता तो बहुत करता।

हम तानानारीवसे निकले उस दिन कई मालागासे सज्जन हमें मिलने आए। उनमेंसे एक दंतवैद्यने श्रीमद् भगवद्गीताका स्वयं किया हुआ मालागासे अनुवाद मुझे भेंटमें दिया। मैंने पूछा कि आप संस्कृत जानते हैं ? उन्होंने कहा, "नहीं जी। हमने तो फ्रेन्च तथा अंग्रेजी भाषांतरोंसे मालागासेमें किया। मैंने कहा कि "हमारे इतने सारे लोग रहते हैं। यदि मालगासे भाषा सीख कर किसीने गुजराती अथवा

हिन्दीसे भाषांतर कर दिया होता तो अधिक संतोषकारक रहता। लेकिन आपने स्वयं यह काम किया है उसके तो आपको अभिनन्दन मिलने ही चाहिये।"

फिर बड़ी नम्रताके साथ उन्होंने विनती की कि, "गीताके श्लोक मूल संस्कृतमें बोल कर सुनाइये। जिस ग्रंथके प्रति हमारे दिलमें इतना भक्तिभाव है उसकी ध्वनि सुननेकी इच्छा है। हम पावन होंगे।"

मैंने उनको स्थित प्रज्ञके बीस श्लोक आश्रमकी पद्धतिसे बोल सुनाये। एक-दो अन्य अध्याय भी बोल गया। उन लोगोंके मुखकी धन्यता देख कर ही मुझे धन्य-सा लगा। मैंने सोचा कि हमने यहां गीताके कोई मिशनरी नही भेजे हैं। फिर भी गीताके महत्त्वको पहचान कर ये लोग उसके बोधको हृदयंगम करते हैं। मनुष्यजातिको सच्चा पाथेय मिलने पर उसे पहचाननेकी तथा प्राप्त करनेकी शक्ति उसमें है ही।

गीताके उस अनुवादक श्री राकुतोनीरेके साथ जो दूसरे सज्जन आये थे उन्होंने मुझे एक सुन्दर लकड़ी भेंट दी। बिलकुल सादी किन्तु कलायुक्त है।

श्रीमती विद्या बहन और उनकी बेटी वीणा यहां सेवाश्रम चलाती हैं। वे उसमे हमारा सर्व-धर्म-समन्वयकी प्रार्थना चलाना चाहते थे। चि० सरोजने ऐसी एक प्रार्थना लिख दी और दो दफा गा कर सुना दी। मैंने देखा है कि ऐसी छोटी-सी सेवा भी विदेशमे अच्छी पनपती है।

हम तानानारीव छोड़नेकी तैयारीमें थे इतनेमें हिन्दू समाजकी ओरसे श्री मगनभाई चंदाराणा इत्यादि सज्जन आये। उन्होंने एक-दो कला-कृतियां भेंट दी। उनमें मालगासे कलाकी एक लकड़ीकी मूर्ति है जिसमें एक मालगासे मच्छीमार एक बड़े मगरको मार कंधे पर लटका कर ले जा रहा है।

हवाई अड्डे पर हमारे अकबरअली भाई तथा उनकी फ्रेंच पत्नी हमे विदा देने समय पर पहुंचे थे।

मुझे हमेशा लगता है जिस होशियारीसे हमारे व्यापारी दूर-दूरके देशोंमें जा कर अपना भाग्योदय आजमाते है उनकी कदर करके समाजके तथा देशके नेताओंको चाहिए कि दीर्घदृष्टिसे संस्कृति-बर्धन तथा सौमनस्य प्रचारका काम करें। अन्य किसी भी देशके नेताओंने इतनी होशियारी बेकार या व्यर्थ जाने नही दी होती। हमारे हिन्दू-मुस्लिम व्यापारी सज्जन जिस देशमें जाते है, वहां किफायतसे रहते हैं। सज्जनतासे सबके साथ मिलते-जुलते हैं और कुल मिला कर अप्रिय नही बनते। फिर भी हमारे न्यात जातके अलग-अलग समाजोंके वायुमंडलके कारण हिन्दुओंमें आसपासके समाजमें सामाजिक ढंगसे मिलने-जुलनेकी कला अब तक विकसित नहीं हुई है। हम किसीका नुकसान करते नही हैं। दूसरे हमारा नुकसान करें तो धीरज-पूर्वक सहन करते हैं यह सच है। परेशानी सहन करनेमें हम कुशल हैं। लेकिन स्थानिक समाजके साथ एकरूप होनेकी, उनके सुख-दुःखमें ओतप्रोत होनेकी और उनका विश्वास प्राप्त करनेकी कलाका विकास करना ही चाहिए ऐसा

हमारे मनमें अबतक उगा नहीं है। मालगासे लोगोंको स्वराज्य प्राप्तिमें अब ज्यादा देर होनेवाली नहीं है। आजसे ही उसके नेताओंको, भविष्यके राज्यकर्ताके तौर पर पहचान कर, उनके साथ मधुर संबंध बांधेंगे तो वह सब दृष्टिसे लाभदायक ही साबित होगा। मालगासे लोगोंकी संस्कृतिका गहरा अध्ययन करनेके लिए हमारे यहांसे कुछ अध्यापकोंको तथा लोक-सेवकोंको एकाध वर्ष यहां बिताना चाहिए। यहांके थोड़े लोगोंको भारतकी यात्रा पर बुलानेकी आवश्यकता भी इतनी ही है। लेकिन यह काम सरकारी ढंगसे नहीं होना चाहिए।

मध्यकालमें जिस छूटसे हम एक-दूसरेसे मिल जाते थे वह फिरसे शुरू करना चाहिए। हिन्दी महासागरके टापुओंमें बसनेवाले लोगोंके साथ हमारा परिचय न बढ़े तो यह बड़ी खामी है। पड़ोसियोंके साथ मधुर संबंध और आर्थिक सहकार, यही एक अहिंसक राष्ट्रकी सच्ची और सर्वकल्याणकारी विदेशनीति हो सकती है।

सौ पांच सौ वर्ष पहले दुनियाके देशोंमें राजनैतिक या आर्थिक संबंध इतने अटपटे या उत्कट नही थे। चाहे वैसा चलता था। सर्वत्र गफलतका राज्य था। अब वह स्थिति रही नहीं है। उस गफलतमे फायदा उठानेको तैयार हुए पश्चिम के होशियार और स्वार्थी लोग तथा राज्य। यदि दुनिया कुछ बच गयी हो तो उन लुटारू देशोंकी अंदर-अंदरकी स्पर्धा तथा ईर्ष्याके कारण। लेकिन अब तो सर्वत्र जागृति आ गई है। अब नया ही मानस विकसित करना होगा। मैं जैसे ज्यादा यात्रा करता जाता हूं, वैसे देखता जाता हूं कि मानवता सर्वत्र एक ही है—भावनाएं तथा स्वार्थ सब जगह एक-से ही हैं। कई लोग गफलतमें रहते हैं और अदूरदृष्टि वाले होते हैं, कई दूरदृष्टि और अधिक संगठित। अब मानवताका विकास किये बिना चलेगा ही नहीं। भगवान्के सभी देश पवित्र हैं। और पूरी मानवजाति स्वजन है इस भूमिका परसे चिंतन करना चाहिए और चलाना चाहिए। जो लोग इस भूमिकाको स्वीकार नही करते और जो कोरा स्वार्थ सिखाते हैं उनके मार्ग पर जाते हैं ऐसे लोग ही आजकी दुनियामें सफल होते है, किन्तु भविष्यकाल उनका नही है।

हमारे लोगोंको अब दुनियामें अधिक यात्रा करनी चाहिए और ज्यादा जागरूक तथा उदार रहना चाहिए, इतना-ही बोध इस यात्राके अन्तमें निकलता है।

अब तो नैरोबी आयेगा तथा पूर्वपरिचित पूर्व अफ्रीकामें फिरसे भ्रमण कर सकेंगे। नौ सालके बाद दूसरी बार यात्रा होगी इसलिए अनेक परिवर्तन देखनेकी अपेक्षा और तैयारी है।

काकाके सप्रेम वंदेमातरम्